



Issue-08/Vol-26/March 2020 (UGC Approved Peer Reviewed Journal)

SHODH SANDARSH ISSN No. 2319 - 5908

Issue-08/Vol-26/March 2020

ISSN No. 2319 - 5908

An International Multidisciplinary Peer Reviewed Quarterly Journal



# शोध संदर्श

## SHODH SANDARSH

शिक्षा, साहित्य, इतिहास, कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य आदि

मानविकी विशेषांक

*Chief Editor :*

**Dr. V.K. Pandey**

*Editor :*

**Dr. V.K. Mishra  
Dr. V.P. Tiwari**



विविध ज्ञान - विज्ञान - विषय का मन्थन एवं विमर्श ।  
नव - उन्मेषी दशा - दिशा से भरा 'शोध - सन्दर्श' ॥

## CONTENT

### History

• Importance of the Buddhist Education System –Dr. Nasreen Begum	1-7
• प्रारम्भिक राजनीति में महिलाओं के साहस और सम्मान का मूल्यांकन-अभिनव अर्चना	8-12
• सुभाषचन्द्र बोस एवं रामगढ़ का समझौता विरोधी सम्मेलन का ऐतिहासिक महत्त्व-डॉ. विनोद कुमार	13-16
• अंग्रेजों की भू-राजस्व नीति का भारतीय कृषकों पर प्रभाव –आशा शर्मा	17-20
• कौशाम्बी के समाज में धार्मिक जीवन-डॉ. तेज बहादुर यादव	21-28
• तीर्थराज प्रयाग : महात्म्य और अक्षयवट का एक अनुशीलन-छोटे लाल यादव	29-31
• मगध जनपद का ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं राज्यवंशों का एक अध्ययन-डॉ. मन्दु कुमार सिन्हा	32-36
• बिहार की दलित समस्या-डॉ. मनीष कुमार सिंह	37-38
• भारत की प्राच्य संस्कृति में उच्च पुरापाषाण युगीन संस्कृति का योगदान-डॉ. नीरज बाजपेयी	39-43
• पौराणिक कालीन समाज में लोक संस्कृति, परम्परा एवं शिक्षा साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन-डॉ. विजय शंकर मिश्र	44-49
• नालन्दा महाविहार : एक संक्षिप्त अध्ययन-डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय	50-51
• साम्प्रदायिकता की अवधारणा वैचारिक कट्टरता और इतिहास लेखन-अरूणिमा	52-57
• भारतीय साहित्य में श्रीराधा : एक विमर्श-अवधेश कुमार	58-60
• धर्मशास्त्रों में नारी का सामाजिक जीवन : एक अनुशीलन-मन्जू यादव	61-65
• महिला सशक्तिकरण के समक्ष चुनौतियाँ-डॉ. अश्विनी यादव	66-71
• तंजौर कला का वैशिष्ट्य-डॉ. ऋतु मालवीय	72-75
• महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचार : एक अध्ययन-कंचन कुमारी	76-80
• खिलाफत आन्दोलन में बंगाल का योगदान-डॉ. अमित कुमार गुप्ता	81-84
• बौद्ध चिन्तन में लैंगिक समता-डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय	85-91
• छठी शताब्दी ईशा पूर्व का परिवर्तित भौतिक परिदृश्य और वैश्य वर्ग की सामाजार्थिक और राजनीतिक स्थिति का आलोचनात्मक विश्लेषण-डॉ. प्रदीप कुमार केसरवानी	92-100
• फतेहपुर जनपद के वासियों का राष्ट्रीय आंदोलन-डी.के. चौहान	101-105
• ऐतिहासिक स्रोत 'तुजुक-ए-बाबरी' : एक समीक्षात्मक अध्ययन-डॉ. मनोज सिंह यादव	106-108
• कोविड-19 के दौर में आत्मनिर्भर भारत अभियान : अवसर, चुनौतियाँ एवं रणनीति –डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह	109-112
• The Historical Background of the Quit India Movement-1942 : Failure or Success –Dr. Mansoor Ahmad Siddiqui	113-117
• प्राचीन काल में चर्मकारों की सामाजार्थिक स्थिति : छठी से बारहवीं शताब्दी ईसवी के काल के विशेष संदर्भ में-डॉ० मीनाश्री यादव	118-120
• पहाड़ी चित्रकला : एक परिचय-निकू राम	121-127
• संयुक्त प्रान्त में रेलवे का परिचालन 1860-1914-रमेश कुमार	128-132

### Sociology

• जातिवाद एवं राजनीति के अन्तर्संबंध ( वर्तमान परिप्रक्ष्य में ) –डॉ. बृजेश सिंह	133-135
• भारतीय समाज में उपेक्षित समूहों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने में सामाजिक न्याय की भूमिका का अनुशीलन –डॉ. रमेश चन्द्र प्रजापति	136-139
• विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता जनित करने में संचार-साधनों की भूमिका –डॉ. ब्रह्म स्वरूप श्रीवास्तव	140-144

- महिला सशक्तिकरण की विभिन्न चुनौतियाँ –डॉ. शोभा कुमारी 145-146
- दलितों की सामाजिक दशा एवं दिशा : एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन-डॉ. महेश कुमार पाण्डेय 147-151

### Education

- स्नातक स्तर पर अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. मुकेश कुमार सिंह 152-154
- केन्द्रीय मूल्यांकन पद्धति के प्रति शहरी तथा ग्रामीण अध्यापकों के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. प्रवीन कुमार सिंह 155-156
- कला-एक शिक्षण माध्यम-दिवाकर सिंह पटेल 157-160
- बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन –प्रदीप चौहान 161-165
- शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं भौतिक अभिवृत्ति का सह-सम्बन्धात्मक अध्ययन –डॉ० विनय प्रताप सिंह 166-171
- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में शैक्षिक निर्देश एवं परामर्श की आवश्यकता का अध्ययन –चन्द्रशेखर शर्मा 172-175
- 21 वीं सदी में अध्यापक शिक्षा-राहुल कुमार तिवारी एवं डॉ. आलोक कुमार मिश्र 176-179
- अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में राधाकृष्णन आयोग एवं राम मूर्ति समिति के सुझाओं का समीक्षात्मक अध्ययन-डॉ. अनुराधा कुमारी 180-182
- प्राथमिक शिक्षा में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की प्रासंगिकता-पीयूष राज प्रभात 183-185
- डी.एल.एड्. में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन-डॉ. रामेन्द्र कुमार 186-190
- प्राथमिक शिक्षा और अवरोधन-विजय कुमार 191-194
- उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. राजेन्द्र कुमार जायसवाल 195-202
- माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन-अनुपमा सिंह 203-209
- बाल अपचारियों ( अपराधियों ) की शिक्षा : एक अध्ययन-डॉ. अंजू सिंह 210-213
- शिक्षा नीति का वैदिक मानदण्ड-डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय 214-217
- **Effect of Population Education Program on Graduate Students**– Sadhana Tripathi 118-220
- भारतीय शिक्षा नीतियों का अध्ययन (1986, 1991 एवं 2020 के सन्दर्भ में ) –डॉ. जनमेजय मिश्र एवं डॉ. वसीम हासमी 221-227
- उच्च शिक्षा में संप्रेषण कौशल की भूमिका-डॉ. मयानन्द उपाध्याय 228-230
- **Donot Play With Fire.....**–Dr. Suman Shukla 'Hans' 231-233
- मूल्य आधारित शिक्षा का जीवन में महत्त्व-डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 234-236
- वर्तमान समय में प्रचलित दूरस्थ शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का अधिगम में योगदान-डॉ. गिरजा प्रसाद मिश्र 237-238
- वर्तमान शैक्षणिक व्यवस्था एवं छात्रों का भविष्य-कल्पना यादव एवं डॉ. धीरेन्द्र सिंह यादव 239-240
- भारत में लिंगानुपात : एक विश्लेषण ( जनगणना 2001 एवं 2011 के संदर्भ में ) –डॉ. अहिल्या तिवारी 241-244

**Political Science**

- Moderate Phase of the Indian National Movement (1885 – 1905)–Dr. Rais Ahmad 245-249
- The Role of Media in Indian Politics–Jamil Ahmad Khan 250-254
- राजस्थान में महिला कल्याण प्रशासन : शासकीय क्षेत्र में कार्यरत मध्यम वर्गीय महिलाओं का अलवर जिले के विशेष संदर्भ में अनुभवमूलक अध्ययन–डॉ. सुमित्रा 255-259
- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत-अमेरिका सम्बन्ध–डॉ. उपमा सिंह 260-262
- भारत-अफ्रीका सम्बन्ध के बदलते आयाम : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ. गौतम कुमार 263-266
- भारत में महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा : एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन  
–डॉ. प्रीतम कुमार यादव एवं डॉ. सत्येन्द्र कुमार 267-269

**Geography**

- समसामयिक परिप्रेक्ष्य में नगरों समस्याएँ : चुनौतियाँ व समाधान–डॉ० मुकेश कुमार शर्मा 270-272
- गढ़वाल हिमालय में पर्यटन उद्योग के विकास की सम्भावनाएँ–डॉ. प्रदीप कुमार 273-279
- इटावा जिले का एक विस्तृत भौगोलिक अध्ययन–डॉ० बिमलकान्त द्विवेदी 280-284
- बस्ती जनपद में शस्य गहनता एवं कृषि उत्पादकता का एक प्रतीक अध्ययन  
–डॉ० विवेक शुक्ल एवं डॉ० श्रवण कुमार शुक्ल 285-290
- चन्दौली जनपद ( उ०प्र० ) में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता एवं उनका मूल्यांकन  
–डॉ० महेन्द्र कुमार 191-197
- विकासखण्ड सिरकोनी ( जनपद जौनपुर ) में साक्षरता का भौगोलिक अध्ययन  
–डॉ० राजेन्द्र कुमार सिंह एवं प्रगति मौर्या 298-305
- विकासखण्ड जखनियाँ, जनपद गाजीपुर के समन्वित ग्रामीण विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों की भूमिका केन्द्रों की भूमिका–डॉ० अरविंद कुमार चतुर्वेदी 306-309
- सन्त रविदास नगर जनपद में नगरीय जनसंख्या वृद्धि एवं नगरीकरण का स्तर  
–धर्मेन्द्र कुमार मौर्य एवं डॉ० सी०वी० पाल 310-316
- वैश्वीकरण के कालिक आयाम–डॉ. प्रशान्त पाण्डेय 317-322
- भारत नेपाल सीमावर्ती क्षेत्र में सामाजिक सांस्कृतिक परिदृश्य का एक भौगोलिक अध्ययन ( राप्ती-गण्डक )–डॉ. घनश्याम दुबे 323-328
- तहसील जखनियाँ जनपद गाजीपुर में सामाजिक आर्थिक क्रिया-कलापों के भूवैज्ञानिक संगठन में सेवा केन्द्रों का योगदान एवं प्रतीक अध्ययन–डॉ. हंसराज यादव 329-339
- सोनार बेसिन ( म.प्र. ) में भू-पर्यावरणीय समस्याएँ एवं सुझाव–डॉ. संदीप कुमार सिंह 340-346
- जनपद प्रतापगढ़ अपवाह तंत्र का भौगोलिक अध्ययन–डॉ. उदय प्रताप सिंह 347-349
- कृषि एवं आनुषंगिक व्यवसाय का अध्ययन जनपद गाजीपुर ( उ.प्र. ) के विशेष संदर्भ में  
–डॉ. कमलेश कुमार 350-353
- अकबरपुर नगर में जनसंख्या वृद्धि का एक भौगोलिक अध्ययन  
–संतोष कुमार सिंह एवं डॉ. (श्रीमती) पुष्पा सिंह 354-358
- मानव जीवन और पर्यावरण–डॉ. आर. के. तिवारी 359-361
- श्रावस्ती जनपद ( उ.प्र. ) में जनसंख्या वृद्धि एवं उसका समाजार्थिक प्रभाव  
–विभा पाण्डेय एवं डॉ. श्रवण कुमार शुक्ल 362-365

**Philosophy**

- गाँधीवादी दर्शन और वैश्वीकरण की संकल्पना–डॉ. मधुसूदन सिंह 366-369
- चैतन्य तथा उनके शिष्यों का अचिन्ता भेदाभेदवाद–डॉ. दल सिंगार सिंह 370-386



**Economics**

- कृषि विविधीकरण-हरिशंकर यादव 387-391
- आँवला औद्यानिकी का प्रतापगढ़ के ग्रामीण आर्थिक विकास में योगदान  
-डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय 392-396
- कोविड-19 के दौर में आत्मनिर्भर भारत अभियान : अवसर, चुनौतियाँ, रणनीति  
-डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह 397-400
- कृषि आधारित उद्योगों की समस्याएँ एवं सुझाव-हीरलाल सिंह 401-405
- जनजातीय समाज में रोजगार की अवधारणा का अध्ययन-सपना सिंह 406-411
- नारी सशक्तिकरण का हल कौशल पर बल-ज्योति कुमारी 412-419
- Employment Problems in India and Our Strategies-Dr.Nikita Kumari 420-426
- The Great Depression and Its Relevance in the Current Indian  
Economic Crisis-RuchirTripathi 427-437
- समावेशी विकास में प्रधानमंत्री जनधन योजना की भूमिका-डॉ. ओम प्रकाश दुबे 438-438
- भारतीय कृषि में तकनीकी परिवर्तन-डॉ. बृजेश कुमार श्रीवास्तव 439-440
- वैश्विक भारत में बाजार, विज्ञापन व उपभोक्ता शिक्षा-डॉ. महेन्द्र त्रिपाठी 441-444

**Commerce**

- Impact of MGNREGA : On Economic Status of Rural Area A Case Study  
of Dunda Block (District Uttarkashi)-Dr. G. C. Dangwal & Dr. Ritu Dangwal 445-455
- बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक के ऋण वितरण का अध्ययन करना  
-ब्रजनन्दन गुप्ता एवं डॉ. अभिलाष कुमार श्रीवास्तव 456-459
- Effect of Business Ethics in Marketing and on Marketing Mix-Dr. Sunita Sinha 460-465
- Technology Efficiency of Khadi and Village, Industries, and Employment  
Generation : A Case Study -Dr. Birendra Kumar Yadav 466-470
- Vision New India : Strategies and Prospects-Dr. Yadvendra Pratap Singh 471-475
- Consumers' Attitude Towards Organised and Unorganised Readymade Garment  
in Rewa City-Harshit Pratap Singh & Prof. Dr. Anjali Srivastava 476-479
- Socio-Economic Profile of Entrepreneurs : a Cross Sectional Study of Situational  
Factors Affecting Entrepreneurial Choice-Dr. G. C. Dangwal & Dr. Ritu Dangwal 480-488
- कोरोना वायरस महामारी का वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं पर प्रभाव-डॉ. उपमा त्रिपाठी 489-493

**Management**

- Workers Participation in Management-Richa Rajshree 494-497
- Respondent's Hedonic Attitude Towards Online Shopping of Fashion Products  
-Dimple Tilwani 498-507
- Key Elements of Total Quality Management  
-Saurabh Kumar Soni, Prof. Dr. Anjali Srivastava and Dr. Nidhi Singh Parihar 508-515

**Home Science**

- हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के किशोरावस्था के बालक-बालिकाओं की शिक्षा पर  
कोविड-19 का दुष्प्रभाव : एक तुलनात्मक अध्ययन-श्रीमती रीना श्रीवास्तव 516-518
- किशोरावस्था में तनाव प्रबन्धन-प्रीती एवं डॉ. वन्दना कुमारी 519-523

- प्राथमिक विद्यालयों के बालकों की विद्यालय त्याज्यता का सामाजिक विकास पर प्रभाव  
( जनपद जौनपुर के विशेष संदर्भ में ) विकासखण्ड-धर्मापुर, सिरकोनी-डॉ. नूतन सिंह 524-526
- कूड़ा निस्तारण एवं स्वास्थ्य समस्या-डॉ. संगीता उपाध्याय 527-529
- Women Empowerment Through Skills and Entrepreneurship Development  
: A Sociological Study In Uttar Pradesh-Dr. Nilu Singh 530-535
- किशोरों के लिए संतुलित आहार-डॉ. सुषमा रानी 536-538
- Development of Value Added Products with the Mixture of Barley and Gram  
Flour for Diabetic Patients-Dr. Sunita Sharan 539-545
- Youth Problem and Their Copying Strategies-Smt. Mamta & Dr. Charu Vyas 546-548

### Psychology

- Mental Health Sex, Culture and Burnout-Dr. Kamlesh Kumar Pandey 549-552
- आधुनिकता के दौर में किशोरावस्था की बढ़ती आवश्यकताएँ और गिरता व्यक्तित्व  
-डॉ. राकेश सिंह 553-554

### Law

- Growing Dimensions of Law of Rape in India : Legislative Consciousness  
and Judicial Activism-Dr. Abhishek Singh 555-562

### Music

- भारतीय सौन्दर्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-शशी रॉय 563-565
- भारतीय संगीत की अप्रचलित तालें-डॉ. नन्दिनी मुखर्जी 566-567
- संगीत शिक्षा के विविध आयाम-डॉ. नन्दिनी मुखर्जी 568-569

### Cinema

- सिनेमा की निर्माण प्रक्रिया-डॉ. गोकुल गोरख क्षीरसागर 570-574

### Botany

- Study of Correlation Coefficient Analysis In Barley (*Hordeum Vulgare*.)  
-Rachana Singh, Javed Ahmad Siddhiqui and V.P. Kanaujia 575-577

## Importance of the Buddhist Education System

*Dr. Nasreen Begum\**

A system of Education is dependent on the system of knowledge; and knowledge cannot operate without wisdom, hence to attain knowledge, add things everyday. To attain wisdom, remove things everyday and the education system must be ingrained in the value system based on wisdom. Buddhism is one of the most important schools of thought, which analyzed everything logically and systematically. Buddhism always focused on wisdom based and value- oriented education system or in a broad sense wisdom -based education system which leads to the right understanding about anything. To know the reality or the actual truth, we must have the right vision or right understanding about it and therefore we should act according to it. That is why Buddhism always begins with the right vision (samma-dimmi) which is well explained in Buddhist doctrine of Eight Fold Path or AmmhaEgikomaggo.

In India during the time of Buddha, there was racial discrimination in society. This discrimination was according to profession of man, and according to birth. In the society there was four divisions of man of whom Brahman was superior. Brahmanism dominated the society and established their supremacy in the country. They enjoyed rights for religious training and education. But other category of people deprived of their religious and educational rights. At that time there were 62 heretical doctrines in existence and the priesthood got upper hand. In this background, a religious revolution started in ancient India in 600 B.C. and a new doctrine or system developed which is called Buddhist doctrine or Buddhist philosophy. It is to be said that on the foundation of Buddhism a new and special Education System originated in ancient India (Basham, A.L. 1954). Buddhism made a tremendous movement which played a valuable role in the development of Education System in ancient India or ancient Buddhist world. It is well-known that with the rise of Buddhism in India there dawned the golden age of India's culture and civilization. There was progress in all aspects of Indian civilization under the impact of Buddhism. There arose many centres of learning which did not exist before.

Buddhist education aims at a personality transformation into a highest form of humanity through ethical, intellectual and spiritual perfection. These three faculties of perfection of human life undoubtedly lead a man through mundane happiness to supra mundane happiness, which is the highest achievement we all are equally looking for. Therefore, the Buddhist education is grounded on the primary psychological need of all living beings.

The goal of Buddhist education is to attain wisdom. In Sanskrit, the language of ancient India, the Buddhist wisdom was called Anuttara-Samyak-Sambhodi meaning the perfect ultimate wisdom. The Buddha taught us that the main objective of our practice was to achieve this ultimate wisdom. The chief aim of Buddhist education is all round development of child's personality. This includes his

\* Associate Prpf., Department of Ancient History, Culture, Archaeology, Hamidia Girl's College (Constituent P.G. College of the University of Allahabad)

physical, mental, moral and intellectual development. The aim of Buddhist Education is to make a free man, a wise, intelligent, moral, non-violent & secular man. Students became judicious, humanist, logical and free from superstitious. Students became free from greed, lust and ignorance. The other aims of Buddhist Education are to make a free man, a wise, intelligent, moral, non-violent & secular man.

Buddhist Education was wide open and available to the people of all walks of life. The principal goal of the Buddhist Education is to change an unwise to wise, beast to priest. The Buddhist education system aimed at regaining our intrinsic nature. It also teaches absolute equality which stemmed from Buddha's recognition that all sentient beings possess this innate wisdom and nature. Buddha's teaching helps us to realize that innate, perfect, ultimate wisdom. With wisdom, we can then solve all our problems and turn suffering into happiness. In the Buddhist era, religion was given top priority and education was imparted through it. The chief aim of education was propagation of religion and inculcation of religious feelings and education served as a mean to achieve liberation or nirvana. Preparation for life, there was a provision for imparting worldly and practical knowledge along with religious education so that when the students entered normal life they may be able to earn their livelihood (Ahir, D.C. 2011).

When the Buddha ordained Annatakondanna, who was the first Buddhist monk after Buddha, at Isipattana, he said: "Come then, Brother, well taught is the Dhamma. Live the holy life for the utter destruction of Woe. In this way began the Samgha, Monastic order, starting as a union of the teacher and his pupils. Every novice had to pass first 5 years under a teacher's care, the teacher was usually a sthavira, the system was called nissaya i.e. dependence on a preceptor.

The Buddha had laid down that every novice must be properly trained in the Vinaya (Discipline) and the Dhamma (Doctrine) and must choose an upajhaya (spiritual preceptor). The relations between preceptor and pupil were like that of a father and a son, based on confidence and love.

Literacy in the modern sense of the term was out of question in those days. All the teaching had to be imparted orally and retained in memory, this is inferable from the non-mention of any written document text-book among the belongings of a monk listed in the Canon. Knowledge of time-reckoning, study of the Pratimoksa, the Vinaya and the Dharma, Buddhist legends and moral fables and basic tenets, these were the subjects of study. The teaching was reinforced in occasional congregational recitations (samgiti).

Before the Buddhist 'wanderers' settled in residential monastic establishments, the sthavira-teacher probably took his class informally in the open air. A pre-Gandhara sculpture from Mathura shows a Buddhist master standing in teaching posture with a parasol in his left hand, addressing a group of monks sitting in three lines.

Growth of Abhidharma and, at least two sections of the Sutta Pittaka, viz. the Niddesa and the Patisambhidamogga, testify to an early growth of intellectual bias, scholasticism and academic temper among the monastics.

Analytic and deductive method of early Buddhist scholasticism was further carried on in the early Sanskrit literature of some Buddha sects.

With the emergence of Mahayana, Buddhist education, scholasticism and literary activities received a tremendous impetus. Not only the doctrinal, disciplinary and sectarian problems of academic nature, but also secular arts and studies came within the scope of Education and training of Bodhisattvas. Not



only the monks, but the laity also came within the educational range of Buddhist monasteries. Ornate in art, poetry and literature in general, with a manifest bias for intellectual and metaphysical progress, established in richly equipped monastic halls and with a dominant tendency to uplift the mass of lay-followers. Mahayanism with its universal culture mission seems to have exerted a great educational influence on society from the time of its Inception. Monasteries where the masters and poets and debaters of Mahayana lived, became the natural centres of Buddhist education and learning.

In Hsuan Tsang's account we find that every great monastery In India (Mookerji, R.K. 1947, 530-35) had in its past record name of some eminent Buddhist scholar and saint who wrote some notable treatise, carried on doctrinal debate and converted men to Buddhism. It has been perhaps rightly suggested that, ancient India owed the rise of her Temple- colleges and organised public educational institutions to the influence of Buddhism. Buddhist monastic colleges were the first systematic educational institutions in ancient India, and they disseminated not only Buddhist teaching but also non- Brahmanical studies and secular branches of learning.

In the early days, the community of monks that formed the core of Buddhist movement, was almost entirely devoted to the course of ethical excellence and institutional gnosis leading to spiritual awakening. In a spiritual discipline directed towards a transcendental goal, which was beyond the range and reach of thought and reason, there was little place for education as commonly understood in modern times. The true character of Buddhist education, therefore, must be appreciated in the light of the way to Nirvana, in which literary and intellectual skill had very little place. However, it is well to remember that the Dhamma that is described as 'Atakkavacaro' is also said to be 'panditavedaniyo'. But the spiritual eye called 'panna' was not expected to be earned through much learning, it was the grasping of the right view " (Samyagdristi), constant mind fullness and sustained contemplation on the varieties (ariyasaccani) that was essential to this path (patipada). In early Buddhism virtues like Brahmacharya, Bala and Arogya were emphasized. G.C. Pandey suggests that there were apparently two kinds of Brahmacharya known in Buddha's time, which may be called Aparā-Brahmacharya and Parā-Brahmacharya resembling the Aparā-Vidya and the Parā-Vidya. The Parivrajakas, the Brahmanic, the Buddhist and Jain monks were concerned with Parā-Brahmacharya. The importance of great vows, to wit, truth, non-violence, continence, non-stealing and non-possession of property, is well known to ancient Indian mendicancy. Purity in thought and conduct were the backbones of the ascetic training (Joshi, L.M. 1977).

But the theory that Dukkha originates in 'avidya', that the root cause of misery is ignorance when follows the lot of evils, implied, nay it is clearly declared, that freedom from misery could be obtained through the destruction of ignorance. This view thus takes a turn towards a way of knowledge (jnana marga), in Mahayana Buddhism the only means of attaining Enlightenment is 'wisdom' (Prajna, the realization of the voidness of the self and the things).

Buddhist education has a three-fold aim: moral, intellectual and spiritual. In other words, behind the evaluation of Buddhist education and learning there had been three purposive factors at work. In the first place, the monastic community had to read along the rules and regulations laid down in the Vinaya or the Book of Discipline. This meant a rigorous ethical moral course of training as also the general code of conduct among the monks and nuns. The relations between teacher and pupil were also governed by the Vinaya. The newly ordained monks had to undergo an arduous ethical training under the supervision of some elder and able monk.

The second important aim of education was to help the spiritual growth of the monk. This involved both a regulated process of contemplation (dhyana), self-introspection and mastery of mental faculties. Right understanding and meditation on the Four Noble Truths, mastery of the four degrees of dhyana, the successful practice of four virtues, and the gradual rise in the ten stages of a Bodhisattva's career, and such subtle and spiritual pursuits came within this category.

The third important purpose, which gave incentive to the growth of Buddhist literature, learning and scholasticism, was the need of preserving and defending the tradition (agama) and doctrine (saddharma) among themselves and against the opponents. The custom of holding philosophical conferences and doctrinal debates among the sectarians of the same system or among the votaries of rival philosophies and religious systems, contributed not only to the growth of critical philosophy and logic but also resulted in transforming monasteries as active centers of education, learning and literary activity.

The education imparted in the Buddhist Universities was neither exclusively Buddhist nor exclusively monastic. Non-Buddhist studies and secular arts and literature seem to have received their due share in the educational curriculum of these universities. There were four types of education: 1. Spiritual education 2. Moral education 3. Literary education 4. Technical Education. Under the first type may be placed doctrinal teaching, instructions on Buddha's teachings, Buddhist philosophical doctrines, and the essentials of spiritual progress. Besides this theoretical aspect of spiritualism, the practical ways and means of truth-realization, such as yogic practices (Yogacharya), mystical trances (Dhyana and Samadhi), mastery over the body and mind and the attainment of gnostic powers, and so on was also occupied (Joshi, L.M. 1977, 125-27).

Moral lessons were of primary importance. Not only the records of Hsuan Tsang and I-tsing, but also the epigraphs of the times testify to the high moral conduct and ethical excellence of Buddhist monks and scholars. Moral precepts and rules of conduct were taught through practical examples, it was in the monastic colleges that the Buddhist and non-Buddhist students learnt the rules of purity, cleanliness, proper food, etiquette of salutation, respect for all forms of life and obedience to elders and so forth (Mookerji, R.K. 1947, 525-35).

Literary education may have been perhaps compulsory for all resident monks of these institutions. Monastic education and general literacy had progressed considerably during this age. Reading and writing, study of the Vinaya books, specially of the 'pratimoksa', and general knowledge of the Tripitaka and Sanskrit grammar seem to have been the compulsory elements of a monk's preliminary education.

Technical education, with special reference to Buddhist art—architecture, sculpture and painting, seems to have a part of education. An inscription of the time refers to local artists of Nalanda. An inscription found from Nalanda describes the monks of that Mahavihara as versed in the scriptures and arts (agama-kala-vikhyata—vidyajñāna). The inclusion of 'silpasthanavidya' in the list of studies also points to this fact.

In this way, the Buddhist tradition of education and learning entertained a very wide range of subjects of study. Well known are the five vidyas—: (a) adhyatmavidya (b) hetuvidya (c) sabdavidya (d) cikitsavidya and (e) silpasthanavidya. In big universities like that of Nalanda, not only the doctrines and literature of the Great Vehicle and of the Eighteen Sects, but also Vedas and other books on hetuvidya, sabdavidya, cikitsavidya, the works on magic, the samkhya and also a large number of miscellaneous works were taught and studied.

Huen Tsang himself studied in various Buddhist colleges in course of his travels, not only all the collections of the Buddhist books but also examined and penetrated the sacred books of the Brahmanas,

besides specializing in mysticism and Vijnanavada. I-tsing says that throughout the five-parts of India, ordinary students and Buddhist monks had to study sabdavidya or grammar and elements of language. He further says that among the favourite texts were Mahayanasutras, Ratnakutasutra and Saddharmapundarika. He says that his teacher, Hui-li have studied the Saddharmapundarika daily for more than sixty years. King Rajabhata of Samatata used to read hundred thousand slokas of the Mahaprajna-paramitasastra everyday (Mookerji, R.K. 1947, 503-7)

Some monasteries were catholic enough to study the doctrine and discipline of different Buddhist sects, while others specialised in a particular class of Buddhist lore. (Altekar, A.S. 2009, 230-35). Thus in a monastery of Uddiyana the Mahayanists taught and studied five redactions of the Vinaya, namely those of the Dharmaguptas, Mahisasakas, Kasyapiyas, Sarvastivadins, and of the Mahasamghikas. The monks of a monastery in Jalandhara made special studies of Mahayana and Hinayana. A monastery in Langhman is known to have produced an important work on magical invocations, the monks of Uddiyana are said to have specialized in magical exorcisms, while some monasteries specialized in Yoga texts. Nalanda university seems to have made provisions for specialized studies in almost all branches of learning then known in India.

A candidate after receiving the Upasampada ordination had to pay some fees or gift (Daksina) to his two teachers- Upadhyaya and Karmacharya. The upadhyaya then delivered the elementary lessons on the precepts and the offences and gave the contents of the Pratimoksa. These having been mastered, the monk then proceeded to study the larger Vinaya Pitaka. He read it regularly day and night and was examined every morning. After having got through the study of the Vinaya Pitak, the monk-scholar was asked to study the sutras and the sastras, doctrinal and philosophical treatises (Joshi, L.M. 1977, 130-32).

A live picture of the deep and intimate relations that existed between a teacher and his pupil is drawn by I-tsing in his account. Early in the morning everyday a pupil went, after having cleaned his mouth, to his teacher and supplied him tooth-wood, water, washing-basin and a towel. Then he went to worship the holy image and took a round (pradakshina) of the temple. Returning to his teacher, he makes a salutation, holding up his cloak, and with clasped hands, touching the ground with his head three times, remains kneeling on the ground. Then with the folded hands and bowed head he enquires of the well-being of his teacher in gentle words. The teacher answered these inquiries concerning his own health. Afterwards, he started to read. He thus acquired new knowledge day by day. There was also another method of education in which the master and his pupil lived an ideal life. The pupil went to his teacher at the first and the last watch of the night. The teacher having given a comfortable seat to the student, selected some passages from the Tripitaka, and gave a lesson suitable to the circumstances. The teacher inspected the disciple's moral conduct and warned him of defects and transgressions.

A boy started his education at the age of six years with a book called Siddhirastu. This Primer was finished within six months. Next, the student studied the sutras of Panini, the foundation of all grammatical science, then followed the book of Dhatu dealing with the grammatical roots. This was followed by the book on three Khilas, dealing with details of grammar. Among the most important Buddhist text, which a monk who had completed the study of the Pratimoksa, the Vinaya Pitak and some sutras and sastras, had to study at a secondary stage of his education, were the following text. Ashwaghosa's 'Service in three parts' was a text which all monks had to learn by heart. The first text of this class was Matrceta's two books -Sardhasataka-buddha-prasamsa-gatha (the hymn in one hundred and fifty verses) and Matrceta's another charming composition was a hymn consisting of four hundred slokas.

These texts treated generally of the six virtues of the Buddha. These two texts were taught throughout India, everyone who becomes a monk is taught Matrceta's two hymns. This course is adopted by both the Mahayanas and Hinyanasschools(Altekar,A.S.2009,228-30).

Another text popularly studied was Nagarjuna's Suhrllekha. This inculcated both moral and spiritual virtues because it was advised to practise the three-fold wisdom, helped to understand the noble Eight Fold Path and explain the Four Truths. There was another work of similar character and equally famous. It was Jataka mala by Aryasura, Gimutavahana by King Harsh, Sudana, VishwavantaraJatak composed by Chandra Dasa, one of the most famous work widely studied in India and southeast Asia was the Bhuddhacarita of Ashwaghosha. Besides elementary literary and grammatical courses noted above,the students had to study standard commentaries on the Sutras of Panini, Mahbhasya of Patanjali, the Bhartrhari- sastra, Nagarjuna's book and several other great works of that time.

Thus in the early period Buddhist Education was limited within the monasteries and only for the members of the monastery. But later on it was open to all; even lay people got scope to have education in those institutions. Buddhist Education became wide open and embraced people of all walks of life. It made revolutionary change in the society. The Buddhists in the world first made Education open to all.

The Core of Buddha's teaching contains three major points, discipline, meditation and wisdom. Wisdom is the goal and deep meditation or concentration in the crucial process towards achieving wisdom. Discipline through observing the precepts, is the method that helps one to achieve deep meditation; wisdom will then be realized naturally. Buddha's entire teaching as conveyed in the sutras never really depart from these three points.

Buddhist Education system developed on the basis of some basic principles. This education gave emphasis on the moral, mental and physical development and also to divert the students towards the Sangha rules and guide them to follow it. The main stress was given to have a clear idea of Tripitaka which consists of Sutta Pitaka, Vinaya Pitaka and Abhidhamma Pitaka. The entire Tripitaka consists of Buddhas teachings, message, philosophy and rules for the Bhikkhus and Bhikkhunis. The curriculum was chiefly spiritual in nature. It was because the chief aim of education was to attain liberation. So the study of the religious books was most important. This type of curriculum was meant only for the monks.

Besides these spinning, weaving, printing of the clothes, tailoring, sketching, accountancy, medicines, surgery and coinage were the other subjects of Buddhist education. At the initial stage medium of education was mother tongue, later it included Pali and Prakrit and in the following days Sanskrit also included as a medium of instruction. Especially the Mahayana Teachers achieved distinction in practicing Buddhism in Sanskrit. A special Sanskrit Buddhist literature developed. Mention may be made here that at the hands of Nâgârjuna, Asanga, Vasubandhu, Shântideva, Aryadeva and Candrakîrti Buddhist philosophy and literature made tremendous progress through Sanskrit. In later period according to the demand of the society and professional education, art, sculpture, architecture, medicine also included in the syllabus. Buddhist Education came out from the religious arena and went out for the benefit of the mankind.

In the earlier period Buddhist Monasteries and in the later period Buddhist Universities played major role in developing Buddhist Education. The main aim of education was to make a free man, an intelligent man, a wise, moral, talented, non-violent and secular man. It made man judicious, humanist, logical and free from superstitions.

It is a matter of great pride that Buddhist Education crossed Indian Sub-continent and expanded up to Sri Lanka, China, Korea, Japan, Tibet, Mongolia, Myanmar, Thailand, Cambodian, Laos, Vietnam, Malaysia, Singapore, with the rise and development of Buddhism and made tremendous progress.



---

**References**

1. Altekar A. S., 2009, Education in Ancient India, Vimal Kaushik Publication, Delhi, pp 159-55. 324-232
2. Bapat, P.V. 1956, 2500 Years of Buddhism, The Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi, pp 176—194
3. Goyal S. R. 1987, Buddhism in Indian History and Culture, Kusumanjali Prakasan, Meerut, pp 78-79
4. Hazra, K.L. (2009), Buddhism in India: A Historical Survey, Delhi, Buddhist World Press.
5. Keay, F.E, (1992) Ancient Indian Education: An Inquiry into Its Origin, Development, and Ideals, New Delhi, Cosmo Publications, pp 82-87
6. Mookerji, Radha Kumud, (1947), Ancient Indian Education: Brahmanic and Buddhist, Delhi, Motilal Banarsidass Publishers, pp. 492-97, 503-11, 535-37,
7. Singh, Bhanu Pratap, (1990), Aims of Education in India : Vedic, Buddhist, Medieval, British, and Post Independence Delhi, Ajanta Publications, Delhi.
8. Ahir, D.C., 2011, Buddhism in India, Buddhist World Press
9. Joshi, L.M., 1977, Studies in the Buddhist Culture of India, Motilal Banaridass Publication PP 127—137
10. Basham, A.L., 1954, The Wonder That Was India, Sidgwick and Jackson, United Kingdom pp. 6-9

\* \* \* \* \*

## प्रारम्भिक राजनीति में महिलाओं के साहस और सम्मान का मूल्यांकन

अभिनव अर्चना\*

**सारांश :** प्राचीन काल में महिलाओं को गरिमामय स्थान प्राप्त था। उसे देवी, सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी, सहचरी माना जाता था। प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ राजनैतिक कला-कौशल एवं युद्ध में पारंगत रही हैं जिनमें विशेषकर शिक्षा प्राप्त राजघरानों की स्त्रियाँ परिस्थिति अनुसार कुशल तथा योग्य शासिका के पद को सुशोभित करती थी। वहीं वे पति की सहायिका भी होती थी। स्मृतिकारों ने स्त्री को राज्य संचालन के योग्य माना है, वहीं साहित्यों में यदा-कदा स्त्रियों को प्रशासिका बनाये जाने के संबंध में विरोधाभास दिखाई पड़ता है। पूर्वमध्यकाल में भी स्त्रियों को राजनीति की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी, ताकि अवसर प्राप्त होने पर सम्पूर्ण राज शासन का कार्यभार संभाल सकें। प्राचीन काल की भाँति विवेच्यकाल में भी स्त्रियों द्वारा शासन करने के संबंध में विरोधाभास दिखाई देता है। उदाहरणतः *गरुड पुराण* में उल्लेख है कि केवल पुरुष को राजा होना चाहिए, न कि स्त्री को। इस प्रकार विवेच्यकाल में दोनों पक्ष उभरकर सामने आते हैं, जहाँ एक ओर तो स्त्रियों के द्वारा राज्य शासन संचालन की निन्दा करते हुए उन्हें अयोग्य घोषित करने की चेष्टा की गयी है वहीं यदा-कदा प्रशासिका के रूप में स्त्रियों का वर्णन उनकी योग्यता के प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, जो उल्लेखनीय है।

**प्रशासिका के रूप में नारी**—प्राचीन काल से ही राजघरानों की स्त्रियाँ प्रशासिका एवं सहायिका के रूप में संलग्न दिखाई देती हैं। जहाँ साधारण वर्ग की नारी अपने गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्वों से दबी सीमित थे। राजघरानों की स्त्रियाँ, रानियाँ, राजकुमारियाँ, सामंत कुमारियाँ आवश्यकता पड़ने पर राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत अपने पतियों की सहायिका तथा पुत्रों की संरक्षिका के रूप में सहयोगात्मक भूमिका का निर्वाह करती रही तथा विधवा रानियाँ भी स्वतंत्रतापूर्वक प्रशासिका के पद को सुशोभित करती रही।

अन्यत्र साहित्यों एवं पुरातत्त्व साक्ष्यों में यदा-कदा प्राप्त उदाहरणों से प्रशासिका के रूप में शासन करने संबंधी स्त्रियों के उल्लेखनीय वर्णन प्राप्त होते हैं।<sup>1</sup> उदाहरणतः हर्षचरित में दो स्त्री-राज्य के संबंध में उल्लेख हुआ है कि चंडकोश नामक एक आलसी राजा था, जिसने समस्त धरती को तो जीत लिया था, परन्तु उसने स्त्री राज्य में प्रवेश नहीं किया।<sup>2</sup> इसी प्रकार बाण एवं ह्वेनसांग द्वारा कथित विवरण से स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ राज्य की संपूर्ण इकाई पर शासन का अधिकार रखती थी, जो अत्यन्त सुसंगठित एवं व्यवस्थित ढंग से साहसपूर्वक शासन भार संभालती थी।

एक चीनी ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि राज्यश्री के पति राजा ग्रहवर्मा की मृत्यु के पश्चात् हर्ष स्वयं राज्यश्री को ही कन्नौज की राजगद्दी का उत्तराधिकारी मानता था, परन्तु राज्यश्री के भिक्षुणी हो जाने पर उसने उसकी ओर से अपने को (हर्ष को) कन्नौज का शासक माना था। इस चीनी ग्रन्थ से इतना तो स्पष्ट होता है कि हर्ष अपनी विधवा बहन राज्यश्री के सहयोग से कन्नौज का शासन कार्यभार सम्भालता था।<sup>3</sup> राज्यश्री भी प्रशासन क्षेत्र में किसी न किसी रूप में सम्बद्ध अवश्य रही होगी। हर्षकालीन समाज के अतिरिक्त भी ऐसे अनेक राज्य हुए जिन पर स्त्रियों ने स्वतंत्रतापूर्वक शासन किया, जिनमें आवश्यक रूप से कश्मीर राज्य की

\* पी-एच.डी. (इतिहास विभाग), तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

‘दिहा, सुगन्धा’ एवं ‘सोमलादेवी’ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रशासिकाएँ हुई। तत्कालीन समय में स्त्रियाँ प्रशासिका के रूप में तो साहसपूर्वक शासन भार संभालती ही थी किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वीरतापूर्वक युद्ध भी किया करती थी। प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार मूल राज्य द्वितीय की माता नेमादेवी ने सम्भवतः अपने समकालीन मझुदीन-बिन-साम को तुर्की अफगान सेना को गड़र-घट्टा के युद्ध में परास्त किया था।<sup>5</sup>

किन्तु मध्य भारत के साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों में परमार कालीन ऐसी कोई रानी अथवा राजमहिषी का उल्लेख नहीं है, जिसने स्वतंत्र रूप से प्रशासिका का कार्य संभाला था, लेकिन यह अवश्य ज्ञात होता है कि वे प्रशासन व्यवस्था के अंतर्गत राजा की सहायिका के रूप में हस्तक्षेप की अधिकारिणी अवश्य होती थी। इसी प्रकार चन्देलकालीन रानियों के उदात्तपूर्ण कार्यों से ज्ञात होता है कि राज्य शासन व्यवस्था के अन्तर्गत उनका हस्तक्षेप महत्त्वपूर्ण रहा है, उदाहरणतः चन्देल शासक वीरवर्मन की पटरानी कल्याणदेवी का अजयगढ़ शिलालेख में उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त भी अनेक चन्देल अभिलेखों में रानियों की प्रशंसा एवं उनके गुणों का वर्णन हुआ है परन्तु वे उल्लेख राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं माने जा सकते।

इस प्रकार परमार एवं चन्देल राजवंशों की रानियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से शासन व्यवस्था अन्तर्गत योगदान की बात कही जा सकती है, जो मध्य भारत के राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव रखती है। अन्य कलचुरि राजवंशों के काल में यदाकदा ऐसी राजमहिषियों के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं, जिन्होंने प्रशासिका के रूप में स्वतंत्र शासन किया है।

**संरक्षिका के रूप में नारी**—प्राचीन काल से ही युवराज के अतिरिक्त रानियाँ भी राजाओं की बीमारी के समय या अन्य कारण से शासन कार्य संभालती रही हैं। भारतीय राजतंत्रीय व्यवस्था में राजागण ही प्रमुख होता था और उसकी मृत्यु पश्चात् उसका पुत्र ही राजा हो सकता था। उसके कोई पुत्र न होने पर उनके भाई को ही युवराज घोषित किये जाने की प्रणाली प्रचलन में थी। परन्तु पुत्रों की अल्पवयस्कता के समय पूर्वकाल से ही रानियों द्वारा संरक्षिका के रूप में शासन करने के प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि रानियाँ भी शासनभार सुचारु रूप से चलाती रही। उदाहरणतः सातवाहन रानी नागनिका ने सातकर्णी की मृत्यु के पश्चात् अपने दोनों पुत्रों शक्तिश्री और देवश्री की अल्पवयस्कता के कारण अपने पुत्र की संरक्षिका के रूप में राज्य किया।<sup>6</sup> इसी प्रकार गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त ने अपने पति रुद्रसेन की मृत्यु के पश्चात् अपने अल्पवयस्क पुत्र दिवाकर की संरक्षिका बनकर शासन कार्य संभाला था।

पूर्वमध्यकालीन पुराणों में भी इस बात के संकेत प्राप्त होते हैं कि रानियाँ अपने पुत्र के राजकार्य सम्बन्धित कार्यों में हस्तक्षेप करती थीं। मार्कण्डेय पुराण में रानी मदालसा द्वारा राजा के प्रति मनुष्य की दार्शनिक व्याख्या तथा अपने पुत्र अलर्क को राजधर्म का महत्त्वपूर्ण उपदेश समझाया था। लेकिन परमारकालीन साम्राज्य में हमें किसी राजमहिषी द्वारा या उसके कुछ भू-भाग पर शासन करने अथवा संरक्षिका के रूप में कार्य करने के उल्लेख नहीं मिलते। वस्तुतः साम्राज्य की राजमहिषियाँ सर्वदा अन्तःपुर तक सीमित रही, जिनकी रक्षा प्रायः हिजड़े करते थे।<sup>7</sup> चन्देलकालीन राजवंश में भी किसी रानी अथवा महिषी द्वारा किसी भू-भाग पर संरक्षिका के रूप में शासन कार्य करने का कोई भी वर्णन नहीं प्राप्त होता है। कलचुरि राजवंश की राजमाताएँ अपने पति की मृत्यु के पश्चात् अपने पुत्रों को राजकार्य की शिक्षा सलाह दिया करती थी। उदाहरणतः जब जाजल्लदेव ने युद्ध में परास्त सोमेश्वर देव और उनकी रानियों को कैद कर लिया गया था तब उनकी माता के अनुरोध पर उन्हें मुक्त कर दिया था<sup>8</sup> जिससे प्रतीत होता है कि जाजल्लदेव के शासन कार्य में उनकी माता का सहयोग अवश्य रहा होगा।

पूर्वमध्यकालीन मध्यभारत के इतिहास में किसी रानी द्वारा संरक्षिका के रूप में शासन न करने के संबंध में कोई स्पष्ट संकेत न मिलना दो कारणों की ओर इंगित करता है, प्रथम इस काल में ‘सतीप्रथा’ जैसी क्रूर प्रथा का अत्यधिक बलवती होना तथा द्वितीय उनके पुत्रों का पूर्ण वयस्क होना। अतः ऐसी स्थिति में परमार, चन्देल एवं कलचुरि रानियों को कोई सुअवसर प्राप्त न हो सका होगा और वे प्रायः राजनैतिक शासन व्यवस्था से अलग-थलग ही रही। किन्तु उत्तर भारतीय राजवंशों की रानियों द्वारा अपने अल्पवयस्क पुत्रों की संरक्षिका के रूप में राजशासन करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जैसे— गहड़वाल राजा मदनपाल की रानी पृथ्वीसिंह का, तृतीय पृथ्वीराज चाहमान की माता कर्पूरदेवी एवं जयसिंह सिद्धराज चौलुक्य की माता मयल्ला देवी प्रमुख हैं।

इस प्रकार प्रशासन व्यवस्था के अन्तर्गत संरक्षिका के रूप में भी रानियों ने अपनी राजनैतिक क्षमता का परिचय देते हुए कुशलतापूर्वक शासन किया, जो मध्यभारत के विशेष सन्दर्भ में तो नहीं किन्तु पूर्वमध्यकालीन शासन व्यवस्था में नारी का महत्वपूर्ण स्थान अवश्य निरूपित करती है।

**सैन्य संगठन में नारी**—प्राचीन काल से ही राज्य शासन व्यवस्था में सैन्य संगठन अन्तर्गत भी नारी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। उपलब्ध साक्ष्य से यह प्रमाणित होता है।<sup>10</sup> साधारणतया स्त्रियों द्वारा वेष बदलकर युद्ध स्थल में पहुँचना एवं युद्ध करना भी विवेच्यकालीन कूटनीति का ही एक अंग था। साहित्य में अन्यत्र उल्लेख प्राप्त होता है कि रानियाँ राज्य संचालन के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर आपत्तिकालीन परिस्थितियों में युद्ध भी किया करती थी। उदाहरणतः दाहिर की बहन रानी बाई (8वीं सदी) ने अरब जनरल मोहम्मद बिन कासिम से युद्ध किया और जब उसका पति युद्ध क्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हो गया तो पराजित होने की आशंका से उसने अग्नि में प्रवेश कर अपने प्राण त्याग दिये थे। इस प्रकार वह अंतिम श्वास तक युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही।

**युद्ध में सैनिक स्त्रियाँ**—तिलकमंजरी में रमणीय स्वरूप के साथ ही स्त्री के कठोर रूप की शस्त्रधारिणी अंगरक्षक स्त्रियों का उल्लेख करते हुए वर्णन हुआ है कि वनविहार के समय मलयसुन्दरी, पत्रलेखा एवं तिलकमंजरी सैकड़ों तलवार युक्त अंगरक्षक स्त्रियों से घिरी हुई थीं और उन सभी अंगरक्षक स्त्रियों ने मोतियों के जड़ाव से युक्त स्वर्ण कवच एवं विभिन्न रंगों के रत्नों से जड़ित चितकबरे रंग की कार्मरंगी ढालें धारण की हुई थी। इसी प्रकार राजप्रासादों में सुरक्षाकर्मी स्त्रियों को बहुसंख्यक रूप में नियुक्त किया जाता था जो सम्भवतः खड्ग, खेटक (ढाल), धनुष एवं बाण इत्यादि शस्त्रों से सुसज्जित होती थी।<sup>11</sup> विवेच्यकालीन राज्यशासन व्यवस्थान्तर्गत स्त्रियों की नियुक्ति सशस्त्र सुरक्षाकर्मियों के रूप में की जाती थी, जिनमें कुछ स्त्रियाँ सैन्य शिविर के साथ युद्ध भूमि में भी जाती थीं।

इसके अतिरिक्त विवेच्ययुगीन कला के माध्यम से भी अस्त्र-शस्त्र में पारंगत स्त्रियों की जानकारी प्राप्त होती है। उदाहरणतः विश्वनाथ मंदिर पर एक स्त्री को शास्त्रों से सुसज्जित हो पुरुषों के साथ युद्ध क्षेत्र में जाते हुए प्रदर्शित किया गया है तो दूलादेव मंदिर के पिछले बाह्य भाग पर भी इसी प्रकार का दृश्य उत्कीर्ण हुआ है तथा इसी मंदिर पर एक अन्य स्थान स्त्री बाएँ हाथ में तलवार लिए तथा दायें हाथ से तलवार का ऊपरी भाग पकड़े स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित की गई है<sup>12</sup> जो तत्कालीन समय की स्त्री सैनिकों एवं युद्ध करती स्त्रियों की जीवन गाथा कहते प्रतीत होते हैं।

चन्देलकाल की भाँति कलचुरिकालीन कला में भी इस प्रकार की स्त्रियों के उदाहरण यदाकदा प्राप्त होते हैं, जिनमें पुरुषों के साथ युद्ध करती हुई स्त्रियों को अत्यन्त सुन्दर ढंग से तत्कालीन शिल्पकार ने अपनी कला में उकेरा है। इस प्रकार का एक अन्य शिलापट्ट रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर में संग्रहीत है, जो तत्कालीन सैन्य कला का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसमें स्त्रियों की सैनिकों के समान शस्त्र धारण करती हुई युद्ध प्रयाण करते हुए शिल्पांकित किया है। इस प्रकार विवेच्ययुगीन साहित्यिक एवं पुरातात्विक उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि राजनैतिक क्षेत्र में सैनिक के रूप में स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान है।

**शासन-व्यवस्था में विभिन्न वर्ग की स्त्रियाँ**—प्राचीन काल की भाँति पूर्वमध्यकाल में भी राज्य के सुव्यवस्थित ढंग से संचालन में भी विभिन्न वर्गों में स्त्री-पुरुषों की नियुक्ति की जाती रही है जिन्हें राज्य की ओर से उनके कार्यान्वयन उचित उपहार या वेतन प्राप्त होता था। कथासरित्सागर में दो प्रकार के अधिकारी-कर्मचारी वर्गों का पता लगता है। प्रथम वर्ग— उच्च अधिकारी और द्वितीय वर्ग— कुछ निम्न कर्मचारी, जिनमें राजकर्मचारियों के अन्तर्गत स्त्री कर्मचारियों में दूतियों, द्वारपालिकाओं, नगर-पुराक्षिका, गुप्तचारी चेटि एवं मंत्री इत्यादि की नियुक्ति राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गई है।

**दूतियाँ**—प्राचीनकाल की भाँति पूर्वमध्यकाल में भी स्त्री दूतियाँ (कर्मचारी) की जानकारी प्राप्त होती है, जो किसी भी राज्य की सुचारु राज्य व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग मानी जाती थी, जिनका कार्य एक राजा का संदेश दूसरे राजा तक पहुँचाना था।<sup>13</sup> कथासरित्सागर में गंभीर प्रतिभाशाली, गंभीर भाषण करने वाली, कार्यकाल की स्थिति समझने वाली, कठोर एवं सहिष्णु प्रवृत्ति वाली दूतियों का वर्णन प्राप्त होता है। उल्लेख है कि दुष्कर्म में स्त्रियाँ अपने कार्यों को अत्यन्त मनोबलपूर्वक करती थीं तथा शत्रु राजाओं द्वारा प्रलोभन देने



पर भी अपने प्रकृत राजा का साथ नहीं छोड़ती थी।<sup>14</sup> तिलकमंजरी में भी पत्रहारिका नामक दूति का उल्लेख हुआ है। इन वर्णनों के आधार पर यह माना जा सकता है कि मध्यभारत के पूर्वमध्यकालीन इतिहास में भी इस प्रकार की राजकर्मचारी स्त्रियों में दूतियों का राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

**गुप्तचरी**—प्राचीन काल की भाँति पूर्वमध्यकालीन राजव्यवस्था में गुप्तचरों का भी विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। पुराणों में गुप्तचरों को राजा का नैत्र तथा अन्तरंग कहा गया है। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि जिस राज्य व्यवस्था में उत्तम कोटि के गुप्तचर होंगे वह राज्य व्यवस्था उतनी ही सुदृढ़ होगी जिनमें स्त्री गुप्तचरों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। महापुराण में स्त्री गुप्तचरों का उल्लेख हुआ है। इतना ही नहीं, अपराधियों के पता लगाने में भी इन गुप्तचरियों का स्वाभाविक महत्वपूर्ण योगदान निश्चय ही रहा होगा। लेकिन राज्य की गुप्तचर शाखा से सम्बद्ध होने के कारण इनका नाम संभवतया प्रकाश में नहीं आ सका।

**द्वारपाली**—द्वारपालों की भाँति अन्तःपुरों के द्वारों पर स्त्री द्वारपालिकायें भी नियुक्त की जाती थी, जिनकी संख्या अनेक होती थी एवं उनमें एक प्रधान द्वारपालिका भी होती थी जो अन्य द्वारपालिकाओं की देखरेख इत्यादि कार्य भी करती थी। रनिवास की रक्षार्थ स्त्रियों की नियुक्ति की जाती थी।<sup>15</sup> अविवाहित कन्याओं की सुरक्षार्थ राजघरानों में जो रक्षागृह होते थे उनकी भी सुरक्षा व्यवस्था हेतु स्त्री नियुक्त की जाती थी। ये संभवतः द्वारपालिका अथवा प्रतिहारी वर्ग की स्त्री कर्मचारियाँ रही होंगी।<sup>16</sup>

**नगर रक्षिका अर्थात् पुररक्षिका**—पूर्वमध्यकालीन साहित्यों में पुररक्षिका स्त्रियों का भी उल्लेख हुआ है, जिसका कार्य नगर की सुरक्षा व्यवस्था प्रबन्ध से रहा है। कथासरित्सागर में इस प्रकार के कार्य करने वाली स्त्री का उल्लेख हुआ है, जिसे पुररक्षिका कहा गया है, जिसका कार्य अपराधियों को पकड़ना होता था। अगर देखा जाए तो इनका कार्य वर्तमान काल की भाँति नगर सेना की स्त्री के कार्य की तरह ही रहा होगा, जो स्त्री अपराधियों को पकड़ती रही होगी।

**चेटि**—विवेच्ययुगीन साहित्यों में राज्य व्यवस्था अन्तर्गत चेटि वर्ग की स्त्री कर्मचारियों का भी उल्लेख हुआ है, जो विभिन्न कार्यों को सम्पादित करती थी। वी० एस० भार्गव ने यामचेटि स्त्री का उल्लेख किया है, जो रात्रि को पहरा देने वाली स्त्री होती थी। कथासरित्सागर में अन्तःपुर की चेटियों का उल्लेख हुआ है, जो राजमहलों की सुरक्षा का दायित्व निभाती थी।<sup>17</sup>

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि पूर्वमध्यकालीन राज्य शासन व्यवस्था के सफल संचालन में विभिन्न वर्गों की राजकर्मचारी-स्त्रियों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता था।

**राजनैतिक वैवाहिक संबंधों में नारी**—भारतीय इतिहास की प्राचीन परम्परा रही है कि एक कमजोर राजवंश दूसरे सबल राजवंश से वैवाहिक संबंध स्थापित कर अपने को सामर्थ्य एवं शक्तिशाली राजा महसूस करने लगता जिसमें स्त्रियों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस प्रकार के राजनैतिक वैवाहिक संबंध होने के पीछे अनेक राजनैतिक कारण होते थे, जैसे शत्रु विवाह करना या पराजित शत्रु की कन्या से विवाह करना या उपहार में कन्या प्राप्त होना, या अपने राज्य की सुरक्षा हेतु सबल राजा से वैवाहिक संबंध स्थापित करना था। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में किसी भी शासक के लिए एक से अधिक सुन्दर, व्यवहार कुशल एवं सर्वगुण सम्पन्न राजकुमारियों से विवाह करना अत्यन्त गौरव व प्रतिष्ठा की बात समझी जाती थी।

पूर्वमध्यकाल में इस प्रकार के अनेक विवाह के उदाहरण प्राप्त होते हैं। विद्वशालभंजिका में महामंत्री नागु नारायण ने अपने स्वामी विद्याधन मल्ल का विवाह मृगांकावली नामक राजकुमारी से कराने में नीति का अवलंबन किया था। परन्तु यदाकदा प्राप्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि राजनैतिक उद्देश्य पूर्ति के लिए एक कुशल राजनीतिक किसी कन्या को किसी दूसरे राज्य में छलपूर्वक मंगवाकर अपने या अपने स्वामी राजा से विवाह करते थे।<sup>18</sup> विवेच्यकाल में त्रिदलीय संघर्ष में प्रतिहार, पाल एवं राष्ट्रकूट शासकों में परस्पर शत्रुता का भाव दिखाई पड़ता है। परन्तु प्रतिहार सम्राट महीपाल के शासन काल में राजवंशों की पैतृक शत्रुता का अभाव दिखाई पड़ता है। पाल एवं प्रतिहार जिसका एकमात्र कारण दोनों के मध्य स्थापित वैवाहिक संबंध को माना है।

इसी प्रकार राजनैतिक संबंधों में मधुरता एवं सुदृढ़ता प्रदान करने की दृष्टि से ही परमारकालीन शासकों ने भी अपने समकालीन अनेक राजवंशों से वैवाहिक संबंध बनाये जो निश्चित रूप से किसी राजनैतिक उद्देश्य

की पूर्ति के लिए सम्भव जान पड़ते हैं। उदाहरणतः परमार शासक सिन्धुराज ने अपने समकालीन स्तर के नागवंशी शासक की कन्या शशिप्रभा से विवाह किया, जिसके संबंध में नवसाहसांकचरित में उल्लेख है।

इसी प्रकार चन्देलकालीन शासकों ने भी अपने समकालीन राजवंशों का अनुसरण करते हुए अपने समकालीन राजवंशों में वैवाहिक संबंध स्थापित कर राजनीति क्षेत्र में सुदृढ़ प्रतिष्ठा स्थापित की। शासक जयशक्ति ने अपनी पुत्री का विवाह अपने समकालीन शासक कलचुरि नरेश कोकल्ल प्रथम के साथ किया, जो कि कलचुरि राजवंश का अत्यन्त प्रतापी एवं शक्तिशाली शासक था।

अन्य राजवंशकालीन शासकों की भाँति कलचुरि राजवंशों ने भी चन्देल राष्ट्रकूट तथा बंगाल के पाल शासकों से वैवाहिक संबंध स्थापित कर उनके साथ अच्छे मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किए जिनके कारण उन्हें अपने राजनीतिक शक्ति को भी सुदृढ़ता प्राप्त करने में सफलता मिली, कलचुरि साम्राज्य में विस्तार हो सका जो राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

प्राचीन काल से पूर्वमध्य कालीन भारत में स्त्री के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर स्त्रियाँ प्रशासिका, संरक्षिका, सैनिक, शासन-व्यवस्था में विभिन्न वर्गों में आसीन, दूतियाँ, गुप्तचरी, द्वारपालिका, नगरपालिका व चेरि के रूप में योगदान कर रही थी। अतएव स्त्री को केवल और केवल एक रूप में विश्लेषण करने की परंपरा के स्थान पर इसके बहुतेरे रंग को रेखांकित किया गया।

#### सन्दर्भ सूची एवं पाद टिप्पणी :

1. अवस्थी; शशी, प्राचीन भारत में नारी, नई दिल्ली, 1982, पृ. 21.
2. अल्तेयर; ए० एस०, द पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, बनारस, 1938, पृ. 20-21
3. डॉ. वासुदेव शरण; हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, 1964, 1953 चतुर्थ उच्छवास, पृ. 63-64
4. विशुद्धानंद पाठक; उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, लखनऊ, 1932, पृ. 39-40
5. प्रबन्ध चिन्तामणि, (मेरुतुंग कृत), हजारी प्रसाद द्विवेदी, बम्बई, 1933, पृ. 164
6. कापर्स इंस्क्रीप्शंस इंडिकेस, भाग-4, कलचुरि चेदी रेरा, 1955, पृ. 191, श्लोक 32, ए. इ. खंड 33, पृ. 187-188.
7. काइइ, पृ. 212, पंक्ति 18
8. मिराशी, वी० वी०, कलचुरि नरेश और उसका काल, पृ. 202
9. शर्मा, राजकुमार; मध्य प्रदेश के पुरातत्त्व का संदर्भ ग्रंथ, भोपाल, 1966, पृ. 18
10. मित्तल, ए० सी०; परमारकालीन अभिलेख, अहमदाबाद, 1980 पृ. 20
11. गुप्त, चन्द्रशेखर; कलचुरि नरेश और उनका काल, नई दिल्ली, 1998, पृ. 64-65
12. यादव, बी० एन० एस०; सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया, इलाहाबाद, 1973, पृ. 71-72
13. द्विवेदी, वाचस्पति; कथासरित्सागर एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, 1977, पृ. 125-126
14. कर्पूर मंजरी (राजशेखर कृत), निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1949
15. दूलादेव मंदिर का पिछला बाह्य भाग
16. स्कन्द पुराण, श्री हेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, 1909, पृ. 182-183
17. वही, पृ. 139-42
18. महापुराण, (देखिए राजेश शर्मा का जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन), इलाहाबाद, 1988 पृ. 4/11, पञ्चपुराण, आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरिज, पूना, 1893-94, पृ० 37/29

\* \* \* \* \*

## सुभाषचन्द्र बोस एवं रामगढ़ का समझौता विरोधी सम्मेलन का ऐतिहासिक महत्व

डॉ. विनोद कुमार\*

सुभाषचन्द्र बोस स्वतंत्रता सेनानियों में प्रमुख क्रान्तिकारी थे। जो धीरे-धीरे चलने वाले राजनीतिक आन्दोलनों से उनका विश्वास उठने लगा। वह गाँधी जी की अहिंसात्मक विचारधारा में विश्वास नहीं करते थे। 1922 ई० में जब गाँधी जी ने अपना असहयोग आन्दोलन वापस लिया तो इसे उन्होंने देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य माना। इसी प्रकार गाँधी जी 1931 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन को भी वापस लिया तो उन्होंने इसे असफलता की स्वीकृति प्रदान किया। सुभाष चन्द्र बोस भारत की स्वतंत्रता के लिए युवा शक्तियों के समर्थन के आदर्श थे।

वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 'उदारवादी दल' के नीतियों के कट्टर विरोधी थे। 1928 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के समय उन्होंने विषय समिति में नेहरू रिपोर्ट द्वारा अनुमोदित प्रादेशिक शासन स्वायत्तता के प्रस्ताव का डट कर विरोध किया। वह पूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे। फरवरी 1938 में हरिपुर अधिवेशन में सुभाषबाबू कांग्रेस के प्रधान चुने गये। समभवतः महात्मा गाँधी की यह सबसे बड़ी हार थी। परन्तु कांग्रेस कार्यकारणी में महात्मा गाँधी के समर्थन का बहुमत था। फलतः उन्होंने अप्रैल 1939 में कांग्रेस के प्रधान पद से त्याग पत्र दे दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध अपने भीषण वेग से चलने की स्थिति में था। भारत को भी उसपर गहरी चिन्ता थी। लेकिन संवैधानिक गतिरोध का कोई समाधान सामने नहीं दिखाई पड़ता था। गाँधी जी और मुहम्मद अली जिन्ना के साथ वायसराय ने 5 फरवरी और 6 फरवरी 1940 को अलग-अलग भेंट की थी।<sup>1</sup> परन्तु उसका कोई सार्थक परिणाम नहीं निकला। इन्ही दिनों बिहार में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 53वाँ अधिवेशन हजारीबाग जिला अन्तर्गत रामगढ़ में करने की तैयारी हो रही थी। इसके लिए एक कार्यकारणी समीति बनाई गयी थी। 8 फरवरी, 1940 को पटना में इसकी बैठक में निर्माण कार्य का बजट स्वीकृत किया गया एवं विभिन्न जिलों में चन्दा की रकम निर्धारित की गई। इधर भी कृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह एवं अन्य प्रान्तीय नेतागण रामगढ़ कांग्रेस के लिए धुम-धुम कर चंदा वसूल रहे थे। उधर सुभाषचन्द्र बोस बिहार की दौरा कर रहे थे। इसी दरम्यान मुंगेर जिला छात्र सम्मेलन का एक अधिवेशन बेगुसराय में 3 फरवरी, 1940 ई० को हुई, जिसके मुख्य वक्ता थे। एक प्रस्ताव में छात्रों को स्वतंत्रता के दिन उनके आदर्श आचरण के लिए बधाई दी गई।<sup>2</sup>

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन ने गाँधीजी के नेतृत्व में अनिवार्य संघर्ष हेतु राष्ट्र को तैयार होने का आह्वान किया। गाँधी जी ने कांग्रेस को रचनात्मक कार्यक्रम एवं अहिंसात्मक संघर्ष के संदर्भ में उसके महत्व पर बल दिया।

चरमपंथी राजनैतिक विचारक एवं कुछ भारतीय राष्ट्रवादी उन दिनों युद्ध संकट के संदर्भ में कांग्रेस के दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे। इसमें अधिकतर अग्रगामी दल के नेता थे। उन्हें लगता था कि कांग्रेस ब्रिटेन सरकार के साथ समझौता करने की ओर झुक रही थी। अतः वे साम्राज्यवादी शक्तियों से किसी तरह की समझौता नहीं करने की माँग पर अड़े हुए थे। अपनी स्पष्ट नीति के समर्थन में आन्दोलन संगठित करने के लिए उन्होंने अखिल भारतीय समझौता विरोधी सम्मेलन रामगढ़ में कांग्रेस के अधिवेशन के दौरान आयोजित करने का निर्णय लिया।

छोटे-बड़े काँग्रेसी नेताओं की कालाबाजी ने जहाँ स्वामी सहजानन्द सरस्वती के मस्तिष्क में कांग्रेस के प्रति वितृष्णा पैदा कर दी, वही समाजवादियों की दुलमुल नीति और गाँधीवाद मोह ने उन्हें सुभाषबोस और कम्युनिस्टों के करीब ला दिया।<sup>3</sup> बिहार में संगठनात्मक एवं राजनीतिक दृष्टि से किसान सभा कांग्रेस के बाद सबसे बड़ी शक्ति बन

\* इतिहास विभाग, म. म. महाविद्यालय, आरा, बिहार

गयी थी। काँग्रेस के नीतियों से अलग होते हुए स्वामी जी सुभाषचन्द्र बोस के समर्थक में आये, और उन्होंने 1940 में रामगढ़ काँग्रेस में सुभाषचन्द्र बोस के साथ विरोधी खेमे में अपना स्थान ग्रहण किये थे।<sup>1</sup>

त्रिपुरा के बाद रामगढ़ में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। काँग्रेस के जुलूस से सुभाषचन्द्र बोस और स्वामी जी का जुलूस काफी शानदार, जानदार एवं बहुत लम्बा था।<sup>2</sup>

रामगढ़ में समझौता विरोधी सम्मेलन के समय प्रकृति देवी ने भी सम्मेलन पर कृपा की, और खुला अधिवेशन जमकर हुआ। जहाँ भारी संख्या में लोग जमे थे। इस सम्मेलन में राँची के कई दिग्गज एवं बंगाली सज्जनों ने भी बड़ी सहायता की थी। पंजाब के सर्वमान्य नेता ने बड़ी सहायता की थी। पंजाब के सर्वमान्य नेता कविस्वर सहदुल विक्रम सिंह भी सम्मिलित थे। बिहार के पं० धनराज शर्मा ने इस विरोधी सम्मेलन का काम खूब किया था।<sup>3</sup> इस सम्मेलन में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने कहा था कि—“यही सम्मेलन युद्ध में कूदने का है”, उन्होंने यूरोपिय युद्ध में सहायता देने का खुलेआम विरोध करते हुए, विरोध की प्रतिज्ञा ली गई। इतना ही नहीं बल्कि काँग्रेस नेताओं को भी खरी-खोटी सुनाई थी। राष्ट्रीय सप्ताह के शुरू से अन्त तक प्रान्त भर में घूम-घूम कर विरोध करते रहे।

स्वामी सहजानन्द सरस्वती अखिल भारतीय समझौता विरोधी सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे।<sup>4</sup> वही पर उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—“अंग्रेजों को न एक पाई, और न भाई देंगे” का नारा बुलंद किया था।<sup>5</sup>

इस सम्मेलन में बिहार के लोगों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिये थे। सम्मेलन के अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस ने दक्षिण पंथियों की समझौता नीति की निंदा की एवं कहा—“हम अवसर का उपयोग करें, समय रहते काम करें, हम शक्ति एवं साहस के साथ बढ़ें, इस सम्मेलन के माध्यम से साम्राज्यवादी एवं उसके हिन्दुस्तानि सहयोगियों को चेतावनी दें।” इस सम्मेलन की सफलता साम्राज्यवाद के साथ समझौता के लिए मौत की घंटी होगी।

सम्मेलन का मुख्य प्रस्ताव सहजानन्द सरस्वती द्वारा प्रस्तुत किया गया। सरदार शारदूल सिंह ने उसका अनुमोदन किया तथा अन्य लोगों ने समर्थन में भाषण दिये। जिसमें की नीतियों का जोरदार शब्दों में आलोचना की गई। साथ ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने के लिए, भारतीय जनता के अधिकारों पर बल दिया गया। भारतीय जनता को युद्ध में भाग लेने से अलग रखते हुए, भारत की स्वतंत्रता हासिल करने के लिए हम अंतिम संघर्ष तक कृत संकल्पीत रहेंगे।

इधर यूरोपिय युद्ध का समय चल रहा था। कार्यकारणी कोई ठोस निर्णय पर नहीं पहुँच पाई कि इस युद्ध में सरकार की कोई सहायता दी जाए या नहीं, स्वामी जी की कांग्रेस ठीक चार बजे समाप्त हुई और जनता वहाँ से कांग्रेस के खुले अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए चली और कांग्रेस के पंडाल में पहुँची ही थी कि निर्भर आकाश में मेघ मण्डल का अपूर्व समारोह छा गया और मूसलाधार वर्षा शुरू हुआ। इस प्रकार घनघोर वर्षा साढ़े चार से शुरू हुई कि पण्डाल अस्त-व्यस्त हो गया। वर्षा की प्रतीक्षा करते रात के करीब 8-9 बज गये तब मजबूरन महात्मा गाँधी ने बहुत अफसोस के साथ कहा कि—“अब काँग्रेस का अधिवेशन समाप्त किया जाता है।” इससे स्पष्ट है कि रामगढ़ काँग्रेस वास्तव में हो ही नहीं सकी।<sup>6</sup>

बिहार के रामगढ़ में 19 मार्च, 1940 का समझौता विरोधी सम्मेलन का अध्यक्षीय भाषण में, सुभाष चन्द्र बोस ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि—“यह सम्मेलन देश के उन सभी साम्राज्यवादी विरोधी ताकतों पर केन्द्रीभूत है। जो साम्राज्यवाद के समझौता किये जाने का प्रतिरोध करने पर दृढ़ संकल्पी है।”

रामगढ़ में सम्मेलन की समुचित व्यवस्था करने से पहले भौतिक और द्रव्यात्मक बाधाओं और कठिनाइयों को पार करना था दूसरी तरफ सम्मेलन के आयोजकों को देश भर में लगातार शत्रुतापूर्ण प्रचार का सामना और उसे प्रभावहीन करना पड़ा। इस प्रचार में सबसे अनोखी और दुखद बात यह थी कि वामपंथियों के एक वर्ग ने इस सम्मेलन को खुलेआम विरोध और तोड़-फोड़ की कोशिश करके इसका आयोजन असमभव कर दिया था। फलतः यह स्पष्ट हो गया कि अनेक वामपंथी दक्षिणपंथियों के समर्थकों की भूमिका अदा करने लगे रहे, लेकिन इतिहास में ऐसी स्थिति नई नहीं है। इतिहास तो अपने आप दोहराता है।

काँग्रेस कार्य समिति की पटना में आयोजित पिछली बैठक का प्रस्ताव सबकी जानकारी में यह दिखाने के लिए रूका हुआ था कि काँग्रेस ने समझौता न करने की नीति अपनाई है। ऐसे तर्क में भोलेपन की प्रशंसा किये बगैर कोई कैसे रह सकता है। राजनीतिज्ञों एवं कार्यकर्ताओं के लिए इतना भोलेपन क्या समुचित प्रतीत होता है। महात्मा गाँधी ने वक्तव्य दिया कि समझौता के लिए भावी बातचीत का रास्ता बंद नहीं किया गया है।<sup>7</sup>



देश काँग्रेस कार्य समिति से इस आशय की स्पष्ट और असंदिग्ध घोषणा का उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है कि साम्राज्यवाद से समझौता की, सभी तरह की बातचीत का रास्ता अंतिम रूप से बंद कर दिया गया है। क्या ऐसी घोषणा होगी? अगर हाँ तो कब?

जो लोग कहते हैं कि काँग्रेस सबसे बड़ी समझौता विरोधी सम्मेलन है, शायद उनकी यादास्त कमजोर पड़ गयी है, और इसलिए उनके दिमाग को जगाने की जरूरत है। क्या वे भूल गये कि जैसे ही युद्ध का आरम्भ हुआ, काँग्रेस कार्य समिति से परामर्श करने की जरूरत लिये बगैर महात्मा गाँधी सीधे शिमला के लिए रवाना हो गये और उन्होंने महामहि वायसराय को सूचित किया कि युद्ध के परिचालन में मैं ब्रिटेन को बिना शर्त सहायता देने का पक्षधर हूँ। क्या वे नहीं समझते कि काँग्रेस के सर्वेसर्वा होने के कारण उनके व्यक्तिगत विचारों के अनिवार्यतः दूरगामी मायने हैं? क्यों वे भूल गये कि युद्ध छिड़ने के बाद से काँग्रेस कार्य समिति ने छद्म संविधान सभा की मांग को सामने लाकर मुख्य मुद्दे अर्थात् “पूर्ण स्वराज्य की हमारी मांग को ताख पर रख दिया है? क्या वे भूल गये कि काँग्रेस कार्य समिति के सदस्य समेत कुछ प्रमुख दक्षिणपंथी नेता संविधान सभा के निहितार्थों के महत्व को धीरे-धीरे कम कर रहे हैं, और वे अपने सपनों की संविधान सभा को चुनने के आधार के रूप में पृथक निर्वाचन मंडल और विधानसभा की वर्तमान मताधिकार को मान लेने की हद तक चले गए हैं।”

यह हमारा दुर्भाग्य है कि ब्रिटिश सरकार ने काँग्रेस को गंभीरता से लेना बंद कर दिया और यह राय बना ली कि काँग्रेसजन चाहे जितनी भी बातें करे, अनन्तः संघर्ष का रास्ता नहीं अपनायेंगे। सितम्बर 1939 से संकल्पों और वक्तव्यों की कोई कमी नहीं रही है। काँग्रेस कार्य समिति के कुछ सदस्यों का कहना है कि इस संकल्पों का विश्व में प्रभाव पड़ा है। पिछले 6 महिनों से हमने केवल बातचीत की है, और हमने वही घिसी-पिटी जबाब पाया है कि, जब तक हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान नहीं हो जाता, पूर्ण स्वराज्य की कल्पना बेअर्थ है।<sup>10</sup>

जैसा कि पिछले सितम्बर से ही भारत घोर संकट के दौर से गुजर रहा है, जब से लोगों के मन में संसय और अनिश्चय उत्पन्न हुई है। सबसे पहले इसका असर स्वयं नेताओं पर हुआ और उनका मनोबल टूटा। जो अब संक्रामक रोग की तरह पूरे देश में फैल रहा है। इस पतनोमुखता को रोकने के लिए दृढ़ और व्यापक प्रयास करने की आवश्यकता है। भारत में हम गुजरे हुए युग पर पर्दा गिरा रहे हैं। जबकि हम साथ-साथ नये युग की स्वागत कर रहे हैं। साम्राज्यवाद का समय समाप्त हो रहा है, और स्वतंत्रता, एवं समाजवाद का युग हमारे सामने साकार होता दिख रहा है। इस तरह भारत आज इतिहास के चौराहे पर खड़ा है।

ऐसा संकट जब आता है तो राष्ट्र के नेतृत्व की सबसे बड़ी परीक्षा होती है। वर्तमान संकट की स्थिति हमारे नेतृत्व के लिए ऐसी ही परीक्षा की घड़ी है, और दुर्भाग्यवश हमारा नेतृत्व इसके लिए अक्षम साबित हो रहा है।

फॉरवर्ड ब्लाक के सदस्यों को भी अपने काम और आचरण से दिखाना होगा कि वे वास्तव में प्रगतिशील और सक्रिय हैं। हो सकता है कि आगे जो अग्नि परीक्षा है, उसमें आज दक्षिण पंथी कहे जाने वाले लोगों में कुछ असली वामपंथी साबित हो मेरा तात्पर्य कर्मशील वामपंथी से है। यहाँ पर व्याख्यान करना आवश्यक है कि हम वामपंथ से क्या समझते हैं। वर्तमान युग हमारे आन्दोलन का साम्राज्यवाद विरोधी दौर है। इस युग में हमारा मुख्य कार्य साम्राज्यवाद का अंत करना और भारतीय जनता के लिए राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करना है। जब स्वतंत्रता मिल जाएगी तो राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण का युग आरम्भ होगा और वह हमारे आन्दोलन का समाजवादी दौर होगा। हमारे आन्दोलन के वर्तमान दौर में दृढ़ प्रतिज्ञा लेकर साम्राज्यवाद के खिलाफ युद्ध में जो लड़खड़ाएँगे, या हिचकिचाएँगे, जो उसके साथ समझौता के पक्षधर होंगे, वे हरगिज वामपंथी नहीं हो सकते। हमारे देश में साम्राज्यवाद के साथ समझौता होने की स्थिति में, भारतीय वामपंथियों को केवल साम्राज्यवाद से ही नहीं बल्कि उनके नवविषदन्ती मित्रों से भी लड़ना होगा। अनिवार्य रूप से इसका अर्थ है कि साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय संघर्ष स्वयं भारतीयों के बीच गृहयुद्ध में बदल जाएगा।

भले ही कुछ समय लगे लेकिन अधिक समय होने से पहले हम सक्रिय हो जाए, स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने आह्वान कर दिया है कि हम अपनी पूरी शक्ति और साहस से इसमें जुट जाएँ, इस सम्मेलन की सफलता का तात्पर्य साम्राज्यवाद के साथ समझौता की मृत्यु का शंखनाद होगा।

तत् पश्चात् सुभाषचन्द्र बोस ने अखिल भारतीय स्तर पर काम करने का आह्वान किया तथा 6 अप्रैल, 1940 को उन्होंने फॉरवर्ड ब्लॉक पत्रिका में अपने कार्यों का कार्य-क्रम बताते हुए, संघर्ष करने का आह्वान किया। पुनः ऐसी ही अपील 13 अप्रैल, 1940 को उन्होंने की, साथ ही उन्होंने वामपंथियों की आलोचना कि तथा कहा कि –

“जनता हमारे साथ है, साम्राज्यवाद का विरोध करना आज का कर्तव्य है, 20 अप्रैल, 1940 को उन्होंने पुनः फॉरवर्ड ब्लॉक पत्र के माध्यम से किसानों को इस आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किये, यही नहीं स्वामी सहजानन्द सरस्वती के जेल जाने पर उन्होंने कहा था कि 28 अप्रैल सहजानन्द दिवस के रूप में मनाया जाएगा। ब्रिटिश सरकार देखा कि पुरा देश स्वामी जी के साथ है। इस प्रकार सुभाषचन्द्र बोस को गतिविधि बढ़ने लगा, तथा वे कांग्रेस के मुखर आलोचक हो गए एवं जनता की आजादी के लिए संघर्ष की ओर बढ़ने लगे।” रामगढ़ के पश्चात सुभाषचन्द्र बोस के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा था। वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ने के लिए शसस्त्र योजना बनाने लगे। बंगाल एवं पंजाब के अपने मित्रों से इशारा पाकर स्वदेश छोड़ कर विदेश जाने की योजना बनाने लगे। उन्होंने कलकत्ता के ‘हॉलवेट’ स्तम्भ को गिराने का फैसला लिया एवं इसके लिए आन्दोलन शुरू किये। डिफेंस ऑफ इंडिया रूल के अनुसार उनकी गिरफ्तारी हुई। अब वे निष्क्रियता छोड़कर आत्म बलिदान की ओर बढ़ने का मार्ग अपनाये।<sup>11</sup> उन्होंने जेल में अनसन किया, अतः बंगाल सरकार ने उन्हें जेल से रिहा करके घर पर ही नजरबंद रखा गया।<sup>12</sup>

अब सुभाष चन्द्र बोस ने भारत छोड़ने का फैसला ले लिया तथा छद्म वेष धारण कर एकांतवास का झासा देते हुए 17 जनवरी, 1941 को देश छोड़ने का कार्य किया। वे कलकत्ता से गोमो होते हुए देश छोड़कर बाहर निकल पड़े तथा पेशावर होते हुए 31 जनवरी, 1941 को काबुल पहुँच गये। तत्पश्चात् अविराम यात्रा जारी करते हुए द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी पहुँच गये। इस प्रकार जर्मनी एवं जापान के सहयोग से उन्होंने आजाद हिन्द फौज की स्थापना किये और कैसे लड़े यह उनके जीवन का तेजोमय भाग है। इस प्रकार उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य को हिला दिया, तथा कैसे भी अण्डमान निकोबार द्वीप पर कब्जा कर कोहिमा तक अपना ध्वज लहराया, यह भारतीय इतिहास का शूरमा मय पक्ष है। जिनके महान प्रयत्न के कारण ब्रिटिश सरकार को विश्वास हो गया कि अब इस देश से बोरिया-बिस्तर बाँधने का समय आ गया है। उन्होंने 6 जुलाई, 1944 को रंगुन से महात्मा गाँधी के नाम अपील जारी किया था, और कहा था कि—“अगर मुझे कोई उम्मीद होती कि इस युद्ध जैसा कोई और मौका आजादी पाने के लिए अपनी जिंदगी में मिलेगा तो शायद अपना घर छोड़ता ही नहीं, उन्होंने गाँधीजी को विश्वास दिलाया कि जो भी किया है अपने देश के हित के लिए किया है। विश्व में भारत की प्रतिष्ठा दिलाने एवं भारत के स्वाधीनता के लक्ष्य के निकट पहुँचाने के लिए किया है।” यह संघर्ष आजाद हिन्द फौज द्वारा अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिए किया गया है तथा दिल्ली के वायसराय हाउस पर जब तक राष्ट्रीय तिरंगा नहीं फहराया तब तक संघर्ष चलता रहेगा। हे राष्ट्रपिता स्वाधीनता के इस पावन युद्ध में हम आपका आशीर्वाद चाहते हैं, यह थी नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की महानता, जिन्होंने महात्मा गाँधी को राष्ट्रपिता कहा। कहने का तात्पर्य है कि जिस महापुरुष ने अपना सर्वस्व जीवन देकर राष्ट्र की सेवा की तथा रंगुन से बैंकाक तक पैदल यात्रा करते हुए, लक्ष्मीबाई रेजिमेंट के वीरांगनाओं को साथ लेकर आगे बढ़े थे। ये उनके नेतृत्व की अदभुत क्षमता थी। इन सम्पूर्ण कार्यों की प्रयोग भूमि तत्कालिन बिहार का समझौता विरोधी अधिवेशन था। जिसने सुभाष चन्द्र बोस को और संघर्षशील होने का आमंत्रण दिया था। यह समझौता विरोधी आन्दोलन का ऐतिहासिक महत्व है।

### संदर्भ-सूची

1. डॉ० के० के० दत्त, बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग-2, पृ. 347
2. फरवरी 1940 के पूर्वार्द्ध की घटना की रिपोर्ट (के० के० दत्त-बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग-2, पृ. 347)
3. रसूल एम० ए०, हिस्ट्री ऑफ द आल इंडिया, किसान सभा कलकत्ता, 1947, पृ. 67
4. के० के० दत्त — बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग-2, पृ. 359
5. के० के० दत्त — वही, पृ. 6359
6. रास बिहारी राय शर्मा, स्वामी जी की जीवनी, पृ. 110
7. त्रिवेणी शर्मा सुधाकर, स्वामी सहजानन्द सरस्वती स्मृति ग्रंथ, भाग-1, पृ. 09
8. राश बिहारी राय शर्मा, सहजानन्द सरस्वती की जीवनी 1957, पृ. 109
9. शिशिर कुमार बोस एवं सुगत बोस, नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, भा०-10, पृ. 91
10. मणिकांत वाजपेयी, नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, भा०-10, पृ. 92
11. शिशिर कुमार बोस, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, पृ. 92
12. वही पृ. 94

\* \* \* \* \*

## अंग्रेजों की भू-राजस्व नीति का भारतीय कृषकों पर प्रभाव

आशा शर्मा\*

**सारांश**—अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में जो परंपरागत भू-राजस्व व्यवस्था थी उसमें भूमि पर किसानों का अधिकार था तथा फसल का एक भाग सरकार को दे दिया जाता था। 1765 में इलाहाबाद की संधि से कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हो गई। तब भी कंपनी ने पुरानी भू-राजस्व व्यवस्था को ही जारी रखा, लेकिन भू-राजस्व की दरें बढ़ा दी। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि कंपनी के खर्चे बढ़ रहे थे और भू-राजस्व ही ऐसा माध्यम था जिससे कंपनी को अधिकाधिक धन प्राप्त हो सकता था। यद्यपि क्लाइव और उसके उत्तराधिकारी ने प्रारंभ में भू-राजस्व पद्धति में कोई बदलाव नहीं किया, किंतु कुछ वर्षों पश्चात् कंपनी ने अपने खर्चों की पूर्ति एवं अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से भारत की कृषि व्यवस्था में हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया तथा करों के निर्धारण और वसूली के लिए नई प्रकार की भू-राजस्व प्रणालियाँ कायम की। अंग्रेज अपने देश में सामंती व्यवस्था को समाप्त कर पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना करके आधुनिक युग में पदार्पण कर चुके थे। नई भौतिकवादी व्यवस्था के अनुरूप ही वे अपने यहाँ सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक मानदंडों की स्थापना कर चुके थे। इनके आगमन से पहले औद्योगिकरण के अभाव में भारत का आधुनिकीकरण नहीं हुआ था। यही कारण है कि अपने साम्राज्यवादी भौतिकवादी हितों के अनुरूप उन्होंने परंपरागत भारतीय व्यवस्था को नष्ट करके नई व्यवस्था को जन्म दिया। इन सभी व्यवस्थाओं के पीछे कंपनी का मूल उद्देश्य अधिकतम भू-राजस्व वसूलना था, न कि किसानों के रत्ती भर के भलाई के लिए कार्य करना।

ब्रिटिश काल में किसानों की स्थिति और भूमि व्यवस्था पर अनेक प्रभाव पड़े। इससे पूर्व प्रचलित मान्यताओं तथा व्यवस्थाओं को तोड़कर अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक जीवन में बुनियादी परिवर्तन किया और पुरानी ग्रामीण आत्मनिर्भरता की स्थिति को समाप्त किया। नई कृषि व्यवस्था ने भारत की सदियों पुरानी व्यवस्था को तोड़कर **ubZ leZ; okho i ylokh' KDR d sfy , ' Ksk ds} k [ kq fn, A bl ds} k kxkp vc 'dj ^** (Tax) निर्धारण और भुगतान की इकाई नहीं रह गए थे। जमीन की निजी मिलकियत के साथ-साथ व्यक्तिगत 'कर' निर्धारण और कर-अदायगी की प्रथा शुरू हुई। कर-भुगतान के तरीके में भी परिवर्तन आया। आर्थिक दृष्टि से इन व्यवस्थाओं ने सभी वर्गों (जमींदार से लेकर रैयत तक) को प्रभावित किया। लेकिन रैयत सबसे बुरी अवस्था में थी।<sup>1</sup> जमींदार निश्चित राशि कर के रूप में देकर इस मामले में सरकार के क्रोध से मुक्त हो जाता था। वह कितनी राशि रैयत से ऐंटे, यह वस्तुतः उसकी इच्छा पर निर्भर करता था। रैयत और जमींदार के बीच लगान का निर्धारण एक आपसी मामला मानकर छोड़ दिया गया था। इसलिए जमींदार कृषक से जितना भी धन चाहे बटोरता था। इसमें कोई शक नहीं कि सब भुगतानों के बाद किसान के पास जो कुछ बचा रहता था उससे वह सिर्फ जिंदा रह पाते थे।<sup>2</sup>

भूमि पर निजी मिलकियत का सिद्धांत स्थापित करके ब्रिटिश प्रशासकों ने भारत में एक भारी क्रांति उत्पन्न कर दी। अब तक भूमि पर सारे गाँव का अधिकार था। इस लिए उसे बेचा या खरीदा नहीं जा सकता था। किंतु इस नई व्यवस्था (स्थाई-बन्दोवस्त) के अंतर्गत वह भूमि अब निजी स्वामित्व में आ गई जिसको खरीदा या बेचा या रेहन रखा जा सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि विपत्ति के समय चाहे तो जमींदार का कर या लगान चुकाना हो या घर या बाहर (खेत) की आवश्यकता पूरी करनी हो, भूमि को दाँव पर लगा दिया जाता था।<sup>3</sup> फलतः भूमि के दाम बढ़ने लगे। यदि वह जमीन रेहन के रूप में साहूकार के हाथ पड़ गई तो फिर साहूकार उसे वापस नहीं लौटाता था। इस लिए ऋण या लगान न चुका सकने की स्थिति में भूमि का हस्तांतरण सरकार या साहूकार की तरफ होने लगा। इस तरह किसान, जो पहले भूस्वामी था, धीरे-धीरे दूसरे की जमीन जोतने वाला खेतिहर मजदूर बनता चला गया।

\* शोधार्थी, इतिहास विभाग, तिलकामाई भागलपुर विश्वविद्यालय, बिहार

मार्क्स ने 1853 ई० में कृषि व्यवस्था के बारे में लिखा था कि जमींदारी प्रथा या रैयतवारी व्यवस्था दोनों ही अंग्रेजों द्वारा लाई गई कृषि क्रांतियाँ थी और एक-दूसरे के विरोधी थी। इनमें से पहली अभिजाततंत्रीय और दूसरी जनतांत्रिक थी। जमींदारी प्रथा अंग्रेजी भू-स्वामित्व की विकृति थी एवं बँटाईदारी प्रथा फ्रांसीसी मिलकियत का, दोनों ही व्यवस्थाएँ हानिकारक थी। बिल्कुल विरोधी तत्वों के मिश्रण से बनी इन प्रथाओं में से कोई भी प्रथा न तो जोतने वालों के हित में थी और न ही जमीन मालिकों के हित में। केवल भू-कर लगाने वाली सरकार को ही इन व्यवस्थाओं का फायदा था। वास्तव में ये दोनों प्रथाएँ न तो सामंतवादी सिद्धांतों से और न ही सुधारवादी सिद्धांतों से प्रेरित थी, इस लिए भारत में न तो ऐसे जमींदार पैदा हो सके जो पूँजीवादी बुर्जुआ व्यवस्था के अगुआ बनते और न ही समृद्ध कृषक वर्ग का जन्म हो सका।<sup>1</sup> एक तरफ अंग्रेज जमींदार वर्ग की उत्पत्ति सामाजिक समर्थन प्राप्त करने के लिए किया था तो दूसरी तरफ अंग्रेज प्रशासकों ने जमींदार वर्ग को साम्राज्य सेवाओं के परिणामस्वरूप आर्थिक शोषण का भागीदार बना लिया। पूँजीविहीन होने के कारण किसान भी भूमि में कोई सुधार नहीं कर सके। जिसका परिणाम यह हुआ कि उत्पादन में दिन-व-दिन गिरावट आती गई। इसी दौरान जहाँ यूरोप में जमींदारों द्वारा किए गए निवेश व भूमि-सुधार से कृषि-उत्पादन में क्रांतिकारी परिवर्तन किए गए, भारत में जमींदार वर्ग अपनी इस भूमिका को भूलकर केवल अपने स्वार्थों की ही पूर्ति करने में लगे रहे।

इस प्रकार अंग्रेजी शासन का सबसे घातक प्रभाव भारतीय किसानों पर पड़ा। आत्मनिर्भर ग्राम-व्यवस्था में किसान भूमि जोतता था, सारे गांव के लिए फसल उगाता था और लगान के दुखदायी चाबुक से मुक्त था। अंग्रेजों ने इसमें जमींदारी रूपी व्यवस्था को जन्म देकर दुखदायी अवस्था में पहुँचा दिया। अपने शासन के आरंभिक वर्षों में (1765-1793) अंग्रेजी सरकार का ध्यान भारत से अधिक-से-अधिक लगान वसूल करने पर था। ब्रिटिश सरकार के लगान, जमींदारों के जमीन के किराए तथा सूदखोर के सूद की तीन तरफा मार से किसान जल्द ही भूमिहीन खेत-मजदूर में बदल गये। भूमि के मालिक किसान, सूद तथा कर्ज चुकाने के चक्कर में अपनी जमीन को बेचने को मजबूर हो जाते थे। ब्रिटिश हुकूमत के दौरान किसानों पर बढ़ती मुसीबत ने उन्हें ढेर सारे संघर्षों तथा राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थक बनाया। मुख्य रूप से अंग्रेजों ने भारत में तीन प्रकार की भू-राजस्व पद्धतियाँ अपनायी-इजारेदारी प्रथा, स्थायी बंदोवस्त, महालवाड़ी, रैयतवाड़ी व्यवस्था।

**इजारेदारी प्रथा-1772** में वारेन हेस्टिंग्स ने एक नयी भू-राजस्व पद्धति लागू की, जिसे 'इजारेदारी प्रथा' के नाम से जाना गया है। इस पद्धति को अपनाने का मुख्य उद्देश्य अधिक भू-राजस्व वसूल करना था। इस व्यवस्था की मुख्य दो विशेषतायें थीं-पंचवर्षीय ठेके की व्यवस्था थी तथा सबसे अधिक बोली लगाने वाले को भूमि ठेके पर दी जाती थी। किंतु इस व्यवस्था से कम्पनी को ज्यादा लाभ नहीं हुआ क्योंकि इस व्यवस्था से उसकी वसूली में अस्थिरता आ गयी। पंचवर्षीय ठेके के इस दोष के कारण 1777 ई० में इसे परिवर्तित कर दी गयी तथा ठेके की अवधि एक वर्ष कर दी गयी, अर्थात् अब भू-राजस्व की वसूली का ठेका प्रति वर्ष दिया जाने लगा। किंतु प्रति वर्ष ठेके की यह व्यवस्था और असफल रही। क्योंकि इससे भू-राजस्व की दर तथा वसूल की राशि की मात्रा प्रति वर्ष परिवर्तित होने लगी। इस व्यवस्था का एक दोष यह भी था कि प्रतिवर्ष नये-नये व्यक्ति ठेका लेकर किसानों से अधिक-से-अधिक भू-राजस्व वसूल करते थे।<sup>2</sup> चूंकि इसमें इजारेदारों का भूमि पर अस्थायी स्वामित्व होता था, इसलिये वे भूमि सुधार में कोई रुचि नहीं लेते थे। इनका मुख्य उद्देश्य अधिक-से-अधिक लगान वसूल करना होता था। इस व्यवस्था के कारण किसानों पर अत्यधिक बोझ पड़ा तथा वे कंगाल होने लगे। यद्यपि यह व्यवस्था काफी दोषपूर्ण थी फिर भी इससे कम्पनी की आय में वृद्धि हुयी।

**स्थायी बंदोवस्त-22 मार्च, 1793 ई०** को कार्नवालिस ने इस व्यवस्था को लागू किया। यह व्यवस्था बंगाल, बिहार, उड़ीसा, यू०पी० के बनारस प्रखंड तथा उत्तरी कर्नाटक में लागू की गयी। ये 19 प्रतिशत भाग पर फैला था। जमींदारों को भूमि का स्थायी मालिक बना दिया गया। भूमि पर उनका अधिकार पैतृक एवं हस्तांतरणीय था। किसानों को मात्र रैयतों का नीचा दर्जा दिया गया तथा उनसे भूमि संबंधी तथा अन्य परंपरागत अधिकारों को छीन लिया गया। जमींदार भूमि के स्वामी होने के कारण भूमि को खरीद या बेच सकते थे। सरकार का किसानों से कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं था। जमींदारों को किसानों से वसूल किये गये भू-राजस्व की कुल रकम का 10/11 भाग कम्पनी को देना था तथा 1/11 भाग स्वयं रखना था। इस व्यवस्था से सबसे अधिक लाभ जमींदारों को ही हुआ। वे स्थाई रूप से भूमि के मालिक बन गये। सरकार की आय में अत्यधिक वृद्धि हो गयी।<sup>3</sup> इस व्यवस्था से सबसे अधिक हानि किसानों को हुयी। इससे उनके भूमि संबंधी तथा अन्य परंपरागत अधिकार छीन लिये गये

तथा वे केवल खेतिहर मजदूर बन कर रह गये। इस व्यवस्था से किसान दिनों-दिन निर्धन होते गये तथा उनमें सरकार तथा जमींदारों के विरुद्ध असंतोष बढ़ने लगा। कालांतर में होने वाले कृषक आंदोलनों में से कुछ के लिये इस असंतोष ने भी योगदान दिया। इस प्रकार इस व्यवस्था ने कुछ कृषक आंदोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में अप्रत्यक्ष भूमिका निभायी। यह व्यवस्था कुछ समय के लिए भले ही लाभदायक रही हो किंतु इससे कोई दीर्घकालिक लाभ प्राप्त नहीं हुआ। इसीलिये कुछ स्थानों के अलावा अंग्रेजों ने इस व्यवस्था को भारत के अन्य भागों में लागू नहीं किया। स्वतंत्रता के पश्चात सभी स्थानों से इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया।

**रैयतवाड़ी व्यवस्था**—मद्रास के तत्कालीन गवर्नर टॉमस मुनरो के द्वारा 1820 में इस व्यवस्था को मद्रास, बम्बई एवं असम में लागू किया गया। अब भूमि का स्वामी किसानों (रैयतों) को मालिकाना हक तथा कब्जादारी अधिकार दे दिये तथा वे सीधे या व्यक्तिगत रूप से स्वयं सरकार को लगान अदा करने के लिए उत्तरदायी थे। इस व्यवस्था को लागू करने का उद्देश्य सरकार का बिचौलियों (जमींदारों) के वर्ग को समाप्त करना था ताकि सरकार बिचौलियों द्वारा रखी जाने वाली राशि को खुद हड़प सके। दूसरे शब्द में इस व्यवस्था के द्वारा सरकार स्थायी बंदोवस्त के दोषों को दूर करना चाहती थी। यह व्यवस्था 51 प्रतिशत भूमि पर लागू हुआ। इस व्यवस्था के तहत किसान का भूमि पर तब तक ही स्वामित्व रहता था, जब तक कि वह लगान की राशि सरकार को निश्चित समय के भीतर अदा करता रहे अन्यथा उसे भूमि से बेदखल कर दिया जाता था।

**महालवाड़ी पद्धति**—लार्ड हेस्टिंग्स के काल में ब्रिटिश सरकार ने राजस्व की वसूली के लिये भू-राजस्व व्यवस्था में संशोधित रूप लागू किया, जिसे महालवाड़ी व्यवस्था कहा गया। यह व्यवस्था मध्य प्रांत, यू0 पी0 (आगरा) एवं पंजाब में लागू की गयी तथा इस व्यवस्था के अंतर्गत 30 प्रतिशत भूमि आयी। इस व्यवस्था में भू-राजस्व का बंदोवस्त एक पूरे गाँव या महाल में जमींदारों या उन प्रधानों के साथ किया गया, जो सामूहिक रूप से पूरे गाँव या महाल के प्रमुख होने का दावा करते थे। तदुपरांत ये मुखिया लगान को सरकार के पास जमा करते थे। मुखिया या महाल प्रमुख को यह अधिकार था कि वह लगान अदा न करने वाले किसान को उसकी भूमि से बेदखल कर सकता था। इस व्यवस्था ने मुखिया को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया।<sup>9</sup> इस व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह था कि इसने महाल के मुखिया या प्रधान को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया। यदा कदा मुखिया के द्वारा इस शक्ति का दुरुपयोग किया जाता था। इस व्यवस्था के आने से सरकार और किसानों के बीच प्रत्यक्ष संबंध बिल्कुल समाप्त हो गए। यहाँ अंग्रेजों का प्रमुख उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना था। भारत पर अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के विस्तार की दिशा में उठाया गया हर कदम पुरानी अर्थव्यवस्था के विघटन और नए आर्थिक रूपों के उन्नयन की दिशा में ही अलग कदम था।

1917-18 के दौरान चंपारण में किसानों का ब्रिटिश सरकार के प्रति अब तक का पहला आंदोलन चलाया गया। यह आंदोलन किसानों की चेतना और इसके माध्यम से उन बगान मालिकों के प्रति उनके विरोध को अभिव्यक्त किया, जो नील की खेती के संदर्भ में अवैध एवं अमानवीय तौर-तरीकों पर उतर आये थे।<sup>10</sup> चंपारण के किसानों का संगठन एवं नेतृत्व मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों ने किया था। गांधी के अलावा, इस आंदोलन के अन्य प्रमुख नेता थे—राजेन्द्र प्रसाद, मजरूल हक, ब्रजकिशोर प्रसाद आदि। किंतु जैसा कि चौधरी ने संकेत किया है, स्वयं किसान ही इस आंदोलन के प्रमुख आधार<sup>10</sup> थे और उन्होंने आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस आंदोलन पर टिप्पणी करते हुए गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि, “लोग कुछ समय के लिए दंड के भय को भूल गए और उन्होंने अपने आपको उस प्रेम की सत्ता के सामने समर्पित कर दिया जिसकी शिक्षा उनके नए मित्र ने दी थी।”<sup>11</sup> ई0 एम0 एस0 नंबुदरीपाद ने भी चंपारण आंदोलन की सफल समाप्ति के लिए गांधी और उनके साथियों की तारीफ की।<sup>12</sup> खेड़ा (गुजरात) में एक बार फिर किसान सत्याग्रह का नेतृत्व गांधी, पटेल, इंदूलाल यागनिक, एन0 एम0 जोशी आदि ने किया। अधिकारियों की दमनात्मक कार्यवाहियों के बावजूद किसानों ने आंदोलन में बड़े उत्साह से भाग लिया और इस प्रकार उन्होंने नवीन जागरूकता तथा राजनीतिक चेतना का परिचय दिया। दिसम्बर 1919 ई0 में अमृतसर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें ‘उत्तर प्रदेश किसान सभा’ द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया। इस प्रस्ताव में किसान वर्ग की स्थिति को सुधारने के लिए कुछ सुधारात्मक कदम उठाने के सुझाव दिए गए :-

1. पूरे भारत में किसानों को उस भूमि का मालिक घोषित किया जाए, जिस पर वे खेती करते हैं। 2. जिन राज्यों में अवधि जमींदारी की प्रथा प्रचलित है, वहाँ आसामी को दिए जाने वाले लगान के मालिकाना अधिकार खरीदकर संबंधित किसान को दे दिए जाएँ। 3. पाँच बीघा या फिर जितनी भूमि से किसान के परिवार का भरण-पोषण हो सके उतनी भूमि कर मुक्त हो और इसके अतिरिक्त जो भूमि हो केवल उसी पर कर लगे।

अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक शोषण सरकार की कृषि नीति से भलीभांति स्पष्ट होता है। भारत कृषि प्रधान देश था लेकिन 18वीं सदी में कृषि प्रधान होते हुए भी सम्पन्न था और 19वीं सदी में सिंचाई तथा आवागमन की अधिक सुविधाओं के बावजूद भी निर्धन हो गया। यह परिवर्तन किस प्रकार हुआ? इस प्रश्न का उत्तर अंग्रेजी सरकार की भूमि व्यवस्था तथा कृषि नीति के अध्ययन से ज्ञात हो जाता है। अंग्रेजों द्वारा स्थापित भूमि व्यवस्था, स्थायी रैय्यतवाड़ी, महालवाड़ी का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाता है। इन व्यवस्थाओं के प्रभावों को अग्रांकित रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है।<sup>13</sup> 19वीं सदी में भारत के आर्थिक जीवन की एक नई विशेषता यह थी कि कृषक ऋणी होते गये। अंग्रेजी लेखकों ने उनके ऋणी होने का प्रमुख कारण उनकी सामाजिक परंपराएं तथा उनका अशिक्षित और रुढ़िवादी तथा मुकदमेबाज होना बताया है।<sup>14</sup> किंतु क्या उस कृषक की सामाजिक परंपराएं नई थीं? 19वीं सदी में परिवर्तन केवल इतना हुआ था कि सरकार की राजस्व की मांग बढ़ती गई और कृषकों के पास इतना धन शेष नहीं रहता था कि वे अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकें। इस प्रकार कंपनी ने भारत में भू-राजस्व उगाही के लिये विभिन्न कृषि व्यवस्थाओं को अपनाया। इन सभी व्यवस्थाओं के पीछे कंपनी का मूल उद्देश्य अधिकतम भू-राजस्व वसूलना था, न कि किसानों के रस्तीभर के भलाई के लिए कार्य करना। इसी कारण धीरे-धीरे भारतीय कृषि-व्यवस्था चौपट हो गई और भारतीय किसान बर्बाद हो गए।

अंग्रेजों की भू-राजस्व व्यवस्था से आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विघटन के साथ ही सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन परिलक्षित होने लगे। ब्रिटिश कृषि नीति के परिणामस्वरूप बंगाल में नया जमींदार वर्ग अस्तित्व में आया। इसी प्रकार कृषि श्रमिकों की उत्पत्ति ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था का ही परिणाम था। ब्रिटिश सरकार ने कृषकों को गाँव की जमीन पर अपने परंपरागत अधिकार से वंचित कर दिया था। इससे किसानों की स्थिति गंभीर हो गई उनके पास अपने और अपने परिवार के जीवनयापन की समस्या पैदा हो गई। सरकार की भू-राजस्व व्यवस्था के कारण गाँवों की आत्मनिर्भरता एवं यहाँ के लोगों के सीमित सहयोग का विनाश कर देश का जो पूँजीवादी एकीकरण हुआ उसने अर्थतंत्र एवं सामाजिक सहकर्मण के उच्चस्तरीय रूपों के आगमन के लिए मार्ग प्रशस्त किया। भारत की अर्थव्यवस्था और उसके सामाजिक जीवन को किसी भी विजेता ने इतना अधिक प्रभावित तथा परिवर्तित नहीं किया जितना कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार ने किया। अंग्रेज पहले ऐसे विजेता थे, जिन्होंने प्रारंभिक समाज को तोड़कर, प्राचीन उद्योगों को तो समाप्त किया ही, साथ ही प्रारंभिक समाज में जो कुछ उच्चतर था उसको भी समाप्त कर दिया और इसका पूरा प्रभाव किसानों पर पड़ा। किसानों की स्थिति को सुधारने के लिए अनेक प्रयास किये गए एवं लंबे संघर्ष के बाद इन स्थिति एवं परिस्थिति में कुछ बदलाव दिखाई दिये जो इन भारतवासियों के दृढ़ संकल्प का परिणाम साबित हुई।

#### सन्दर्भ-सूची

1. बी० एल० ग्रोवर, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1996, पृ. 126-127
2. वही, पृ. 129
3. सब्यसाची भट्टाचार्य, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 48-49
4. बी० एल० ग्रोवर, पूर्वोक्त, पृ. 130
5. विपिन चन्द्रा, राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इकोनोमिक नेशनलिज्म इन इण्डिया, नई दिल्ली, 1975, पृ. 82
6. वही, पृ. 105
7. दादाभाई नौरोजी, पॉवर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लंदन, 1962, पृ. 30-45
8. बी० बी० मिश्रा, दि इण्डिया मिडिल क्लासेज, बम्बई, 1961, पृ. 31-32
9. वही, पृ. 8-11
10. पेरिसवल स्पीयर, भारत का इतिहास, नई दिल्ली और लंदन, (1990, अंग्रेजी में), पेंगुइन बुक्स, पृ. 298
11. विपिन चन्द्रा, पूर्वोक्त, पृ. 102
12. बी० एच० टोमलिनसन, भारतीय आर्थिक और सामाजिक इतिहास की समीक्षा, 1880-1935, लंदन 1975 (अंग्रेजी में) पृ. 337-380
13. वही, पृ. 275
14. सब्यसाची, पूर्वोक्त, पृ. 95

\* \* \* \* \*



## कौशाम्बी के समाज में धार्मिक जीवन

डॉ. तेज बहादुर यादव\*

कौशाम्बी के सामाजिक-आर्थिक विविधताओं के अनुसार ही वहाँ की धार्मिक स्थिति भी मुख्यतः भारतीय साम्राज्यिक धर्म की ही क्रीडास्थली बनी रही। वैदिक, उपनिषदिक, महाकाव्यकालीन, पौराणिक, स्मृतिकालीन हिन्दू धर्म के वैष्णव-शैव आदि सभी धर्मों के साथ ही आनन्द लेती हुई जैन और बौद्ध के साहचर्य में लोगों अपना समय व्यतीत किया। विभिन्न राजवंशों ने यहाँ शासन किया था, वे सभी प्रायः ब्राह्मण, जैन और बौद्ध धर्म को ही अपनाते हुए वहाँ की धार्मिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया था।

यही कारण है कि हमारे ऋषियों और मुनियों ने धर्म की अपनी अलग अवधारणा स्थापित की। उन्होंने धर्म के प्रति किसी भी विदेशी चिन्तन को सही नहीं माना। धर्म का अर्थ, उसका उद्देश्य, महत्व, स्वरूप, आदि सब कुछ अलग प्रकार से अभिव्यक्त किया। इस क्षेत्र में भी हमारे देश ने संसार का मार्गदर्शन किया है और विश्व गुरु का सम्मान प्राप्त किया है। धार्मिक धरातल पर भारत स्वयमेव धर्म ही सभ्यता का प्राण है।

धर्म जीवन का सत्य है और हमारी प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है।<sup>1</sup> धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ धारण करने से है। धर्म प्रजा को धारण करता है।<sup>2</sup> धर्म मनुष्य को सन्मार्ग का दिग्दर्शन कराता है, जो असत् अथवा पाशविक और सत् प्रकृति के मध्य का सेतु है। कर्म के माध्यम से मनुष्य नैतिक सिद्धान्तों, विवेकशील प्रवृत्तियों और न्यायप्रधान क्रियाओं को सही रूप में समझ सकने और उनका अनुगमन कर सकने की क्षमता रखता है।<sup>3</sup>

अशोक ने धर्म की अपनी इस परिभाषा के अन्तर्गत अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। पशु हत्या न की जाए, वाक्संयम किया जाए, सर्व धर्म को समभाव से देखा जाए, सांसारिक मंगल की अपेक्षा धर्म-मंगल श्रेष्ठ है। धर्मोन्नति के लिए पराक्रम आवश्यक है। इस आधार पर उसने शासकों के लिए धर्म-विजय और सच्चे यश का प्रतिपादन किया। इस प्रकार अशोक ने अपने अभिलेखों में जिस धर्म का प्रचार किया है वह सार्वभौमिक धर्म का सार था।<sup>4</sup>

धर्म के आधार स्रोत तीन हैं—श्रुति (वेद), स्मृति (धर्मशास्त्र), सदाचार (अच्छे लोगों का व्यवहार) और आत्मसंतुष्टि। सदाचार में सत्यता, हितकर प्रथाएँ, आचरण और नैतिक व्यवहार का सन्निवेश होता है।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में वैदिक धर्म का विरोध करने के लिए जैन एवं बौद्ध, दो प्रमुख धर्मों की उत्पत्ति हुई थी। धर्म के क्षेत्र में नए सिद्धान्तों का जन्म हुआ और सुधारवादी धर्मों का उदय हुआ। इसके कारण थे— हिन्दू धर्म में कर्मकाण्डों का बाहुल्य, यज्ञों की बहुलता, तंत्र-मंत्रों पर विश्वास, ब्राह्मणों के प्रभाव के चलते समाज में व्याप्त कुरीतियाँ, विभिन्न भागों में उत्पन्न हुई थी।<sup>5</sup>

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जब भारतीय समाज में धार्मिक आन्दोलन हो रहे थे, देश में 16 महाजनपद—राज्य थे—कोशल, मगध, अवन्ति, वत्स, काशी, अंग, वज्जि, मल्ल, चेदि, कुरु, पांचाल, अश्मक, मत्स्य, शूरसेन, कम्बोज और गान्धार इनमें प्रथम चार राज्य सबसे शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण थे। कौशाम्बी उस समय वत्स राज्य की राजधानी थी।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने लिखा है कि कौशाम्बी के निवासी धर्म और आस्थाओं में अत्यधिक विश्वास रखते थे। संन्यासी<sup>6</sup> और बौद्ध-भिक्षु<sup>7</sup> दोनों ही संघटित रूप से रहते हुए अपना आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते थे। उनका संगठन निश्चित नियमों और उपनियमों द्वारा प्रेरित था। डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार का मानना है कि संन्यासी संघ से बौद्ध-संघ प्रभावित था। वस्तुतः बौद्ध-संघ प्राचीन भारत के धार्मिक संगठनों का सबसे अधिक विकसित रूप था।<sup>8</sup>

कौशाम्बी में जैन-बौद्ध और ब्राह्मण मतावलम्बियों के होने के आधार पर यह बात स्वीकार की जा सकती है कि उनमें अपने-अपने धर्म के प्रचार-प्रसार को लेकर कभी प्रतिस्पर्धा रही होगी, किन्तु उसे क्षत्रिय और ब्राह्मणों के बीच किसी प्रकार का धार्मिक संघर्ष नहीं कहा जा सकता है।

कौशाम्बी में प्रत्येक वर्ग के लोगों के लिए अपना-अपना धर्म-कर्म करने का अभ्यास था। समाज में यही व्यवस्था आश्रम-धर्म के नाम से अभिहित की गयी थी। लोग नैतिकता, आस्तिकता, सदाचारिता, ज्ञानता और बौद्धिकता को ही अपना धर्म मानते थे। यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, ब्रह्मचर्य जैसे धार्मिक स्कन्धों को वेदोपनिषदों में धर्म के अन्तर्गत मान्य किया गया था। उसे क्रमशः वैदिक तथा औपनिषदिक धर्म के नाम दिए गए थे। इस प्रकार आरम्भिक काल में कौशाम्बी में लोग वैदिक धर्म का ही आश्रय लिए हुए थे वही हिन्दू अथवा ब्राह्मण धर्म कहलाता था।

कौशाम्बी उत्खनन में भी वैष्णव और शैव-धर्म सम्बन्धित अनेक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यद्यपि विद्वानों का मत है कि कौशाम्बी मुख्यतः शैव-धर्म प्रधान नगरी थी, जबकि वहाँ वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार बाद में हुआ था। परन्तु प्रतीत होता है कि वहाँ के लोग हिन्दू ब्राह्मण धर्म के पोषक थे और विष्णु एवं शिव, दोनों का ही अपना इष्टदेव मानते थे। दोनों ही देवताओं ने पृथ्वी से अधर्त को समाप्त करने के लिए अनेक रूपों में अवतार लिया था। हरि (विष्णु) के असंख्य अवतारों में 24 अवतार मुख्य हैं। दशावतार में श्रीकृष्ण के स्थान पर बलराम का नाम दिया गया है और श्रीकृष्ण को विष्णु के रूप में ही मान्य किया गया है।<sup>9</sup>

वैष्णव अथवा भागवत धर्म गुप्तकाल में अपनी पराकाष्ठा पर था। उस समय विष्णु या नारायण अथवा नर-नारायण की मूर्ति-पूजा अधिक होने लगी थी। चतुर्भुज तथा शेषधारी विष्णु की मूर्तियाँ बनाई गईं। हर्ष के युग में भी यह धर्म निरन्तर प्रवाहमान था। राजपूत-युग में अनेक मन्दिर बनाए गए थे। अनेक त्योहार एवं उत्सव किए जाने लगे। राम को अवतार माना गया और उनकी उपासना की जाती थी। कौशाम्बी में रावण द्वारा सीताहरण के फलक मिले हैं। वैष्णवधर्म से सम्बन्धित अनेक देव-मूर्तियाँ भी मिली हैं। वैष्णव समाज की व्यवस्था के परिचायक प्रमाण भी मिले हैं, किन्तु बहुत अधिक नहीं। इसी आधार पर कुछ लोग भ्रमवश यह भी कहते हैं कि कौशाम्बी में केवल बौद्ध और जैन धर्म के अनुयायी ही रहते थे और हिन्दू धर्म के अनुयायी नहीं रहते थे, परन्तु सीता-हरण के फलक से स्पष्ट हो गया है कि वहाँ उस समय वैष्णव धर्म को मानने वाले हिन्दू लोग थे। कालान्तर में वे ही शैव-वैष्णव से जैन-बौद्ध बने थे।

शैव धर्म का सम्बन्ध शिव देवता से माना जाता है। उनका विकास रुद्र से शिव के रूप में हुआ। उनका प्रतीक लिंग है। यह इतना ख्यात हो चुका है कि मन्दिरों में शिव-मूर्तियों के स्थान पर अधिकांशतः लोग शिव-लिंग ही स्थापित करते रहे हैं। महाभारत काल में शिव सर्वोच्च देवता माने गए थे।<sup>10</sup> अर्जुन ने पाशुपात्र उनसे ही प्राप्त किया था।<sup>11</sup> गुप्तकाल में शैव धर्म का उत्कर्ष तीव्र गति से हुआ। वैष्णव गुप्तराजाओं ने भी शिव-मन्दिर निर्मित कराए और दान दिए।<sup>12</sup> शुंग-सातवाहन-काल से ही शैव धर्म प्रगति करने लगा था और गुप्तकाल तक आकर पर्याप्त विकसित हो गया था। लिंगेश्वर महादेव, अर्द्धनारीश्वर शिव अति आदरणीय रहे। त्रिमूर्ति के रूप में वह ब्रह्मा, विष्णु के साथ आगणित किए गए। हरि के रूप में शिव को विष्णु के साथ दर्शित किया गया।<sup>13</sup>

जैन धर्म का प्रसार कौशाम्बी तक था, यह नगर एक प्रसिद्ध जैन नगरी थी। वहाँ के शासक भी जैन धर्म के पोषक थे। एडवर्ड टामस ने कहा है कि बौद्ध होने के पूर्व सम्राट अशोक भी जैन मत का मानने वाला था जिससे इतना स्पष्ट है कि कौशाम्बी में जैन-धर्म का प्रादुर्भाव भी हिन्दू अथवा ब्राह्मण धर्म के विरोध में ही हुआ था।

जैन धर्म, बौद्ध धर्म से अधिक प्राचीन माना जाता है। जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर जैन, गौतम बुद्ध के समकालीन थे। जैन धर्म के प्रथम और द्वितीय तीर्थंकर क्रमशः ऋषभदेव और अरिष्टनेमि थे। 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे। वह महावीर के जन्म से 250 वर्ष पूर्व जैन धर्म का प्रचार किया था।<sup>14</sup> वह काशी में जन्म लिए थे। वह काशी के नागवंशी राजा अश्वसेन तथा रानी वामा के पुत्र थे। उनकी पत्नी कुशस्थल (द्वारका) के नरवर्मन की पुत्री (प्रभावती) थी। 30 वर्ष की अवस्था में वह राज्य त्याग किये थे।<sup>15</sup> उनके चार सिद्धान्त थे — अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह। महावीर के माता-पिता उनके अनुयायी थे।<sup>16</sup>

जिस समय कौशाम्बी अपने उत्कर्ष पर था, वहाँ का राजा उदयन था, बौद्ध धर्म के प्रणेता गौतम बुद्ध भी जीवित थे और वह कौशाम्बी के घोषिताराम, कुक्कुटाराम, पावरियाराम जैसे श्रेष्ठियों द्वारा उपहार में दिए गए विहारों में

आते-जाते थे। जिस समय यह नगर समुन्नत अवस्था में था, वहाँ पर ब्राह्मण और जैन धर्म का प्रभाव था, जबकि अधिकांश लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी ही थे। बुद्ध वहाँ चारिका करते हुए उपदेश भी देते थे। यह कार्य उनके शिष्य भी करते थे। आरम्भ में उदयन ने बुद्ध का विरोध किया, किन्तु बाद में वह उनके चमत्कारपूर्व व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ और बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। धीरे-धीरे कौशाम्बी में बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ता गया।

अशोक-स्तम्भ का लेख बौद्ध संघ की एकता बनाए रखने का आदेश देता है-‘जो कोई व्यक्ति चाहे वह भिक्षु हो, चाहे भिक्षुणी हो, संघ में फूट डाले उसे श्वेत वस्त्र पहना दिए जाए और संघ से बाहर कर दिये जाते थे।। यह आदेश भिक्षुओं के संघ और भिक्षुणियों के संघ को बता दिए जाए।’<sup>17</sup> यह आदेश कौशाम्बी के महामात्यों के लिए था।

कौशाम्बी के लोग ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म के प्रति भक्ति-भावना रखते थे। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत वे भक्ति का अनुसरण करते थे, यथा-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन।<sup>18</sup> जो लोग जैन-धर्म के अनुयायी थे, वे तीर्थकर, संघ के उपदेशक के प्रति भक्ति रखते थे तथा बौद्धानुयायी बौद्ध धर्म और संघ के प्रति भक्ति-भावना रखते थे।

मन्दिर जाने पर लोग मंदिरों में रखी मूर्तियों की पूजा करते थे। हिन्दू धर्म में मूर्ति-पूजा प्रचलित थी। कौशाम्बी में जैन और बौद्ध विहारों में भी महावीर आदि तीर्थकारों की तथा बुद्ध की मूर्तियों होती थी जिनकी लोग पूजा करते थे। कौशाम्बी उत्खनन में प्राप्त मृण्मूर्तियों से पता चलता है कि उन दिनों मूर्ति-पूजा प्रचलन में थी। डॉ० नीहारिका ने भी स्वीकार किया है कि छठी शताब्दी ई०पू० में जब बौद्ध धर्म का प्रभाव कौशाम्बी में था, वहाँ के लोग मूर्ति पूजा भी करते थे। घोषिताराम विजलिहार क्षेत्र के प्रवेश द्वार के बगल में हारीति एवं कुबेर की मूर्तियाँ स्थापित थीं।<sup>19</sup>

कौशाम्बी उत्खनन में एक ऐसी मृण्मूर्तियाँ मिली है, जिसमें रामायण में वर्णित कथा के अनुसार सीताहरण का दृश्य पाया जाता है। इलाहाबाद संग्रहालय में भी एक ऐसा ही फलक रखा गया है, जिसमें सीताहरण का दृश्य अंकित है।<sup>20</sup> इसी तरह के धार्मिक कथानक हमें और भी मृण्मूर्तियों के रूप में मिले हैं, जिनकी कथाएँ जातक ग्रंथों, रामायण, महाभारत आदि में मिलती हैं।

वैसे तो मूर्ति-पूजा को भी लोग शिला-पूजा कहते हैं, किन्तु आयागपट्ट के रूप में किसी धार्मिक उद्देश्य से स्थापित की गई। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार से विहारों में धार्मिक प्रचलन अथवा उपदेश आदि दीवारों पर उत्खनित कर दिए जाते थे, उसी तरह से जैन-बौद्ध धर्म में पूजा-शिलाओं पर वे ही धर्मादेश लिखवाकर ऐसे स्थान पर रख दिए जाते थे कि लोग उनकी पूजा किया करें। कौशाम्बी से हमें ऐसे पूजा-शिलाओं के फलक प्राप्त हुए हैं।<sup>21</sup>

जैन धर्म में भी पूजा-शिला को आयागपट्ट कहा गया है। आयागपट्ट एक अलंकृत प्रस्तर खण्ड की संज्ञा दी थी, जिस पर जैन अर्हन्त की आकृति रहती थी अथवा किसी समस्तरीय धार्मिक प्रतीक का अंकन रहता था। इसकी उपासना के शिलापट्ट से होता था। जैन मन्दिरों में प्रतिष्ठापित इस कोटि के प्रस्तर-खण्डों पर जैन-तीर्थकरों के सम्मानार्थ प्रायः ‘नमो अरहन्तान’ अथवा नमो अरहतो वर्द्धमानस्य जैसे वाक्य अंकित किए जाते थे। जैन सम्प्रदाय से आयागपट्ट नाम ही प्रचलित था, परन्तु अवान्तर कालीन- स्तरों पर जैन-सम्प्रदाय में भी ऐसे प्रस्तर खण्डों को चतुर्विंशतितीर्थकरपट्ट नाम देने लगे थे।

देवी-देवताओं के प्रति यज्ञ-कर्म भी कौशाम्बी में होते थे। जैन-बौद्ध धर्मों ने इस कार्य का विरोध किया था, फिर भी हिन्दू-धर्म के अनुयायी इस कार्य को करते थे। चूँकि यह धर्म-कर्म मंहगा था, इसलिए इसे सामान्य लोग नहीं करते थे। चूँकि यह धर्म-कर्म राजन्य परिवारों में ही सम्पादित होता था।

दान को लोग उत्तम धर्म-कर्म मानते थे। दान कई रूपों में दिये जाते थे। अन्नदान, भिक्षादान, किसी भी गृहस्थ के लिए सामान्य धर्म था। दानसागर में बल्लालसेन ने दान का विस्तार से उल्लेख किया है। पुराणों में षोडश महादानों की प्रशंसा की गयी है। गुप्त राजाओं ने कौशाम्बी में दान गृह खोल रखा था, जहाँ पर असहाय साधु-संन्यासियों को भोजन-वस्त्र दिया जाता था। घोषिता, पावरिया, कुक्कुट आदि श्रेष्ठियों ने विहार का निर्माण करके बुद्ध को दान अथवा उपहार में दिया था।

परोपकार-धर्म से जुड़े हुए समस्त प्रकार के कार्य इसमें आते हैं। परोपकार का कार्य भी धर्म कर्म के अन्तर्गत माना गया है। कौशाम्बी के लोग ऐसे कर्म करते थे। इसके अनेक साक्ष्य मिले हैं। जिसके अन्तर्गत जन-कल्याणार्थ, कूप, तालाब, मन्दिर आदि बनवाया तथा याचकों को अन्न आदि का दान देना पड़ता है। अशोक की दूसरी पत्नी

कारु वाकी ने ऐसे कार्य किए थे, जिसका उल्लेख अशोक के स्तम्भ अभिलेखों पर अंकित है जो अब इलाहाबाद किले में स्थानान्तरित किया गया था।

जब महाराज अशोक बौद्ध हो गए, तब उनका प्रश्रय पाकर बौद्ध-धर्म बहुत फैला। उनका विस्तृत साम्राज्य था। उन्होंने धर्म का प्रचार करने के लिए दूर-दूर तक उपदेशक भेजे। भारत के बाहर भी उनके भेजे उपदेशक गए थे। उन्होंने अनेक स्तूप एवं विहार बनवाए।<sup>22</sup>

हवेनसांग के समय कौशाम्बी के वे यादगार विहार आदि, मात्र भग्नावशेष ही रह गए थे। उसने वहाँ के कुल दस विहारों के भग्नावशेषों का अवलोकन किया था, जिनमें हीनयान शाखा के 300 भिक्षु निवास करते थे। तिपल्लत्थमिग जातक के अनुसार महात्मा बुद्ध के ठहरने का कौशाम्बी में एक और स्थान था जो बद्रीकाराम के नाम से विख्यात था। इस प्रकार से कौशाम्बी या उसके आस-पास में बनाए गए चार विहारों की सूचना हमें मिलती है, जिनकी रचना भगवान बुद्ध के समय में ही हो गई थी।

राजाज्ञा अथवा जन-सूचना को सार्वजनिक करने हेतु स्तम्भों पर राजाज्ञाएँ उत्खनित करके सार्वजनिक कर दी जाती थी। धार्मिक विवादों को समाप्त कराके भी यही कार्य होता था। कालान्तर में बौद्ध धर्म के अन्तर्गत भी लोगों की मान्यताओं को लेकर आपस में संघर्ष होने लगे थे। घोषिताराम विहार में बौद्ध संघ की व्यवस्था की कुप्रभावित करने वाले भेद के प्रथम लक्षण प्रतिभाषित होने से गौतम बुद्ध बहुत दुःखी हुए कौशाम्बी से श्रावस्ती चले गए थे।<sup>23</sup>

धर्म-सभाएँ तथा धार्मिक गोष्ठियाँ भी कौशाम्बी में आयोजित हुआ करती थीं। उसमें धार्मिक विषयों पर चर्चाएँ होती थीं। धार्मिक विचारों का विवरण करने के लिए धर्म-सभाएँ आयोजित होती थीं। गोष्ठियों का आयोजन भी धर्म-कर्म कहा जाता था। बौद्धाचार्यों द्वारा बौद्ध-धर्म के नियमों का समझने के लिए धर्मसभाएँ होती थीं और इसके लिए सभागार भी बनाए जाते थे। सभागार प्रायः विहारों में बने होते थे। सभाएँ खुले आँगन में भी होती थी।

कौशाम्बी उत्खनन में अनेक देवी-देवताओं की मृणमूर्तियाँ मिली हैं, जिससे बहुदेववाद की स्थिति सामने आती है। हिन्दू मुख्यतः देवी-देवताओं को मानते थे और उनकी पूजा-अर्चना करते थे। जैन और बौद्ध दोनों ही धर्म अनीश्वरवादी थे, फिर भी देवी-देवताओं की मान्यता से परे नहीं थे।

बौद्ध-धर्म के देवी-देवता हैं—नागराज, ऐरावण, कुबेर, कौशिक, देवेन्द्र, शक्र, धृतराष्ट्र, नन्दोपनन्द, धर्माचारी देवपुत्र, मनस्वी नागराज, ललितव्यूह, व्यूहमत देवपुत्र, वैश्रवण, शान्त सुमति, विरुपाक्ष, विरुद्धक, ब्राह्मणिक देवा-देवता, वरुण नागरा, सागरनागराज, सच्चोदक देवपुत्र इत्यादि।<sup>24</sup>

बौद्ध धर्म में गणेश को विनायक कहा गया है। बुद्ध का एक नाम विनायक भी है। नेपाल में बौद्ध-धर्म के साथ-साथ गणपति की पूजा होती है। वहाँ से खोतान, चीन, तुर्किस्तान तथा तिब्बत में गणेश की पूजा का प्रचार है। नेपाल के हेरम्ब विनायक को पाँच मुख हैं। विहनराज के रूप में गणेश पूरे वृहत्तर भारत में प्रचारित है। महायान बौद्ध-धर्म के विकास के साथ गणपति का भी विकास माना जाता है।

हिन्दू-देवताओं में त्रिदेव में (विष्णु, शिव, ब्रह्मा) और पंचदेव में (विष्णु, रुद्रशिव, गणपति, सूर्य, ब्रह्मा) अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। वैसे अमर शहीद एवं महापुरुषों को भी यहाँ सम्मान-जनक स्थान दिया जाता है। राजा-महाराजा भी उसी श्रेणी में पूज्य रहे हैं। इनकी प्रतिमाएँ देव-कुल में प्रतिष्ठापित होती थीं और उनकी पूजा देव-मूर्तियों की भाँति की जाती थी।

कौशाम्बी के लोग शैव-धर्म के भी अनुयायी थे और इसलिए वे शिव परिवार की प्रतिमाओं की पूजा किया करते थे। इसका प्रमाण हमें कौशाम्बी उत्खनन में प्राप्त कुछ मृणमूर्तियों में मिल जाता है। कौशाम्बी एवं इलाहाबाद संग्रहालयों में सुरक्षित उन मृणमूर्तियों में शिव की मूर्तियाँ मिलने के साथ ही कुछ शिवलिंग भी प्राप्त हुए हैं।<sup>25</sup>

पशुपति रूप का अंकन मोहनजोदड़ो को एक मिट्टी की मुद्रा (मार्शल, सं० 420) पर प्राप्त होता है। इसमें पुरुष योगमुद्रा में चौकी पर आसीन दिखाया गया है। उसके सिर पर शृंगाकार आभूषण है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके तीन मुख हैं। वह कलाई से कन्धे तक हाथ में चूड़ियाँ पहने हैं। आकृति के दाहिनी ओर बाघ एवं हाथी तथा बाईं तरफ गैंडा तथा महिष अंकित हैं। आसन के नीचे दो हिरण जिनमें से एक साहित्य में शिव के विविध नाम उपलब्ध हैं।<sup>26</sup> महाभारत में शिव की एक लम्बी सहस्रनाम सूची दी गई है। शिव के समस्त नामों में रुद्र, शर्व, उग्र के घोर रूप का तथा भव, पशुपति, महादेव, ईशान उनके सौम्य रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पुराण एवं परवर्ती ग्रन्थों में शिव को कैलाश पर्वत में, व्याघ्र चर्म पर आसीन, जटाजूट बाँधे ध्यानमग्न दिखाया जाता है। उनके मस्तक का तीसरा नेत्र अग्नि का प्रतीक है। ललाट पर चन्द्रमा एवं जटाजूट से बहती हुई गंगा से समन्वित शिव अत्यन्त सुशोभित होते हैं। गले में सर्प, शरीर में भस्म, हाथ में त्रिशूल, पिनाक, परशु आदि आयुध एवं रुद्राक्ष, कपाल धारण किए हुए वृषभ एवं देवी पार्वती से युक्त प्रदर्शित किया जाता है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण<sup>27</sup> में वर्णित शिव के पाँच मुख, पाँच-तत्त्वों सद्योजात पृथ्वी का, वामदेव जल का, अघोर तेज का, तत्पुरुष वायु का, तथा ईशान आकाश के प्रतीक है। एक स्थान पर मुखों का विभाजन दिशाओं के अनुरूप भी मिलता है।

कुषाण-काल में मथुरा पाशुपत धर्म का सबसे बड़ा केन्द्र था। ब्रह्म की शिव मूर्तियों के तीसरे नेत्र क्षैतिजाकार<sup>28</sup> प्रदर्शित किए गए हैं जबकि गुप्तकाल में तीसरे नेत्र सदैव लम्बवत् ही मिलते हैं।

कुषाण-सातवाहन काल से गुप्तकाल तक शिव की पूजा, प्रतिमा स्थापना अत्यन्त प्रचलित हो चली थी। गुप्तकाल में शिव के विविध रूप जैसे- उमा-महेश्वर, दक्षिणामूर्ति, नटराज, योगी, अर्धनारीश्वर, भैरव, लकुलीश आदि मिलते हैं। ये सभी कला की दृष्टि से बेजोड़ हैं।

पूजा तथा मंदिरों में स्थापना की दृष्टि से शिवलिंगों को अधिक महत्व दिया जाता है और शिवमूर्तियों को कम महत्व दिया जाता है। शिवलिंगों में गुड़डीमल्ल का मुखलिंग इतिहास और कला की दृष्टि से बड़ा ही महत्वपूर्ण है। शिव की एकादश मूर्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। कहीं द्वादश संख्या भी मान्य है।

गणेश को वेदों तथा पुराणों में गणेश कहा गया है। गणपति का अर्थ है-गणों (समूहों) का अधिपति। गणपति का मुख हाथी के आकार का बताया जाता है और इसी से उन्हें गजानन, गजास्य, सिन्धु-रानन आदि नामों से अभिहित किया जाता है। गज का अर्थ साक्षात् ब्रह्म है। वह एकदन्त, वक्रतुण्ड, शूर्पकर्ण, मूषकवाहन, तथा पाश, अंकुश, रद, वर धारण करने वाले हैं। विहनविनाशक विनायक के 56 स्वरूपों का उल्लेख काशीखण्ड में हुआ है।

स्कन्द को शिव परिवार का सदस्य माना गया है। जिसका उल्लेख कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता में हुआ है।<sup>29</sup> शिव पुराण, स्कन्दपुराण, कुमारसंभव आदि अनेक ग्रंथों में इनकी उत्पत्ति कथा दी हुई है। कृषाण-काल में इनकी पूजा होती थी। हुविष्क की स्वर्ण मुद्राओं पर स्कन्दकुमार का नाम है। गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम एवं योधेय राजा कार्तिकेय के प्रमुख उपासक थे। मयूर उनका वाहन है। उनके वस्त्र एवं ध्वज का रंग लाल है। कौशाम्बी उत्खनन में इनकी मृणमूर्तियाँ मिली हैं।<sup>30</sup>

सूर्य पंचदेवों में एक है। ऋग्वेद में उनको जगत् की आत्मा कहा गया है।<sup>31</sup> सूर्य को ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का ही रूप माना गया है। शतपथब्राह्मण में द्वादशादित्य की गणना हुई है-धातु, मित्र, अर्यमन, रुद्र, वरुण, पूषन, सविता, त्वष्टा और विष्णु। मित्र, अर्यमन के नाम से ईरानियों में भी सूर्य-पूजा प्रचलित है।

कौशाम्बी उत्खनन में प्राप्त घोषिताराम विहार के प्रवेश द्वार के बगल में हारीति एवं कुबेर की मूर्तियाँ स्थापित थीं। कुबेर सम्भवतः धन के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं। अतएव उस समय धन की प्राप्ति के लिए लोग उनकी मूर्तियों की पूजा करते थे।

यक्षराज कुबेर की ही भाँति उनके यक्ष गणों को भी हिन्दू देवयोनि के अन्तर्गत सम्मान दिया गया है। ऋग्वेद में उनको भरतों से अधिक सुन्दर कहा गया है-‘यक्ष सदृशो न शोभयन्तमर्हाः।’<sup>32</sup> उनका उल्लेख विष्णुपुराण<sup>33</sup> एवं हलायुध आश<sup>34</sup> में भी इसी प्रकार हुआ है। ब्रह्मवैवर्तपुराण<sup>35</sup> में उनको ‘किंकर’ सम्बोधित करते हुए उनको विकृत मुख, पिगल आँखें, उदर, रक्तिम वेश और दीर्घ स्कन्धों वाला कहा है। हरिवंशपुराण<sup>36</sup> के अनुसार, यक्ष लोग कुबेर के सेवक हैं। वे कुबेर कोष एवं उद्यानों की रक्षा करते हैं। मेघदूत<sup>37</sup> में यक्ष को ‘अनुचरों को राजस्य’ कहा गया है। मानसार<sup>38</sup> में यक्षों का वर्ण श्याम एवं पीला उल्लिखित है। चतुर्वर्गचिन्तामणि<sup>39</sup> में यक्षों के तुंडिल, दो भुजाओं से युक्त मदिरा पान से उन्मत्त तथा भयानक कहा गया है। जातकमाला<sup>40</sup> में यक्षों को क्रूर कहा गया है। दिव्यावदान<sup>41</sup> में उनको विकृत स्वरूप वाला कहा गया है। दीर्घनिकाय<sup>42</sup> तथा महावंश<sup>43</sup> में अच्छे और बुरे, कुल दो प्रकार के यक्षों का उल्लेख किया गया है। इसमें अच्छे यक्ष अपने राजाओं की सेवा करते थे, जबकि बुरे यक्ष उनके विरुद्ध उपद्रव करते थे।

देवियों के रूप में दो प्रकार की पूजनीयाएँ आती हैं- एक तो वे जिनको देवताओं की पत्नियाँ माना गया है। दूसरी वे जो स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं। लक्ष्मी, पार्वती क्रमशः विष्णु और शिव की पत्नियाँ हैं। काली, दुर्गा जैसी कई देवियाँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं।

श्री<sup>44</sup> अथवा लक्ष्मी<sup>45</sup> को अभ्युदय<sup>46</sup>, सौन्दर्य<sup>47</sup> एवं समृद्धि की देवी माना गया है। प्राचीन वैदिक साहित्य में यह स्पष्ट नहीं है कि श्री अथवा लक्ष्मी एक ही देवी हैं अथवा दो हैं, परन्तु वेदोत्तर साहित्य में लक्ष्मी एवं श्री से एक ही देवी का अभिप्राय व्यक्त होता है। इनको क्षीर सागर के मन्थन द्वारा उत्पन्न किया गया था। इनको विष्णु की पत्नी माना गया है। इनकी मृण्मूर्तियाँ कौशाम्बी उत्खनन में पाई गई हैं।

हिमालय तनया पार्वती शिव परिवार की प्रमुख सदस्या हैं। शिव की अर्द्धांगिनी पार्वती की गणना समस्त देवियों में शान्त मूर्ति के रूप में की जाती है। गौर वर्ण वाली गौरी के उमा, गिरिजा आदि अनेक नाम हैं। पुराणों में वर्णित है कि विष्णु के रौद्र रूप धारण करने पर लक्ष्मी, गौरी एवं पार्वती बनकर शिव के साथ निवास करती हैं। विष्णु एवं वराह पुराण में विष्णु को शंकर और लक्ष्मी को पार्वती भी माना गया है। पार्वती के विविध रूपों में भद्रकाली, गौरी एवं दुर्गा प्रमुख हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण से भद्रकाली एवं शिव की शक्ति महेश्वरी के तीन-तीन नेत्र बताए गए हैं।

पार्वती के विविध प्रकार के अंकन मृत्तिका एवं प्रस्तर कला में उपलब्ध होते हैं। मृण्मूर्तियों में पार्वती का अंकन अपेक्षाकृत कम मिलता है।

लज्जा गौरी भी धार्मिक महत्व की देवी मानी जाती हैं। गौरी और पार्वती को एक ही समान देवी का स्तर दिया जाता है। मधु-नवरात्र में लोग 9 गालियों का दर्शन-पूजन करते हैं। इस प्रकार की मूर्ति में सिर नहीं होता है और स्त्री की मूर्ति पूर्णतः नग्न होती है। इसीलिए लोग इसे लज्जा गौरी कहते हैं। नग्नता के आलोक में कुछ लोग यह भी कहते हैं कि देवी की यह मुद्रा शिशु प्रजनन से सम्बन्धित है। कुछ लोग लज्जा गौरी को परशुराम की माता रेणुका<sup>48</sup> भी कहते हैं। जैन धर्म में लोग महावीर की माता त्रिशला<sup>49</sup> को मानते हैं और कहते हैं कि उनके नग्न होने का प्रभाव महावीर जैन पर पड़ा और वह भी दिगम्बर रहना पसन्द किए थे। डॉ० सांकलिया<sup>50</sup> ने ऐसी मृण्मूर्ति का उल्लेख किया है, जिसमें सिर के स्थान पर स्तूपाकृति है तथा अधोभाग पूर्णतया नग्न है। कौशाम्बी में ऐसी भी कुछ मूर्तियाँ मिली हैं।

महिषासुरमर्दिनी को दुर्गा का ही एक रूप माना जाता है। इस रूप में देवी महिषासुर से युद्ध करती हुई दिखलाई गई है। उसका वाहन सिंह है। सिंह शक्ति का प्रतीक है, जबकि महिषासुर तमोगुण का प्रतीक है। कौशाम्बी से प्राप्त महिषासुर मर्दिनी की मृण्मूर्ति प्राप्त हुई है। पृथ्वी की उत्पत्ति विराट ब्रह्म के पाँवों से हुई है। मनुष्य जीवन का सब कुछ पृथ्वी पर ही निर्भर है। इसीलिए पृथ्वी को लोग माँ की तरह पूजते हैं। पृथ्वी की वन्दना एक देवी के रूप में की जाती है। पृथ्वी की पूजा-वन्दना करने वाले उसे वसुधरा, वसुधा, आदि कहकर सम्मानित करते हैं। प्राचीन काल में पृथ्वी की पूजा-वन्दना मुख्यतः तीन स्वरूपों में की जाती थी— (1) हारीति (वाराही)। प्रायः इन सभी देवियों के साथ मछली का अंकन किया जाता है। इन देवियों की मृण्मूर्तियाँ कौशाम्बी के उत्खनन में मिली हैं।

हारीति प्रधानतया बौद्ध देवी है। यद्यपि हिन्दू ग्रन्थों में भद्रा<sup>51</sup> के रूप में प्रतिष्ठित है। हारीति से सम्बन्धित कथानक रत्नकूट में मिलता है। यक्षी के रूप में जन्म लेने से पूर्व वह राजगृह में एक चरवाहे की पत्नी थी। एक बार गर्भावस्था के समय उसे बलपूर्वक एक उत्सव में नृत्य करने को कहा गया जिससे उसका गर्भपात हो गया। फलतः उसने ये प्रतिज्ञा कर ली कि वह राजगृह के समस्त बच्चों का भक्षण करेगी।

इसी कथानक के आधार को लेकर चीनी यात्री इत्सिंग<sup>52</sup> ने हारीति की प्रतिमा राजगृह के भोजनालय तथा मठ में देखी थी, ऐसा वर्णन मिलता है। हारीति के प्रारम्भिक घोर रूप की तुलना महाभारत में<sup>53</sup> वर्णित जरा नामक राक्षसी से की जा सकती है। इसे भी बच्चों के साथ अंकित किया जाता है। श्रीमद्भागवत में<sup>54</sup> कृष्ण को मारने के लिए उद्यत पूतना नामक राक्षसी से इसकी तुलना की जा सकती है, जिसे बाल-घातिनी, बालग्रह, लोकबालत्री आदि नामों से अभिहित किया गया है। हिन्दू ग्रन्थों में वर्णित षष्ठी देवी हारीति का ही परिवर्तित रूप है। डॉ० वासुदेवशरण इसे भद्रा से अभिन्न बताते हैं। आरम्भ में वह घोर नाम की राक्षसी और कुरुक्षेत्र में उलूखल मेखला नाम की यती उसी के रूप थे। यह मांस शोषित से तृप्त होती थी, किन्तु बौद्ध धर्म के साँचे से ढालकर वह शिवात्मक बन गई और मगध से गंधार तक बच्चों की रक्षक देवी के रूप में वह सर्वत्र फैल गई। ऋग्वेद में बहुप्रजा परम्परा लोक में बहुपुत्रा हारीति या भद्रा के रूप में विकसित हुई।<sup>55</sup>

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने हारीति की पूजा का उल्लेख गंधार में किया है। उसने अशोक द्वारा निर्मित हारीति स्तूप का भी वर्णन किया है जिसकी पहचान फूरो ने सारे मारवे ढेरी में की है।<sup>56</sup>



हारीति की पूजा भारत के अतिरिक्त चीन, जापान एवं कोरिया में भी प्रचलित थी। हारीति की मष्ण्मूर्तियाँ कौशाम्बी, मथुरा, झाँसी आदि के उत्खनन में मिली हैं। हमारे देश में देवी-देवताओं को कण-कण में विद्यमान माना गया है। ग्रह-नक्षत्र की तिथियाँ आदि सभी के लिए देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा पायी जाती है। इसी क्रम में चन्द्रमा की कला से सम्बद्ध चार देवियों (सिनीवाली, कुहू, अनुमति और राका) को सम्मान दिया जाता है। अमरकोश में इन चारों का परिचय इस प्रकार दिया गया है – पुनः सिनीवाली को अथर्ववेद<sup>57</sup> में विष्णु की पत्नी कहा गया है। विष्णु प्रजनन शक्ति संप्रदाय के प्रमुख देवता है।

### संदर्भ-सूची

1. महा० शांति 10/91/58
2. महा० कपिर्व 10/91/58
3. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 258–59.
4. तेरहवां शिलालेख
5. डॉ० नीहारिका, पृ. 102–103
6. गौतम धर्माश्च, अ० 3, अपस्तम्ब 2/9/21–23, महाभारत (नीलकण्ठ टीका) 1/1/19
7. विनयपिटक (सेक्रेट बुक आफ द ईस्ट, भाग 13, पृ. 118
8. मज्जिमदार, रमेशचन्द्रः प्राचीन भारत में संघटित जीवन, पृ. 274–275
9. भागवत् पुराण 1, 3, 6, 25, 27, 1–45
10. महाभारत वनपर्व 38–40
11. वही, 38–40
12. डॉ० जयशंकर मिश्र, आध्यात्मिक चिंतन-धारा विविध धार्मिक चेतना, पृ. 723
13. वही, पृ. 723
14. ऋग्वेद 1, 896
15. कल्पसूत्र 6, 144, 69
16. डॉ० जयशंकर मिश्र, आध्यात्मिक चिंतन धारा विविध धार्मिक चेतना, पृ. 775
17. भण्डारकर, डी०आर० : अशोक के अभिलेख, पृ. 81
18. उपाध्याय बलदेव : पुराण विमर्श, पृ. 438
19. डॉ० नीहारिका, पृ. 104
20. के०एस०बी-13, डी/27 एवं इ०सं०सं० 5108
21. भयतस धरस अंते वासिस भिखुसफगलस बुधावासे घोषितारामे सव बुधाना पुजाये शिला का (रापिता)
22. महावग्ग 5/13/12
23. महावग्ग (चीवरखन्दक)
24. अंगनेलाल, पृ. 137
25. भा.क.भ.स. 2/30/81
26. महाभारत : शांति पर्व, अध्याय 284
27. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 48/2–3
28. श्री नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा का मूर्तिकला, पृ. 24
29. मैत्रेयी संहिता 2/9/1
30. वही, 47

31. ऋग्वेद 1 / 115 / 1.
32. ऋग्वेद 10 / 14.
33. विष्णुपुराण सिद्धगुह्यकगन्धर्त यक्ष राक्षस पन्नयाः ।  
विद्याधरा पिशाचाश्च निर्दिष्टा देवयोनयः ।।
34. हलायुध कोश, पृ. 11, श्लोक 87  
यक्षराक्षस गन्धर्वसिद्धकिन्नरगुह्यकाः ।  
विद्याधर प्सरीभूतपिशाचा देवयोनयः ।।
35. ब्रह्मवैवर्तपुराण – 174.
36. हरिवंशपुराण—यक्षोत्तमा यक्षपतिं धनेशं रक्षन्ति वे प्रासादादिहस्ताः
37. कालिदास : मेघदूत (पूर्वमेघ-3)
38. मानसार, 15 / 23
39. हेमाद्रि : चतुर्वर्ग चिन्तामणि (अंक-2, भाग-1, पृष्ठ 138), हिन्दुस्तानी एकेडमी, 1961
40. जातकमाला (दरभांग, 1959) पृ. 44
41. दिव्यावदान-35, पृ. 86
42. दीघनिकाय, 3 / 195
43. महावंश, 31 / 81
44. ऋग्वेद, श्रीसूक्त मंत्र 3
45. महा० (शांति) 2 / 7 / 28
46. जे० खोंदा... आस्पेक्ट्स आफ अर्ली विश्नुइस्म, पृ. 217
47. जे०यू०पी०एच०एस० भाग-21, 1948, पृ. 19-22
48. आनन्द भदन्त कौसल्यायन (सम्पादक) जातक तृतीय खण्ड, पृ. 382.
49. ईस्ट एण्ड वेस्ट, 19 (3-4), पृ. 410-412 : विष्णुसीसोरियन
50. धवलिकर, मास्टरपीसेज, आफ इण्डियन टेराकोटाज, पृ. 58
51. आर्टिबुस एशियी 23, पृ. 114 चित्र 10
52. जे०एन० बनर्जी, डेवलेपमेन्ट आफ हिन्दू इकोनोग्राफी, पृ. 381
53. ईत्सिंग, तकाकुशु, ए रिकार्ड आफ बुद्धिस्ट रिलिजन, पृ. 37
54. महाभारत-II 18.1-6
55. दशम स्कंध अध्याय 6, श्लोक 2, 7, 8, 27-29
56. अग्रवाल, डॉ० वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृ० 345
57. अनन्त देव विरचित 'संस्कार कौस्तुभ' पृ. 125

\* \* \* \* \*

## तीर्थराज प्रयाग : महात्म्य और अक्षयवट का एक अनुशीलन

छोटे लाल यादव\*

तीर्थराज (तीर्थों के राजा) प्रयाग इतिहास में विश्व का प्राचीनतम और सर्वोत्तम तीर्थस्थल है। श्वेत श्याम नदियों का संगम प्रयाग सदियों से देवताओं, ऋषियों, मुनियों, साधु-सन्तों और गृहस्थों की तपोभूमि रही है। गंगा-यमुना और अदृश्य सरस्वती के संगम स्थल पर प्रत्येक वर्ष माघ मेले का आयोजन होता है। यह मेला सूर्य के मकर राशि में प्रविष्ट होने पर लगता है। भारत ही नहीं बल्कि विश्व की विभिन्न स्थानों से तीर्थयात्री कल्पवास और स्नान, ध्यान हेतु यहाँ आते हैं। तीर्थ दो प्रकार के होते हैं, कामद और मोक्षद जो तीर्थ कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं वे मोक्षद नहीं होते हैं और जो तीर्थ मोक्ष देने वाले हैं वे कामद नहीं होते हैं। कामनाओं से मुक्ति द्वारा ही मोक्ष प्राप्त होता है। कामनाओं की पूर्ति चाहने वालों को मोक्ष नहीं मिलता क्योंकि इनकी इच्छा भोग की ओर होती है। प्रयागराज ही एक मात्र संसार में ऐसा तीर्थ स्थल है। जो कामद भी है और मोक्षद भी विश्व के सारे तीर्थ इसके अधीन हैं। इसी कारण प्रयाग तीर्थराज है। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोकों में कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। इन सभी में प्रधान प्रयाग है जो मुक्ति और भुक्ति दोनों देता है।

देव दनुज किन्नर नर श्रेणी।

सादर मज्जहि सकल त्रिवेणी।। —श्री रामचरितमानस

प्रयाग तीर्थ की सेवा देवता, मुनि और दैत्य भी करते हैं। और वर्ष में माघ मास में जब सूर्य मकरस्थ होते हैं, प्रयाग में संसार के समस्त तीर्थ और देव, दनुज, किन्नर, नाग, गंधर्व एकत्रित होकर आदर पूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं।

प्रयाग महात्म्य के वृहद वर्णन शताध्यायी के तीसरे अध्याय में श्लोक आठवें से लेकर 13वें में यह मिलता है कि अन्यत्र स्थलों पर हुए पापकर्मों का नाश पुण्य क्षेत्रों का दर्शन करने से होता है। पुण्य क्षेत्रों में हुए पापों का क्षमन कुम्भकोण तीर्थ में होता है। कुम्भकोण में हुए पापों का नाश वाराणसी में होता है। वाराणसी में हुए पापों का क्षमन प्रयाग में होता है। प्रयाग में हुए पापों का क्षमन यमुना में यमुना में हुए पापों का क्षमन सरस्वती में सरस्वती में हुए पापों का नाश गंगा में और गंगा में हुए पापों का क्षमन त्रिवेणी स्नान से होता है। त्रिवेणी में हुए पापों का नाश प्रयाग में मृत्यु से होता है। प्रयाग को विराट पुरुष का मस्तक कहा गया है, सातों पुरियाँ (अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जैन और जगन्नाथपुरी) उस विराट पुरुष की सप्तधातु हैं, नदियाँ नाड़ी हैं, मेघ केश हैं और पर्वत हड्डियाँ हैं ऐसे विराट पुरुष का मस्तक प्रयाग है जहाँ त्रिवेणी है,

यत्रायजत् भूतात्मा पूर्वमेव पितामहः।

प्रयागमिति विख्यातं तस्माद् भरतसत्तम्।। महाभारत, वनपर्व 87/18-19

प्रयाग शब्द की व्युत्पत्ति यज्ञ धातु से मानी गयी है। महाभारत के वनपर्व के अनुसार इस तीर्थ का नाम प्रयाग इसलिए पड़ा क्योंकि यहाँ स्वयं ब्रह्म ने प्रकृष्ट यज्ञ सम्पन्न किया था प्रयाग का विस्तार बीस कोस तक माना गया है तथा अग्निपुराण और कूर्मपुराण में उसे पृथ्वी की जघन (जंघा) भी बताया गया है। 'जघन्य पापों से मुक्ति देने वाली पुण्यभूमि की मानो यह एक काव्यात्मक कल्पना है।'

सितासिते सरिते यत्र संगये तंत्राप्नुतासौ दिवमुत्पतन्ति।

ये वै तन्वं विसृजति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते।।<sup>2</sup>

\* शोध छात्र, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

भारत में नदियों में स्नान-ध्यान करने की परम्परा प्राचीनतम है, ऋग्वेद में कहा गया है कि जहाँ कृष्ण (काले) और श्वेत (स्वच्छ) जल वाली दो सरिताओं का संगम है, वहाँ स्नान करने से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो लोग वहाँ शरीर त्याग करते हैं, उनको मोक्ष प्राप्त होता है।<sup>9</sup> धर्मशास्त्रों के निर्देश के आधार पर प्रयाग में माघ मास मेले का आयोजन होता है। महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है कि जो व्यक्ति माघ मास में कठोर व्रत का आचरण करते हुए संयत भाव से स्नान करता है, उसके सभी पाप दूर हो जाते हैं। और उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। अग्निपुराण के अनुसार माघ माह में प्रयाग में दिन में तीन बार स्नान करने से सौ हजार गायों के दान के बराबर फल की प्राप्ति होती है। मत्स्य पुराण के अनुसार जो माघ मास में गंगा-यमुना के जल में स्नान करता है वह अनन्त काल तक जीवन के आवागमन चक्र से मुक्त रहता है। पद्मपुराण में कहा गया है कि जो व्यक्ति प्रयाग में माघ मास में अपनी पवित्र डुबकी लगाते हैं, उसको भविष्य में कष्ट का अनुभव नहीं होता है। वे विष्णुलोक में विराजते हैं। जो व्यक्ति प्रयाग में एक माह विराजते हैं वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि माघ मास में प्रयाग के पापनाशक जल में स्नान करने से ब्रह्महत्या जैसा पाप भी नष्ट हो जाता है और पुष्पफल की कोई गणना ही नहीं है।

**प्रयागे तु नरो यस्तु माघस्नानं करोति च।**

**न तस्य फलसंख्यास्ति शृणु देवर्षिसन्तम॥**

प्रयाग में सिर के केशों को मुण्डवाने से भी पापों से मुक्ति मिलती है। कहा गया है कि मनुष्य के सभी पाप केशों के जड़ का आश्रय लेकर टिके रहते हैं। इसके लिए मुण्डन की व्यवस्था की गयी है। मुण्डन का अर्थ है— दाढ़ी-मूँछ सहित सिर के केशों को मुण्डवाना।<sup>10</sup> इससे हम कह सकते हैं कि प्रयाग का इस क्षेत्र में विशेष महत्त्व है।

प्रयाग में बहुत से उपतीर्थ आते हैं। जिनमें वट (अक्षय वट) सर्वोच्च अग्निपुराण में कहा गया है— जो व्यक्ति वट के मूल में या संगम में मरता है वह विष्णु नगर में पहुँचता है।<sup>11</sup> यह वट प्रयागराज के त्रिवेणी संगम के पास किले के अन्दर स्थित है। आस्थावान हिन्दू इसको सनातन विश्ववृक्ष मानते हैं। वाल्मीकीय रामायण में अक्षयवट के स्थान पर श्यामवट का उल्लेख किया गया है। देश विदेश के तीर्थयात्री इसकी पूजा करने के लिए आते हैं जैन परम्परा के अनुसार आदि नाथ ऋषभदेव ने अक्षयवट के नीचे तप किया था 'शताध्यायी' के नवें अध्याय में कहा गया है, कि अक्षयवट के समीप स्वयं शिव ताण्डव नृत्य द्वारा वेणी माधव (भगवान विष्णु) को रिझाते हैं। ब्रह्मा की यज्ञ सिद्धि के बाद जब वेणिमाधव शिव के पास आते हैं तो देखते हैं कि शिव स्वयं माधव के नाम का जप कर रहे हैं। इस प्रकार 'हरिहर' की अद्भुत एकता त्रिवेणी संगम पर ही सम्भव हुई। पद्मपुराण में कहा गया है कि यदि कोई प्रयाग के अक्षयवट का दर्शन करता है, तो उस पवित्र वृक्ष के दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या जैसा पाप भी नष्ट हो जाता है।

**यत्र वटस्याक्षयस्य दर्शनं कुरुते नरः।**

**तेन दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति।**

भगवान विष्णु यहाँ माधव नाथ से सुखपूर्वक नित्य विराजते हैं। इनका दर्शन करने से मनुष्य महापापों से मुक्त हो जाता है।

**माधवाख्यस्तत्र देवःसुखं तिष्ठति नित्यशः।**

**तस्य वै दर्शनं कार्यं महापापैः प्रयुच्यते॥**

मगध के परवर्ती गुप्त वंशीय राजा आदित्यसेन के अपसड़ अभिलेख की पंक्ति संख्या-7 में अंकित श्लोक में कहा गया है कि उसके वंश के एक पूर्ववर्ती राजा कुमार गुप्त प्रयाग गये और वहाँ पुष्प-चढ़ाकर पूजन करने के बाद गोबर के उपलों (भूँसी) से जलायी गयी अग्नि (करीषाग्नि) में निमग्न हो गये।

**शौर्य-सत्यव्रतधरो यः प्रयाग-गतो धने।**

**अम्भसीय करीषाग्नौ मग्नः स पुष्प-पूजितः॥9॥10**

प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता अलेक्जेंडर कनिंघम प्रयाग के अक्षयवट के सम्बन्ध में लिखते हैं धर्मशास्त्री (ह्वेनसांग) द्वारा वर्णित वृक्ष निस्सन्देह प्रसिद्ध अक्षयवट है यह नष्ट न होने वाला बरगद का पेड़ ही है। जिसकी अब भी इलाहाबाद (अब प्रयागराज) में पूजा की जाती है। यह वृक्ष अब भूमिगत है। जो कि खम्भों वाले प्रांगण (या इमारत) के ओर है।<sup>17</sup>

किसी भी अन्य कुम्भ-स्थल से आस्था का ऐसा विशाल, और प्रेरणादायी विराट वृक्ष, दिखायी नहीं देता है। और न गंगा-यमुना जैसी प्रत्यक्ष तथा सरस्वती रूपी परोक्ष नदी की कल्पना की गयी है। त्रिवेणी मृत्यु और अमृत दोनों तत्त्वों के समीकरण से उत्पन्न ऐसी धारणा है जो मृत्यु पर मानसिक रूप से विजय प्राप्त करके जीवन में व्याप्त अमृत-तत्त्वों को सर्वसुलभ बनाने का संकल्प करती है।<sup>8</sup>

प्रयाग और अक्षयवट आज देश ही नहीं बल्कि विश्व में धार्मिक आस्था का केन्द्र बना हुआ है। यहाँ पर छः वर्ष में कुम्भ और 12 वर्ष में महाकुम्भ आयोजन होता है जो संसार के तीर्थ यात्रियों के लिए आने और अपने मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए अवसर प्रदान करता है। इसलिए हम ऐसे तीर्थराज प्रयाग के त्रिवेणी स्थल को कोटी-कोटी नमन करते हैं।

### सन्दर्भ-सूची

1. जगदीश गुप्त कुम्भ दर्शन।
2. पं० नारायण भट्ट त त्रिस्यलीसेतु (पृ. 3) के अनुसार यह आश्वलायन शाखा का पूरक श्रुति वचन है; जबकि वाचस्पति (1450-1480 ई०) त तीर्थचिन्तामणि (पृ. 47) में इसको ऋग्वेद का मन्त्र बताया गया है। इसको बहुधा ऋग्वेद, खिलसूक्त, 10/75 बताकर उद्धृत किया गया है, किन्तु पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा सम्पादित ऋग्वेद में यह मन्त्र उपलब्ध नहीं है।
3. डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास तृतीय भाग पृ. 1326
4. वही, पृ. 1315
5. वही, पृ. 1336
6. कुमार निर्मलेन्दु, प्रयागराज और कुम्भ सांस्कृतिक वैभव की अभिनव गाथा, पृ. 94
7. वही, पृ. 96.
8. जगदीश गुप्त, कुम्भ दर्शन।

\* \* \* \* \*

## मगध जनपद का ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं राज्यवंशों का एक अध्ययन

डॉ. मन्दु कुमार सिन्हा\*

**शोध संराश :-**मगध प्राचीन भारत के सोलह महाजनपद मे से एक था। उत्तर वैदिक काल तथा बौद्ध काल में यह सबसे अधिक शक्तिशाली जनपद था इसकी स्थिति स्थूल रूप से वर्तमान दक्षिण बिहार के प्रक्षेत्र में थी। आधुनिक बिहार राज्य के पटना और गया जिलो की प्रक्षेत्रफल इसमें शामिल थे इसकी राजगृह या गिरिव्रज राजधानी थी जो कि अपनी वैभव के लिए सर्वत्रा विख्यात था। इस जनपद को विस्तृत एवं समृद्ध बनाने के लिए इस जनपद के अनेक राजवंशों के नरेशों ने शासन किए। प्रागबुद्ध काल में वृहद्रथ और जरासंध यहाँ के प्रमुख शासन थे। वर्तमान में, मगध नाम से बिहार राज्य में एक प्रमण्डल “मगध प्रमण्डल” है।

**शब्दकुंज :-** जनपद, उत्तरवैदिक कल, प्रक्षेत्र, गिरिवृज, प्रागबुद्ध, समृद्ध, वैभव, सर्वत्रा, प्रमण्डल।

**प्रस्तावना :-**मगध का सर्वप्रथम उल्लेख आथर्ववेद और वायु पुराण में मिलता है। इससे जानकारी होता है कि उत्तर वैदिक काल तक मगध आर्य सभ्यता के प्रभाव क्षेत्र से बाहर था इसे कीकट, ब्रात्य आदि नामों से जाना जाता था। बौद्ध साहित्य अंगुत्तर निकाय में 16 जनपद का उल्लेख किया है, भारतीय इतिहास में षोडश महाजनपद के नाम से जाना जाता है जिसमें मगध-जनपद भी है। बुद्धकालीन समय में मगध एक शक्तिशाली राजतंत्रों में से एक था। यह प्रारम्भ में दक्षिण बिहार के प्रक्षेत्रफल में स्थित था जो कालान्तर में इस राज्य ने बहुत उन्नित की, इस राज्य के अनेक राज्यवंशों के नरेशों ने अनेक राज्यों के राजाओं को परास्त कर मगध राज्य की सिमाओं में विस्तार किया। अन्ततः यह उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद बन गया। यह गौरवमय इतिहास और राजीनिति एवं धार्मिकता का विश्व केन्द्र बन गया।

**विषय वस्तु :-** महाजनपद मगध की सिमायें, इतिहास, भौगोलिक एवं अनेक राज्यवंशों के तेजस्वी एवं प्रतापी नरेशों का मगध पर शासन निति एवं समृद्धी का संक्षिप्त उल्लेख है।

मगध महाजनपद की सीमा उत्तर में गंगा से दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक, पूर्व में चम्पा से पश्चिम में सोन नदी तक विस्तृत थी। मगध का सर्वप्रथम उल्लेख से सूचित होता है कि ‘विश्वस्फटिक’ नामक राजा ने मगध में प्रथम बार वर्णों की परंपरा प्रचलित करके आर्य सभ्यता का प्रचार किया था। ‘वाजसेनीय संहिता’ में मागधों या मगध के चारणों का उल्लेख है। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह थी। यह पाँच पहाड़ियों से घिरा नगर था। कालान्तर में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित हुई। मगध राज्य में तत्कालीन शक्तिशाली राज्य कौशल, वत्स व अवन्ति को अपने जनपद में मिला लिया। इस प्रकार मगध का विस्तार अखण्ड भारत के रूप में हो गया और प्राचीन मगध का इतिहास ही भारत का इतिहास बना।

मगध राज्य का विस्तार उत्तर में गंगा, पश्चिम में सोन तथा दक्षिण में जगलांछादित पठारी प्रदेश तक था। पटना और गया जिला का क्षेत्र प्राचीनकाल में मगध के नाम से जाना जाता था। मगध प्राचीनकाल से ही राजनीतिक उत्थान, पतन एवं सामाजिक-धार्मिक जागृति का केन्द्र बिन्दु रहा है। महाभारत एवं पुराणों से ज्ञात होता है कि चेदिराज वसु के पुत्र वृहद्रथ ने प्राग ऐतिहासिक काल में सर्वप्रथम मगध में अपना स्तन्त्रत राज्य स्थापित किया और वार्हद्रथ वंश की नींव डाली, जो इस वंश के मुख्य शासक थे। वृहद्रथ के पश्चात इसका पुत्र जरासंध अपने

\* प्रा. भ. एवं एशियाई अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया



समय का प्रतापी राजा था जो महाभारतकालीन कृष्ण का घोर शत्रु था। जरासंध मल्ल युद्ध में भीम पाण्डव द्वारा मारा गया। जरासंध के मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र रिपुंजय अथवा निपुज्जय शासक बना जो ज्यादा दिनों तक शासन नहीं कर सका, इसके मंत्री पुलिक ने रिपुंजय की हत्या कर दी और अपने पुत्र को शासक नियुक्त किया। रिपुजय की हत्या के साथ ही वार्हद्रथ वंश का अंत हो गया।

वार्हद्रथ वंश के समाप्त होने के पश्चात रिपुंजय के मंत्री पुलिक के पुत्र ने भी बहुत अधिक समय तक शासन नहीं किया। शीघ्र ही भट्टिय नामक एक वीर महत्वाकांक्षी सामंत ने पुलिक के पुत्र का वध कर दिया और अपने पुत्र बिम्बसार को मगध के सिंहासन पर आसीन किया इस बिम्बसार को ही **हर्यक वंश** का संस्थापक माना जाता है। मगध बुद्ध के समकालीन एक शक्तिशाली व संगठित राजतन्त्र था गौतम बुद्ध के समय में मगध में बिंबिसार और तत्पश्चात् उसके पुत्र अजातशत्रु का राज था। इस समय मगध की कोसल जनपद से बड़ी अनबन थी यद्यपि कोसल-नरेश प्रसेनजित की कन्या का विवाह बिंबिसार से हुआ था। इस विवाह के फलस्वरूप काशी का जनपद मगधराज को दहेज के रूप में मिला था। यह मगध के उत्कर्ष का समय था और उसके पश्चात सदियों में इस जनपद की शक्ति बराबर बढ़ती रही। अजातशत्रु के शासन काल में प्रथम बौद्ध का संगीति हुआ था। बौद्ध ग्रंथ महावंश के अनुसार अजातशत्रु के पश्चात उसका पुत्र उदयभद्र मगध का शासक बना। उदयभद्र ने ही कुशुमपूरा या पाटलिपुत्र की स्थापना की। उदयभद्र के पश्चात आनरुद्ध, मुण्डक और नागदसक तीन शासकों ने क्रम से मगध पर शासन किया। ये सब पितृहन्ता थे। नागदासक हर्यक वंश का अंतिम शासक हुआ जिसको उसके आमत्यों एवं मंत्रियों ने षडयन्त्र द्वारा सिंहासन से उतार दिया और उसके स्थान पर तत्कालीन आमात्य शिशुनाग को सिंहासन पर बैठा दिया।

आमात्यों मंत्रियों ने नागदशक को गद्दी से उतार कर शिशुनाग को मगध की गद्दी पर आसीन किया और मगध में **शिशुनाग वंश** की स्थापना हुआ। शिशुनाग इस वंश का अत्यंत प्रतापी राजा था उसने अपने शासन काल में वैशाली को मगध की राजधानी बनाया। शिशुनाग के पश्चात उस का पुत्र कालाशोक या काकवर्ण, शासक था। कालाशोक वैशाली के स्थान पर पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन इसी के शासन काल में हुआ था कालाशोक के पश्चात उसके दस पुत्रों भद्रसेन, कोरण्डवर्ग मडूर, सर्वज्ञ जलिक उभाक, संजय, कोरण्य, नंदीवर्धन और पंचामम ने शासन किया।

शिशुनाग वंश के पश्चात मगध पर नन्द वंश के शासकों का अधिकार हो गया। महापदम् **नन्द वंश** का संस्थापक तथा प्रथम राजा था। बौद्ध ग्रंथों में उसे उग्रसेन अर्थात् भयानक सेना का स्वामी कहा गया है। भागवत पूरण टिका से ज्ञात होता है कि महापदम् नन्द के पास बहुत बड़ी सेना थी। महापदम् नन्द के पश्चात उसके आठ उत्तराधिकारी ने मगध पर शासन किया। 1. पण्डुक 2. पण्डुमति 3. भूतपाल 4. राष्ट्रपाल 5. गोविंद शोक 6. दास सिद्धक 7. कैवर्त 8. धननन्द। धननन्द नन्दवंश का अंतिम तथा सर्वधिक प्रसिद्ध शासक था इसी के शासन काल में सिकन्दर ने भारत पर अक्रमण किया था सिकन्दर के भारत से जाने पश्चात मगध सम्राज्य में आशांति एवं अव्यस्था फैल गई थी परिणाम स्वरूप चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य की सहायता से मगध सत्ता पर अधिकार कर लिया।

चौथी शती ई.पू. में मगध के शासक धनानन्द नन्दवंश का अन्तिम शासक थे। इनके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अशोक के राज्यकाल में मगध के प्रभावशाली राज्य की शक्ति अपने उच्चतम गौरव के शिखर पर पहुंची हुई थी और मगध की राजधानी पाटलिपुत्र भारत भर की राजनीतिक सत्ता का केंद्र बिंदु थी। नन्दवंश के पश्चात मगध की सत्ता पर **मौर्यवंश** का अधिकार हो गया। मौर्यवंश के शासकों ने लगभग 184 ई० पू० तक शासन किया। मौर्यवंश के प्रमुख शासक चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार, अशोक, जालौक, सम्प्रति, दशरथ, वृहस्पति (शालिशूक) वृहद्रथ था। वृहद्रथ इस वंश का अंतिम शासक हुआ अपने मंत्री पुष्यमित्र के अमांत्रण पर जब वह सेना का निरीक्षण कर रहा था तब पुष्यमित्र शुंग ने उसका वध कर दिया और मगध पर शुंग वंश का अधिकार हो गया।

पुष्यमित्र शुंग ने अंतिम मौर्य शासक वृहद्रथ की 184 ई० पू० हत्या कर **शुंग वंश** का स्थापना किया। भारतीय साहित्य में शुंगों को ब्राह्मण स्वीकार किया है। पुष्यमित्र शुंग के पश्चात अग्निमित्र सुज्येष्ठ, वसुमित्र, अम्बक, पुलिन्दक, घोष, वज्रमित्र, क्रमशः शासक हुए। वज्रमित्र के पश्चात भागवत, देवभूति शासक हुए। देवभूति अथवा देवभूत शुंगवंश का दसवाँ तथा अंतिम राजा था। कहा जाता है कि वह अत्यन्त विलासी शासक था इसी कारण

इसके आमात्य वासुदेव जो की कण्व वंश का था ने इसकी हत्या कर दी। इसकी हत्या के साथ ही शुंग वंश का अंत हो गया, और मगध पर कण्व वंश का अधिकार हो गया है।

वासुदेव कण्व ने शुंग वंश शासक देव भूति कि हत्या कर 73 ई० पू० में **कण्व वंश** कि स्थापना की। पुराणों के अनुसार कण्व वंश के चार राजाओं ने लगभग 45 वर्षों तक शासन किए, ये शासक थे, वासुदेव कण्व, भूमि मित्र कण्व, नारायण कण्व तथा सुशर्मा कण्व थे। कण्ववंशीय शासकों ने 27 ई० पू० तक शासन किए।

सुशर्मा कण्व के सेनापति सिमुक ने 27 ई० पू० में सुशर्मा कण्व का वध कर **सातवाहन वंश** की नींव डाली। कण्व वंश के पश्चात मगध पर शासन करने वाले आन्ध्र-सातवाहन कौन और किस जाति के थे? इसके विषय में विद्वानों का अलग-अलग मत है। सिमुक शतकर्णि अथवा सिन्धुक शतकर्णि कृष्ण, शतकर्णि के पश्चात गोतमीपुत्र शतकर्णि, वसिष्ठपुत्र, श्री पुलमावी, यज्ञश्री शतकर्णि, इस वंश के प्रमुख शासक हुए जिन्होंने लगभग 250 ई० तक शासन किए। यज्ञश्री शतकर्णि सातवाहन वंश का अंतिम महत्वपूर्ण शासक था इसेक पश्चात कोई ऐसा शासक नहीं हुआ जो अपने साम्राज्य को सुरक्षित रख सकता था। परिणाम यह हुआ कि इक्ष्वाकु अमीर तथा पल्लव लोगों ने सातवाहन साम्राज्य के विभिन्न-विभिन्न भागों पर अपना अधिकार करना प्रारम्भ किया और तिसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सातवाहनों की केन्द्रीय शक्ति समाप्त हो गई। इस समय गुप्त वंश का भी उदय हो गया था। मगध का महत्त्व इसके पश्चात् भी कई शदियों तक बना रहा और गुप्त काल के प्रारम्भ में काफी समय तक गुप्त साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र ही में रही। जान पड़ता है कि कालिदास के समय (संभवतः 5वीं शती ई.) में भी मगध की प्रतिष्ठा पूर्ववत् थी क्योंकि रघुवंश में इंदुमती के स्वयंवर के प्रसंग में मगधनरेश परंतप का भारत के सब राजाओं में सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है। इसी प्रसंग में मगध-नरेश की राजधानी को कालिदास ने बताया है।

गुप्त साम्राज्य की अवनति के साथ-साथ ही मगध की प्रतिष्ठा भी कम हो चली और छठी-सातवीं शताब्दियों के पश्चात् मगध भारत का एक छोटा सा प्रांत मात्र रह गया। मध्यकाल में यह बिहार नामक प्रांत में विलीन हो गया और मगध का पूर्व गौरव इतिहास का विषय बन गया। जैन साहित्य में अनेक स्थलों पर मगध तथा उसकी राजधानी 3 राजगृह (प्राकृत रायगिह) का उल्लेख है। कालान्तर में मगध का उत्तरोत्तर विकास होता गया और मगध का इतिहास (भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विकास के प्रमुख स्तम्भ के रूप में) सम्पूर्ण भारतवर्ष का इतिहास बन गया। बिम्बिसार ने हर्यक वंश की स्थापना 544 ई. पू. में की। इसके साथ ही राजनीतिक शक्ति के रूप में बिहार का सर्वप्रथम उदय हुआ। बिम्बिसार को मगध साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक राजा माना जाता है। बिम्बिसार ने गिरिव्रज (राजगीर) को अपनी राजधानी बनायी। इसने वैवाहिक सम्बन्धों (कौशल, वैशाली एवं पंजाब) की नीति अपनाकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। यह 'मगध' नामक क्षेत्र मध्य बिहार का एक भौगोलिक क्षेत्र है। राजनीतिक एवं प्रशासनिक मानचित्र में यह मुख्य तः मगध प्रमंडल के रूप में है। इस मगध प्रमंडल के जिले हैं- गया, औरंगाबाद, जहानाबाद, अरवल, नवादा है। प्रमंडल का मुख्यालय गया में ही है और यही मगधांचल का सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा व्यावसायिक केन्द्र है। बिहार राज्य और नेपाल के तराई क्षेत्र में बोली जाने वाली बिहारी भाषाओं में मागधी को मागधी प्राकृत का आधुनिक प्रतिनिधि माना जाता है।

**ऐतिहासिक स्थिति :** हर्यक वंश के पहले मगध का इतिहास बहुत स्पष्ट नहीं है। मगध का उल्लेख पहली बार अथर्ववेद में मिलता है। ऋग्वेद में यद्यपि मगध का उल्लेख नहीं मिलता है तथापि कोकट (किराट) नामक जाति और इसके शासक प्रेमचन्द्र का उल्लेख मिलता है। इसकी पहचान मगध से की जाती है। मगध और व्रात्यों का उल्लेख वैदिक साहित्य में उपेक्षा और अवहेलना की दृष्टि से किया गया है। अथर्व संहिता के व्रात्य भाग में ब्राह्मण सीमा के बाहर रहने वाले व्रात्य को पुंश्चली या वेश्या और मगध से सम्बन्ध कहा गया है। वेदों में मगध के ब्राह्मणों को निम्न श्रेणी का माना गया है क्योंकि उनके संस्कार ब्राह्मण विधियों के अनुसार नहीं हुए थे, वैदिक साहित्य से मगध की इतिहास की स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। इसमें प्रमगन्ध के अतिरिक्त मगध के अन्य किसी शासक का उल्लेख नहीं हुआ है। मगध के प्राचीन इतिहास की रूपरेखा महाभारत तथा पुराणों में मिलती है। इन ग्रन्थों के मुताबिक मगध के सबसे प्राचीन राजवंश का संस्थापक बृहद्रथ था। वह जरासंध का पिता एवं वसु वैश्य-उपरिचर का पुत्र था।

**भौगोलिक स्थिति :** यह राज्य प्राकृतिक दृष्टि से काफी सुरक्षित था। इसकी पहली राजधानी गिरिव्रज या राजग्रह, चारों ओर से पहाड़ियों से घिरी हुई थी। अतः इन पर आसानी से दुश्मनों का आक्रमण नहीं हो सकता था। बाद की राजधानी पाटलीपुत्र गंगा और सोन नदियों के संगम पर बसा हुआ था तथा इसके इर्दगिर्द अन्य नदियाँ भी थी। अतः इसे बाहरी आक्रमण का खतरा नहीं रहता था। इस प्रकार दुश्मनों के आक्रमण की चिन्ता से मुक्त होकर मगधवासी अपने विकास एवं प्रसार का निरन्तर प्रयास करते रहे। मगध का वातावरण अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र था। चूंकि इसे अनार्यो का देश माना जाता था। इसलिए यहां ब्राह्मण व्यवस्था का कट्टरपन नहीं था। अनार्य तत्वों की बहुलता के कारण आर्यों का प्रभाव यहां कम था। यहां के लोगों में प्रसार की प्रवृत्ति और उत्साह उन राज्यों की अपेक्षा अधिक थी। जो बहुत दिनों से आर्यों के प्रभाव में थे। इन बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों का एक परिणाम विभिन्न प्रादेशिक और लोकप्रिय भाषाओं का विकास भी था। संस्कृति उस समय तक श्रेष्ठ बुद्धिजीवियों और पुरोहितों की भाषा बनकर रह गयी थी। इस कारण जन भाषाओं की आवश्यकता थी। इस कारण उस समय संस्कृत पर आधारित विभिन्न लोकप्रिय भाषाओं की उत्पत्ति हुई। संस्कृत का एक अधिक लोकप्रिय स्वरूप प्राकृत भाषा बनी। इसी कारण पाली और मगधी भाषा जिसमें महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेश दिये, इस समय में विकसित और लोकप्रिय हुई। आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव भारतीयों के धार्मिक विचारों पर आया। नवीन व्यापारी औद्योगिक मजदूर वर्ग तथा उपजातियों के निर्माण ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती देने वाली परिस्थितियों का निर्माण किया। नवीन जैन और बौद्ध धर्मों की उत्पत्ति और विकास का एक कारण बदलती हुई सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ थी।

#### अध्ययन का उद्देश्य :

- मगध जनपद के स्वरूप और इसके प्रशासन को समझना।
- इस काल की कला और स्थापत्य का ज्ञान प्राप्त करना।
- मगध जनपद के विस्तार से सम्बन्धित विभिन्न मतों के बारे में जानना।
- मगध जनपद के भौगोलिक स्थिति के बारे में जानना।
- मगध जनपद के ऐतिहासिक स्थिति के बारे में जानना।
- मगध का उत्कर्ष एवं उन्नति कैसे हुआ।
- मगध के उत्कर्ष में वहां कि भौगोलिक एवं प्राकृतिक सम्पदा का क्या योगदान रहा।
- मगध के मगध के शासकों की नीतियाँ एवं कार्यशैली क्या भूमिका रही।

**साहित्य सर्वेक्षण :** साहित्यिक स्रोत में शतपथ ब्राह्मण, पुराण, रामायण, महाभारत, अंगुत्तरनिकाय (बौद्धसाहित्य) दीर्घनिकाय, विनयपिटक, जैनरचना, भगवती सूत्र आदि की धार्मिक रचनाएँ, विदेशी यात्रियों, मेगास्थनीज, फाहियान, इत्सिंग और युयान त्यांग वृतांत, कौटिल्य की रचना अर्थशास्त्र आदि रचनाएँ भी बिहार के प्राचीन इतिहास को स्पष्ट करने में सहायक की भूमिका निभाते हैं। उत्तर भारत में विशाल संगठित राज्यों का अभ्युदय छठी शताब्दी ई० पूर्व हो चुकी थी। अंगुत्तर निकाय में दस गणराज्यों और सोलह महाजन पदों की चर्चा है इनमें तीन महाजन पद—अंग, मगध और लिच्छवी गणराज्य बिहार में ही स्थित थे। मगध महाजन पद में पटना, नालन्दा और गया जिले के क्षेत्र आते थे। मगध—महाजनपद बाद में सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया।

**शोध प्रविधि :** प्रस्तुत शोध—लेख में द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से ऐतिहासिक पुरातात्विक, सैद्धांतिक विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं नवीन व्यवहारिक पद्धतियों को अपनाते हुए शोध—लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु शोध—लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु आवश्यक सामग्री के लिए मगध जनपद का ऐतिहासिक एवं भौगोलिक अध्ययन से संबंधित पुस्तकालयों इंटरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध साधनों के अलावा मध्यकालीन तथा आधुनिक संदर्भ—ग्रंथों से एकत्र किया गया है। इन संदर्भ पर आधारित पुस्तकों के अलावा विभिन्न आयोगों के प्रकाशनों आत्मलेखों, समाचार पत्र—पत्रिकाओं, ऐतिहासिक तथा पुरातात्विक काव्य ग्रंथों इत्यादि के लेखन सामग्री संग्रहित कर प्राचीन भारत के सामाजिक—आर्थिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

**निष्कर्ष :** निष्कर्ष के रूप यह कहा जा सकता है कि ई0पू0 छठी सदी की एक प्रमुख विशेषता भारत की आर्थिक सम्पन्नता और अनेक नगरों का निर्माण भी था। मगध कोशल अवन्ति व वत्स चार प्रमुख राज्य थे। इसके अतिरिक्त अनेक गणराज्य भी थे, पर इन सब में मगध का इतिहास बड़ा ही रोचक है। सोलह महाजनपदों में से यही राज्य ऐसा था जिसके राजनीतिक प्रभुत्व का लगातार विकास होता चला गया और देखते ही देखते मगध के इस छोटे राज्य ने एक साम्राज्य का रूप धारण कर लिया। मौर्यों के काल में तो यह अपने शिखर तक पहुंच चुका था।

#### सन्दर्भ—सूची

1. शर्मा, बैजनाथ, हर्ष एण्ड हिज टाइम्स, वाराणसी, 1970
2. मुकर्जी, आर0के0, हर्ष, ऑक्सफोर्ड, 1926
3. त्रिपाठी, आर0 एस0, प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1998
4. पुसालकर, ए0 डी0 (सम्पा0), दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, बम्बई 1957
5. त्रिपाठी, आर0 एस0, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, वाराणसी, 1937
6. चटर्जी, गौरीशंकर, हर्षवर्धन, इलाहाबाद, 1938
7. पनिकर, के0 एम0, श्री हर्ष ऑफ कन्नौज, बम्बई, 1932
8. मजूमदार, रमेशचन्द्र, प्राचीन भारत, दिल्ली, 1973
9. महाजन, वी.डी., प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2008
10. पाण्डेय, विमल चन्द्र, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 2, इलाहाबाद, 1998
11. पाठक, विशुद्धानंद, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, लखनऊ, 1990
12. श्रीवास्तव, के0 सी0, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहाबाद, 2007
13. मजूमदार, आर0 सी0, दि क्लासिकल एज, बम्बई, 1954

\* \* \* \* \*

## बिहार की दलित समस्या

डॉ. मनीष कुमार सिंह\*

‘दलित’ शब्द वर्तमान में राजनीतिक अवधारणा बन गयी है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1910 के दशक से हरिजनों के लिए लगातार किया जाता रहा है। ‘दलित’ से समाज के सबसे निम्नतम एवं पिछड़े लोगों का बाध होता है। समाज में इस वर्ग के सामाजिक कल्याण और उत्थान की धारणा का इतिहास दीर्घकालीन और अनवरत रहा है। इस वर्ग के लोगों को मुख्यधारा में जोड़ने का प्रयास वैदिक काल के पूर्व से ही चला आ रहा है।

दलितों की गुलामी की शुरुआत हिन्दू समाज की उत्पत्ति के साथ हुई, जिस पर आधुनिकीकरण का आज तक विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। संविधान के हस्तक्षेप के बावजूद दलितों पर अत्याचार के प्रतिवेदन प्राप्त होते रहते हैं। अभी भी दलितों के आवास, व्यवसाय, शैक्षणिक उन्नति, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्था सामान्य आबादी से अलग रहे हैं। इसके बीच की खाई अभी तक पूर्णरूपेण पटी नहीं है।

लाख कोशिश के बावजूद दलितों की अभिवृत्ति में उतनी कमी नहीं आई है। हजारों वर्षों से दलित शोषण वंचन और उत्पीड़न के शिकार रहे हैं। इन्हें कट्टर हिन्दुत्व में शामिल हो जाा दलितों को सम्मान एवं समानता का भ्रम देता है। इस प्रक्रिया में ये अपनों से तो कट ही जाते हैं, स्वयं ऊँचे में भी स्वीकार्य नहीं हो पाते। अपने भीतर के जातिवाद एवं ब्राह्मणवाद का विश्लेषण और उन्मूलन अगर दलित आंदोलन नहीं करता तो इसकी सार्थकता में संदेह होने लगता है।

यद्यपि दलितों की दयनीय दशा को दूर करने के प्रयास समय-समय पर होते रहे, किन्तु बुद्ध से लेकर नानक और दयानन्द तक को इस बिन्दु पर संपूर्ण सफलता मिली, फिर भी अनेकों वर्षों के प्रयास से इनमें जागरूकता एवं राजनीतिक सहभागिता की वृद्धि हुई। बीसवीं शताब्दी में महात्मा गांधी और अम्बेडकर ने अलग-अलग दिशाओं में दलित समस्या के समाधान के लिए संघर्ष किया। इसके पूर्व 18वीं सदी से ही ईसाई मिशनरियों द्वारा आधुनिक भारत में सोचने व विचारने का एक नया मार्ग प्रशस्त किया जा रहा था। इन्होंने दलितों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, आपसी सौहार्द आदि पर बल दिया, परन्तु इनका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रसार-प्रचार रहा।

19वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय पहले आधुनिक सुधारक थे जिन्होंने जाति प्रथा और जाति भेदभाव के उन्मूलन के लिए ‘ब्रह्म समाज-’ के माध्यम से कार्य किए परन्तु परिणाम उत्साहवर्धक नहीं निकला। आर्य समाज के माध्यम से दयानन्द सरस्वती ने भी दलितों के समस्याओं का उन्मूलन के लिए काफी कार्य किया परन्तु इनका प्रयास भी अपेक्षित परिणाम नहीं दे सका।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कई मानवीय एवं विवेकशील परम्पराएं कायम की गयी जिससे दलितों के कल्याण का कार्य स्वतंत्र शक्ति के रूप में हो सका। गोपाल कृष्ण गोखले, जी० के० देवधर, एन० एम. जोशी और यू० एस० श्रीनिवास शास्त्री जैसे सामाजिक और राजनीतिक नेताओं ने दलितों के सामाजिक समस्याओं के निवारण के लिए अवरत प्रयास किया। 1900 ई० में राष्ट्रीय सामाजिक सभा एवं 1902 ई० में अजमदाबाद कांग्रेस सत्र ने दलितों के भौतिक, सामाजिक शिक्षोत्थान पर प्रकाश डाला। इन सबों का परिणाम यह हुआ कि बिहार राज्य में दलित सुधार आंदोलन की शुरुआत हुई।

1917 ई. में दलित उत्थान के एक महत्वपूर्ण पुरोधा के रूप में महात्मा गांधी का चंपारण की धरी से आविर्भाव हुआ। चंपारण का दलित आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में अद्वितीय महत्व रखता है। यहीं से गांधी जी ने आर्थिक असमानता को समाप्त करने और समाज के शुद्धिकरण के लिए कार्य करना शुरू किया। गांधी जी के चंपारण आगमन ने दलितों को जागृत किया एवं इनमें नैतिक आस्था पैदा किया, जो रचनात्मक एवं उद्देश्यपूर्ण क्रांति के सफलता एवं प्रगति के लिए जरूरी था। इन्होंने दलितों से कहा कि इन्हें अपना रास्ता खुद बनाना चाहिए जैसा रास्ता उच्च जाति के लोगों ने बनाया है।

\* स्नातकोत्तर विभाग, पूर्णिया, बिहार

चंपारण में गांधी जी ने देखा कि दलितों का बड़े पैमाने पर शोषण अंग्रेज बागान मालिकों द्वारा किया जा रहा है। गांधी जी ने विनम्रता पूर्वक इसकी जांच की मांग की, परंतु सरकार द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया। गांधी जी द्वारा सरकारी आदेश की अवहेलना करते हुए निजी स्तर पर दलितों एवं रैयतों की स्थिति की जांच के लिए साक्षात्कार लेने की शुरुआत की गयी। बाद में सरकार द्वारा भी इसे स्वीकार कर लिया गया। इसके परिणामस्वरूप चंपारण कृषि विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसके तहत तीन कठिया व्यवस्था की समाप्ति, रैयतों एवं दलितों को अंग्रेज शोषण से मुक्त कराने का प्रयास किया गया। इतना ही नहीं गांधी जी ने दलितों की स्थिति में सुधार के लिए उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, आपसी सौहार्द बढ़ाने पर विशेष बल दिया।

इसी समय महाराष्ट्र में डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में महारों ने अपनी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में सुधार के लिए संघर्ष आरंभ किया। देश के अन्य भागों में इनसे प्रेरणा लेकर दलितों ने अपने मुक्ति के लिए आंदोलन चलाया, जिसका प्रभाव विहार पर भी पड़ा। डॉ. अम्बेडकर द्वारा दलितों को स्थिति में सुधार के लिए हिन्दू धर्म त्याग का और बौद्ध धर्म अपाने पर बल दिया गया, जिसका बिहार के दलित नेता जगजीवन राम ने विरोध किया। इनका मानना था कि 'दलित हिन्दू हैं, हिन्दू में जन्म लिए हैं और हिन्दू में रहकर ही मरेंगे।' इन मतभिन्नता के कारण बिहार के दलित डॉ. अम्बेडकर से इतना प्रभावित नहीं हुए, परन्तु इनके विचार ने यहां के दलितों में भी एक नई चेतना जागृत की।

सरकारी स्तर पर भी दलितों की स्थिति में सुधार के लिए कई कार्य किए गए। 1037 ई0 में श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व में गठित बिहार मंत्रिमंडल ने दलितोत्थान के लिए कई रचनात्मक कदम और कई सुधारात्मक कानून लागू करने की चेष्टा की। कांग्रेस ने बिहार सेफ्टी अधिनियम तथा मंत्रिपरिषद में कार्यपालिका सम्बन्धी कानून पारित कर दलितों एवं पिछड़ों की सामाजिक आर्थिक स्थिति विकसित करने के लिए कांग्रेस मंत्रिमंडल ने इसके लिए 3 समितियों का गठन किया। जिनमें सरकारी तथा गैर सरकारी लोगों को सदस्य बनाया गया। मंत्रिमंडल से किसान सभा के विरोध के बाद भी बिहार काश्तकारी संशोधन अधिनियम पारित किया गया।

इन सभी सरकारी प्रयासों के परिणाम स्वरूप काफी संख्या में दलितों ने अपनी स्थिति सुधारने में सफलता प्राप्त की, लेकिन अभी भी अधिकांश दलित सरकारी संरक्षण से वंचित हैं तथा सरकारी अवसर का लाभ वे ही दलित बार-बार उठा रहे हैं जो पहले से ही लाभान्वित हैं। लगता है दलित मुक्ति आंदोलन का मूल्यांकन इसकी ऐतिहासिक एवं सामाजिक भूमिका के आधार पर समग्रता में किया जाना चाहिए। इसलिए दलितों के समय मुक्ति के लिए इतिहास और भूगोल-अतीत और वर्तमान, विस्तार एवं गहराई के सभी मोर्चों पर लड़ने की आवश्यकता है। इसके अखिल भारतीय स्वरूप को समेटने के लिए ऐसे दसियों शोध पत्रों की जरूरत है।

#### संदर्भ-सूची

1. यादव, राजेन्द्र-हंस' सत्ता विमर्श और दलित', नई दिल्ली, अगस्त, 2004, पृ. 13
2. शर्मा, आर. एस., शुद्राजइन एंशियेंट इंडिया, मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली, 1958, पृ. 27
3. अग्रवाल, आर0 सी0, भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन, एस0 चन्द्र एंड कं0 लि0 नई दिल्ली, 1998, पृ. 32
4. कांबले, जे. आर., राइज एंड अवैकनिंग ऑफ डिप्रेसड क्लासेस इन इंडिया, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979, पृ. 124
5. गोवर, बी. एल. एंड यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन, 1907 से वर्तमान समय तक, एस. चंद एंड कं. लि. नई दिल्ली, 2003, पृ. 271, 273
6. चंद्र, विपिन, मुदुला मुखर्जी एवं आदित्य मुखर्जी-भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1995, दसवां संस्करण, पृ. 174
9. अंबेडकर, बी. आर. : व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैवन टू द अनटचेबल्स, बॉम्बे, 1946, द्वितीय संस्करण, पृ. 57
10. दत्त, के. के., फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, भाग-2, पृ. 324
11. दत्त, के. के., राइटिंग इन स्पिचेज ऑफ महात्मा गांधी रिलेटेड टू बिहार, 1917-1942, पटना, 1960, पृ. 171
11. मौर्य, डॉ. ओम प्रकाश, आधुनिक भारत के निर्माता, बाबू जगजीवन राम, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, 1997, पृ. 37
12. पासवान, योगेश्वर, इकोनॉमिक डेवलपमेंट ऑफ शेड्यूल कास्ट इन बिहार दरभंगा, 1995, भाग 1, पृ. 79
13. खेर, डॉ. स्वर्णलता, सोसियो इकोनॉमिक्स इंपैक्ट ऑफ लैंड रिफॉर्म इन बिहार, पटना, दरभंगा, 1955, भाग-1, पृ. 147

\* \* \* \* \*



## भारत की प्राच्य संस्कृति में उच्च पुरापाषाण युगीन संस्कृति का योगदान

**डॉ. नीरज बाजपेयी\***

प्राकृतिक संपदा एवं आर्थिक दृष्टि से समृद्ध उत्तर मध्य भारत का यह भूक्षेत्र ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उत्तर मध्य भारत को प्रायः विंध्य क्षेत्र के नाम से भी अभिहित किया गया है। प्रागैतिहासिक काल के शिलाचित्र के लिए 'भीमबेटका' नामक पुरास्थल इसी क्षेत्र में स्थित है जहाँ पर सांस्कृतिक विविधता वाली अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं जिनका अध्ययन करने के पश्चात् हम अतीत के पुनर्निर्माण के लिए कुछ महत्वपूर्ण संकेत पाते हैं। पुरातात्विक सामग्रियों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इन जनजातियों का अध्ययन आवश्यक है। भारतीय पुरातात्विक अनुसंधान की दृष्टि से यह क्षेत्र विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह संपूर्ण क्षेत्र प्रायः पहाड़ी तथा सीढ़ीनुमा भू-आकृति से युक्त है जो उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पूर्व की ओर क्रमशः ऊँचा हो गया है।<sup>1</sup> भौगोलिक विविधता वाला यह क्षेत्र दक्कन तथा उत्तर भारत के मध्य एक अंतस्थ क्षेत्र की तरह स्थित है।

गंगा तथा यमुना नदियाँ इस क्षेत्र की उत्तरी सीमा का निर्धारण करती हैं तथा दक्षिण में यह विंध्य की पहाड़ियों से गिरा हुआ है। इसकी पश्चिमी सीमा पर भिंड, ग्वालियर, दतिया, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) जिले में स्थित है। तथा दक्षिणी सीमा को मध्य प्रदेश के सागर, गुना, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, सतना, रीवा, सीधी और अंबिकापुर जिले निर्धारित करते हैं। बिहार के शहाबाद तथा पलामू जिले इस क्षेत्र की पूर्वी सीमा पर स्थित हैं। सोन, अदवा, कर्मनाशा, चंद्रप्रभा, बेलन, टोंस, केन, चंबल, पयस्विनी तथा इनकी सहायक नदियाँ इस क्षेत्र के अपवाह तंत्र को नियंत्रित करती हैं। प्रागैतिहासिक पुरातत्व की दृष्टि से इस क्षेत्र में टोंस की सहायक बेलन तथा गंगा की सहायक सोन नदियों की घाटियाँ विशेष महत्व रखती हैं।

बीसवीं शताब्दी के विगत<sup>3</sup> दशकों में इस क्षेत्र में संपादित प्रागैतिहासिक अनुसंधान ने भारत की पाषाण युगीन संस्कृतियों के अध्ययन में न केवल एक नया अध्याय जोड़ा है अपितु इस अध्ययन के फलस्वरूप विंध्य क्षेत्र में मानव जीवन की क्रमबद्ध कहानी का भी उद्घाटन हुआ है। इस प्रागैतिहासिक अनुसंधान का क्षेत्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर जी0 आर0 शर्मा को दिया जाना चाहिए जिनके स्तुति प्रयास से इस क्षेत्र को न केवल पुरातात्विक अध्ययन के क्षेत्र में विशेष महत्व मिला अपितु भावी पीढ़ी के अनुसंधानकर्ताओं की प्रेरणा तथा सम्यक दिशा निर्देश भी प्राप्त हुआ।

इस विश्वविद्यालय के अतिरिक्त जिन संस्थाओं ने प्रागैतिहासिक संस्कृति की खोज में अपना योगदान दिया है उनमें बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, बनारस, बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट, ऑस्ट्रेलिया प्रमुख है। उपर्युक्त अनुसंधानों के फलस्वरूप बेलन<sup>3</sup> नदी घाटी में 18 किलोमीटर तथा सोन<sup>4</sup> नदी घाटी में 30 किलोमीटर मोटे नूतन कालीन आरंभिक चीजें प्रकाश में आईं। जिनसे निम्न पुरापाषाण काल से लेकर मध्यपाषाण काल तक की मानव संस्कृति के विकास का रिकॉर्ड सुरक्षित है।

**उच्च पुरापाषाण युगीन संस्कृति का इतिहास**—उच्च पुरापाषाण काल प्राचीन पुरा पाषाण युगीन संस्कृति का अंतिम चरण है। इस काल में मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। पाषाणकालीन उपकरणों के निर्माण की तकनीकी प्रगति तथा मानव के शारीरिक एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से यह युग

\* प्राचार्य, रामकृष्ण परमहंस पी.जी. कॉलेज, कैसरगंज, बहराइच

काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उत्तर मध्य भारत की उच्च पुरापाषाण युगीन संस्कृति की विवेचना से पूर्व इसके इतिहास की तह तक जाना नितांत अनिवार्य है।

प्रागैतिहासिक अनुसंधान के क्षेत्र में यह एक लंबे समय तक विचार विमर्श का विषय रहा कि भारत में पाषाण युगीन संस्कृतियों के विकास में अफ्रीका की मॉडल प्रभावी रहा कि पश्चिमी यूरोपीय मॉडल। सन् 1961 में प्रथम एशियाई पुरातत्व सम्मेलन में उपस्थित पुराविदों ने इस बात पर विचार किया और निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत में इस संस्कृतियों का विकास अफ्रीकी मॉडल के अनुरूप हुआ।

इसका प्रमुख कारण था कि तत्कालीन उच्च पुरापाषाणिक अवशेषों का अभाव था। प्रोफेसर एच० डी० संकलिया ने 1962 में अपनी पुस्तक प्री-हिस्ट्री एंड प्रोटो-हिस्ट्री ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान के प्रथम संस्करण में उच्च पुरापाषाण शब्द का प्रयोग तक नहीं किया था। विगत शताब्दी के 70 और 80 के दशक में भारत के विभिन्न भागों में संपादित पुरातात्विक अवशेषों के फलस्वरूप उच्च पुरापाषाणिक उपकरण अनेक पुरास्थलों से प्रकाश में आए, जिनमें मिर्जापुर, वाराणसी, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में सोन घाटी में सीधी जिले के सिहावल के निकट किए गये कार्य उल्लेखनीय हैं जिसका श्रेय प्रोफेसर जी० आर० शर्मा तथा उनके सहयोगियों को जाता है।

बेलनघाटी में संपादित प्रागैतिहासिक अनुसंधान के फलस्वरूप ही भारत के संदर्भ में उच्च पुरापाषाण युग में संस्कृति का निर्विवाद भूतात्विक स्तर प्रकाशित हुआ है।<sup>5</sup> इसके अतिरिक्त मूर्ति को भारत के दक्षिण पूर्व तटीय प्रदेशों से, पदयाकोशोरापुर दोआब से, एस० ए० साली को महाराष्ट्र के पुणे से, अलचिन तथा गुडी को बूढ़ा पुष्कर क्षेत्र गुजरात से उद्योग के निश्चित प्रमाण उपलब्ध हो चुके हैं। भारत की उच्च पुरापाषाणिक संस्कृति के अध्ययन के संदर्भ में डी० आर० राजू और पी० सी० वेंकट सुबैया ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।<sup>6</sup>

उपर्युक्त उपकरणों को उनकी प्रारूपात्मक समानता तथा प्राप्ति स्तर के आधार पर उच्च पुरापाषाण कालीन कहा जा सकता है। भारत के विभिन्न भागों में जब एक ही प्रकार की सामग्री समान स्तरों से प्राप्त होने लगी तो विद्वानों ने बम्बई में कार्बन-14 तथा इंडियन आर्कियोलॉजी अंतर्राष्ट्रीय सिंपोजियम में बेलन घाटी में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर वहाँ पर उपस्थित विद्वानों ने भारतीय प्रागैतिहासिक में उच्च पुरापाषाण काल की स्थिति को स्वीकार कर लिया।

**विशेष कर उत्तरमध्य भारत की उच्च पुरापाषाण युगीन संस्कृति-** बेलनघाटी और सोन नदी के क्षेत्र विशेषकर उत्तर मध्य भारत के क्षेत्र विशेष महत्व रखते हैं। सर्वेक्षण की दृष्टि से बेलन नदी घाटी अनुभाग को 10 इकाइयों में विभाजित किया गया है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने इस क्षेत्र में 5400 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में उत्खनन कार्य किया है।

इलाहाबाद जिले की कोरांव तहसील में स्थित डइया नामक स्थान से देव घाट नामक स्थान तक बेलन नदी में 18 मीटर ऊँचे नदी अनुभाग मिलते हैं जो कहीं-कहीं पर 21 मीटर तक ऊँचे हैं। बेलन घाटी के निकटवर्ती क्षेत्रों में 80 साथी स्थल हैं जिनमें पियरी, चरकी, अमिलिया, संसारपुर, मुड़वा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस क्षेत्र की दूसरी महत्वपूर्ण नदी सोन है जो मध्य प्रदेश में अमरकंटक के पास से निकलती है। सर्वप्रथम 1961-62 में निसार अहमद ने सर्वेक्षण के दौरान सोन घाटी में बबुरी तथा जोगदहा नामक स्थान से मध्य पुरा पाषाण कालीन उपकरणों के साथ कुछ ब्लेड के उपकरण प्राप्त किये थे।<sup>7</sup>

सन् 1968 में आर० के वर्मा तथा बृज बिहारी मिश्र ने जोगदहापुल के पास कुछ उच्च पुरापाषाण कालीन उपकरणों की खोज की। सन् 1980 से 1982 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद तथा कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले के संयुक्त तत्वावधान में प्रोफेसर जी० आर० शर्मा एवं जे० डी० क्लार्क ने चुरहट से लेकर पूर्व में संगम के समीप स्थित बघोर तक (लगभग 13000 वर्ग किलोमीटर) मध्य सोन घाटी का भूतात्विक तथा पुरातात्विक दृष्टि से सर्वेक्षण एवं अन्वेषण किया। मध्य सोन घाटी में भूतात्विक अनुसंधान के फलस्वरूप आधारशिला के ऊपर जो जमाव प्रकाश में आये उनमें—(1) सिंघावल जमाव (2) पटपरा जमाव (3) बाघोर जमाव (4) खेतौही जमाव प्रमुख हैं।<sup>8</sup>

बाघोरपुरा स्थल सोन घाटी में कैमेर की पाद पहाड़ी पर मेड़ौली गांव से 4 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में सीधी जिले में स्थित है। यहां पर 1980 में प्रोफेसर जी० आर० शर्मा एवं जे० डी० क्लार्क ने उत्खनन कराया था। 1982

में उक्त विद्वानों के निर्देशन में जे० एम० केन्वायर तथा जे० एन पाल ने उत्खनन कार्य कराया।<sup>9</sup> बी० एस० वाकड़कर महोदय ने मध्य प्रदेश के राय सेना जिले में स्थित भीम बैठका की गुफा संख्या III-A-328 के चित्रों को उच्च पुरापाषाण कालीन माना है। ऐसी स्थिति में इस बात की संभावना की जा सकती है कि विंध्य क्षेत्र के शिलाश्रयों में बने कुछ चित्र इस काल से सम्बन्धित हों।

**तकनीकी विकास की यात्रा में उच्च पुरापाषाण कालीन संस्कृति की महत्ता**—उच्च पुरापाषाण काल का मानव केवल तकनीकी विकास से क्रम में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस काल में मानव ने न केवल उपकरण निर्माण के क्षेत्र में ही महारत हासिल किया बल्कि प्रस्तर के अलाव हड्डी तथा सीध आदि पर भी उपकरणों का निर्माण किया। उपकरण निर्माण के क्षेत्र में यह परिवर्तन मानव के विकसित होते ही तकनीकी ज्ञान तथा जीवन की बदली हुई परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा संपादित अनुसंधान के फलस्वरूप विंध्य क्षेत्र की बेलन तथा सोन नदियों की घाटियों में अनेक उच्च पुरा पाषाण पुरास्थल प्रकाश में आये जिनसे भारी मात्रा में ब्लेड, यूरेन, उच्च पुरापाषाणिक उपकरण सामग्री प्रकाश में आई। विंध्य क्षेत्र से प्राप्त उच्च पुरापाषाणिक उपकरणों में ब्लेड तत्व की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।

उत्तर मध्य भारत क्षेत्र की बेलन सोम तथा लिज्जी नदी घाटियों से उच्चपुरापाषाणिक उपकरण प्राप्त किए हैं वे अधिकांशतः बेशकीमती पत्थर चर्ट पर बने दिखाई पड़ते हैं। किन्तु कभी-कभी क्वार्ट्जाइट पत्थरों का भी उपकरणों के निर्माण में प्रयोग किया गया है। सोन घाटी से इन उपकरणों के अतिरिक्त हथौड़े के पत्थर तथा कुछ आंशिक छिद्र वाले गदा शीर्ष प्रकार के पत्थर भी मिले हैं। यहां पर विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सोन घाटी उच्च पुरापाषाणिक उद्योग बेलन घाटी की अपेक्षा अधिक विकसित दिखाई पड़ता है।<sup>10</sup>

**उत्तर मध्य भारत में मानव की कलात्मक एवं धार्मिक अभिरुचि के साक्ष्य**—मानव के शारीरिक, मानसिक एवं सांस्कृतिक विरासत के संदर्भ में उच्च पुरापाषाण काल का विशेष महत्व रखता है। विश्व रंगमंच पर पूर्ण विकसित मानव इसी काल में हुआ था जिसे होमोसेपियंस कहा जाता है। पश्चिमी यूरोप में मानव की कलात्मक अभिरुचि के साक्ष्य उच्च पुरापाषाण कालीन स्थलों से प्राप्त हुई हैं। उत्तर मध्य भारत में पुराविदों के द्वारा कलात्मक एवं धार्मिक अभिरुचि के साक्ष्य निकाले गये हैं जिसके प्रमाण हेतु बेलन घाटी के क्षेत्र में स्थित लोहदा नामक नाले के तृतीय ग्रेवेल के अपरिदित जमाव से अन्यपुरावशेषों के साथ प्राप्त हड्डी पर बने हुए एक पुरावशेष का उल्लेख विशेष रूप से आवश्यक है।<sup>11</sup>

कलात्मक अभिरुचि के संदर्भ में दूसरा उदाहरण मध्य प्रदेश की सोन नदी घाटी के बाघोर प्रथम नामक पुरास्थल का है। इस पुरास्थल पर 1980 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जी० आर० शर्मा एवं प्रोफेसर जे० डी० क्लार्क ने उत्खनन किया। 1982 में पुनः इस स्थल की खुदाई जे० एम० केन्वायर तथा जे० एन. पॉल ने की थी। 1982 के उत्खनन कि सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि एक चबूतरे के रूप में सामने आई जिसे अधिकांश विद्वानों ने मातृ देवी से संबोधित किया।<sup>12</sup> सन् 1982 में जब उत्खनन समाप्त होने की स्थिति में था, विद्वानों ने गोलाकार पत्थरों का एक ढूहा चिन्हित किया जो ऊपर की सतह से 30 से 45 सेंटीमीटर गहराई में था। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि चबूतरे के निर्माण किया गया था तथा निर्जात विज्ञान के साक्ष्यों के आधार पर विशिष्ट पत्थरों का समीकरण मातृ देवी से किया जा सकता है इस प्रकार सम्पूर्ण संरचना पूजा स्थल के रूप में मान्य की जा सकती है। बी० एस० वाकड़कर महोदय को मध्य प्रदेश के राय सेन जिले में स्थित भीमबैठका की गुफा III-A-28 से हरे रंग के पाषाण के कतिपय टुकड़े प्राप्त हुए हैं। वाकड़कर ने ऐसी सम्भावना प्रकट की थी कि इन टुकड़ों का उपयोग चित्रकारी के लिए रंग तैयार करने के लिए होता रहा होगा। विंध्य क्षेत्र के शिलाश्रयों में बने हुए कतिपय चित्र उच्च पुरापाषाण काल से सम्बन्धित हैं। मानव की कलात्मक गतिविधियों के साक्ष्य भारत के अन्य क्षेत्रों में भी मिले हैं। कुल मिलकर बेलन से प्राप्त मात्र देवी की प्रतिमा बागोर 1 से गोलाकार चबूतरे के मध्य से प्राप्त प्राकृतिक संकेन्द्रित त्रिकोणात्मक संरचना से यह इंगित होता है कि उच्च पुरापाषाणिक मानव में आज के मानव की तरह एस्थेटिक सेंस का विकास हो चुका था।

**उच्च पुरापाषाण कालीन संस्कृति का उद्गम तथा तिथिक्रम**—इस क्षेत्र की पुरापाषाण युगीन संस्कृति का स्तरीकरण पूर्ववर्ती मध्य पुरापाषाणिक संस्कृति से जुड़ा दिखाई पड़ता है। इस प्रकार विंध्य क्षेत्र की उक्त

संस्कृति का पूर्ण विकास उसी क्षेत्र में पल्लवित एवं पुष्पित मध्य पुरापाषाणिक संस्कृति से हुआ दिखाई पड़ता है। बेलन घाटी का पांवा निक्षेप मध्य पूर्व पाषाण काल में उच्च पूर्व पाषाण काल के परिवर्तन का अविद्योतन करता है। इसके ऊपर का ग्रेवल जमाव जिसे तृतीय ग्रेवल कहा गया है, वास्तविक पुरापाषाण कालीन स्तर है।

पट्टी या निक्षेप से लघु पाषाण उपकरण भी प्राप्त होने लगते हैं। इस जमाव में उपलब्ध उपकरणों में उच्च पुरापाषाण कालीन ब्लेडों की संख्या मात्र 27 प्रतिशत है।<sup>13</sup> इस प्रकार बेलन नदी घाटी के जमाव से इस उद्योग के क्रमिक विकास के प्रमाण मिलते हैं। बेलन घाटी में स्थित सतही स्थलों से प्राप्त साक्ष्य भी उपर्युक्त तथ्य का समर्थन करते हैं। यहां पर यह बात उल्लेखनीय है कि मध्य पूर्व पाषाण काल तथा उच्च पूर्व पाषाण काल का निर्देश करने वाले उपकरण समुदाय में ब्लेडों की अपेक्षा ब्लेड फलकों का बाहुल्य है। अधिकांश ब्लेड फलकों के ऊपर आघात का अर्ध शंकु अपेक्षाकृत विकसित प्रकार का है। इस प्रकार के फलक ब्लेड के साथ वास्तविक ब्लेड भी मिलने लगते हैं।

तीसरे वर्ग के उपकरणों में यद्यपि लंबे चौड़े ब्लेड अभी भी मिलते हैं किन्तु संकरे ब्लेडों की संख्या अधिक हो जाती है। इस वर्ग में 20 मिलीमीटर से कम संकरे ब्लेडों का मध्य कटक, जो पहले अधिक स्पष्ट था अब पहले की अपेक्षा कम हो जाता है तथा उसका अनुभाग भी पतला हो जाता है। ऊपर वर्णित प्रकार के उपकरणों में सोर ग्राम के निकट शिलाश्रयों से तथा देवघाट के निकट चोपनीमांडो के उत्खननों से भी मिले हैं। इन सभी स्थलों पर लंबे तथा चौड़े उच्च पूर्व पाषाण कालीन ब्लेड अज्यामितिक लघु पाषाणोपकरणों के स्तर के नीचे के स्तर से मिले हैं। उपर्युक्त विवेचना से इंगित होता है कि उत्तर मध्य भारत की उच्च पुरापाषाण संस्कृति के जीवन की सभी अवस्थाओं में हमें क्रमिक विकास दिखाई पड़ता है।

उच्च पुरापाषाण कालीन संस्कृति के समय के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। बेलन एवं सोन नदियों के भूतात्विक जमाव तथा सम्बन्धित नदी घाटी में स्थित पुरास्थलों के उत्खनन से प्राप्त प्रागैतिहासिक संस्कृतियों में एक अविच्छिन्न अनुक्रम दिखाई पड़ता है। इस क्षेत्र की कुछ उच्च पुरापाषाण कालीन संस्कृति अपनी पूर्ववर्ती मध्य पुरापाषाण कालीन संस्कृति के विकसित स्वरूप तथा अनुभवी मध्य पाषाण कालीन संस्कृति के बीज को अपने में समेटे हुए हैं। इस प्रकार स्तरीकरण के साक्ष्यों के आधार पर विद्वानों ने उच्च क्षेत्र की उच्च पुरापाषाणिक संस्कृति को उच्च प्राति नूतनकाल के अंत से प्रारम्भिक नूतन काल के मध्य रखने का सुझाव दिया गया है। इधर बेलन घाटी के तृतीय तथा चतुर्थ ग्रेवल जमाव और सोन घाटी में स्थित रामपुर नामक पुरास्थलों से कुछ महत्वपूर्ण रेडियोकार्बन तिथियां आ गयी हैं ये तिथियां इस प्रकार हैं—

19715 + 330बी0पी0

18055 + 150बी0पी0

24430 + 350बी0पी0

25790 + 745बी0पी0

26070 + 660बी0पी0

उपरोक्त तिथियों के आलोक में हम बेलन घाटी की उच्च पुरापाषाणिक संस्कृति की प्राचीनता 40,000 बी0 पी0 मान सकते हैं क्योंकि बेलन के तृतीय ग्रेवल के नीचे के स्तर से भी उच्च पुरापाषाणिक सामग्री प्रतिवेदित है।

सोन घाटी में स्थित उच्च पुरापाषाणिक तथा अनुपुरापाषाणिक पुरास्थल रामपुर से दो रेडियो कार्बन तिथियां प्रतिवेदित हैं जो निम्न हैं—

20135 + 220बी0पी0

26250 + 240बी0पी0

संस्कृति के अंत की तिथि के सम्बन्ध में परवर्ती मध्य पाषाणिक संस्कृति के कालानुक्रम को आधार बनाया जा सकता है अतः उक्त क्षेत्र की उच्च पुरापाषाणिक संस्कृति को हम 40,000 ईसा पूर्व के समय मान में रख सकते हैं।<sup>14</sup>

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उच्च पुरापाषाणिक संस्कृति का विकास मध्य पूरा पाषाणिक संस्कृति के बाद तथा मध्य पाषाणिक संस्कृति के पहले हमारे शोध क्षेत्र में भी पश्चिमी यूरोप के समान हुआ।

## सन्दर्भ-सूची

1. A. R. Tiwari, Geography of Uttar Pradesh, Page 102, New Delhi 1971
2. D. N. Wadia, The Vindhya System, Geology of India, page 121-131 New Delhi, 1973
3. Indian Archaeology, A review 1966-77, Page 35-38, Professor B.D. Mishra, 1977, Pre-History in Uttar Pradesh, Some aspects of Indian Archaeology, Page 30-31, Pabhat Publications, Allahabad
4. M.A.J., William & K. Raious, Alluvial History of Middle Son Valley, North-Central India, G. R. Sharma & J. D. Clark, Editor- Pelio Environment & Pre-History in the Middle Son Vally, Page 09-21, Avinash Publications Allahabad, 1983
5. B. N. Mishra, Problem of terminology in Indian Pre-History, Eastern Anthropologist, Vol. 15, Number 2, Page 112, Page 124, 1962
6. D. R. Raju & P. C. Venkat Suvaia, The Archaeology of Upper Paleolithic face in India, Pre-History, S. Settari & Ravi Kori Settari, Editor Volume 1, Page 85-109, Delhi, 2002
7. Nisar Ahmad, The Stone Age, Cultures of Upper Son Valley, Ph.D. Thesis (UnPublished) Page 127-128, Poona University & Deccan College Library, 1966
8. M.A.J. Williams & Keith Raious, Page 161-196, 1983
9. J.M. Kenwaier, J.D. Clark, J.N. Paul & G.R. Sharma, Upper Paleolithic shrine in India, Antiquity Volume 7, Page 88-94, 1982
10. R. K. Verma & Neera Verma, Puratatv Anusheelan, Page 88-921, Paramjot Publications, Allahabad, 2001
11. S. P. Gupta, The Aland Upper Paleolithic bone mother goddess from Belan, Archaeology, Number 11, Page 116, 1979-80
12. R. K. Verma & J. N. Paul, Page 98-101 (1980)
13. J. N. Paul, M.A.J. Williams, M. Jaiswala & A. K. Sindhawi, Infrared Stimulated Luminescence Ages for pre-historic Cultures in the Son & Belan Vallys, North-Central India, Journal of Inter- Disciplinary Studies in History and Archaeology, Volume 2, Page 51-62, 2004
14. B. D. Mishra, Page 01-14, 2007, Poorvokta

\* \* \* \* \*

## पौराणिक कालीन समाज में लोक संस्कृति, परम्परा एवं शिक्षा साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. विजय शंकर मिश्र\*

**सारांश—** श्रीमद्भागवत पुराण में धर्म का व्यापक सम्मिश्रण मिलता है। कुछ विद्वान इसे धार्मिक ग्रन्थ ही मानते हैं। लेकिन ऐसी बात नहीं है कि भारतीय संस्कृति, परम्परा एवं शिक्षा साहित्य के अलावा जो कुछ भी मिला है। धर्म के बारे में पहले अन्य धर्मग्रन्थों में चर्चाएँ की गयी हैं परन्तु श्रीमद्भागवत पुराण में समकालीन लोक संस्कृति, परम्परा एवं शिक्षा साहित्य के परिप्रेक्ष्य में एक अनुशीलन ऐतिहासिकता की दृष्टि से कम है। अतः इस परिप्रेक्ष्य में हमने धर्म के अध्ययन की पूर्णता के लिए विस्तृत विचार व्यक्त करने का प्रयास किया है।

**शब्द कुंजी—** प्रागैतिहासिक, अद्यावधि, पारलौकिक, अलौकिक, धर्मन्, समपोषक, धर्माचरण, आश्रयभूत, छलधर्म, विधर्म, परधर्म, उपधर्म, धर्माभास, पाखण्ड, आध्यात्मिकता, आश्रय, स्वधर्म, श्रेयस्कर, वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, कुल धर्म...इत्यादि।

**प्रस्तावना—**जीवन में पुरुषार्थ के महत्व को सार्थक करने में भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की परम्परा का ज्ञान एवं भारतीय जनजीवन की मानसिकता एवं मूल्यों का आकलन पुराणों के बिना अछूता है। यद्यपि पुराणों का वैज्ञानिक अथवा शास्त्रीय ढंग से सम्पादित पाठ उपलब्ध नहीं है। उनमें एक रूपता नहीं है, उनके काल और स्थान सम्बन्धित संकेत स्पष्ट नहीं हैं और आधुनिक इतिहासकार उनकी प्रतिष्ठा उतनी नहीं करते जितने का उन्हें हक है। यद्यपि पुराण साहित्य विश्व कोषीय सूचनाओं से इतना भरा हुआ है कि इनकी अवहेलना हानिकारक होगी और भारतीयत्व की पहचान के कई पहलुओं से हम अनभिज्ञ रहेंगे। अतः सभी प्रकार के सीमाओं और कठिनाइयों के बावजूद प्राचीन भारतीय इतिहास और लोक संस्कृति, परम्परा एवं शिक्षा साहित्यों का अवलोकन इस अध्ययन से उपयोग सिद्ध होगा। श्रीमद्भागवत के अनुसार मनुष्य के जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य वे होते हैं जिनका सम्बन्ध सांसारिक जीवन से नहीं बल्कि एक ऐसे जीवन से होता है जिसके बारे में हम केवल कल्पना ही करते हैं, यथार्थ रूप में कुछ नहीं जानते। इसे हम 'पारलौकिक जीवन' अथवा जमीन का भावनात्मक पक्ष कह सकते हैं। धर्म इस पारलौकिक जीवन से सम्बन्धित लक्ष्यों को प्राप्त करने वाली महत्वपूर्ण संस्था है। यह संस्था इतनी अधिक महत्वपूर्ण है कि इससे अनुकूल किये बिना न तो हमारा व्यक्तित्व संगठित रह सकता है और न ही हमारे अन्दर परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति पैदा हो सकती है। इसके बारे में समाजशास्त्री डेविस का कथन है —“धर्म मानव समाज का ऐसा सर्वव्यापी स्थाई और शाश्वत तत्व है जिसे समझे बिना समाज के रूप को बिलकुल समझा नहीं जा सकता।” इसके पश्चात जो धर्म की व्याख्या करना सबसे अधिक कठिन कार्य है। क्योंकि वर्तमान विचार धाराओं और सम्प्रदायों में इतनी अधिक भिन्नता है कि धर्म के किसी भी विवेचन का बड़ी सरलता से विरोध किया जा सकता है।

### विषय—वस्तु

**धर्म—**परम्परागत भारतीय धर्म अथवा हिन्दू धर्म अंग्रेजी के रिलिजन शब्द से बिलकुल भिन्न है। रिलिजन शब्द को मानव शास्त्री धारणा केवल कुछ अलौकिक विश्वासों और अधिक प्राकृतिक शक्तियों से ही सम्बद्ध है जबकि हिन्दू धर्म कोई अलौकिक विश्वास नहीं है बल्कि यह जीवन कि एक विधि है। जो व्यक्ति के उसके वास्तविक कर्तव्यों का बोध कराती है।

\* प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास विभाग, ग्राम समाज पी.जी. कॉलेज, जयस्थली, आजमगढ़, उ.प्र.



**धर्म का अर्थ**—भागवत महापुराण में धर्म शब्द का उपयोग अनेक अर्थों में किया गया है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि धर्म शब्द का सम्बन्ध कर्तव्य, स्वभाव करने, योग्य कामों, वस्तु के आंत्रिक गुण या पवित्रता आदि गुणों से हैं। उदाहरण के लिए जब हम यह कहते हैं— कि गुरु का धर्म क्या है तो यहाँ पर हमारा तात्पर्य एक गुरु के वास्तविक कर्तव्यों को जानने से होता है। शब्द शास्त्र की पद्धति से धारणार्थक घ्रिज धातु के आगे मन प्रत्यय के योग से धर्म या धर्मन् शब्द की सिद्धि होती है। इसके अर्थ को बतलाते हुए कहा गया है कि जिस कर्म (आचरण) से कर्ता को इस लोक में अभ्युदय और परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो वही धर्म है। जिससे लोक धारण किया जाय वही धर्म है— ऐसा भी कहते हैं। अन्यत्र यह भी कहा गया है कि जो लोक को धारण करें वही धर्म है। चौथा विचार यह कहता है—‘जो अन्यों से धारण किया जाय वही धर्म है।’ ऋग्वेद में धर्म शब्द का प्रयोग एक ऐसे तत्व के लिए किया गया जो ‘ऊँचा’ उठाने वाला (उन्नायक) अथवा पालन पोषण करने वाला (सम्पोषक) है। साथ ही कुछ स्थानों पर इसका प्रयोग धार्मिक क्रियाओं के अर्थ में हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण धर्म ग्रन्थ में धर्म का अर्थ धार्मिक कर्तव्यों के सर्वांगसमस्वरूप अर्थात् जप, तप, व्रत, हवन, यज्ञ आदि से है। छन्दोग्य उपनिषद् में धर्म का तात्पर्य विभिन्न वर्णों के कर्तव्यों से है डॉ० राधाकृष्णन् का कथन है कि— “जिन सिद्धान्तों के अनुसार हम अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते हैं तथा जिसके द्वारा हमारे समाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है वही धर्म है, जीवन का सत्य है और हमारे प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है।”

धर्म के सम्बन्ध में श्रुति कहती है कि वह सम्पूर्ण संसार की प्रतिष्ठिता अर्थात् एक मात्र आश्रयभूत है, संसार में लोग उसी के निकट जाते हैं जो धर्मशील होता है। पुराण कहता है कि धनधर्मजन्य सुख-दुःखों को भेगने के लिए ही जीव देहादि धारण करता है। समस्त कार्यों में धर्म और अर्धम ही कारण है और कर्मफल के उपभोग के ही एक देह से द्वितीय देह में जाना पड़ता है।

**स्मृतियों के अनुसार भी धर्म लोक परलोक का सुखदाता होता है।**

महाभारत के अनुसार धारण करने से इसे धर्म कहा गया है। धर्मप्रजा को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे वह धर्म है — यह निश्चय है। गीता के अनुसार जब धर्म की हानी और अर्धम का उत्थान होता है तब साधुओं की रक्षा, दुष्टों का विनाश और धर्म की पुनः स्थापना के लिए ईश्वर का अवतार होता है। यही धर्म है। धर्म के महत्व को श्रुतियों ने इस प्रकार बतलाया है — धर्माचरण के द्वारा लोक अपने कष्ट पाप को हटा देते हैं। धर्म पर सब कुछ आधारित है, अतः धर्म को सबसे श्रेष्ठ कहते हैं। कल्याण के रूप में धर्म की सृष्टि है, क्षत्रिय का क्षत्रियत्व धर्म ही है। अतएव धर्म से बड़ा दूसरा कुछ नहीं है। एक बलवान अन्य बलवान की प्रशंसा धर्म के द्वारा करता है, जैसे राजा प्रशंसा करता है। वास्तव में धर्माचरण के अभाव में किसी प्रकार का भी कल्याण सम्भव नहीं है। पुराणों ने धर्म के अर्थ और महत्व को बतलाते हुए कहा है कि जो पुरुष वर्णाश्रम धर्म का पालन करता है वही परम पुरुष विष्णु की आराधना कर सकता है, उन (विष्णु) को सन्तुष्ट करने का कोई और मार्ग नहीं है। इस कलियुग के सातत्य से कहा है कि इस युग में अल्पमात्र परिश्रम से ही महान् धर्म की प्राप्ति होती है। अर्थात्, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र एवं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आदि प्रत्येक अवस्था में एहलौकिक उन्नाति और सभी तरफ के कल्याण की प्राप्ति के लिए धर्माचरण की ही प्रयोजनशीलता है। इसके महत्व को अपनी-अपनी दृष्टि से समझते हुए लोगों ने इसे कई वर्गों में विभाजित कर दिया है, जिससे धर्म कई प्रकार का हो गया है।

**धर्म स्वरूप**—हिन्दू धर्म का सार तत्त्व कर्तव्य की भावना है। इस आधार पर यह भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के कर्तव्यों का निर्धारण भिन्न-भिन्न प्रकार से करता है तथा सामान्यतया धर्म के तीन स्वरूप हैं, लेकिन इनका अंतिम उद्देश्य व्यक्ति के ‘अभ्युदय’ और ‘निःश्रेयस्’ से सम्बन्धित है। जब एक ही आचार संहिता और एक ही साधन प्राणाली के द्वारा सभी व्यक्तियों के व्यवहारों का रूप निर्धारित किया जाने लगता है तब धर्म के विघटन के क्रियाशील हो जाते हैं। अनेक व्यक्ति धर्म को अनुपयोगी समझकर उसी उपेक्षा करने लगता हैं। धर्म के इन स्वरूपों को समझने से पहले उन अभिव्यक्तियों को समझना भी आवश्यक है जिन्हें हम ‘अर्धम’ में सम्मिलित करते हैं। इन्हें हम विधर्म, परधर्म, उपधर्म, छलधर्म और धर्माभाष कहते हैं। विधर्म का तात्पर्य किसी भी ऐसे कार्य से है जो एक व्यक्ति का विरोधी हों। परधर्म का तात्पर्य ऐसा कार्य करने से है जो उस व्यक्ति के लिए नहीं वरन् अन्य व्यक्तियों के लिए निर्धारित किया गया हो उपधर्म के अन्तर्गत हम उन विचारों को सम्मिलित करते हैं। जो निर्धारित

आचार-नियमों के विरुद्ध हों। इसी को हम पाखण्ड अथवा दम्भ भी कहते हैं। छल धर्म हमारे आचरणों का वह रूप है जो धर्म का वास्तविक रूप नहीं होता बल्कि धर्म के नाम पर उसे प्रोत्साहन दिया जाता है। अन्त में धर्माभाष वह स्थिति है जिसमें अपने लिए निर्धारित धर्म की अवहेलना करके ऐसे आचरणों को न्याय पूर्ण दिखाने का प्रयत्न करता है जिससे उसकी निजी इच्छाओं और हितों की पूर्ति हो सकें। यह सभी रूप धर्म की दोषपूर्ण अभिव्यक्ति है जिनका वास्तविक धर्म से सम्बन्ध नहीं है। धर्म को वास्तविक स्वरूपों को स्पष्ट किया जा रहा है।

**सामान्य धर्म**—सामान्य धर्म का अर्थ धर्म के उस रूप से है जो सभी के द्वारा अनुसरणीय है। व्यक्ति चाहें निम्न वर्ण का हो या उच्च वर्ण का, आयु से बड़ा हो या छोटा, धनी हो या निर्धन, स्त्री हो या पुरुष, राजा हो या प्रजा सामान्य धर्म का पालन करना सभी का कर्तव्य है। यह धर्म किसी एक परिवार, समूह अथवा देश का नहीं होता बल्कि यह सम्पूर्ण मानव जाति का धर्म है। सामान्य धर्म इस सत्य पर बल देता है। कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है। इसका उद्देश्य मानव में सद्गुणों का विकास करना तथा इस लक्ष्य की प्राप्ति करना है कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

श्रीमद्भागवत् में देवर्षि नारद ने प्रह्लाद को धर्म का उपदेश देते हुए सामान्य धर्म के तीस लक्षण बतलाये हैं—

1. सत्य, 2. दया, 3. तपस्या, 4. पवित्रता, 5. कष्ट सहने की क्षमता, 6. उचित-अनुचित का विचार, 7. मन का संयम, 8. इन्द्रियों का संयम, 9. अहिंसा, 10. ब्रह्मचर्य, 11. त्याग, 12. स्वाध्याय, 12. सरलता, 14. सतोष, 15. सभी के लिए समान दृष्टि, 16. मौन, 20. आत्मचिंतन, 21. सभी प्रणियों में अपने आराध्य को देखना और अन्न देना, 22. महापुरुषों का संघ, 23. ईश्वर का गुणगान, 24. ईश्वर चिंतन, 25. ईश्वर सेवा, 26. पूजा तथा यज्ञ का निर्वाह, 27. ईश्वर के प्रति दास भाव, 28. ईश्वर वन्दना, 29. सखा भाव, 30. ईश्वर को आत्म समर्पण। धर्म के ऐ लक्षण सभी संस्कृतियों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं इस लिए भी इस धर्म को सामान्य धर्म कहा जाता है। इन सभी लक्षणों सार यह है कि मानवीय गुणों का विकास दायित्व का निर्वाह, आध्यात्मिकता और प्रत्येक वस्तु स्थिति को ईश्वर के निमित्त मानना सामान्य धर्म का आधार है। मनुस्मृति में 13 धर्म के 10 लक्षण बताये गये हैं यथा—

**धृतिः क्षमा दमोस्तेयम् शौचमिन्द्रिय निग्रहः।**

**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥**

सामान्य धर्म के उपयुक्त सभी लक्षणों से स्पष्ट होता है कि ये लक्षण किसी एक धर्म से नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव धर्म से सम्बद्ध हैं। इनके समुचित विकास से ही व्यक्ति का शारीरिक आत्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास हो सकता है ये सभी लक्षणों को व्यक्ति के कर्तव्यों की पूर्ति में सहायक हैं। इसी मानव धर्म की प्राप्ति में नैतिकता और आध्यात्मिकता का आश्रय अत्यधिक आवश्यक है।

**विशिष्ट धर्म**—हिन्दू संस्कृति की विशेषता है कि जहाँ इसमें एक ओर सर्वव्यापी मानव धर्म का निरूपण किया गया है वही इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया है कि समय, परिस्थिति और स्थान के अनुसार सभी व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न कर्तव्यों को पूरा करना आवश्यक है। उदाहरण स्वरूप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के धर्म अपने-अपने कर्तव्यों के अनुसार हैं। ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थी और संन्यासी के धर्म एक दूसरे से पृथक हैं। स्त्री का धर्म पुरुषों से भिन्न है, गुरु और शिष्य का एक दूसरे से भिन्न है सैनिक का धर्म एक राजा का धर्म एक दूसरे से भिन्न है। पिता-पुत्र-मित्र का धर्म एक दूसरे से भिन्न है अर्थात् परिस्थितियों के निर्धारित होने वाले कर्तव्यों को ही विशिष्ट धर्म कहा जाता है तथा इसको स्वधर्म भी कहा जाता है। इसी आधार पर गीता में कहा गया है कि—

**स्वधर्मं निधनं श्रेयाः पर धर्मो भयावहः।**

अर्थात् अपने धर्म के लिये भी श्रेयस्कर है : स्वधर्म के कुछ और भी स्वरूप हैं। जैसे वर्णधर्म, आश्रमधर्म, कुलधर्म, राजधर्म, युगधर्म, मित्रधर्म, गुरुधर्म आदि। अतः हिन्दू धर्म में स्वधर्म के निर्वाह को अपना महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है कि गीता में जिसे कर्म कहा गया है उसका तत्पर्य भी वास्तव में भी स्वधर्म का ही पालन करना है।

**आपद्धर्म**—हिन्दू धर्म में सभी को सामान्य एवं विशिष्ट धर्म का निर्धारण किया है लेकिन साथ ही हिन्दू शास्त्रकार इस बारे में एक मत है कि अपत्ति-कार्य में सामान्य तथा विशेष धर्म में कुछ परिवर्तन कर लेने पर व्यक्ति को कोई दोष नहीं लगता अर्थात् सामान्य विशेष धर्म की रक्षा किसी किसी विकट परिस्थिति में वह संशोधन करके अधिक महत्वपूर्ण धर्म की रक्षा की जा सकती है। इस प्रकार आपद्धर्म एक स्थायी धर्म है। उदाहरणार्थ—उपनिषदों में एक

ऋणी की कथा आती है जो आकाल कारण भूख से मरणासन्न थे। इस स्थिति में अपने धर्म के पालन के उपेक्षा शरीर रक्षा का धर्म अधिक महत्वपूर्ण था इसलिए उन्होंने एक शूद्र से उसके जूटे उड़द लेकर खा लिये। इसके उपरान्त उन्होंने उसके यहा पानी नहीं पिया। क्योंकि पानी उन्हें कही उपलब्ध हो सकता था।

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा “युद्ध में अश्वत्थामा मारा गया” का घोषणा करना भी आपद्धर्म की स्थिति को ही स्पष्ट करता है तथा एक बार एक गाय बधिकों से रस्सी तुड़ाकर किसी प्रकार भागी और एक गुफा में घुस गयी गुफा के बाहर एक मुनी ध्यान मग्न बैठे थे। पिछा करते हुए बधिकों ने जब मुनी से गाय के बारे में पूछा तो मुनी मौन रहे और बधिकों ने गुफा में जाकर गाय को पकड़ लिया इस समय मुनी झूठ बोलकर आपद्धर्म की रक्षा कर सकते थे लेकिन ऐसा न करने से मुनी की सारी सिद्धियाँ नष्ट हो गयी। इस परिस्थिति के शास्त्रों में ‘धर्म संकट’ कहा गया है। आपद्धर्म हिन्दू धर्म की उदारता और व्यवहारिकता को स्पष्ट करता है। आपद्धर्म के महत्व और इसकी व्यवहारिकता को श्री अरविन्द ने कहा है कि “इस ज्ञान पर आधारित सभी सद्कार्य भारतीय संस्कृति के अनुसार धर्म माने जा सकते हैं इस धर्म की विशेषता न्यायपूर्ण जीवन आत्म-संस्कृति पदार्थ के ज्ञान, जीवन तथा क्रिया, सभी के प्रति उचित दृष्टिपूर्ण अपनाना है।

**आश्रम धर्म**—आश्रम व्यवस्था पूर्णतः वर्ण व्यवस्था पर आश्रित रहती है। ब्रह्मा ने जब चारों वर्णों का सृजन कर लिया तो उन सभी के लिए जीवन यापन चार आश्रम भी निर्मित किये जिसे क्रमशः ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्त आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम कहते हैं। सम्पूर्ण जीवन अवधि को सौ वर्ष मान कर प्रत्येक आश्रम की अवधि पचीस-पचीस वर्ष निर्धारित कर दी गयी हैं। पुरुष वर्ग के लिए उन्ही आश्रमों के तहत अपना जीवन निर्वाह करने का विधान किया गया है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक भारतीय के लिए उसका आत्मसंयम ही पाठशाला है। इस पाठशाला में अध्ययन के चार स्तर ही आश्रम कहलाते हैं। ये चार आश्रम मनुष्य के उन कर्तव्यों की पूर्ती पर आधारित है जो उसे अने जीवन के लक्ष्य की ओर ले जाने में सहायक हो सकते हैं। ये कर्तव्य ही उनका धर्म है। कर्म करने से ही मनुष्य अने धर्म का पालन कर सकता है। अतः इन चारों आश्रमों के धर्म वे कर्तव्य है जो प्रत्येक व्यक्ति को आश्रम चाहिए आश्रमों के मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक आधार को समझने के लिए चार पुरुषार्थों के सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है। जीवन के उद्देश्य चार माने जाते थे : धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष माना गया है। इसका आशय यह है कि मानव की शाश्वत प्रकृति आध्यात्मिक है और जीवन का उद्देश्य इनको प्रकाशित करना तथा उनके द्वारा और आनन्द प्राप्त करना है। सभी ऋषियों की धारणा थी कि मानव की भलाई में है कि वह जीवन मृत्यु के चक्र से और संसार के दुःखों से छुटकारा पा जाये और फिर इस संसार में जन्म न लेना पड़े। इसी छुटकारे की अवस्था को पुरुषार्थों में मोक्ष कहा गया है। किन्तु वैदिक ऋषि आध्यात्मिक स्वतंत्रता और सांसारिक सुख भोग को परिवार विरोधी स्वीकार नहीं करते उनके अनुसार दीर्घ जीवन की कामना मुक्ति प्राप्त करने की भावना से असम्बद्ध नहीं है पुरुषार्थ के सिद्धान्त में इन दोनों में सामंजस्य स्थापित किया गया है। इसलिए अमने पुरुषार्थ को आश्रम व्यवस्था का मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक आधार कहा है।

धार्मिक आधार पर अनुयायियों के जो दो वर्ग—श्रुति और स्मार्त किये गये हैं एपमें श्रुतधर्म को मूल रूप से शास्त्रविधि और वेदों से सम्बद्ध है, किन्तु स्मार्त धर्म वर्णाश्रम के विविध एवं नियमित व्यवस्थाओं और सामाजिक परम्पराओं पर आधारित है। इसलिए जब आश्रम व्यवस्था की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें स्मार्त लोगों के बारे में सोचना पड़ता है यद्यपि पुराणों में दोनों ही धर्मों का उल्लेख है। अगर शाब्दिक अर्थ की दृष्टिकोण से देखा जाय तो आश्रम शब्द श्रम से बना है जिसका अर्थ है मेहनत करना। आश्रम का अर्थ है श्रम करते-करते ठहरने का स्थान। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आश्रमों का अर्थ वे स्थान जहां जीवन यात्रा करते हुए मनुष्य कुछ समय के लिए ठहरता है। आश्रम व्यवस्था का अन्तिम उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करके प्रत्येक को मोक्ष प्राप्त कराना था। धर्म सूत्रों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को क्रम से इन चारों आश्रमों के नियमों का पालन करना चाहिए।

**धर्महीन, नास्तिक, धर्मत्याग, धर्मान्तर— सत्यधर्म**—धर्मशील व्यक्ति को संसार में कोई भय नहीं होता परन्तु धर्मशील व्यक्ति लोक परलोक में सुख नहीं प्राप्त कर सकता, अतएव धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म ही परम गति है। धर्महीन व्यक्ति महान नरक में जाते हैं धर्म के सहारे मनुष्य लोक—परलोकों को पर करता है

जबकि अधर्म इस लोक और परलोक में पतन कारण होता है। धर्म क्या है इस विषय में पुराणों में कोई परिभाषा अलग से नहीं दी है बल्कि सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप और निर्धारित जीवन-नियमों का अनुपाल करते हुए सदाचार सद्व्यवहार पूर्वक रहते हुए सुख की प्राप्ति हेतु जो नीति निर्धारित की गई है उन्हीं को धर्म का अंग, धर्म का स्वरूप अथवा केवल धर्म कहा गया है पुराण में जो भी करणीय कार्य कहे गये हैं उन्हें अधर्म इंगित किया गया है—ऐसा पुराण का मानना है।

पुराण कहता है कि जो लोग धर्म विहित आचरण नहीं करते और अधर्म में आस्था रखने के कारण ईश्वर को नहीं मानते उन्हें नास्तिक कहा गया है और नास्तिक लोगों को स्पर्श ही नहीं अपितु उनसे वार्तालाप करना भी वर्जित है। धर्म का त्याग करना तो पुराण ने सर्वथा निषिद्ध कर दिया है। एक स्थान पर उसने स्पष्ट आदेश दिया है कि देश विहित धर्म श्रेष्ठ कुलधर्म और गोत्र धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। बल्कि उसी से अर्थ की सिद्धि करना चाहिए इनका त्याग करने वालों पर सूर्य क्रुद्ध होते हैं। जिनके फलस्वरूप मनुष्य रोगी हो जाता है। यही कारण है कि स्वधर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिए और न ही उसकी हानि होने देना चाहिए ऐसा होने से भी अने वंश की हानि होती है।

कुछ लोग कभी— कभी अपने धर्म को छोड़कर दूसरे के धर्म को स्वीकार कर लेते हैं। इसे धर्म परिवर्तन कहते हैं आजकल शूद्र वर्ग की जातियाँ हिन्दू धर्म में उपेक्षित एवं निकृष्ट समझी जाती हैं। उस वर्ग में जन्म लिये प्रबुद्ध लोग समाज में अपनी हीन अवस्था को महसूस करते हैं और अपने को उपेक्षित पाते हैं तो अपना धर्म परिवर्तन करके बौद्ध, ईसाई बन जाते हैं, ऐसा तब सम्भव होता है। त्याज्य धर्म में कट्टरता, धर्माधता के साथ ही भेदभाव की स्थिति हुआ करती है और जिसने धर्म को स्वीकार किया जाता है उसमें कोई भेदभाव नहीं होता है और धर्म परिवर्तन को स्वीकार कर लेने की उदार भावना भी होती है। हिन्दू धर्म में व्यवस्था कठिन बनी होने से कोई बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई आदि में धर्मान्तरण नहीं कर पाते जबकि कोई भी हिन्दू उसमें अपना धर्मांतरण कर लेता है। कि उन धर्मों की व्यवस्था बड़ी सरल एवं उदार होती है। भागवत पुराण में हिन्दू धर्म के अनुशासन को सर्वोपरि करने वालों को पतित कहा है। इससे स्पष्ट है कि उस समय धर्म परिवर्तन पर प्रतिबंध तो नहीं था।

**सत्य कर्म**—सदाचार में सत्य को सर्वोपरि स्थान दिया गया है पुराण के अनुसार भी धर्म कर्म में सत्य को श्रेष्ठ कहा गया है। सत्यस्वरण करने वाले ही वास्तविक धर्मी कहलाते हैं। किसी परायी स्त्री के साथ दुराचरण न करने वाले धर्मात्मा कहलाते हैं। परोपकारी ईमानदारी, आहिंसा धर्मी, माता—पिता—गुरु एवं देव—पितरों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने वाले भी धर्मानुयायी हो सकते हैं सजातीय धर्मों का पालन करना भी आवश्यक होता है। इसी विचार से सभी वर्णों के लिए अलग—अलग धर्म निर्धारित है जिसके अनुसार वे अपने—अपने वर्ण के स्त्रियों का सेवन करते हैं। और पर स्त्री सेवन को अधर्म की संज्ञा देते हैं। पुराण में धर्म भेद एवं असत्य पुरुषों का संग निषिद्ध किया गया है। इसके अलावा चारों धर्मों का (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) का पालन करना धर्माचरण करना है। जो इसका पालन नहीं करते हैं वे विधर्मी होते हैं।

**उपसंहार**—प्राचीन भारतीय वाङ्मय में अर्थ की महत्ता अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। पुराणों में धन, द्रव्य, सभी प्रकार के रत्नों की खानें, भूमि, धान्य, पशु और स्त्रियों को धन के रूप में काम आने के कारण अर्थ कहा गया है। यह व्यवहार द्वारा साधित होने वाले चार कार्यों एवं व्यवहार देखने वाले राजा के सात गुणों में से एक हैं। किसी मानव समाज का इतिहास तभी पूर्ण समझा जाता है जब उसकी कहानी सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक क्रमबद्ध रूप से की जाय। पुराण आरम्भ होता है सृष्टि से और अन्त होता है प्रलय से। इन दोनों छोरों के बीच में उत्पन्न होने वाले राजवंशों उनमें प्रधानभूत राजाओं के चरित्र का वर्णन करता है। इस प्रकार पुराण का रूप ही भारतीय दृष्टि से इतिहास का सच्चा रूप है। अष्टादश पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण एक तरफ जहाँ भक्ति प्रधान संस्कृति ग्रन्थ है वहीं दूसरी तरफ ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक तथ्यों की भी स्पष्ट एवं यथार्थ सामग्री भरी पड़ी है। इस दृष्टि से उसका श्रीमद्भागवत पुराण कालीन लोक संस्कृति, परम्परा एवं शिक्षा साहित्य का अध्ययन किया जाना लोक हित की भावना से सार्थक कहा जा सकता है।

## सन्दर्भ—सूची

1. किंग्सले डेविस—ह्यूमन सोसायटी, पृ. 509
2. डॉ. राधाकृष्णन्— रिलिजन् एण्ड सोसायटी, 1966, पृ. 104
3. चतुर्वेदी, द्वारका प्रसाद शर्मा— संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ: 1956, पृ. 549 एवं कल्याण हिन्दू—संस्कृति—अंक, पृ. 369
4. मनुस्मृति —2/9।
5. महाभारत (कर्ण पर्व)।
6. गीता—4/7-8
7. तै0 आ0 10/63/7
8. शतपथ ब्राह्मण—14/4/2/36
9. भागवत पुराण—11/9/9,/10।10
10. वही, 12/2/4-6
11. सर्वानन्द पाठक : विष्णु पुराण का भारत, पृ. 211-212
12. मनुस्मृति —6/92
13. श्रीमद्भागवत पुराण—1/3/63,1/16/18
14. मनुस्मृति 6/92
15. गीता—3/35
16. हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पृ. 166
17. अरविन्द, भारतीय संस्कृति के आधार, पृ. 189-90, सत्यमित्र दूबे, मनु की समाज व्यवस्था से उद्धृत।
18. श्रीमद्भागवत पुराण —11/17/55
19. विष्णु पुराण —3/9/133
20. बृहदारण्यक उपनिषद् —6 ,3,14
21. विष्णु पुराण—1/4/34/16/और 4/24/98
22. धर्मसूत्र—गौतम 3,1। आपस्तम्ब—2
23. श्रीमद्भागवत पुराण—1/15/38
24. वही, 1/16/5
25. वही, 1/1/57
26. वही, 1/1/58
27. वही, 1/1/60
28. गीता—2/47
29. श्रीमद्भागवत्—11/18/46
30. महाभारत—सभापर्व 20/13
31. विष्णु पुराण—3/6/21-24

\* \* \* \* \*

## नालन्दा महाविहार : एक संक्षिप्त अध्ययन

डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय\*

भारत में वैदिक काल से ही शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया गया है, जिसके कारण उस काल से ही गुरुकुल और आश्रमों के रूप में शिक्षा का काल प्रारम्भ हो गया था। जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता गया शिक्षा पद्धति भी विकसित होती गयी और धीरे-धीरे उन्नति करते हुए विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया। उन्हीं में नालन्दा महाविहार भी एक विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो गया।

नालन्दा महाविहार बिहार प्रान्त की राजधानी पटना से लगभग 90 किमी० की दूरी पर पटना-गया मार्ग पर राजगृह से लगभग 12 किमी० की दूरी पर बड़गांव नामक ग्राम के समीप स्थित है। सबसे पहले गुप्तकाल में यहां एक बौद्ध बिहार की स्थापना शक्रादित्य द्वारा जो बौद्ध धर्म के प्रति आस्था रखता था, करवाई गई थी। शक्रादित्य की पहचान कुमार गुप्त प्रथम (415 ई० से 455 ई०) से की जाती है, जिसकी सुप्रसिद्ध उपाधि 'महेन्द्रादित्य' थी। कुमार गुप्त के पुत्र तथा उत्तराधिकारी बुद्धगुप्त द्वारा इस कार्य को जारी रखते हुए इसके दक्षिण में दूसरा बिहार बनवाया गया। इसके पूरब में तथा गुप्त द्वारा एक बिहार बनवाया गया तथा फिर बालादित्य द्वारा पूर्वोत्तर दिशा में एक अन्य बिहार बनवाया गया। तत्पश्चात् बुद्धगुप्त के पुत्र वज्र ने इसके पश्चिम में एक बिहार बनवाया। इसके बाद मध्यभारत के शासक हर्ष ने एक बिहार बनवाया तथा सभी बिहारों को घेरते हुए एक चहारदीवारी बनवा दी। हर्ष ने नालन्दा में एक ताम्रबिहार बनवाया था। हर्षकाल के अन्त तक हिन्दू तथा बौद्धदाताओं द्वारा नालन्दा में मठ तथा विहार बनवाये जाने का क्रम चलता रहा और नालन्दा महाविहार एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो गया।

यह विश्वविद्यालय लगभग एक मील लम्बे तथा आधा मील चौड़े क्षेत्र में स्थित था। विश्वविद्यालय में आठ बड़े कमरे तथा व्याख्यान के लिए तीन सौ छोटे कमरे बने हुए थे। 'धर्मगज्ज' नामक विशाल पुस्तकालय तीन भवनों में स्थित था। इसके भवन भव्य उत्तुंग तथा बहुमंजिले थे। ह्वेनसांग के अनुसार 'सम्पूर्ण संस्थान ईंटों की दीवार से घिरा हुआ है, जो कि पूरे मठ को बाहर से घेरती है। एक द्वार विद्यालय की ओर है, जिससे आठ अन्य हाल जो संधाराम के बीच में स्थित हैं, अलग किये गये प्रचुर रूप से अलंकृत मीनारें तथा परियों के समान गुम्बज, पर्वत की नुकीली चोटियों की तरह परस्पर हिले-मिले से खड़े हैं। मान मन्दिर प्रातःकालीन धूप में विलीन हुए से लगते हैं तथा ऊपरी कमरे बादलों के ऊपर विराजमान हैं। खिड़कियों से कोई यह देख सकता है कि किस प्रकार हवा तथा बादल नया-नया रूप धारण करते हुए और उत्तुंग ओलतियों के ऊपर सूर्य एवं चन्द्रमा की कान्ति देखी जा सकती है। गहरे तथा परभासी तालाबों के ऊपर नीलकमल खिले हुए हैं, जो गहरे लाल रंग के कई पुष्पों से मिले हैं तथा बीच-बीच में आम्रकुंज चारों ओर अपनी छाया बिखेरते हैं। बाहर की सभी कक्षाएँ जिनमें श्रमण आवास हैं, चार-चार मंजिले हैं।' उनके मकराकृत वार्जे, रंगीन ओलतियाँ, सुसज्जित एवं विचित्र मोती समान लाल स्तम्भ, सुअलंकृत लघु स्तम्भ तथा खपड़ों से ढकी हुई हैं, जो सूर्य का प्रकाश सहस्त्रों रूप में प्रतिबिम्बित करती हैं, ये सभी विहार की शोभा बढ़ा रही हैं।"

इसी तरह का वर्णन कन्नौज नरेश यशोवर्मन के मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख में भी किया गया है जिसके अनुसार "नालन्दा की गगनचुम्बी पर्व शिखर के समान विहारवलियों पृथ्वी के ऊपर ब्रह्म द्वारा विरचित सुन्दर माला के समान शोभायमान हो रही थीं।" इस विवरण से चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण की पुष्टि होती है। नालन्दा में विहारों के अलावा अनेक स्तूप भी मिले हैं, जिनमें बुद्ध एवं बोधिसत्त्वों की मूर्तियाँ रखी गयी थीं। इन सभी भवनों के बीच

\* प्राचार्य, एम०बी०बी०पी०जी० कालेज, बड़गहन, आजमगढ़



नालन्दा का विश्वविद्यालय एक विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है।

नालन्दा विश्वविद्यालय शिक्षा केन्द्र के रूप में पाँचवीं शताब्दी से विकसित होना शुरू हुआ तथा छठीं शताब्दी तक आते-आते यह न केवल भारत अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध हो गया। क्योंकि चीनी यात्री फाहियान जो कि चौथी शताब्दी में भारत की यात्रा पर आया था, अपने यात्रा वर्णन में कहीं भी नालन्दा का उल्लेख नहीं करता है, जबकि उसके दो शताब्दियों बाद आने वाला चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा इत्सिंग नालन्दा महाविहार की उच्च शब्दों में प्रशंसा करते हैं।

हर्ष वर्धन के शासन काल में नालन्दा महाविहार को पूर्ण राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ, जिसके फलस्वरूप यह जगत प्रसिद्ध महाविहार बन गया। इसके निर्वाह के लिए हर्षवर्धन ने लगभग एक सौ गांवों की आय दिया था। इन गांवों से प्रतिदिन दो सौ गृहस्थ प्रतिदिन कई सौ पिकल (एक पिकल = 133 1/8 पौण्ड) साधारण चावल तथा कई सौ कट्टी (एक कट्टी = 160 पौण्ड) घी और मक्खन नालन्दा महाविहार को दान दिया करते थे, जिससे यहाँ अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को जीवनोपयोगी वस्तुएं इतनी अधिक मात्रा में उपलब्ध थीं कि उन्हें मांगने के लिए कहीं नहीं जाना पड़ता था। ह्वेनसांग यहाँ विद्यार्थियों की संख्या दस हजार बताता है। नालन्दा महाविहार में भारत के अलावा चीन, मंगोलिया, तिब्बत, मध्य एशिया आदि देशों से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। यहाँ अध्ययन-अध्यापन की स्तर उच्चकोटि का था। प्रवेश के लिए परीक्षा की जाती थी। यहाँ सेजो विद्यार्थी स्नातक कर लेता था, उसका बड़ा ही सम्मान था।

नालन्दा महाविहार में मुख्यतः महायान बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती थी। पाठ्यक्रम में महायान तथा बौद्ध सम्प्रदायों के ग्रंथों के अतिरिक्त वेद, शब्द-विद्या, योगशास्त्र चिकित्सा, तन्त्र विद्या आदि की शिक्षा व्याख्यानों के माध्यम दी जाती थी। ह्वेनसांग का कहना है कि नालन्दा महाविहार में सैकड़ों उच्च कोटि के विद्वान निवास करते थे। इनमें शीलभद्र अकेले ऐसे विद्वान थे, जो सभी संग्रहों के ज्ञाता थे तथा ह्वेनसांग के समय महाविहार के वही कुलपति थे। इसके अलावा यहाँ के अन्य विद्वानों में चन्द्रपाल, स्थिरमति, प्रभामित्र, जनमित्र, ज्ञानचन्द्र आदि का नाम भी ह्वेनसांग के यात्रा विवरण में पाया जाता है।

नालन्दा महाविहार के पुस्तकालय में ग्रंथों का पाण्डुलिपियों का संग्रह सुरक्षित था, जिसके कारण चीनी यात्रियों का इनके प्रति आकर्षण ज्यादा था। यह पुस्तकालय रत्नसागर, रत्नोदधि तथा रत्नरंजक तीन भव्य भवनों में स्थित था। विश्वविद्यालय का प्रशासन बौद्धिक तथा प्रशासनिक दो परिषदों द्वारा चलाई जाती थी। मन्दसोर अभिलेख के अनुसार नालन्दा महाविहार की ख्याति उनके विद्वानों के कारण हुई। इनके विद्वानों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने तिब्बत में बौद्ध धर्म एवं भारती संस्कृति का प्रचार किया। इस प्रकार नालन्दा महाविहार प्राचीन शिक्षा का एक बहुत ही महत्वपूर्ण केन्द्र था, जिसकी ख्याति केवल भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी फैली हुई थी, जहाँ से सम्पूर्ण देश में संस्कृति का प्रसार होता था, जो तत्कालीन विश्व में विद्या के सर्वोच्च गुणों का पर्याय बन गया था।

### सन्दर्भ-सूची

1. लाइफ ऑफ ह्वेनसांग, पृ. 111-112
2. यस्याम्बुधरावलेहि शिखरश्रेणी विहारावली।  
मालेवार्धविराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञाभुवः।। मन्दसोर प्रस्तर अभिलेख।
3. ह्वेनसांग, वाटर्स में उल्लिखित
4. जिनसेन कृत हरिवंश पुराण, 6/487-488
5. डॉ. आर. के. मुकर्जी, गुप्त इम्पायर
6. A Culture History of India (1975)
7. वासुदेव अग्रवाल-हर्ष चरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन
8. Chaudhary, Gulabehandra-Political History of Northern India from Jain Sources, (650-1300)
9. यदुनन्दन कपूर, हर्ष, 1957

\* \* \* \* \*

## साम्प्रदायिकता की अवधारणा वैचारिक कट्टरता और इतिहास लेखन

अरुणिमा\*

सारांश

राष्ट्रवाद और संप्रदायवाद दोनों अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। राष्ट्रवाद का सम्बन्ध राष्ट्र प्रेम से है। राष्ट्र के सभी नागरिकों के प्रति अपनापन, भाईचारा और आपसी प्रेम की भावना को राष्ट्र प्रेम कहते हैं। इसमें किसी भी तरह का धार्मिक सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक भेद भाव नहीं रहता। बल्कि संपूर्ण राष्ट्रीय प्रतीकों के साथ-साथ देश के निवासियों को अपना समझा जाता है। संप्रदायवाद इसके ठीक विपरीत भावना है। इसके अंतर्गत लोग किसी खास धर्म अथवा संप्रदाय के लोगों के साथ ही अपने पन और भाईचारे की भावना का इजहार करते हैं। साथ ही अपनी धार्मिक मान्यताओं को अन्य धर्म अथवा संप्रदाय के मुकाबले तुलनात्मक रूप से श्रेष्ठ मानते हैं और दूसरों को नीचादि खाने का प्रयास करते हैं। फलतः एक तरह के सामाजिक टकराव की स्थिति पैदा होती है। इससे राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा पैदा हो जाता है। अतः किसी खास धर्म अथवासंप्रदाय को अन्य धर्म अथवा संप्रदाय के मुकाबले श्रेष्ठ मानने वाली प्रवृत्ति सांप्रदायिक प्रवृत्ति कहलाती है। यह प्रवृत्ति भारत में इस्लाम के आने के पश्चात् शुरू होती है। इस प्रवृत्ति को षडयंत्रकारी इतिहासकारों द्वारा एक खास विचारधारा के इतिहास बोध के रूप में एजेंडे के तहत नकार दिया गया है और भारतीय धर्म, संप्रदाय एवं संस्कृति को इसका जिम्मेदार ठहरा दिया गया है। इस सोच का पुरजोर खंडन राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने किया है। इन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि जिस एजेंडे के तहत भारतीय धर्म, संस्कृति और भारतीय साहित्य को सांप्रदायिक प्रवृत्ति के प्रसार के लिए जिम्मेदार बताया गया है वह प्रवृत्ति यहाँ कभी रही ही नहीं है।

**बीज शब्द** : धर्म, साम्प्रदायिकता, इतिहास बोध, इतिहासलेखन, विचारधारा, भारतीयता की उपेक्षा, विनाशकारी मान्यताएँ एवं स्थापनाएँ, इतिहासकारों की वैचारिक कट्टरता, षडयंत्रकारी विदेशी इतिहास दृष्टि।

**प्रस्तावना**—भारत के इतिहास लेखन का सर्वप्रथम प्रयास पश्चिमी इतिहासकारों ने शुरू किया। उन्होंने भारतीय इतिहास को हिन्दू मुस्लिम और अंग्रेज सभ्यता के रूप में विभाजन कर इतिहास लेखन किया है और इस रूप में साम्प्रदायिकता का परिचय दिया है। पश्चिमी इतिहासकारों ने प्रभावित होकर और उनके इतिहास लेखन से प्रेरणा पाकर भारतीय इतिहासकार इस क्षेत्र में उतरे और भारतीय इतिहास लेखन का कार्य प्रारंभ हुआ जिस पर पश्चिमी विचारकों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय इतिहासकारों द्वारा अंग्रेजों की उन्हीं मान्यताओं एवं स्थापनाओं पर ज्यादा जोर दिया गया है जिसके तहत वे इस देश में फूट डालो और राज करो की नीति पर अमल कर रहे थे। इन इतिहासकारों ने खास विचारधारा से प्रभावित होकर एक ही चश्मे से पूरे भारतीय समाज को देखने का प्रयास किया है और एकतरफा इतिहास लेखन किया है जिसका राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने खंडन किया है।

**विषय विस्तार**—भारतीय समाज और संस्कृति सभ्यता के विकास के दौर से ही सहिष्णु एवं उदार रही है। इस संस्कृति ने कभी किसी भी दूसरी सभ्यता तथा संस्कृति को मानने वालों पर आक्रमण नहीं किया है। उसे अपना उपनिवेश अथवा गुलाम नहीं बनाया है। न ही जबरदस्ती उसका धर्म परिवर्तन कराया है और न ही उसने कभी किसी विरोधी मत वाले समुदायों के धार्मिक स्थलों को तोड़ा अथवा नुकसान पहुँचाया है। यह संस्कृति इतनी उदार

\* शोधार्थी ( इतिहास ) बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

रही है कि अन्य समूहों को भी स्वयं के अन्दर आत्मसात करती रही है। 'हिन्दुत्व इतना उदार था कि अनेक मतों के प्रति उदारता का बर्ताव करके उसने उन्हें अपना बना लिया था।'<sup>1</sup> इस भारतीय संस्कृति को हिन्दू संस्कृति भी कहा जाता है। मुसलमानों के आने से पहले यहां जैन, बौद्ध और चार्वाक आदि अलग-अलग संप्रदाय जरूर थे किन्तु उसमें जातीय दुश्मनी नहीं थी। धार्मिक प्रक्रियाओं एवं विचारों के स्तर पर उनमें आपसी विरोध थे। इसके बावजूद टकराव की स्थिति उत्पन्न होती थी कि खून खराबा की नौबत आ जाये। ये स्वभाव से सहिष्णु थे। साम्प्रदायिकता की गंध तक इनमें उपस्थित नहीं था। हरमत और संप्रदाय में विचारधारा के स्तर पर विरोध प्रकट करने और नए विचार प्रस्तुत करने की पूरी स्वतंत्रता थी। भारतीय संस्कृति की इस विशेषता को कुछ इतिहासकारों ने नकारात्मक ढंग से देखा है और यह स्थापना भी दी है कि भारतीय समाज में इस्लाम के आने से पहले भी कई धार्मिक संप्रदाय मौजूद थे और उनमें साम्प्रदायिकता के तत्व समाहित थे। ऐसी धारणाओं का खंडन करते हुए इतिहासकार विपिन चन्द्र ने लिखा है कि, "इस बात को स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सांप्रदायिकता और उसकी उत्पत्ति भारतीय समाज या राजनीति में अंतर्निहित नहीं थी। अभी तो यह ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का परिणाम थी। यह सच नहीं है कि जहाँ कहीं भी विभिन्न धर्म एक साथ विद्यमान होते हैं वहाँ साम्प्रदायिकता अनिवार्य रूप से उत्पन्न होनी चाहिए।"<sup>2</sup>

इस तरह हम देखते हैं कि विभिन्न मतों एवं धार्मिक सम्प्रदायों के होने के बाद भी भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता के तत्व मौजूद नहीं थे। ऐसा इसलिए भी था क्योंकि वह धर्म और सम्प्रदाय के पंडितों द्वारा शास्त्रार्थ की परंपरा थी। ये सभी अपने-अपने धार्मिक विश्वासों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया करते थे। इस चर्चा में विभिन्न सम्प्रदायों की अच्छाइयां और बुराइयां निकल कर सामने आती थीं। फलतः हिन्दुत्व से विरोध स्वरूप अलग हो गये। सम्प्रदाय वापस हिन्दुत्व में शामिल हो जाते थे। जो शामिल नहीं होते थे वे अपनी अलग मान्यताओं एवं धारणाओं के साथ अलग पंथ की स्थापना कर अपने विचारों का प्रचार-प्रसार जनता के बीच करते थे। किन्तु इसके लिए उनके बीच यह कहते हुए खूनी संघर्ष भी नहीं हुए कि केवल हमारी मान्यताएं अथवा हमारा धर्म ही श्रेष्ठ है। इस तरह की प्रवृत्ति इस्लाम के आगमन के पश्चात् ही शुरू हुई थी।

इस्लाम इस देश में एक शासक के रूप में प्रवेश किया था। यही कारण था कि वे स्वयं को श्रेष्ठ समझते थे और यहाँ के धार्मिक विश्वासों को हेय दृष्टि से देखते थे। साथ ही इस्लाम को न मानने वालों पर अत्याचार करते थे। तभी से इस देश में साम्प्रदायिकता की भावना का जन्म होता है। हालांकि इस्लाम के आने के पहले भी इस देश में अलग-अलग सम्प्रदाय थे लेकिन उनका आपस में कभी संघर्ष नहीं हुआ था। कभी संघर्ष होते थे तो वे सैद्धांतिक तौर पर विचारों के खंडन मंडन और एक सम्प्रदाय से अलग हो कर दूसरे सम्प्रदाय के गठन तक का ही होता था। गर्दन काटना और गुलाम बना लेने वाली मानसिकता यहाँ कभी नहीं रही। धार्मिक कट्टरता की शुरुआत मुस्लिम आक्रांताओं के आने और उनके द्वारा किये गये अत्याचार के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई। इस सम्बन्ध में रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि, "भारत की अपनी परंपरा असांप्रदायिक राज्य की परंपरा थी। जैन बौद्ध और वैदिक धर्मावलम्बियों के बीच खटपट यहां भी चलती थी। लेकिन इस देश के राजे राज्य की ओर से किसी भी धर्म का दलन नहीं करते थे। ना ही यहां यह रिवाज था कि राज्य धर्म से भिन्न धर्मों के मानने वाले लोगों को द्वितीय अथवा तृतीय श्रेणी का नागरिक माना जाए, किन्तु मुस्लिम राज्य काल में भारत की यह धर्मनिरपेक्ष नीति समाप्त हो गयी। सुल्तान, बादशाह और नवाब खुल कर मुसलमानों का साथ देने लगे और हिन्दुओं के साथ वही बर्ताव किया जाने लगा जो गुलामों के साथ किया जाता है।"<sup>3</sup> हिन्दू और मुसलमान के बीच प्रेम और सौहार्द तथा गंगा-जमुनी तहजीब को देखते हुए इतिहासकारों का मानना है कि अंग्रेजों से पहले हिन्दू और मुसलमानों के बीच आपसी भाईचारा था। साम्प्रदायिकता जैसी कोई भावना विद्यमान नहीं थी। यह कहना गलत न होगा कि इस तरह के विचार कपोल कल्पित कहानियों की तरह हैं। साथ ही जान बूझ कर मुसलमानों की क्रूरता एवं बर्बरता तथा भारतीय जनता की धार्मिक स्वतंत्रता को खत्म कर जबरदस्ती इस्लाम को थोपने और धार्मिक स्थलों को तोड़ने जैसे उनके कदमों का एक तरफा बचाव करना है। इरफान हबीब जैसे इतिहासकारों की मान्यताएं ऐसी ही रही हैं। उन्होंने राष्ट्रवादी इतिहासकारों की उन स्थापनाओं को जिनमें यह कहा गया है कि साम्प्रदायिकता की शुरुआत मध्य काल में मुसलमानों ने शुरू किया था, पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि, "यह कहना शायद निरापद होगा कि हमारे देश में साम्प्रदायिक विचारधारा को मध्य काल के अध्ययन से जितनी खुराक मिली है उतनी भारतीय

इतिहास के किसी और काल के अध्ययन से नहीं। अनेक विद्वानों की दृष्टि में इस्लाम के आगमन से देश जैसे दो परस्पर संघर्ष रत शिविरों में स्थाई रूप से विभाजित हो गया।<sup>4</sup> यह कहते हुए इरफान हबीब का दृष्टिकोण चाहे जो भी रहा हो किन्तु जब वह कहते हैं कि देश दो शिविरों में विभाजित हो गया था, यह सही है। इसके अलावा जब कुछ इतिहासकार यह कह देते हैं कि भले ही देश दो गुटों में विभाजित हो गया था फिर भी दोनों धर्मों में आपसी सद्भाव था, क्योंकि मुसलमान यहां सैकड़ों वर्षों तक जमे रह गये थे और दोनों एक दूसरे के संपर्क में आ कर दोनों का आपस में समन्वय हो गया था। और गंगा-जमुनी संस्कृति का उदय हुआ था। जाहिर है कि यह एक तरफा आरोपित की गयी संस्कृति है। हिन्दू विचारों के स्तर पर मुसलमानों के साथ उनके धर्म एवं आस्था का सम्मान जरूर करने लगे थे किन्तु मुसलमानों के मन में गैर मुसलमानों के लिए घृणा और नफरत के भाव तब भी थे और आज भी मौजूद हैं।

इसके ठीक विपरीत वैदिक मतावलम्बी सनातनी हिन्दू प्रारंभ से ही सहिष्णु थे और अपने से अलग धर्मों का सम्मान करते थे। हिन्दुत्व के सर्वधर्म समभाव की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए दिनकर ने अलबरूनी के हवाले से बताया है कि, “अलबरूनी ने सत्य ही कहा है हिन्दू जन्मजात अहिंसक थे। अनेक धर्मों का स्वागत करते हुए धार्मिक मामलों में बहुत ही सहिष्णु हो गये थे। महमूद के पहले जो मुसलमान भारत में आये थे उन्हें यहां के राजाओं ने अच्छा प्रश्रय दिया था। अगर कोई उनकी मस्जिदें तोड़ता तो हिन्दू राजे अपराधियों को दंड देते थे तथा टूटी हुई मस्जिदों की मरम्मत अपने पैसों से करवा देते थे। लड़ाई और मारकाट के दृश्य तो हिन्दुओं ने बहुत देखे थे। उन्हें सपने में भी यह ख्याल न था कि दुनिया की एक आध जाति ऐसी भी हो सकती है जो मूर्तियों को तोड़ने और मन्दिरों को भ्रष्ट करने में ही सुख माने। जब मुस्लिम आक्रमण के साथ मंदिरों और मूर्तियों पर विपत्ति आई, हिन्दुओं का हृदय फट गया और वह इस्लाम से तभी जो भड़के अब तक भड़के हुए हैं।”<sup>5</sup>

इस कथन की मदद से सहिष्णुता और साम्प्रदायिकता के स्तर को आसानी से समझा जा सकता है। इस्लाम की उपर्युक्त प्रवृत्तियों की वजह से हिन्दुओं ने सामाजिक आचार-व्यवहार के स्तर पर उनसे दूरी बनानी शुरू कर दी थी। इस दूरी के बीजारोपण को और भी स्पष्ट करते हुए दिनकर जी ने यह लिखा है कि, “इस्लाम केवल नया मत नहीं था। यह हिन्दुत्व के ठीक विपरीत मत था। हिन्दुत्व की शिक्षा थी कि किसी भी धर्म का अनादर मत करो। मुसलमान मानते थे कि जो धर्म मूर्ति पूजा में विश्वास करता है उसे नेस्त नाबूत कर देना ही धर्म का सबसे बड़ा काम है। हिन्दू गौहत्या को सबसे बड़ा पाप समझते थे। मुसलमान गौ भक्षक थे। हिन्दुत्व इतना उदार था कि अनेक मतों के प्रति उदारता का बर्ताव करके उसने उन्हें अपना बना लिया था। किन्तु अब जो नया धर्म भारत में आया वह प्रजा नहीं राजा का धर्म था और इस धर्म की चेष्टा यह थी कि हिन्दुत्व से दोस्ती न करके उसे अपने ही भीतर आत्मसात कर ले। अतएव हिन्दुत्व इस्लाम को लील नहीं सका। इस्लाम से अपनी रक्षा करने में उसे भारी संकटों का सामना करना पड़ा।”<sup>6</sup> यहाँ सर्वसमावेशी हिन्दुत्व का इस्लाम को स्वयं में समाहित न कर सकने के कारणों को स्पष्ट किया गया है। यही वे कारण थे जो हिन्दू और मुसलमानों के बीच की दूरी को बढ़ा रहे थे जो निरंतर बढ़ते ही गये। क्योंकि हिन्दु इस्लाम से पराजित हो चुका था, अतः हिन्दू स्वयं को अपने में ही समेटना शुरू कर चुके थे और मुसलमानों से दूरी बनाने लगे थे। यह दूरी लगातार बढ़ती गयी क्योंकि इस्लाम शासक वर्ग का धर्म था और हिन्दुत्व पराजित वर्ग का धर्म था। इसलिए हिन्दुओं के साथ गुलामों जैसा व्यवहार होता था। धीरे-धीरे मुसलमानों ने लगभग पूरे भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और हिन्दुओं का जबरन धर्म परिवर्तन कराने लगे। इनके अत्याचार तथा धर्मांतरण की प्रक्रिया से जो हिन्दु मुसलमान नहीं बने और हर हाल में हिन्दुत्व को अपने सीने में बचाए रखा वह बाहर से दब जरूर गये किन्तु उनके अंदर ही अंदर मुसलमानों के प्रति घृणा की आग जलती रही। इसे स्पष्ट करते हुए दिनकर ने बताया है कि, “हिन्दु बाहर से तो दब गये लेकिन भीतर ही भीतर उनकी घृणा की भावना उत्कट होती गयी। यह उन्हें केवल मुसलमानों से ही नहीं हुई बल्कि जो हिन्दु मुसलमानों से हेल मेल बढ़ाता अपने मोहल्लों में वह भी घृणित ही समझा जाता था। मुसलमानों ने भारत में अत्याचार तो ऐसे भयानक किए कि जिनका दुनिया के इतिहास में कहीं सानी नहीं है किन्तु भारत का सबसे बड़ा कल्याण उन्होंने यह किया कि हिन्दुओं के हृदय में उन्होंने साम्प्रदायिकता की आग पैदा कर दी। यह चीज यहाँ मुस्लिम साम्प्रदायिकता की देन है।”<sup>7</sup>

इस तरह हिन्दुओं के मन में मुसलमानों के प्रति घृणा की यह आग जो चिंगारी के रूप में हर हिन्दू के मन में सुलग रही थी वह अंग्रेजों के आने के बाद शोला बन गयी। थोड़ी सी धार्मिक स्वतंत्रता तो मिलते ही अत्याचार को बयान करना शुरू कर दिया। अब इस्लाम भी पराजित प्रजा के धर्म के रूप में परिवर्तित हो गया था और दोनों का अब तीसरे धर्म (इसाई) से सामना हो रहा था। ईसाई धर्म इस्लाम की तुलना में कम कट्टर था। साथ ही अंग्रेजों की धार्मिक सत्ता के साथ ज्यादा छेड़छाड़ नहीं करने की नीति थी। अतः हिन्दुत्व अब आकार लेने लगा। हिन्दुत्व की समझ रखने वाले लोग अपने प्राचीन गौरव का बखान करने लगे। दूसरी ओर इस्लाम के पास सिवाय तलवार के कदम पर लोगों को गुलाम बनाने के अलावा कुछ था ही नहीं जिसका वे भी वर्णन करते। इसके बावजूद वे शासक की तरह ही अपनी मानसिकता बनाए हुए थे। उनके मन में यह भावना हिलोरे ले रही थी कि अंग्रेजों के जाने के बाद वे फिर से सत्ता में आएंगे और शासन करेंगे। इसके ठीक विपरीत हिन्दू अब इन दोनों के खिलाफ स्वयं को एक जुट करने में लग गये। अपनी पराजित मनोवृत्ति पर विजय पाने के लिए अतीत के गौरव गान द्वारा एकता का उत्साह पैदा करने की कोशिश की जाने लगी। मुसलमान भी यही सोच रहे थे कि अंग्रेजों को यहां से किसी भी तरह भगाया जाए। 1857 की क्रांति इसी की परिणति थी। कहा जाता है कि यह क्रांति हिन्दू और मुसलमानों के सामूहिक प्रयास से स्वतंत्रता की चाह में हुई थी। इस क्रांति के बारे में यह कहा जाता है कि हिन्दू और मुसलमान एक जुट होकर लड़े थे। यह सच है कि दोनों ने एकजुट होकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई की थी किन्तु इसमें दोनों के निहितार्थ अलग-अलग थे जिसकी ओर इक्के-दुक्के इतिहासकारों ने इशारा किया है। इस संदर्भ में विपिन चन्द्र ने लिखा है कि, “धार्मिक अलगाववाद की प्रवृत्ति के विकास में सैयद अजमद खान की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सैयद अहमद खान ने एक महान शिक्षाशास्त्री और समाज सुधारक थे मगर अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे रूढ़िवादी विचारों के हो गये थे। 1880 के दशक में अपने विचारों को छोड़कर उन्होंने घोषणा की कि हिन्दुओं और मुसलमानों के राजनीतिक हित समान न होकर भिन्न-भिन्न बल्कि एकदम अलग-अलग हैं और इस प्रकार उन्होंने मुस्लिम साम्प्रदायिकता की नींव डाली।”<sup>8</sup>

साम्प्रदायिकता की यह भावना सन् 1880 में अचानक से पैदा नहीं हुई थी बल्कि इसी भावना को केन्द्र में रख कर मुसलमान हिन्दुओं को गुमराह कर रहे थे कि वे अंग्रेजों से आजादी चाहते हैं और उसके बाद हम सब मिलजुलकर रहेंगे। जब कि मामला इसके ठीक विपरीत था। इसे सैयद अहमद खान जैसे मुसलमानों के मनमें दबी इस्लामी शासन की सोच को समझा जा सकता है। “उन्होंने ब्रिटिश शासन के प्रति पूर्ण भक्ति का उपदेश भी दिया। सन् 1885 में जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई तो उन्होंने उसका विरोध करने का और बनारस के राजा शिव प्रसाद के साथ मिल कर ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादारी का आंदोलन चलाने का निश्चय किया। अब यह भी कहने लगे कि हिन्दू भारतीय जनता का बहुमत भाग है इसलिए ब्रिटिश शासन के कमजोर पड़ने समाप्त होने पर मुसलमानों को दबा कर रखेंगे।”<sup>9</sup> अहमद खान की इस स्वीकारोक्ति से मुसलमानों के मन में दबी सांप्रदायिकता की भावना उजागर हो जाती है और उनके द्वारा किये गये अत्याचार पर मुहर लगा देती है। फलतः जिन इतिहासकारों ने अंग्रेजों के खिलाफ एक जुट होने पर मुसलमानों का गुणगान किया है और उन्हें भारत भूमि का निवासी बताते हुए उनके स्वभाव को सहिष्णु दिखाने का प्रयास किया है उन्होंने शायद इस ओर ध्यान ही नहीं दिया है अथवा जान बूझ कर इतिहास लेखन द्वारा भारतीयों को गुमराह किया है। अंग्रेज इसे समझते थे। अतः अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता को भंग करने की नीति बनाई। चूंकि मुसलमानों का उद्देश्य अलग था और वास्तविकता को छुपा कर वे एकता का प्रदर्शन कर रहे थे। अतः जैसे ही इन की दुखती रंग पर हाथ रखा गया इनकी छिपी हुई भावनाएं सामने आ गयीं जिसे शातिर इतिहासकारों ने अंग्रेजों की फुट डालो राज करो की नीति बताया है। विपिन चन्द्र ने सैयद अहमद खान के द्वारा शुरू की गयी सांप्रदायिकता को स्पष्ट करने के बावजूद उसके पीछे की परंपरागत मानसिकता का उल्लेख नहीं किया है और साम्प्रदायिकता को आधुनिकता की उपज बताते हुए उसे अंग्रेजों की देन कहा है। “आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता के विकास के लिए खास तौर पर अंग्रेजी साम्राज्य की फूट डालो और राज करो की नीति जिम्मेदार है।”<sup>10</sup> इतना ही नहीं ऐसा कहते हुए उन्होंने मुसलमानों के राज के समय की परिस्थितियों को पूरी तरह से अछूता छोड़ दिया है और उन्हें बिल्कुल निर्दोश बता दिया है। उन्होंने लिखा है कि, “साम्प्रदायिकता हिन्दुओं अथवा मुसलमानों के बीच मूलभूत पारस्परिक विरोध का या मध्य युग के दौरान उनके तथाकथित संघर्ष का या उनकी संस्कृतियों के बुनियादी टकराव का या दो अलग-अलग था एक दूसरे से भिन्न सभ्यताओं की मौजूदगी का या हिन्दु मुसलमान के बीच सामाजिक

असामंजस्य का परिणाम नहीं है।<sup>11</sup> यहां हम देख सकते हैं कि मुस्लिम अत्याचार और उनके असहिष्णु 'साम्प्रदाय'वाद एक आधुनिक प्रवृत्ति है। इसकी जड़ें आधुनिक औपनिवेशिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना में निहित हैं।<sup>12</sup> इन इतिहासकारों द्वारा मुसलमानों की बर्बरता पर पर्दा डालते हुए तमाम धार्मिक बुराइयों का ठीकरा अंग्रेजों पर फोड़ दिया गया और बताया गया कि उपनिवेश बनने के बाद राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के सामंजस्य की वजह से साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ। इतना ही नहीं उन्होंने साम्प्रदायिकता का कारण राष्ट्रवाद को बताया है। उन्होंने लिखा है कि, "एक और कारण जिसने साम्प्रदायिकता की वृद्धि में प्रभावशाली ढंग से सहयोग दिया वह था बीसवीं शताब्दी के आरंभ में अधिकांश राष्ट्रीय चिंतन पर हिन्दुत्व का गाढ़ रंग चढ़ना और इसका प्रचार होना। इस हिन्दू रंग के परिणामस्वरूप मुसलमान लोग राष्ट्रीय आंदोलन से विमुख होकर अलग हट गये और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की ओर आकृष्ट हुए। अनेक जातिवादी नेताओं ने राष्ट्रीयता की भावना तथा प्रचार में हिन्दू धार्मिकता का गहरा रंग चढ़ा दिया। यहाँ तक की राष्ट्रीयता को हिन्दुत्व के पुनरुत्थान के साथ एकीकृत कर दिया।"<sup>13</sup>

यहाँ साम्प्रदायिकता की वजह को हिन्दुत्व के गौरव गान से जोड़ दिया गया है। साथ ही सांस्कृतिक रूप से जिन महापुरुषों ने संपूर्ण भारत को एक करने की कोशिश की थी उनके प्रयासों को ही सांप्रदायिक बताया गया है। इस संदर्भ में उनका यह कथन दृष्टव्य है कि, "तिलक ने गणेश पूजा तथा शिवाजी त्योहारों का इस्तेमाल राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए किया। कुछ अन्य लोगों ने भारत माता को तथा भारतीयता को अभिन्न घोषित किया। उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति को मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति से अलग करके देखा और इस बात पर जोर भी दिया। बंकिम चन्द्र तथा अन्य बंगाली हिन्दी तथा उर्दू लेखकों ने अपने उपन्यासों, नाटकों, कविताओं तथा कहानियों में बार-बार मुसलमानों का उल्लेख विदेशियों के रूप में किया। इसके अतिरिक्त हिन्दी प्रतीकों और मुहावरों के इस्तेमाल के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता आंदोलन में एक अस्पष्ट हिन्दू वातावरण फैल गया। वस्तुतः कुल मिला कर राष्ट्रीय आंदोलन मूलतः अपने दृष्टिकोण तथा विचार धारा में धर्म निरपेक्ष था और युवा मुस्लिम राष्ट्रवादियों को इसे स्वीकार करने तथा आंदोलन में शामिल होने में ज्यादा कड़िनाई नहीं हुई।"<sup>14</sup> विपिनचन्द्र का यह विचार 'चोरी भी सीना जोरी भी' जैसा विचार है। अर्थात् एक तो मुसलमान इस देश में आक्रमणकारी की तरह आए और यहां के लोगों की आस्था पर चोट की, उनकी देव मूर्तियां तोड़ीं, उन्हें धर्म बदलने पर मजबूर किया, उनकी बहू, बेटियों का बलात्कार किया और उन्हें अपना गुलाम बनाया फिर जब अंग्रेजों की वजह से उन्हें अपने भावों की अभिव्यक्ति की थोड़ी छूट मिली, जो कि मुस्लिम शासन में असंभव था, तब हिन्दुओं ने इनके अत्याचार से पर्दा हटाकर अपने प्राचीन गौरवशाली अतीत का गुणगान किया तो विपिन चन्द्र जैसे इतिहासकारों को उसमें सांप्रदायिकता की बू नजर आने लगी। उन्होंने मुस्लिमों की साम्प्रदायिक भावना को यह कहकर ढकने का प्रयास भी किया है कि मुसलमान अल्पसंख्यक थे अतः उनके मन में असुरक्षा की भावना थी। धर्म के प्रति उनका लगाव वास्तविक था जिसे साम्प्रदायिक भावना कहा तो जा सकता है किन्तु वह भावना अल्पसंख्यक होने की वजह से पैदा हुई।

"मुस्लिम साम्प्रदायिक प्रचार ने भी एक निश्चित प्रगति की क्योंकि भारत में मुसलमान धर्मानुयायी अल्पसंख्यक थे। विश्वभर में अल्पसंख्यकों की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उन्हें यह खतरा रहता है कि बहुसंख्यक लोग उन पर हावी ना हो जाएं भले ही ऐसा महसूस करने के वास्तविक आधार मौजूद ना हों। इस सम्बन्ध में बहुसंख्यकों का विशेष दायित्व होता है। उन्हें एक निश्चित उदारता के साथ व्यवहार करना चाहिए जिससे कि अल्पसंख्यकों का भय धीरे-धीरे जाता रहे। दुर्भाग्यवश हिन्दू साम्प्रदायवाद ने इसके विपरीत भूमिका अदा की उन्होंने अल्पसंख्यकों को भयमुक्त करने के लिए उनको पर्याप्त सुरक्षा तथा शासन देने की नीति का सक्रिय रूप से विरोध किया। उन्होंने भारत को हिन्दुओं की भूमिका कहा और घोषित किया कि हिन्दुओं का यह एक अलग राष्ट्र है।"<sup>15</sup> हिन्दू साम्प्रदायिकता के लिए हिन्दू राष्ट्रवादी भावनाओं के साथ-साथ हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों का उल्लेख करने वाले इतिहासकारों ने इसका जिक्र कहीं नहीं किया है कि भिन्न-भिन्न संप्रदायों के होने के बावजूद हिन्दुत्व ने कभी किसी को दबाया हो अथवा किसी पर आक्रमण किया हो। जिस धर्म ने स्वतंत्र रूप से अपनी-अपनी स्थापनाओं और मान्यताओं के प्रसार में किसी की राह में रोड़े नहीं अटकाया, वह इस्लाम के प्रसार में आड़े क्यों आता?

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अपने गौरवशाली अतीत को रूपाकार देने का प्रयास किया था जिसे इस देश के वामपंथी इतिहासकार जिनका एजेंडा इस देश में मुसलमानों का शासन फिर से स्थापित करने का रहा



है, साम्प्रदायिक घोषित कर दिया है। चूंकि वामपंथी इतिहासकारों की अकादमिक जगत पर स्वतंत्रता के बाद से ही मजबूत पकड़ रही है। अतः वे अपने मनमुताबिक इतिहास को तोड़-मरोड़कर हमारे सामने प्रस्तुत करते रहे हैं। इनका खंडन करते हुए जिस किसी ने भी नए तरह से राष्ट्रवादी भावना से प्रेरित होकर भारतीय इतिहास की वास्तविक तस्वीर सामने लाने का काम किया है उसे इन लोगों ने एजेंडे के तहत साम्प्रदायिक बता दिया है और उसे हिन्दुत्व का समर्थक बता कर पूरी दुनिया में उन इतिहासकारों के खिलाफ दुष्प्रचार करवाया है। राष्ट्रवादी इतिहासकारों को साम्प्रदायिक बताने वाली इस प्रवृत्ति को हम असगर अली नामक एक विचार के कथन से आसानी से समझ सकते हैं। असगर अली इंजीनियर ने लिखा है कि, "साम्प्रदायिक रुझान वाले इतिहासकारों और निहित स्वार्थों वाले राजनेताओं ने हमारे मध्यकालीन इतिहास को साम्प्रदायिक बना दिया है। जिसके विनाशकारी परिणाम हुए हैं। इस तरह के इतिहास में हमारे अपने समय में (आधुनिक युग) हिन्दू-मुसलमान के रिश्तों को बुरी तरह प्रभावित किया है।"<sup>16</sup> यहाँ हम देख सकते हैं कि राष्ट्रवादी सोच वाले लेखकों एवं नेताओं को हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों को प्रभावित करने वाला बताया गया है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया है जब कि यह साफ जाहिर है कि हिन्दुओं के हित की बात करने यह रिश्ता प्रभावित होता है। इस रिश्ते की सच्चाई यह है कि हिन्दू चुप रहें और इस्लाम की बर्बरता और साम्प्रदायिक सोच के खिलाफ आवाज न उठाएं। आवाज उठाने पर रिश्ते प्रभावित होंगे दर असल इसी मानसिकता के साथ अब तक का भारत का एकतरफा इतिहास लेखन होता आया है जिसमें सुधार करने की सख्त आवश्यकता है।

**निष्कर्ष**—साम्प्रदायिकता, इतिहासबोध और राष्ट्र प्रेम को लेकर तमाम इतिहासकारों के मतों का अध्ययन करने के पश्चात् मेरा मानना है कि साम्प्रदायिकता को लेकर इतिहासकार दो भागों में बँटे हुए हैं। पहले पक्ष के इतिहासकार यह मानते हैं कि साम्प्रदायिक सोच का उद्भव मुसलमानों के आने के फलस्वरूप हुआ तो दूसरे पक्ष के लोगों का मानना है कि इस देश में विभिन्न धर्म सम्प्रदाय को मानने वाली जनता के मन में यह धारणा विद्यमान तो थी किन्तु इस की शुरुआत के लिए अंग्रेजों के आने के पश्चात उनी फूट डालो और राज करो की नीतियाँ जिम्मेदार थीं। इन दोनों तरह के इतिहासकारों के विचारों का विवेचन विश्लेषण आज भी तटस्थता की मांग करता है और नए इतिहास लेखन की आवश्यकता पर बल देता है।

### संदर्भ—सूची

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृ. 238
2. सत्याराय (सं.)—भारत में राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यन्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1985, पृ. 357
3. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृ. 238
4. इरफान हबीब — भारतीय इतिहास में मध्य काल, (अनु. रमेश रावत), ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृ. 11
5. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृ. 238
6. वही, पृ. 237-38
7. वही, पृ. 241
8. विपिन चन्द्र—आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2013, पृ. 258
9. वही, पृ. 258
10. सत्याराय (सं.) — भारत में राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यन्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1985, पृ. 365
11. वही, पृ. सं. 357
12. विपिनचन्द्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 256
13. सत्या राय (सं.) —भारत में राष्ट्रवाद, पृ. 368
14. वही, पृ. 368
15. वही, पृ. 369
16. असगर अली इंजीनियर—भारत में साम्प्रदायिकता इतिहास और अनुभव, इलाहाबाद प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003, पृ. 21

\* \* \* \* \*

## भारतीय साहित्य में श्रीराधा : एक विमर्श

अवधेश कुमार\*

कृष्ण की प्रेयसी राधा का भारतीय साहित्य में एक अलग स्थान रखती है। साहित्य प्रेमियों में जो भी विद्वान हुए उन्होंने राधा का उत्कृष्ट परिचय अपने साहित्य के माध्यम से कराने का प्रयास किया। अनन्त ब्रह्माण्ड के नामक तथा वृंदावन की सुरम्य भूमि पर अपनी मोहनी छटा से सबको वशीभूत कर लेने वाले त्रिभंगीलाल भगवान् श्रीकृष्ण रसमय विग्रह हैं और उनकी सहचरी सम्पूर्ण गोपियों की मुकुटमणि रासेश्वरी श्री राधिका नित्यानन्दमयी मूर्ति हैं।<sup>1</sup> राधा और कृष्ण दोनों एक ही तत्त्व के युगल-मूर्ति हैं। उन दोनों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं दिखायी देता।

“येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकं क्रिडनार्थं द्विधाऽभूत्।

देहो यथा छायाया शोभमानः शृण्वन् पठन् याति तद्धाम शुद्धम्।।”<sup>2</sup>

जहाँ भगवती श्रीराधा है, वहीं परात्पर-ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण भी। भगवान् श्रीकृष्ण रासेश्वर हैं, तो श्रीराधा रासेश्वरी। श्रीराधा संस्कृत वाङ्मय के सरोवर में प्रस्फुटित होने वाली सर्वश्रेष्ठ कनक कुंज-कलिका हैं, वह काव्य की अधिष्ठात्री, भक्ति की निर्झरिणी, कला की उत्स और प्रेम की साक्षात् मूर्ति हैं। राधा कोई पार्थिव प्रतिमा नहीं अपितु वह तो पराशक्ति का प्राकट्य है।<sup>3</sup>

महर्षि पाणिनि के व्याकरणात्मक दृष्टि से विचार करने पर हमें ज्ञात होता है कि ‘राधा’ शब्द की व्युत्पत्ति ‘स्वादि परस्मैपदी राध्’ धातु से संसिद्ध अर्थ में निष्पन्न है<sup>4</sup>, जिसका अर्थ ‘आराधना’ है। अतः राधा शब्द का अर्थ आराधना करने वाली से है। वेदों में भी श्रीराधा का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।<sup>5</sup> अमरकोश के अनुसार, ‘राधा’ को वैशाख की पूर्णिमा, वृषभानु गोप की कन्या तथा श्रीकृष्ण की प्रेयसी बताया गया है।

पुराणों में मुख्यरूप से ‘ब्रह्मवैवर्तपुराण’ तथा ‘देवीभागवत’ में राधा शब्द ‘रा’ और ‘धा’ अक्षरों से मिलकर निष्पन्न है जिसका अर्थ ‘भक्ति’ प्रदान करने वाली बताया गया है।<sup>6</sup>

पं० बलदेव उपाध्याय ने ‘राधः’ और ‘राधा’ दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति ‘राधबृद्धौ’ धातु से मानते हैं। वे कहते हैं कि ‘आ’ उपसर्ग जुड़कर ‘आराधयति’ धातु पर बनता है, जिसका अर्थ आराधना से है। इस प्रकार ‘राधा’ वैदिक ‘राधः’ या ‘राधा’ का व्यक्तिकरण है।<sup>7</sup>

राधा-तत्त्व के विकास पर यदि विचार किया जाय तो इस तत्त्व के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है जिसमें से प्रथम चरण में ‘श्रीराधा’ नाम का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, वहाँ पर उन्हें श्रीकृष्ण की एक विशेष-प्रेमपात्री के रूप में दिखाया गया है, द्वितीय चरण में हम श्रीराधा के नाम से परिचित होते हैं। इसका समय 13वीं या 14वीं सदी तक माना जा सकता है। गाथासप्तशती<sup>8</sup> में श्रीराधा का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। जयदेव कृष्ण ‘गीतगोविन्द’ में श्रीराधा का स्पष्ट नामोल्लेख प्राप्त होता है। वहाँ श्रीराधा कृष्ण की प्रियतमा तथा प्रेमाधार रूप में चित्रित है। जयदेव के समय को राधा-तत्त्व के साहित्यिक उन्मूलन का मुख्य काल कहा जा सकता है। इस काल में राधा का आविर्भाव पूर्णरूप से सिद्ध हो चुका था। जयदेव का उद्देश्य राधा माधव के निकुंज लीला का वर्णन है, अतः उसकी पूर्ति के लिए विरह की विविध दशाओं से होकर कवि आनन्दमयी अनुभूति पर पहुँचता है। इस समय श्रीराधा का चित्रण आदर्श नायक-नायिका के रूप में साहित्य संसार में स्वीकृत हो चुका था।<sup>9</sup>

\* प्रचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर, विश्वविद्यालय, गोरखपुर

जयदेव की राधा कोई पार्थिव प्रेम की प्रतिमा नहीं, अपितु दिव्य भक्ति की संचारिणी कल्पलता है। वह अपने आराध्य के वास्तविक दोषों का तनिक भी ख्याल नहीं करती है। वह जानती है कि वह 'बहुवल्लभा' है, अतः उनकी प्रीति-पात्री कोई एक नहीं हो सकती है।

'गर्गसंहिता' में यदुवंश के महान आचार्य गर्गजी ने 'श्रीराधा' को स्वीकाया के रूप में प्रतिस्थापित किया है। यह सम्पूर्ण संहिता 'राधा' एवं 'कृष्ण' की दिव्य माधुर्यभाव मिश्रित लीलाओं का विशद वर्णन है। भागवत में जो कुछ सूत्र रूप में है, इसमें वही विशद वृत्तिरूप में वर्णित है। श्रीमद्भागवत में श्रीराधा की उपासना एवं पूजा पद्धति का विशेष उल्लेख प्राप्त होने से यह स्पष्ट हो जाता है। कि इस युग में श्रीराधा को श्रीकृष्ण का साहचर्य प्राप्त हो गया था। वहाँ पर श्रीराधा के चिन्मयस्वरूप तथा महत्ता पर विशेष प्रकाश डाला गया है।<sup>10</sup>

निम्बार्क तथा बल्लभाचार्य द्वारा निर्दिष्ट श्रीराधा को इसी कोटि में रखा जा सकता है। मध्ययुग के प्रेमाश्रयी शाखा में वैष्णवों का निम्बार्क सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। सर्वप्रथम राधा का धार्मिक उद्भव इसी सम्प्रदाय में हुआ। निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की युगल उपासना का प्रचलन है। निम्बार्क के शिष्य श्री औदुम्बराचार्य ने 'औदुम्बर संहिता' में राधा-कृष्ण के युगल तत्त्व का विशेष रूप से विवरण प्रस्तुत किया है और यह भी कहा है कि यह युगल मूर्ति निरन्तर वृंदावन में रमण करती रहती है। निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों ने द्वित्व में एकत्व की स्थापना की है। उन्होंने राधा तत्त्व को कृष्ण तत्त्व से अलग नहीं माना।

पुष्टिमार्गीय भक्ति में कृष्ण के साथ 'स्वामिनीजी' के नाम से राधा रानी को जाना जाता है। राधा और कृष्ण की अद्वैतता को स्थापित करना है। बल्लभाचार्य का उद्देश्य था। चैतन्यमत में राधा रानी के प्रेम तत्त्व की अत्यन्त मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। साधक अपने मानस में प्रेम को सिद्ध करने के लिए क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव से होता हुआ महाभाव तक पहुँचता है तब विशुद्ध प्रेम प्रकट होता है, उस प्रेम की मधुर प्रतिमा का नाम राधा है, जिसके आधीन स्वयं कृष्ण रहते हैं।

राधा तत्त्व की विवेचना में राधावल्लभ की अपनी अलग ही चमक है। इस सम्प्रदाय के संस्थापक हित हरिवंश जी ने 16वीं शताब्दी में वृंदावन में इसकी स्थापना की थी। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में राधा को अनादि ब्रह्म का नित्य रूप स्वीकार किया गया है। राधा जी का वर्णन हमें संस्कृत साहित्य में भी मिलता है। मैथिली काव्य में भी श्री राधा का वर्णन प्राप्त होता है। राधा कृष्ण की अनुपम-अलौकिक प्रेम केलि का मधुरतम उदाहरण विद्यापति के पदों में विद्यमान है। इसके अलावा हमें विभिन्न भाषाओं के साहित्य में श्रीराधा का वर्णन प्राप्त है। बंगला साहित्य में श्रीराधा का उल्लेख मिलता है। सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हरिदास जी थे। अब तक राधा के स्वरूप विकास के क्रम में जितना कुछ जाना सुना गया, सखी सम्प्रदाय की राधा उससे नितान्त भिन्न दिखाई पड़ती है। सखी सम्प्रदाय के चिन्तन, मनन में नित्यीवहारी कृष्ण से परे कोई नहीं दिखाई पड़ता और रासेश्वरी राधा को प्रकृति स्वरूपा स्वीकार किया गया है।

संस्कृत साहित्य में जयदेव का गीतगोविन्द राधा कृष्ण की लीलाओं के चित्रण के लिए गौरवग्रन्थ के रूप में पूजनीय है। मैथिल कोकिल विद्यापति के पंचम स्वर में विशिष्ट मोहकता विद्यमान है और बंगाल के लोग चण्डीदास के पागलपन पर सम्मोहित दिखाई पड़ते हैं। ये तीनों ही कवि राधा की परकीया भाव से आराधना करते हैं। सुरदास जी ने राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण बहुत सुन्दर भाव से करने का प्रयास किया है। गुजराती, मराठी, तेलुगू, तमिल, कन्नड़ साहित्य में भी हम राधा का उल्लेख प्राप्त होता है।

भारत के महान कवियों की अद्भुत कल्पना ने जिन लोकोत्तर पात्रों की सृष्टि की है, राधा उनमें से एक है। राधा की परिकल्पना भारतीय साहित्य की अपूर्व उपलब्धि है। यह आश्चर्य का विषय है कि मध्ययुग में श्रीराधा को जो महत्व प्राप्त हुआ था, वह श्रीकृष्ण विषयक प्रमुख ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में नहीं है। पुराणों में राधा का विषद वर्णन मिलता है। फलतः राधा नायिका का स्थान ग्रहण कर सकी। सगुण भक्ति साहित्य में भी श्रीराधा स्वकीया और परकीया दोनों भावों में वर्णित है। परकीया तत्त्व को चैतन्य सम्प्रदाय में मान्यता मिली है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार स्वकीया-परकीया दोनों भाव अपूर्व हैं। साहित्यिक श्रीराधा परकीया भी सुरदास की राधा स्वीकाया में अधिकतर श्रीराधा की परकीया भावना ही उभरी है। अष्टछाप के कवि दिन में सखा का भाव और रात में सखी का भाव रखते थे। अष्टसखियाँ राधिका का ही कामा-व्यूह-रूप है।

वस्तुतः श्रीराधा आराधना का प्रतीक है। राधिका भगवत् कोटि और जीव कोटि दोनों में विचरण करती है। लोक जीवन में राधा-कृष्ण लोकप्रिय युगलमूर्ति है। जहाँ सुधि कवियों की प्रिय गायिका राधिका है। श्रीराधा अनादि काल से जनमन का रंजन करती आयी है और अनन्त काल तक करती रहेगी। बदलते सन्दर्भों में रूप उसका भी बदलेगा। जब तक कृष्ण की उपासना होती रहेगी, तब तक राधा रानी के स्वरूप की भी आराधना होती रहेगी।

#### संदर्भ सूची

1. बलदेव उपाध्याय, भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा।
2. राधातापनीपोपनिषद्, श्लोक-12
3. डॉ० मीरा द्विवेदी, भारतीय साहित्य एवं कला में श्रीराधा।
4. पाणिनि व्याकरण, धातुपाठ क्रमांक, 1344, 45
5. ऋग्वेद-3/3/12
6. ब्र०वै०पु० कृष्णजन्मखण्ड-52/40
7. पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा।
8. गाथासप्तशती-1/89
9. गीतोगोविन्द-1/3
10. देवीभागवत-9/2/51

\* \* \* \* \*

## धर्मशास्त्रों में नारी का सामाजिक जीवन : एक अनुशीलन

मन्जू यादव\*

सृष्टि की मेरुदण्ड नारी को विश्व के सभी राष्ट्र की संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। हमारी सांस्कृतिक विरासत में नारी-गरिमा के दृष्टान्तों की कमी नहीं है, पर वे अधिकांशतः कौटुम्बिक भूमिकाओं के दायरे में आबद्ध हैं। नारी की गरिमामय सामाजिक स्वीकृति हमारी परम्पराओं में सैद्धान्तिक एवं धार्मिक रूप से भले ही रही हो, पर समाज के व्यवहारिक सन्दर्भों में ऐसी स्वीकृति के साक्ष्य कम ही परिलक्षित होते हैं। संस्कृति की संवाहिका समझी जाती रही नारी के सांस्कृतिक परिवेश को सांस्कृतिक औदार्य के कृत्रिम आवरण के पीछे छिपाया गया प्रतीत होता है।

मानव जाति में नारी का एक पृथक् अस्तित्व है। अन्य प्राणियों की तरह वह भी एक स्वायत्त एवं स्वतंत्र जीव है, लेकिन यही जीव ऐसे जगत् में रहता है, जो उसकी अतिक्रमण की क्षमता को कुन्द करके उसको हमेशा अन्तर्वर्ती अवस्था में रख देना चाहता है। नारी की जिन्दगी का नाटक इसी संगति में निहित है। एक ओर वह प्रत्येक व्यक्ति की मौलिक चाह की तरह स्वयं के लिए तथा जगत् के लिए अनिवार्य होना चाहती है तथा सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होना चाहती है, तो दूसरी ओर उसे उस परिस्थिति का सामना करना पड़ता है, जो हमेशा उसे नगण्य बनाने पर तुली रहती है।

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत स्त्रियों का स्थान अत्यन्त गौरवशाली रहा है। उन्हें आदरणीय स्थान प्रदान करते हुए पाश्चात्य विद्वानों की उस धारणा को निर्मूल सिद्ध किया गया कि स्त्रियों में अस्थिरता का दोष है और वे पुरुषों की तुलना में हीन तथा उनमें न्याय की भावना बहुत कम होती है क्योंकि वह ईर्ष्या की भावना से ओत-प्रोत होती है। हमारे मौलिक सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों को ज्ञान सुख सम्पत्ति और शान्ति का प्रतीक माना गया है। कन्या, पत्नी और माँ के रूप में वे समाज की आधारशिला थी। ऋग्वेद में स्त्री के गौरव को स्पष्ट करते हुए ब्रह्मा कहा गया है। वैदिक युग में पुत्र एवं पुत्री के सामाजिक अधिकार में बहुत अन्तर नहीं था। पुत्र के समान पुत्रियों को भी उपनयन, शिक्षा-दीक्षा एवं यज्ञादि का अधिकार प्राप्त था। वेदों में इन्द्राणी के आदर्श रूप की व्याख्या, इससे स्पष्ट होती है, जब वे कहती हैं मैं समाज में मूर्धन्य हूँ, मैं अग्रगम्य हूँ और प्रखर वक्ता हूँ।<sup>1</sup> ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में स्त्री को अषाढा, सहमाना, सहस्रवीर्या, सपत्नीनी, जयन्ती, अभिभूतरी आदि कहा गया है।<sup>2</sup> समाज में धीरे-धीरे उनका महत्व इतना बढ़ गया कि उसके बिना अकेला पुरुष अधूरा और अपूर्ण समझा गया है।<sup>3</sup>

धर्मशास्त्रों में वर्णित आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित्त से सम्बन्धित विधानों का मुख्य बिन्दु स्त्री एवं पुरुष है। वैदिक सामाजिक व्यवस्था में स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी व सहधर्मिणी मानी गयी है और स्त्री पुरुष को समान अधिकार प्राप्त थे।<sup>4</sup> इस काल में पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार व्यवस्था प्रचलित थी। अथर्ववेद में इस व्यवस्था में पति-पत्नी को परिवार रूपी राज्य सम्राट एवं सम्राज्ञी कहा गया है।<sup>5</sup> इसी वेद में घर के कार्यों में पुरुष को हस्तक्षेप न कर स्त्री को बोलने को कहा गया है।<sup>6</sup> साथ ही यह भी कहा गया है कि पत्नी का पति पर पूर्ण अधिकार होता है।<sup>7</sup> स्त्री धर्मपत्नी है और पति गृहपति।<sup>8</sup> ऋग्वेद में पत्नी को ही गृह कहकर उसके महत्व को स्पष्ट किया गया है। ऋग्वेद में समाज पूर्णतया पितृसत्तात्मक था। समाज में पुत्र को विशेष महत्व प्राप्त था। इसके विविध मन्त्रों में पशुधन, ऐश्वर्य, भूमि तथा कई पुत्रों की प्राप्ति की प्रार्थना<sup>9</sup> आर्यजनों में मुखरित होती है। पुत्री जन्म हेतु एक भी प्रार्थना उपलब्ध नहीं है। पुत्र का न होना दरिद्रता के तुल्य निन्दनीय कहा गया है।<sup>10</sup>

\* शोध छात्रा, प्रचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर

उपर्युक्त विवरण का आशय यह कदापि नहीं है कि ऋग्वैदिक काल में नारियों की दशा साराहनीय नहीं थी। कन्या का जन्म अवांछनीय नहीं थी। ऋग्वेद स्त्रियों की गौरवपूर्ण स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है। समाजिक कार्यों की पूर्णता एवं सम्पन्नता में स्त्रियों की केन्द्रीय भूमिका का दर्शन प्राप्य है।

मानव जीवन को सुव्यवस्थित बनाने के उद्देश्य से आश्रमों का विधान किया गया था। शास्त्रकारों ने आश्रम व्यवस्था के माध्यम से प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के आदर्शों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। अत्यन्त प्राचीन धर्मसूत्रों के समय में भी चार आश्रम की चर्चा हुई है, यद्यपि नामों एवं अनुक्रम में थोड़ा हेर-फेर है। मानव-जीवन का प्रथम भाग ब्रह्मचर्य है, जिसमें व्यक्ति गुरुगृह में अनुशासन एवं संकल्पपूर्वक रहकर साहित्य का ज्ञान प्राप्त करता था। उसे आज्ञाकारिता आदर, सादे जीवन एवं उच्च विचार के सद्गुण सीखाने पड़ते थे। दूसरे भाग गृहस्थ आश्रम में वह विवाह करके गृहस्थ हो जाता है और सन्तानोत्पत्ति के द्वारा पूर्वजों के ऋण एवं यज्ञ आदि करके देवों के ऋण से मुक्ति पाता है।<sup>11</sup> लगभग 50 वर्ष की अवस्था में वह संसार के सुख एवं वासनाओं की भूख से उब उठता था और वन की राह पकड़ता था।<sup>12</sup> यह वानप्रस्थ आश्रम होता था, जिसमें व्यक्ति आत्म-निग्रही, तपस्वी एवं निरपराध जीवन व्यतीत करता है। इसके उपरान्त संन्यास आश्रम होता है, जहाँ व्यक्ति जीवन के अन्तिम लक्ष्य, मोक्ष प्राप्त करता है। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों का भार वहन करने के कारण श्रेष्ठ बताया गया है।<sup>13</sup> जिस प्रकार सभी प्राणी वायु के सहारे जीवित रहते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ आश्रम से जीवित रहते हैं। धर्मशास्त्रकार गृहस्थ आश्रम को बहुत गौरव देते हैं।

वैदिक वाङ्मय में ऋषिकाओं का सूक्त है। ऋषियों की भाँति ऋषि कन्याएँ भी ऋचाओं का निर्माण करती हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियों को मन्त्र के अध्ययन एवं सृजन से विरत नहीं किया जाता था। स्त्रियों की शिक्षा सम्बन्धी असीम अधिकार, इससे भी स्पष्ट होता कि यदि कोई स्त्री जीवन पर्यन्त नैष्ठिक जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मवादिनी रहना चाहे तो उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। समाज में स्त्रियों के दो भेद हैं— ब्रह्मवादिनी एवं सद्योवाह। सद्योवाह वह नारियाँ थीं जो विवाह के पूर्व तक विद्या ग्रहण करने एवं वेदाध्ययन करने के लिए अधिकृत थीं। विवाहोपरान्त विभिन्न प्रकार के धार्मिक संस्कार एवं पूजा-पाठ का दायित्व पूर्ण करती थीं। ब्रह्मवादिनी वह स्त्रियाँ होती थीं, जो सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र थीं। ये वैदिक ऋचाओं मन्त्रों एवं मीमांसा जैसे गूढ़ विषयों के रहस्य जानने में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित करती थीं। शिक्षित स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति अध्ययन करते हुए आचार्य, अध्यापिका, उपाध्याया आदि पदों को सुशोभित करती थीं।

वैदिक काल में संस्कार का अत्यधिक महत्व था। स्त्री एवं पुरुष दोनों का संस्कारों से संस्कृत होना आवश्यक था। कतिपय संस्कार, जो आज मात्र पुत्र के लिए ही आरक्षित हो गए हैं, उस समय स्त्रियों के लिए भी विधेय थे। संस्कारों की संख्या से स्पष्ट होता है कि विभिन्न संस्कारों के अलग-अलग उद्देश्य हैं। उपनयन संस्कार का उद्देश्य आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक शान्ति प्राप्त करना था। संस्कार करने वाला व्यक्ति नये जीवन का आरम्भ करता था, जिसके लिए वह नियमों के पालन के लिए प्रतिश्रुत होता था। नामकरण, अन्नप्राशन एवं निष्क्रमण जैसे संस्कार का केवल लौकिक महत्व था, उनमें से केवल प्यार, स्नेह एवं उत्सवों की प्रधानता मात्र झलकती है। गर्भाधान, पुंस्सवन, सीमन्तोन्नयन जैसे संस्कारों का महत्व रहस्यमय एवं प्रतिकात्मक था। विवाह संस्कार का महत्व दो व्यक्तियों को आत्मनिग्रह, आत्मत्याग एवं परस्पर सहयोग की भूमि पर लाकर समाज को चलाते जाने देना था। संस्कार करने से बीज गर्भ से उत्पन्न दोष मिट जाता था। संस्कार के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए मनु ने कहा है कि द्विजातियों में माता-पिता के वीर्य एवं गर्भाशय के दोषों को गर्भाधान के समय होम से दूर किया जाता है।

संस्कारों की संख्या के विषय में धर्मशास्त्रकारों में मतभेद है। गौतम ने 40 संस्कारों एवं आत्मा के आठ शील गुण का वर्णन किया है। जिसमें 5 दैनिक महायज्ञ, 7 पाकयज्ञ, 7 हर्वियज्ञ, 7 सोमयज्ञ एवं 4 वेदव्रत हैं। शंख एवं मिताक्षरा की सुबोधिनी गौतम की संख्या मनाते हैं। वैखानस ने 18 संस्कार गिनाए हैं। व्यास ने 16 संस्कार बताए हैं। निबन्धों में अधिकांशतः 16 संस्कार गिनाए, जो इस प्रकार हैं—

(1) गर्भाधान, (2) पुंस्सवन, (3) सीमन्तोन्नयन, (4) जातकर्म, (5) नामकरण, (6) निष्क्रमण, (7) अन्नप्राशन, (8) मुण्डन, (9) कर्णभेद, (10) उपनयन, (11) वेदारम्भ, (12) समावर्तन, (13) विवाह, (14) वानप्रस्थ, (15) संन्यास, (16) अन्त्येष्टि।



व्यास स्मृति के अनुसार, स्त्रियों के लिए कर्णभेद तक 9 संस्कारों में मन्त्र पाठ आवश्यक नहीं है। विवाह में मन्त्र पाठ होगा। याज्ञवल्क्य व मनु के अनुसार स्त्रियों का विवाह—संस्कार ही वैदिक विधि से मन्त्र पाठ सहित होता है, शेष संस्कार बिना मन्त्र के होते हैं। स्मृति में स्त्रियों का विवाह ही यज्ञोपवीत है, पति सेवा ही गुरुकुल निवास है और गृहकार्य ही अग्निहोत्र है।

मनु ने पुत्र एवं पुत्री के लिए 'संतति' शब्द का प्रयोग करके दोनों को समान महत्व प्रदान किया है।<sup>14</sup> उन्होंने मनुस्मृति में 'पुत्रेण दुहिता समा' कह कर अपनी इस भावना को प्रखर किया। मनु का मत है कि धन-धान्य की कामना करने वाले पिता एवं भाई को कन्या का आदर करते हुए उनका उचित पालन-पोषण करना चाहिए तथा उसे अलंकृत रखना चाहिए। कन्या को प्रसन्न रखने से सुख एवं सम्पन्नता में वृद्धि होती है तथा उनको दुःख देने से कुल एवं परिवार का नाश होता है।<sup>15</sup> कन्या में बिना कारण दोष स्थापित करने वाला दण्डनीय है। प्राचीन भारत में कन्या का महत्व मनु के इस कथन से भी स्पष्ट होता है कि कन्या रत्नस्वरूप है तथा यदि कन्या गुणयुक्त है तो वह छोटे कुल की होने के बावजूद भी उसे ग्रहण करने को निर्दिष्ट किया गया है। याज्ञवल्क्य कन्या के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए कन्या को पूजनीय माना है तथा जो व्यक्ति कन्या के सम्मान को आहत करता है उसके लिए दण्ड का विधान किया गया है। कन्या का अपहरण करने वाला चोर के समान दण्ड का भागी होता है।<sup>16</sup> कन्या पर मिथ्या दोषारोपण करने वाले पर दो सौ पण दण्ड का विधान किया है तथा उनके वास्तविक दोष को भी यदि कोई प्रकाशित करता है तो वह एक सौ पण दण्ड का भागीदार है। द्वेष वश जो पुरुष कन्या को अकन्या कहता है तथा उसका दोष प्रमाणित नहीं कर सकता, वह सौ पण दण्ड भोगता है। कन्या के आत्मसम्मान की रक्षा हेतु याज्ञवल्क्य ने कहा है कि अविवाहित कन्या के साथ सहवास करने वाले पुरुष की गुरुपत्नी भोग करने वाले के समान मानकर ऐसे पातकी का लिंग कर्त्तन कर वध करने का विधान प्रायश्चित्त खण्ड में किया गया है।<sup>17</sup> नारद ने भी कन्या के साथ अभिगम करने वाले पुरुष के लिए जनेन्द्रिय के कर्त्तन रूपी दण्ड का विधान किया है। पराशर स्मृति में भी कन्या का शारीरिक उत्पीड़न करने वाले के लिए समान दण्ड का निर्देश प्राप्त होता है।<sup>18</sup>

कन्या के उपर्युक्त सकारात्मक एवं प्रगतिशील विचारों के साथ उनके संदर्भ में कुछ नकारात्मक दृष्टिकोण भी हैं। नक्षत्र, पेड़, म्लेच्छ, पहाड़, पक्षी, दूत, दासी इत्यादि नामों वाली कन्या से विवाह न करने का निर्देश स्मृति में है। मनु के अनुसार भ्रातृविहीन तथा माता-पिता से हीन कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए।<sup>19</sup> यह दृष्टिकोण कन्या की दयनीय स्थिति की ओर संकेत करता है। भाई तथा माता-पिताहीन होने पर कन्या का क्या दोष है। सामान्यतया कन्या का जन्म सहर्ष न स्वीकार करते हुए भी उनका दर्शन मंगलदायक और शुभ माना गया है। मनुस्मृति को उद्धृत करते हुए के०पी० जायसवाल ने कहा— कन्या की स्थिति बहुत ऊँची है, वह अत्यधिक कृपा की पात्र है, कुछ क्षणों के लिए मनु यह भी भूल जाते हैं कि कन्या वस्तुतः एक स्त्री है।

मनु एवं याज्ञवल्क्य ने माता को गुरु एवं पिता से श्रेष्ठ माना है। स्त्री जीवन की सार्थकता मातृत्व में है। स्त्री के मातृ रूप की आराधना महाशक्ति जगदम्बा और जगतजननी आदि नामों से की गयी है। माता पुत्रोत्पत्ति के द्वारा वंश परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने के कारण घर में पूज्य है। माता, शिशु के सम्यक् पालन-पोषण के कारण पिता की अपेक्षा कहीं अधिक शिशु से घनिष्ठ होती है। माता बालक की प्रथम गुरु होती है। मनु का मत है कि परिवार की समस्त स्त्रियों में माता का स्थान सबसे ऊँचा है। मनु का कथन है दस उपाध्यायों से आचार्य, सौ आचार्यों से पिता तथा सहस्र पिता से माता अधिक गौरवशाली है।<sup>20</sup> आचार्य वशिष्ठ भी इस पर सहमति प्रकट की है। उपनति ब्रह्मचारी को सर्वप्रथम माता से भिक्षा मांगनी चाहिए तथा उसका अनादर कदापि नहीं करना चाहिए क्योंकि माता पृथ्वी की मूर्तिस्वरूप है। माता शिशु के पालन-पोषण आदि का भार पृथ्वी की तरह वहन करती है। माता-पिता एवं गुरु के प्रति सेवा भाव एवं लाभ के महत्व का वर्णन करते हुए धर्मशास्त्रकार कहते हैं कि, मनुष्य को माता-पिता एवं गुरु को नित्य सन्तुष्ट रखना चाहिए, क्योंकि इनके सन्तुष्ट होने पर ही व्यक्ति का तप पूर्ण होता है। माता-पिता एवं गुरु की सेवा से मनुष्य भूलोक अन्तरिक्ष लोक एवं ब्रह्मलोक को सहज ही प्राप्त कर सकता है। माता शिशु के पालन-पोषण में अपार कष्ट सहती है। धर्म के समस्त धार्मिक कृत्य करने के बाद मनुष्य जिस पुण्य का उपार्जन करता है वह उसे केवल माता का आदर करने से प्राप्त हो जाता है। माता-पिता का त्याग करने वाला एवं उनसे विवाद करने वाला पुत्र निन्दनीय होता है<sup>21</sup> तथा ऐसे पुत्र पर छः सौ पणों का दण्डनीय होते हैं।

टीकाकार मेधातिथि एवं कुल्लूक का मत है कि माता पुत्र के लिए कभी पतित नहीं होती। अतः माता का तिरस्कार एवं अनादर कभी नहीं करना चाहिए।

हिन्दू विवाह संस्कार के अनुसार कन्या जब किसी पुरुष के साथ पाणिग्रहण संस्कार करती है तो वह उसकी पत्नी बनती है और अपने पति के घर निवास करती है। धर्मशास्त्रों में 'पत्नी' की गृहस्वामिनी के रूप में प्रतिष्ठा थी। मनु का कथन है कि स्त्रीरूपी रत्न को कहीं से भी ग्रहण कर लेना चाहिए।<sup>22</sup> अपने कल्याण की आकांक्षा रखने वाले पिता, भाई, पति एवं देवर को सदैव कन्या का आदर सत्कार कर उसे वस्त्राभूषणों से अलंकृत रखना चाहिए। जिस कुल में नारियों की पूजा होती है उस कुल पर देवता प्रसन्न रहते हैं तथा जहाँ इनका आदर सत्कार नहीं होता है उस कुल में सभी क्रियाएं निष्फल होती हैं। उन्नति की कामना रखने वाले मनुष्यों को सत्कार तथा यज्ञोपवीत आदि विशिष्ट उत्सव पर स्त्रियों को वस्त्राभूषण आदि से सत्कार करना चाहिए। इसके अभाव में स्त्री पति को आनन्दित करने में समर्थ नहीं हो पाएगी, फलस्वरूप पति गर्भाधान कराने में प्रवृत्त नहीं होगा। वृहत्पराशर नारी को गौरवपूर्ण स्थान देते हुए उसे 'गृह' की संज्ञा दिया है। उन्होंने स्त्री को लक्ष्मीस्वरूप मानते हुए उन्हें सदा आभूषणों से अलंकृत रखने का आदेश दिया, जिस घर में स्त्रियों का आदर सम्मान होता है। वहाँ सभी देवगण, मित्रगण तथा मनुष्य प्रसन्न रहते हैं। याज्ञवल्क्य का मत है कि स्त्रियों को उनके पिता, भाई, पति, सास व देवर आदि के द्वारा वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि से सम्मान करना चाहिए तथा उनकी सदैव रक्षा करनी चाहिए। प्रजापति स्मृति में कहा गया है कि गृहणी से ही घर को घर कहा जाता है। सती स्त्री घर में साक्षात् तीर्थ के समान है।

भारतीय संस्कृति में पत्नी की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गयी है। वह पुरुष की अर्धांगिनी एवं गृहस्वामिनी के पद पर सुशोभित करती है। पुराणों में पत्नी को सहधर्मचारिणी की संज्ञा प्रदान है, जिसके साथ गृहस्थ धर्म का पालन करने से महान फल की प्राप्ति होती है।<sup>23</sup> पत्नी का सर्वप्रमुख कर्तव्य है पति की आज्ञा मानना एवं उसे देवता की भांति सम्मान देना। पति का सेवा के संदर्भ में मनु का मत है कि सदाचार से हीन, पर स्त्री में अनुरक्त एवं विद्या आदि गुणों से हीन पति की भी स्त्रियों को देवता के समान पूजा करनी चाहिए। स्त्री को स्वर्ग लोक में पूजित होने के लिए पति की सेवा करनी चाहिए। शंख लिखित का मत है कि पत्नी को अपने नपुंसक, कोषवृद्धि-ग्रस्त, पतित अंग के अधूरे, रोगी पति को नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि पति ही पत्नी का देवता होता है। यही बात याज्ञवल्क्य, मत्स्यपुराण, महाभारत में भी पाई जाती है। पत्नी पुत्रोत्पत्ति कर पति को पितृव्रत से मुक्ति प्रदान करती है। पुत्र सदैव पुत्री से अधिक वांछनीय रहा है, जिसका स्रोत पत्नी ही रही है। मनुष्य पुत्र से स्वर्ग आदि विविध लोकों को प्राप्त करता है। धर्मशास्त्रों में प्रेषित भर्तृका पत्नी को संयमित जीवन बिताने को कहा गया है। शंखलिखित के अनुसार पति के दूर रहने पर (यात्रा में) पत्नी को झूला, नृत्य दृश्यावलोकन, शरीरानुलेपन, वाटिका परिभ्रमण, खुले स्थान में श्याम, सुन्दर एवं सुस्वादु भोजन एवं पेय, गेंद-क्रीडा सुगंधित धूप गंधादि, पुष्पों आभूषणों, विशिष्ट ढंग से दन्तमंजन एवं अंजन से दूर रहना चाहिए। इसी प्रकार का विचार याज्ञवल्क्य ने भी व्यक्त किया है। व्यास स्मृति के अनुसार विदेश गए हुए पति की पत्नी को अपना चेहरा पीला एवं दुःखी बना लेना चाहिए, उसे अपने शरीर का श्रृंगार नहीं करना चाहिए, उसे पति-परायण होना चाहिए, उसे पूरा भोजन नहीं करना चाहिए तथा उसे अपने शरीर को सूखा देना चाहिए।<sup>24</sup>

धार्मिक कृत्य में पति पत्नी साथ होते थे, किन्तु पत्नी बिना पति के तथा बिना उसकी आज्ञा के स्वतंत्र रूप से कोई भी धार्मिक कृत्य सम्पादित नहीं कर सकती थी। भारतीय संस्कृति 'अतिथि देवो भव' का उद्घोष करती है। अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति की विशेषता और गृहस्थाश्रम वासियों का श्रेष्ठ कर्तव्य है। याज्ञवल्क्य का मत है कि पत्नी का यह कर्तव्य है कि वह घर की वस्तुओं को उचित स्थान पर रखना, दक्ष होना, हंसमुख रहना, मितव्ययी होना, पति के मन के योग्य कार्य करना, सास-ससुर के पैर दबाना, सुन्दर ढंग से चलना फिरना एवं अपनी इन्द्रियों को वश में रखें। पत्नी के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए व्यास स्मृति में लिखा गया है पति से पहले उठना, घर में झाड़ू लगाना, घर साफ करना, बर्तनों को गर्म जल से सफाई करना, चूल्हा लीपना आदि।

भारतीय समाज में वैदिक युग में पर्दा या अवगुण्ठन का प्रचलन नहीं था। स्त्रियाँ पर्दे से रहित होकर स्वच्छन्दतापूर्वक सबसे मेलजोल बढ़ा सकती थी। समाज में सहशिक्षा तथा कन्याओं के लिए उच्च शिक्षा की स्वतंत्रता थी। यदि पर्दा प्रथा होती तो कन्यायें उच्च शिक्षा न प्राप्त कर पाती। एक स्थान पर सौभाग्यशाली नववधु

को आशीर्वाद प्राप्त हेतु सभी आगतों को दिखाए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। स्त्रियाँ उस समय विदथ (सभा तथा समिति) एवं समन (उत्सव और मेला) में सम्मिलित होती थी और अपने विचारों का आदान प्रदान करती हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि धर्मशास्त्रों में नारी का सामाजिक जीवन गौरवपूर्ण था। नारी शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से शुरू होता था और उच्च शिक्षा स्वतन्त्रतापूर्वक ग्रहण करती थी। समाज में उनको पुत्री, पत्नी, माँ आदि रूप में पूजनीय स्थान प्राप्त था, उन्हें गृहलक्ष्मी, गृहस्वामिनी, सधर्मचारिणी, अर्द्धांगिनी आदि के पद से भी सुशोभित किया जाता था। हालांकि कुछ सामाजिक नियमों के आधार पर धर्मशास्त्रकारों ने नारी के सामाजिक जीवन के स्वतन्त्रता में कुछ बन्धन भी लगाया है।

### सन्दर्भ—सूची

1. ऋग्वेद 10.159.2
2. वही, 10.159.5, यजुर्वेद 13.26
3. शतपथ ब्राह्मण 5.2.1.10
4. ऋग्वेद 5.61/8
5. अथर्ववेद 14.1.43
6. वही, 7.38.4
7. वही, 3.18.2
8. पत्नी त्वमसि धर्मणह गृहपतिस्वत। अथर्ववेद, 14.1.51
9. ऋग्वेद, 1.85.26, 10.85.45
10. वही, 3.16.5
11. यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता। मनुस्मृति, 4.1
12. वही, 5.169
13. गृहस्थ उच्चते श्रेष्ठः स तीनेतान् विभार्ति हि। मनु० 6/89, याज्ञल्क्य, 3/56
14. दातारो नोऽभिनवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।  
श्रद्धा च नो मा० व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति।। मनु० 3/259
15. मनु० 3/57-58
16. याज्ञ० 1/65
17. याज्ञ० 3/232-233
18. पराशर स्मृति 10/11-12
19. मनु० 3/11
20. मनु० 2/145
21. मनु० 4/162
22. मनु० 2/240
23. विष्णुपुराण 3/10/26
24. व्यास स्मृति 2/52

\* \* \* \* \*

## महिला सशक्तिकरण के समक्ष चुनौतियाँ

डॉ. अश्विनी यादव\*

समस्त संसार की जननी कही जाने वाली नारी वर्तमान समय में समाज में उस परिवर्तन के दौर से गुजर रही है जहाँ वह अपने आपको विश्व के विभिन्न देशों में प्राप्त शक्ति के सम्मुख पाती है वहीं वह अपने अतीत के आईने देखने के लिये विवश हो जाती है और युगों- युगों से पुरुषों के बेड़ियों में जकड़ी हुयी नारी आज भी उससे छुटकारा पाने के लिये तड़प उठती है। प्राचीनकाल से ही नारी को शक्ति का प्रारूप मानकर उसे श्री और देवी का प्रतीक माना गया है और समय-समय पर उस पर अनेक प्रकार के नियंत्रण और बन्धनों को प्रारम्भ कर उसे समाज के कर्तव्यों से विमुख कर दिया गया और उसे (कन्या) 'दुखकारिका, बहुदोषकारिका' एवं हेमचन्द्र ने उसे शोककंकरी<sup>१</sup> कहा। वह विडम्बनाओं और झंझावतों द्वारा छली जाती रही और कठिन परिस्थितियों में उलझती रही किन्तु फिर भी परिवार और समुदाय में उनके कन्या पत्नी वधू और माँ के रूप में उसका योगदान सर्वदा गौरवपूर्ण रहा है।

भारतीय धर्म शास्त्रों में नारी सर्वशक्तिसम्पन्न विद्याशील, ममतामयी और सम्पत्ती का प्रतीक मानी गयी। शनैः शनैः उसका महत्व इतना बढ़ गया कि उसके बिना अकेला पुरुष अपूर्ण और अधूरा समझा गया।<sup>२</sup> पुरुष शब्द की निर्मिति स्त्री संतान और व्यक्ति की समष्टि से मानी गयी। प्रजोत्पत्ति भी पूरा शरीर होने पर ही हो सकती है तथा पूरा शरीर अर्थात् शरीर की पूर्णता विवाहिता पत्नी से ही सम्भव है। स्त्री, स्नेह और संतान ये तीनों मिलकर ही पुरुष (पूर्ण) होता है। अतएव उस स्त्री से उत्पन्न सन्तान उस स्त्री के पति की होती है इस प्रकार स्त्री पुरुष की शरीराद्ध और अर्द्धांगिनी मानी गयी तथा मनुष्य के जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्ति और पुंजीत करने वाली मानी गयी।

ऋग्वेद में स्त्री ही गृह है<sup>३</sup> कहकर सम्बोधित किया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद में उल्लेख है कि जब ब्रह्मचारी अध्ययन समाप्त कर लेता था तो आचार्य उसे यह निर्देश देता था कि वह देवता की तरह माता की पूजा करे (मातृ देवो भवः)। महाभारत में माता के लिये कहा गया है कि उसकी जैसी छाया आश्रय स्थल, रक्षा स्थान और प्रिय वस्तु कोई नहीं है।<sup>४</sup>

मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में माता के "परम गुरु" मानकर समाज और परिवार में उसकी सर्वोच्चता दर्शित है।<sup>५</sup> बौधायन आपस्तम्ब और वशिष्ठ जैसे धर्म शास्त्रकारों ने माता के रूप में उसकी प्रशंसा की है। अत्रि के अनुसार माता से बढ़कर कोई गुरु नहीं है।<sup>६</sup> संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रंथों में माता की विशिष्टता और अभिरामता उसकी पवित्रता चित्रित है।<sup>७</sup> ऋग्वेद की अनेक ऋचा लोपामुद्रा विश्ववारा सिकता घोषा आदि विदुषी स्त्रियों द्वारा रची हुई है।<sup>८</sup> ब्रह्म यज्ञ में सुलभागार्गी, मैत्रयी आदि विदुषियों की प्रतिष्ठा वैदिक ऋषियों के समान दी समाज में वह पुरुषों की तरह ही आदत थी सामाजिक और धार्मिक उत्सवों, समारोहों में वे अलंकृत होकर बिना किसी प्रतिबन्ध के उन्मुक्त होकर हिस्सा लेती थी। अर्ववेद में कन्याओं का भी उपनयन संस्कार किया जाने का वर्णन है।

शिक्षा एक ऐसा महत्वपूर्ण माध्यम है जो व्यक्ति के सद्गुणों को विकसित करने या उन्हें परिभाषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है किसी क्षेत्र के सर्वांगीण विकास हेतु आवश्यक मूल आधारों में शिक्षा का प्रमुख स्थान है इससे न केवल सामाजिक, आर्थिक विकास प्रक्रिया में सहायता मिलती है बल्कि इसी से उसका स्वरूप भी निश्चित होता है।

प्राचीनकाल से ही भारत में स्त्री शिक्षा अपनी उच्चतम सीमा पर टी वैदिक युग में वह पुरुषों के समक्ष बिना भेदभाव के शिक्षा प्राप्त कर सकती थी उसका भी विद्यारम्भ से पूर्व उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था।<sup>१०</sup>

\* प्रवक्ता, इतिहास विभाग, हण्डिया पी.जी. कॉलेज, हण्डिया, प्रयागराज

कन्या के लिए उपनयन संस्कार का विधान मनु ने भी किया है।<sup>11</sup> उसे ब्रह्मचर्य का पालन वेदाध्ययन, यज्ञ सम्पादन का पूर्ण अधिकार था। रोमशा, अपाला, उर्वशी, विश्ववारा, सिकता, निबावरी, घोषा, लोपामुद्रा आदि पंडिता स्त्रियाँ इनमें प्रसिद्ध थी पाण्डवों की माँ कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत थी।<sup>12</sup> वैदिक युग में सदैव (विवाह के पूर्व तक ज्ञान प्राप्त करने वाली) ब्रह्मवादिनी (जीवन पर्यन्त शिक्षा ग्रहण करने वाली) छात्रों का उल्लेख मिलता है।

वेदवती (कुशध्वज की पुत्री), काशकृत्स्नी<sup>13</sup>, मैत्रयी (याज्ञवल्क्य की पत्नी), गार्गी, कौशल्य, तारा, द्रौपदी, प्रार्थितेयी आदि स्त्रियाँ तर्क दर्शन मीमांसा साहित्य आदि में पारंगत थी।<sup>14</sup> खेमा, सुशा, सुमेधा, अनुपमा, सुभद्रा, भद्राकुण्डकेश आदि ज्ञान पिपाशु थी तथा अन्वेषण और प्राप्ति में तल्लीन रहती थी। पाणिनी ने महिला शिक्षण शाला का उल्लेख किया।<sup>15</sup> अनेक महिलाएं शिक्षिका बनकर अध्यापिकाओं का जीवन व्यतीत करती थी ऐसी स्त्रियां उपाध्याया कही जाती थी।<sup>16</sup> पुराणों में नारी शिक्षा के दो रूप आध्यात्मिक और व्यवहारिक माने गये हैं। आध्यात्मिक ज्ञान में वृहस्पति-भगिनी, भुवना<sup>17</sup>, अपर्णा एक पाटला धारिणी आदि ब्रह्मवादिनी कन्याओं का उल्लेख मिलता है।<sup>18</sup>

पूर्व वैदिक काल में अपाला नामक कन्या द्वारा अपने पिता के कृषि कार्य में सहयोग प्रदान करने का उल्लेख मिलता है।<sup>19</sup> ऐसी स्त्रियों के भी उदाहरण मिलते हैं जो शासन व्यवस्था और राज्य के प्रबन्ध में दक्ष भी और अपनी अनुपम बुद्धिमत्ता और कुशलता से राज्य का शासन करती थी। दूसरी सदी ई०पू० में आन्ध्र-सातवाहन वंशीय राजमाता नयनिका ने अपने अल्पव्यस्क पुत्र का संरक्षण करते हुए स्वयं प्रशासन का संचालन किया। वाकाटक वंश की रानी प्रभावती गुप्ता ने (चौथी सदी) में स्वयं शासन को संचालित किया। कश्मीर की सुगन्धा और दिदा नामक रानिया अपने प्रशासन और राज्य कार्य के लिए विख्यात थी।<sup>20</sup>

प्राचीन काल में वेश्यावृत्ति अपनाने वाली गणिकाओं का स्थान श्रेष्ठ था गायन वादन और संगीत के प्रेमी लोग उनके प्रति आकृष्ट रहा करते थे। महान में आम्रपाली नामक गणिका का वर्णन मिलता है। “जो परम सुन्दरी रमणीया नयनाभिराम सुन्दर वर्ण गायन वादन में दक्ष नृत्य विशारद तथा अभिलाषी और बहुदर्शनीया है” उसी समय राजगृह में अत्यन्त रूपमती और संगीत कला में दक्ष कलावती नाम की एक गणिका थी जिसका गणिकाभिषेक हुआ था।<sup>21</sup> राजनर्तकी होने के कारण उन्हें समाज में शीर्ष स्थान प्राप्त था। सालवती का पुत्र जीवक उस काल का विख्यात राजवैद्य बना।<sup>22</sup> जो इस बात को परिभाषित करता है कि गणिका पुत्र समाज में उच्चदृष्टि से देखा जाता था न कि हीन दृष्टि से और वह अपनी योग्यता से उच्च पद को सुशोभित कर सकता या स्वयं भगवान बुद्ध ने आम्रपाली का निमंत्रण और आतिथ्य स्वीकार किया था।

साक्षरता दर, कार्य सहभागिता दर को बढ़ाकर तथा महिला विकास योजनाओं के द्वारा उसे शक्ति सम्पन्न बनाने का प्रयास किया जा रहा है, समाज की वर्तमान व्यवस्था और तौर-तरीकों में समान अवसर राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में समान भागीदारी तथा समान कार्य के लिए समान वेतन, कानूनी सुरक्षा आदि के द्वारा सुधार करने का प्रयास कर रही है लेकिन प्रतिदिन समाचार-पत्रों के पृष्ठों में सामूहिक बलत्कार, हत्याएँ, यौन शोषण का प्रयास, छेड़छाड़ उसे सताने, जलाने आदि खबरें प्रमुखता से छापी जा रही है जो समाज के लिए कौतुहल व उपहास का विषय वस्तु बन जाती है। नारी उत्पीड़न का यह मार्मिक इतिहास, “मनोहर कहानियों” का विषय बनकर रह जाती हैं और नारी के बढ़ते कदम बेहतर कल की ओर को अंधेरे में धकेल कर उसे पुनः अपनी सुरक्षा की चिंता सताने लगी है क्योंकि उनकी सुरक्षा का दंभ भरने वाली सरकार केवल कानून बनाकर ही योजना को सफल मान लेती है। कब तक सरकार इस दोहरी नीति पर चलती रहेगी और वह देश जो विश्व का आध्यात्मिक गुरु कहलाता है। प्राचीन काल से नारी और को हिंसा से दूर रखने की परम्परा रही। स्वतंत्र भारत नारी सम्मान, सुरक्षा और समानता का वचन लिया गया फिर भी आजादी के 66 वर्षों बाद भी नारी उपेक्षित, प्रताड़ित होती रही है जो हमारी सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यात्मकता का अधोमुखी अवमूल्यन व पतन का प्रतीक है और विश्व के सम्मुख हमें अपमानित होना पड़ता है।

2001 ने महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित कर पहली बार राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति की घोषणा की गई। मातृत्व मृत्यु दर, टीकाकरण, विवाह की आयु, छोटा परिवार व्यवस्था आदि के द्वारा महिलाओं की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है केन्द्र सरकार द्वारा 2001 से दिये जा रहे श्री शक्ति पुरस्कार जो रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई, कण्णगी, रानी गोद न्यू जेलियांग, माता जीजाबाई के नाम पर महिलाओं व महिला संगठनों को महिला सशक्तिकरण में उल्लेखनीय योगदान के लिए दिया जाता है।

महिलाओं के लिए केन्द्र व राज्य सरकार की भागीदारी से स्वावलम्बन योजना (1982), महिला समाख्या कार्यक्रम (1989), बालिका समृद्धि योजना (1997), स्वास्थ्य सखी योजना (1997), स्वशक्ति योजना (1998), किशोरी शक्ति योजना (2000), स्वयं सिद्ध योजना (2001), राष्ट्रीय पोषाहार मिशन योजना (2001), स्वराज (2001), वंदे मातरम योजना (2003), जीवन भारतीय महिला सुरक्षा योजना (2003), आंगनवाड़ी विशेष बीमा योजना (2004), कस्तूरबा गांधी विशेष बालिका विद्यालय योजना (2004), आशा योजना (2005), बालिका प्रोत्साहन योजना (2006), जननी सुरक्षा योजना (2006), विशेष आवासीय विद्यालय योजना (2006), इंदिरा गांधी राष्ट्रीय निशक्तता पेंशन योजना (2007), इंदिरा गांधी राष्ट्रीय विधवा पेंशन योजना (2007), प्रियदर्शन योजना (2008) आदि योजनाएँ उन्हें सशक्त करने के लिए चलाई जा रही हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग (1992), राष्ट्रीय महिला कोष (1993), महिला एवं बाल विकास विभाग आदि का गठन केन्द्र सरकार द्वारा किया गया इन सभी योजनाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार (टेलीविजन, रेडियो, समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं) के द्वारा तथा सरकार की “आगे आओ लाभ उठाये” की नीति का परित्याग कर इसे सभी महिलाओं को लाभ उठाने के लिए प्रेरित एवं सुलभ होना चाहिए।

राजनैतिक सशक्तिकरण हेतु (केन्द्र सरकार द्वारा संसद व विधान मंडलों में महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों का आरक्षण) महिला आरक्षण विधेयक संसद के विचार विमर्श का विषय बनकर रह जाता है वह भी जाति और विभिन्न वर्गों के बीच विरोध प्रदर्शन का कारण बनकर रह गया। जिसमें नेताओं के अर्थ भी शामिल हैं।

भारत का राजनीतिक मंच सदा ही वादे करके भूल जाओ की नीति पर चलता रहा और महिलाओं की भागीदारी नाम मात्र रही भारतीय नारी चहारदीवारी में कैद होकर रह गयी जबकि महिला सशक्तिकरण की अवधारणा को यथार्थ के धरातल पर मूर्त रूप प्रदान करने के लिए उसे राजनीतिक रंगमंच पर उतरना ही पड़ेगा उसके लिए महिलाओं को आरक्षण का सहारा छोड़ना पड़ेगा। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं ने सफलता अवश्य प्राप्त की लेकिन वह शिक्षित और जागरूक न होने के कारण वह पुरुषों के हाथ की कठपुतली बजकर रह गयी परन्तु भारत की राजनीति में जया दौर प्रारम्भ हो गया है। महिला जमीनी स्तर पर अवश्य ही मजबूत हुयी है। आवश्यकता है उन्हें सरकार द्वारा प्रशिक्षित एवं जागरूक करने की। जो चुने जाने के पश्चात् कार्यशालाओं के आयोजन द्वारा सम्भव है।

पंचायतों में महिलाओं के आरक्षण लागू होने से जमीनी स्तर पर जो बदलाव हो रहा है और जिस नयी राजनीतिक शक्ति का विकास हो रहा है। भारत में एक “मौज लोकतान्त्रिक क्रान्ति” हो रही है जो भले ही भारतीय संसद में नेताजों के स्वार्थ की भेट चढ़ जयी हो परन्तु पंचायतों महिलाओं को चुना जाना न केवल महिला सशक्तिकरण में मील का पथर साबित होगा बल्कि वह भारतीय लोकतंत्र को मजबूत कर रही है। महिला आरक्षण के बल पर स्थानीय प्रशासन से जुड़ तो जाती है परन्तु पंचायत की कमान महिलाओं के पति के हाथ में होती है और वे पतियों के रिमोट कंट्रोल से संचालित होती है जो अपने फायदे के लिए उनका उपयोग करता है जो भविष्य के लिए हानिकारक है। ग्रामीण स्तर पर एक नयी क्रान्ति ने जन्म ले लिया है महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुयी है। ग्रामीण क्षेत्र के रचनात्मक कार्यक्रमों में उनकी भागीदारी बढ़ी हैं अपनी उपस्थिति का बोध वे समाज को करा रही हैं और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पहली बार महिलाओं को अपनी शक्ति का एहसास हुआ कुछ कर गुजरने का जुनून उनमें अवश्य ही प्रस्फूटित होगा और भारत में “औरत कितनी आजाद” की सार्थकता सिद्ध होगी और समाज का आधा अंग कहलाने वाली नारी जिन किन्हीं कारणों से पीछे रह गयी हो परन्तु महिला सशक्तिकरण का यह नया रूप वर्तमान पश्चिमीकरण की भेट न बढ़ जाये कि भारतीय नारी पश्चिमी संस्कृति का अनुसरण करने लगे क्योंकि भारतीय नारी नगरीकरण का तथा नये फैशन से प्रेरित होकर वह नारी स्वतंत्रता का अर्थ बढ़ता हुआ नंगापन, बिना विवाह के पुरुषों के साथ रहने की स्वीकृति कुँवारी माँ बनने का अधिकार, तलाक की सुविधा, एक से अधिक विवाह का हक, प्रेम विवाह की अनुमति, समलैंगिकता और पुनः सीता, सावित्री जो विश्व के लिए आदर्श हैं कहलाने वाला देश पुनः नये विवादों से चर्चा में रहे क्योंकि भारतीय संस्कृति ही इसे विश्व की अन्य संस्कृतियों से अलग करती है।

महिला सशक्तिकरण का शाब्दिक अर्थ – महिलाओं को सशक्त बनाना अर्थात् उन्हें आत्म निर्भर बनाना। नारी को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर आत्म निर्भर बनाया जा सकता है और भारतीय नारी के साथ जुड़ा दायभाग निर्भरता, बहु विवाह, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, अंधविश्वास धार्मिक मान्यताओं का पालन (1971



में गठित महिला स्टेट आफ वुमैन कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में महिलाओं के विकास में सर्वाधिक बाध हमारी रुढ़ियों व परम्पराओं को माना है) आदि शब्द मिट जायेंगे। वरना 1828 में राजा राममोहन राय ने सती प्रथा पर रोक, 1875 महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्त्री शिक्षा प्रसार, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने बहु पत्नी प्रथा का विरोध तथा आजादी के बाद महिला सशक्तिकरण का जो बीजोरोपण भारतीय संविधान निर्माण (अनुच्छेद 14, 15, 16, 23, 24, 39, 42, 51) के समय प्रारम्भ किया गया तथा कालांतर में ईसाई समुदाय की महिलाओं को पुरुषों की तरह तलाक का अधिकार प्रदान करने हेतु भारतीय तलाक (संशोधन) अधिनियम-2001, विवाह (संशोधन) अधिनियम-2001, अपराध दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम-2001, भारतीय उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम-2002, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम-2005, भ्रूण हत्या रोकने हेतु प्रसव पूर्व परीक्षण तकनीकी अधिनियम-1994 को फरवरी-2003 में संशोधन करके इसके प्रवाही कार्यान्वयन हेतु विशेष प्रयास भी किये गये आदि प्रभावी क्रियान्वयन के अभाव में वह संविधान की विषय वस्तु ही बनकर न रह जाये और उसे अवला से सबला बनाना स्वप्न की बात बनकर रह जायेगा और सरकार का राष्ट्रीय दूरदर्शन पर प्रसारित संदेश "सशक्त नारी सशक्त देश" एवं "सोच बदलो देश बदलो" संदेश बनकर ही रह जायेगा।

2006 में वर्ल्ड बैंक द्वारा आयोजित सम्मेलन में अध्यक्ष पाल वोल्फ विट्ज ने कहा कि कोई भी देश तब तक विकसित नहीं हो सकता जब तक की उसकी आधी आबादी को विकास के सामान अवसर नहीं मिलते। महिलाओं को आर्थिक कार्यों में आगे लाने हेतु कई प्रकार से प्रोत्साहित किया जा रहा है भारत में महिलाओं को आर्थिक दृष्टि से सशक्त करने हेतु राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन समय-समय पर किया गया— काम के बदले अनाज योजना (1977), अंत्योदय योजना (1978), ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1980), ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं विकास कार्यक्रम (1984), ग्रामीण प्रौद्योगिकी परिषद (1986), महिलाओं हेतु प्रशिक्षण एवं रोजगार योजना (1987), कुटीर ज्योति योजना (1988-89) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (1999) आदि का क्रियान्वयन किया गया। महिलाओं के आर्थिक स्तर पर विकासात्मक परिवर्तन लाने के लिए वित्तीय सहायता का होना आवश्यक है क्योंकि आर्थिक क्रियाओं का आधार वित्त होता है। अतः महिलाओं को ऐसे साधन की आवश्यकता है जो महिलाओं को ऋण के साथ-साथ प्रशिक्षण, विपणन, परिवहन, मार्ग दर्शन आदि की सुविधा मुहैया करा सके यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बांग्लादेश के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. मुहम्मद यूनूस के अर्थक परिश्रम से सन् 1976 ई० में ढाका में ग्रामीण बैंक की स्थापना कर महिला सशक्तिकरण की नींव रखी। महिलाएं इस बैंक से कर्ज लेती हैं और वे चुकाती भी हैं जो महिलाओं को लघु उद्योग करने के लिए प्रेरित करता है जो महिला सशक्तिकरण में मील का पत्थर साबित हुआ है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में यह योजना महिलाओं को आर्थिक दृष्टि से मुक्त करने का सबसे अच्छा माध्यम हो सकता है यदि भारत सरकार सम्पूर्ण भारत में ऐसी योजनाओं का क्रियान्वयन करे। भारत में स्वयं सहायता समूह जागृति की शुरुआत डेवलपमेंट, एजेंसी मैसूर द्वारा हुई सन 1980 ई० नाबार्ड बैंक के सहयोग से इसका विकास प्रारम्भ हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को आत्मनिर्भर करने का सशक्त माध्यम है आवश्यकता है तो सही दिशा और सही नीति की जो आत्मनिर्भर महिलाओं को सामर्थ्य प्रदान करेगा और बौद्धिक शक्ति जैसे मानवीय गुणों का विकास होगा और वे स्वयं आत्म निर्णय ले सकेगी अपने प्रति दमन अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की हिम्मत मिलेगी। आर्थिक निर्भरता उन्हें घरेलू हिंसा के विरुद्ध लड़ने की शक्ति प्रदान करेगी। भारत में स्वयं सहायता समूह एक नया प्रयोग है लेकिन पिछले एक दशक में इस समूह ने उल्लेखनीय सफलता अर्जित की है और ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण का नया सत्र माना जा रहा है। स्वयं सहायता समूह वास्तव में महिलाओं का एक अनौपचारिक समूह है जो अपनी बचत या बैंकों से लघु ऋण लेकर अपनी सदस्यों की पारिवारिक जरूरतें पूरी करती है और विकास की गतिविधियाँ चलाकर गाँव में गरीबी दूर करने और महिला सशक्तिकरण में योगदान कर रही हैं। ग्रामीण स्तर पर महिलाओं की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में सहायता मिलती है। सरकार को चाहिए कि इन समूहों को बढ़ावा देने के लिये ठोस नीति बनाये और सराहनीय कार्य करने पर सम्मानित किया जाय। योजनाओं का लाभ वंचित वर्ग तक पहुँच सके।

वर्तमान नारी व्यवसाय के नये दौर में जिस प्रकार स्वयं की स्वीकृति से प्रवेश कर रही है यह उसके लिए घातक है आर्थिक क्षेत्र में खुला बाजार संस्कृति ने उन्हें शारीरिक सौंदर्य प्रसाधन और परिधानों की दुनिया का नया बाजार प्रदान कर दिया। आधुनिकता की सौगात फिल्मों, धारावाहिक समारोहों, विज्ञापन, सौंदर्य प्रतियोगिता जिस प्रकार

स्वयं की स्वीकृति से जिस प्रकार आज के भौतिकवादी युग में अपने अधिकाधिक लाभ के लिए वह उपयोग हो रही है। उपभोक्तावाद के खुले समाज में ब्यूटीफुल लेग्स, ब्यूटीफुल हेयर और ब्यूटीफुल आईज पुरुषों जैसे कपड़े पहनना, शराब, सिगरेट पीना आदि को वह अपनी आजादी समझने लगी है। बाजार में आ रहे नये उत्पादों को आकर्षित करने के लिए विज्ञापन के लिए स्त्रियों को माध्यम बनाया जा रहा है। विज्ञापन इस नयी सभ्यता द्वारा स्त्रियों के लिए किया गया नया का जाल है स्वयं स्त्रियाँ नये भ्रम जाल में फँसकर स्त्री को फँसा रही है स्त्री स्वयं क्यों इंकार नहीं करती कि वह बाजार का माध्यम नहीं बनेगी अपनी व्यवसायिक आत्मनिर्भरता के बदले वह करोड़ों स्त्रियों को वस्तुओं का दास बना रही हैं। पश्चिमी स्त्रीवाद विमर्श को अपना आदर्श मानने का विचार छोड़ना पड़ेगा।

नारी को उपभोक्तावादी संस्कृति, भोगवाद एवं देह प्रदर्शन की आधुनिकता को नारी सशक्त समझ लेने की भूल सुधार होगा आर्थिक क्षेत्र में रोजगार प्रशिक्षण एवं संसाधन उपलब्ध कराकर महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। उसके सामने सरोजनी नायडू, लक्ष्मी पंडित, पी0टी0 ऊषा, महाश्वेता देवी, किरण बेदी, सानिया मिर्जा, शहनाज हुसैन, महामहिम राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल, सुषमा स्वराज, इन्दिरा गाँधी, कल्पना चावला, सुष्मिता सेन, लारा दत्ता, ऐश्वर्या राय आदर्श के रूप में मौजूद हैं। समाचार पत्र में छपी एक खबर के अनुसार लश्कर के एक आंतकी को मार गिराने के एवज में जम्मू-कश्मीर की 27 वर्षीय महिला रूखसाना को जम्मू-कश्मीर में स्पेशल पुलिस अफसर (एस0पी0ओ0) के पद पर पदस्थापित किया गया जो निश्चय ही नारियों में आत्म विश्वास बढ़ाने में बहुत उपयोगी साबित होगी। अर्थात् उदीयमान भारत की झाकियाँ अभी से दिखने लगा है जब वह स्वयं जागरूक होकर आगे आने के लिए तत्पर रहेगी तो विश्व की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकेगी।

अपराध एक सार्वभौम, सामाजिक घटना है आदिकाल से ही प्रत्येक समाज में अपराध किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है भारतीय समाज में जहाँ अर्द्धनारीश्वर में नारी को स्थान दिया गया वहीं उसका शोषण भी प्रारम्भ हुआ परन्तु महिलाओं पर हमारे यहाँ अत्याचार विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा अधिक हुआ वही वर्तमान समय में महिलाओं पर अत्याचार अपने ही लोगों द्वारा अधिक हो रहा है। वर्तमान समय में अत्याचार के रूप में यौन अपराध एवं घरेलू हिंसा प्रमुख हैं। यौन अपराध के कारणों में गरीबी मानव की अतृप्त काम वासना मानसिक तनाव आज की परिवर्तनशील संस्कृति की एक प्रमुख कारण है। हाल ही में दिल्ली की घटना ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया और महिलाओं के ऊपर बढ़ते हुए इस तरह के अपराध ने नये सिरे से कानून बनाने के लिए विवश कर दिया। तकनीकी विकास के चलते सामाजिक गतिशीलता बढ़ी है मीडिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है परन्तु जिस तरह से मीडिया कुछ घटनाओं को उत्पाद के रूप में प्रस्तुत करता है खासतौर (भ्रूण हत्याओं, दहेज हत्या बलात्कार, घरेलू हिंसा) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, महिला अपराध को नमक मिर्च लगाकर उत्पाद के रूप प्रस्तुत करता अधिक दिखाई पड़ता है जिससे इन खबरों से लोगों में संवेदना कम लेकिन आनन्द की प्रवृत्ति अधिक दिखलाई पड़ती है जबकि मीडिया से यह जन अपेक्षा होती है कि वह लोगों को न्याय दिलाने में अपनी अहम भूमिका निभायेगा। जब बलात्कार और छेड़छाड़ के मामले मीडिया के सामने आते हैं तो उसे उत्पाद के रूप में प्रस्तुत करने की जगह संतुलित तौर पर प्रसारित किया जाना चाहिए। मीडिया को महिला अपराध पर अंकुश लगाने वाले कार्यक्रमों का अधिक से अधिक निर्माण कर प्रसारित करना चाहिए जिससे अपराधी वर्ग में महिला अपराध के प्रति भय व्याप्त हो और महिला अपराध में कमी आये सरकार को भी इस दिशा में जागरूकता कार्यक्रम चलाना चाहिए विशेषकर लड़कियों के लिए उन्हें स्कूलों में शिक्षा देने के साथ-साथ आत्मरक्षा के तरीकों सिखाना चाहिए ताकि वे स्वयं अपनी सुरक्षा के प्रति सचेत रहे और एक ऐसे स्वच्छ सामाजिक पर्यावरण का निर्माण किया जा सके जिसमें नारी अपने आपको सुरक्षित महसूस कर सके।

इस प्रकार महिलाओं के संरक्षण संवर्धन एवं सशक्तिकरण के लिये न केवल सरकार को सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन बल्कि आत्मनिर्भर, शिक्षित करना आवश्यक है। समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार होती है और माता से बढ़कर कोई गुरु नहीं है। जहाँ से आने वाली भावी पीढ़ी का निर्माण होता है। महिला-पुरुष समानता का बीजारोपण बालक-बालिकाओं में बचपन से आरम्भ कर भावी पीढ़ी के विकास के लिये एक स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण हो सके। जिससे नारी को समाज में वर्तमान समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है आगे उसे न झेलना पड़े। दृढ़ आर्थिक विकास तथा स्वतंत्रता, सामाजिक व्यवस्था हेतु शिक्षा एकाकी कारक है। प्रत्येक नारी के लिये

शिक्षा सुनिश्चित करनी होगी जिससे उनमें जागरूकता का संचार हो सके और वे अपनी अधिकारों की लड़ाई स्वयं लड़ सकें। शक्ति की प्रतिमूर्ति नारी के असीम गुणों का उपयोग राष्ट्र के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके जब नारी यह संकल्प ले लेगी कि वह किसी भी नारी के साथ अन्याय वह शोषण नहीं होने देगी केवल कुछ कानूनों को पास कराने या कुछ नई घोषणाओं करने, उन्हें कागजों पर लागू करने मात्र से ही अब काम चलने वाला नहीं है जरूरत इस बात की है कि इन कानूनों और योजनाओं की घोषणाओं को वास्तविक धरातल पर उतारा जाये ताकि अत्यधिक महिलायें उनका लाभ उठा सकें। तभी सही अर्थों में सशक्तिकरण पूर्ण होगा।

#### सन्दर्भ-सूची

1. एतरेय ब्राह्मण 33.1
2. शब्दानुसार 5.1.1.0.3
3. शपथ ब्राह्मण 5.2.1.1 0 मनु 9.45
4. ऋग्वेद 3.53.4, 10.85.46
5. महाभारत 12.266.31
6. मनु 2.145 याज्ञवल्क्य 1.35
7. अत्रि स्मृति 157
8. शाकुन्तलम 4.18 रघुवंश 3.19
9. ऋग्वेद 1.17: 5.28: 8.91, 9,81 और 1.39, 40
10. अथर्ववेद 11.5 18
11. मनु 2.66
12. महाभारत 3.305.20
13. महाभारत 4.1.14, 3.155
14. हार्नर विमेन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्म दूसरा अध्याय
15. पाणिनी 6.2.46
16. पंतजली 3.822
17. वायु पुराण 66.77
18. विष्णु पुराण 3.10.19
19. ऋग्वेद 8.91.5.6
20. राजतरंगिणी 7.905, 9; 931, 8.1137.9
21. महावग्ग 8.1.2, 8.1.3
22. महावग्ग 8.1.4
23. डॉ० श्यामधर सिंह, अपराध शास्त्र के सिद्धांत, अपना शोध प्रकाशन वाराणसी, पृ.-38
24. डॉ० एम०एस० चौहान, अपराध शास्त्र एवं अपराधिक प्रशासन सेंट्रल लॉएजेन्सी इलाहाबाद, पृ.-119

#### सहायक ग्रन्थ

1. प्रज्ञा शर्मा – महिला विकास और सशक्तिकरण आविष्कार प्रकाशन जयपुर
2. कुरुक्षेत्र – महिला सशक्तिकरण अंक – 5, मार्च 2007 ग्रामीण विकास को समर्पित दिसम्बर 2005
3. इण्डिया टुडे- महिला सशक्तीकरण अक्टूबर 2008
4. योजना – विकास को समर्पित मासिक दिसम्बर 2009

\* \* \* \* \*

## तंजौर कला का वैशिष्ट्य

डॉ. ऋतु मालवीय\*

भारत की सभ्यता एवं संस्कृति बहुत विशाल है, जिससे भारत के इतिहास भौगोलिक क्षेत्र के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। सिंधुघाटी सभ्यता से वैदिक और बौद्ध काल के बाद भी आज तक भारत के वृहद इतिहास में पुष्पित पल्लवित विरासत के रूप में विद्यमान है। इसमें हजारों साल की परम्परायें एवं विदेशी रीति रिवाज प्रथायें भाषा के सभी कुछ समाहित हैं, भारत की कलायें हस्त शिल्प सदैव से ही सांस्कृतिक और परम्परागत मानदण्डों की अभिव्यक्ति करने का माध्यम रहे हैं। भारत में विभिन्न प्रांत विभिन्न धर्म जाति जन जाति के लोग रहते हैं और उन सबकी अपनी-अपनी लोक कला संस्कृति भी है, जो सजीव एवं प्रभावशाली होने के साथ-साथ अपनी समृद्ध विरासत को प्रदर्शित करती हैं। तंजौर की चित्रकारी पूर्णतया चोल कालीन संस्कृति कला का प्रतिनिधित्व करती है चाहे वह चित्रकला हो मूर्तिकला हो, वास्तु कला या स्थापत्य कला हो इन सभी में अद्वितीय सौन्दर्य तकनीकी कला कुशलता की स्पष्ट छाप मिलती है जो शिल्पकारों कलाकारों की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति एवं कुशलता का एहसास दिलाती है।

भारतीय कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में विभिन्न स्थानों की कला संस्कृति एवं स्थापत्य में विभिन्नताएँ दृष्टव्य होती हैं साथ ही उस स्थान विशेष की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक छाप भी दृष्टिगोचर होती है जिसका तंजौर कला एक अप्रतिम उदाहरण है। वृहत्तर भारत का इतिहास अपनी लोक कलाओं, ग्रामीण संस्कृति एवं सभ्यता का अक्षुण्ण भंडार है। जिससे सिंधुघाटी से लेकर आज तक का इतिहास एक सांझी विरासत के रूप में विद्यमान है। भारत की कलायें और हस्तशिल्प इसकी सांस्कृतिक एवं परम्परागत प्रभावशीलता को अभिव्यक्ति करने का माध्यम रहे हैं। देश में विस्तारित 35 राज्यों और संघ राज्यों के क्षेत्रों की अपनी विशेष सांस्कृतिक और पारम्परिक पहचान है जो वहाँ की कला के विभिन्न रूपों में दृष्टव्य होती है। कला से तात्पर्य सौन्दर्य, सुन्दरता तथा आनन्द से है, अपने मन के भावों को सौन्दर्य के यात्र दृश्य रूप में अभिव्यक्ति करना ही कला है। आचार्य क्षेमराज के अनुसार स्वयं को किसी न किसी व्यक्त वस्तु के माध्यम से व्यक्त करना ही कला है और यह अभिव्यक्ति चित्र, नृत्य, मूर्ति, वाद्य आदि के माध्यम से होती है। इस प्रकार कला मनुष्य की सौन्दर्य भावना को मूर्तरूप प्रदान करती है। प्राचीन भारत में कला को साहित्य और संगीत के समकक्ष मानते हुए मनुष्य के लिये उसे आवश्यक बताया गया है। भर्तृहरि ने नीतिशतक में लिखा है कि "साहित्य, संगीत तथा कला से विहीन मनुष्य पूँछ और सींग से रहित साक्षात् पशु के समान हैं।"

भारतीय परम्परा में कला को लोकरंजन का पर्याय माना गया है। चूँकि इसका एक अर्थ कुशलता अथवा बुद्धिमत्ता भी है, अतः किसी कार्य को सही रूप से सम्पन्न करने की प्रक्रिया को भी कला कहा जा सकता है। जिस कौशल द्वारा किसी वस्तु में उपयोगिता और सुन्दरता का संचार हो जाय, वही कला है। भारतीय कला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन तथा गौरवशाली है। वस्तुतः कला यहाँ के निवासियों के विचारों एवं विश्वासों को समझने का एक सबल माध्यम है।

भारतीय कला की कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो इसे अन्य देशों की कलाओं से पृथक् करती हैं। इसकी सर्वप्रथम विशेषता के रूप में निरन्तरता अथवा अविच्छिन्नता को रखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति का प्रधान तत्त्व धार्मिकता अथवा अध्यात्मिकता की प्रबल भावना है जिसने उसके सभी पक्षों को प्रभावित किया है। कला भी इसका अपवाद नहीं है। इसके सभी पक्षों वास्तु या स्थापत्य, तक्षण, चित्रकला आदि के ऊपर धर्म का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है।

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, प्रचीन इतिहास विभाग, सर्वेश्वरी पी.जी. कॉलेज, धनुहाँ, चाका, नैनी, प्रयागराज

भारतीय कला में अभिव्यक्ति की प्रधानता है, कलाकारों द्वारा अपनी कुशलता का प्रदर्शन शरीर का यथार्थ चित्रण करने अथवा सौन्दर्य को उभारने में नहीं किया है बल्कि इसके स्थान पर आन्तरिक भावों को उभारने का प्रयास ही अधिक हुआ है। सुकुमारता का गम्भीरता के साथ, रमणीयता का संयम के साथ, अध्यात्म का सौन्दर्य के साथ तथा यथार्थ का आदर्श के साथ अत्यन्त सुन्दर समन्वय हमें इस कला में दिखाई देता है। सुप्रसिद्ध कलाविद हेवेल ने आदर्शवादिता, रहस्यवादिता, प्रतीकात्मकता तथा पारलौकिकता को भारतीय कला का सारतत्त्व निरूपित किया है।

भारत की लोक और जनजानीय कलायें पारम्परिक और साधारण होने पर भी सजीव और प्रभावशाली हैं जिससे वहाँ की समृद्ध विरासत का अभास होता है। परम्परागत सौंदर्य भाव और प्रामाणिकता के कारण भारतीय लोक कला की अन्तराष्ट्रीय बाजार में प्रबल संभावनायें हैं। ग्रामीण लोक चित्रकारी जिसमें धार्मिकता और आध्यात्मिकता को सम्मिश्रण है, अपने सौन्दर्य बोध के लिए प्रसिद्ध हैं। भारत की प्रसिद्ध लोक चित्रकलायें विहार की मधुबनी उड़ीसा की पताचित्र आन्ध्रप्रदेश की निर्मल चित्रकारी और दक्षिण भारत के विभिन्न मन्दिरों की चित्रकारी मूर्तिकलायें विश्व प्रसिद्ध हैं।

दक्षिण भारत की लोक कला सांस्कृतिक इतिहास अपनी समृद्धशाली वैभव सम्पन्नता के लिए जानी जाती है। यहाँ की पारम्परिक नृत्य शैली कथकली, भरतनाट्यम, कुचीपुडी इत्यादि कलात्मकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता से ओत प्रोत होते हैं। वर्तमान परिवेश में जहाँ आधुनिक की अंधी दौड़ में भारत के अन्य स्थानों पर वहाँ की कला संस्कृति की यदा कदा उपेक्षा हुई है, किन्तु दक्षिण भारत में किसी भी भव्यता का प्रदर्शन हो किसी उत्सव में चाहे वह पारिवारिक हो सांस्कृतिक सामाजिक हो या किसी पर्व का हो दक्षिण भारत का जन मानस अपनी संस्कृति से कभी भी दूर नहीं हुआ। भोजन वह आज भी केले के पत्ते पर करते हैं, वेणी का प्रयोग महिलायें नित्यप्रति करती हैं, हर घर में रंगोली नित्य प्रातः अवश्य सजती है, और इसके अतिरिक्त उनकी चित्रकला मूर्ति कला एवं स्थापत्य पर भी उस संस्कृति की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है।

चूँकि शोध पत्र का विषय तंजौर कला के संदर्भ में है, अतः इस शोध पत्र में तंजौर कला संस्कृति की विवेचना करने का प्रयास समीचीन होगा। तंजौर कला कहानी किस्से सुनने-सुनाने की विस्तृत कला से जुड़ी है। चेन्नई से 300 किमी दूर तंजावुर में शुरू हुई यह कला चोल साम्राज्य के राज्यकाल में सांस्कृतिक विकास की ऊँचाई पर पहुँची तथा उत्तरोत्तर यह कला और भी समृद्ध होती गई। प्रारंभ में तो यह भव्य चित्र राजप्रसाद एवं मन्दिरों की सजावट में अभिवृद्धि करते थे, किन्तु बाद में घर-घर में यह सजावट का अंग बन गये। चोल साम्राज्य की सम्प्रभुता के अन्तर्गत तंजौर चित्रकला का प्रारंभ हुआ था। 18वीं शताब्दी के समकक्ष तंजौर कला सफलता के शिखर पर पहुँच गयी थी। तंजौर में **सरस्वती महल पुस्तकालय** प्रसिद्ध तंजौर चित्रों को प्रदर्शित करता है। तंजावुर स्थित यह पुस्तकालय मध्यकालीन पुस्तकालयों में से एक था। मद्रास सरकार ने 1918 में इसे सार्वजनिक रूप दे दिया था। तमिलनाडु पंजीयन अधिनियम 1975 के अन्तर्गत इसका एक समुदाय के रूप में पंजीकरण हुआ था। यह पुस्तकालय पैलेस के कैम्पस में स्थित है। पहले यह पुस्तकालय का नाम तंजावुर महाराजा शेरफ जी का सरस्वती महल था। इस पुस्तकालय की स्थापना पैलेस 1700 ईसवी के आस-पास की गई थी। इस संग्रहालय में भारतीय और यूरोपियन भाषाओं में लिखी हुई 44000 से ज्यादा ताम्रपत्र और कागज की पांडुलिपियाँ देखने को मिलती हैं। इनमें 80 प्रतिशत पांडुलिपियाँ संस्कृत में लिखी हुई हैं। कुछ पांडुलिपियाँ अत्यन्त दुर्लभ हैं। इनमें तमिल में लिखी औषधि विज्ञान की पांडुलिपियाँ भी शामिल हैं। ताड़ के पत्तों की दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संग्रह अन्यत्र अप्राप्य है। यह पुस्तकालय एशिया में सबसे प्राचीनतम पुस्तकालयों में से एक है। इन सबके अतिरिक्त खजूर के पत्ते पर तमिल, मराठी, तेलगू और अंग्रेजी सहित अनेक भाषाओं में लिखी पांडुलिपियाँ व पुस्तकों का असाधारण संग्रह हैं। सरस्वती महल पुस्तकालय को तंजावुर के शासक के लिए रायल लाइब्रेरी के रूप में प्रारंभ किया गया था। इस पुस्तकालय में मद्रास पंचांग (1807) है। यहाँ की संपूर्ण संस्कृति और विरासत का वर्गीकरण कर इसी प्रकार एक छोटे से संग्रहालय में नुमाइश के तौर पर रखा गया है। कला संस्कृति और साहित्य के सभी पहलुओं की पांडुलिपियाँ पुस्तकें नक्शे चित्र आसानी से मिल जाते हैं। यहाँ बेहद दुर्लभ और अमूल्य संग्रह लगभग 49000 खंड संरक्षित हैं।

इसके अतिरिक्त सरकारी संग्रहालय, चेन्नई और तंजावुर आर्ट गैलरी में तंजावुर चित्रों का संग्रह है जो तंजावुर और अन्य मराठा राजाओं के भी कला प्रेम को दर्शाते हैं। अनेक निजी संग्रहालयों में और कलेक्टरों में भी तंजावुर चित्रों के संग्रह हैं।

इंग्लैण्ड में ब्रिटिश और बिक्टोरिया अल्बर्ट संग्रहालय में कंपनी और पारंपरिक शैलियों में तंजावुर चित्रों को बड़ा संग्रह है। कोपेन हेगज के राष्ट्रीय संग्रहालय में 17वीं शताब्दी तंजावुर के चित्रों का संग्रह है। डेनमार्क के राजा ईसाई चतुर्थ को ट्रामबार (तमिल में थारंगबंदी) में एक किला बनाने की अनुमति मिली थी जिसके कारण दानेश बोर्ग किले की इमारत और तंजावुर के साथ डेनिश के संबंध स्थापित हुए परिणामतः संग्रहालय का निर्माण हुआ। ब्रिटिश संग्रहालय और बिक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय में ऐसी पेंटिंग्स का एक मोहक संग्रह है।

मंदिरों की चित्राशालाओं में तंजौर में राजराज संग्रहालय प्रसिद्ध है। वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय तिरुपति में भी कलात्मक कृतियों के बेजोड़ संग्रह हैं। सीतारंगम मन्दिर और मीनाक्षी सुंदरेश्वरी का मन्दिर तथा मदुराई के मंदिर की कलात्मकता का उल्लेख भी इस संदर्भ में करना प्रासंगिक होगा क्योंकि वहाँ की कलात्मक बरबस ही मन मोह लेती है तथा सांस्कृतिक एवं कलात्मकता से तत्कालीन कलाकारों के कौशल को प्रदर्शित करती है। सीतारंगम मन्दिर में मूर्तिकला के अद्भुत नमूने हैं, मीनाक्षी में हाथीदाँत की कला अद्भुत है।

तंजावुर पेंटिंग एक शास्त्रीय दक्षिण भारतीय चित्रकला शैली है। जो तंजावुर में जन्मी और आस-पास में भौगोलिक दृष्टि से पूरे तमिल प्रदेश में फैल गयी थी। तंजावुर के नेतृत्वकर्ताओं ने तेलगू और तमिल दोनों में कला, शास्त्रीय नृत्य और संगीत के साथ-साथ साहित्य को प्रोत्साहित किया था। मंदिरों में मुख्यतः हिंदू धार्मिक विषयों का चित्रण किया गया था। तंजावुर चित्रकला की उत्पत्ति (1676-1855) में हुई थी इसे (2007-08) में भारत सरकार द्वारा भौगोलिक संकेत के रूप में पहचाना गया था।

तंजावुर पेंटिंग्स समृद्ध सपाट और ज्वलंग रंगों सरल प्रतीकात्मक संरचना कोमल किन्तु चटकीले गेसो काम और कांच के मोती अर्द्ध कीमती रत्नों पर आच्छादित सोने के पत्तों की विशेषता रखती है।

तंजावुर पेंटिंग्स में भक्ति प्रतीक के रूप में सेवा करते हुए अधिकांश चित्रों में कृष्ण और शिव आदि देवों को दर्शाया गया है, तंजावुर पेंटिंग्स लकड़ी के तख्ते पर पैनल पेंटिंग्स हैं। आधुनिक समय में ये चित्र दक्षिण भारत में उत्सव के अवसरों पर प्रयुक्त होने वाले स्मृति चिन्ह बन चुके हैं जो दीवारों की साज सयम आदि के लिए भी प्रयोग में लाये जाते हैं।

तंजावुर पेंटिंग्स के इतिहास में 11वीं शताब्दी में वृहदेश्वर मंदिर में चोल दीवार चित्रों के साथ-साथ नायक काल से पेंटिंग्स भी सम्मिलित है। इन पेंटिंग्स के लिए कलाकारों ने सब्जी और खनिज रंगों जैसे प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया था। जबकि वर्तमान में रासायनिक रंगों का प्रयोग होता है। लाल रंग पृष्ठभूमि के लिए अनुकूल था। विष्णु के लिए नीले रंग नटराज चाक सफेद और उनकी पत्नी शिवकामी का रंग हरा था। ये कलाकार मदुराई के नायडू समुदाय से संबंध रखते थे, जिन्होंने तंजावुर शैली में चित्रों को उत्कीर्ण किया था। तंजौर पेंटिंग्स को समेकित शैली द्वारा सूचित किया जाता है। चोल शासन में भित्ति चित्र प्रमुखता से आ गये थे। तत्कालीन विशालतम संरचनाओं में प्रमुख स्थान रखने वाला तंजौर का वृहदीश्वर मंदिर अपनी वास्तुकला के लिए विश्व प्रसिद्ध है। इस मंदिर के गोपुरम ज्यादा बड़े नहीं किन्तु परिष्कृत अवश्य है। मंदिर के एक भाग में विशाल नदी है, जो स्थान नदी मंडप के नाम से जाना जाता है। मंदिर की भव्य संरचना एवं शिखर को देखते ही अनायास ही तत्कालीन कलाकारों के सम्मान में सर झुक जाता है। इसकी पिरामिड जैसी संरचना में लय एवं समरूपता है। शिखर के शीर्ष पर एक पत्थर से बना विशाल कलश है। इस मंदिर में बहुत सी स्वर्ण एवं पीतल की मूर्तियां थी जो आज भी महल के संग्रहालय में हैं। मंदिर के दोनों ओर प्रवेश द्वार जिस पर खड़े हुए बड़े-बड़े द्वारपाल इसकी विशिष्टता को दर्शाते हैं। मंदिर के अंदर गर्भ गृह के प्रदक्षिणा पथ की दीवारों पर चोल कालीन चित्रकारी है जो सामान्य लोगों के लिए प्रतिबंधित है। इसे देखने के लिए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग से अनुमति लेना पड़ता था किन्तु अब यह प्रतिबंध समाप्त हो गया है। वृहदीश्वर मंदिर के गलियारे पर एक खास तरह की चित्रकारी है पहले गाढ़े चूने से पोतकर उसपर चित्र बनाये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये चित्र अभी ही बने हों।



तिरुपति पेंटिंग्स तकनीकों के उपयोग के लिए भी जाने जाते हैं। जैसे चित्रित टेराकोटा राहत पीतल के पुर्ननिर्माण कार्य कागज और कैनवास पर पेंटिंग्स इत्यादि। इसके साथ ही नक्काशीदार लकड़ी के शिल्प से भी सम्बन्धित थी। गिल्ड, पत्थर सेट आभूषण का काम था। वृहदीश्वर मंदिर उसके साथ नंदी मंडपम के चित्रकारी दर्शकों को आह्लादित करती है, जिसे देखने के लिए पहले भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग से अनुमति लेनी पड़ती थी यद्यपि अब इसे समाप्त कर दिया गया है। तंजौर की चित्रकला हो या आस-पास के क्षेत्र की कला अभिव्यक्ति उसका माध्यम जो भी उसकी भव्यता एवं राजसी वैभव तत्कालीन समृद्धता एवं कलाकारों की कार्य कुशलता का परिचय स्वयं देती है।

यद्यपि तंजापुर की पेंटिंग्स निरन्तर ऐसी ही अपनी समृद्धता की विराजत को संजोते हुए आगे भी अपने अस्तित्व को बनाये रखेगी, तथापि कठोर गुण सूत्रता के साथ जो पहले की पेंटिंग्स की चिन्हित करता है तंजापुर चित्रों पर पुनर्कार्य कार्यक्रम प्रदर्शनी कार्यशालायें और प्रशिक्षण शिविर राज्य सरकारों सहित कई संस्थानों द्वारा आयोजित किये जा रहे हैं। उपयोग की जाने वाली सामग्री लागत और उपलब्धता में आसानी और व्यक्तिगत कलाकारों की पसंद अनुसार परिवर्तित हो गयी हैं।

आधुनिक लोकप्रिय और अकादमिक कला में तंजौर चित्रों के निरन्तर प्रभाव इसका उदाहरण है। कलाकारों ने कला के प्राचीन रूप को अंगीकृत किया है। उदाहरण दर्पण, कांच और कैनवास पर तंजौर भी किये जाते हैं। सोना पत्ती लगाने का विचार पारंपरिक कला के लिए अद्वितीय है। अतः यह शैली अलग-अलग माध्यमों पर अपनाई जाती है, और पुनः बनाई जाती है।

चोलकाल में उपजी तंजौर कलाशैली जिसमें प्राचीन सभ्यता एवं कला संस्कृति का जीवंत उदाहरण कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया है। वह सदैव वर्तमान एवं भविष्य के लिए कलाकारों के लिए प्रेरणास्रोत रहेगी। कलाकारों के लिए आजीविका के साथ-साथ संस्कृति एवं कला का संपोषण भी होता रहेगा ऐसी ही अपेक्षा है, हमारी यह समृद्ध विरासत आजीविका स्रोत ही नहीं है, बल्कि अन्तराष्ट्रीय पटल पर भी गौरवान्वित करती है तथा पर्यटन के अवसर को बढ़ाती है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एच. एन. दुबे, दक्षिण भारत का इतिहास, शारदा पुस्तक भवन, 1987
2. जे. एन. पाण्डेय, भारतीय कला एवं पुरातत्व, प्रमानिक पब्लिकेशन्स, 1989
3. के. सी. श्रीवास्तव, भारत की संस्कृति तथा कला, यूनाईटेड बुक डिपो, 1992
4. आर. एन. पाण्डेय, संगम युग, 1986

(i) <http://archiveindia.gov.in>

(ii) <http://bharatdiscovery.org>

(iii) <http://knowindia.gov.in>

(iv) <http://www.inditales.com>

(v) <http://him.wikipedia.org>

(vi) <http://www.incredibleindia.org>

\* \* \* \* \*

## महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचार : एक अध्ययन

कंचन कुमारी\*

शिक्षा का अर्थ क्या है ? इसे स्पष्ट करते हुए “हिन्द स्वराज” में गाँधी जी लिखते हैं कि अगर शिक्षा का अर्थ केवल अक्षर ज्ञान है तो वह एक हथियार रूप बन जाती है। उसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी हो सकता है। जिस हथियार से दूसरों की जान भी ली जा सकती है। अक्षर ज्ञान के बारे में भी यही बात है। बहुत से लोग उसका दुरुपयोग करते हैं। इससे यह नहीं मान लेना चाहिए कि मैं अक्षर ज्ञान का हर हालत में विरोधी हूँ। गाँधी जी के शैक्षिक विचारों का उद्देश्य लोगों के मन में शिक्षा के प्रति विचारों में क्रांति लाना था ताकि नये भारत का निर्माण हो सके। शिक्षा के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने अन्यत्र लिखा है—“सा विद्या या विमुक्तये” जो मुक्ति के योग्य बनाए वह विद्या है, बाकी सब अविद्या है। जो चित्त की शुद्धि न करे, मन और इन्द्रियों को वश में न रखे, स्वावलंबन पैदा न करे वह शिक्षा अधूरी है, अराष्ट्रीय है। पेस्तालाजी की तरह गाँधी भी संगतिपूर्ण सर्वांगीण विकास में विश्वास करते हैं। अतः वे लिखते हैं “शिक्षा को बालक और बालिका के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना चाहिए। कोई भी शिक्षा ठोस नहीं कही जा सकती जो बालक और बालिका को एक उपयोगी नागरिक नहीं बनाती है। उनके मतानुसार शिक्षा का यह अनिवार्य कार्य है कि वह मनुष्य के शरीर, मन, हृदय और आत्मा का संगतिपूर्ण विकास करें। सच्ची शिक्षा बालक के शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों को प्रकाश में लाती है और प्रेरणा प्रदान करती है।<sup>1</sup>

शिक्षा को परिभाषित करते हुए महात्मा गाँधी लिखते हैं कि शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य में निहित शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक श्रेष्ठ व्यक्ति शक्तियों का सर्वांगीण विकास है। गाँधी जी ने शिक्षा का एक प्रगतिशील उद्देश्य प्रस्तुत किया। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण करना था। इसके अन्तर्गत वे आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक विकास अर्थात् जीवन के सभी पक्षों पर बल देते थे। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य नौकरी पाना नहीं था। वे बच्चों को स्वावलंबी बनाना चाहते थे, अप्रैल 1912 के एक पत्र में जे0 टाटा को संबोधित करते हुए उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य पर प्रकाश डाला था। “उन्होंने लिखा था कि जो बच्चे टॉल्स्टाय फर्म से निकलेंगे वे वहाँ प्राप्त की हुई शिक्षा को जीवन में, अपने आचरण में अवतरित करेंगे और सादा जीवन व्यतीत करेंगे।”<sup>2</sup> महात्मा गाँधी के शैक्षिक दर्शन एवं कार्यक्रमों की शुरुआत दक्षिण अफ्रीका में फीनिक्स आश्रम (1904) एवं टॉल्स्टाय फर्म (1908) में हुई थी किंतु जब वे दक्षिण अफ्रीका (1915) से भारत आए तो उन्होंने अपने अनुभवों तथा प्रयोगों के आधार पर राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना में अपने को लगाया।

गाँधी जी की दृष्टि सूक्ष्म एवं व्यापक थी। उनके अनुसार वह शिक्षा किस काम की जो राष्ट्र व समाज एवं व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हैं। गाँधी जी शिक्षा के जीविकोपार्जन के उद्देश्य से सहमत थे, जैसा कि उन्होंने लिखा है — “इसकी उपयोगिता की कसौटी तो यह होगी कि मैं इसे स्वावलंबी बना हूँ। सात साल के अन्त में बालकों को इस काबिल हो जाना चाहिए कि वे अपनी पढ़ाई का खर्च खुद अदा कर सकें और अपने परिवार के कमाऊ पुत्र बन सकें।”<sup>3</sup> गाँधी जी के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए मार्ग रेटबार ने लिखा है—शिक्षा की कोई भी प्रणाली जो व्यक्ति के संतुलित विकास को शिक्षा का उद्देश्य मानती है। इस बात को दृष्टि से ओझल नहीं होने दे सकती कि आज का प्रत्येक बालक कल का होने वाला नागरिक है। अतएव अनिवार्य है कि उसे इसे योग्य बनाया जाय कि वह अपनी जीविका चला सके।<sup>4</sup>

\* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, तिलकामाँझी, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

शिक्षार्थी को सुसंस्कृत बनाना शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। गाँधी जी के मतानुसार जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त संस्कृति आत्मा का गुण है। इस संबंध में वे कहते हैं कि – “मैं शिक्षा के सांस्कृतिक पक्ष को उसके साहित्यिक पक्ष की अपेक्षा अधिक महत्व देता हूँ। संस्कृति ही वह आधार है जिसे छात्रों को यहाँ से ग्रहण करना चाहिए। इस संस्कृति की झलक तुम्हारे छोटे से छोटे कार्य जैसे – बैठना, चलना, कपड़े पहनना इत्यादि से मिलनी चाहिए।”<sup>5</sup> आधुनिक शिक्षा प्रणाली में केवल मस्तिष्क के प्रशिक्षण पर बल दिया जाता है। गाँधी जी हाथ, हृदय और मस्तिष्क सभी को सुशिक्षित करना चाहते थे। वे कहते हैं “आपको बालकों को किसी-न-किसी धंधे में प्रशिक्षित करना है। इस विशिष्ट धंधे के माध्यम से उसके मस्तिष्क, हाथ की लिखावट, कलात्मक प्रवृत्ति इत्यादि को प्रशिक्षित किया जा सकता है।”<sup>6</sup> गाँधी जी सुलेख को शिक्षा का आवश्यक अंग मानते हैं। इसलिए लिखना पढ़ना सिखाने के पहले वे विद्यार्थी को चित्रकला की शिक्षा देना चाहते थे। इस संबंध में महात्मा गाँधी जी ने लिखा है कि “लड़के-लड़कियों के अंदर जो सच्चाई छिपी है उन्हें बाहर लाने के लिए और पढ़ाई में भी उनकी सच्ची दिलचस्पी पैदा करने के लिए कवायद, उद्योग, चित्रकारी और संगीत साथ सीखाने चाहिए।”<sup>7</sup>

गाँधी जी के अनुसार समस्त ज्ञान का अंतिम उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिए। सुन्दर चरित्र निर्माण होने के पश्चात ही आत्मानुभूति सम्भव है। आत्मा को पहचाना जीवन और शिक्षा का सर्वोपरि गुण है। इसलिए वे छात्रों से कहते हैं तुम्हारी समस्त क्रियाएं, खेल अथवा कार्य का ध्येय एक नियंत्रित जीवन की उपलब्धि होनी चाहिए। वे सब तुमको ईश्वर के पास ले जाने वाले हैं।”<sup>8</sup> यही कारण है कि गाँधी जी को छात्र का पर्यायवाची शब्द ‘ब्रह्मचारी’ बड़ा प्रिय था। उनके इस विचार का अर्थ है भगवान की खोज न करने वाला अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो इस प्रकार का आचार व्यवहार करता हो जिससे कि कम-से-कम समय में ईश्वर के समीप पहुँचा जाय।<sup>9</sup>

गाँधी जी शिक्षा को राष्ट्रीय संदर्भ से जोड़ना चाहते थे। यही बात कोठारी आयोग ने भी कहा है कि शिक्षा को राष्ट्र के पुनर्निर्माण का एक साधन होना चाहिए। जिस समय गाँधी जी अपना शैक्षिक दर्शन एवं कार्यक्रम विकसित कर रहे थे, उस समय ब्रिटिश शिक्षा-प्रणाली थी। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली न तो समाज व परिवार के अनुकूल थी और न ही व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ थी। शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए हमें प्रयासरत रहना चाहिए। गाँधी जी का पाठ्यक्रम के विषय में कहना था कि जिस पाठ्यक्रम से और शिक्षा संबंधी विचारों से वर्तमान शिक्षा का ढाँचा बना है, वे ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, एडिनबर्ग और लंदन से लाये गये थे। वे मूलतः विदेशी हैं और जब तक उनका त्याग नहीं किया जायेगा राष्ट्रीय शिक्षा असंभव है। अंग्रेजी स्कूलों एवं कॉलेजों में जो अंग्रेजी सरकार की स्वार्थपूर्ण देन है वह हमारी राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकती। वे साहित्यिक, वैज्ञानिक, कलात्मक तथा रचनात्मक विषयों को पढ़ाने के पक्ष में थे, किंतु वे उन्हें आध्यात्मिक एवं जीविकोपार्जन दोनों ही लक्ष्यों को दृष्टिगत करके पढ़ाना चाहते थे।

गाँधी जी का विचार था कि “आत्म शिक्षण शिक्षा का एक स्वतंत्र विषय है। उनकी दृष्टि में आत्मा का विकास करने का अर्थ था चरित्र का गठन, ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना, आत्म ज्ञान प्राप्त करना। गाँधी जी सामान्यतः धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा को महत्व देते थे। जब उनसे पूछा गया कि बुनियादी शिक्षा में धार्मिक शिक्षा क्यों नहीं रखी गयी, तो उनका मत था कि बुनियादी शिक्षा की स्वावलंबन, आत्म निर्भरता की शिक्षा है और वही सबसे बड़ा धर्म और सबसे बड़ी धार्मिक शिक्षा है। गाँधी जी का दृष्टिकोण रूढ़िवादी धर्म पर आधारित नहीं था। वे धर्म की आस्था और आचरण पद्धति पर विश्वास करते थे। गाँधी जी की ये सारी मान्यताएँ उनके निजी अनुभवों पर आधारित हैं। आत्मकथा में वे लिखते हैं पाठ्य पुस्तकों के लिए जो समय-समय पर शोर सुनायी देता है मुझे उनकी जरूरत कभी न पड़ी। शिक्षकों ने पाठ्य-पुस्तकों से मुझे जो सिखाया था उसमें भी थोड़ा ही याद है जिन्होंने मौखिक सिखाया था उसकी याद आज भी बनी हुई है। बालक औरव से जितना ग्रहण करता है उसकी अपेक्षा कान से सुना हुआ, थोड़े से परिश्रम से बहुत ज्यादा ग्रहण कर सकता है।”<sup>10</sup>

प्राचीन काल में आश्रम की शिक्षा प्रचलित थी। गाँधी जी सर्वांगीण शिक्षा के लिए आश्रम विधि को अत्यंत श्रेयस्कर समझते थे। शिक्षण विधि का मूल आधार आत्मनिर्भरता थी और फिनिक्स आश्रम में उन्होंने इसे क्रियान्वित भी किया। गाँधी के शिक्षण विधि में उपवास का भी महत्वपूर्ण स्थान था। त्रुटियों के लिए प्रायश्चित्त करना जीवन के लिए बहुत बड़ी शिक्षा है और प्रारंभ से बच्चों को दी जानी चाहिए। गाँधी जी का कहना था कि शिष्य दोषों के लिए थोड़ा बहुत जिम्मेदार है। इसलिए उपवास अथवा एकासन उपयोगी होगा।<sup>11</sup> गाँधी जी ने पुनः ‘लर्निंग

टू लर्न' के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। वे लिखते हैं कि उन्हें बच्चों को सिखाना कम था, उनका आलस्य छुड़ाना, उन्हें अपने आप पढ़ते रहने की आदत डलवाना और उनकी पढ़ाई की खबरदारी रखना, खास काम यही था। बिना इस सिद्धांत के भिन्न-भिन्न उम्र के बच्चों को शिक्षा देना संभव नहीं था। गाँधी जी अपनी आत्मकथा में लिखे हैं कि सच्ची शिक्षा माँ-बाप के माध्यम से ही मिल सकती है। चारित्रिक बुनियादी मजबूत हो तो और बातें लड़के अवकाश मिलने पर दूसरों की सहायता से सीख सकते हैं।<sup>12</sup>

गाँधी मौखिक शिक्षा पर बल देते थे जो अधिक रसयुक्त एवं टिकाऊ होती हैं। जबकि आलोचना भी है कि मौखिक शिक्षण विधि लेक्चर विधि का पर्याय है किंतु बात ऐसी नहीं है। जिस विधि पर गाँधी जी का जोर था वह प्रश्नोत्तर विधि थी और स्वयं सीखने पर अधिक बल होता था। वैसे भी किसी ज्ञान का मौखिक महत्व अधिक होता है। सामान्य जीवन में लिखने का अवसर बहुत कम लोगों को और बहुत कम यात्रा में प्राप्त किया जाता है किंतु भाषा शिक्षण में मौखिक परीक्षा को महत्व नहीं के बराबर दिया जाता है और यदि विद्यार्थी लिखित परीक्षा में उत्तर देकर प्रथम श्रेणी में पास हो गया तो क्या वास्तव में उसे भाषा की वह क्षमता प्राप्त हो गयी जो उसके लिए दैनिक जीवन में उस समय आवश्यक होती है जब उसे अपने विचारों, अपनी अनुभूतियों को दूसरी तरफ तक ठीक ठाक पहुँचाने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार अन्य विषयों के लिए भी है। गणित में मौखिक और मानसिक गणित पर बल नहीं दिया गया तो वह जीवन उपयोगी बहुत कम रह जाती है कदाचित इस देश में भी गठित के लिए विद्यार्थी पाकेट में कलकुलेटर लेकर घुमे और इसलिए अब गणित में बहुत कुछ अंश तक सिखाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।<sup>13</sup>

गाँधी जी ने अपनी शिक्षा प्रणाली के लिए शिक्षकों पर भी विचार किया है। वे विशेष गुणों से युक्त अध्यापकों की आवश्यकता इसके लिए समझते हैं। वे कहते हैं कि "आजकल के शिक्षक कोई स्वयं सेवक नहीं होते, वे तो अपनी जीविका के लिए काम करने वाले चिड़ी के चाकर या नौकर होते हैं। अनिवार्य अध्यापन के लिए जिन स्त्री-पुरुषों को चुना जाय उनमें पहले ही स्वदेश प्रेम, स्वार्थ, त्याग की भावना, कुछ अच्छे संस्कार और दस्तकारी का ज्ञान, इतनी बातें अवश्य होनी चाहिए।"<sup>14</sup> उनका मानना था कि "अगर हमें सुयोग्य शिक्षक मिल गये तो वे हमारे बालकों को शरीर श्रम का महत्व और गौरव समझाएंगे। प्रत्येक शिक्षक को अपना कार्य एकाग्रता से करना चाहिए और बालकों के साथ एक रूप होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने उपाय बताते हुए लिखा है कि, "हर एक शिक्षक अपने विधान को उसके वर्ग के बच्चों की खासियत और उनकी खास जरूरतों के साथ मेल खा सकें। यह काम कठिन तो जरूर है, पर शिक्षक अपना सारा दिल इस काम में लगा दे तो हम जितना समझते हैं उतना कठिन वह नहीं है। गाँधी जी के अनुसार सच्चा शिक्षक सार देकर या कठिन वाक्यों का अर्थ स्पष्ट करके कभी संतोष नहीं कर सकता। वह तो समय-समय पर पाठ्य पुस्तक को छोड़कर अपने पढ़ाने का विषय विद्यार्थी के सामने चित्रकार की तरह जीते-जागते रूप में खड़ा कर सकता है।

गाँधी जी गुरु शिष्य संबंध को बड़ा पवित्र मानते थे। अतएव हर एक शिष्य को 'गुरु' बनने का प्रयास करना चाहिए। वे कहते हैं कि "मैं गुरु भक्ति को मानने वाला हूँ मगर एक शिक्षक गुरु नहीं हो सकता। गुरु शिष्य का नाता आध्यात्मिक और अपने आप पैदा होता है। यह बनावटी नहीं होता। वह बाहर के दबाव में पैदा नहीं होता। गुरु भक्ति दूसरी ही चीज है, जहाँ चरित्र बनाना शिक्षा का विषय है वहाँ गुरु शिष्य का प्राचीन संबंध अत्यंत आवश्यक है और जहाँ शुद्ध भक्ति न हो वहाँ तो चरित्र बन ही नहीं सकता।"<sup>15</sup> उन्होंने लिखा है कि "शिक्षक को कभी विद्यार्थी को शारीरिक दण्ड नहीं देना चाहिए। यह अधिकार यदि किसी को है तो वह माता-पिता को हो सकता है दिया हुआ दण्ड विद्यार्थी स्वयं स्वीकार करे तभी वह न्यायपूर्ण हो सकता है। ऐसे मौके बार-बार आते हैं पर दण्ड के औचित्य के बारे में संदेह हो तो दण्ड नहीं देना चाहिए। गुस्से में तो कदापि नहीं देना चाहिए।"<sup>16</sup> गाँधी जी कहते हैं कि "विद्यार्थीओं को शारीरिक या किसी प्रकार की सजा नहीं दी जानी चाहिए। अगर आप चाहे और आप में योग्यता हो तो अपने बच्चों या विद्यार्थियों का दिल पिघलाने के लिए आप स्वयं अपने आप को सजा दे सकते हैं। बहुत सी माताओं ने अपने बच्चों को इसी प्रकार सुधारा है। मैंने स्वयं बहुत बार ऐसा किया है। जब शिक्षकों और विद्यार्थियों में प्रेम की गाँठ बंध जाती है तब विद्यार्थी कभी यह सहन नहीं करते कि शिक्षक उनके कारण कष्ट उठाएँ। रही बदमाश लड़कों की समस्या, सो अगर उनके मन में आपके लिए सम्मान नहीं है तो आप उनके साथ असहयोग कर सकते हैं। अहिंसा आपको मजबूर नहीं करती कि आप ऐसे लड़कों को स्कूल में रखें जो स्कूल के नियमों का पालन नहीं करते।"<sup>17</sup>

गाँधी जी शिष्य के पतन के प्रायश्चित के लिए शिक्षक को उपवास व्रत आदि का समर्थन करते थे। फिनिक्स आश्रम से संबंधित एक घटना के संबंध में उन्होंने सात दिन का उपवास और साढ़े चार महीने का एक वक्त भोजन का व्रत लिया था। शिष्यों के हर एक दोष के लिए ऐसे प्रायश्चित उपयोगी नहीं होते। इसके लिए विवेक और अधिकार चाहिए। जहाँ गुरु शिष्य में पारस्परिक प्रेम और आध्यात्मिक संबंध नहीं होता वहाँ यह बेकार और हानिकारक भी होता है। महात्मा जी नैतिक और प्रेरणात्मक अनुशासन के पक्षपाती थे। हर प्रकार की स्वाधीनता की सुरक्षा के लिए अनुशासन की आवश्यकता बतलाते हुए कहते हैं कि “जब तक उसकी पढ़ाई समाप्त न हो जाय तब तक विद्यार्थी का जीवन संन्यासी के जीवन जैसा होना चाहिए उसे अत्यंत कठोर अनुशासन में रहना चाहिए। उसका आचरण आदर्श आत्म-संयम का होना चाहिए।”<sup>18</sup> अगर बालक और बालिकाएं अपने विद्यार्थी जीवन में अनुशासन नहीं सीखते तो उनकी शिक्षा में व्यय हुआ धन और समय दोनों राष्ट्र की हानि है।<sup>19</sup>

गाँधी जी के मन में नारी के प्रति अगाध सम्मान था, वे स्त्री तथा पुरुष को समान तथा एक दूसरे का पूरक समझते थे। उनका विश्वास था कि समाजरूपी रथ के स्त्री तथा पुरुष दो चक्रों के सदृश हैं। इनमें से “एक की हानि, दूसरे की हानि है तथा एक के अभाव में दूसरा अपूर्ण है।”<sup>20</sup> इसलिए पुरुषों के समान ही नारी के विश्वास पर बल दिया जाना चाहिए। गाँधी जी के दृष्टि में “नारी अबला नहीं है बल्कि अपनी शक्ति को पहचाने तो पुरुष से भी अधिक सबला है।” नारी को यह सिखाया गया कि वे अपने को पुरुषों की दासी समझे।<sup>21</sup> गाँधी जी ने भारतीय समाज की इस मनोवृत्ति का सदैव विरोध किया तथा नारी-उत्थान हेतु आजीवन कार्य किया। गाँधी जी का विश्वास था कि “स्त्री दुनिया की प्रगति में अपना योग पुरुष की नकल तथा उसकी प्रतिस्पर्धा करके नहीं दे सकती वह चाहे तो प्रतिस्पर्धा कर सकती है लेकिन पुरुष की नकल करके वह उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकती जिस ऊँचाई तक उसके लिए उठना संभव है। उसे पुरुष का पूरक बनना चाहिए।”<sup>22</sup> विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) ने भी गाँधी जी के विचारों का समर्थन करते हुए कहा कि “शिक्षित महिलाओं के बिना शिक्षित व्यक्ति नहीं हो सकता। यदि सामान्य शिक्षा स्त्रियों अथवा पुरुषों तक सीमित रखना हो तो यह अक्सर स्त्रियों को दिया जाना चाहिए क्योंकि ऐसी दशा में शिक्षा निश्चित रूप में आगामी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जा सकेगी”<sup>23</sup>

‘सह-शिक्षा’ के संबंध में गाँधी के विचार बड़े ही उदार थे। उन्होंने अपने प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि भारत में भी सह शिक्षा सफल हो सकती है। परंतु इसके लिए निरीक्षण की आवश्यकता है। वे चाहते थे कि सह-शिक्षा का प्रारंभ परिवार में होना चाहिए तथा बालक-बालिकाओं को स्वतंत्रतापूर्वक अपना विकास करने का अवसर दिया जाना चाहिए। वे कहते थे कि यदि अच्छा वातावरण हो तो सोलह वर्ष की अवस्था तक ‘सह-शिक्षा’ की व्यवस्था की जा सकती है। परंतु वर्धा-शिक्षा में आठ वर्ष तक ही सह-शिक्षा की संस्तुति है। गाँधी जी चाहते थे कि समाज इस बात का निर्णय करे कि ‘सह-शिक्षा’ की व्यवस्था हो अथवा नहीं। उनका विश्वास था कि जनता के शिक्षित हो जाने पर इस समस्या का समाधान स्वतः हो जायेगा।

भारत के अधिकांश प्रौढ़ अशिक्षित हैं और वे अपनी संतानों को उचित शिक्षा नहीं दे पाते तथा साथ ही अपने कर्तव्यों का पालन ठीक से नहीं कर पाते। इसलिए गाँधी जी अच्छे परिवारों की स्थापना हेतु प्रौढ़-शिक्षा पर बल देते हुए कहते हैं कि “मैं प्रौढ़ शिक्षा को उस अर्थ में नहीं लूँगा जैसा लोग समझते हैं बल्कि वह तो अभिभावकों की शिक्षा होगी जिससे अभिभावक अपने बच्चों के निर्माण में पर्याप्त उत्तरदायित्व निभा सकें”<sup>24</sup> इस प्रकार गाँधी जी बालक-बालिकाओं की सम्यक् शिक्षा के लिए अभिभावकों की सम्यक् शिक्षा को परमावश्यक मानते हैं। गाँधी जी प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा प्रौढ़ों को सुखी और उच्चतर नागरिक बनाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में उद्योग, व्यवसाय, साक्षरता, स्वच्छता, स्वास्थ्य, समाज कल्याण, बौद्धिक विकास, सामाजिक एवं नैतिक आदर्श, भावात्मक एकता एवं संस्कृति से संबंध रखने वाली क्रियाओं को स्थान देना चाहते थे। उन्होंने छात्रों को सलाह दी कि “वे अवकाश में गाँवों में जाकर लोगों को स्वस्थ एवं व्यवस्थित जीवन जीने के लिए प्रेरित करें और स्वयं अपने हाथों से सफाई करें।

गाँधी जी के साबरमती आश्रम एवं सेवाग्राम आश्रम इस बात के प्रमाण हैं कि किस प्रकार उन्होंने वयस्कों को स्वास्थ्य, अहिंसा, प्रेम, सौहार्द आदि की शिक्षा दी और कितनी कुशलता से प्रौढ़ों ने इसे ग्रहण भी किया। गाँधी जी जहाँ भी रहे उन्होंने करोड़ों लोगों के जीवन को प्रभावित किया। इसी आधार पर विद्वान उन्हें “समाज शिक्षा” की संज्ञा देते हैं।

गाँधी जी के शैक्षिक विचारों की चर्चा होने पर सामान्यतया लोगों के मन में यह धारणा बनती है कि गाँधी जी का शैक्षिक विचार 'वर्धा शिक्षा योजना' या 'बेसिक शिक्षा योजना' ही है। निःसंदेह 'वर्धा शिक्षा योजना' गाँधी जी के शैक्षिक विचारों का एक अभिन्न अंग है, परंतु उनके सम्पूर्ण शैक्षिक विचारों का पर्यायवाची नहीं। गाँधी जी बच्चों के शिक्षा की बात के साथ स्त्री शिक्षा पर भी बल दिये। ये प्रौढ़ शिक्षा को भी बढ़ावा दिये। जिससे समाज का शैक्षिक स्तर पर विकास हो।

#### सन्दर्भ-सूची

1. हरिजन, 31.7.1937, पृ. 197
2. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी : वांगमय 11, पृ. 251
3. वही, पृ. 195
4. हरिजन, 18.9.1937, पृ. 128
5. हरिजन, 12.9.1937, पृ. 195
6. वही, पृ. 198
7. यंग इण्डिया, 21.1.1927, पृ. 145
8. यंग इण्डिया, 8.9.1927, पृ. 122, वही, पृ. 104
9. नवजीवन, 10.8.1924, पृ. 135
10. वही, पृ. 138-139
11. आत्मकथा, पृ. 388
12. हरिजन बंधु, 17.9.1939, पृ. 182
13. हरिजन, 9.10.1937, पृ. 103
14. वही, पृ. 202
15. यंग इण्डिया, 4.4.1929, पृ. 155
16. वही, पृ. 157
17. यंग इण्डिया, 4.4.1919
18. सन् 1917 में भागलपुर में दिए गए गाँधी जी के भाषण से
19. सच्ची शिक्षा, पृ. 212-213
20. वही, पृ. 219
21. महात्मा गाँधी के भाषण और लेख, पृ. 426
22. वही, पृ. 424
23. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) पृ. 393
24. हरिजन, 17.2.1946, पृ. 102

\* \* \* \* \*



## खिलाफत आन्दोलन में बंगाल का योगदान

डॉ. अमित कुमार गुप्ता\*

प्रथम विश्व युद्ध जो अगस्त, 1914 में छिड़ा, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये उत्प्रेरक सिद्ध हुआ। 1914 में कांग्रेस ने अपने मद्रास अधिवेशन में प्रस्ताव स्वीकार किया कि "महामहिम सम्राट तथा इंग्लैण्ड की जनता तक उसकी राज सिंहासन के प्रति ब्रिटिश सम्बन्धों के प्रति अडिग वफादारी और प्रत्येक खतरे में तथा हर कीमत पर साम्राज्य का साथ देने का दृढ़ संकल्प पहुँचाया जाय।"

समाज के अन्य वर्गों—राजाओं, जमींदारों, व्यापारियों तथा गैर राजनीतिक वर्गों में वफादारी की अभिव्यक्ति करने की होड़ सी लग गयी। सभी ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध में विजय श्री हासिल करने के बाद ब्रिटिशों ने अपने वादे से मुकरना शुरू कर दिया। जहाँ भारत में क्रान्तिकारी आतंकवाद का अध्ययन करने के 10 दिसम्बर, 1917 में राजद्रोह दमन समिति का गठन किया, समिति ने सुझाव दिया कि क्रान्तिकारी गतिविधियों को रोकने के लिए सख्त कानून की जरूरत है। जिसके उपरान्त रौलट एक्ट पारित किया गया। इस एक्ट का पूरे भारत सहित बंगाल में ज्यादा विरोध हुआ। एक्ट के विरोध में 13 अप्रैल 1919 का जलियावाला बाग हत्याकाण्ड ने पूरे भारत को झकझोर दिया। ब्रिटिश सरकार की दमनात्मक नीतियों के कारण महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन की शुरुआत की।

इधर मुस्लिम समाज भी ब्रिटिश सरकार की नीतियों से असंतुष्ट था। उन्हें महसूस होने लगा कि अंग्रेजी हुकूमत ने भी उन्हें धोखा दिया है। प्रथम विश्व युद्ध में मुस्लिमों का सहयोग लेने के लिए अंग्रेजों ने तुर्की के प्रति उनसे उदार रवैया अपनाने का वादा किया था, क्योंकि भारत के मुस्लिम तुर्की के खलीफा को अपना धर्मगुरु मानते थे। इसलिए उन्होंने ब्रिटिशों को अपना सहयोग दिया। लेकिन विश्वयुद्ध के विजय के बाद इंग्लैण्ड और उसके सहयोगियों ने जिस तरह से तुर्की पर अपमानजनक शर्तें थोपकर इसकी बन्दरबाट करके उसके शासक के सदियों पुराने सार्वभौमिक राजनीतिक और धार्मिक अधिकारों का परिसीमन किया गया था। उनके इस व्यवहार से भारतीय मुसलमान गहरे आघात के साथ उद्वेलित हो गया।

इस वातावरण में ब्रिटिश शासकों के प्रति आम जनमानस का आक्रोश निरन्तर गहरा होता चला। इसी बीच 30 दिसम्बर, 1918 को दिल्ली में आल इण्डिया मुस्लिम लीग की बैठक हुई। इस बैठक की अध्यक्षता बंगाली नेता फजलुल हक ने की, उन्होंने कहा "मुझे भारत में इस्लाम का भविष्य अधिकारमय और चिन्ताजनक दिखायी देता है। विश्व की मुस्लिम ताकतों के टूटने की प्रत्येक घटना का भारत में हमारे साम्राज्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।" इस अधिवेशन में अब्दुल बारी, आजाद सोमानी, अब्दुल लतीफ, अहमद सईद ने भाग लिया था जिससे मुस्लिम राजनीति में एक नया मोड़ आया।

21 सितम्बर, 1919 को लखनऊ में एक सम्मेलन हुआ, इस सम्मेलन की अध्यक्षता विधान परिषद के सदस्य इब्राहिम हारून जफर ने की और जिसमें अनेक प्रमुख नेता सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में अखिल भारतीय खिलाफत समिति की स्थापना की गयी। इसका मुख्यालय बम्बई बनाया गया और जिसकी शाखाएं सभी प्रान्तों में बनायी गयी।

वहीं बंगाल में मुसलमानों के विरुद्ध "अंग्रेजी समाचार पत्र और पत्रिकाओं में जो लेख छपे थे इससे खिलाफत आगे चलकर और उत्तेजित स्थिति में हो गया। बंगाल में मुस्लिम प्रेस ने टर्की के मुद्दे पर काफी चर्चा परिचर्चा की। बंगाल प्रेसीडेन्सी मुस्लिम लीग प्रथम बार 8 फरवरी, 1919 को खिलाफत और धार्मिक स्थानों के कारणों के

\* प्रवक्ता, इतिहास विभाग, फरीदुल हक मेमोरियल डिग्री कॉलेज, सबरहद, शाहगंज, जौनपुर

विषय पर विचार किया और बहस किया कि टर्की के सुल्तान के प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए, इस्लाम के खलीफा, जरी उल हल अरब द्वारा मुस्लिम अधिकारियों द्वारा दैवीय खिलाफत को बनाए रखने के लिए जरूरी है और अंग्रेज सरकार से मुस्लिमों की भावना का सम्मान करने के लिए माँग किया।<sup>3</sup> अगले दिन कलकत्ता में पहली खिलाफत की बैठक हुई। जो बंगाल मुस्लिम लीग द्वारा संगठित की गयी। इस बैठक में प्रस्ताव पारित हुआ जिसमें धार्मिक स्थानों खलीफा को नियन्त्रण की माँग की गयी थी।<sup>4</sup>

बंगाल में हिन्दु-मुस्लिम संयुक्त हो करके राजनैतिक क्रिया-कलापों को गति प्रदान किया। 23 नवम्बर, 24 नवम्बर 1919 को अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन प्रथम बार दिल्ली में हुआ। जिसकी अध्यक्षता बंगाली नेता फजलुल हक ने की। महात्मा गाँधी, मोतीलाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द सहित अन्य लोग उपस्थित रहे। दूसरे दिन महात्मा गाँधी जी को मत द्वारा अध्यक्ष बनाया गया।<sup>5</sup> समिति ने निश्चय किया कि (1) 13 दिसम्बर को सरकार द्वारा नियोजित शान्ति समारोह का बहिष्कार करना, (2) अंग्रेजी वस्तुओं का बहिष्कार, (3) खिलाफत धार्मिक स्थलों और टर्की से सम्बन्धित मुस्लिमों के मामले के लिए एक प्रतिनिधि इंग्लैण्ड भेजा जाय, (4) सरकार के साथ पूरी तरह से असहयोग रखा जाए जब तक कि मुस्लिम इच्छाओं के अनुसार खिलाफत और धार्मिक स्थलों के विषय में बात न हो जाए।<sup>6</sup>

तब मुस्लिमों ने तथाकथित शान्ति समारोह के बहिष्कार का निर्णय लिया।<sup>7</sup> उधर राष्ट्रीय प्रेस और बंगाल के नेताओं ने भी इस समारोह का खुलकर विरोध किया।<sup>8</sup> बंगाल के ज्यादातर जिलों में संगठित होकर "विरोधी शान्ति समारोह" समितियाँ बनायी गयी।<sup>9</sup> इस बहिष्कार ने कलकत्ता सहित मुफसिल्ल कस्बों में भी सफलता के रूप में देखा गया।<sup>10</sup>

इधर अब्दुल कलाम आजाद नजरबन्दी से मुक्त होने के बाद तुरन्त कलकत्ता आने पर बंगाल में खिलाफत उद्वेग को और प्रोत्साहित किया। बंगाली नेताओं के साथ मिलकर उन्होंने आन्दोलन को एक निश्चित रूप देने में लग गए। बंगाल में मुस्लिम नेताओं ने 28 और 29 फरवरी को कलकत्ता में प्रान्तीय खिलाफत आयोजित किया। अब्दुल कलाम आजाद ने सभा की अध्यक्षता किया। उन्होंने असहयोग को व्यवहारित रूप में लेने का प्रस्ताव पास किया। 29 फरवरी, 1920 को सम्मेलन में (1) अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार का निर्णय लिया गया (2) 19 मार्च को खिलाफत दिवस के रूप में मनाया जाए।<sup>11</sup>

फजलुल हक, और अब्दुल कासिम ने असहयोग का उदाहरण पेश किया। उन्होंने बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल से अपने इस्तीफे का पत्र दिया और कहा कि अगर हुकूमत का रवैया टर्की के प्रति नरम नहीं हुआ तो आजाद जी उनके इस्तीफे के पत्र को गवर्नर को भेजें।

कलकत्ता खिलाफत कांफ्रेंस यह प्रान्तीय कांफ्रेंस था इसके निर्णय को पूरे भारत में घोषणा करने का अधिकार नहीं था लेकिन केन्द्रीय खिलाफत समिति इसको नजर अन्दाज भी नहीं कर सकती थी। जिसका अनुमोदन 7 मार्च को हुआ और 19 मार्च को खिलाफत दिवस हड़ताल को पूरे भारत में समर्थन और संयुक्त कार्यवाही के महत्व पर बल दिया।<sup>12</sup> कलकत्ता कांफ्रेंस से पूरे बंगाल में खिलाफत आन्दोलन को नयी शक्ति मिली।

मौलाना शौकत अली एवं अबुल कलाम आजाद ने अन्य बंगाली मुस्लिम नेताओं के साथ बंगाल में कुछ मुफसिल कस्बों का दौरा किया। जहाँ उन्होंने लोगों को खिलाफत को आगे बढ़ाने के लिए सार्वजनिक सभाओं के द्वारा सम्बोधित किया।<sup>13</sup> इसके अतिरिक्त अन्य साधनों से 19 मार्च, 1920 के खिलाफत दिवस का प्रभावशाली प्रचार किया गया।<sup>14</sup> बंगाल के सभी प्रभुत्व कस्बों में हिन्दु-मुस्लिमों की संयुक्त रूप से सभाएं हुई और कई जगह प्रदर्शनों का भी आयोजन किया गया।<sup>15</sup> बंगाल खिलाफत समिति ने प्रत्येक क्षेत्रों में समितियों की स्थापना की गयी तथा खिलाफत कोश को गठित किया गया था। धन संग्रहण का मुख्य हिस्सा बम्बई के केन्द्रीय खिलाफत समिति को भी भेजा जाता था। ढाका, चटगाँव, टिपेरा, बर्द्धमान में खिलाफत समितियाँ स्थापित हुई।

मई, 1920 को सेवर्स में होने वाली टर्की के साथ संधि वार्ता के फलस्वरूप संधि की शर्तों का एलान किया गया। जिससे आटोमन टर्की पर प्रभाव पड़ा। केन्द्रीय खिलाफत कमेटी की बैठक हुई और 28 मई को मुस्लिमों के दावों की अभिव्यक्ति की गयी तथा अहिंसक असहयोग आन्दोलन में शरीक होने का घोषणा किया गया।

खिलाफत संगठन और कांग्रेस ने एक साथ मिलकर आन्दोलन को चलाया। खिलाफत के प्रमुख नेता महत्मा गाँधी जी के साथ रहे। बंगाल में खिलाफत असहयोग आन्दोलन प्रबल रूप से उत्तेजित होकर शुरू हुआ और अब खिलाफत और असहयोग दोनों पूरी तरह से मिल गए थे।<sup>16</sup> सितम्बर सत्र के तुरन्त बाद केन्द्रीय संगठन ने

सभी बंगाल के हिन्दू और मुस्लिम नेताओं ने मिलकर एक संयुक्त कार्यक्रम की रूपरेखा को तैयार किया।<sup>17</sup> खिलाफत के प्रश्नों में दिलचस्पी लेते हुए चितरंजनदास खिलाफत सभाओं में जाना शुरू कर दिये। इस आन्दोलन का प्रथम रूप बंगाल में उस समय देखने को मिला जब नवम्बर, दिसम्बर 1920 में लेजिस्लेटिव कौंसिल के पुनर्गठन का चुनाव था। खिलाफत मुस्लिम लीग और बंगाल राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने चुनाव से अपने-अपने उम्मीदवारों के नामों की वापसी कर ली और लोगों को मतदान न करने का आग्रह किया।<sup>18</sup>

20 जनवरी, 1921 को खिलाफत स्वराज के नेताओं ने असहयोग कार्यक्रम को ग्रामीण संगठनों के लिए जारी किया। इस जारी पत्र में अबुल कलाम आजाद, मौलाना अबुलकर सिद्दीकी और व्योमकेश चक्रवर्ती के हस्ताक्षर थे। जिससे इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राथमिक राष्ट्रीय पाठशाला, सहकारी समितियों, कुटीर उद्योगों, पंचायती अदालतों को स्थापित करना और रचनात्मक कार्यों को सम्मिलित किया गया। यह सब बंगाल में संयुक्त रूप से हिन्दू और मुस्लिम नेताओं द्वारा आगे बढ़ाया जा रहा था।<sup>19</sup>

इस समय बंगाल में खिलाफत समिति का पुनर्गठन हुआ मौलाना अबुल कलाम से मुजीबुर रहमान, अकरम खान और कुछ नेताओं से मतभेद पैदा हुआ। लेकिन बाद में मतभेद खत्म हो गया। अबुल कलाम अध्यक्ष और मुजीबुररहमान सचिव बनाए गए। इस गठन के साथ बंगाल के सभी जिलों में समिति गठित की गयी।

खिलाफत समिति के स्वयंसेवकों का गठन केवल कलकत्ता में ही नहीं बल्कि ढाका और चटगाँव जैसे अन्य मुफसिल क्षेत्रों में भी हुआ।<sup>20</sup>

आन्दोलन धीरे-धीरे गतिमान स्थिति में हो रहा था। बंगाल में शिक्षा तथा विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार तेजी से फैल गया। बंगाली नेताओं ने मुफसिल क्षेत्रों में जोशीले भाषण दिए।

1921 के अंत में आन्दोलन तेजी से फैला। क्योंकि 24 दिसम्बर, 1921 को वेल्स के राजकुमार का भारत दौरा था। 1 नवम्बर, 1921 की रात को कार्यविधि काफी चरम सीमा पर थी जिसमें 17 नवम्बर 1921 को पूर्ण हड़ताल की घोषणा किया गया। बंगाल कांग्रेस और खिलाफत समिति ने अपने व्यक्तियों को जारी किया और इश्तिहार लगाए। जिसके परिणामस्वरूप हड़ताल पूरे बंगाल में शान्तिपूर्ण हुआ। इधर बंगाल सरकार ने 19 नवम्बर 1921 को एक आपराधिक कानून के तहत 1908 की एक धारा को संशोधित करते हुए एक घोषणा जारी किया इसके तहत कांग्रेस और खिलाफत स्वयंसेवक संगठन को पूरी तरह से असंवैधानिक कराकर दिया गया।<sup>21</sup> इस पर खिलाफत नेताओं ने घोषणा पत्र जारी किया जिसमें इन लोगों के हस्ताक्षर थे और इन्होंने अपने को खुद स्वयं सेवक के रूप में माना।<sup>22</sup>

खिलाफत समितियों के सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और उनके समितियों पर छापे डालने लगे सभी जिलों के खिलाफत कांग्रेस के संचालकों को भी गिरफ्तार कर लिया गया।<sup>23</sup>

जनवरी 1922 के मध्य मदन मोहन मालवीय व अन्य कुछ लोगों ने सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में सरकार की दमन नीतियों की निन्दा हुई और सरकार से माँग किया गया कि वह कि वह खिलाफत, जलियावाला बाग, हत्याकाण्ड, स्वराज पर विचार करने के लिए गोलमेज कान्फ्रेंस बुलाए और आन्दोलन में भाग लेने के कारण साधारण कानून के अन्दर जो गिरफ्तार या दंडित हैं उनकी जाँच के लिए एक कमेटी बैठा दी जाय।<sup>24</sup> लेकिन सरकार बन्धियों के रिहाई की माँग के मामले में वायसराय लार्ड रीडिंग बराबर अड़े हुए थे। सरकार कुछ वर्गों के लोगों को जेल में बनाए रखकर कांग्रेस और खिलाफत सम्मेलन में एक दूसरे के प्रति अविश्वास पैदा करना चाहती थी। गांधी जी ने सरकार को एक पत्र लिखा जिसमें अन्य मुद्दों के साथ खिलाफत का प्रश्न का हल नहीं हुआ तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए हम तैयार हैं।

दुर्भाग्य से 5 फरवरी, 1922 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में चौरी चौरा क्षेत्र की घटना जिसमें पुलिस दुर्व्यवहार से उत्तेजित भीड़ ने थाने में आग लगा दी जिससे 21 सिपाही सहित एक थानेदार जलकर भस्म हो गए उधर ऐसे ही हत्याकाण्ड 13 जनवरी को मद्रास में और 17 नवम्बर को बम्बई में हो चुके थे।<sup>25</sup> और कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने आदेश दिया कि सभी प्रकार के आन्दोलन बन्द कर दिया जाए। गाँधी जी के निर्णय की आलोचना हुई उन्हें 10 मार्च को गिरफ्तार कर न्यायालय ने 6 वर्षों की सजा सुनायी।

राजनैतिक आन्दोलन के उत्प्रेरक गाँधी जी सहित खिलाफत आन्दोलन के अगुवा मुहम्मद अली की गिरफ्तारी से आन्दोलन नेतृत्व विहीन हो गया और वहीं दूसरी तरफ नवम्बर 1922 में तुर्की में सुल्तान के प्रभुत्व को समाप्त कर दिया गया और तुर्की को एक स्वतन्त्र गणतन्त्र राष्ट्र घोषित किया गया। प्रथम राष्ट्रपति मुस्तफा कमालपाशा

बना। राष्ट्रपति ने अपनी सरकार के छः मूलभूत सिद्धान्तों की भी घोषणा की थी जिसमें एक घोषणा तुर्की में राजतंत्र को समाप्त कर प्रजातंत्र की स्थापना और धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया।

इस तरह 1924 में कमालपाशा ने खिलाफत को पूरी तरह से समाप्त कर दिया तथा प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी।<sup>26</sup> इस तरह खिलाफत आन्दोलन समाप्त हुआ लेकिन खिलाफत आन्दोलन को बंगाल के नेताओं ने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया था तथा उनका संयुक्तता और संगठन के प्रति निर्भिकता ने ब्रिटिश सरकार को सोचने पर मजबूर किया। बंगाली खिलाफत नेताओं का कांग्रेस के साथ समन्वय पूर्णः सफल और उत्प्रेरक सिद्ध हुआ।

#### सन्दर्भ—सूची

1. द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, (द्वितीय संस्करण, नटेशन कम्पनी) भाग—द्वितीय, पृ. 165
2. फजलुल हक का अध्यक्षीय भाषण, खालिद बिन सैय्यद की पुस्तक 'पाकिस्तान, द फामेटिव फेज (1960) में पृ. 46 पर उद्धृत
3. द मुसलमान, 4 फरवरी, 1919, होम पोल (डिपार्टमेन्ट), मार्च 1919 नं० 16
4. द मुसलमान, 14 फरवरी, 1919
5. पी.सी. बैम्फोर्ड, ओप, सिट पृ. 145, आर.सी. मजूमदार, ओप सिट पृ. 56, गर्वनमेन्ट आफ इण्डिया, होम पोल (डिपार्ट), जनवरी, 1920 नं० 5
6. पी.सी. बैम्फोर्ड, ओप, सिट पृ. 145, सुखबीर चौधरी, इण्डियन पीपुल फाइट फार नेशनल लिबरेशन, पृ. 222–23, गर्वनमेन्ट ऑफ इण्डिया, होम पोल (डिपार्ट), जनवरी, 1920 नं० 5
7. होम पोल (डिपार्ट), दिसम्बर, 1919 नं० 5
8. अमृत बाजार पत्रिका, 4 और 5 दिसम्बर, 1919
9. अमृत बाजार पत्रिका, 4 और 5 दिसम्बर, 1919
10. द मुसलमान, 19 दिसम्बर, 1919, अमृत बाजार पत्रिका 14–16 दिसम्बर, 1919
11. द मुसलमान, 5 मार्च, 1920, फ्रांसिस रोबिन्सन, ओप. सिट, पृ. 307, ताराचन्द्र ओप.सिट, पृ. 417 सुखबीर चौधरी, ओप.सिट. पृ. 235–36
12. ओ.एस.डी. होम डिपार्ट इण्डिया इन 1920, पेज 38–39, पी.सी. बैम्फोर्ड, ओप.सिट. पृ. 150
13. द मुसलमान, 12 मार्च, 1920
14. गर्वनमेन्ट ऑफ इण्डिया, होम पोल (डिपार्ट) जुलाई, 1920 नं० 90, द मुसलमान, 5 मार्च 1920
15. अमृत बाजार पत्रिका, 20 और 21 मार्च, 1920, द मुसलमान 26 मार्च 1919, देखिए सुखबीर चौधरी, ओप. सिट पृ. 238
16. पी.सी. बैम्फोर्ड ओप.सिट, पृ. 159
17. द मुसलमान, 1 अक्टूबर, 1920
18. द मुसलमान, 17 सितम्बर, 1920, अमृत बाजार पत्रिका, 15 सितम्बर, 1920
19. एस.सी. बोस, द इण्डियन स्ट्रगल, 1920–1942, पृ. 52
20. पी.सी. बैम्फोर्ड ओप.सिट, पृ. 183
21. रमेशचन्द्र मजूमदार, हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग—3, पृ. 131
22. अमृत बाजार पत्रिका, दिसम्बर, 1921, आई.ए.आर., 1922 पृ. 246, सी.एफ., आर.सी. मजूमदार, ओप.सिट. पृ. 134
23. द मुसलमान, 16–23 दिसम्बर, 1921, आई.ए.आर 1922, पृ. 45–59
24. पट्टाभि सीतारमैया, संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृ. 123–124
25. पट्टाभि सीतारमैया, संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृ. 125
26. के.एल. खुराना, आर.सी. शर्मा, विश्व का इतिहास, पृ. 334

\* \* \* \* \*

## बौद्ध चिन्तन में लैंगिक समता

डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय\*

प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म का उदय भारतीय समाज में परिवर्तनवादी सोच की परिणामक है। इस सोच का सम्बन्ध उन समस्त बातों से था जिनसे प्राचीन भारतीय समाज का शोषण हो रहा था। शोषण की इन प्रवृत्तियों को अस्पृश्यता, कर्मकाण्ड, सामाजिक असमानता और स्त्रियों की हीन अवस्था (दुर्दशा) जैसी बातों में देखा जा सकता है। प्रस्तुत आलेख बौद्ध धर्म में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण और सोच का समीक्षात्मक प्रयास है।<sup>1</sup> जिस समय भारतीय समाज में बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय समाज में पितृसत्तात्मक तत्व व्यापक पैमाने पर विद्यमान थे। उस समय लड़की का जन्म दुःख का कारण माना जाता था तथा स्त्रियों को जुए और शतरंज के साथ तीन प्रमुख बुराइयों के रूप में माना जाता था।<sup>2</sup> उस समय ऐसी महिला को आदर्श पत्नी के रूप में स्वीकार किया जाता था जो पति को देवता के रूप में स्वीकार करती थी (पति देवता)<sup>3</sup> और उसके चरणों में गिरकर (पादपरिचारिका)<sup>4</sup> स्वयं को भाग्यवान मानती थी। उस समय महिलाओं को वस्तुओं की तरह बेचा भी जाता था।<sup>5</sup> ये दाहरण इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति उस समय अच्छी नहीं थी। यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या बौद्ध धर्म और दृष्टिकोण पर उपरोक्त ब्राह्मणवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा था और यदि प्रभाव पड़ा भी तो इसके क्या परिणाम सामने आये।

ऐसा प्रतीत होता है प्रारम्भ में बुद्ध, बौद्ध संघ में महिलाओं के प्रवेश के प्रति उदासीन थे। इनकी विमाता महाप्रजापति गौतमी ने कपिलवस्तु में आकर एक भिक्षुणी के रूप में बौद्ध संघ में प्रवेश करने की अनुमति बुद्ध से माँगी तो बुद्ध ने इस माँ को अस्वीकार कद दिया।<sup>6</sup> लेकिन कालान्तर में उन्हें अपने इस नियम में संशोधन करना पड़ा वैशाली में जब बुद्ध रुके थे, तो महाप्रजापति गौतमी ने पुरुष वेश धारण करके अपने साथ अनेक शाक्य स्त्रियों को लेकर रोती हुई भगवान बुद्ध से संघ में प्रवेश की अनुमति माँ। बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द की सिफारिश पर, उन्हें बौद्ध संघ में प्रवेश की अनुमति तो दी, पर साथ ही साथ आठ ऐसे कठोर प्रतिबंध भी आरोपित कर दिये जिससे स्त्रियों का संघ जीवन काफी कष्टदायक हो गया और उनका स्थान भी निम्नतम हो गया। इन आठ नियमों में यह भी था कि “सौ वर्ष की भिक्षुणी को पहले भिक्षु की अम्यर्थना” करनी पड़ती थी, उसके सम्मुख आसन रिक्त करके खा हो जाना पड़ता था, और करबद्ध प्रार्थना करनी पड़ती थी, चाहे भिक्षु केवल एक दिन का ही दीक्षित क्यों न हुआ हो।<sup>7</sup> पुनः भिक्षुणियाँ, भिक्षुओं के पास जाकर वार्तालाप नहीं कर सकती थीं। ये सभी दृष्टांत हमारे समक्ष कई प्रश्न उत्पन्न कर देते हैं।

उन्होंने अपने शिष्य आनन्द से कहा “पर अब जब स्त्रियों का संघ में प्रवेश हो गया है, आनन्द/धर्म चिरस्थायी नहीं रह सकेगा जिस प्रकार ऐसे घरों में जिनमें अधिक स्त्रियाँ और कम पुरुष होते हैं, चोरी विशेष रूप से होती है, कुछ इसी प्रकार की अवस्था उस सूत्र और विनय की समझानी चाहिए। जिसमें स्त्रियों घर का परित्याग करके गृह विहीन जीवन में प्रवेश करने लग जाती हैं। धर्म चिरस्थायी नहीं रह सकेगा.....फिर भी आनन्द! मनुष्य जैसे भविष्य को छोड़कर जलाशय के लिए बाँध बनवा देता है, जिससे जल बिहर न बहने लगे, उसी प्रकार आनन्द भावी (भविष्य) के लिए मैंने आठ नियम बना दिये हैं, जिनका पालन भिक्षुणियों के लिए अनिवार्य है, जब तक धर्म है, उस नियमों के पालन में प्रमाद नहीं होना चाहिए।

बुद्ध के प्रिये शिष्य आनन्द बौद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश के प्रबल समर्थक थे। बौद्ध ग्रंथों में वर्णित तथ्यों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध ने आनन्द के कहने पर संघ में स्त्रियों के प्रवेश को स्वीकार किया। लेकिन ऐसा

\* एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सल्लतन बहादुर पी.जी. कॉलेज बदलापुर, जौनपुर

लगता है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद आनन्द, संघ में महिलाओं के प्रवेश देने के मुद्दे पर अलग-थलग पड़ गये। राज्यगृह में आयोजित प्रथम बौद्ध संगति में आनन्द की सिर्फ इसलिए आलोचना की गई कि उन्होंने संघ में स्त्रियों के प्रवेश का समर्थन किया था। इस प्रसंग से यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि –अधिकांश बौद्ध, संघ में स्त्रियों के प्रवेश और उन्हें समान दर्जा दिये जाने को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। ये बातें बौद्ध धर्म में पुरुषवादी दृष्टिकोण को ही प्रदर्शित करती हैं।

बुद्ध द्वारा ज्ञान की प्राप्ति के लिए अपनी पत्नी यशोधरा का परित्याग करना भी एक विचारणीय प्रश्न है।

बुद्ध का दृष्टिकोण महिलाओं के प्रति सम्मानजनक, सकारात्मक और क्रांतिकारी था। बुद्ध ने महिलाओं को ज्ञानी, मातृत्वशील, सृजनात्मक, भद्र और सहिष्णु के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने भिक्षुणी संघ की स्थापना करके महिलाओं की मुक्ति के लिए नये मार्गों को खोला। महिलाओं के लिए यह सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति आलोच्य अवधि के समय से काफी आगे और क्रांतिकारी थी। बहुत-सी महिलाओं ने बुद्ध के इस दृष्टिकोण का लाभ उठाया। बुद्ध की शिष्याओं में कुछ साधारण शिष्याएँ ही बनी रही तो कुछ भिक्षुणी बनीं तथा उन्होंने सांसारिक मोहमाया का परित्याग कर दिया बुद्ध ने पुरुषों और महिलाओं को एक एकीकृत व्यक्तित्व को पूरक पहलुओं के तौर पर करुणा और बुद्धि के रूप में देखा था। बुद्ध और प्रारंभिक बौद्ध साहित्य का दृष्टिकोण यह था कि महिलायें अर्हत् बन सकती हैं। कालान्तर में कई महिलाओं ने अर्हत् का पद प्राप्त भी किया। त्रिपिटक जिसकी रचना तीसरी बौद्ध संति (पाटलीपुत्र) में की गई, में कई ऐसी महिलाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने अर्हत् का पद प्राप्त किया। उदाहरण के लिए मगध के राजा की पत्नी क्षेमा (खेमा) जिन्होंने गृहस्थ जीवन त्यागने के पहले ही पूर्णतः बुद्धत्व को प्राप्त कर लिया था। मेमा को बौद्ध धर्म के प्रति काफी गहरा ज्ञान था। यही कारण था कि बुद्ध इनके प्रति उच्च श्रद्धाभाव रखते थे। इसी प्रकार सोणा और पाटचारा जैसी महिलायें बौद्ध धर्म के संबंध में की जाने वाली वचन के लिए जानी जाती थीं। कुछ भिक्षुणियों का अपना शिष्य समुदाय भी था। ये भिक्षुणियाँ ने केवल धार्मिक प्रवचन करती थीं बल्कि वे बुद्ध या अन्य ज्ञानी भिक्षुओं के बिना भी अपने अनुचरों को सम्पूर्ण मुक्ति तक पहुँचाने का सामर्थ्य रखती थीं। चूटदेदल्ल संयुक्त<sup>10</sup> में विर्णित धम्मदिन्ना की कथा इस बात को स्पष्ट करती है। इसमें धम्मदिन्ना अपने पूर्व पति विशाख (स्वयं बौद्ध धर्मानुयायी था) द्वारा पूछे गये प्रश्नों (सिद्धान्त और व्यावहार) का उत्तर देती है। कथा के अनुसार बाद में विशाख इन उत्तरों से बुद्ध को परिचित कराता है। बुद्ध इन उत्तरों से काफी प्रभावित होते हैं और कहते हैं कि वे भी धम्मदिन्ना की ही तरह उत्तर देते हैं, और कहते हैं कि वे भी धम्मदिन्ना की ही तरह उत्तर देते। यह प्रसंग भी इस बात का प्रमाण है कि प्रारंभिक बौद्ध युग में महिलाओं का बौद्ध धर्म में काफी सम्मानीय स्थान था। और वे साधिकाओं और शिक्षिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित थीं। इस संदर्भ में एक अन्य दृष्टांत का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। जब राजा उदयन (उदेय) की 500 पत्नियाँ अग्नि में जलकर मृत्यु को प्राप्त हुई (इसमें प्रसिद्ध रानी समावती भी थी) तो इस घटना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए बुद्ध ने कहा था—भिक्षुओं, इनमें से कुछ महिला अनुयायी प्रवाह विजेता थी, कुछ एक बार लौटने वाली और कुछ कभी भी न लौटने वाली हैं<sup>11</sup> बुद्ध के इस कथन की जब हम व्याख्या करते हैं तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि वे यह मानते थे कि महिलायें मुक्ति मार्ग के विभिन्न चरणों को प्राप्त करने में पूर्णतः सक्षम हैं, जिसके माध्यम से अर्हत् का पद प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार प्रारंभिक बौद्ध धर्म (बुद्ध) के अनुसार जाति की तरह लिंग भी व्यक्ति के मुक्ति के मार्ग में किसी भी प्रकार से बाधक नहीं बन सकता है। अतः बौद्ध धर्म के अनुसार महिलायें भी पुरुषों की तरह मोक्ष की प्राप्ति कर सकती हैं। इस बात का समर्थन करते हुए हार्न (I.B HORNE) ने लिखा है कि –बुद्ध ने महिलाओं में पुरुष की तरह ही अच्छाई और आध्यात्मिकता की अंतःशक्ति को देखा था।

वास्तव में, बौद्ध धर्म ने महिला मुक्ति और महिला ममानता के आदर्श को समाज के समने रखा। बौद्ध धर्म में जिस बिहार व्यवस्था की स्थापना की गई वह भी महिला-पुरुष समानता का आदर्श प्रस्तुत करता था। प्रायः महिलाओं के लिए उनका बिहार जीवन पुरुषों के लिए उपलब्ध आत्मनिर्णय और प्रतिष्ठा के लगभग बराबर था। भिक्षुणी संघ की स्थापना, भिक्षु संघ की स्थापना के पाँच वर्ष बाद की गई। इस संघ की स्थापना के प्रारंभिक चरणों में भिक्षुणियों ने बौद्ध भिक्षुओं से ही अनुशासनिक कार्यों के विभिन्न रूपों के साथ-साथ ज्ञान के विभिन्न पक्षों को सीखा था।<sup>12</sup>

जब भी बुद्ध को अवसर प्राप्त होता था वे महिलाओं के अधिकारों और समानता के सम्बन्ध में अपने विचार



व्यक्त करते रहते थे। उन्होंने एक अवसर पर पसेनदि को जो शब्द कहे थे उससे भी महिला समानता के संबंध में उनके विचार स्पष्ट हो जाते हैं। पसेनदि यह समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी हुआ था कि उसकी पत्नी ने पुत्री को जन्म दिया है। उसने अपने मन की बात बुद्ध को बतायी। इस पर बुद्ध ने उसे समझाते हुए कहा था—“पुत्री, ज्ञानी और गुणी बनकर पुत्र से भी अच्छी संतान सिद्ध हो सकती है।” यह ज्ञात हो जाने पर कि महिलायें धार्मिक जीवन अपनाने की पूरी क्षमता रखती हैं, आरम्भिक बौद्ध धर्म ने उन्हें पूर्णतया समानता का दर्जा प्रदान किया था। बौद्ध धर्म में इस बात के भी उदाहरण मिलते हैं कि यद्यपि महाप्रजापति गौतमी को बौद्ध संघ में शामिल किया गया पर साथ ही साथ 8 प्रतिबंध भी आरोपित किये गये। यहाँ इस बात का भी उदाहरण मिलता है कि बाद में बुद्ध को प्रिय शिष्य आनंद के पास जाकर बुद्ध के प्रवरता से सम्बद्ध प्रथम गुरु धर्म पर ढील देने के लिए पूछते हुए दिखाया गया है।<sup>13</sup>

ऐसा प्रतीत होता है कि भिक्षुणियों ने अपने आपको आलोच्य अवधि में सफलतापूर्वक व्यवस्थित कर रखा था। महाप्रजापति गौतमी के बारे में का जाता है कि वे महिलाओं का नेतृत्व करती हैं जो बौद्ध के भिक्षुओं के समानान्तर चलती हैं।<sup>14</sup> यहाँ यह प्रसंग उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में बुद्ध द्वारा प्रजापति गौतमी पर कई प्रतिबन्ध लगाये गये थे लेकिन इसके बावजूद उन्होंने तथा उनकी शिष्याओं ने केश कटाये, कसाय अर्थात् गेरुआ वस्त्र पहने तथा वे बुद्ध के धर्म, और संघ का अनुसरण करती हुई दिखाई गई हैं। यहाँ महिलाओं के विद्रोही स्वरूप को प्रदर्शित किया गया है। जब आरम्भ में बुद्ध द्वारा उनकी माँग अस्वीकार कर दी जाती है, तब वे अपनी सखियों के पास आती हैं और आपस में विचार विमर्श करती हैं। इसके बाद वे कहती हैं ‘यदि बुद्ध ने आज्ञा दी हो तो हम धर्म मार्ग पर चलेंगी और यदि न दी तब भी हम यही करेंगीं।’<sup>15</sup>

उपर्युक्त वक्तव्यों और प्रसंगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बुद्ध स्त्री-पुरुष समानता के प्रबल समर्थकों में एक थे। लेकिन उनके महापरिनिर्वाण के बाद बौद्ध धर्म में महिलाओं के प्रति पहले की तरह सम्मानपूर्ण भावना नहीं दिखाई देती है। महापरिनिर्वाणोत्तर काल के बौद्ध ग्रंथों में महिलाओं को अपूर्ण, दुष्ट, नीचे, कपटी विश्वासघाती, अविश्वासी, चरित्रहीन, कामुक, ईष्यालु, लालची, बेलगाम, मूर्ख और फिजूल खर्चीली जैसी उपाधियों से विभूषित किया गया।<sup>16</sup> इसी प्रकार बौद्ध संघ में महिलाओं की उपस्थिति को भारी त्रासदी के रूप में चित्रित किया गया है।<sup>17</sup> और इनकी तुलना डकैतों द्वारा लूटे गये घर फफूँद (सेताटिक) से ग्रस्त धान की फसल तथा लाल रोग (मांजेष्टिका) से संक्रमितगन्ने की फसल से की गई।<sup>18</sup> तापसिक नारीद्वेष, जो पालिग्रन्थ त्रिपिटक के अंतिम तह में पाया जाता है, का भी स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण शत्रुतापूर्ण और नकारात्मक था।<sup>19</sup>

उसे मानव जाति के पतन तथा आध्यात्मिक प्राणी की मृत्यु के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार माना गया।<sup>20</sup> आलोच्य अवधि में महिलाओं की तुलना 5 प्रकार से की गई है—गुस्सैल, चिड़चिड़ी, द्विशाखित जुबान वाली (बोलने वाली), इतनी विषैली कि मार डाले तथा मित्रघातक।<sup>21</sup> जातक ग्रन्थों में भी महिलाओं के प्रति अत्यन्त अपमानजनक बातें कही गई हैं। इनमें कहा गया कि औरतें संन्यासियों को उसके लक्ष्य से पथ भ्रष्ट कर देती हैं।<sup>22</sup> चुल्लु-पदुम जातक में बोधिसत्व के माध्यम से बताया जाता है कि किस प्रकार उसने अपनी प्यासी पत्नी का प्यास बुझाने के लिए अपने घुटने से रक्त (खून) निकालकर दिया और बदले में उसने उसकी हत्या करने की कोशिश की और वह अपराधी प्रवृत्ति के व्यक्ति के साथ रहने लगी।<sup>23</sup> इसी ग्रंथ में एक अन्य स्थान बोधिसत्व कहते हैं—‘भिक्षुओं! जब मैं जानवर के रूप में जीवन व्यतीत कर रहा था, तब भी मैं नारी जाति की अकृतज्ञता, छल, दुष्टता और लंपटता के विषय में अच्छी तरह जानता था, और उस समय उनके नीचे रहने के बजाये मैंने उन्हें अपने नियंत्रण में रखा।’<sup>24</sup> एक अन्य जातक ग्रन्थ में यह कहा गया है—बोधिसत्व अपने पिता से कहते हैं—यदि औरतें इस घर में आती हैं तो मन की शांति न मुझे मिलेगी और न आपको।<sup>25</sup> अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि बुद्ध द्वारा उपदेशित धर्म जिसका आधार लैंगिक समानता था, मैं बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद महिलाओं के प्रति इतनी दुर्भावना क्यों प्रदर्शित की जाने लगी। ऐसा देखा जा सकता है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद बौद्ध धर्म पर ब्राह्मण धर्म (हिन्दू धर्म) का प्रभाव बढ़ने लगा। बौद्ध धर्म में तपस्वीकरण, ब्राह्मणीकरण, मंत्रीकरण और मूर्ति पूजा जैसी बातों को अपनाया जाना इसी बात को सिद्ध करता है। यहाँ यह तथ्य ध्यान देने का है कि प्राचीन भारतीय समाज पुरुष प्रधान था। (यद्यपि प्रारम्भिक वैदिक ग्रन्थों में महिलाओं को पुरुषों के समान माना गया था, उनकी प्रशंसा की गई थी, पर कालान्तर में उनकी स्थिति, दयनीय हो गई। जिन लोगों ने ब्राह्मण धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म स्वीकार

किया था, वे प्रारम्भ में ब्राह्मण धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म स्वीकार किया था, वे प्रारम्भ में ब्राह्मण धर्मानुयायी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपनी पुरुषवादी सोच को पूरी तरह नहीं छोड़ पाये थे। जब तक बुद्ध जीवित रहे, उनके व्यक्तित्व के सामने ये लोग चुप रहे और अपने विचारों को व्यक्त नहीं कर सके। लेकिन बुद्ध जैसे महान व्यक्तित्व वाले अभाव में, आक्रामक पुरुष प्रधान प्राचीन भारतीय समाज के प्रभाव से ये अपने को नहीं बचा सके। प्राचीन भारत की जा सके। प्राचीन भारत की सामाजिक व्यवस्था में कार्यरत पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों को सामान्य तथा महिलाओं को इसका अपवाद माना गया था। इस व्यवस्था ने पुरुषों को समाज द्वारा मूल्यवान मानी जाने वाली भी स्थितियों को धारण करने हेतु वैध स्वामी माना, जबकि महिलाओं को पुरुषों द्वारा अपनी स्थिति कायम रखने हेतु मौन सहमति देने वाली सहायिका के रूप में देखा। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पुरुषों को महिलाओं पर नियंत्रण की शक्ति प्राप्त थी। साथ ही साथ धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रियाकलापों पर पुरुषों का एकाधिकार था।<sup>26</sup> जब बौद्ध धर्म पर इन बातों का प्रभाव पड़ना शुरू हुआ तो महिलाओं के प्रति उनका दृष्टिकोण भी परिवर्तित होने लगा। यही कारण था कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद बौद्ध संघ एक ऐसी संस्था के रूप में स्थापित हो गया जिस पर एक बड़े शक्तिशाली पितृसत्तात्मक सत्ता का प्रभुत्व था। इसी तरह की मानसिकता वाले लोगों द्वारा कालान्तर में बौद्ध साहित्य का सम्पादन और संशोधन किया गया और उन्होंने महिलाओं को अपूर्ण, दुष्ट, नीच, कपटी, अविश्वासी, कामुक जैसी उपधियों से विभूषित किया।<sup>27</sup> इसी दृष्टिकोण के कारण धीरे-धीरे महिलाओं को हीन समझा जाने लगा।

महिलाओं की स्थिति के प्रति दृष्टिकोण पर विचार करते समय यह तथ्य भी महत्वपूर्ण हो सकता है कि प्राचीन भारतीय बौद्ध साहित्य में पाये जाने वाले महिला विरोधी वक्तव्य और कथन बौद्ध बिहार के विशिष्ट वर्ग के उन सदस्यों द्वारा जोड़ा गया क्षेपक हो सकता है जिनके महिलाओं के प्रति रुख को विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों ने आकार प्रदान किया।<sup>28</sup> ऐसा भी प्रतीत होता है कि त्रिपिटक का बहुत बड़ा भाग तृतीय बौद्ध संगति के बाद संकलित किया गया।<sup>29</sup> त्रिपिटक में बार-बार होने वाले संशोधनों के कारण भी महिलाओं के संबंध में व्यक्त किए जाने वाले विचारों में विविधता मिलती है। भिक्षुणी संघ की स्थापना तथा बौद्ध धर्म में महिलाओं का प्रवेश के संबंध में परस्पर विरोधी मत एक ही ग्रन्थ में देखे जा सकते हैं इसमें गौतम बुद्ध यह स्वीकार करते हैं कि महिलायें निर्वाण के उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर सकती हैं। साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि दुर्भाग्यवश भिक्षुणी संघ की स्थापना दीक्षा प्राप्त करने की आज्ञा न दी जाती तो बौद्ध धर्म एक हजार वर्ष तक जीवित रहता, लेकिन अब क्योंकि महिलाओं ने दीक्षा प्राप्त कर ली है, बौद्ध धर्म जीवन अधिक समय तक नहीं चलेगा केवल 500 वर्ष 30 इस आधार पर यह कहना ज्यादा युक्ति संगत होगा कि बुद्ध, जिनके दृष्टिकोण का आधार ही सामाजिक समानता थी, वे ऐसे विचार क्यों व्यक्त करेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद इस प्रसंग को एक क्षेपक के रूप में जोड़ा गया।

बौद्ध ग्रन्थों में बार-बार विचारों में जो भिन्नता दिखाई देती है उसे ठीक ढंग से समझने के लिए हमें उस विशेष संस्थानिक या बौद्धिक संदर्भ की पहचान कर लेनी चाहिए जिसमें से इस प्रकार के प्रत्येक विचार का उद्भव हुआ है। केट ब्लैकस्टन ने लिखा है कि बौद्ध धर्म में स्त्रियों के प्रति द्वेषभाव इस तथ्य की उपज था कि महिलाओं की दीक्षा को धर्म और विनय के लिए एक गम्भीर और अपरिहार्य खतरे के रूप में देखा गया।<sup>31</sup> डायना पॉल ने बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित स्त्रियों के द्वेषभाव को उस भारतीय संदर्भ में देखा है जिसमें उसका विकास हुआ था।<sup>32</sup> जैनिस् विल्लिस ने लिखा है कि आज हम पालि ग्रन्थों में तथ्यों से महायान ग्रन्थों में वर्णित तथ्यों पर ध्यान देते हैं तो यह पाते हैं कि इनमें महिलाओं के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है।<sup>33</sup>

ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में (महापरिनिर्वाणोत्तर काल के) बौद्ध भिक्षुओं ने यह अनुभव किया हो कि पुरुष प्रधान प्राचीन भारतीय समाज में उनकी शिष्याओं निरन्तर प्रताड़ित या अपमानित की जायेंगी या वे पुरुष हिंसा का शिकार बनने लगेंगी। यह भी एक कारण रहा होगा कि बौद्ध संघ में स्त्रियों या भिक्षुणियों पर कई प्रतिबन्ध लगाये गये थे। उस समय बौद्ध बिहार मानव बस्तियों के बाहर बनाये जाते थे। ऐसी स्थिति में बौद्ध भिक्षुणियों को यौन प्रताड़ना की संभावना बनी रहती होगी। एक दृष्टांत के द्वारा इसे सिद्ध किया जा सकता है। एक बार कई भिक्षुणियाँ कोशल प्रदेश से श्रावस्ती जा रही थीं। एक भिक्षुणी मल-मूत्र त्यागना चाहती थी, अतः वह अकेले ही पीछे ठहर गई। उस भिक्षुणी को अकेली देखकर लोगों ने उसके साथ यौन सम्बन्ध स्थापित कर लिया।<sup>34</sup> इस

बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि उस समय भिक्षुणियों को तरह-तरह से तिरस्कृत किया जाता था। भिक्षुणियों द्वारा *Nihl hxyrhgkst kusi j Hhyk mlgaf j eqVhob; k; idgdj frjLŃr djrsFA*<sup>35</sup> जबकि भिक्षुओं द्वारा गलती किये जाने के बावजूद उनके लिए इतने अपमानजनक शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता था। यही कारण था कि भिक्षुओं का अपेक्षा भिक्षुणियों के लिए ज्यादा कड़े नियमों का निर्माण किया गया। यही कारण था कि बौद्ध संघ जैसे-जैसे विकसित होता गया उसने अपने चरित्र को बाहरी समाज के अनुसार ढालना शुरू कर दिया। इस नये हो रहे परिवर्तन का अर्थ यह था कि महिलायें धर्म को पूर्णकालिक विषय के रूप में तो स्वीकार कर सकती हैं। लेकिन यह कार्य एक ऐसे नियंत्रित संस्थागत ढाँचे के भीतर होगा जो पुरुष प्रधानता और महिला आधुनिकीकरण को पारस्परिक रूप से स्वीकृत सामाजिक मानकों द्वारा सुरक्षित और सशक्त बनाता हो।

ऐसा माना जा सकता है कि प्रथम भिक्षुणी महाप्रजापति गौतमी तथा उनपर लगाए गए 8 प्रतिबन्ध भी काल्पनिक ही है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि महाप्रजापति गौतमी ने अपने पति की मृत्यु के बाद प्रवज्या प्राप्त की थी, उस समय तक अनेक महिलायें बुद्ध उपसम्पदा प्राप्त कर चुकी थीं आइ0बी0 हार्नर का भी यह मानना है कि बुद्ध द्वारा 500 वर्ष बाद बौद्ध धर्म के पतल की भविष्यवाणी करना बाद के भिक्षुओं द्वारा कल्पित कहानी ही मानी जा सकती है।<sup>36</sup>

कुछ आलोचकों का यह भी कहना है कि बुद्ध ने अपनी पत्नी का परित्याग किया था। यह परित्याग उनके स्त्री विरोधी दृष्टिकोण को ही प्रदर्शित करता है। लेकिन बुद्ध की इस तरह आलोचना करना ठीक नहीं है क्योंकि जब उन्होंने प्रारम्भ में ब्राह्मणवाद की परम्पराओं का अनुसरण करते हुए सांसारिक जीवन का परित्याग किया था। इस अवधि में आध्यत्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए तीन चीजों का परित्याग करना अनिवार्य माना जाता था। ये वस्तुएँ थी—धन, स्त्री और प्रतिष्ठा<sup>37</sup> अतः इस आधार पर बुद्ध को स्त्री विरोधी नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार बुद्ध के दृष्टिकोण को उनके कथनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष माना था। उनके बाद के बौद्ध ग्रंथों में जो विचार व्यक्त किये गये हैं, वे पूर्ण रूप से सत्य नहीं हैं। व्यवहार में हम यह पाते हैं एक ही ग्रंथ में (जैसे त्रिपिटक) में एक स्थान पर स्त्रियों की आलोचना की गई है, उसी ग्रंथ में अन्य जगह स्त्रियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में बौद्ध धर्म पर ब्राह्मण धर्म का प्रभाव पड़ने लगा था और उन्होंने बहुत सी ब्राह्मणवादी धर्म की विशेषताओं (बातों) को अपना लिया। कालान्तर में बौद्ध भिक्षुणियों पर जो प्रतिबन्ध लगाये प्रतिबंधों को उस प्राचीन भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए, जिसमें उनका विकास हुआ।<sup>38</sup> अशोक की पुत्री संघमित्रा के दृष्टांत के आधार पर यह कहना भी युक्तिसंगत होगा कि महापरिनिर्वाणोत्तर काल में भी भिक्षुणियों को पर्याप्त महत्व प्राप्त था। संघमित्रा, महान मौर्य शासक अशोक की पुत्री थी। उसने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था। संघमित्रा को श्रीलंका में बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए भेजा गया था। यह इस बात का संकेत है कि एक महिला बौद्ध प्रदानुक्रम में अपने स्थान बना सकती है और इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि कम से कम अशोक के शासनकाल तक बौद्ध सिद्धान्त में ऐसा कुछ भी नहीं था जो महिलाओं को पुरुषों के बराबर माने जाने पर प्रतिबन्ध लगा पाता।<sup>39</sup> पुनः बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा थेरीगाथा जैसी अद्वितीय ग्रंथि की रचना किया जाना भी इसी बात को सिद्ध करता है कि बौद्ध भिक्षुणियों को बौद्ध धर्म में पर्याप्त समानता और स्वतंत्रता का वातावरण प्रदान किया गया था।<sup>40</sup> थेरीगाथा, बौद्ध गीत संग्रह है जिसकी रचना लगभग सौ बौद्ध भिक्षुणियों से मिलकर की थी। बौद्ध ग्रन्थ त्रिपिटक जो पालि भाषा में है, कई स्थानों पर महिलाओं की प्रशंसा की गई है (जैसा कि खेमा के बारे में कहा गया है कि जब उसकी शिक्षा पूरी हुई तब तक वह धर्म के पूर्ण ज्ञान के साथ अर्हत्व प्राप्त कर चुकी थी। स्वयं बुद्ध ने उसे उच्च स्थान प्रदान किया था।)<sup>41</sup> किंसा गौतमी ने भी बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश को समझने के बाद अर्हत्व प्राप्त किया।<sup>42</sup> आनन्द के उपदेश को सुनकर भिक्षुणी समा ने अर्हत् का पद प्राप्त किया था। भिक्षुणी मुक्ता के बारे में कहा गया कि उसने पुनर्जन्म और मृत्यु से भी मुक्ति प्राप्त कर ली थी।<sup>43</sup> ये सभी दृष्टांत यह सिद्ध करते हैं कि बुद्ध ने महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष मानते हुए उन्हें स्वयं ही दीक्षित किया था।

बौद्ध धर्म में महिलाओं की स्थिति के संबंध में कुछ निष्कर्ष बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर भी निकाले जा सकते हैं। बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर भी किये जा सकते हैं। प्रति व्यवहार में समानता और उचित व्यवहार जैसी बातें प्रमुख थीं। स्वयं बुद्ध ने कहा था 'कोई किसी को धोखा न दें', किसी स्थान में किसी से घृणा

न करें तथा क्रोध या प्रतिकारवश किसी को क्षति पहुँचाने की इच्छा न करें। समस्त प्राणी प्रसन्न, सुखी, सुरक्षित और प्रसन्नचित हो।<sup>44</sup> इस दृष्टांत के आधार पर यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि जिस धर्म का आधार ही मानवीयता और करुणा हो, वहाँ स्त्रियों को हीन दृष्टि से कैसे देखा जा सकता है।

उक्त विमर्श के आलोक में है कि बौद्ध धर्म में स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष माना गया था। यद्यपि परवर्ती बौद्ध ग्रंथों में स्त्रियों के प्रति दुर्भावना को व्यक्त किया गया है। संभवतः इसका कारण बौद्ध धर्म पर ब्राह्मण धर्म का बढ़ता हुआ प्रभाव और बुद्ध जैसे आकर्षक और महान व्यक्तित्व का अभाव रहा होगा।

### संदर्भ-सूची

1. ऐतरेय ब्राह्मण, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1998।
2. मैत्रायणी संहिता, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1998।
3. द जातका, एडिटेड बाई वी. फॉसवॉल द्वितीय संस्करण, पृ. 406
4. वही, पृ 95 पाँचवा संस्करण पृ. 268
5. वही।
6. (विनयपिटक, चुललवग्ग 10/1)
7. विनय पिटक का आँठवा नियम।
8. विनय पिटक (चुल्लवग्ग 10/1)।
9. वही।
10. मज्झिम निकाय।
11. 'द थेरीगाथा' एडी0 बाई के0आर0 नार्मल एण्ड एल आल्सड्रॉफ, लन्दन, पृ. 61 1966।
12. डायनार्पोल, 'वूमेन इन बुद्धिज्म : इमेजेज ऑफ द फेमिनिन इन महायान ट्रेडिसन', बर्कले यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, प्रेस, 1979, पृ 245, 304।
13. विनय पिटक का आँठवा नियम।
14. जोनाथन वाल्टर्स, 'ए वायस फ्रॉम द साइलेंस : द बुद्धाज मदर्सस्टोरी, हिस्ट्री ऑफ रेलिजन्स', 33/4, 1994, पृ 358-379।
15. एडिट नोलोट, रेगलेस दे डिसिपलिन डेस ननस बुद्धिस्टः ले भिक्खुनियाँ डेल इकोल महासंधिका-लोकोत्तरवादीन, पेरिस कॉलेज डे फ्रांस, 1991
16. द जातका, एडिटेड बाई वी. फॉसवॉल द्वितीय संस्करण, पृ 474, 478
17. विनय पिटक (चुललवग्ग 1/11)
18. वही।
19. वही।
20. अग...सुत्तं में उल्लिखित।
21. द अंगुत्ता निकाय, एडि0, आर0 मौरिस एण्ड ई0 डार्डी, पाँचवा संस्करण, लन्दन, 1885-1900। ट्रांसलेटेड रेफरेंस आर फ्रॉम द बुक ऑफ ग्रेडुअल सेइंग्स, -एफ0एल0 वुडवार्ड, प्रथम, द्वितीय, पंचम संस्करण।
22. द जातका, एडिटेड बाई वी. फॉसवॉल प्रथम संस्करण, पृ. 23, प्रथम, चतुर्थ संस्करण, पृ 468
23. द जातका, एडिटेड बाई. वी. फॉसवॉल , प्रथम संस्करण पृ. 115-121
24. वही, पृ. 419।
25. वही पृ. 43।
26. गरडा लर्नर 'द क्रियेशन ऑफ पैट्रियारची', न्यूयार्क, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1986
27. द जातका, एडिटेड बाई वी. फॉसवाल द्वितीय संस्करण पृ 474, 478, 527

28. ए स्पॉनबर्ग, "एटिड्यूड्स टुवार्ड वूमैन एण्ड द फेमिनिन इन अर्ली बुद्धिज्म" पृ0 125
29. चन्द्रधर शर्मा, 'ए क्रिटिकल सर्वे ऑफ इंडियन फिलास्फी', नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1983, पृ. 30
30. अंगुत्तर निकाय, एडि0 बाई आर0 मैरिस एण्ड ई0 हार्डी, वही, पृ0 278
31. "डैमिंग द धम्मा" : "प्रोब्लेम्स विथ भिक्खुनिज इन द पाली विनया"
32. डायना पॉल, पूर्वोक्त, पृ0 245, 304
33. जैनिस विल्लिस "नन्स एण्ड बेने फैक्ट्रसेस : द रोल ऑफ वूमैन इन द डेवलपमेन्ट ऑफ बुद्धिज्म"
34. "द सैक्रेड बुक ऑफ इ ईस्ट" 50 वॉल्यूम, एडि0 बाई एफ0 मैक्समूलर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली वॉल्यूम बारहवाँ, पृ0 189
35. द जातक एडि0 की वही,
36. आई0बी0हार्नर, "अर्ली बुद्धिज्म एण्ड टॉकिंग ऑफ लाईफ" पृ. 105
37. डायना पॉल, पूर्वोक्त, पृ. 145
38. वही, पृ. 245
39. टैसा बार्थोलाम्युज 'द फिमेल मेनडिकेन्ट इन बुद्धिस्ट श्रीलंका
40. रीटा एम ग्रास "बुद्धिज्म आटर पैट्रियारची" पृ. 118
41. थेरीगाथा, पूर्वोक्त, पृ. 61, 1966
42. वही, पृ. 89
43. वही, पृ. 11
44. मेत्ता सूत्र, पृ0 140, 144, 146

\* \* \* \* \*

## छठी शताब्दी ईशा पूर्व का परिवर्तित भौतिक परिदृश्य और वैश्य वर्ग की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का आलोचनात्मक विश्लेषण

डॉ. प्रदीप कुमार केसरवानी\*

वैश्यों की सामाजिक स्थिति के विषय में निष्पक्ष रूप से प्रकाश डालने वाले साक्ष्यों का नितान्त अभाव है। जहाँ एक ओर ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की सामाजिक स्थिति को उत्कृष्ट बताते हुये उन्हें अन्य वर्णों की तुलना में श्रेष्ठ बताया गया है, वहीं दूसरी ओर वैश्यों को तीसरे स्थान पर रखा गया है और उत्पादन के संदर्भ में उनके कर्तव्यों पर ही बल दिया गया है। ब्राह्मण साहित्य एवं धर्मशास्त्रों ने वैश्यों की सामाजिक स्थिति की उपेक्षा की जबकि ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं शूद्रों की सामाजिक स्थिति एवं उनके कार्यों व अधिकारों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। जनसंख्या में सर्वाधिक होने तथा अर्थव्यवस्था में अहम भूमिका निभाने के बाद भी उन्हें उपेक्षित रखना एक आश्चर्य की बात है।

ब्राह्मण व्यवस्था में सिद्धान्तः वैश्यों को द्विज वर्ण में मानते हुये उन्हें अध्ययन, यज्ञ तथा दान का अधिकार दिया गया है, लेकिन ब्राह्मण साहित्य में वर्णों के उद्गम में जन्म का आधार अधिक माना गया है और कर्म का कम। वर्ण-व्यवस्था की स्थिति में प्रधानतः आनुवंशिकता को महत्व दिया गया है। आपस्तम्ब का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्णों में प्रत्येक पूर्वगामी वर्ण अनुगामी वर्ण से जन्मतः उच्चतर है।<sup>1</sup> ऐसा प्रतीत होता है कि पुरोहित तथा राजन्य वर्गों ने अपनी प्रतिष्ठा और विशिष्टता को बनाये रखने के लिए अनेक ऐसे नियमों का निर्माण किया जिससे वैश्य वर्ग को कोई महत्वपूर्ण स्थान समाज में न मिल पाये। इन दोनों उच्च वर्गों ने केवल अपनी ही स्थितियों को सुधारा, अपने को आनुवंशिक आधार पर विकसित किया तथा अपने समाज को विशिष्ट तथा पार्थक्य रूप से अवस्थित किया। शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के दाह-संस्कार में चिता के स्तूप के आकार भी वर्गों के आधार पर ही निश्चित किये गये<sup>2</sup> तथा इनके सम्बोधन के ढंग भी भिन्न थे<sup>3</sup> ब्राह्मण के लिए 'एहि', क्षत्रिय के लिए 'आगच्छ' वैश्य के लिए 'आद्रव'। मानव यज्ञ में भी इन वर्गों के प्रतिनिधि भिन्न-भिन्न देवताओं के प्रति समर्पित थे। ब्राह्मण को गायत्री मन्त्र, क्षत्रिय को त्रिष्टुभ मन्त्र और वैश्य को जगती मन्त्र के प्रयोग का निर्देश दिया गया है।<sup>4</sup> इसके साथ ही ब्राह्मण को बसन्त में, क्षत्रिय को ग्रीष्म में तथा वैश्य को शीत ऋतु में अग्निहोत्र करने का निर्देश है।<sup>5</sup> उपनयन संस्कार का अधिकार केवल द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण को ही था, इसलिये वैश्य वर्ण भी यज्ञोपवीत का अधिकारी था। पृथक्ता और भिन्नता को दर्शित करने के लिए इनके यज्ञोपवीत भी भिन्न प्रकार के बताये गये हैं। ब्राह्मण के लिये कपास के, क्षत्रिय के लिये सन के और वैश्य के लिए ऊन के यज्ञोपवीत विहित थे। यहीं नहीं व्यवस्थाकारों ने उपनयन संस्कार के हेतु भिन्न-भिन्न वर्णों के लिए उपयुक्त आयु भी भिन्न-भिन्न बतलाई है। आश्वलायन के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का उपनयन-संस्कार क्रमशः आठ, ग्यारह और बारह वर्ष की आयु में होना चाहिये। ब्रह्मचारी के हेतु जाति-भेद के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्तरीय तथा वास की कल्पना की गई है। आश्वलायन, बौधायन तथा वसिष्ठ के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा

\* प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय

निदेशक, सम्राट हर्षवर्द्धन शोध संस्थान, प्रयागराज

प्राचार्य, रामरती पटेल पी0जी0 कालेज, प्रयागराज



वैश्य जाति के ब्राह्मचारी का उत्तरीय क्रमशः अजिन, रोख तथा गोचर्म अथवा अजाचर्म का होना चाहिये<sup>6</sup> इसी प्रकार के नियम वास के सम्बंध में भी है।<sup>7</sup> वस्त्रों के साथ ही साथ मेखला के सम्बंध में भी इसी प्रकार का भेद है ब्राह्मण की मेखला मुंज की, क्षत्रिय की मूर्वा की और वैश्य की शाणी की होनी चाहिये।<sup>8</sup> इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ब्रह्मचारी के लिये क्रमशः पलाश, उदुम्बर तथा विल्व के दण्ड की व्यवस्था की गई है।<sup>9</sup> उपनयन के पश्चात् सावित्री संस्कार में भी तीनों वर्णों के लिये अलग-अलग अवधि निश्चित की गई है। ब्राह्मण के लिये सोलहवाँ वर्ष बीतने के पहले, क्षत्रिय के लिये बाइसवें वर्ष और वैश्य के लिये चौबीसवें वर्ष के पहले इस संस्कार को सम्पादित करने का निर्देश है।<sup>10</sup>

इसी प्रकार की भेद परक विचार धारा का दिग्दर्शन हमें ब्राह्मण विधि व्यवस्थाकारों के विचारों में देखने को मिलता है। वैश्य की हत्या को उपपातक अर्थात् एक छोटा अपराध माना जाता था। इसके लिये जो प्रायश्चित्त का विधान बताया गया है, उसके अनुसार वैश्य द्वारा ब्राह्मण की हत्या की तुलना में आठ गुना कम था।<sup>11</sup> यदि कोई ब्राह्मण किसी क्षत्रिय की हत्या करता था तो उसे तीन वर्ष का दण्ड तथा 100 गाय व एक बैल देना पड़ता था, एक वैश्य की हत्या के लिए एक वर्ष का दण्ड, 100 गाय और एक बैल तथा शूद्र की हत्या के लिये छः माह का दण्ड, 10 गाय तथा एक बैल देना पड़ता था।<sup>12</sup> एक ही अपराध के लिये भिन्न-भिन्न वर्ण के लिये भिन्न दण्ड के अन्य उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। अनुलोम विवाहों से उत्पन्न सन्तानों के उत्तराधिकार के सम्बंध में भी भेदभाव बरता गया है। अनुलोम विवाह के अन्तर्गत वैश्य कन्या का विवाह ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ण के साथ हो सकता था। अतः यदि ब्राह्मण की वैश्य पत्नी से पुत्र उत्पन्न हो तो उसे सम्पत्ति का बीस प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता था जबकि ब्राह्मण की ब्राह्मण पत्नी से उत्पन्न पुत्र को सम्पत्ति का चालीस प्रतिशत उत्तराधिकार में प्राप्त होता था।<sup>13</sup>

उक्त विवेचन के पश्चात् स्पष्ट है कि ब्राह्मण साहित्य में वैश्य वर्ण की सामाजिक स्थिति के सम्बंध में जो चित्र अंकित किये गये हैं, उनमें ब्राह्मण वर्ण की सर्वप्रधानता परिलक्षित होती है तथा वैश्यों को तीसरा स्थान दिया गया है। परन्तु इस विषय पर जो विधि-निषेध निर्मित किये गये थे, वे अनेक स्थानों पर व्यावहारिकता से परे हैं। उनसे अधिक से अधिक एक आदर्श स्थिति की कल्पना ही प्रदर्शित होती है। व्यवस्थाकारों के विभिन्न वर्णों के कर्तव्याधिकारों पर विशेष बल देने के कारण प्रत्येक वर्ण एवं उनके अनेकानेक व्यवसायों को वर्णान्तरित एवं नियमित करने की प्रबल चिन्ता ही प्रकट होती है। उपलब्ध व्यवस्था तथा सामाजिक वास्तविकता में प्रायः प्रत्येक समय अन्तर रहा है। अतः ब्राह्मण साहित्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर वैश्यों की सामाजिक स्थिति का विवेचन नहीं किया जा सकता। वैश्यों की सामाजिक स्थिति के अध्ययन क्रम में बौद्ध एवं जैन साहित्य पर्याप्त उपयोगी हैं क्योंकि बौद्ध एवं जैन लेखकों का भौतिक जीवन के प्रति दृष्टिकोण अत्यंत व्यावहारिक था और उन्होंने समाज के विभिन्न वर्णों की सामाजिक स्थिति के विषय में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया।

ब्राह्मण व्यवस्था में जहाँ जन्म के आधार पर वर्णों की उच्चता स्वीकार की गई है वहीं बौद्ध एवं जैन व्यवस्था में जन्म के स्थान पर कर्म को प्रमुखता दी गई है। जैन ग्रन्थों में जाति-पाति के भेदभाव और ऊँच-नीच पर आधृत वर्ण व्यवस्था की कटु आलोचना की गई है। बौद्ध साहित्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि वर्ण व्यवस्था को निर्धारित करने का आधार मनुष्य का कर्म था, उसका आचार-विचार था तथा उसका सात्त्विक नैतिक जीवन था। यद्यपि कि बौद्ध साहित्य में भी वैश्य वर्ण को वर्ण-क्रम के अनुसार तृतीय स्थान दिया गया है लेकिन बौद्ध व्यवस्था के अन्तर्गत वैश्य वर्ण की अपेक्षा प्रथम दो वर्णों के विशेषाधिकार पर बल नहीं दिया गया है। सिद्धान्ततः बौद्ध मत ने कभी भी जाति विशिष्टता को स्वीकार नहीं किया है।

हम देखते हैं कि ब्राह्मण साहित्य में वर्णों एवं उनके कर्तव्यों की आदर्शात्मक स्थिति प्रस्तुत की गई है तथा व्यवस्थाकारों ने समाज को व्यवस्थित रखने के लिये वर्णों के कर्तव्यों के विषय में जो मापदण्ड परिकल्पित किया, उसी स्वरूप का दिग्दर्शन हमें धर्मशास्त्र साहित्य में प्राप्त होता है। वस्तुतः धर्मशास्त्र साहित्य में संस्कार, शुद्धि आदि के सम्बंध में वैश्य वर्ण के साथ जो भिन्नता वर्णित की गई है वह भिन्नता धार्मिक, कर्मकाण्डीय अथवा अनुष्ठानिक है। यह भिन्नता प्रतीकात्मक प्रतीत होती है। इसमें ब्राह्मण वर्ण की अन्य वर्णों पर श्रेष्ठता तो द्योतित होती है लेकिन व्यावहारिक जीवन में उसका कोई विशेष महत्व नहीं था। सामाजिक स्तरीकरण में लौकिक सामर्थ्य का पर्याप्त महत्व होता है, जो आर्थिक समृद्धि तथा राजनीतिक शक्ति पर आधारित होता है।<sup>14</sup> अतः केवल शास्त्रीय अथवा अनुष्ठानिक आधार पर वैश्यों की सामाजिक स्थिति का विवेचना उचित नहीं होगी। इस ओर पहले ही संकेत किया

जा चुका है कि उपलब्ध व्यवस्था तथा सामाजिक वास्तविकता में प्रायः प्रत्येक समय अन्तर रहा है। विभिन्न कालों में होने वाले सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों को भी व्याख्यायित करना आवश्यक होगा जिसके कारण वैश्यों की सामाजिक स्थिति तथा सामाजिक व्यवहार प्रभावित हुआ हो। क्योंकि सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं का एक दूसरे को प्रभावित करना महत्वपूर्ण होता है। समाज का विकास किसी एक शक्ति पर आधारित नहीं होता चाहे वह एक धार्मिक शक्ति हो या एक आर्थिक प्रणाली या एक दार्शनिक आन्दोलन। ये तमाम शक्तियाँ एक दूसरे से जुड़कर ही समाज के सामान्य विकास में अपना योगदान देती हैं। मनुष्य के दैनिक जीवन से व उसकी जीविका से सीधा जुड़ा होने के कारण आर्थिक पहलू समाज के स्वरूप बदल सकता है।

भारतीय इतिहास में छठीं शताब्दी ई०पू० का काल खण्ड 'द्वितीय नगरीकरण' के नाम से जाना जाता है। यह युग जहाँ एक ओर धार्मिक क्रान्ति का युग था वहीं दूसरी ओर राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन का युग था। इस काल में अनेक आर्थिक परिवर्तन हुये जिसके कारण वैश्य वर्ण की सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। लगभग इसी समय लोगों में लोहे का ज्ञान निश्चित रूप से प्रमाणित होता है। लोहे के ज्ञान ने जहाँ एक ओर तत्कालीन युद्धों की गुरुता में वृद्धि की, वहीं दूसरी ओर लौह निर्मित उपकरणों के प्रयोग से कृषकों की अन्नोत्पादन की क्षमता पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गई। कृषि और यंत्रों के समुचित प्रयोग के उन्नत ज्ञान के फलस्वरूप किसान ज्यादा से ज्यादा अनाज उपजाने लगे, जिससे नगरों की वृद्धि में मदद मिली। जैन धर्मग्रन्थों में महावीर के युग के कई प्रकार के नगर केन्द्रों का वर्णन है। चौथी शताब्दी ई०पू० में सिकन्दर के एक कार्याधिकारी एरिस्टोबुलस ने सिन्धु क्षेत्र में एक हजार से भी अधिक शहरों के ध्वंसावशेषों को देखा था। यदि यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हो, तो भी इस बात में सन्देह की तनिक भी गुंजाइश नहीं है कि उत्तर भारत में उस काल में अनेक नगर खड़े हो चुके थे। सम्पूर्ण देश में 600 ई०पू० से 300 ई०पू० के मध्य लगभग साठ नगर थे। वैदिकोत्तर युग में धातु के सिक्कों के प्रयोग के कारण व्यापार का विशेष रूप से विकास हुआ। क्रय विक्रय में वस्तुविनिमय के स्थान पर मुद्राओं के प्रयोग ने वाणिज्य-व्यापार को सुविधाजनक बनाया और इस कर्म में प्रवृत्त लोगों में धनसंग्रह की प्रवृत्ति बढ़ी। इस प्रक्रिया में धनाढ्य एवं समृद्ध व्यापारियों का उदय हुआ जिन्हें बौद्ध ग्रन्थों में 'श्रेष्ठी' (सेट्टि) कहा गया है। इन्हें आर्थिक समृद्धि में राजाओं एवं राजकुमारों से प्रतिस्पर्द्धा करते हुये दिखाया गया है। इस काल में जहाँ लोहे के ज्ञान से कृषि उत्पादन की क्षमता में पर्याप्त वृद्धि हुई वहीं बौद्ध धर्म के अहिंसा के सिद्धान्त के प्रचार से भी कृषि के उत्थान में सहायता मिली तथा व्यापार के विकास में भी बौद्ध धर्म का दृष्टिकोण उपयोगी साबित हुआ। यद्यपि कि ब्राह्मण व्यवस्थाकारों ने कृषि एवं व्यापार का अधिकार वैश्यों को प्रदान किया था, लेकिन वे समुद्र यात्रा को वर्जित मानते थे। बौधायन ने एक पाप कर्म के रूप में समुद्र यात्रा की भी भर्त्सना की है जबकि बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों ने समुद्र यात्रा को स्वीकृति प्रदान किया है। व्यापार के प्रति बौद्ध एवं जैन लेखकों के अनुकूल दृष्टिकोण के कारण भी इस युग में व्यापार का विकास हुआ जिसके कारण कृषि और व्यापार से जुड़ा वैश्य वर्ग विशेष समृद्धि को प्राप्त हुआ। इस काल में व्यापार का महत्व कितना अधिक था यह तथ्य इससे स्पष्ट है कि हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र में पण्यसिद्धि नामक धार्मिक क्रिया का उल्लेख है जिसमें व्यापार की वस्तु के एक भाग की अग्नि में आहुति दी जाती थी और सोम से प्रार्थना की जाती थी कि वह यज्ञ करने वाले व्यापारियों को अपने पुराने धन को व्यापार में लगाकर अधिक धन कमाने में सहायता करे।<sup>15</sup> वस्तुतः व्यापार की दृष्टि से यह समुन्नत युग था।<sup>16</sup> रामशरण शर्मा भी अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तनों तथा बौद्ध धर्म के अहिंसा के सिद्धान्तों को कृषि एवं व्यापार के विकास का कारण मानते हैं।<sup>17</sup> एन० सी० बन्दोपाध्याय तथा ए० एन० बोस का यह विचार न्याय संगत ही प्रतीत होता है कि वाणिज्य-व्यापार एवं नगरों के विकास तथा शिल्प श्रेणियों के गठन ने इस काल के सामाजिक मानचित्र को पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा सर्वथा विशिष्ट बना दिया।<sup>18</sup> वास्तव में नगरीय जीवन का विविध विकास इस युग के सामाजिक परिदृश्य को पिछले युग से विभक्त करता है। ग्रामीण और 'आरण्यक' वैदिक सभ्यता अब नगरीय हो चली थी। व्यापार के सुदूर विस्तृत स्थल और जल पथों पर सार्थवाहों के उद्यम ने इन नगरों को समृद्धि प्रदान की थी। व्यवसायिक प्रविभाजन से उत्पन्न व्यापार को स्वयं एक विनिमय साधन की अपेक्षा रहती है। द्रव्य ('मनी') का आविर्भाव इस अपेक्षा की पूर्ति करता हुआ समाज में नई और रहस्यमयी सी शक्ति को जन्म देता है। समाज में पहले की अपेक्षा अधिक परिवर्तनशीलता आती है, सामाजिक चिन्तन व्यक्ति निरपेक्ष बनने लगता है और सामाजिक सम्बंधों का 'वास्तुसात्करण' (रेडिफिकेशन) प्रारम्भ हो जाता है।<sup>19</sup> बुद्ध के समय में ही भारतीय संस्कृति सर्वप्रथम 'द्रव्य के युग' ('एज आफ मनी') में अवतीर्ण हो रही थी। यह श्रमणों का ही नहीं, श्रेष्ठियों का

युग था। अंग के मेण्डक, कोशल के अनाथपिण्डक और कौशाम्बी के घोषित इन धनाढ्य श्रेष्ठियों के कुछ ज्वलंत उदाहरण हैं।<sup>20</sup>

बौद्ध साहित्य में वैश्य वर्ण के लिए श्रेष्ठी (सेट्ठि अथवा सेठ), गहपति, इब्ब कुटुम्बिक, तथा सार्थवाह आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। वैदिक साहित्य में भी श्रेष्ठी का उल्लेख प्राप्त होता है। यह प्रभावशाली व्यक्ति होता था। एस० सी० भट्टाचार्या के अनुसार वैदिक काल में वह व्यापारी का प्रतिनिधि होता था।<sup>21</sup> मैकडानल एवं ए० एन० बोस के अनुसार वैदिक साहित्य में श्रेष्ठिय या श्रेष्ठ्य शब्द श्रेणी के मुख्य के लिये प्रयुक्त हुये हैं जो महत्वपूर्ण स्थिति को प्राप्त होता था।<sup>22</sup> पालि साहित्य में श्रेष्ठी के अतिरिक्त सोट्ठिपुत (श्रेष्ठीपुत्र) शब्द का भी उल्लेख प्राप्त होता है। श्रेष्ठिपुत्र का तात्पर्य जैसा कि आई० बी० हार्नर ने 'बुक आफ द डिसिप्लिन' में अनुवाद किया है,<sup>23</sup> श्रेष्ठी का पुत्र जिसका पिता जीवित है, पुत्र इस सम्बंध में प्रथम शब्द का अनावश्यक विस्तार नहीं है।<sup>24</sup> पालि साहित्य में सेट्ठि बहुत समृद्धिशाली व्यापारी के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिसका व्यापार बहुत बड़ा होता था और वह दूसरे देशों के साथ व्यापार के साथ-साथ उद्योग भी लगाता था।

रमेश चन्द्र मजूमदार ने सेट्ठि को व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधि मानने का सुझाव दिया है।<sup>25</sup> महावग्ग के एक उद्धरण से इस सुझाव का समर्थन होता है, जो इस प्रकार है— 'तेन खोपन समयेन साकेते सेट्ठिभरिय सत्तवरस्सको सीसाबाधो होती।' इस उद्धरण में सेट्ठि स्पष्ट रूपेण एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में उल्लिखित है।<sup>26</sup> रीजडेविड्स के अनुसार श्रेष्ठी का तात्पर्य बैंकर से है।<sup>27</sup> जातक साहित्य के अनुसार श्रेष्ठी व्यापारी लोग थे, जो अपने साथ के साथ दूरस्थ स्थानों की यात्रा करते थे और वहां क्रय-विक्रय करते थे। जे०सी० जैन का विचार है कि जैन साहित्य के अनुसार श्रेष्ठी अट्ठारह शिल्प जीवियों का मुखिया था।<sup>28</sup> डी० डी० कोसम्बी का मत है कि श्रेष्ठी पूँजीपति अथवा साहूकार होता था और कभी-कभी व्यापारियों के संगठन का मुखिया भी। इन श्रेष्ठियों का शासनतन्त्र से कोई परोक्ष सरोकार नहीं था परन्तु परम निरंकुश शासक भी इनका सम्मान करते थे।<sup>29</sup> जबकि बुद्ध प्रकाश का विचार है कि नैगमों को ही श्रेष्ठी कहते थे।<sup>30</sup> यहाँ यह संकेत किया जा सकता है कि यह निश्चय करना कठिन है कि श्रेष्ठी व्यापारी का नेता था या किसी औद्योगिक संगठन का मुखिया। जेतवन विहार के दान के समय पाँच सौ श्रेष्ठी जो उपस्थित हुये थे उनमें से सभी शायद संगठनों के मुखिया नहीं रहे होंगे। यही नहीं उनमें से अनाथपिण्डक निस्सन्देह प्रमुख था यद्यपि कि उसे भी श्रेष्ठी कहा गया है। वस्तु स्थिति यह है कि साहित्यिक या अभिलेखिक साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि श्रेष्ठी व्यापारियों का मुखिया था या किसी औद्योगिक संगठन का अध्यक्ष। ल्यूडर्स लिस्ट में पच्चीस श्रेष्ठियों का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें से केवल एक ही निगम से सम्बंधित था। अतः यह आवश्यक नहीं है कि सभी श्रेष्ठी निगम से सम्बंधित रहे हों। अपितु ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य में अनेक श्रेष्ठी रहा करते थे।

प्राारम्भिक बौद्ध साहित्य वैश्य समुदाय के धनी तथा वैभवशाली श्रेष्ठियों के सन्दर्भ से ओत-प्रोत है। इनमें श्रेष्ठियों के कई विभिन्न स्तरों का पता चलता है। सबसे बड़ा पद महाश्रेष्ठि का होता था। इसके बाद अनुश्रेष्ठि और उसके बाद उत्तर श्रेष्ठि होते थे। महाश्रेष्ठि का पद वंशानुगत होता था। कुछ श्रेष्ठी नगर के बाहर गाँवों में रहते थे, उन्हें जनपद श्रेष्ठी कहा जाता था।<sup>31</sup> अभिलेखिक साक्ष्यों से भी यही प्रतीत होता है कि श्रेष्ठी गाँवों तथा शहर दोनों स्थानों में रहते थे। साँची स्तूप अभिलेख में एक श्रेष्ठी सिंह के द्वारा एक दान की चर्चा है जो एक ग्रामीण क्षेत्र कुरघर में रहता था। एक अन्य अभिलेख में श्रेष्ठी नागदीन के दान का उल्लेख है, जो रोहिणी पद का रहने वाला था। इसी प्रकार सामनेर ग्राम के एक श्रेष्ठी के दान की चर्चा है।<sup>32</sup>

वस्तुतः श्रेष्ठी समाज का सबसे धनाढ्य वर्ग था। यहीं नहीं अपने वैभव तथा ऐश्वर्य के कारण ये राजाओं से प्रतिस्पर्द्धा करते हुये दिखाई पड़ते हैं। इनकी विशेष महत्वपूर्ण स्थिति के कारण निरंकुश से निरंकुश शासक भी इनका सम्मान करते थे।

गहपति के सम्बंध में जगदीश चन्द्र जैन का विचार है कि गहपतियों का प्राचीन भारत का वैश्य ही समझना चाहिये। वे धन सम्पन्न, जमीन जायदाद और पशुओं के मालिक होते थे तथा व्यापार द्वारा धन उपार्जन करते थे।<sup>33</sup> यद्यपि कि गहपति शब्द ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ण के लिये भी प्रयुक्त किया गया है।<sup>34</sup> किन्तु बौद्ध ग्रन्थों में गहपति शब्द का जो बहुल प्रयोग मिलता है वह निश्चित रूपेण वैश्य वर्ग के सदस्यों के लिये प्रयुक्त हुआ है।<sup>35</sup> बौद्ध साहित्य में ब्राह्मण और क्षत्रिय के पश्चात् तथा शूद्र वर्ण के पूर्व गहपति शब्द का व्यवहार किया गया है।<sup>36</sup> जिससे यह पूर्णतः

स्पष्ट होता है कि गहपति वैश्य के लिये प्रयुक्त हुआ है। अल्टेकर का विचार है कि समृद्धि प्राप्त करने के पश्चात् गहपति श्रेष्ठी की उपाधि प्राप्त कर लेते थे।<sup>37</sup> एन०के० दत्त के अनुसार गहपति एक जाति थे।<sup>38</sup> इस मत को आदर नहीं प्रदान किया जा सकता क्योंकि बौद्ध साहित्य में स्पष्ट रूप से वैश्य वर्ण के लिये गहपति शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। जी०एस० घुर्वे तथा डी०डी० कोसम्बी के अनुसार भी जातकों में उल्लिखित गहपति सामान्यतः वैश्य जाति का है जो अनेक व्यवसायों को करता है। इन व्यवसायों में वित्त, व्यापार, कृषि तथा शिल्प आदि सम्मिलित हैं। परन्तु वह सदैव धनवान तथा सामाजिक प्रतिष्ठा से युक्त है।<sup>39</sup> एस०सी० भट्टाचार्या का भी निष्कर्ष इस सम्बंध में महत्वपूर्ण है। उनका विचार है कि अधिक सम्भावना है कि गहपति एक जाति की अपेक्षा व्यवसाय परक समुदाय था। वह एक व्यापारी होने के साथ-साथ अपनी विरादरी का विशिष्ट सदस्य था और इसका कारण सम्भवतः उसका धन तथा सामाजिक प्रतिष्ठा थी। ल्यूडर्स लिस्ट में 39 गहपतियों का वर्णन प्राप्त है, वे वाणिज्य एवं व्यापार से सम्बंधित थे। अतः इस विवरण के आधार पर यही प्रतीत होता है कि गहपति वाणिज्य-व्यापार से सम्बंधित वैश्य ही था।<sup>40</sup> एक जातक में सेटिठ की पुत्री को गहपति की पुत्री भी कहा गया है। अतः निश्चित है कि सेटिठ धनिक गहपति का ही दूसरा नाम था।

श्रेष्ठी एवं गहपति के अतिरिक्त वैश्य वर्ण के लिये इब्भ, कुटुम्बिक तथा सार्थवाह शब्द का भी प्रयोग बौद्ध साहित्य में प्राप्त होता है। बौद्ध साहित्य के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वैश्य वर्ण के अधिक धनाढ्य व्यक्ति सेटिठ, गहपति तथा इब्भ शब्दों के द्वारा सम्बोधित होते थे। इब्भ संस्कृत के इभ्य का प्राकृत रूप है और इसका साधारण अर्थ है 'धनवान'। इस शब्द का उल्लेख अशोक के एक शिलालेख में भी हुआ है।<sup>41</sup> बौद्ध साहित्य में इभ्य की अपेक्षा सेटिठ शब्द का व्यवहार कहीं अधिक हुआ है। सेटिठ, गहपति तथा इब्भ के अन्तर्गत वैश्यों का वह समुदाय आता था जो अपनी धनाढ्यता तथा अभिजातता के कारण समाज में अधिक प्रतिष्ठित था और अपनी विशिष्ट परिस्थिति के कारण राजकीय एवं व्यवसायिक विषयों में अपने सम्पूर्ण वर्ण का प्रतिनिधत्व करता है। कुटुम्बिक सम्भवतः साधारण वैश्यों के लिये प्रयुक्त हुआ है। प्रायः नगर में निवास करने वाले व्यापारी कुटुम्बिक होते थे जो धान्य का क्रय-विक्रय करते थे<sup>42</sup> तथा रुपयों का व्यवहार करते थे<sup>43</sup> और कृषक हुआ करते थे।<sup>44</sup> सार्थवाह शब्द भी वैश्व व्यापारियों के लिये प्रयुक्त हुआ है। सेटिठ अथवा सेठ (बड़े व्यापारी) के साथ वह साहूकार (बैंकर) और सार्थवाह भी था। सार्थवाह दूरस्थ प्रदेशों की यात्रा करते हुये व्यापार करते थे। अमरकोश के टीकाकार के अनुसार जो पूँजी द्वारा व्यापार करने वाले पान्थों का अगुआ हो वह सार्थवाह है।<sup>45</sup> वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार सार्थ का अभिप्राय था समान या सहयुक्त अर्थ (पूँजी) वाले व्यापारी। जो बाहरी मण्डियों के साथ व्यापार करने के लिये एक साथ टांडा लादकर चलते थे, 'सार्थ' कहलाते थे। उनका नेता ज्येष्ठ व्यापारी सार्थवाह कहलाता था।<sup>46</sup> इस प्रकार सार्थवाह को हम विदेश से माल लाने वाले थोक विक्रेता कह सकते हैं। जैसा कि अजय मित्र शास्त्री का भी विचार है।<sup>47</sup>

इस तथ्य पर पहले ही विचार किया जा चुका है कि छठीं शताब्दी ई०पू० में अनेक आर्थिक परिवर्तन हुये जिसके कारण वाणिज्य-व्यापार एवं उद्योग के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई, जो वैश्य समुदाय की आर्थिक समृद्धि का कारण बना। परिणामतः उनकी सामाजिक स्थिति तथा सामाजिक व्यवहार में भी बदलाव आया जिसका स्पष्ट चित्र हमें समकालीन बौद्ध एवं जैन साहित्य में देखने को मिलता है आलोच्य काल में वैश्य वर्ण का धनाढ्य वर्ग आर्थिक दृष्टिकोण से सम्पन्न होने के कारण सामाजिक मर्यादा के साथ-साथ राजनीतिक दृष्टिकोण से भी महत्वशाली समझा जाता था एवं राज्य को समय-समय पर आर्थिक सहायता भी सुलभ कराता था। व्यापार और वाणिज्य से जुड़े लोगों के पास इस युग में आर्थिक विकास के कारण प्रचुर धन हो गया था, जिसके कारण ये लोग सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से विशेष प्रभावशाली हो गये थे। इस काल में हमें अनेक पूँजीपतियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। अंग का मेण्डक, कोशल का अनाथपिण्डक, कौशाम्बी का घोषित, वणिज ग्राम का आनन्द आदि बौद्ध एवं जैन साहित्य के बहुचर्चित नाम हैं, जिनके पास अपार धनसम्पत्ति थी। मगध नरेश बिम्बिसार के राज्य-काल में जोतिय, जटिल, मेण्डक, पुन्नक और काकविलिय नामक धनी वैश्यों का उल्लेख मिलता है, जो मगध राज्य की सम्पन्नता के स्तम्भ माने जाते थे। जातक साहित्य में हमें अनेक अस्सी करोड़ धन के स्वामी सेठों का उल्लेख प्राप्त होता है। एक ऐसे ऐश्वर्यशाली सेटिठ का उल्लेख हमें प्राप्त होता है, जिसके पास तीन ऋतुओं के लिये अलग-अलग तीन प्रासाद थे। एक-एक प्रासाद में वह चार-चार माह रहता था। वह ठाट-बाट के साथ

एक प्रासाद से दूसरे प्रासाद में जाता था। उसके टाट-बाट को देखने के लिये नगर वासी उमड़ पड़ते थे।<sup>48</sup> परमथ जोतिक में एक सेठ के पुत्र का उल्लेख है जिसके पास 30,000 जानवर थे और इतनी सम्पत्ति थी कि उसके प्रबन्ध के लिये मजदूर तथा दासों की आवश्यकता पड़ती थी।<sup>49</sup> गहपति मेण्डक राज्य की सेना को वेतन देता था और कहा जाता है कि उसने बुद्ध और संघ की सेवा के लिये 1250 गौ सेवकों को नियुक्त किया था।<sup>50</sup> अनाथपिण्डक नामक एक दूसरे गहपति ने बुद्ध को दान में दिये गये जेतवन विहार को स्वर्ण मुद्राओं से ढक करके खरीदा था।<sup>51</sup> बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग से पता चलता है कि साकेत के एक सेट्टि ने अपनी भार्या के निरोग होने पर चिकित्सक जीवक को 16000 मुद्रायें तथा एक दास, एक दासी और एक घोड़े का स्थ दिया।<sup>52</sup> राजगृह के एक दूसरे सेट्टि ने निरोग होने पर चिकित्सक जीवक को दो लाख मुद्रा दिये।<sup>53</sup> बनारस के एक सेट्टि ने भी अपने पुत्र की चिकित्सा के लिये जीवक को 16000 मुद्रायें दी थी।<sup>54</sup> जातक में वाराणसी के ही एक सेट्टि का उल्लेख है जो एक गणिका के ऊपर प्रतिदिन 1000 कार्षापण खर्च करता था।<sup>55</sup> बौद्ध साहित्य में राजगृह के गोभद्र श्रेष्ठी के पुत्र शालिभद्र के वैभव के सम्बंध में एक रोचक कथा प्राप्त होती है। कहा जाता है कि एक बार कुछ विदेशी व्यापारी रत्नकम्बल बेचने राजगृह आये हुये थे। इनका मूल्य इतना अधिक था कि युद्धों में व्यस्त सम्राट बिम्बिसार ने रिक्त राजकोश देखकर इन रत्नकम्बलों को खरीदना अस्वीकार कर दिया। शालिभद्र की माता भद्रा ने उन सभी रत्नकम्बलों को खरीद लिया। बाद में मगध साम्राज्ञी ने सम्राट से एक रत्नकम्बल अवश्य खरीदने का अनुरोध किया। सम्राट ने अमात्य को किसी भी मूल्य में एक रत्नकम्बल खरीदने का आदेश दिया लेकिन उन व्यापारियों के पास एक भी कम्बल नहीं बचा था क्योंकि भद्रा श्रेष्ठिनी ने उनके सारे कम्बलों को खरीद लिया था। फलतः सम्राट ने अमात्य को मूल्य देकर श्रेष्ठिनी से एक कम्बल लाने को कहा, लेकिन जब राजकर्मचारी श्रेष्ठिनी के घर पहुंचे तो उसने बताया कि उन सब रत्नकम्बलों का मैंने अपने पुत्रवधुओं के पैर पोछने के लिये पोछन बनाने हेतु छोटे-छोटे टुकड़े बना डाले, एक भी रत्नकम्बल समूचा शेष नहीं है। अमात्य ने जब यह समाचार सम्राट को सुनाया तो यह समाचार । qdj l eK/ vK'p; Zpfdr glsx; k vKSmI d seKkI sfudy K& "क्या मेरे राज्य में ऐसे धनिक कुबेर बसते हैं?" सम्राट ने श्रेष्ठि शालिभद्र को देखने की इच्छा प्रकट की। अमात्य ने स्वयं श्रेष्ठिनी की सेवा में उपस्थित होकर सम्राट का अभिप्राय कहा। श्रेष्ठिनी ने सम्राट से निवेदन किया कि मेरा पुत्र भवन के सातवें खण्ड पर रहता है और वहाँ से नीचे नहीं उतरता। अतः सम्राट मेरे घर पधारकर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ायें। उन्होंने श्रेष्ठिनी के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। यथा समय सम्राट श्रेष्ठिन के घर पधारे। भवन के चौथे खण्ड में श्रेष्ठिनी ने मर्यादा के अनुकूल उनका स्वागत किया। भद्रा ने दासी के द्वारा पुत्र के पास संदेश भेजा कि सम्राट मिलने आये हैं। पुत्र ने मिलने में अनिच्छा प्रकट की। माता के विशेष आग्रह के कारण बेमन भाव से दो खण्ड नीचे उतरकर वह सम्राट के पास आया लेकिन प्रणाम करके, बिना एक शब्द बोले, बिना एक क्षण ठहरे, ऊपर चला गया। वस्तुतः बौद्ध साहित्य श्रेष्ठियों के वैभव के जीवन्त चित्रणों से भरा पड़ा है। कुछ श्रेष्ठियों के नाम से ही पता चलता है कि वे अपार धन के स्वामी थे, यथा महाधन कुमार धनंजय आदि।<sup>56</sup>

जैन साहित्य में भी हमें अनेक धनी सेठों का उल्लेख प्राप्त होता है। वाणिज्य ग्राम (वैशाली) के गहपति आनन्द के सम्बंध में कहा गया है कि उसने चार कोटि हिरण्य भूमि में गाड़कर रखा था और चार कोटि व्याज पर बढ़ाया था। वह चार ब्रज (चालीस हजार गाये), 500 हल, 500 गाड़ियाँ तथा अनेक वाहन, यानपात्र का स्वामी था और विविध भोगों का उपभोग करते हुये समय-यापन किया करता था।<sup>57</sup> नन्द राजगृह का एक प्रभावशाली श्रेष्ठि था जिसने बहुत-सा साधन व्यय करके पुष्करिणी का निर्माण करवाया था।<sup>58</sup> भरत चक्रवर्ती का गहपति रत्न सर्वलोक में प्रसिद्ध था, शालि आदि विविध धान्यों का वह उत्पादक था।<sup>59</sup> जैन साहित्य में एक ऐसे वैश्व वणिक का उल्लेख प्राप्त होता है जिसने अपनी पत्नी के लिये हाथी दाँत का महल बनाने के लिये भारी धन खर्च करके हाथी दाँत खरीदा।<sup>60</sup>

इस प्रकार बौद्ध एवं जैन साहित्य में हम वैश्य समुदाय के अनेक धनाढ्य समृद्धिशाली तथा अपार सम्पत्ति के स्वामी वैश्यों का उल्लेख पाते हैं। इस सम्बंध में यह बात स्मरणीय रहे कि समकालीन साहित्य में वैश्यों की समृद्धि केवल कथा की ही वस्तु नहीं है अपितु इस समृद्धि के कुछ विशेष ऐतिहासिक कारण थे जिन्होंने वैश्यों की आर्थिक समृद्धि में महती भूमिका निभाई, जिस पर हम पहले ही विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। जिन धनाढ्य सेठों का उल्लेख हम पाते हैं वे केवल धन संचयकर्ता ही नहीं थे। दया-दान-धर्म आदि में भी वे खुल कर खर्च करते थे। इस काल के वैश्यों की समृद्धि, उदारता तथा दानशीलता एवं धर्मपरायणता की पुष्टि न केवल साहित्यिक



वरन पुरातात्विक साक्ष्यों द्वारा भी होती है। अनाथपिण्डक (भरहुत कला) तथा घोषिताराम विहार का पता कौशाम्बी के उत्खनन से होता है जहाँ उसका एक लेख भी प्राप्त हुआ है, जो प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग—इलाहाबाद विश्वविद्यालय के म्यूजियम में रखा हुआ है।

बौद्ध साहित्य में हमें जहाँ बड़े-बड़े सेठों का उल्लेख प्राप्त होता है वहीं कुछ साधारण वैश्यों का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है, जो अपना सामान सिर पर रखकर घूम-घूम कर बेचते थे। वस्तुतः वैश्यों की सामाजिक स्थिति की विवेचना के सन्दर्भ में हम देखते हैं कि उनमें भी परस्पर कई स्तर था। वैश्य वर्ण के आन्तरिक स्तरीकरण में सर्वोच्च स्थान उन वैश्यों को प्राप्त था बड़े-बड़े कृषि योग्य भूमि के स्वामी होने के साथ-साथ नगरों आदि व्यापारिक केन्द्रों में रहकर वाणिज्य वृत्ति द्वारा अपनी जीविका अर्जित कर रहे थे। द्वितीय स्तर पर उन सामान्य वणिकजनों की गणना की जा सकती है जिनका प्रधान व्यवसाय कृषि, पशुपालन अथवा व्यापार था। इनकी संख्या सर्वाधिक रही होगी। इस प्रकार उन्हें स्वतंत्र कृषक, पशुपालन एवं व्यापारी कहा जा सकता है। तृतीय स्तर उन वैश्यों को प्राप्त था जो आश्रित कृषक और वैतनिक अथवा भूतक के रूप में कार्य करते थे।

बौद्ध काल में वैश्य समुदाय का धनाढ्य वर्ग आर्थिक समृद्धि के कारण आर्थिक दृष्टिकोण के साथ-साथ सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सामाजिक व्यवहार के अतिरिक्त राजनीतिक दृष्टिकोण से भी पर्याप्त प्रभावशाली हो गया था, जिसके कारण उसे हम राजाओं से प्रतिस्पर्द्धा करते हुये देखते हैं। अट्ठान जातक से पता चलता है कि सेट्ठि पुत्र <sup>61</sup> उनके सामाजिक तथा राजनीतिक महत्व का अनुमान हम इस बात से लगा सकते हैं कि कौशाम्बी (प्रयाग) के एक श्रेष्ठि की पत्नी ने एक राजा की कन्या का सिर उस्तरे से मुँडवाकर अपने घर में बन्द कर दिया था।<sup>62</sup> सेट्ठि का सम्मान राजा तथा व्यापारी दोनों करते थे। एक जातक के अनुसार उसका आदर राजा, नागरिक तथा जनपद के सभी लोग करते थे। (राजा पूजितो नगरजन पद पूजितो)<sup>63</sup> एक दूसरे जातक से पता चलता है जब एक श्रेष्ठि को प्राण दण्ड देना निश्चित किया गया तो उस समय न केवल समस्त व्यापारी अपितु, पूरा नगर क्षुब्ध हो गया और वे सब राजा के पास प्रार्थना के लिये उपस्थित हुये।<sup>64</sup> यह श्रेष्ठि के प्रति समाज में उसकी सामाजिक मर्यादा तथा उसकी प्रतिष्ठा के महत्व का द्योतक है। सामाजिक उत्सवों, विवाह आदि के अवसरों पर दहेज आदि देने में हम श्रेष्ठियों को राजाओं की बराबरी करते हुये पाते हैं। इस काल में समाज में दहेज प्रथा भी विद्यमान थी। कन्या के विवाह के अवसर पर पिता अपनी सामर्थ के अनुसार दहेज देता था। सम्राट प्रसेनजित के पिता ने मगध के सम्राट बिम्बिसार को दहेज में एक लाख की आय वाले गाँव को दिया था।<sup>65</sup> श्रेष्ठि धनंजय ने अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर पाँच सौ स्वर्णकार केवल आभूषण बनाने के लिये बुलाये थे और उसने जो दहेज दिया वह अपरिमित था। इस दहेज की सूची इस प्रकार है<sup>66</sup>—

**आभूषण 9 करोड़ मूल्य के, धन 5400 गाड़ियों पर लादकर, दासियां 500 और 100 अत्यंत सुन्दर रथ।**

यह लड़की विशाखा थी, जिसने बुद्ध संघ को अपने दान से भर दिया था। राजा भी सेट्ठि के यहां सामाजिक उत्सवों पर उपस्थित रहते थे। विशाखा के विवाह के अवसर पर कोशल नरेश प्रसेनजित स्वयं उपस्थित थे। इन बातों से जहाँ हम सेट्ठियों को वैभव एवं ऐश्वर्य में राजाओं के समकक्ष पाते हैं वही विवाह आदि अवसरों पर राजाओं की उपस्थिति से हम उनकी सामाजिक स्थिति तथा राजनीतिक महत्व का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। वैश्य समुदाय का धनाढ्य वर्ग जन कल्याण के कार्यों में भी खुले हाथ से धन खर्च करता था। वे राजा को राज्य के विकास के कार्यों में भी अपना सहयोग प्रदान करते थे। उनकी उदारता, दानशीलता तथा धर्मपरायणता से राजा भी प्रेरणा लेते थे। अनाथपिण्डक के घर पाँच सौ भिक्षुओं का भोजन प्रति दिन चलता था। उनका घर क्या था भिक्षुओं की इच्छा पूर्ति का स्रोत स्थान था। राजा ने भी यह देखकर भिक्षुओं को भोजन कराने का आदेश दिया, लेकिन सेवा भावना के अभाव के कारण भिक्षुओं ने भोजन करना अस्वीकार कर दिया।<sup>67</sup> इससे स्पष्ट होता है कि वैश्य समुदाय का धनाढ्य वर्ग न केवल अपार धन का संचय करता था अपितु उस अपार धन का जनकल्याण एवं धर्म—दान आदि कार्यों में भी खुलकर खर्च करके अर्जित धन का सदुपयोग भी करता था।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धार्मिक आधार पर भले ही इस काल को बौद्ध एवं जैन काल के नाम से जाना जाय लेकिन वास्तव में आर्थिक दृष्टिकोण से यह युग सेठ—महाजनों का युग था, जो जीवन के हर क्षेत्र में दान—धर्म, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा आदि में तत्कालीन राजाओं की बराबरी करते थे। यही



नहीं परम वैभवशाली तथा निरंकुश राजा भी उनका सम्मान करते थे। इस सन्दर्भ में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से वर्ण क्रम में वैश्य वर्ण की स्थिति ब्राह्मण और क्षत्रिय के बाद अवश्य थी तथापि आर्थिक दृष्टिकोण से सम्भवतः उनका महत्व ब्राह्मण और क्षत्रिय की अपेक्षा अधिक था।

### संदर्भ-सूची

1. आपस्तम्ब, 1/1/1/5  
चतवारों वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राः। तेषां पूर्वपूर्वो जन्मतः श्रेयान्॥
2. शतपथ ब्राह्मण, 13/8/3/11
3. वही,
4. एतरेय ब्राह्मण, 1/5
5. तै0 ब्रा0, 1/1/4
6. आश्वलायन गृह सूत्र, 1/19/8, बौ0गृ0सू0, 2/5/16, वशिष्ट धर्मसूत्र, 11/61-63
7. वशिष्ट, 11/64-67
8. गौतम, 1/15, आ0गृ0सू0 1/9/11, बौ0गृ0सू0, 25/13
9. आ0गृ0सू0, 1/9/13
10. मनु0, 2/38
11. मनु0, 11/67, याज्ञवल्क्य, 3/236
12. मनु0, 11/127-31, याज्ञवल्क्य, 3/266-67
13. मनु0, 3/13 याज्ञवल्क्य, 11/151 याज्ञवल्क्य, 1/56
14. द्रष्टव्य— सारोकिन, पी0ए0, सोशल एण्ड कल्चरल मोबिलिटी, (लन्दन 1959), पृ. 11-12
15. हिरण्यकेशि गुह्य सूत्र, 1/15/1
16. महतो, जातक कालीन भारत, पृ. 194
17. शर्मा, आर0एस0, पूर्वकालीन भारतीय समाज, पृ0 48-50
18. बन्दोपाध्याय, एन0सी0, इकनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एन्शियेन्ट इण्डिया, भाग 1, पृ. 240, 254, 285  
बोस ए0एन0 सोशल एण्ड रूरल इकानमी आफ नार्दन इण्डिया, भाग 2, पृ. 481-82 प्रकाश, बुद्ध, स्टडीज  
इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, पृ. 176-188
19. तुलनीय-स्वीजी, थियरी आफ कैपटलिस्ट, पृ. 35
20. पाण्डेय, जी0सी0, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ. 20-21
21. भट्टाचार्या, एस0सी0, सम आस्पेक्ट, पृ. 136
22. वैदिक इण्डेक्स, पृ. 403
23. द बुक आफ डिसिप्लिन, जिन्द 2, भूमिका, पृ. 261,
24. विस्तृत विवरण के लिये द्रष्टव्य— मिश्र, जी0एस0पी0, दि एज आफ विनय, पृ. 261
25. मजूमदार, प्राचीन भारत में संघटित जीवन, पृ. 78
26. महावग्ग, पृ. 288
27. डेविडस, रीज, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 1, पृ. 185
28. जैन, जे0सी0, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. 62
29. कोसाम्बी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, पृ. 127
30. प्रकाश, बुद्ध, आस्पेक्ट आफ इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, पृ. 3-5
31. निग्रोध जातक
32. विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य, मिश्रा, ए0के0, ट्रेडिंग कम्युनिटी इन एन्शियेन्ट इण्डिया, पृ. 32

33. जैन, जे०सी०, पू०नि०, पृ. 229
34. फिक, सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया, पृ. 353
35. दि एज आफ विनय, पृ. 167, 260, 261 अपरंच ओल्डेनबर्ग, आन द हिस्ट्री आफ द इण्डियन कास्ट सिस्टम (एच०सी० चकलदार द्वारा अनुदित) इ०ए० जिल्द 49, 1920, पृ. 228, ला, बी०सी०, सोशल इकनामिक कन्डीसन आफ एन्शियेन्ट इण्डिया एकार्डिंग टू द बुद्धिस्ट टेक्ट्स, पाठक, के०बी० कम्मेमोरेशन बाल्यूम एनल्स आफ द भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट पूना, 1934, पृ. 68, बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ. 22
36. महावग्ग 6/28/4 मज्झिम निकाय 1, पृ. 176, 395, 502, दीघ निकाय, पृ. 67
37. अल्टेकर, "सोसाइटी इन द डेकन ड्यूरिंग 200 बी०सी०टू०ए०डी० 500" जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री, 30, 1952, पृ. 59
38. दत्त, एन० के०, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया, भाग-एक, पृ. 226-27
39. घुर्वे, जी०एस०, कास्ट, क्लास एण्ड आकुपेशन, पृ. 481 कोसम्बी, इन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ. 277.
40. भट्टाचार्या, एस०सी०, सम आस्पेक्ट, पृ. 128-30
41. आशोक का पंचम शिलालेख।
42. जातक 2, पृ. 267.
43. वही, पृ. 388.
44. वही, 2, पृ. 196.
45. अमरकोश, 3/9/78, सार्थान साधनान् सरतो का पान्थान बहति सार्थवाहः।
46. चन्द्र मोती, सार्थवाह, भूमिका, पृ. 2
47. शास्त्री, अजय मित्र, इण्डिया एज सीन इन द वृहत्संहिता आफ बराहमिहिर, पृ. 315.
48. महापणाद जातक, जातक भाग 2 (स० प्र०), पृ. 57
49. सुतनिपात, 1/2.
50. विनय पिटक 1, पृ. 274.
51. जातक, भाग 1 (स० प्र०)
52. विनयपिटक, महावग्ग, स्कन्धक 8, 1.
53. वही
54. वही
55. अटठान जातक, भाग 4, (स० प्र०) पृ. 132
56. वही
57. उपासक दशा, 1, पृ. 7
58. ज्ञातधर्म कथा, 13, पृ. 141.
59. आवश्यक चूर्णी, पृ. 197-98.
60. आवश्यक चूर्णी, 2 पृ. 154.
61. वही, भाग 4, पृ. 238.
62. आवश्यक चूर्णी, पृ. 16-20.
63. जातक, भाग 5 (स० प्र०)-382.
64. वही, भाग 6, पृ. 132.
65. बड्ढसूकर जातक.
66. बुद्धचर्या, विशाखाचरित, चतुर्थ खण्ड, पृ. 325.
67. केसव जातक, भाग 2, पृ. 306.

\* \* \* \* \*

## फतेहपुर जनपद के वासियों का राष्ट्रीय आंदोलन

डी.के. चौहान\*

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की असफलता ने भारतीयों में अंग्रेजों के प्रति द्वेष को जन्म दिया और अंग्रेजों ने अपनी व्यापारिक नीति को राजनैतिक शासन के साथ संयुक्त किया तथा जन असंतोष की आशंका से कुछ सुधार अवश्य किए, लेकिन लगान की कठोर प्रणाली तथा दुर्भिक्ष, अकाल, सूखा, महामारी आदि से उत्पादन की घटोत्तरी ने किसानों में एक रोष उत्पन्न किया। शस्त्र अधिनियम, दीवानी न्यायालय, वन निधि विधान ने भारतीय जनता पर शिकंजा और कसा। भारतीयों के लिए, भारतीय नागरिक सेवा की प्रतियोगी परीक्षाओं में आयु आदि के अवरोध लगाए गए। भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपवासियों के मुकदमों की सुनवाई के अधिकार से वंचित किया गया। अंग्रेजों की व्यापारिक नीति ने यहाँ के उद्योग धंधों को चौपट कर दिया और इस सब के ऊपर ईसाई मिशनरियाँ शासन से समर्थन पाकर बे-रोक-टोक धर्म परिवर्तन करने में लगी थी। भारतीय धर्म की निन्दा का उन्हें पूरा अधिकार प्राप्त था। इन सभी कटुताओं ने एक व्यापक प्रतिक्रिया का रूप लिया। आर्य समाज, ब्रह्म समाज एवं थियोसेफिकल सोसाइटी इसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुई। राजनैतिक चेतना जाग्रत करने में उस युग के धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों का जितना महत्व है, उससे कम साहित्यकारों का नहीं है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उद्भूत नवजागरण का आंदोलन भारतीय अस्मिता के रक्षण का परिणाम है।

राजनीति, जो 1857 में उच्च वर्ग की ही साधना थी, शनैः-शनैः लोक वृत्ति की ओर उन्मुख होने लगी। इसी की आशंका से चिंतित होकर 28 दिसम्बर, 1885 को 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' का गठन एक अंग्रेज ने किया, जिसका नाम था एलेन आक्टेवियन ह्यूम। राजनैतिक केन्द्रीकरण की दृष्टि से इस संस्था को बनाया गया था, ताकि भारतीयों की राजनैतिक गतिविधियों की जानकारी सरकार को मिलती रहे। इस मंच से शासन से बातचीत का एक मार्ग खुला। परिपक्व मस्तिष्क 'सुधारों' और 'संशोधनों' की वार्ता करते, तो युवा मानस 'स्वशासन' का सपना देखने लगा। और आगे चलकर यही दोनों वर्ग 'नरम दल' और 'गरम दल' के नाम से प्रतिष्ठित हुए। नरम दल जिसके नेता गोखले, बनर्जी और मेहता थे, अंग्रेजी सत्ता के अन्तर्गत 'स्वशासन' चाहते थे, जबकि गरम दल 'पूर्ण स्वतंत्रता' के लिए उद्यत था, और इसका नेतृत्व करने वाले पाल, बाल और लाल थे।

3 जनवरी, 1899 से लार्ड कार्जन भारत के वायसराय होकर आए और उन्होंने 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का प्रयोग किया। मुसलमानों को प्रोत्साहित करके हिन्दुओं के सामने खड़ा किया। 19 जुलाई, 1905 को 'गला विभाजन' की विज्ञप्ति कर दी गई, जिसका विरोध बंगला की जनता ने अनशन करके गंगाजल पीकर और 'वंदेमातरम' का गीत गाकर किया, वरन उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस से भी अलग रखा। और कांग्रेस के 'मुस्लिम एजुकेशनल कांफ्रेंस' 'मुहम्मदन डिफेंस एसोसिएशन' तथा 'इण्डियन मुस्लिम लीग' जैसी संस्थाओं की स्थापना सप्रयास कराई। आगे चलकर मुस्लिम लीग ने बंगला विभाजन का समर्थन किया। बंगला विभाजन की पीड़ा ने नरम और गरम दल में सहमतित्व की भावना उत्पन्न किया और 1906 में कांग्रेस अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' का लक्ष्य घोषित किया। इस अधिवेशन में गरम दल वालों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, स्वदेशी प्रचार तथा राष्ट्रीय शिक्षा का प्रस्ताव किया जो स्वीकार हुआ।

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार स्वदेशी प्रचार तथा राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्ताव के कार्यक्रम को लेकर सर्वप्रथम एक सन्यासी 1905 में फतेहपुर में पधारे। उन्होंने लाल श्रीराम के यहाँ एक बैठक की, जिसमें नगर के प्रतिष्ठित, बौद्धिक और विद्यार्थी वर्ग ने भाग लिया। तत्पश्चात् (लगभग 1906 में) देवीप्रसाद नागर, डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल ने

\* ए.एस.एम., लखनऊ

फतेहपुर में आर्य समाज की स्थापना की। दलभजन सिंह जो सार्वजनिक निर्माण विभाग में प्रधान लिपिक थे, आर्यसमाज फतेहपुर के प्रारम्भिक संगठन के अध्यक्ष और शिवरतन सिंह निवासी खुझौली (कानपुर) सेवा निवृत्ति कानूनगो मंत्री हुए दूसरे वर्ष (1907 ई० में) गिरजाशंकर बाजपेई अधीक्षक, डाकघर फिर श्रीराम अध्यक्ष हुए तथा जयंतीप्रसाद ओवरसीयर (पी०डब्ल्यू०डी०) सूरजदीन, रजिस्ट्रेशन विभाग, दुर्गा प्रसाद, मथुरा प्रसाद शिवहरे, सुखदेव प्रसाद आदि मुख्य कार्यकर्ता थे जिनकी सतसंग सभायें हजारीलाल के फाटक में हुआ करती थीं। राष्ट्रीय आंदोलन को बल प्रदान करने की दिशा में 'आर्य समाज' के माध्यम से फतेहपुर में स्वतंत्रता संग्राम का सूत्रपात हुआ।<sup>12</sup> जब लाला लाजपतराय माण्डले जेल फतेहपुर होकर गए उसका भी प्रभाव तरुणी पर बहुत पड़ा।

फतेहपुर में अंग्रेजी स्कूल के प्रधान अध्यापक चन्द्रदेव और अध्यापक, श्रीधर राव गोरे क्रमशः बंगाली एवं महाराष्ट्रियन थे। बंगाली दैनिक और 'केशरी' साप्ताहिक मंगाते रहे। यह दोनों महानुभाव बंगाल और महाराष्ट्र की स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों की जानकारी रखते और कांग्रेस की 'गरम दल' की नीतियों के पोषक थे। इन्होंने राष्ट्रीय कार्यक्रमों की जानकारी विद्यार्थी वर्ग को भी देना प्रारम्भ की। 1907 में यहाँ के विद्यार्थियों के परीक्षा देने के लिए इलाहाबाद ले जाया गया, जहाँ उन्हें कुछ उच्च स्तर के नेताओं के भाषण सुनने को मिले। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, स्वदेशी, उपयोग तथा बंगभंग आंदोलन आदि विषयों का व्यापक रूप देखकर छात्रों ने विदेशी पेन्सिलें, विदेशी सूत से बने कपड़े, जनेऊ आदि का परित्याग किया।<sup>13</sup>

मथुरा प्रसाद के भाई राधिका शरण, जो इलाहाबाद पढ़ने गए थे, अपनी शिक्षा को छोड़कर स्वदेशी आंदोलन में लग गए और उन्होंने एक पुस्तिका 'तोहपये स्वदेशी' लिखी। 'तोहपये स्वदेशी' की प्रति देखकर कलेक्टर ने अपना प्रशासनिक रूप दिखाया। उसकी सारी प्रतियाँ जला दी गईं और अवध बिहारी लाल, मथुरा प्रसाद तथा राधिका शरण को चेतावनी दी गई कि वे इस आंदोलन से विरत रहें।<sup>14</sup> किन्तु इससे आंदोलन धीमा नहीं पड़ा, बल्कि यह गुप्त बैठकों में परिवर्तित हो गया। इसी समय श्यामलाल ने एक ओजस्वी भाषण देकर विद्यार्थियों में और जोश भरा और फिर छात्रों के घरों में पुलिस के छापे पड़ने लगे। विद्यार्थियों को स्कूल स्तर पर परीक्षा में अनुत्तीर्ण किए जाने के भय भी दिखा गए।<sup>15</sup> दुर्गाप्रसाद 'आर्य समाज' के परामर्श से मथुराप्रसाद ने स्वदेशी वस्तुओं की एक दुकान खोली।<sup>16</sup> इस प्रकार जब पूरे देश में स्वतन्त्रता आंदोलन सुलगना प्रारम्भ हुआ था, फतेहपुर उसमें पीछे नहीं रहा।

1916 की लखनऊ कांग्रेस में नरम-गरम दोनों दल, दोनों लीग तथा मुस्लिम लीग का संयुक्त अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में फतेहपुर से उमाशंकर वकील सम्मिलित हुए। इसमें मुस्लिम लीग में मुसलमानों का पृथक निर्वाचन, प्रतिनिधित्व तथा प्रतिशत के अनुसार प्रतिनिधित्व का समझौता प्रस्तुत किया। सी०वाई० चिन्तामणि एवं मालवीय जी के विरोध के बावजूद स्वशासन की माँग को सशक्त बनाने के उद्देश्य से उसे स्वीकार कर लिया गया। यहीं से मुस्लिम लीग के प्रति कांग्रेस की तुष्टीकरण की नीति का प्रादुर्भाव हुआ।<sup>17</sup>

मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड के रिपोर्ट के आधार पर 1919 में अंग्रेज सरकार द्वारा द्वैध शासन स्थापित करने की व्यवस्था की गई। इसमें भारतीयों में असंतोष की वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप राजनैतिक आंदोलन उग्र हुआ। इसके दमन हेतु 21 मार्च, 1921 को रोलेट एक्ट लागू हुआ। 13 अप्रैल, 1919 को पंजाब में 'जलियाँवाला बाग' का नृशंस हत्या काण्ड डायर द्वारा किया गया। फतेहपुर में रोलेट एक्ट के विरोध तथा जलियाँवाला बाग काण्ड की निन्दा में जनसभाएँ की गईं।<sup>18</sup>

अहमदाबाद कांग्रेस का अधिवेशन दिसम्बर 1921 में किया गया और फतेहपुर से इसमें सम्मिलित हुए उमाशंकर, जगन्नाथ सिंह, ब्रह्मदत्त और जिला कांग्रेस अध्यक्ष केशव देव, अधिवेशन में निम्न कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए— सरकारी उपाधियों और पदों का परित्याग, सरकारी तथा सरकार से सहायता प्राप्त और नियंत्रित स्कूलों, कॉलेजों, विदेशी वस्तुओं, सरकारी अदालतों व काउंसिलों का बहिष्कार, सरकारी समारोहों में भाग लेने से इंकार, स्वदेशी प्रयोग अस्पृश्यता निवारण, शराब बन्दी, राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना तथा अन्य रचनात्मक कार्य।

फतेहपुर कांग्रेस का सूत्रपात गणेश शंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से 1916 में प्रारम्भ हो गया था, जिसमें नरवल जिला कानपुर निवासी श्यामलाल गुप्त 'पार्शद' तथा उमाशंकर वकील मुख्य कर्ता थे। इसका विधिवत गठन 'तिलक श्रद्धांजलि' दिवस 1920 मानये जाने के अवसर पर डॉ० मुरारीलाल के द्वारा किया गया। प्रथम कार्यकारिणी में झण्डा ऊँचा रहे हमारा के रचयिता श्यामलाल गुप्त 'पार्शद' अध्यक्ष, वशगोपाल वकील 'मंत्री' तथा अवधबिहारी 'कोषाध्यक्ष' बनाये गये और इसी दिन लाला बृजागोपाल की दुकान पर तिलक पुस्तकालय की स्थापना हुई। इस समारोह का आयोजन हजारीलाल के फाटक पर हुआ, जिसमें डॉ० मुरारीलाल जो अपनी राय बहादुर की उपाधि लौटा चुके थे, ने ओजस्वी भाषण दिया।

भारतीय अधिनियम 1919 के अनुसार सितम्बर 1920 में काउंसिल सदस्यों का चुनाव होना था। वंशगोपाल और उमाशंकर की इच्छा थी कि फतेहपुर से गणेश शंकर विद्यार्थी अथवा जवाहरलाल नेहरू खड़े हों किन्तु कांग्रेस के आदेशानुसार इन लोगों ने इंकार कर दिया इस पर उमाशंकर ने रणजीत सिंह की मदद की।<sup>9</sup> इसका वंशगोपाल ने विरोध किया परिणामस्वरूप किशुनपुर और देवमई में मतदान शून्य रहा, लेकिन रणजीत सिंह विजयी हुए।<sup>10</sup> 4 दिसम्बर, 1920 को हुसेनगंज में मुफ्त रसद एवं बेगार प्रथा का विरोध कांग्रेस कमेटी की ओर से किया गया तथा निन्दा प्रस्ताव सरकार को दिया गया और यह प्रथा बन्द हुई।<sup>11</sup>

जनवरी 1921 में रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रतिदिन गाँव-गाँव जा कर सदस्यता अभियान आरम्भ हुआ। 31 मार्च, 1921 तक तीन हजार सदस्य बनाये गए तथा रु० 2100 तिलक स्वराज्य कोष में संग्रहीत करके भेजे गए। फतेहपुर में प्रतिदिन सांयकालीन फेरी के रूप में जलूस निकाला जाता, सभाएँ होती जिनमें विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, सरकारी संस्थाओं और पदों से त्याग, मद्य निषेध और स्वराज्य आंदोलन पर भाषण होते थे।

इन सभाओं पर स्थानीय प्रशासन तथा सरकार की कोप दृष्टि बनी रहती थी। धारा 144 तो बहुत साधारण बात थी और स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा उसका उल्लंघन और भी उत्साहवर्धक था। जनवरी के मध्य में ही धारा 144 और सभाओं पर रोक लगा दी गई थी। श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने उसको तोड़कर भाषण दिया और वे बन्दी हुए, उन्हें आठ दिन का कारावास दिया गया।

फरवरी 1921 के दूसरे सप्ताह में वंशगोपाल, मोतीलाल नेहरू से मिलने और आंदोलन के सन्दर्भ में विचार-विमर्श करने इलाहाबाद गए। 18 फरवरी को उनकी वापसी पर उन्हें फतेहपुर रेलवे स्टेशन में बन्दी बना लिया गया। इस घटना से पूरे शहर में हड़ताल हुई और दुकानें बन्द कर दी गईं। कलेक्टर ने धारा 144 लगाई और सभाओं पर प्रतिबंध लगा दिया। उमाशंकर ने हजारीलाल के फाटक पर सभा की और जब फतेहपुर से तीन मील के क्षेत्र में सभाओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया, तो सभाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में की जाने लगीं। वंशगोपाल जेल भेज दिए गए, जहाँ बन्दियों ने तसला बजा कर राष्ट्रीय गीत गाए और नारे लगाए। 19 फरवरी को 10 हजार की दो जमानतें लेकर वंशगोपाल को रिहा किया गया तथा 28 फरवरी को मुकदमा वापस ले लिया गया।<sup>12</sup> उन्होंने अपनी एल०एल०बी० की डिग्री वापस कर दिया तथा गाँधी विद्यालय, इलाहाबाद में प्रधानाध्यापक होकर चले गए। उनके स्थान पर ज्योतिशंकर मंत्री बनाए गए। अक्टूबर 1921 में कांग्रेस ने उन लोगों को आदेश दिया कि धारा 107 एवं 108 के मुकदमों में जिन्होंने जमानत दी हो या कोई अनुबंध किया हो, वे सरकार को नोटिस देकर पुनः कार्यशील हो जाय। इस आदेश को पाते ही वंशगोपाल फतेहपुर वापस आ गए।

उमाशंकर के दो भाई कलकटरी और मुंसिफी में सरकारी कर्मचारी थे। कलकटर ने उन दोनों को ही सरकारी सेवा से हटा दिया।<sup>13</sup> इस पर इन दोनों ने अपना सम्पूर्ण समय कांग्रेस के कार्यक्रमों में लगाया। 1922 में वंशगोपाल को सरकार विरोधी भाषण देने में एक वर्ष का कठोर कारावास हुआ। 8 फरवरी 1923 को वह जेल से छूट कर आये। यह कार्यक्रम पूरे जनपद में बड़े जोरों से चलता रहा।

अंग्रेज सरकार ने देशी वस्त्र उद्योग को चौपट कर दिया था। अन्य स्थानों की भाँति फतेहपुर में इसकी रचनात्मक और विरोधी प्रतिक्रिया हुई। देशी वस्त्र उद्योग को पुनः स्थापित करने हेतु चरखा प्रचार कार्य आरम्भ हुआ और विदेशी वस्त्रों की दुकान में धरना देना प्रारम्भ किया गया। यमुना की तलहटी में कपास की अच्छी खेती होती थी। घर-घर चरखा चलता था और उस समय जज मोइया फतेहपुर का साबरमती कहा जाता था। जिसके सचालक शम्भूनाथ जज मोइया थे। इस कार्य में सर्वाधिक योगदान बेरागढ़ोवा जो स्वराज्य आश्रम कहा जाता था, के रामनाथ सिंह को था। आपने चरखा समाज गठित किया था और सपरिवार चरखा कातते थे। आप गाँधी जी की भाँति कहा करते थे जैराम सिंह (कुशारा) विश्वनाथ गुप्ता (मुहम्मदपुर) भी प्रमुख थे। धरना देने का कार्य जिले की मण्डियों और कस्बों की दुकानों में होता था। वालिन्टियर उन दुकानों के सामने धरना देते जिनके यहाँ विदेशी कपड़ा निकला। रु० 3/- सैकड़ा की दर पर अर्थ-दण्ड भी लगाया जाता। बिन्दकी एवं किशुनपुर के धरने मुख्य रहे हैं। सरकार कांग्रेसियों को धरने के झूठे आरोप लगाकर भी गिरफ्तार करती, सजायें देती और जुर्माने करती। बिन्दकी इस प्रकार के धरनों के लिए विख्यात थी। इसका परिणाम यह हुआ कि फतेहपुर में विदेशी कपड़ों का विक्रय बन्द हो गया।

अंग्रेज सरकार ने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों से जनता की असम्पृक्त रहने के लिए अमन सभाओं का कांग्रेस प्रस्तावित किया। इन सभाओं में सरकारी कर्मचारी और उनके दलाल जनता को समझाते थे, कि वह उनका विरोध

करें और सेनानियों के बहकावे में न आयें। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी इन समस्याओं को भंग कर दिया करते थे। खागा, सिलमी, फतेहपुर, हस्वा, गभरी की अमन सभाओं को भंग किए जाने की घटनाएँ मुख्य रहीं।

उमाशंकर ने फतेहपुर में राजनैतिक कांग्रेस बुलाई, जिसमें पहले दिन की अध्यक्षता मोतीलाल नेहरू ने की और दूसरे दिन की अध्यक्षता गणेश शंकर विद्यार्थी ने की। इन नेताओं की शोभा यात्रा निकाली गई और भाषण हुए। 31 जनवरी, 1923 को यहीं पर गणेश शंकर विद्यार्थी गिरफ्तार हुए और उन्हें एक वर्ष का कठोर कारावास मिला।<sup>14</sup> नवम्बर 1923 में स्वराज्य पार्टी की ओर से कृष्णदत्त पालीवाल काउंसिल निर्वाचन के लिए खड़े हुए पालीवाल अपने विरोधी वेंकटेश तिवारी से तिगुने मतों से विजयी हुए। इनका समर्थन वंशगोपाल और उमाशंकर दोनों ने ही किया।<sup>15</sup>

सन् 1923 को काउंसिल के तीसरे निर्वाचन में उमाशंकर निर्विरोध चुने गए। इनके समय में फतेहपुर में चर्मशोधन विद्यालय खुला तथा सेसन जज के न्यायालय की स्थापना हुई।<sup>16</sup> 1928 में भारत आने वाले साइमन कमीशन का विरोध भी फतेहपुर में डट कर हुआ। 20 नवम्बर, 1929 को रामलीला मैदान में गाँधी जी पधारें। इस अवसर पर उन्हें अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया गया। इस समय स्वतंत्रता संग्राम के लिए गाँधी जी धन संचय कर रहे थे। कांग्रेस अध्यक्ष ने हजार की थैली भेंट की और धन भी संग्रह हुआ, जिसमें 5 हजार रुपए संग्रहीत हुए। गाँधी जी ने अपना अभिनन्दन पत्र नीलाम कर दिया जिसे 50 रुपए में वंशगोपाल ने लिया और उस पर हस्ताक्षर बनाने के गाँधी जी ने 25 रुपए और लिए। गाँधी जी ने संक्षिप्त और प्रेरणास्पद व्याख्यान न किया। इसके बाद वे बिन्दकी गए और वहाँ भी उनका स्वागत किया गया और धन संग्रह हुआ। महिलाओं ने अपने आभूषण भी गाँधी जी को प्रदान किए। लगभग 9 हजार रुपए की नकदी और आभूषण गाँधी जी को मिले।<sup>17</sup>

26 जनवरी, 1930 को नगरों और गाँवों में स्वाधीनता का घोषणा पत्र पढ़ा गया। कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन का कार्यक्रम चलाया और अहिंसा की कठोर शर्त लगाई गई। फतेहपुर में वालेन्टियर भर्ती किए गए। इसी बीच गाँधी जी ने नमक कानून भंग किया। फतेहपुर में 200 वालेन्टियर की शर्त पूरी हो जाने पर 29 अप्रैल, 1930 को हजारीलाल के फाटक पर नमक कानून भंग किया गया।<sup>18</sup> इस पर 1 मई, 1930 को फतेहपुर से गिरफ्तारियों की गईं। 29 सितम्बर, 1930 को बिन्दकी से लगभग 10 हजार सेवकों का जूलूस निकाला गया। इस सभा में श्रीमती उमा नेहरू, राधेश्याम पाठक, शालिग्राम जायसवाल, मुजफ्फर हसन आदि के भाषण हुए। इसका नेतृत्व उमाशंकर वकील ने किया।

इसी वर्ष कांग्रेस के आदेशानुसार उमाशंकर ने काउंसिल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। मद्य निषेध कार्यक्रम में भी फतेहपुर ने सक्रिय योगदान किया और लगान न दिए जाने का आंदोलन भी चलाया जिसके अन्तर्गत नोनाराकाण्ड ऐसा इतिहास प्रसिद्ध काण्ड घटित हुआ, जिसमें एक तहसीलदार की हत्या हुई। इस काण्ड में 69 आदमी बन्दी बनाए गए, मुकदमा चला, जिसमें 2 को प्राण दण्ड तथा 18 को आजीवन कारावास की सजा हुई। अपील में 1 का प्राण दण्ड आजीवन कारावास में बदल गया तथा 6 का आजीवन कारावास की सजा रद्द कर दी गई। शिवनारायण तिवारी के लड़के दुलारेलाल को प्राण दण्ड मिला। वंशगोपाल एवं विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी के प्रयास से यह बन्दी 1937 में छोड़ दिए गए।<sup>19</sup> इसी बीच उकाथू के जमींदार चन्द्रपाल सिंह के यहाँ सबसे बड़ा धरना दिया गया। लगभग 1 हजार स्वयं सेवक 7 दिन तक धरना देते रहे। यह धरना इतना महत्वपूर्ण हुआ कि वंशगोपाल ने इस पर एक 'आल्हा' भी लिखा था।<sup>20</sup>

5 मार्च, 1931 को गाँधी-इरविन समझौता हो गया और कांग्रेस से प्रतिबंध हटा लिया गया। मुस्लिम लीग हिन्दू-मुसलमानों में निरन्तर कटुता उत्पन्न कर रही थी। कानपुर के हिन्दू-मुसलमान दंगे में फतेहपुर के गणेश शंकर विद्यार्थी 25 मार्च, 1931 को शहीद हुए। फतेहपुर को अपने एक मात्र अखिल भारतीय स्तर के नेता से सदा के लिए वंचित हो जाना पड़ा।

द्वितीय गोलमेज कांग्रेस दिसम्बर 1931 तक चली, किन्तु कोई परिणाम न निकला। लार्ड बिलिंग्टन ने सभी चोटी के नेताओं को गिरफ्तार कर दमन का मार्ग अपनाया। कांग्रेस अवैध घोषित कर दी गई। स्थानीय और जिला स्तर के नेता भी गिरफ्तार किए जाने लगे। जब कोई पदाधिकारी गिरफ्तार होता तो दूसरा उस पद को सम्भाल लेता। इस सन्दर्भ में फतेहपुर से इतनी अधिक गिरफ्तारियाँ हुईं कि सरकार को कैम्प जेल बनानी पड़ी।

1932 में उमाशंकर तत्कालीन सरकारी अध्यादेश के अन्तर्गत बन्दी बनाये गए। फतेहपुर में 6 दिन तक हड़ताल रही। 1932 में वंशगोपाल और उमाशंकर ने समांतर कांग्रेस की स्थापना की। इस पर कांग्रेस कमेटी ने वंशगोपाल को कांग्रेस की मान्यता प्रदान की। प्रतिक्रिया स्वरूप उमाशंकर ने कांग्रेस छोड़ दिया। 1937 के काउंसिल चुनाव में उमाशंकर और वंशगोपाल एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बन कर खड़े हुए, जिसमें वंशगोपाल की जीत हुई।



1940-41 में कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ किया और फतेहपुर के अधिकांश नेता गिरफ्तार हुए। 9 अगस्त 1942 को राष्ट्रीय नेताओं को गिरफ्तारी के विरोध में जिला कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई गई। किन्तु बैठक के पूर्व ही बड़े-बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गए। इनकी अनुपस्थिति में पन्नालाल और जैराम सिंह ने नेतृत्व सम्भाला और एक 40 आदमियों की टुकड़ी लेकर आँग स्टेशन, आषापुर का डाकबंगला फूँक दिया गया। कुरुस्तीकला रेलवे स्टेशन के पास 10 खम्भे उखाड़कर फेंक दिए गए, तार काटे गए, पोस्ट ऑफिस जलाये गए। 15 दिसम्बर, 1942 को जी०टी० रोड पर स्थित पाण्डुनदी के पुल को उड़ाने की योजना बनाई गई किन्तु 4 दिसम्बर को ही गिरफ्तार कर लिए गए।<sup>1</sup> आंदोलन को व्यापक बनाने के लिए फतेहपुर से पहला अखबार 'फक्कड़' नाम से निकाला। पन्नालाल का इस आंदोलन में विशिष्ट योगदान रहा और इनके परिवार को अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं, जेल काटनी पड़ीं एवं चल-अचल सम्पत्ति की जब्ती हुई। इनको जीवित या मृत पकड़ने के लिए सरकार ने एक हजार रुपए की घोषणा की थी।<sup>2</sup>

इस देशव्यापी आंदोलन के स्थगन हेतु 19 फरवरी, 1943 को गाँधी जी ने आमरण अनशन प्रारम्भ किया। 6 मई, 1944 को वह छोड़ दिए गए। इसके बाद न केवल भारत में घटनाएँ तेजी से घटीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय नक्शे में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। 26 जुलाई, 1945 को चर्चिल के स्थान पर एटली ब्रिटिश प्रधानमंत्री बने, जो भारत को स्वतंत्र करने के पक्ष में थे। स्वतंत्रता जितनी निकट आजी गई देश में साम्प्रदायिक विद्वेष की आंधी चलने लगी और दिन-प्रतिदिन पाकिस्तान की माँग बल पकड़ती गई। अन्ततोगत्वा 15 अगस्त, 1947 को भारत पाकिस्तान के बंटवारे के साथ देश की स्वतंत्रता घोषित हो गई।

#### सन्दर्भ-सूची

1. डॉ० ईश्वरीप्रसाद, भारत का इतिहास, पृ. 564, 568
2. श्री मथुराप्रसाद शिवहरे, सम्बत् 2001 वि०, मेरा परिवार, पृ. 61, 85, 93
3. वही, पृ. 13-14
4. चन्द्रेश गुप्त, पार्षद अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 41
5. श्री मथुराप्रसाद शिवहरे, मेरा परिवार, पृ. 86
6. उमाशंकर वकील का जीवन परिचय, पृ. 2, अभिनन्दन समिति द्वारा समर्पित, सन् 1961
7. वही, पृ. 2
8. वही, पृ. 4
9. डॉ० ओमप्रकाश अवस्थी समवाय (फतेहपुर जनपद विशेषांक), महात्मा गाँधी डिग्री कॉलेज, फतेहपुर से प्रकाशित, 1972, पृ. 45
10. चन्द्रेश गुप्त, पार्षद अभिनन्दन ग्रन्थ, षष्ठम खण्ड, पृ. 42
11. पार्षद अभिनन्दन ग्रन्थ, चतुर्थ खण्ड, पृ. 51
12. दीपनारायण सिंह, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, चतुर्थ खण्ड, पृ. 57
13. वाद नं० 1, वर्ष 1921, केशर हिन्दू व नाम वंशगोपाल, दफा 1088, जाबता फौजदारी इजलासी, आर०डी० मैकलाइड जिला मजिस्ट्रेट, 28.2.21
14. उत्तर प्रदेश मासिक (मार्च 1981), पृ. 10, एवं 'प्रताप' साप्ताहिक (27 मार्च 1923 सं०)
15. उमाशंकर वकील का जीवन, पृ. 7
16. वही, पृ. 9
17. वही, पृ. 13
18. दीपनारायण सिंह, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, पृ. 42
19. वही, पृ. 44-46
20. समवाय, पृ. 47
21. उमाशंकर वकील का जीवन, पृ. 15
22. दुर्गाप्रसाद गुप्त, पन्नालाल गुप्त का जीवन परिचय, पृ. 4

\* \* \* \* \*

## ऐतिहासिक स्रोत 'तुजुक-ए-बाबरी' : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. मनोज सिंह यादव\*

मुगलिया सल्तनत का संस्थापक जहीरुद्दीन मुहम्मदशाह बाबर एशिया के इतिहास में सर्वाधिक आकर्षक चरित्रों में से एक है। समीक्षाधीन काल के इतिहास के लिए हम जिन समकालीन लेखकों के ऋणी हैं उनमें बाबर के नाम को सम्मानित स्थान प्राप्त है। उसकी आत्मकथा उसकी मातृभाषा चगताई तुर्की में लिखी गयी है। जिसे 'तुजुक-ए-बाबरी' 'बाबरनामा' 'वाक्यात-ए-बाबरी' या साधारण रूप में 'बाबरनामा' जैसे विभिन्न नाम दिये गये हैं। यह पुस्तक बाबर के कार्यक्षेत्र तथा उसके समय के इतिहास का सर्वोत्तम विवरण प्रस्तुत करती है। बाबरनामा से न केवल बाबर के विषय में जानकारी प्राप्त होती है बल्कि हुमायूँ के आरम्भिक दौर की भी महत्वपूर्ण जानकारी इससे प्राप्त होती है। भारत में मुगलिया साम्राज्य की सुदृढ़ स्थापना के बाद जब फारसी भाषा दरबारी भाषा के रूप में स्थापित हो गयी तो इस महत्वपूर्ण साहित्यैतिहासिक ग्रन्थ के फारसी में अनुवाद का भी निर्णय अकबर के शासनकाल में लिया गया और इसका फारसी में दो बार अनुवाद हुआ। पहला अनुवाद पैदा खाँ ने तथा दूसरा अनुवाद 1589-90 में प्रसिद्ध कवि सेनापति, प्रशासक विद्वान व साहित्यकार अब्दुल रहीम खान-ए-खाना ने किया। आज बाबरनामा का अनुवाद कई यूरोपीय तथा ऐशियाई भाषा में हो चुका है। लीडेन एण्ड अर्स्किन एवं एल्किंग ने 1826 में तथा श्रीमती ए0 एस0 बेवरिज ने 1905 में इसका अंग्रेजी में बहुमूल्य अनुवाद किया है, इनमें लीडेन एण्ड अर्स्किन एवं एल्किंग ने इसका फारसी अनुवाद से अंग्रेजी अनुवाद किया। जबकि श्रीमती बेवरिज ने मूल तुर्की पाठ से अंग्रेजी अनुवाद किया। अतः श्रीमती बेवरिज द्वारा किया गया अनुवाद अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक एवं विश्वसनीय माना जाता है किन्तु श्रीमती बेवरिज के अनुवाद में तो ब्रिटिश इतिहासकारों के साम्राज्यवादी इतिहास लेखन का दोष भी स्पष्ट दिखायी देता है।

बाबर ने अपने संस्मरणों अथवा आत्मकथा के प्रथम भाग को तो भारतवर्ष में साम्राज्य स्थापना के पश्चात् संशोधित एवं थोड़ा बहुत विस्तृत भी किया। इसका भाग असंशोधित एवं जल्दबाजी में लिखी गयी डायरी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं इसमें एक कमी परिस्थितिवश और उत्पन्न हो गयी है। यह पुस्तक बाबर के विषय में पूर्ण जानकारी नहीं प्रस्तुत करती है।

प्राप्त हस्तलिपियों से उनके बीच काफी अन्तर का पता चलाता है, क्योंकि ये हस्तलिपियाँ केवल टुकड़ों में ही कहानी प्रस्तुत करती हैं। इनमें बाबर के अस्तित्व काल के अड़तालीस वर्षों में से मात्र 18 वर्षों की गतिविधियों पर ही प्रकाश डाला गया है। पुस्तक में कोई प्राक्कथन या परिचयात्मक टिप्पणी नहीं है। और इसका आरम्भ बहुत ही अव्याहारिक ढंग से एकदम उसके जीवन के बारहवें वर्ष से आरम्भ होता है जब वह फरगाना की गद्दी पर सिंहासनारूढ़ हुआ। कथानक भी बीच-बीच में कई जगह से टूटा हुआ है और 1509 से 1519 और 1520-1529 तक का ब्यौरा इस पुस्तक में कहीं भी नहीं दिया गया है, इसके अतिरिक्त इसका अंत अचानक एक परिच्छेद से होता है जिस पर (7 सितम्बर 1529) मूर्हरम 3936 ए0 एच0 तिथि पड़ी है जिससे लगता है कि इसे लिखा तो गया है लेकिन नष्ट हो जाने या गुम हो जाने के कारण यह उपलब्ध नहीं हो पाया है। हुमायूँनामा में भी उल्लेख मिलता है कि 1529 में बाबर अपनी आत्मकथा का सृजन कर रहा था। इस सम्बन्ध में कहा यह जाता है कि एक दिन बाबर अपनी रचना के पृष्ठ पलट रहा था तभी जोर की आंधी में कुछ पृष्ठ उड़ गये, उसने उनकी बहुत खोज करवायी किन्तु दुर्भाग्यवश वे पृष्ठ मिल नहीं सके। साथ ही बाबर ने यह भी स्वीकार किया है वह अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर इसके पुर्नलेखन में असमर्थ है क्योंकि यह विवरण पूर्णतया तथ्यात्मक नहीं होगा अतः उसने इसे फिर से लिखने का प्रयास भी नहीं किया।

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर भदोही

बाबर ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार का उल्लेख नहीं किया है और न ही कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ही संकेत दिया है जिससे यह ज्ञात हो सके कि उसने इसकी रचना कब प्रारम्भ की। इरिस्कीन महोदय का विचार है कि बाबर ने यह कार्य उत्तरी भारत की विजयोपरान्त प्रारम्भ किया होगा किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि बाबर जैसा व्यक्तित्व जो बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न था और जिसकी साहित्यिक अभिरुचि एवं योग्यता उसके द्वारा रचित दीवान से पहले ही प्रमाणित हो चुकी थी ऐसे में बाबर अपने संस्मरण लगातार न लिखता रहा हो यह तार्किक नहीं प्रतीत होता है तथ्यों एवं सत्य को समर्पित एवं उसी पर आधारित जबवह यह कृति रच रहा था (जैसा कि रिकित्यों के पूर्ति में तथ्यात्मक न हो पाने के कारण उसे पूरा न करने का निश्चय) तब यही कि यदि वह विवरण तत्काल न लिख रहा होता तो इतनी विस्तृत सूचनाएं, वर्णन, ज्ञान संभवतः उसमें समाहित न हो पाता अतः यह कहना कि उत्तर भारत की विजय से प्राप्त राज्य के सुख, शांति, समृद्धि ने ही उसे यह अवसर एवं परिवेश प्रदान किया होगा। यह तार्किक प्रतीत नहीं होता है।

तुजुक-ए-बाबरी को हम अध्ययन की सुगमता के लिए तीन स्पष्ट भागों में विभक्त कर सकते हैं प्रथम भाग में मुख्यतः उस काल का विवरण है जब बाबर मध्य एशिया में फरगना का शासक बना था और अन्ततः वहाँ की प्रतिद्वन्द्विता एवं संघर्षों के चलते समरकन्द के क्षेत्र से पलायन करने को विवश हो गया था। द्वितीय भाग में उसके मध्य एशियाई पलायन से लेकर अंतिम भारतीय अभियान तक के काल के वर्णन को मान सकते हैं। तृतीय भाग में उसकी भारतवर्ष में की गयी गतिविधियों का वर्णन है।

बाबर ने चगताई तुर्की भाषा में इसकी रचना किया यह भाषा उस समय की शुद्धतम रूप थी। बाबरनामा की शैली अत्यन्त सुखद एवं स्वाभाविक है जो कि आडम्बर से बहुत दूर है। शैली एवं भाषा के आधार पर इसके दो स्पष्ट भाग दिखलायी पड़ते हैं। पहला भाग तुर्की एवं फारसी कविता से संबंधित है तथा दूसरा भाग एक डायरी है। बाबरनामा से बाबर के कवि होने के भी प्रमाण मिलते हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि उसने एक मुबइयान नामक पद्य शैली भी विकसित किया था और दीवान नामक उसका काव्य संग्रह था। तुजुक की एक प्रति मिर्जा हैदर की हस्तलिखित एवं दूसरी मूलप्रति की नकल हुमायूँ ने स्वयं की थी। यह कार्य हुमायूँ द्वारा 1553 ई० में किया गया।

अपनी अभिव्यक्ति में बाबर सच्चा तथा स्पष्टवादितापूर्ण अपनी भावनाओं को स्वयं में से स्पष्ट रूप से निष्कपटता से निकालता है तथा अपनी उपलब्धियों और विफलताओं, सदगुण एवं बुराइयों को एक ही सांस में बिना शब्दों को तोड़े मरोड़े या हिचकिचाहट के कहने की विशेषताएं इसे प्रमाणिक तो बनाती ही हैं साथ ही उसका आकर्षण भी बराबर बना रहता है। उसमें वास्तविक आत्मदर्शन है उसके गुण एवं दोषों का अचेतन किन्तु सत्य चित्रण है, उसकी सत्यनिष्ठा तथा आत्मसम्मान का ज्ञान उसके संस्मरणों को आधिकारिक के साथ ही साथ दिलचस्प भी बनाता है। इसी सम्बन्ध में लेनपुल महोदय लिखते हैं—“यदि कभी भी ऐसा मामला हो जहाँ किसी एक ऐतिहासिक दस्तावेज का बिना किसी दूसरे साक्ष्य के समर्थन के उसे पर्याप्त सबूत के रूप में स्वीकार करना पड़ता है, यह बात बाबर के संस्मरणों के साथ भी है और इस शाही आत्मकथा का कोई भी पाठक बाबर की ईमानदारी या साक्षी और इतिवृत्तकार के रूप में उसकी क्षमता पर संदेह नहीं कर सकता है।”

उसके संस्मरणों की तथ्यात्मक प्रस्तुति, सत्यनिष्ठा एवं वस्तुनिष्ठता के ही कारण इस कृति के आधिकारिक स्वभाव पर कोई संदेह व्यक्त नहीं किया जा सकता है। चूँकि इतिहास की आमधारणा के अनुसार इतिहासकार किसी भी ऐतिहासिक तथ्य को तब तक नहीं स्वीकार कर सकता है जब तक कि इसकी पुष्टि अन्य स्रोतों से न हो जाये किन्तु इस पूरी ऐतिहासिक अवधारणा में अपवाद स्वरूप हमें तजुक ए बाबरी एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में प्राप्त है, जिसमें वर्णित किसी भी तथ्य को पुष्टि अथवा प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं है। अपितु आत्मकथाओं के लेखकों में सर्वश्रेष्ठ बाबर की सत्यता तथा घटनाओं के गवाह एवं उनके वस्तुनिष्ठ चित्रण की उसकी योग्यता पर कोई भी पाठक सन्देह प्रकट कर ही नहीं सकता है और सम्भवतः यही कारण है कि बाबरनामा को मुगलकाल के सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोतों में से एक माना जाता है।

इतनी विशेषताओं के बावजूद बाबरनामा में कुछ कमियाँ भी रह गयी हैं पहली कमी तो यह है कि यद्यपि उसने अपनी आत्मकथा में ईमानदारी का परिचय दिया है। किन्तु हिन्दुस्तान के लोगों के साथ प्रायः न्याय नहीं कर पाया है। उसने उनकी निन्दा ही किया है वह लिखता है कि हिन्दुस्तान के लोग भद्दे तथा असभ्य हैं यहाँ की कला और संस्कृति अविकसित है और यहाँ के लोग अक्लमंद नहीं है। बाबर के यह आरोप किसी क्षेत्र विशेष पर लागू

हो भी सकते थे, किन्तु इसको पूरे हिन्दुस्तानी समाज पर लागू करना बाबर का भ्रम था। और बाबर के इन सभी आरोपों का आधार यह था कि वह हिन्दुस्तान को सिर्फ विजेता की ही दृष्टि से देखता था। आगे चलकर इन सभी आरोपों का खण्डन अबुलफजल एवं जहाँगीर कर चुका है। बाबरनामा की दूसरी कमी यह है कि हिन्दुस्तान का राजनीतिक विवरण देते समय बाबर ने खानदेश, उड़ीसा, सिन्ध एवं कश्मीर आदि का विवरण छोड़ दिया है और साथ ही पुर्तगालियों की बस्तियों को भी नजरअंदाज कर दिया है। जिससे समकालीन इतिहास को समग्रता से जानने के अवसर सीमित हो जाते हैं।

बाबरनामा में तीसरा दोष यह है कि इसमें बीच-बीच में समय का अन्तराल है जिससे उसके शासनकाल की भी पूर्ण जानकारी नहीं प्राप्त हो पाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए हमें तारीख ए-रशीदी एवं हुमायूँनामा का सहारा लेना पड़ता है किन्तु इन दोषों के बावजूद भी बाबरनामा का महत्व कम नहीं हो जाता है अपितु अपनी विश्वसनीयता के कारण यह मध्यकाल के प्रथम श्रेणी के ऐतिहासिक स्रोतों के श्रेणी में गिना जाता है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एच० वेवरिज, कल्लकत्ता रिव्यू, 1897
2. स्टैनली लेन-पूल, बाबर, नई दिल्ली।
3. मध्यकालीन इतिहास के स्रोत डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी, साहित्य संगम, इलाहाबाद, 2003
4. बाबरनामा हिन्दी अनुवाद, युगजीत नवलपुरी, साहित्य एकेडमी प्रकाशन, 2018
5. मुगलकालीन भारत (1526-1803), डॉ० आशीषादी लाल श्रीवास्तव शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा
6. मध्यकालीन भारत का वृहत् इतिहास (खण्ड-2: 1526-1707) जे० एल० मेहता, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
7. मध्यकालीन भारत भाग-2 (1540-1761) सं० हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।
8. ऑन हिस्ट्रीएण्ड हिस्टोरियन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया, के० ए० निजामी, नई दिल्ली, 1982
9. भारत का इतिहास (हिस्ट्री ऑफ इंडिया सं० ईलियट एण्ड डाउसन का हिन्दी अनुवाद), मथुरा लाल शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० आगरा।
10. सम हिस्टोरियन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया, बी० एन० लूनिया, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल (1 जनवरी 1969)
11. मुगल भारत का इतिहास (1526-1782 तक) डॉ० अशोक कुमार चटर्जी एवं डॉ० आनन्द कुमार, भारत बुक सेंटर (2018)
12. भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास भाग-2, डॉ० हुकुमचन्द जैन एवं डॉ० कृष्णगोपाल शर्मा
13. मुगलकालीन भारत (बाबर), अनुवाद सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी, राजकमल प्रकाशन, 2018

\* \* \* \* \*

## कोविड-19 के दौर में आत्मनिर्भर भारत अभियान : अवसर, चुनौतियाँ एवं रणनीति

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह\*

**सारांश :-** किसी देश के लिए आत्मनिर्भर होना प्रचुर उत्पादन के आत्मनिर्भर पारिस्थितिकी तंत्र से लैस होना है जिसमें सभी के लिए रोजगार और विकास के अवसर मौजूद हों। आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक है ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करना, खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने और व्यवसायिक फसलों पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता पर बल और संरक्षण दिया जा रहा है प्राथमिक क्षेत्र के उद्योगों को प्रोत्साहित करने और संरक्षण देने की बात की जा रही है। मजदूरों की वापसी को देखते हुए उत्तर प्रदेश की सरकार ने माइग्रेट कमीशन का गठन किया है और उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए कौशल विकास के कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। आत्मनिर्भरता की प्राप्ति के लिए राजनीतिक एवं प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के साथ आर्थिक विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाने की आवश्यकता है उद्योगों की उत्पादन क्षमता को बढ़ावा देने और आयातों पर रोक लगाये बिना स्वदेशी निर्माण एवं उपयोग को बढ़ावा देना है।

**मुख्य बिन्दु** – कोविड-19, आत्मनिर्भर भारत, भारतीय अर्थव्यवस्था।

**प्रस्तावना** – वैश्विक महामारी के इस दौर में भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने राष्ट्र को इस भीषण संकट से उबारने और अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने के उद्देश्य से आर्थिक आत्मनिर्भरता का मंत्र दिया है। वसुधैव कुटुम्बकम् यानि सारा संसार एक परिवार है, के अपने मूल लोकाचार के साथ भारत इस संकट की घड़ी में समस्त विश्व के साथ खड़ा है। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के निर्देशन में जिन आर्थिक नीतियों को अपनाया गया उससे राष्ट्रों की आर्थिक आत्मनिर्भरता बहुत बढ़ गई थी। किन्तु कोविड-19 की इस महामारी ने दुनिया के लगभग 200 देशों में लॉकडाउन के कारण आंतरिक और विदेशी व्यापार लगभग बन्द हो गया जिसका परिणाम यह हुआ कि वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति बहुत बुरी तरह से प्रभावित हुई। दवाइयाँ, चिकित्सकीय उपकरण, और अन्य जरूरी सामान के लिए एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से अपेक्षित सहयोग नहीं प्राप्त कर सका।

**विषय विस्तार**—यूरोपीय देशों में सबसे पहले कोरोना से पीड़ित देश इटली की यह शिकायत रही कि यूरोपिय संघ के देशों ने संकट के समय में किसी प्रकार की मदद नहीं की और यूरोप के देशों का इस प्रकार से क्षमा मांगना वैश्वकरण की समसामयिक वास्तविकता को बताता है। आत्मनिर्भर भारत के पाँच स्तम्भ— अर्थव्यवस्था, अवसंरचना, व्यवस्था, जनसांख्यिकी और माँग का उद्देश्य समाज के सभी क्षेत्रों और वर्गों पर समान रूप से विहंगम दृष्टि डालना है। अर्थशास्त्र में 'ट्रिकल डाउन' सिद्धान्त के मुताबिक अगर जी.डी.पी. में बढ़ोत्तरी होती है तो जरूरी नहीं है कि सभी लोगों की आय उसी हिसाब से बढ़ेगी। उदाहरण के तौर पर कई देशों और क्षेत्रों में सामान्य (बिना कौशल वाले) मजदूरों की आय स्थित हो गई है। जबकि क्षेत्र (देश) में जीडीपी में बढ़ोत्तरी का सिलसिला जारी है। आर्थिक विकास का यह असमान ढाँचा आत्मनिर्भर भारत के लिये बिल्कुल उपयुक्त नहीं है। आत्मनिर्भरता का लक्ष्य सिर्फ वैसी आर्थिक नीतियों के जरिये हासिल किया जा सकता है, जिसमें विकास के अलावा आर्थिक असमानता को भी कम किया जा सके। समानता और विकास को एक दूसरे की कीमत पर हासिल करना ठीक नहीं होगा। समानता और विकास को एक दूसरे का पूरक होना चाहिए इसके लिए हमें अपनी आर्थिक रणनीति में बड़े बदलाव करने होंगे, ताकि आत्मनिर्भर भारत का लक्ष्य हासिल किया जा सके।

\* प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक ( सा.वि. ) डी.ए.वी.इ.को., प्रयागराज

महात्मा गाँधी आधुनिक इतिहास में आत्मनिर्भरता के विचार के शुरुवाती प्रस्तावकों में से एक थे, जिन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिये स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए विकास का सुस्पष्ट और वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया। उनके अनुसार 'कोई व्यक्ति, कोई गाँव, कोई देश केवल आत्मनिर्भर बनकर ही स्वतंत्र हो सकता है। वर्तमान में भारत 130 करोड़ की विशाल जनसंख्या व विशाल भू-भाग वाला राजनीतिक रूप से एकीकृत एक संघ राज्य है, जिसमें क्षेत्रीय विविधताओं को 28 प्रांतीय सरकारों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है ऐसे में दुनिया के अन्य राष्ट्रों के समान भारत ने भी आर्थिक अन्तर्निर्भरता की ओर कदम बढ़ाया जिसका सुपरिणाम आर्थिक समृद्धि के रूप में दिखाई दिया। भारत आज दुनिया की 5वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश है। वर्तमान कोरोना महामारी जैसी परिस्थिति ने भारत को एक बार फिर से आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने के लिये प्रेरित किया है।

भारत की आत्मनिर्भरता आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमिति नहीं है बल्कि भारत एक ऐसी उभरती हुई शक्ति बनेगा जो दुनियाभर की आर्थिक समृद्धि में भी योगदान करेगा। इस दृष्टि से भारतीय आत्मनिर्भरता के कई आयाम हैं जिन पर ध्यान रखते हुए कुछ महत्वपूर्ण रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं।

खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता के साथ ही कृषि आय बढ़ाने और व्यवसायिक फसलों की खेती की ओर ध्यान केन्द्रित करने की भी आवश्यकता है। यह हम जानते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है औद्योगिक क्षेत्र और सेवा क्षेत्र में तीव्र विकास के बावजूद भी 53% जनसंख्या कृषि पर आश्रित है किंतु राष्ट्रीय आय में कृषि का कुल योगदान मात्र 13% का है। कोविड संकट को दृष्टिगत रखते हुए भारत अपनी कृषि भूमि का उपयोग हर्बल उत्पादन के लिये भी कर सकता है जिसे संगठित रूप प्रदान करते हुए आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के माध्यम से भारतवासियों में रोगप्रतिरोधक क्षमता के विकास के साथ ही साथ विश्व के अन्य राष्ट्रों को स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध करा सकता है। स्वस्थ राष्ट्र के निवासीयों से युक्त राष्ट्र ही आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का विकास कर विश्व का नेतृत्व करने में सक्षम हो सकता है। आज विश्व के तमाम देश चीन के प्रति दुराग्रह का भाव रखते हुए चीनी सामानों का बहिष्कार कर रहे हैं। इसका लाभ भारत को हो सकता है हाल ही में अमेरिका की एप्पल कम्पनी अपना 20% कारोबार चीन से समेटकर भारत में लगाने की घोषणा कर चुका है भारत के आर्थिक बदलाव के लिये कृषि महत्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने से खाद्य सुरक्षा और भुगतान संतुलन (खाद्यान्नों के आयात में कमी और निर्यात में बढ़ोत्तरी) की स्थिति बेहतर होगी। साथ ही खाद्य प्रसंस्करण को बढ़ावा मिलेगा, कृषि आधारित उद्योगों के लिए गुंजाइश बढ़ेगी और खेती से जुड़ी अन्य सेवाओं की माँग बढ़ेगी। इस तरह रोजगार के अवसर बढ़ने के साथ-साथ आय में भी बढ़ोत्तरी होगी। कृषि से जुड़ी सामग्री का निर्यात बढ़ाने की काफी संभावनाएँ हैं। इसके लिये ऊँचे मूल्य वाली फसलों की पहचान करनी होगी, जिसकी माँग भारत के बाहर भी है। इसके अलावा कृषि की व्यवस्था को तकनीकी तौर पर भी काफी उन्नत बनाया जा सकता है और इससे जुड़े कौशल का उपयोग दूसरे क्षेत्रों में किया जा सकता है।

भारत की कुल जनसंख्या 130 करोड़ है जिसमें लगभग 40 करोड़ जनसंख्या श्रमिकों की है। जो मुख्यतया कृषि, उद्योग, व्यवसाय व सेवाक्षेत्र में कार्यरत है। कोरोना महामारी के इस संकट के दौर में लाखों की संख्या में ये मजदूर शहरों से गाँवों की ओर पलायन करते देखे गये उनकी बेरोजगारी और भूखमरी की स्थिति ने यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि इन श्रमिकों में आत्मनिर्भरता का विकास किये बिना आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना करना बेमानी होगी। श्रमिकों को आत्मनिर्भरता के साथ कुशल बनाने में उनकी क्षमता, रहन सहन का स्तर व कार्य क्षमताओं का इस प्रकार से विकास किया जाना आवश्यक है कि आकस्मिक संकटों को झेलने में भी वो समक्ष हो सके। इसके लिए उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए विश्व बैंक के सहयोग से सरकार कौशल विकास कार्यक्रमों के द्वारा प्रशिक्षित कर रही है।

भारत विश्व की पाँचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था होने के पश्चात भी प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से बहुत पीछे है। भारत में (2017) प्रति व्यक्ति आय 94 हजार रुपये प्रतिवर्ष है इस दृष्टि से दुनिया के 188 देशों की सूची में भारत का 138 वाँ स्थान है। वर्ष 2020 की जनवरी माह में भारत की मासिक प्रतिव्यक्ति आय में 68% की वृद्धि की बात की गई है। किन्तु अप्रैल 2020 की अन्तराष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत के असंगठित क्षेत्र के 40 करोड़ मजदूर बेरोजगार हो सकते हैं। इससे प्रतिव्यक्ति आय में और गिरावट का अनुमान है। प्रतिव्यक्ति



आय में वृद्धि से व्यक्ति की क्रय क्षमता बढ़ती है और बाजार में पूँजी का प्रवाह बना रहता है जो आर्थिक आत्मनिर्भरता हेतु अत्यन्त आवश्यक है। सरकार द्वारा दिया गया 20 लाख करोड़ का पैकेज पूँजी के प्रवाह को बनाये रखने में सहायक होगा।

कोविड संकट ने भारत में तकनीकी विकास हेतु प्रतिभाओं को रोके रखने की परिस्थितियाँ उत्पन्न की है। अमेरिका में कोविड संकट का बुरा असर होने के कारण वहाँ भारतीय प्रतिभायें जाने से बचेगी, अमेरिका अपनी तकनीकी आवश्यकताओं को पेट्रोकेमिकल आटोमोबाइल, इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी व बैंकिंग के क्षेत्र में चीन व भारत से आउटसोर्सिंग कर 58% लागत को बचाता है। ऐसी स्थिति में भारत प्रतिभाशाली युवाओं का चयन कर उनके विकास और प्रशिक्षण का अवसर अपने देश में ही उपलब्ध करा सकता है। इसके लिये यह तकनीकी रूप से उन्नत देशों से सहयोग भी ले सकता है। क्योंकि आत्मनिर्भरता दुनियाँ के अन्य देशों से अलग-थलग रहकर प्राप्त नहीं की जा सकती। तकनीकी विकास भारत को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारत के आर्थिक विकास में मजबूती लायेगा साथ ही व्यवस्था में पारदर्शिता लाकर कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन में भी सहायक सिद्ध होगा।

प्राथमिक उद्योग जैसे वस्त्र, जूट, चीनी, सीमेंट, पेपर, व स्टील उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार है। अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाने के लिए इन उद्योगों को और मजबूत करना होगा। स्टील के उत्पादन में भारत दुनियाँ के 10 सर्वाधिक उत्पादक देशों में से एक है फिर भी वह स्टील का बड़ी मात्रा में आयात करता है। निर्यात से होने वाले लाभ का 33% वस्त्र उद्योग से आता है। सीमेंट और चीनी उत्पादन में भी यह दुनियाँ के अन्य देशों में उत्कृष्ट स्थान रखता है। अतः इन क्षेत्रों में भारत को पूर्ण आत्मनिर्भर बनाने के साथ ही इनके निर्यात को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों को भी प्रोत्साहित करने और संरक्षण देने की आवश्यकता है।

आत्मनिर्भरता की प्राप्ति के लिए राजनीतिक एवं प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के साथ भारत को आर्थिक विकेन्द्रीकरण की नीति भी अपनानी चाहिए। कुछ गाँवों और जिलों को मिलाकर स्वायत्त आर्थिक समूहों का विकास किया जा सकता है जो अपने क्षेत्र के मानवीय संसाधनों की संभावनाओं को तलाश कर स्थानीय स्तर पर स्वदेशी उद्योगों का विकास करेंगे। भारत में 6.5 लाख गाँवों व 770 जिले में ऐसी आर्थिक इकाइयों का निर्माण असंभव नहीं है। गुजरात और तमिलनाडु में इसका उदाहरण देखा जा सकता है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 40 लाख मजदूरों की वापसी को देखते हुए गठित 'माइग्रेट कमीशन' आर्थिक आत्मनिर्भरता में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है जो मजदूरों को कौशल विकास प्रशिक्षण देकर उन्हें अपने गृह जनपद व प्रदेश में काम दिलाने हेतु संकल्पित है। 'एक जिला एक उत्पाद' विषयक परियोजना उत्तर प्रदेश सरकार की आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है।

आत्मनिर्भरता हेतु अपनाई गई रणनीतियाँ तभी प्रभावी होंगी जब भारत वैचारिक रूप से भी आत्मनिर्भर होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी औपनिवेशिक मानसिकता के अन्तर्गत पश्चिमी देशों के आर्थिक एवं राजनीतिक मॉडल को श्रेष्ठ समझा गया, लेकिन अब समय आ गया है कि अपनी मानसिक दासता का त्याग करके अपने देश की सांस्कृतिक मूल्यों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर आर्थिक मॉडल का सृजन किया जाय और पूरी दुनियाँ के समक्ष रखा जाय। आत्मनिर्भर शब्द का इस्तेमाल आत्मनिर्भरता और सम्पूर्ण आत्मनिर्भरता दोनों के लिए ही किया जाता है इसका मकसद आयातों पर रोक लगाये बिना स्वदेशी निर्माण क्षमता को विकसित करना है। दूसरी तरफ सम्पूर्ण आत्मनिर्भरता अव्यवहारिक, अन्तर्मुखी और नकारात्मक है। यह तुलनात्मक लाभ के रिकार्डों के सिद्धान्त के खिलाफ है इस सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में देशों की तुलनात्मक लाभ में अंतर का परिणाम है। इसलिये किसी सम्पूर्ण आत्मनिर्भर देश को भी व्यापार करना चाहिए। निर्यात संवर्द्धन की प्रभावशाली रणनीति मजबूत और प्रतिस्पर्धी स्वदेशी निर्माण पर निर्भर करती है। निर्माण प्रतिस्पर्धी तब होता है जब वह विश्व के सर्वश्रेष्ठ निर्माताओं से होड़ करने के साथ ही स्वदेश में आयातों और खास तौर पर हमारे साक्षीदारों से प्रशुल्क मुक्त आयात के सामने टिक सके। एडम स्मिथ ने 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' में कहाँ है कि वणिकवाद का महान लक्ष्य स्वदेशी खपत के लिये विदेशी सामान का आयात यथा संभव घटाना और स्वदेशी उद्योग के उत्पादों का निर्यात ज्यादा से ज्यादा बढ़ाना है। उनका यह सिद्धान्त खासतौर से बड़े स्वदेशी बाजार वाले देशों के लिए अब भी प्रासंगिक है, आयात पर निर्भरता घटाना और निर्यात संवर्द्धन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

आत्मनिर्भर बनने के लिए हमें ढेरों चुनौतियों से पार पाना होगा। भारत के विभिन्न आयामों के मध्य चुनौतिया भी कम नहीं है। कुछ चुनौतियां स्वतंत्रता के बाद से चली आ रही है तो कुछ नव उदारवादी युग की ही देन है। सबसे पहली चुनौती तो निवेश की ही है। भारत में छोटे और मझोले उद्यमियों के पास अक्सर निवेश के लिए पूँजी ही नहीं होती। ऐसे में या तो उनके कारोबार नाकाम हो जाते हैं या वे शार्ट कट अपनाते हैं और यह शार्टकट अक्सर चीन तक पहुँचता है। भारत अभी भी 130 करोड़ की विशाल जनसंख्या को अपनी ताकत नहीं बना सका है। जबकि इसमें संभावनायें बहुत हैं। आधी से अधिक जनसंख्या 25 वर्ष से कम उम्र की है और 65% लोग 35 वर्ष से कम उम्र के युवा हैं। औसत जीवन आयु 69.7 वर्ष तक पहुँच गयी है किन्तु इस जनसंख्या में बेरोजगारी दर तेजी से बढ़ रही है, बेरोजगार युवा आज भटक रहे हैं जो अपराध और आतंकवाद की ओर बढ़ रहे हैं इन्हें उचित दिशा देना और आत्मनिर्भर भारत का संबल बनाना आज भारत के सम्मुख एक बड़ी चुनौती है।

भारत आज भी आर्थिक, शैक्षिक, भाषाई, सांस्कृतिक, प्रौद्योगिकी, राजनीतिक एवं संचार जगत में एक ऐसी विभाजन रेखा से बटी हुई है जिन्हें आत्मनिर्भरता की दिशा में जोड़ना एक बड़ी चुनौती है। इन विभाजनों के कारण एक राष्ट्र राज्य में अनेक राष्ट्र दिखाई देते हैं। एक अध्ययन द्वारा विकसित 'गिनी इंडेक्स आफ इंडिया' जो भारत में आय की असमानता का मापक है द्वारा दिये गये आंकड़े बताते हैं कि देश की 58% आय पर 1% धनी लोगों का अधिकार है और देश की 80.7% सम्पत्ति 10% धनी लोगों के हाथों में है। भारत में पूँजीपतियों की संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है। 2013 में भारत में कुल 9 अरबपति थे वहीं 2020 में उनकी संख्या बढ़कर 119 हो गई है तकनीकी उन्नयन के साथ स्वावलम्बी समाज की स्थापना भारत का लक्ष्य है। इस दृष्टि से कृत्रिम मेधा भारतीयों के लिए आत्मनिर्भरता के अवसर लेकर आई है। सूचना तकनीक में प्रशिक्षित युवाओं के लिए स्वयं उद्यमिता के नए द्वार खोलती है। नीति आयोग ने कृषि, स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम मेधा के प्रयोग की संभावना पर शोध हेतु जिस राष्ट्रीय योजना का निर्माण किया है, उसका उद्देश्य इन क्षेत्रों में मानवीय संसाधनों की कमी को पूरा कर इन्हें अधिक उत्पादक गुणवत्तायुक्त बनाना है।

अतः इस प्रकार से कहा जा सकता है कोविड-19 महामारी के बाद उत्पन्न स्थिति को देखते हुए माननीय प्रधानमंत्री ने आत्मनिर्भर भारत का जो मंत्र दिया उससे भारत में निर्यात विनिर्माण, तकनीक एवं संचार के क्षेत्रों में भारत के लिए एक अवसर के रूप में है। इसलिए आत्मनिर्भर भारत के लिए हम रणनीतियों का सहारा लेकर बेहतर भारत बनाने में चुनौतियों को अवसर में बदल सकते हैं। महामारी का यह संकट हो सकता है भविष्य के लिए एक अच्छा अवसर प्रदान करे।

### संदर्भ-सूची

1. योजना जुलाई 2020, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
2. भारत 2020, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
3. कुरुक्षेत्र जुलाई 2020, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
4. श्री नरेन्द्र मोदी, राष्ट्र के नाम संदेश आज तक, 12 मई 2020।
5. लाल, एस0एन0 भारतीय अर्थव्यवस्था, सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, शिवम पब्लिशर्स
6. इंडिया टुडे डॉट इन, 5 अगस्त 2019

\* \* \* \* \*

## **The Historical Background of the Quit India Movement-1942 : Failure or Success**

*Dr. Mansoor Ahmad Siddiqui\**

**Abstract :** This article is related with great Quit India Movement of Mahatma Gandhi for independence of India. There were many controversies that whether this movement was successful or not. Hence, this article brings out the fact through data collected from various sources. It reveals the challenges faced during the Quit India Movement and analyse its success and failure. The present paper also explains the problem faced by Indian leaders and the people of Indian during this movement and the reason of widening the gap between the Muslim League and the Congress. The main objective of the article is to make aware the scholars and academicians regarding this movement. The article make a path to carry out further researches on this topic to so the way to new generation.

**Introduction :** The Quit India Movement has its own place in history of the independence of India. When Gandhiji was back from the South Africa, the World War-I was going on. He co-operated in this war on the assurance of the British Government that he will be given the self-decision making power after war. But after war the Indians were gifted with Rowlatt Act, Jallianwala Bagh Massacre, policy of Reduction in Army and above all the worst economic condition of the country. The World War-II began on 3rd September, 1939. This time the Britain was under rising pressure of its war partners and needed maximum physical, financial and administrative support from Indians. Thus, it was tactically informed through Lord Linlithgow to frame the Indian Constitution immediately after the war. This demand of making of the constitution had been raised many times earlier through meetings, conferences, movements, requests, appeals, proposals and reminders time to time. But the Government instead of taking initiative always became hard of hearing. Thus repeated request of freedom and framing of the Indian constitution was converted in repeated denial by the British enforced the Indian leaders for Quit India Movement.

**Background of the Quit India Movement :** The Gandhi was preacher of 'Ahinsa Parmo Dharma' and always advocated the philosophy of non-violence. Because of this faith and believe only he defeated the challenges of the revolutionary and left wing leadership within the Congress party in 1938-1939. But, World-II broke out in September 1938, which changed the total political scenario. Taking moral responsibility, the Gandhiji became little reluctant not to disrupt the war efforts until the June, 1942. But when question was raised about division of the country either on communal basis or religious basis he always stand against it. The important thing was that when the World War-II started the maximum Indian leaders were behind the bars and the Government was in an urgent need of support and cooperation from Indians as the Japanese attack on the Pearl Harbour was a great set back to the Britain as well as to the America. To fulfil his need, the British Government released the Indian leaders. When the Japanese

\* *Assistant Professor, Department of History G. F. College, Shahjahanpur*

forces reached Rangoon in March 1942, then under pressure of the American President Mr. Roosevelt, then British Premier Winston Churchill send Sir Stafford Cripps to India. He gave an offer to Indian leaders which is known as 'Cripps Offer'. This offer was rejected by the Indian National Congress and Muslim League because firstly offer gave the privilege to Provinces whether join or not to join the Indian Union secondly, the Constitution-making body should sign a treaty with Government to protect the racial and religious minorities. On these points even Gandhiji became angry and he told the officials that now nation wants that 'the Government should transfer all the powers'. For Cripps Offer he told: 'Post-dated cheque on crashing bank.' On the other hand the country was facing crucial economic condition due to war. Thousands of starved people crossed the Burma border and rehabilitated in India. The trains those were bringing the wounded soldiers from the Assam-Burma border were briefing the story of cruelty. This was the time that Gandhiji told: 'for British there is no midway to leave or not to leave India'. Means they have to quit the India.

**Wardha Resolution and Quit India Movement :** To discuss the Cripps offer and the current war situation an immediate meeting was called in April 1942. In this meeting it was decided that the Congress will neither become hurdle in the war nor it will support. It means the Congress will non-cooperate in war peacefully. But due to the war situation, the people lost their trust in the British Government and started withdrawing their deposits from the post-office and banks and other valuables. Visualising the condition of the people, the Indian National Congress called an urgent meeting on 14th July, 1942 at Wardha. In this meeting Gandhiji said: 'this problem can be sorted out if British people leave the India'. His idea won the support of the majority. Again a meeting of Congress committee was held on 7th August, 1942, in Bombay about the Wardha resolution and after finalising the agenda, the Committee passed the resolution on 8th August, 1942, about Quit India Movement. It reached on conclusion after a lot of discussion and debates. The resolution declares: 'the immediate ending of British rule in India is an urgent necessity, both for the sake of India and for the success of the cause of the United Nations.... India, the classic land of modern imperialism, has become the crux of the question for, by the freedom of India will Britain and the United Nations be judged, and the peoples of Asia and Africa be filled with hope and enthusiasm. The ending of British rule in this country is thus a vital and immediate issue on which depends the future of the war and the success of freedom and democracy. A free India will assure this success by throwing all her great resources in the struggle for freedom and against the aggression of Nazism, Fascism and Imperialism'. In this historic meeting of August, everybody agreed on the resolution. In this connection some of the leaders were ready to start the Quit India Movement at once because of the failure of the Cripps Mission and some by next month. In meeting, the C.W.C. gave its strong view to the British Government to free the India. Later Gandhiji became very aggressive and spoken 70 minutes on this issue at the night of 8th August, 1942. In his speech Gandhiji said: 'You have only placed all your powers in my hands... I, therefore, want freedom immediately, this very night, before dawn, if I can be had....Fraud and untruth today are stalking the world ...You may take it from me that I am not going to strike or bargain with the Viceroy for militaries and salt tax or a like. I am not going to be satisfied with anything a short of complete freedom.....Here is a Mantra, a short one that I give you. You may imprint it on your hearts and let every breath, of yours give expression to it. The Mantra is: 'Do or Die'. We shall either free India or die in the attempt; we shall not live to see the perpetuation of our slavery'. Thus Gandhiji created a history by giving such a slogan. In the words of Indra Vidyavachaspati: 'Gandhiji was talking on that day in such a way, as the God is speaking from his soul'. About the movement Jawaher Lal Nehru said: 'we are going to play with fire'. Dr.Rajendera Prasad Said: 'This time we should be ready to take the bullet on our chest and face the cannon'.

**Starting of the Quit India Movement :** Undoubtedly the decision of Quit India Movement was not sudden but it was taken after long discussion, debate and then planning. For this movement Gandhiji was not in hurry. He made an international pressure by writing letters to the American President Roosevelt and Chinese Marshal Chiang Kai Shaike. He told: 'I am in no hurry about movement and expecting to pressurise the British Government for the freedom of India'. In Harijan paper Gandhiji wrote: 'We know that if India does not become free now the hidden discontent will burst forth, into a welcome to the Japanese should they affect a landing. We feel that such an event would be a calamity of the first magnitude. We can avoid it if India gains her freedom'. (Harijan, 2nd August 1942). But before the final decision of 8th August, 1942, the government started its repression and struck hard on the Congress. Because on 8th August, itself the Viceroy, Linlithgow instructed through letter to all the Governors that: 'I feel very strongly that the only possible answer of this is declaration of war'.

**Arrest of the Prominent National Leaders :** The famous Quit India Movement was about to start but early morning of the 9th August, 1942 the all the prominent leaders of the Congress were arrested and other leaders like: Jai Prakash Narayan, Ram Manohar Lohia, Aruna Asaf Ali, and Sucheta Kripalani etc. went to underground and carried out the movement from there. The British Government once again declared the Congress party as illegal. As the news of ban of the Congress and arrest of the prominent leaders spread, the people protested and expressed their anger. The main reason was that now they become party less and leaderless. The party workers were not aware that where their leaders are sent. By this act of the government they become more arrogant. After quite sometimes only they came to know that Gandhiji is detained in Aga Khan Palace Poona, and the members of Congress Working Committee, J. L. Nehru, Patel, Molana Abul Kalam Azad, G. B. Pant Dr. Syed Mehmood, Acharya Kripalani and Prafull Ghosh were kept in fort of the Ahmadnagar. Dr. Rajender Prasad arrested and sent to Patna jail. All these leaders were detained till 15th June, 1945.

**Reaction of the Indians about August Revolt :** As soon as the prominent leaders were arrested the Government started torturing the people. But public went on strikes in industries, educational institutions, markets, and demonstrated against the arrest of their leaders. They become more violent and attacked the Government offices such as police and railway stations, P. & T. Offices, courts and also cut the supply wires. In some of the rural areas individuals blew up the bridges and removed the tracks. They did not stop here in many places revolutionaries seized the control from the British officials and wherever they got the chance, formed the parallel Government. The similar strikes, agitations, processions were continued on 10th August, 1942 in Kanpur, Allahabad, Varanasi, Azamgarh, Ballia and Gorakhpur in U.P., Patna, Gaya, Bhagalpur, Saran, Purnea, Shahabad, Muzaffarpur and Champaran in Bihar, and Poona in Maharashtra, Ahmedabad (Gujrat), and Delhi. The official reports says in first week of the arrests of the leaders nearby 250 railway stations and more than 500 post offices were damaged and destroyed and 150 police stations were attacked. They shouted 'Gandhiji ki Jay', 'Gandhiji ko Chhod do', 'Angrezo Bharat Chhodo' and 'Angrez Bhaag Gaya', 'Thana Jalao', 'Station Phoonk Do'. The national flags were forcibly hoisted on the Government buildings. The Government banned the press the National Herald and Harijan newspapers were sealed. In this agitation everybody participated from all over the country.

**Repression of the Government on Revolutionaries :** The Government took drastic action to suppress the movement. Even the British officials used the bullets, L.M.G. bombs and rifles in which more than 10,000 people died in firings. The Government report said 1,928 people died and 3,215 wounded. In this connection various Committees gave different reports of the casualties and wounded

people. In this incident thousands of the agitators arrested, detained and sent to jail. Many people were beaten up very badly and humiliated. In the words of Michale Brecher: 'In short everywhere Government repression was very harsh and police-state was established to deal with the danger, which constituted the gravest threat to British rule since the rebellion of 1857'. The Jawaher Lal wrote: 'All conventions and subterfuges that usually veil the activities of Governments were torn aside and only naked forces remained as the symbol of authority'. Hence the Government got success to suppress the activities. But between these periods the underground leaders consolidated the social and political network with other prominent members. The socialist leader J. P. Narayan escaped from jail and begun to emerge with Aruna Asaf Ali, Ram Mañohar Lohia, Sucheta Kripalani, and R.P. Goenka etc.

**Roles of the Under Ground Leaders and Fast of Mahatma Gandhi :** Most of the prominent leaders were arrested on 9th August, 1942. But, some of the leaders went underground and started playing an active role through small groups especially in Bombay, Baroda, Poona, Satara and states specially Gujarat, Karnataka, Kerala, Andhra, U. P., Bihar and Delhi. They leaders were supported socially, morally and politically from all sections of the people. Even, the students and unknown people worked as helpers, messengers and couriers. In rural areas police use to ask the secret movements of activists but villagers, Chaukidars and government peon never shared the information. The drivers of trains, trucks, buses and other small vehicles use to despatch the local lethal weapons, arms and ammunitions, bombs and other required items to the concern person and particular place across the country. Even the Government officials also assisted in this regard. The special roles were played by the congress radio which operated from the Bombay city. The Ram Manohar Lohia's daily broadcast can be heard on this radio. The Aruna Asaf Ali and Sucheta Kripalani were two strong leading women those have shouldered the responsibility with their male counterpart.

The Quit India Movement was rejected in mid-way of the war by British Crown. Gandhiji was imprisoned in the Aga Khan Palace Poona, still he was active. He demanded from the British Government a transparent enquiry of all the events of the movement but the Government instead of accepting the request it asked the Congress to take back wardha Resolution. But Gandhiji straight way refused as he was fed-up with the violence of the Government and decided to observe the 21 days fast for self purification from 10th February 1944 during detention itself. On 22nd February his condition became very serious but the Government instead of taking care arranged the Sandal wood and Ghee in Aga Khan Palace and prepared to let him die there itself rather than giving any relaxation. The people of India appealed the Government for the life of Mahatma but it arranged for his funeral and asked the army to get ready for emergency. But the preparation and the plan of the government to cremate the Gandhi have gone in vain. As he completed his 21 days fast vey successfully. Later, the Government realised and released him on 9th May, 1944. Other leaders were released gradually up to June 1945.

**Was Quit India Movement Failure or Success? :** It is still dilemma that whether the Quit India Movement was Failure or Success. The question of failure and success of the movement always arose. It was observed that during the movement most of the servicemen were very faithful to the British Government. The report says that in a Police Company of 20,000 policemen, 1000 were British people those have supported the Government because they were aware that if they will not support they will be killed. Hence the government got full support of these servicemen to crush the movement. When the Quit India Movement about to start it was not communicated to all the leaders and party workers and even to the general public also. So, they were not mentally and physically ready for the



movement. This was the reason that lack of planning caused the life of thousands of people. The arrest of prominent leaders and underground leaders paid a huge loss to Indians as the public took the movement in their hands and went on rampage. Even these leaders were not having the better resources and technology comparing to the British Government. The historical evidence reveals that the Government did not hesitate in throwing bombs and firing with machine guns and rifles on the crowd. The British Officers threatened the Indian soldiers also that if they do not fire on crowd they will be fired on the back. That is why 20,000 Indian police personnel were controlled by the 1000 Englishmen. Thus the Government utilised the Indian resources under pressure. The lack of funds was another weakness of the leaders. Undoubtedly the Movement was launched immediately as the leaders wanted to pressurise the government during the war. The entry of Japan in Burma shaken the British Government and they require physical as well as economic support from the Indians. That was the reason that Sir Stafford Cripps brought the Offer. The leaders of Muslim League were not taken in confidence by the Congress. It developed the communal rift between the Jinnah's Muslim League with the Congress. Therefore on this moment an urgent attention was required to avoid further conflict.

In fact the World War-II was going on hence it was the right time and the situation to start the Quit India Movement. As in beginning itself all the prominent leaders were in jails still the people of all caste and creed, sects, race, community and business participated very actively to overthrow the British rule. The government tried to suppress the movement and throw the bombs and done many inhuman acts but it failed to destroy the burning flame of the nationalism. In the words of Amba Prasad: 'this moment prepared the background for the independence of India'. The main benefit of this movement was that India developed a very good International Relation and due to this public and leaders of many foreign countries criticised the dual policies of the England. The India got a valuable support from America. Even the many British people were in favour of the freedom of India from the British Government. The great achievement was that the American President Franklin D. Roosevelt and Chinese Martial Chiang Kai Shaik took personal interest and supported the Indian Independence. There may be some lacuna in starting of the movement but because of this movement only temporary government was formed in district Ballia and everybody fought together for freedom of India.

**Conclusion :** The Quit India Movement was really historic as the main aim of this movement was to pressurise the British to leave the country immediately and make the India independent. It was also launched because the Japan troops reached up to Burma so the interest of India should be secured from the invasion. Besides this the dissatisfaction of Cripps Offer and socio-economic condition of India also compelled the Gandhiji to be aggressive, so he gave the slogan of 'Do or Die' during this movement. After lots of sacrifices only we were able to convince the international community for our support. Like previous movements Gandhiji was the sole leading leader and after lot of physical (Fast) and communal violence problem he came out with flying colours. The special event of the Quit India Movement was that it brought people of all walks of life together to achieve independence. The Quit India Movement was such a deep rooted last pre-independence movement that it rooted out the foreign rule.

#### REFERENCES

1. National Movement and Constitution of India. By Dr. S.C. Singhal
2. Indian National Movement By K.L. Khurana
3. History of Modern India By Bipan Chandra
4. A Brief History of Modern India By Rajiv Ahir (I.P.S.)

\* \* \* \* \*

## प्राचीन काल में चर्मकारों की सामाजिक स्थिति : छठी से बारहवीं शताब्दी ईसवी के काल के विशेष संदर्भ में

डॉ० मीनाश्री यादव\*

भारतीय समाज में चर्मकार प्राचीन काल से ही पृथक् एवं अस्पृश्य जाति के रूप में रहते आ रहे हैं। इस समुदाय का मुख्य कार्य पशु चर्म से जुड़ा हुआ था। पूर्वमध्य कालीन (छठी से बारहवीं शताब्दी ईसवी) समाज में शूद्रों के साथ ही मिश्रित वर्णों से उत्पन्न, हीन व्यवसाय करने वाले समुदाय भी थे। जीवनयापन के लिए अपवित्र, घषणित और हिंसा प्रधान कार्य को अपनाने के कारण ये जातियाँ 'अन्त्यज' कही जाती थीं। अस्पृश्य होने के कारण इन जातियों को ग्राम से बाहर रहना पड़ता था। यह वर्ग शेष वर्णों के साथ असम्बन्धित था, पर केवल शूद्रों के साथ सम्बन्ध रखने की इसे पूर्ण स्वतंत्रता दी गई थी।<sup>1</sup> इस वर्ग के अन्तर्गत रजक, चर्मकार, नट, डलिया या टोकरी बनाने वाले (धरकार), नाविक या मल्लाह (धीवर), मछुआरे, षिकारी, बुनकर आदि आते थे। इनके अतिरिक्त हांडी, डोम्ब, चाण्डाल व बघतौ भी अन्त्यज की ही श्रेणी में आते थे।<sup>2</sup> 400-629 श०ई० तक के काल के चीनी यात्रियों के विवरण अन्त्यजों की स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। चीनी यात्री फाह्यान (गुप्तकाल) तथा अल्बरूनी (11वीं शताब्दी) ने अन्त्यजों की तालिका में चाण्डाल तथा डोम्ब को सबसे निम्न स्तर पर रखा है।

डोम्ब के अतिरिक्त चर्मकार की भी अस्पृश्यता का उल्लेख गुप्त-काल के ग्रन्थों में नहीं मिलता। पूर्वमध्य काल के ग्रन्थ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में अस्पृश्य जातियों की जो तालिका दी गयी है उसमें चर्मकार का पहला नाम दिया गया है। यह तालिका निम्नवत है—

1. चम्यरु (चर्मकार)
2. जन्तपीलग (तेली),
3. गच्छिय (गच्छिक),
4. चिम्पाय (रंगरेज),
5. कंसकार (कांस्यकार),
6. सीवग (कपड़ा सिलने वाला दर्जी),
7. गुआर,
8. भिल्ली,
9. धीवर (मछुआरे)।

अस्पृश्य जातियों के उच्च और निम्न के अनुक्रम में भी क्षेत्रीय अंतर दिखाई देता है। सामान्य रूप से इन जातियों में चाण्डाल को सबसे निम्न स्तर का माना जाता था पर वृहन्नारदीय पुराण<sup>3</sup> में चर्मकार को सबसे निम्न कहा है और अवरोही क्रम में चाण्डाल को सबसे ऊपर माना गया है। आर० सी० हाजरा के अनुसार वृहन्नारदीय पुराण की रचना 850-950 ई. के बीच उत्तरी भारत के किसी क्षेत्र में हुई थी।<sup>4</sup> राजस्थान में प्रणीत महेन्द्र सूरि के एक जनै ग्रन्थ नमर्दा सुन्दरीकथा<sup>5</sup> में चाण्डाल को निम्नतम तीन अस्पृश्य जातियों की तालिका में रखा गया है, पर चर्मकार को निम्नतम की उस श्रेणी में नहीं रखा गया है। पूर्वमध्यकाल में चर्मकारों के कई उपवर्गों में विभक्त होने के उल्लेख भी मिलते हैं। इन्हें पादुकाकृत या पादुकृत आरै चर्मकृत या चर्मकार कहा गया है।<sup>6</sup> यहाँ जूते बनाने वाले और चमड़े का कार्य करने वाली दो उपजातियों का विवरण मिलता है। जैन ग्रन्थ कथाकोष प्रकरण (विक्रम संवत् 1108) में श्रेणी सदस्यों (श्रेणीग्या) यथा स्वर्णकार, कुम्भकार, लोहार, रजक व अन्य कर्मकारों व शिल्पकारों (शिल्प-कर्मकार-समुदाय) को सामाजिक वर्गों के अनुक्रम में पांचवें स्थान पर 'अहमा' वर्ग में और चाण्डाल व पशु पक्षियों को मारने से सम्बन्धित अपवित्र व्यवसाय करने वालों को छठे आरै अन्तिम वर्ग 'अहमाहमा' की श्रेणी में रखा गया है।<sup>7</sup>

पूर्व मध्यकाल में सामन्त प्रथा का उदय होता है। कोलबर्न के अनुसार अन्य देशों में सामन्त प्रथा के उदय से वहाँ के सामाजिक वर्गों की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। भारत के संदर्भ में सामाजिक वर्गों का अस्त व्यस्त होना नहीं दिखाई देता है। पर फिर भी यहात्र के सामाजिक वर्गों के समीकरण पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है पहले

\* एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

के सामाजिक स्तरीकरण में निम्न स्तर में आने वाले शूद्र और अन्त्यजों की स्थिति सर्वत्र एक जैसी नहीं रही। अनेक स्तर वाले सामन्ती शासकों के वर्ग में किसी वर्ग से सम्बन्धित हो जाने पर उनकी प्रतिष्ठा सामन्ती समाज में बढ़ जाती और उनका सामाजिक स्तर और अधिक ऊँचा हो जाता था। सामन्ती अनुक्रम में जाति की अपेक्षा सामाजिक प्रतिष्ठा को अधिक प्रधानता दी जाती थी। कल्हण (12वीं शती) के ग्रन्थ राजतरंगिणी (4-62) में यह उल्लेख है कि चर्मकार को राजा के दरबार में सम्मिलित होने का कोई अधिकार नहीं था परन्तु हरिभद्र सूरि के ग्रन्थ समराज्यचक्र (8वीं शती) में एक आदिवासी शबर जो चर्मकार से भी निम्न सामाजिक स्थिति में था, सामन्त हाने के पश्चात् अन्य सामन्तों की भाँति सामन्ताधिपति के सम्बन्धी के रूप में जाना जाता था।<sup>9</sup>

उत्तरकालीन बौद्ध धर्म-वज्रयान एवं मंत्रयान-मुख्य रूप से इनके प्रभाव से धर्म सम्प्रदाय का उदय हुआ जिसे अधिकतर सामान्य लोग ही मानते थे।<sup>10</sup> ये अधिकतर समाज के निम्न स्तर से सम्बन्धित डोम्ब, चाण्डाल आदि अस्पृश्य लोग थे। पूर्वमध्यकाल में तांत्रिक धर्म भी जाति प्रथा की उपेक्षा करता था और वैदिक परम्परा का विरोध करता था।<sup>10</sup> इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पूर्व मध्यकाल में अनेक तत्र आचार्य<sup>11</sup> और सिद्धाचार्य शूद्र मछुआरे, चर्मकार, रजक, लकड़ी काटने वाले, लोहार, डोम्ब आदि थे। इस प्रकार तांत्रिक धर्म में चर्मकार आदि निम्न वर्ग के लोगों का अलगाव नहीं किया गया था। कलचुरि शासक हरिब्रह्म के काल के खलारी प्रस्तर अभिलेख में शुद्ध आचरण एवं विचारों से युक्त जस के पौत्र एवं शिवदास के पुत्र मोची देवपाल के द्वारा खलवाटिका ग्राम में मण्डप सहित नारायण मंदिर के निर्माण कराये जाने का उल्लेख मिलता है।<sup>12</sup> इससे तत्कालीन समाज में चर्मकारों के महत्वपूर्ण योगदान का पता चलता है। अभिलेखों में उनके द्वारा किये गये कार्यों के उल्लेख किये जाने से उनकी स्थिति सम्मानजनक प्रतीत होती है। सम्भवतः वे अपने कार्यों के साथ धार्मिक कार्यक्रमों में भी भाग लेते थे।

प्राचीन काल से ही चर्म उद्योग का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। चर्मकार समुदाय द्वारा विविध प्रकार की उपयोगी वस्तुओं को तैयार किये जाने के उल्लेख मिलते हैं। ऋग्वेदे में रथ के आस्तरण, घोड़े की लगाम, धनुष की प्रत्यंचा लटकाने के फन्दे आदि का निर्माण चर्मकारों द्वारा किये जाने का उल्लेख मिलता है।<sup>13</sup> चमड़े द्वारा बनाये जाने वाले चप्पल और जूतों को तैत्तिरीय संहिता में उपानह कहा गया है।<sup>14</sup> घरेलू उपयोग के लिये चमड़े की अनेक वस्तुयें बनाने वाले चर्मकार का स्थान समाज में महत्वपूर्ण माना गया था। जातक ग्रन्थों में भी चमड़े की रस्सी, जूते व छाते बनाने वाले चर्मकारों के वर्ग का उल्लेख मिलता है।<sup>15</sup> दुवाली (रस्सी) जूता आदि चमड़े की विभिन्न वस्तुयें बनाने वाले चर्मकारों का उल्लेख पाणिनी ने भी किया है।<sup>16</sup> कालान्तर में इनके संघों से लगता है कि चर्म उद्योग निरन्तर विकसित हो रहा था। जातकों व अन्य साहित्य में वर्णित श्रेणियों में चर्मकारों की श्रेणी का उल्लेख मिलता है पूर्व मध्यकाल में भी चर्म उद्योग का निरन्तर विकास हो रहा था। मार्कोपोलो<sup>17</sup> ने 12वीं शताब्दी में गुजरात के समृद्ध चर्म उद्योग का वर्णन किया है। बकरी, भैंस आदि पशुओं के चर्म के प्रयोग और उनके द्वारा बनायी जाने वाली सुन्दर चटाई व जूते आदि इस उद्योग के प्रमुख उत्पाद थे।

यद्यपि चर्मकारों को अन्त्यजों की श्रेणी में रखा गया था और समाज में उन्हें अस्पृश्य माना गया, परन्तु फिर भी हेय और घृणित माने जाने वाले कार्य को करते हुये विविध प्रकार की उपयोगी वस्तुओं को तैयार करके समाज के विकास में इन्होंने अपना महती योगदान दिया है।

### सन्दर्भ-सूची

1. सी. एल. सोनकर, भारत में अस्पृश्यता एक ऐतिहासिक अध्ययन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 175
2. बी.एन.एस. यादव, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेन्चुरी, इलाहाबाद, 1973, पृ. 45-46
3. बृहन्नारदीयपुराण, 30-2, दृष्टव्य हाजरा, स्टडीज इन दि उपपुराण, जिल्द 1, पृ. 324
4. स्टडीज इन दि पुराणिक रेकार्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, द्वितीय संस्करण, देलही, 1975, पृ. 129
5. दशरथ शर्मा (सम्पादक), राजस्थान थ्रू दि एजेज, जिल्द 1 (में उद्धृत), पृ. 430 फुटनोट 2, बी.एन.एस. यादव, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेन्चुरी, पृ. 46-47
6. अमरकोश, अभिधानचिन्तामणि एवं यादव प्रकाश की वैजयन्ती।
7. बी.एन.एस. यादव, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेन्चुरी, इलाहाबाद, 1973, पृ. 54

8. बी.एन.एस. यादव, सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इंडिया इन द ट्वेल्थ सेन्चुरी, इलाहाबाद, 1973, पृ. 174
9. एस. दासगुप्ता, आब्सर्वोर रिलिजस कल्ट, भूमिका, पृ. XXXIX; बी. के. सरकार, द फोक एलीमेन्ट इन हिन्दू कल्चर, पृ. 221, उद्धृत द्वारा बी.एन.एस. यादव, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इंडिया, पृ. 377, (फुटनोट 470)
10. वुडरॉफ, 'इंट्रोडक्शन टु तंत्र शास्त्र', पृ. 77
11. कौलज्ञान निर्णय (संपादित पो. सी. वागची) पृ. 17, उद्धृत द्वारा बी.एन.एस. यादव, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इंडिया, द्वितीय संस्करण, 2016, पृ. 58 (फुट नोट 506)
12. कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इंडिकेरम्, जिल्द 4, पृ. 544, उद्धृत द्वारा सत्य प्रकाश श्रीवास्तव, कलचुरि अभिलेखों का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन, 2010, पृ. 133, फुटनोट 20
13. ऋग्वेद 647.26; 10:102:2
14. तैत्तिरीय संहिता, 5.4.4.4
15. जातक 5.45
16. पाणिनी, 5.1.15
17. यलू , मार्कोपोलो, वाल्यूम 11, पृ. 383

\* \* \* \* \*

## पहाड़ी चित्रकला : एक परिचय

निकू राम\*

आत्माभिव्यक्ति मानव की सहज प्रवृत्ति है। आत्माभिव्यक्ति की इच्छा मानवीय अस्तित्व की मूलभूत आवश्यकता है। इस आत्माभिव्यक्ति के कई माध्यम हैं। उन्हीं माध्यमों में से एक माध्यम है— चित्रकला। रेखा, वर्ण एवं रंगों के माध्यम से विचारों तथा भावों को अभिव्यक्त करने की शैली को चित्रकला कहा जाता है।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में मध्ययुग का विशेष स्थान है। इस युग की कला सम्बन्धी योगदान को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

- मुगल शैली के चित्र
- राजस्थानी शैली के चित्र
- पहाड़ी शैली के चित्र

हिमालय की घाटी में स्थित वर्तमान हिमाचल प्रदेश, पंजाब तथा जम्मू के पर्वतीय क्षेत्रों में विकसित हुई चित्रकला को पहाड़ी चित्रकला कहा जाता है। पहाड़ी चित्रकला अवधारणा तथा भावनाओं की दृष्टि से राजस्थानी चित्रकला से सामीप्य सम्बन्ध रखती है। यह पहाड़ी चित्रकला न तो आकस्मिक रूप से विकसित हुई और न ही यहाँ के स्थानीय लोगों के लोकव्यवहार से भिन्न थी। यह कला हिमालय की तलहटियों के गीत, संगीत, सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों से सराबोर होकर यहाँ के लोकजीवन की भावनाओं एवं अनुभवों की गहराइयों में रची-बसी थी।

**पहाड़ी चित्रकला का अभ्युदय काल :** एक बहुचर्चित धारणा के अनुसार जम्मू के बसोहली से लेकर हिमाचल प्रदेश के सभी क्षेत्रों में चित्रकला का शुभारम्भ सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ है। इतिहास में यह समय मुगलों के पतन, मुगल प्रशासन में असंतोश और अशांति का समय रहा है। विद्वानों का मत है कि मुगल साम्राज्य के बिखर जाने पर वहाँ के चित्रकारों ने पहाड़ी क्षेत्रों में शरण ली तथा यहाँ की चित्रकला को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया। यह कथन पूर्णतया उचित नहीं है। इस कथन का खंडन कई विद्वानों द्वारा किया गया है, उन्हीं में से एक श्री मौलू राम ठाकुर ने इस कथन का खंडन करते हुए कहते हैं— “यह सत्य है कि पहाड़ी क्षेत्र में चित्रकला सत्रहवीं शताब्दी के अंत और अठारवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अपनी यौवनावस्था में थी परन्तु यह तर्क युक्तिसंगत नहीं है कि पहाड़ी चित्रकला का आरम्भ ही उन्हीं दिनों हुआ और उससे पूर्व इसका कोई आधार नहीं था।” जब प्रदेश के अनेक मंदिरों और भवनों की वास्तुकला, मूर्तिकला और नक्काशी कला आठवीं-नौवीं सदी में होने की विद्वानों में सहमति है तो यह कहना सर्वथा अनुचित नहीं है कि इन कलाओं के साथ-साथ चित्रकला भी यहाँ के लोकजीवन में प्राचीन समय से पनपती रही है। हिमालय का प्राकृतिक सौन्दर्य, शीतलता और पावनता आदिकाल से ही कलाकारों की कल्पनाशीलता तथा कलासृजनता को प्रोत्साहित करती रही है।

वर्तमान में पहाड़ी चित्रकला के उपलब्ध प्राचीनतम चित्रों में गुलेर रियासत के राजों रूप चंद, मान सिंह, विक्रम सिंह और राज सिंह तथा बसोहली के राजा संग्राम पाल के व्यक्ति-चित्र हैं। गुलेर के इन राजाओं का समय सन 1610 से सन 1675 ई. और संग्राम पाल का समय 1635-73 ई. रहा है। इस काल तक मुगल राज्य का पतन नहीं हुआ था और न ही वहाँ की परिस्थितियाँ इतनी असंतोषजनक थीं कि जिनके कारण कलाकारों को पलायन करने के लिए विवश होना पड़ा हो। वस्तुतः पहाड़ी चित्रकला बहुत पुराने समय से विकासोन्मुखी थी और अनेक चित्रकार अपने राजाओं के संरक्षण में चित्रकला की परम्परा को संजोए हुए थे। इस तथ्य की परिपुष्टि हेतु कुछ दृष्टान्त यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं यथा —

\* जिला भाषा अधिकारी, हमीरपुर

बसोहली के राजा कृपाल पाल के समय (1678–1695) में देवीदास नामक चित्रकार ने संस्कृत काव्य ग्रन्थ रसमंजरी पर आधारित एक चित्र-शृंखला राजा के लिए उपहारस्वरूप प्रदान करने के लिए बनाई थी। इस चित्र-शृंखला के अंतिम चित्र के पीछे राजा कृपाल पाल, चित्रकार देवीदास तथा तिथि माघ मास मित सप्तमी विक्रम संवत् 1752 (सन 1695 ई.) अंकित हैं।

पहाड़ी चित्रकला के आरम्भिक कलाकारों ने स्वयं को त्रषाण कहा है यथा –

उग्रसेन की राजा दित्ता श्री मीयें समसेर सिंधे लिखाया त्रषाण लहरुए लिखया सं. 33 माघ प्र. 25 सबही नजर दीती।  
और भी–

त्रषाण चेतरे

गोलू नीकू ठाकरु देवीदास के बेटे कृपाली के पोते रतो के प्रपोते।

यहाँ कुछ विद्वानों का मत है कि यह चित्रकार तरखान अर्थात् बढई जाती से सम्बन्ध रखते थे अतः इन्होंने स्वयं को त्रषाण शब्द से संबोधित किया है किन्तु ऐसा सर्वथा सत्य नहीं है गुलेर के प्रसिद्ध चित्रकार सेऊ ब्राह्मण परिवार में जन्में थे और उनके बेटे माणकू ने स्वयं को त्रषाण कहा है। इससे यह स्पष्ट है कि त्रषाण शब्द चित्रकार के लिए पहाड़ी भाषा में प्रयुक्त शब्द है जो शुद्ध रूप से यहाँ का है। अतः पहाड़ी चित्रकला मूल रूप से यहाँ के लोकजीवन में रची-बसी थी।

इन उपर्युक्त नामों से भी यही सिद्ध होता है कि ये सभी चित्रकार यहाँ के मूल निवासी थे एवं इनका मैदानों से आए चित्रकारों से कोई सम्बन्ध नहीं है। पहाड़ी भाषा ऊकार बहुला भाषा है ऐसा भाषा वैज्ञानिकों का स्पष्ट मत है अतः ये सभी नाम ( गोलू, नीकू, ठाकरु, सेऊ, लहरु, माणकू, पुन्नू आदि ) पहाड़ी भाषा के हैं तथा इस प्रकार के नाम इस क्षेत्र से बाहर कहीं भी व्यवहार में नहीं मिलते हैं।

परिणामस्वरूप उपर्युक्त दृष्टान्तों से यह सिद्ध होता है कि पहाड़ी चित्रकला मूल रूप से यहाँ के लोकजीवन में रची-बसी थी और सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व यहाँ के लोकव्यवहार में थी जो सत्रहवीं शताब्दी में अपने चरमोत्कर्ष पर थी और इसी शताब्दी में मैदानों से आए चित्रकारों के कारण इस कला में मुगलशैली का प्रभाव भी आया घ इस मत को पुष्ट करते हुए डा. एम्. एस. रंधावा कहते हैं कि— “ बसोहली शैली की चित्रकला पहाड़ों की लोक कला और मुगल शैली का समागम है।”

**पहाड़ी चित्रकला की विषयवस्तु**—पहाड़ी चित्रकला की विषयवस्तु बहुत विस्तृत रही है। इस विषयवस्तु को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है—

**पुस्तक आधारित विषयवस्तु—**

- बारहवीं शताब्दी में रचित जयदेव की पुस्तक गीतगोविन्द की सामग्री
- केशवदास रचित रसिकप्रिय की सामग्री
- पंद्रहवीं शताब्दी में कवि भानुदत्त विरचित रसमंजरी की सामग्री
- कवि बिहारी विरचित सतसई की सामग्री
- रामायण एवं महाभारत आधारित सामग्री
- भागवत—पुराण के दशम स्कन्ध की कृष्ण बाललीला तथा विलासलीला

**प्रणय आधारित विषयवस्तु**—कला समीक्षकों ने पहाड़ी चित्रकला का मुख्य प्रयोजन प्रणय बताया है और यह मत पर्याप्त सीमा तक सत्य भी है घ विद्वान कला मर्मज्ञ कुमारस्वामी का कहना है कि “ चीन की चित्रकला ने भूदृश्य को प्रदर्शित करने में जो सफलता प्राप्त की है वह सफलता यहाँ मानवीय प्रणय को प्रस्तुत करने में प्राप्त की है।”

राधा—कृष्ण, शिव—पार्वती, नल—दमयन्ती, उषा—अनिरुद्ध, कृष्ण—गोपियाँ, सुन्नी—भुन्खू इन सभी से सम्बन्धित चित्र प्रणय के ही उपहार हैं। इन चित्रों में स्त्री—पुरुष का प्रणय ही प्रदर्शित है।

**धर्म आधारित विषयवस्तु**—पहाड़ी चित्रकला प्रणय के साथ साथ धर्म आधारित भी है। राम, कृष्ण और शिव को अपना आराध्य देव मानकर उनके चित्र बनाने के पीछे धर्म और धार्मिक प्रेरणा ही मूल आधार है। इसके अतिरिक्त रामायण एवं महाभारत आधारित चित्रशृंखलाएँ भी रामभक्तों और कृष्णभक्तों की आस्थाओं की अभिव्यक्ति करती हैं।



**प्रकृति एवं संस्कृति आधारित विषयवस्तु**—पेड़-पौधे, वृक्ष आदि वनस्पतियों के साथ-साथ पहाड़ी चित्रों में पशु-पक्षियों का भी सुंदर निरूपण हुआ है। इसके अतिरिक्त पुरुषों के सिर पर पगड़ी, तंग पजामा या धोती, घघानुमा चोला, कुल्लू की वेशभूषा तथा भरमौर के गद्दी जनजाति की वेशभूषा का चित्रों में पर्याप्त समावेश है जो यहां की संस्कृति के द्योतक हैं।

**पहाड़ी चित्रकला का क्षेत्र**—पहाड़ी चित्रकला जम्मू से टिहरी और पठानकोट से कुल्लू (वर्तमान लाहुल-स्पीति) तक लगभग 1500 वर्ग मील क्षेत्र में फैली हुई थी। उस समय इस क्षेत्र में लगभग 38 कलाकेन्द्र थे जिनमें से गुलेर, कांगड़ा, नूरपुर, सुजानपुर-टीहरा, नादौन, चंबा, मंडी, सुकेत, बिलासपुर, अर्की, नाहन, कोटला, जुंगा तथा जुब्बल प्रमुख थे। इन कला केन्द्रों में जिन शैलियों ने जन्म लिया वे बसोहली शैली, गुलेर शैली, कांगड़ा शैली, मंडी शैली, चंबा शैली, बिलासपुर शैली, तथा कुल्लू शैली आदि नामों से प्रसिद्ध हुई। ये सभी शैलियां पहाड़ी चित्रकला की प्रमुख शैलियाँ थी।

### पहाड़ी चित्रकला की प्रमुख शैलियाँ

**बसोहली शैली**—पहाड़ी क्षेत्र में चित्रकला का प्रारम्भिक केंद्र बसोहली था। इसका केंद्र जम्मूकश्मीर के कठुआ जिले की बसोहली तहसील में था। अपनी कलात्मक श्रेष्ठता और राजसी संरक्षण द्वारा पोषित बसोहली चित्रकला को आज चित्रकला की एक जोरदार, साहसिक, कल्पनाशील, अपरंपरागत और कलात्मक रूप से धनी शैली में शुमार किया जाता है। सत्रहवीं और अठाहरवीं सदी की शुरुआत में प्राथमिक रंगों का अधिक प्रयोग और विशेष प्रकार के चेहरे इस शैली की चित्रकला का प्रमुख गुण था, जो पश्चिम हिमालय की तलहटी में यानि जम्मू और पंजाब में अधिक प्रचलित था। इस शैली के शुरुआती चित्र राजा कृपाल पाल (1678–1693) के समय के हैं। राजा कृपाल पाल के संरक्षण में देवीदास नामक चित्रकार ने 1694 ई. में रसमंजरी को आधार बनाकर लघुचित्रकला का निष्पादन किया। बसोहली से शुरु होकर चित्रकला की यह शैली मनकोट, नूरपुर, कुल्लू, मंडी, सुकेत, बिलासपुर, नालागढ़, चंबा, कांगड़ा और गुलेर सहित सम्पूर्ण पहाड़ी रियासतों में फैल गई। बसोहली चित्रकला का पहला उल्लेख 1921 में प्रकाशित भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की वार्षिक रिपोर्ट में है।

**गुलेर शैली-कांगड़ा शैली**—यह सर्वथा चर्चा का विषय रहा है कि गुलेर शैली और कांगड़ा शैली एक ही शैली के पर्यायवाची हैं या दोनों अलग अलग शैली हैं। वस्तुतः इस शैली ने एक लम्बी यात्रा की है जिसमें कई पड़ाव आए और उन्हीं पड़ावों के चलते इसके नाम बदलते रहे।

**कांगड़ा शैली का प्रारम्भिक काल (गुलेर शैली नाम का प्रचलन काल)**—इस शैली का प्रादुर्भाव एवं पालन-पोषण गुलेर में ही हुआ जिस कारण इसका प्रारम्भिक नाम गुलेर शैली पड़ा। गुलेर चित्र शैली की नींव राजा दिलीप सिंह (1695–1730) के समय में सत्रहवीं शताब्दी में हुई। राजा गोवर्धन सिंह (1730–1773) के समय इसका पर्याप्त लालन-पोषण हुआ। गुलेर रियासत कांगड़ा के दक्षिण में स्थित होने के कारण मैदानी क्षेत्रों के अधिक समीप था जिस कारण प्रारम्भिक काल में इस शैली में पंजाब और मुगलशैली का सम्मिश्रण भी बना रहा।

**कांगड़ा शैली का स्वर्णिम युग (कांगड़ा शैली नाम का प्रचलन )**—जब गुलेर शैली पर्याप्त निखार को प्राप्त कर चुकी थी तब कुछ चित्रकार यहाँ से कांगड़ा घाटी में प्रवेश कर गए। कांगड़ा घाटी में कुछ स्थानीय विशेषताओं को आत्मसात करते हुए यह चित्रकला कांगड़ा शैली के नाम से अभिहित होकर आविर्भाव में प्रतिष्ठित हुई। गुलेर शैली अपने अंतिम चरण में कांगड़ा शैली के रूप में विकसित होती देखी जा सकती है। महाराजा संसार चंद का कला प्रेमी होना पहाड़ी चित्रकला के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। महाराजा संसार चंद ने सम्पूर्ण लयात्मकता के साथ पहाड़ी चित्रकला का संरक्षण एवं संवर्द्धन किया। महाराजा ने अपनी रियासत की राजधानी सुजानपुर- टीहरा में बनाई तथा यहाँ पर रहकर पहाड़ी चित्रकला के साथ-साथ स्थापत्य आदि विभिन्न कलाओं का संरक्षण एवं संवर्द्धन किया। उनकी कला-प्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि भारत ही नहीं अपितु विश्व के कई संग्रहालयों में राजा संसार चंद के शासनकाल में बने चित्र देखने को मिलते हैं। महाराजा संसार चंद का शासन काल कांगड़ा शैली का स्वर्णिम युग था।

**कांगड़ा शैली की वृद्धावस्था**—महाराजा संसार चंद की सत्ता के सूर्यास्त के साथ-साथ कांगड़ा शैली के भविष्य के सम्मुख भी एक प्रश्नचिह्न लग गया था। इनके शासनकाल के बाद कुछ चित्रकार सिक्ख राज्य में तो कुछ ने जम्मू के डोगरा शासकों के यहाँ प्रश्रय लिया। धीरे-धीरे जिस कांगड़ा शैली की ख्याति सम्पूर्ण विश्व में थी वह अब धूमिल हो रही थी। किन्तु कांगड़ा शैली लोकव्यवहार में होने के कारण आज भी लोक में व्यवहृत है।

**मंडी शैली**—हिमाचल प्रदेश का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं छोटी काशी के नाम से विख्यात धार्मिक नगर है—मंडी। मंडी शैली अपने मंदिरों और मूर्तियों के साथ-साथ लघुचित्रकला के लिए भी प्रसिद्ध रही है। इस शैली पर बसोहली, कांगड़ा एवं गुलेर शैली का मिला-जुला प्रभाव रहा है किन्तु इसकी अपनी कुछ विशेषताएँ रहीं हैं जिस कारण इसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व रहा है। वास्तव में मंडी शैली का आरम्भ सोलहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में राजा केशव सेन ( 1595 ई.) के काल से माना जाता है। सत्रहवीं शताब्दी में मंडी शैली में निखार आना शुरू हो चुका था। श्री किशोरी लाल वैद्य तथा ओमचंद हांडा द्वारा विरचित पुस्तक “पहाड़ी चित्रकला” में मंडी की शैली पर पड़े प्रभावों को तीन भागों में विभाजित किया है—

**1894 तक लोक शैली का प्रभाव**—स्थानीय लोक शिल्प का प्रथम परिष्कृत रूप राजा केशव सेन के रूप चित्र (1565 ई.) में सामने आता है। पंजाब गजेटियर के अनुसार उपर्युक्त चित्र मंडी शैली के स्थानीय लोक शिल्प का सबसे पुराना चित्र है। इसके अतिरिक्त स्थानीय लोक शिल्प के चित्रों में राजा सिद्धसेन, गुरु गोविन्द सिंह तथा राजा सिद्धसेन के पौत्र शमशेर सेन का विवाह संबंधी चित्र प्रमुख हैं।

**1894 से 1846 ई. तक एनी पहाड़ी शैलियों का प्रभाव**—सन 1792 ई. में महाराजा संसार चंद ने मंदी के राजा ईश्वरी सेन को बंदी बनाकर बाढ़ वर्षों तक नादौन की जेल में डाल दिया था। इसी मध्य ईश्वरी सेन कांगड़ा शैली एवं गुलेर शैली से अत्यंत प्रभावित हुए तथा उनका चित्रकला के प्रति स्नेह उत्पन्न हुआ। राजा संसार चंद के भाई की बेटा के साथ जब ईश्वरी सेन का विवाह सम्पन्न हुआ तो सुजानपुर से कई चित्रकार राजा ईश्वरी सेन के साथ मंडी चले गए। वैवाहिक सम्बन्धों के चलते इस काल में कांगड़ा तथा गुलेर से कई चित्रकार मंडी पहुंचे परिणामस्वरूप इन चित्रकारों द्वारा अंकित किए गए चित्रों में गुलेर तथा कांगड़ा शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

**1846 से 1912 तक का पाश्चात्य प्रभाव**—सन 1846 ई. में अंग्रेजों के प्रभावों ने मंडी की राजनैतिक परिवेश ही नहीं अपितु लोकजीवन के परिवेश को भी प्रभावित किया। यहाँ की कलात्मक परम्परा इतना अधिक प्रभावित हुई कि शरीर रचना, सादृश्य दृबोध तथा परिप्रेक्ष्य आदि के दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन आने लगा।

**चंबा शैली**—चंबा राज्य सांस्कृतिक दृष्टि से प्राचीनकाल से ही अत्यधिक समृद्ध रहा है। यहाँ के प्राचीन मंदिर, प्रतिमाएँ, काष्ठ-नक्काशी, चंबा रुमाल की कशीदकारी एवं लघुचित्रों से प्रतीत होता है कि चंबा में शासक कलानुरागी थे, जिन्होंने सतत विभिन्न शिल्पकलाओं का संरक्षण एवं संवर्द्धन किया। चंबा में चित्रकला का प्रारम्भ तो लोकजीवन के साथ ही हो चुका था। राजा बलभद्र वर्मन (1589-1641 ई.) की समकालीन शबीह के प्रकाश में आने से चंबा शैली के प्रारम्भिक चरण की प्रतीति होती है। चंबा के एक पारम्परिक गुजराती चित्रकार परिवार से प्राप्त मुगल शैली के चित्रों से ज्ञात होता है कि ये चित्ते भी उत्तर अकबर कालीन चित्र शैली से सम्बन्धित थे। चंबा शैली की यात्रा भी विभिन्न पड़ावों से होते हुए गुजरी है—

**प्रारम्भिक चंबा शैली**—एन.सी. मेहता अहमदाबाद के चित्र संग्रह में ‘गिरि-गोवर्धन’ विषय दर्शाता चित्र 1635 ई. के लगभग चित्रित है जो चंबा शैली के प्रारम्भिक चित्रों में से अन्यतम है। प्रारम्भिक शैली का दूसरा चित्र बड़ौदा स्थित चित्र वीथी में संगृहित है। इस चित्र में एक सुनहरे मंडप वाले दोमंजिला भवन में सिंहासनारूढ़ देवी है जिनके चरणों के पास वीणाधारी देवर्षि नारद बैठे हैं और मंडप से बाहर देवी को प्रणाम करने की मुद्रा में एक राजपुरुष खड़े हैं।

**मुगल शैली से प्रभावित चंबा शैली**—राजा बलभद्र वर्मन के पुत्र जनार्दन वर्मन को नूरपुर नरेश जगत सिंह ने छल से मार डाला था और बीस वर्ष तक चंबा राज्य नूरपुर के राजा के अधीन रहा तत्पश्चात् बलभद्र वर्मन के पौत्र एवं जनार्दन वर्मन के पुत्र राजा पृथ्वी सिंह ने मंडी-कुल्लू राज्य के सैन्य-सहायता से चंबा राज्य को नूरपुर के चुंगल से मुक्त करवाकर चंबा राज्य का सर्वांगीण विकास किया। राजा पृथ्वी सिंह के सम्बन्ध दिल्ली दरबार के साथ बहुत घनिष्ठ थे जिसके चलते उनके शासनकाल में कई चित्रकार दिल्ली से यहाँ आये और उस काल के चित्रशैली पर मुगल शैली का प्रभाव पड़ा। राजा पृथ्वी सिंह के कई व्यक्ति चित्र भूरि सिंह संग्रहालय चंबा, छत्रपति शिवाजी संग्रहालय मुंबई तथा राजकीय संग्रहालय चंडीगढ़ में संगृहित हैं।

**मौलिकता एवं निजस्वता का काल**—पृथ्वी सिंह का पुत्र एवं योग्य उत्तराधिकारी राजा छात्र सिंह कलाप्रेमी, कुशल पारखी एवं रसिक व्यक्ति था। इसके शासनकाल (1664-1690 ई.) से पूर्व चंबा चित्रशैली पर

जो मुगलशैली का प्रभाव चला आ रहा था अब वह लेशमात्र रह गया था। अब चित्रकारों ने ऐसी चित्रशैली विकसित कर ली थी जिसमें मौलिकता एवं निष्पत्ता थी। राजा छत्र सिन्ध के अनेक चित्र सार्वजनिक एवं निजी संग्रहालयों में विद्यमान हैं। इस काल में रागमाला, नायिकाभेद, दशावतार आदि मुख्य विषयों पर अनेक चित्रों का चंबा शैली में चित्रांकन हुआ।

**चंबा शैली का वैभव काल**—अठारवीं शताब्दी चंबा शैली का वैभव काल था। इस काल में चंबा शैली अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचती प्रतीत होती है। राजा उमदे सिंह जैसे कलाप्रिय एवं रसज्ञ शासक ने कलाओं के संरक्षण एवं संवर्धन में असधारण रुचि रखते हुए चित्रकारों, कारीगरों एवं चंबा रुमाल के कशीददारों के प्रोत्साहन हेतु कई आयाम शुरू किए। इस काल में लहरू और महेश नामक दो उत्कृष्ट चित्रकारों ने नयनाभिराम चित्रावलियाँ तैयारकर चंबा शैली को समृद्ध करने में उल्लेखनीय योगदान दिया।

**चंबा शैली पर गुलेर शैली का प्रभाव**—अठारवीं शताब्दी के तृतीय चरण के पश्चात् गुलेर के चित्रकार राजकीय संरक्षण प्राप्त हेतु चंबा आए। नैनसुख के प्रतिभाशाली पुत्र निक्का और रॉझा चंबा नरेश राजसिंह (1764–1794 ई.) के आश्रित कलाकार थे। इन्होंने राजा राज सिंह के शहीद चित्रों के अतिरिक्त उषा—अनिरुद्ध, रुक्मिणी—मंगल एवं नल—दमयन्ती आदि सुंदर चित्रों को बनाया। राजा राज सिंह ने इन चित्रकारों को चंबा—कांगड़ा राज्य की सीमा पर रिहलू नामक स्थान पर पुरस्कार स्वरूप जागीर प्रदान की जहाँ रहकर इन गुलेर चित्तेरों के वंशज भी लगभग एक शताब्दी तक चंबा दरबार के लिए चित्रांकन—कार्य करते रहे। इस प्रकार से चंबा चित्रशैली का यह काल गुलेर शैली के प्रभाव में रहा।

**बिलासपुर शैली**—बिलासपुर शैली का इतिहास राजा दीप चंद (1650–1667 ई.) से आरम्भ होता राजा दीप चंद के समकालीन कला के प्रति अनुदार औरंगजेब का राज्य था। दिल्ली दरबार के शाहजहाँ कालीन चित्तेरे सत्रहवीं के उत्तरार्द्ध में बिखरने आरम्भ हुए और अन्य पहाड़ी रियासतों की भांति बिलासपुर भी पहुँचें तथा यहाँ प्रचलित लोकशैली का विकास होना शुरू हुआ। विक्टोरिया अलबर्ट संग्रहालय में राजा दीपचंद को गायिकाओं से राग सुनते दिखाया गया है। 1820 ई. में मूरकाफ्ट ने अपने यात्रा विवरण में बिलासपुर के राजभवन की भित्तियों पर भित्तिचित्र होने का उल्लेख किया है।

**कुल्लू शैली**—सन 1931 ई. में जे.सी. फ्रेंच ने अपनी पुस्तक हिमालयन आर्ट में कुल्लू शाली की व्याख्या की है। इससे पूर्व कुल्लू शैली के बारे में यही धारणा थी कि यह कभी कला का केंद्र नहीं रहा। कुल्लू में चित्रकला का प्रारम्भ राजा मान सिंह (1688–1719 ई.) के समय से माना जाता है। इनके शासनकाल के दौरान कई चित्रकार मैदानी क्षेत्रों से यहाँ आए। राजा मान सिंह राज्य—विस्तार तथा शक्ति संघटित करने में लगे रहे परिणामस्वरूप कलाओं का विकास मन्दगति से चला। मान सिंह के बाद कुल्लू की स्थिति पूर्ववत् नहीं रही राजा राज सिंह और राजा जय सिंह का समय स्थानीय कलाकारों के लिए स्वर्णिम युग था। सजनू तथा दो स्थानीय चित्रकारों ने राजा प्रीतम सिंह के शासनकाल के दौरान शीशमहल के भित्तिचित्रों का निर्माण किया। राजा प्रीतम सिंह के समय कुल्लू शैली स्थायित्व को प्राप्त हो चुकी थी। कुल्लू शाली में भगवान नामक चित्रकार का बहुमूल्य योगदान है। इन्होंने शीशमहल में रामायण के दृश्य, नायिका—भेद, राम—सीता विवाह आदि कई चित्र बनाए।

#### पहाड़ी चित्रकला के चित्रकार (चित्तेरे)

**सजनू**—सजनू कांगड़ा के राजा संसार चंद के दरबार का कलाकार था। वह मंडी के राजा ईश्वरी सेन के समय में मंडी आया था तथा उसने राजा ईश्वरी सेन को सन 1810 ई. में 'हमीर हट्ट' चित्र संकलन भेंट किया था। वह ईश्वरी सेन की चित्रशाला का मुख्य कलाकार रहा। श्री किशोरी लाल वैद्य के अनुसार सजनू लगभग सन 1808 ई. में कुल्लू से मंडी आया था। कुल्लू में उसने शीशमहल में त्रिपुरा—सुन्दरी नामक भित्तिचित्रों का निर्माण किया था। सजनू के वंश के विषय में डा. बी. एन. गोस्वामी ने लिखा है कि 1865 ई. के रिकार्ड ऑफ राईट में एक मराठे मुलेरिये सजनू का उल्लेख मिलता है जिनके पुत्र का नाम रामदयाल तथा पुत्र का नाम हरिचरन था। यह परिवार कांगड़ा के उस्तेहड गाँव का निवासी था।

**फत्तू**—फत्तू भी महाराजा संसार चंद के दरबार का कलाकार था जो बाद में राजा ईश्वरी सेन के समय मंडी चला गया था। सजनू और फत्तू राजा ईश्वरी सेन की चित्रशाला के मुख्य कलाकार थे। हरिद्वार में सरदार रामरखा की बही के अनुसार फत्तू गुलेरवासी नैनसुख (नैणा) के परिवार से सम्बन्धित था। डा. वी. एन. गोस्वामी के एक

रहस्यपूर्ण आलेख का वर्णन किया है उनके अनुसार गुलेरवासी नैनसुख सेठ आदि के वंशजों श्री भपेन्द्र प्रकाश तथा चंदू लाल के संग्रह में उनके पास राजोल में एक आरेख है जिसमें एक स्त्री, जो कला की देवी है एक पैर पर खड़ी है तथा उसने अपनी पन्द्रह भुजाएँ मकड़ी के जाल की तरह सर्वत्र फैलाई हैं। इन भजों के पास हलकी स्याही में १६ राज्यों के नाम अंकित हैं— श्री गुलेर, चंबा, कांगड़ा, मंडी, सुकेत, कहलूर, नादौन, जसवां, शीबा, दातारपुर, श्री गुरबक्श सिंह, रामगाड़िया जासा सिंह, सुजानपुर, मानकोट, जम्मू, शाहपुर, श्री जय सिंह, नूरपुर, बसोहली।

इस आलेख से यह सिद्ध होता है कि इस गुलेर वंश के चित्रकार इन पहाड़ी राज्यों में चित्र बनाने का कार्य कर रहे थे।

**राम दयाल**—नैनसुख परिवार का वंशज चित्रकार रामदयाल चंबा के चित्रकार निक्का का पौत्र था। रामदयाल ने मंडी में राजा विजय सेन (1851–1902 ई.) के दरबार में चित्र बनाए। रामदयाल सम्बन्धी जानकारी डा. रंधावा को नैनसुख वंश के एक जीवित कलाकार लक्ष्मण दास ने राजोल में दी थी कि लक्ष्मण दास का पिता रामदयाल निक्का का पोता और नैनसुख का पड़पोता था।

**मुहम्मदी**—मुहम्मदी ने मंडी के राजा विजय सेन और बलवीर सेन के समय में मंडी में चित्र बनाए। मुहम्मदी के पूर्वज राजा जालिम सेन के समय में अवध से आकर मंडी में बसे थे। मुहम्मदी मुस्लिम परिवार से सम्बन्ध रखने वाला एक सिद्धहस्त चित्रकार था।

**दौलत**—दौलत मंडी की परम्परा शैली का एक दक्ष चित्रकार था। मियाँ भाग सिंह की हवेली के बैठक वाले कमरे में बने एक भित्तिचित्र पर इनका नाम मिलता है। यह चित्र शिव-परिवार का है। चित्रकार दौलत ने मंडी के राजा विजय सेन के शासनकाल में चित्र बनाने का कार्य किया।

**नरोत्तम**—नरोत्तम ने मंडी के राजा विजय सेन, भवानी सेन तथा जोगिन्द्र सेन के शासनकाल में मंडी में चित्र बनाए। डा. बी. एन. गोस्वामी के अनुसार नरोत्तम मंडी के चित्रकार मुहम्मदी का शिष्य था। नरोत्तम का जन्म मंडी के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम गहिया था इसी कारण इनको गहिया नरोत्तम के नाम से भी जाना जाता था। प.ज्वाला प्रसाद शास्त्री के अनुसार इनका जन्म लगभग 1844 ई. और मृत्यु 1938 ई. में हुई थी। इनके प्रेम प्रसंग मंडी के जनपद के लोकगीतों में आज भी गूँजते हैं।

**मोती राम राजड़ा**—मोती राम राजड़ा गहिया नरोत्तम का समकालीन चित्रकार था, जो मंडी के एक निम्नवर्गीय परिवार से सम्बन्ध रखता था। मंडी में राज उन लोगों को कहते हैं जो पत्थर का कार्य करते हैं। इनके पूर्वज भी राजमिस्त्री का कार्य करते थे इसलिए इनके नाम के साथ राजड़ा शब्द जुड़ गया। हरिजस हवेली के पूजास्थल में, कामेश्वर शिवालय में तथा भवानी निवास में इनके द्वारा निर्मित भित्तिचित्र हैं।

**प. ज्वाला प्रसाद**—प. ज्वाला प्रसाद गहिया नरोत्तम का पुत्र तथा शिष्य था। यह एक व्यवसायिक चित्रकार था। इसने अपने पिता एवं गुरु गहिया नरोत्तम की परम्परा को आगे बढ़ाया।

**प. भवानी दत्त शास्त्री**—प. भवानी दत्त शास्त्री भी गहिया नरोत्तम के शिष्य थे। इन्होंने अधिकतर चित्र पाष्वात्य शैली में चित्र बनाए जो आज भी उनके निवास था, में देखे जा सकते हैं।

उपर्युक्त चित्रकारों के अतिरिक्त मंडी शैली के चित्रकारों में गहिया नरोत्तम के शिष्यों में प. सनन्दन, नूरचंद, मास्टर बालक राम तथा अच्छरु राम आदि के नाम आते हैं।

**माणकू**—माणकू पहाड़ी चित्रकला के उन प्रमुख चित्रकारों में से है जिन्होंने जीवन में जो कुछ अनुभव किया उसे कड़ी मेहनत, लग्न, ईमानदारी और गहराई के साथ अपने चित्रों में उजागर कर दिया। माणकू गुलेर शैली के विकास, प्रसार एवं संवर्द्धन का श्रेय पाने वाले चित्रकार प. सेऊ का बड़ा पुत्र और चित्रकार नैनसुख का अग्रज था। इस चित्रकार के बारे में सर्वप्रथम उल्लेख हरिद्वार में पंडों की बही में संक्षिप्त रूप में लिखा मिलता है। टांकरी लिपि में यह लेख स्वयं माणकू के हाथ से इस प्रकार लिखा है— “तरखाण वासी गुलेर के माणकू, बेटे सेऊ को, पोता हसनू का संवत् 1793।” इस लेख से यही ज्ञात होता है कि सेऊ पुत्र माणकू सं. 1793 (1736 ई.) में गुलेर में कार्यरत था।

**नैनसुख**—नैनसुख गुलेर के प्रसिद्ध चित्रकार प. सेऊ का छोटा पुत्र था। इसके बड़ा भाई माणकू भी सुप्रसिद्ध चित्रकार था व माणकू द्वारा हरिद्वार में पंडों की बही में लिखे एक वाक्य के अनुसार इनका समय सं. 1793 (1736 ई.) के असपास था। सन 1742 ई. में इसने राजा बलवंत सिंह के आश्रय में चित्रांकन कार्य किया।

**लहरू और महेश**—ये दोनों चित्रकार अठारवीं शताब्दी के मध्य में चंबा नरेश उमेश सिंह के संरक्षण में चित्रांकन कार्य करते थे। महेश चित्रकार द्वारा चित्रांकित विष्णु के दशावतार की चित्र श्रृंखला सुप्रसिद्ध है जिसके कुछ चित्र भूरि सिंह संग्रहालय चंबा एवं रीटरवर्ग संग्रहालय ज्यूरिक स्विटजरलैंड में संगृहीत हैं। लहरू चित्रकार द्वारा सन 1758 ई. में चम्बा के बजीर शमशेर सिंह हेतु चित्रित भगवतपुराण के अंतर्गत कृष्णगाथा के अत्यंत सुरुचिपूर्ण चित्र हैं, ये चित्रावली चंबा के भूरि सिंह संग्रहालय की अमूल्य निधि है।

**निक्का और राँझा**—ये दोनों चित्रकार गुलेर के सुप्रसिद्ध चित्रकार नैनसुख के पुत्र थे। ये दोनों चंबा नरेश राज सिंह (1764–1794 ई.) के आश्रित चित्रकार थे। इन दोनों ने न केवल राजा राज सिंह के शबीह चित्र बनाए अपितु उशा— अनिरुद्ध, रुक्मिणी—मंगल एवं नल—दमयन्ती जैसे प्रणय आख्यानों पर सुंदर चित्र बनाए।

इसके अतिरिक्त डा. बी. एन. गोस्वामी के अनुसार प. सेऊ के दो भाई बीलू और रघु भी थे जिनके पुत्र ग्वाल, टेढ़ा और पुन्नु थे। ये सभी चित्रकार थे जिन्होंने गुलेर दरबार के लिए चित्रांकन कार्य किया।

**ओ.पी. टांक**—कांगड़ा चित्रशैली के रंग विन्यास को जितनी भाव प्रणवत्ता से श्री टांक ने समझा, जांचा, परखा और आत्मसात किया है यह सहज ही सराहनीय है। इनका जन्म 1937 ई. में मास्टर सरदारी लाल जी के घर सोहदरा तहसील बजीराबाद जिला गुजरावाला पाकिस्तान में हुआ। विभाजन के दौरान इनके पिता भारत आ गए और होशियारपुर के एक गाँव में अध्यापक लग गए। 1959 ई. में यह धर्मशाला आ गए। इन्होंने कांगड़ा कलम के अंतिम चित्रकार श्री गुलाबू राम से पहाड़ी चित्रकला का प्रशिक्षण प्राप्त किया। सुजानपुर के नर्वदेश्वर मंदिर और नूरपुर के बृजराज मंदिर के भित्तिचित्रों ने इनके मन—मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला घटांक के मौलिक चित्रों में धान कूटती हुई पहाड़ी गद्दण और प्रेम व सौन्दर्य सम्बन्धी चित्रों में— सुन्नी—भून्कू, कुंजू—चंचलो, फुल्मु—रान्झु आदि सुप्रसिद्ध हैं।

#### संदर्भ—सूची

1. पहाड़ी चित्रकला के महान चितरे, सम्पादक डा. विश्वचन्द्र ओहरी, हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला, 1994 पृ. 25
2. पहाड़ी भाषा तथा साहित्य, सम्पादक डा. बंशीराम शर्मा तथा डा. जगदीश चन्द्र शर्मा, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला द्वारा 2002 उमद प्रकाशित, पृ. 62
3. पहाड़ी चित्रकला, श्री किशोरी लाल वैद्य तथा ओमचंद हांडा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली द्वारा सन 1969 में प्रकाशित।
4. भारतीय चित्रांकन, रामकुमार विश्वकर्मा, बिशन लाल भार्गव एंड संस कटरा, इलाहाबाद।
5. भारतीय चित्रकला, वाचस्पति गैरोला, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1963
6. भारतीय चित्रकला की कहानी, डा. भगवत शरण उपाध्याय, राजपाल एंड संस दिल्ली—1955
7. भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, डॉ. लोकेश चंद शर्मा, गोयल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 2018
8. भारत की चित्रकला, राय कृष्णदास, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1996 वि. स.
9. हिमाचल की लोक कलाएँ और आस्थाएँ, श्री मौलू राम ठाकुर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, 2008
10. हिमाचल प्रदेश एक बहु आयामी परिचय, डा. राजेन्द्र अत्री, सरला पब्लिकेशन शिमला
11. Hiamalayan Art, J.C. French, Oxford University Press, 1931
12. The Krishna Legend in Pahari Painting, M.S. Randhawa, Lalit Kala Akademi, 1956
13. Art and Architecture of Himachal Pradesh, Miyan Govardhan Singh, B.R. Publishing Corporation, 2012
14. Arts of Himachal & Editor Vishwa Chander Ohri, State Museum Shimla, 1975, page 30-32-162

\* \* \* \* \*

## संयुक्त प्रान्त में रेलवे का परिचालन 1860-1914

रमेश कुमार\*

**सारांश :** भारत में रेल निर्माण को गतिशील बनाने वाला एक महत्वपूर्ण कारण भारत के ब्रिटिश शासकों की यह इच्छा थी कि भारत के आंचलिक प्रान्तों में एक विस्तृत और वास्तव में अब तक न दोही गयी एक ऐसी मंडी खोली जाय जो एक ओर ब्रिटिश उद्योगों के उत्पादन को खपाए और दूसरी ओर ब्रिटेन की भूखी मशीनों और प्राणियों के लिए क्रमशः कच्चे माल और खाद्यान्नों के निर्यात की सुविधायें जुटाये। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए 1850 तक भारत में दो रेलवे कम्पनियाँ – ईस्ट इण्डिया रेलवे कम्पनी और ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे कम्पनी अस्तित्व में आयी जो संयुक्त प्रान्त में भी रेलवे का परिचालन कर रही थी।

भारत में रेलवे निर्माण के शुरुआती रुचि के बावजूद रेलवे निर्माण से सम्बन्धित कम्पनियों को संयुक्त प्रान्त में प्रथम दो दशकों तक अपने परिचालन के दौरान कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। समतल और घनी बसी घाटी या दोआब (दो नदियों के बीच का क्षेत्र जो गंगा और यमुना का क्षेत्र था) को देश का सर्वोत्तम भाग रेलवे के लिए कहा गया। जहाँ पर ईस्ट इण्डिया रेलवे द्वारा सेवा प्रदान किया जाना था। अवध-रुहेलखण्ड रेलवे कम्पनी संयुक्त प्रान्त में बनाये जाने वाला दूसरा रेल मार्ग था जो कम सफल था और लगातार सरकार से वित्त खींच रहा था। 1880 तक लम्बी और मध्यम दूरी के यातायात नदी और वैकल्पिक भूमि मार्गों से होता था जो व्यापार से वाणिज्य का पूर्णतया परिवर्तन नहीं कर पाया। ऐसा दुलाई दरों में बड़ी कमी और सम्पर्क जाल के सघनीकरण और नये मार्ग जैसे कि बंगाल-उत्तर-पश्चिमी रेलवे, रुहेलखण्ड-कुमायूँ रेलवे, उत्तर-पश्चिम में राजपूताना-मालवा रेलवे और इण्डियन मिण्डलैण्ड रेलवे के द्वारा खोलने से आते-आते 1860 के बाद में ही हो पाया। इस अवधि के दौरान संयुक्त प्रान्त की अग्रणी मार्गों की लाभकारिता और यातायात आयतन प्रमुखतया तीन कारकों द्वारा प्रभावित हो रहा था निर्माण की ऊँची लागत, माध्यमिक स्टेशनों की दूरस्थ स्थिति, और ऊँचे माल भाड़े और यात्री दरें।

**निर्माण की ऊँची लागत :** संयुक्त प्रान्त में रेलवे निर्माण एक बहुआयामी कार्य था। इसमें तकनीकी जटिलता की कई रूपों वाली गतिविधियाँ शामिल थीं। बुनियादी कार्य यथासम्भव कम खर्च पर समतल और सीधा रास्ता बनाना था। ईस्ट इण्डिया रेलवे के प्रस्तावकों ने यह अंदाजा लगाया था कि प्रति मील निर्माण कार्य पर लगभग 8 हजार पाउण्ड खर्च होगा। हालाँकि वास्तविक लागत 20 हजार पाउण्ड थी।<sup>1</sup> आकस्मिक कारकों जैसे कि 1857 के विद्रोह ने निर्माणों को नष्ट किया और वेतन बिलों में महँगाई लायी। इसके अलावा कुछ अग्रणी गलतियाँ भी थीं। उदाहरण के तौर पर पुल और कूपे वर्षा के दौरान गिर जाते थे और स्टेशन के कार्यों में फिजूल खर्च लाते थे। निर्माणकर्ता कर्मचारी वर्ग में एक बड़ा वर्ग यूरोपीय तत्व था वो काफी खर्चीला था जबकि भारतीय श्रमिक अप्रशिक्षित थे। वहीं पदार्थों के परिवहन के लिए आधारभूत ढाँचा भी नहीं था औ तराई के जंगलों तक पहुँचना मुश्किल था। इसलिए बाल्टिक और आस्ट्रेलिया से लकड़ियों और लोहे के स्लीपर आयात करने पड़े। मौसमी बारिश के मौसम में लकड़ी बाहर से मँगाना भी मुश्किल हो गया था। रेलवे कम्पनियों ने इन अग्रणी गलतियों से सीखा। बाद के योजनाओं के लिए उन्होंने अक्टूबर से मई की निर्माण अवधि के लिए सामग्री इकट्ठा करना शुरू किया, हाल में पूरी की गयी लाइनों से अनुभवी अभियन्ताओं और कारीगरों को नियुक्त किया गया, आर्थिक दूरदर्शी सिद्धांत को अपनाते हुए मार्गों को बढ़ाया गया। स्लीपर, स्टेशन और चहारदीवारियों के निर्माण कार्य के लिए तराई की लकड़ियों का प्रयोग किया गया। अब भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल पुल निर्माण की तकनीक का विकास हुआ और तेज गति से निर्माण कार्य हुआ।<sup>2</sup> इसने अवध-रुहेलखण्ड रेलवे को प्रतिमील 11500 पाउण्ड

\* एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, हण्डिया पी.जी. कॉलेज, हण्डिया, प्रयागराज



के निर्माण के लिए सक्षम कर दिया। 5'-6" गेज के बजाय मीटर गेज का प्रयोग करते हुए बंगाल-उत्तर पश्चिम रेलवे और रुहेलखण्ड-कुमायूँ रेलवे निर्धारित कीमत को आधा कर दिया।<sup>4</sup>

**माध्यमिक स्टेशनों की दूरस्थ स्थिति :** संयुक्त प्रान्त में प्रारम्भिक मार्ग भली-भाँति नहीं जुड़े हुए थे क्योंकि रणनीतिक प्रमुखताओं ने जो मार्ग का निर्धारण किया वह एक गलत विश्वास पर आधारित था कि यातायात स्वयं रेलवे तक आयेगा। वास्तव में बड़े शहरों के बीच में मध्यस्थ स्टेशनों की अनदेखी की गयी थी। उदाहरण के तौर पर ईस्ट इण्डिया रेलवे के दिल्ली से इलाहाबाद के बीच छत्तीस स्टेशनों में केवल सात एक शहर के पास थे। खुर्जा, हाथरस और बुलन्दशहर में बाजार रेलवे स्टेशन से क्रमशः 5, 7 और 10 मील दूर थे जो कि एक बैलगाड़ी की यात्रा से यात्रा करने में आधे दिन की यात्रा के समान थी। वहीं रेलवे स्टेशन भी अर्द्धनिर्मित थे। **सिपलैन्क** जो कि संयुक्त प्रान्त के सफाई आयुक्त थे ने 1873 में घोषित किया एक यात्री संयुक्त प्रान्त की एक पेड़ के भाँति फैले हुए मैदान... इसके अनेक छोटे स्टेशन प्रान्त, आराम करने वाली जगहों की जहाँ पर कि अभी भी कंकड़ों से भरा प्लेटफॉर्म चिकना नहीं है कि स्मृति लेकर घर जायेगा।<sup>5</sup> स्वच्छ और पर्याप्त मात्रा में जल की आपूर्ति की खोज, सस्ती भूमि और स्टेशनों को शहर से दुर्गिकृत स्थानों के रूप में विकसित करने की रणनीतिक इच्छा इन सभी ने इन दूरस्थ स्थानों का चयन किया।

**ऊँची माल भाड़े और यात्री दरें :** भारत की अग्रणी रेल कम्पनियों ने यह नीति बनायी कि ढुलाई, भाड़े और यात्री दरों को ऊँची रखी जाय। प्रारम्भिक राजस्व का स्रोत मध्यवर्ग के यात्रियों को ढोने और ऊँचे मूल्य के वस्तुओं जैसे- खुदरा वस्तुएँ, अफीम, नील और दबी हुई रूई थी। पहले वाले के लिए भाड़ा, गति और आराम नाव या पालकी या घोड़ा गाड़ी के द्वारा की गयी यात्रा की तुलना में ज्यादा अनुकूल था। बाद वाले के लिए व्यापारी एक सुरक्षित प्रान्त तथा कलकत्ता के मध्य नौपरिवहन के कोच संचालकों को भारी क्षति पहुँचायी, जिससे इलाहाबाद तक गंगा और यमुना के बीच का यातायात तेजी से गिरकर महत्वहीन हो गया। इन क्षेत्रों के लोग और व्यापारी नदी-किनारे से हटकर रेलवे के केन्द्रों के आस-पास तक आये। पूर्व में अनुप शहर, कात्पी और फर्रुखाबाद में व्यापार लगभग 160 लाख रुपये वार्षिक था जो 1880 में गिरकर मुश्किल से 20 लाख हो गया। यहाँ के जिलाधिकारी **इवान्स** ने इंगित किया कि 1873 तक दलालों की 152 फर्में और 57 के लगभग बैंकर और बड़े व्यापारियों ने यहाँ अपने प्रतिष्ठान बन्द कर दिये।<sup>6</sup> ईस्ट इण्डिया रेलवे के कारण लम्बी दूरी के नौका यातायात पर जो गंगा नदी के नीचे इलाहाबाद तक था, का प्रभाव कम नाटकीय था। प्रारम्भ में पूर्वी संयुक्त प्रान्त के वाणिज्यिक शहरों- इलाहाबाद, मिर्जापुर और बनारस में एक उत्तेजना का अनुभव पैदा हुई, क्योंकि रेलवे ने नदी स्टीमरों और नदी की नाव से माल पाने के प्रयास में अपनी दरों को भारी मात्रा में घटायी व जिससे उच्च कीमत वाली वस्तुओं का यातायात उन्होंने रेलवे के हाथों में खो दिया। लेकिन देशी नावों ने भारी वस्तुओं की जैसे चीनी, अनाज और तिलहन को कलकत्ता के तेज माँग वाले दौर में भी ढोना जारी रखा। फलतः 1872 में ईस्ट इण्डिया रेलवे की आगतें घट गयीं। आगत क्यों कम हो गयी पर एक स्थानीय सरकारी जाँच की गयी जिसमें यह पाया गया कि ईस्ट इण्डिया रेलवे की दरें 0.25 पाई<sup>8</sup> प्रति मन अनाज के लिए 0.33 पाई दूसरी वस्तुओं के लिए प्रचलित मौका दरों से दुगुनी थी। 1872 की धीमी बाजार स्थिति में अनाज और तिलहन का विस्थापन सस्ते जलमार्ग की ओर हुआ जिसमें एक छोटी अवधि के लिए नौका निर्माण में तेजी आयी।<sup>9</sup>

1870 के मध्य बिहार के अकाल में रेलवे की भूमिका से उत्साहित रेलवे ने ढुलाई दरों में तेजी लाई और दरों में भारी मात्रा में कमी की गयी। जिसने गंगा नदी के परिवहन की ताबूत में अंतिम कील ठोक दी। नदी यातायात, का इलाहाबाद और पटना के बीच ह्रास हुआ। वहीं उत्तर भारत के मुख्य प्रवेश स्थान मिर्जापुर ने एक तीव्र तनाव का अनुभव किया क्योंकि बनारस एक उच्च सम्पर्क स्थल द्वार के रूप में पूर्वी संयुक्त प्रान्त के लिए रेल मुख्य केन्द्र के रूप में उसे प्रतिस्थापित कर दिया। पन्द्रह वर्षों की अवधि 1865-1881 के बीच मिर्जापुर ने अपनी जनसंख्या का पाँचवां भाग खो दिया और दूसरे छोटे शहरों के तरह हो गया।<sup>10</sup> इस क्षेत्र में अब गंगा का यातायात स्थानीय रह गया जो रेलवे स्टेशनों की आपूर्ति पूर्वी संयुक्त प्रान्त और बिहार के बीच उत्पाद के आदान-प्रदान तक सीमित रह गयी। विस्थापित नाव वालों के साथ स्थानीय कृषि या श्रम ग्रहण करने के अवसर दोआब में काफी कम रह गयी। इसलिए वे मौसम के अनुसार अगस्त और मई के बीच में अभी भी वाणिज्यिक रूप से सक्रिय ब्रह्मपुत्र नदी के लिए प्रवजन कर जाते थे।<sup>11</sup>

अवध-रुहेलखण्ड रेलवे जो गंगा और घाघरा के दोआब के बीच से होकर चल रही थी, 1870 के बाद अपने परिचालन के प्रथम दो दशकों में असफल रही, ऐसा आंशिक रूप से निर्माण की गलतियों के कारण था। 1880 के दौरान सड़क यातायात रिपोर्ट इस बात को प्रमाणित करती है कि अवध-रुहेलखण्ड के पास की नदी से सड़क मार्गों तक यातायात का परिवर्तन केवल आंशिक रूप से ही रहा। कम्पनी के अधिकारियों ने गुजरती हुई बैलगाड़ियों की लम्बी कतारों जो कि ईस्ट इण्डिया रेलवे के रेलकेन्द्रों<sup>12</sup> की तुलना में बाजारों के लिए सीधे भूमि मार्गों का चयन करती थीं पर टिप्पणी की। अवध-रुहेलखण्ड रेलवे का खिंचाव केवल एक सीमित प्रवण क्षेत्र के ऊपर पड़ा। कलकत्ता के लिए सम्पर्क मार्ग प्रदान करने और कोयला आपूर्ति लाने में निर्भर रहते। इसने ईस्ट इण्डिया रेलवे के द्वारा लगायी गयी भेदभावपूर्ण कर दरों का सामना किया जिससे कलकत्ता से सम्बद्ध अवध व रुहेलखण्ड रेलवे के यातायात को ईस्ट इण्डिया रेलवे से दक्षिण-पूर्व में बनारस के बजाय कानपुर और अलीगढ़ से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणामतः अवध व रुहेलखण्ड रेलवे के द्वारा ढोया गया यातायात उस दूरी से कम था जितना कि इसके प्रस्तावकों द्वारा सोचा गया था।<sup>13</sup> पश्चिम की ओर राज्य के द्वारा बनायी गयी और चलायी गयी राजपूताना-मालवा रेलवे जो कि आगरा और दिल्ली से बाहर निकल कर राजपूताना के सूखे अंदरूनी क्षेत्रों में फैली थी ने काफी तेजी से ऊँटों और बैलगाड़ियों के यातायात को रेल डिब्बों की ओर मोड़ा, बंजारा और आदिवासी माल ढोने वालों ने रेलवे से प्रतिस्पर्द्धा करने के प्रयास में अपने दरों में कटौती की लेकिन रेलवे के अनाज और नमक के लिए सस्ती दरों से मुकाबला नहीं कर सके।<sup>14</sup>

**1885 से 1914 : भारी स्तर पर परिवर्तन और सुधरती हुयी लाभकारी कार्य :** 1880 के शुरुआत में संयुक्त प्रान्त का लम्बी दूरी का रेलवे से अप्रभावित हिस्सा पूर्वोत्तर में ट्रान्स घाघरा के क्षेत्र में पड़ता है। तात्कालिक वाणिज्यिक रिपोर्टों ने यह पाया कि एक बड़ा यातायात लगभग 60 लाख मन तक की वस्तुएँ अभी तक घाघरा नदी द्वारा ढोया जा रहा था। केवल इस व्यापार का पश्चिमी हिस्सा बहराइच और गोण्डा जिलों में आंशिक रूप से अवध व रुहेलखण्ड रेलवे को जो बहरामघाट और फैजाबाद जाती थी जिससे दक्षिण-पश्चिम में बाजार की निर्गतें सुधर गयी थीं। भारी मात्रा में अनाज, तिलहन और चीनी अभी भी नदी के द्वारा फैजाबाद और पटना के बीच भेजे जाते थे जो कि रेल पुनर्नौवाहन का केन्द्र था जबकि बरहज का मारवाड़ी<sup>15</sup> केन्द्र अभी भी बीमा, नौका निर्माण और चीनी शोधन का महत्वपूर्ण माध्यमिक केन्द्र था।<sup>16</sup>

अवध-रुहेलखण्ड रेलवे ने घाघरा के इस यातायात को फैजाबाद के रेलमार्ग तक मोड़ने के प्रयास में कम किराये दरें प्रस्तावित की। लेकिन 1887 के पहले बनारस में रेलवे पुल की अनुपस्थिति से व्यापारियों ने नाव से समान पटना भेजा जाना ज्यादा बेहतर माना। यातायात के इस बिखराव ने संयुक्त प्रान्त के अतिरिक्त स्थानीय – नदी-जनित वाणिज्य को एक क्षुद्र रूप में सीमित कर दिया। 1885-86 में संयुक्त प्रान्त में 74 लाख मन (67 लाख मन घाघरा से) बंगाल और बिहार को निर्यात किया, लेकिन 1908 से लेकर 1914 तक संयुक्त प्रान्त का नदी व्यापार कलकत्ता के साथ औसतन 2 लाख प्रतिमन से कम हो गया।<sup>17</sup> लम्बी दूरी की नदी नौका यातायात, बैलगाड़ी, ऊँट और बैल परिवहन में ह्रास से रोजगार की बड़ी मात्रा में हानि और पुनर्निर्देशन का मार्ग प्रशस्त किया जिसे कुछ प्रेक्षकों जैसे- ए०के० कोलोन<sup>18</sup> ने भूमि पर बढ़ते हुए दबाव के रूप में देखा।

प्रतिस्थापन का प्रभाव और प्रकृति, भौगोलिक रूप से भिन्न था। इस परिवहन क्रांति का बोझ गंगा-यमुना के दोआब में सबसे कम घातक था। जहाँ उदाहरण के लिए मथुरा क्षेत्र में अहिवासी, नहरों द्वारा सिंचित कृषि और मध्यम दूरी के भारवाहन में संलग्न हो गये और नाव वाले (मल्लाह) शहर के बाजारों के लिए नदी के किनारे तरबूजे उगा सकते थे।<sup>19</sup>

**सक्षमता में सुधार :** 1860 के मध्य से ए०एम० रैण्डेल जो लंदन में ईस्ट इण्डिया रेलवे और भारतीय रेलवे विभाग के सलाहकार अभियन्ता थे, ने भारतीय रेलवे की प्रतिमील यातायात सघनता, ट्रेन भार और ईंधन खपत को आर्थिक दृष्टि से पहचानने के लिए विस्तृत सांख्यिकी शुरू किये।<sup>20</sup> रैण्डेल ने 1866 और 1871 में उत्तर भारत में यात्रायें की उसने पाया कि रेलवे के ढुलाई क्षमता 200 टन थी जबकि ग्रेट इण्डिया पेनिनसुला रेलवे पर ढोया जाने वाला मुश्किल से 69 टन और ईस्ट इण्डिया रेलवे पर ढोया जाने वाला माल 109 टन था। जबकि कम मूल्य की वस्तुओं के ढुलाई को प्रोत्साहित करने के लिए और खाली मालवाहक गाड़ियों को भरने के लिए कम किराये दरें होनी आवश्यक थीं।<sup>21</sup> 1875 के बाद रेलवे की दरों में कमी करके इन लक्ष्यों को पूरा किया गया और बढ़ती

हुई सम्पर्क मार्ग की सघनता के साथ प्रतिमील मार्ग का यातायात भार और रेलभार में सुधार हुआ। 1906 तक एक मालवाहक रेलगाड़ी ने औसत वजन (मृदु भार हटाते हुए) ईस्ट इण्डिया रेलवे पर 263 टन, अवध-रुहेलखण्ड रेलवे 160 टन, और बंगाल-उत्तर पश्चिम की मीटर गेज पर 122 टन था। प्रति-मील साप्ताहिक आय ईस्ट इण्डिया रेलवे पर 424 रुपये अवध- 112 रुपये, 1870 में से बढ़कर 1910 में क्रमशः 705 रुपये और 243 रुपये हो गयी।<sup>22</sup> मालवाहक डिब्बों की आकर्षकता में भी सुधार किया गया और लम्बी धीरे चलने वाली मालगाड़ियाँ बढ़ती हुयी शक्तिशाली इंजनों द्वारा 10 से 15 मील प्रति घण्टे की रफ्तार से खींची जाने लगी। मध्य जुझारूकारी बिन्दुओं ने ट्रेन गति में वृद्धि की और इंजन की शक्ति ने अधिक क्षमताकारी प्रयोग को संभव बनाया। छोटे स्टेशनों पर रूकाव के बेहतर नियंत्रण से ट्रेनों की औसत गति और ईंधन क्षमता में वृद्धि हुयी।<sup>23</sup>

रेलवे यातायात के प्रबन्धकों और इंजन अधीक्षकों ने भारतीय परिस्थितियों से धीरे-धीरे परिचालन क्षमता में सुधार और भाड़ा दरों में और कमी को सक्षम बनाना सीखा। हालाँकि अंग्रेजी रेलमार्ग के विचार का तीव्र प्रभाव अत्यधिक केन्द्रीयकृत और भरोसेमन्द खोजे जैसे कि न्यूयार्क से संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य-पश्चिम क्षेत्र तक अनाज को ढोने वाले उच्च क्षमता वाली गाड़ियाँ<sup>24</sup> नहीं ग्रहण कर पायी क्योंकि अतिरिक्त बाधाओं ने यातायात वृद्धि को बाधित किया। उदाहरण के तौर पर औपनिवेशिक भारत की स्थितियाँ यह थी कि ग्राहक और कर्मचारी सम्बन्ध दूरस्थ और तनावपूर्ण बने रहे। तीसरे श्रेणी के यात्री जो कि रेलवे यातायात के सबसे लाभकारी तत्व थे के साथ विशेषकर दुर्व्यवहार किया जाता था। **नज्मु-ए-अकबर** ने टिप्पणी की कि— एक चरवाहा अपने भेड़ों के साथ रेलवे कर्मचारियों द्वारा देशी यात्रियों के तुलना में ज्यादा सहृदयता दिखाता है।<sup>25</sup>

हालाँकि प्रचलित मार्गों पर अल्पधन उपलब्धता से प्रवर्तनीय भण्डारण में कमी आयी। डिब्बों और खुले और बन्द छतों ने उपभोक्ताओं के लिए असली समस्याएँ पैदा की जिससे 1890 में रेलवे यातायात में गिरावट आयी। मेलों के दौरान तीसरे दर्जे के डिब्बों में आशा से अधिक भीड़ भरे होते थे और कोयला ढोने वाले डिब्बे को कुछ समय के लिए यात्री डिब्बे में परिवर्तित कर दिये जाते थे। यात्री इन डिब्बों में बंद कर दिये जाते थे जो धीरे-धीरे दिये गये शौचालयों से युक्त थे, जो ब्लैक होल के समान परिवर्तित हो जाते थे।<sup>26</sup> निःसंदेह मेलों से भारतीयों में कालरा तेजी के साथ घातक रूप में फैलता था। अधिकांश तीसरे दर्जे के यात्री इस अस्थायी कष्ट को रेलवे के तेज और कम कीमत वाले यात्रा के लिए सहते रहे। 1900 के दौरान यातायात सघनता में वृद्धि हुयी जिससे रेलवे डिब्बों की कमी पड़ गयी जबकि रेलवे कम्पनियाँ अपनी दोहरे महत्वपूर्ण मार्गों और छोटे तथा सड़क के किनारे स्थित स्टेशनों को वाणिज्य के विकेन्द्रीकरण और डिब्बों तथा भण्डारण की सुविधाओं को प्रदान करने में धीमी और प्रतिक्रियात्मक बनी रही।

### सन्दर्भ सूची

1. W.P. Andrew, Indian Railways and their Probable Results (London : 1848) Andrew was Promoter and Director of the Sinde, Punjab and Delhi (SPD) Railway Company which served parts of the Northwest UP.
2. Annual Indian Railways Administration Report (RADR) 1866-67, In Parliamentray Papers (PP) 1867.
3. Development of Synergetic Anglo-Indian Construction Style in considered in Ian Derbyshire, "The building of Railways : The Application of Western Technology in the Colonial Periphery, 1850-1920" (Ch. 7) in Roy Meek and Deepak Kumar ed. Technology and the Raj (New Delhi : 1995).
4. Parliamentary Proceedings (pp) 1882 XLIX RADR 1881-82 for Construction Difficulties During the Early 1860s, Sec. E Davidson; Railway of India (London : 1868) and RPC December 1861, No. 18.
5. RPC 1876P/590 App. 71 Remote Station Location was also a Feature of the O&R Railway.
6. A Lakin is 100,000.
7. Farrukhabad Statistical Abstract (SA) (1884), P. 254, Returns in the Cawnpore SA (1881), Etawah SA (1876) and Allahabad SA (1886) Delinate the Size of River Traffic in this Zone During the 1870s in 1878-

- 79 Allahabad Received 3.5 Lakh mds from the Jamuna and 5.8 from the Ganges Very Little was sent UP-River.
8. There were 192 Pies to a rupee and a maund was equivalent to around 80-87 pounds in weight.
  9. RPC (EIR) September 1872, nos. 18-35; Supplement to Gazette of India 20 July 1872. Refined Sugar was carried by the EIR at 0.33 pie amount piece goods at 0.5 pie indigo at 0.66 pie and opium at 0.75 pie CRPC January 1875 Appendix).
  10. Mirzapur SA (1884), Patna witnessed decline as well. See Patna District Gazettee (DG), 1924.
  11. For Allah Migration - Mirzapur DG (1911), They took stone grain and passengers with them to the East and Returned with Rice and Coconuts in July in a good year, 600 boats would return, River falls first failed to cover maintenance charges in 1887 (Ghazipur DG 1908 P. 72).
  12. O & R Railway Annual Administration Report 1875-76. Also see Road Registration Reports 1881-82, 1882-83, 1891-92, and 1894-95 (in the NWP and Oudh Annual Rail borne Trade Reports, RBT) and RPC (1899 April No. 76 at which date Allahabad-Faizabad Road Traffic had still not been diverted).
  13. RPC September 1889 No. 376.
  14. RPC July 1875 Nos. 89-94; Moradabad SA (1883) for the absence of Pachade (Westman) Jat Carters at Chandausi.
  15. An important trading caste involved in longer distance and bulk commerce.
  16. RPC February 1882 No. 96 for Barhaj, See KN Singh - Barhaj; a study of the Changing pattern of a market town, National Geographical Journal of India, 7, 1 March 1961 PP 21-36.
  17. From 1885-86 River Traffic Report (in RBT) and RBT reports 1898-1914.
  18. A.K. Connel, The Economic Revaluation of India, London : 1883.
  19. FS Growse; Mathura : District Memoir (Allahabad 1880).
  20. RO Christensen, The state and Indian Railway Performance, 1870-1920, Part-I, Journal of Transport History Vol. 2, 2 September 1981, PP. 1-15.
  21. RADR 1871-72 appendix - Rendel Report (PP 1872 XIIIV 561).
  22. RADR 1906 (PP 1907 IXXV); 1910 (PP 1911) IVI).
  23. O&R Annual Administration Report 1875-76 for the 'Shift System' See RADR 1882 (PP. 1883 LII).
  24. Report on the Administration and Working of Indian Railway (T. Robertson) PP 1903 XIVII, Cd. 1773.
  25. Vernacular Newspaper Reports (VNR), held at Bush House London, 1 June, 1892.
  26. VNR 16 February 1891 'Najmu-I-Akbar' (ETawah).

\* \* \* \* \*

## जातिवाद एवं राजनीति के अन्तर्संबंध (वर्तमान परिप्रक्ष्य में)

डॉ. बृजेश सिंह\*

जाति भारतीय समाज का अटूट अंग है, जाति जो कि समाज में एकता संगठन का आधार रही है, जातिवाद भारतीय सामाजिक व्यवस्था की संतुलित मनोवृत्ति है या जातिगत आधारित गुटबंदी है। के.एन. शर्मा के अनुसार जातिवाद जाति के व्यक्तियों की वह सीमित भावना है, जो देश के या सामाजिक सामान्य हितों को ध्यान न रखते हुए शिक्षा, नौकरियों, सरकारी पद, राजनीतिक सत्ता व शक्ति प्राप्त कर केवल अपनी जाति के सदस्यों के उत्थान, जातीय एकता और जाति की सामाजिक प्रस्थिति को दृढ़ करने के लिए प्रेरित करती है अर्थात् व्यक्ति मनोवैज्ञानिक व व्यावहारिक दृष्टि से भी अपनी जाति के स्वार्थ हित व कल्याण की चिन्ता करता है।

यद्यपि औद्योगीकरण शिक्षा के प्रचार शहरीकरण की प्रवृत्ति से जातिगत बंधन ढीले होते जा रहे हैं पर दूसरी ओर जातिवाद की भावना अधिक प्रबल होती जा रही है। प्रजातंत्र स्वतंत्रता, समानता व बन्धुत्व के सिद्धान्त पर आधारित है पर एक सुनियोजित राजनीति के तहत जातिवाद से भेदभाव, सामाजिक असमानता, धार्मिक कट्टरता, जाति विद्वेष की खाई चौड़ी होती जा रही है। लोकसभा, विधानसभा, स्थानीय संस्थाओं के चुनावों में जातिवाद के आधार पर चुनाव लड़ जाते हैं। नेता जाति के नाम पर वोट मांगते हैं और जाति विशेष के आधार पर ऐसे व्यक्ति चुन लिए जाते हैं जो राष्ट्र व समाज के हितों को प्रधानता देने की बजाय केवल अपनी जाति के हितों को प्रधानता देते हैं। हमारे यहां सियासी राजनीति की फितरत जाति व धर्म से गंभीर रूप से जुड़ी हुई है। राजनीतिक दल संसदीय प्रजातंत्र चलाने के लिए आज धर्म, जाति, वर्ग भाषा आदि का सहारा लेते हैं। चुनावी माहौल पर नजर डालें, तो लोकतंत्र की विकृत तस्वीर सामने आती है। आज राजनीतिक दलों पर जातिवाद हावी होता नजर आता है, जो लोकतंत्र के लिए नुकसानदेह है।

भारतीय राजनीति में जब कोई राजनेता या राजनीति दल किसी मसले का हल नहीं कर पाता तो तुरन्त उसे जाति का रंग दे देता है। शायद यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि भारतीय राजनीति में जाति एक लाभ पदावली बन गयी है। विकास की विविध समस्याओं जैसे गरीबों को रोजी रोटी उपलब्ध कराना या लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना आदि में सरकार असफल होती है तब सूनीयोजित तरीके से जाति को अहम मसला बना कर प्रस्तुत कर दिया जाता है। निर्धनों की दशा सुधारने में असफल रही तो हरिजनों पर अत्याचार का मामला उछाल दिया जाता है।

सम्प्रति समाज की सामाजिक संरचना सम्बद्ध संस्थाओं, सभायुगीन सम्प्रत्ययों की संकुल संगठन होती है। जाति सामाजिक संस्थाओं में एक विलक्षण अकिंचन आश्चर्यजनक अन्वेषणीय चिरकालिक सांस्कृतिक घटना है।<sup>1</sup> जाति ने हिन्दू समाज को अनेक समूहों में विभक्त किया है जिनकी मानप्रतिष्ठा सामाजिक परिस्थिति तथा भूमिका के स्तर भी जन्मना, आनुवंशिकता के आधार पर भिन्न है।<sup>2</sup> इस स्तरीकृत जाति प्रणाली में शूद्रों को अति निकृष्टतम स्थान प्राप्त है। ये जाति के सिद्धान्तानुसार चार प्रकार के वर्ण धर्मबद्ध समाज की पांचवीं श्रेणी है।<sup>3</sup> प्राचीन धर्म ग्रन्थों में इन्हें चाण्डाल, अन्त्यज, खपच, पतित आदि नामों से संज्ञापित किया गया है। ये सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से कोढ़ी, दास, पतित, अगतिशील वेदाध्ययन तथा यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने का अधिकार नहीं है।<sup>4</sup> इन्हें उपनयन संस्कार, वेदाध्ययन तथा यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित करने का अधिकार नहीं है।<sup>5</sup> इन्हें न केवल गांवों से ही पृथक् कर दिया गया था अपितु उनके लिए ऐसे कर्तव्यों तथा अवलाभों को निर्धारित कर दिया गया जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे मानवता के अधम उदाहरण थे।<sup>6</sup> अतः स्पष्ट होता है कि प्राचीन धर्मशास्त्रों में वर्णित कानून लोकतंत्र की दृष्टि से सबके लिए समान आधार आश्रित न होकर जातीय दृष्टिकोण पर आधारित थे। परिणामतः पंचमवर्ग की स्थिति नगण्य और उनका जीवन निरर्थक प्रतीत होता है।

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, पी.बी.पी.जी. कॉलेज, प्रतापगढ़

उपर्युक्त प्राचीन संदर्भ ग्रन्थीय अभिव्यक्तियों एवं विभिन्न विद्वानों के ऐतिहासिक अध्ययनों से स्पष्ट है कि तत्कालीन सामाजिक संरचना का संग्रन्थित, संकुल स्वरूप सामाजिक असमानता, जन्मना संस्तरण एवं कतिपय जातीय समुदायों के विशेषाधिकारों से गृहित रहा है। सामाजिक सम्पर्क, सार्वजनिक वस्तुओं के संसर्ग, शिक्षा एवं आवासीय प्रतिबन्ध, व्यावसायिक कुण्ठा तथा आर्थिक शोषण, मन्दिरों में प्रवेश से वंचित, संस्कारों एवं धार्मिक रूढ़ियों से बद्ध, सुविधाओं से त्यक्त, दण्ड के क्रूर विधानों से प्रताड़ित अस्पृश्य जातियाँ सामाजिक दृष्टि से कोढ़ी, धार्मिक दृष्टि से पतित, आर्थिक दृष्टि से अगतिशील तथा राजनीतिक रूप से अचैतन्य एवं अजागरूक रही है।

वस्तुतः परिवर्तन के निर्देश्य रूप में धर्मसूत्र लेखकों एवं ऐतिहासिक आध्यात्मिक अध्येताओं द्वारा प्रोक्त विवरण इतना विरल और टुटा हुआ है कि अनुसूचित जातियों में परिवर्तन तथा गतिशीलता की पूर्ण अरुद्धता की कल्पना भ्रामक प्रतीत होती है। परिवर्तन समाज की अपरिहार्य स्थिति है।<sup>7</sup> आर्ययीकरण से लेकर औद्योगिकीकरण तक तथा ब्रिटिश शासनकाल में संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण ने परिवर्तन तथा गतिशीलता में वृद्धि की है।<sup>8</sup> इस प्रकार आधुनिकीकरण की ओर बढ़ते हुए परिवर्तन के अनेक आयामों में गुम्फित हरिजन समुदाय वर्तमान परिवेश में स्वतंत्र गणतन्त्रीय समाजवादी प्रजातन्त्र का विकासमान प्रत्यय है।

वस्तुतः भारत की आजादी भारत के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की प्रथम स्तम्भ थी। आजाद होना मात्र अंग्रेजों से नहीं था, आजाद होना था सामाजिक रूढ़ियों से, सांस्कृतिक विडम्बनाओं से, आर्थिक उलझनों से, वैज्ञानिक पिछड़ापन, तथा शैक्षणिक गिरावट से। इसी अर्थों में स्वतंत्रता मात्र एक साधन रही है। इस प्रक्रिया से हरिजन कैसे अछूता रह सकता था। मूर्धन्य अध्येता भौतिक जीवन को ऊँचे स्तर तक ले जाने वाली प्रक्रिया को ही आधुनिकीकरण मान बैठे हैं लेकिन वास्तविक आधुनिकीकरण तो अनुसूचित मानस का विस्तार होना है, उसकी वैचारिकी, मूल्यों, मनोवृत्तियों में परिवर्तन होना है जो वर्षों से राष्ट्रीय विघटन, सामाजिक अलगाव और संस्कृतिक उथल-पुथल के बीच ऊबता-डूबता रहा है। यह प्रपत्र और कुछ नहीं केवल एक नम्र प्रयास है उन मानसिक स्थिति को व्यावहारिक स्थिति में पकड़ने की जो परिवर्तन के कुछ प्रमुख प्रत्ययों को आलोचित करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि जाति व्यवस्था के अन्तर्गत आनुवंशिक श्रेणी क्रम पाया जाता है कि जिसमें प्रत्येक जाति एक दूसरे से उच्च या निम्न होती है तथा इस उपजाति या जातीय दूरी को प्रत्येक जाति मान्यता भी देती रही है। यद्यपि सामाजिक असमानता को वैधानिक अमान्यता एवं अन्य क्रिया-कलापों के परिप्रेक्ष्य में उक्त आत्मचिन्तन स्वरूप में अवश्य ह्रास हुआ है लेकिन परम्परागत मान्यताओं के प्रति अभिव्यक्ति आज भी महत्त्व है।

जाति व्यवस्था में उच्चता, निम्नता का संस्तरण अद्यतन सार्वभौम है। ज्ञातव्य है कि उच्च जातीय सदस्यों का सम्बोधन उनके मानस में अकिंचन स्वयं को निम्न मानने की अनुभूति है। यह विभेद की प्रतिष्ठा है। यद्यपि समतावादी तथा विद्रोही स्वर भी मुखरित है लेकिन प्रतिशतता अल्प है।

स्व० जयप्रकाश नारायण का कथन “भारत में जाति ही सर्वप्रमुख राजनीतिक दल है।” पंचायत से लेकर लोक सभा तक के चुनावों में यह उचित प्रतीत होता है। चुनाव का प्रत्येक कदम उम्मीदवार का चयन, नामांकन, टिकट वितरण, चुनाव प्रचार व मतदान जातिवाद से प्रभावित होता है। राजनीतिक दल जनता को गुमराह करते हैं, ग्रामीण जनता औचित्य व विवेक से योग्यतम प्रत्याशी का चयन करने की बजाय जातिगत आधार पर मतदान करते हैं। जातिवाद की दुहाई देकर वोट बटोरने वाले नेता अपनी जाति के दूसरे नेताओं से राजनीति के स्वार्थों की वजह से झगड़ते नजर आते हैं। जब एक ही जाति के नेता कभी एक नहीं हो सकते तो बिरादरी का भला कैसे कर सकते हैं? आज राजनीति सिद्धान्तविहीन हो गई है। जातीय आधार राजनीतिक दलों द्वारा अपने वोट बैंक को कायम रखने का एक प्रमुख हथियार बन गया है। पिछले दो दशकों से धार्मिक असहिष्णुता तथा जातीय संघर्षों में लगातार वृद्धि हो रही है। चाहे 1984 में सिख विरोधी दंगे या 1992 की बाबरी मस्जिद तोड़ने की घटना या 2002 में गोधरा के दंगे या दलितों पर हमला ये घटनाएँ हम भारतीयों को गम्भीरतापूर्वक सोचने को मजबूर कर देती हैं कि क्या हम जातिवादी कट्टरताओं धार्मिक असहिष्णुता को जारी रहने देंगे या इसे रोकने को मजबूर कर देती हैं कि क्या हम जातिवादी का गढ़ कहा जाता है क्षेत्र विशेष में जिस जाति का बाहुल्य है। जाति पर आधारित राजनीतिक दल साम्प्रदायिक ताकतों से लड़ने की कसमें खाते हैं। साल भर आम सभाओं में दिए जाने वाले भाषणों में जातिवाद को कोसा जाता है परन्तु चुनाव के समय जाति के नाम ही पर वोट माँगे जाते हैं।

जातिवाद के कारण आज समुदाय में विभक्त होता जा रहा है। राष्ट्र व समाज के दृष्टिकोण की उपेक्षा कर केवल जातिगत कल्याण के लिए सोचने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। देश का प्रबद्ध वर्ग भी इसी रूझान का पिछलग्गू



है जिससे सच्ची, स्वस्थ, राष्ट्रीयता का विकास नहीं हो पा रहा है। इन जातियों में आए दिन ऊँच-नीच, श्रेष्ठता को लेकर विवाद होते रहते हैं। आम नागरिकों में जाति की मान्यता इतनी गहरी है कि व्यक्ति की समग्र पहचान जाति बनी हुई है। व्यक्ति का पेशा, स्वभाव, चरित्र, संस्कृति जाति में निहित है। सामाज के लिए अभिशापित इस व्यवस्था ने समाज को विखण्डित कर छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट दिया है।

जातिवाद के प्रभाव में सामाजिक समरसता की बातें काल्पनिक रह गई हैं। समाज में दरारें बढ़ती जा रही हैं। जाति के आधार पर बने राजनीतिक दल साम्प्रदायिक ताकतों से लड़ने की कसमें खाते हैं। जातिगत व्यवस्था की जड़े भारतीय में इतनी गहरी बैठी हुई हैं कि कानूनों के द्वारा भी इन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता है। उचित शिक्षा के माध्यम से लोगो की मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाकर, जातिवाद के विरुद्ध स्वस्थ जनमत जाग्रत अन्तर्जातीय विवाहों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया है। जाति व्यवस्था की समाज पर इतनी गहरी छाप है कि एक जाति के व्यक्ति दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करते हैं। पर इनमें सामूहिक चेतना का आभाव है। गरीबी, भ्रष्टाचार, भुखमरी, अपराध, पिछड़ेपन से नागरिकों का नैतिक पतन होता जा रहा है, क्योंकि जातिगत आधारों पर हम केवल अपने स्वार्थ के लिए सोचते हैं, राष्ट्रीय महत्व से जुड़े मुद्दों पर हमारे विचार एक रूप नहीं हो पाते हैं। प्राचीन सभ्यता जो सामाजिक समरसता पर आधारित थी पर आज हम जातिगत दलदल में इस कदर फँसे हुए हैं कि इंसानों के बीच जातिगत भेदभाव की दीवारें मौजूद हैं। प्रेम, शान्ति, इंसानियत नहीं, बल्कि नफरत, ईर्ष्या, हिंसा के जीवाणु फैले हुए हैं। समाज में सबसे बड़ी कमी राष्ट्रीय एकता व सामाजिक समरसता की हैं, क्योंकि जातिवाद का जहर समाज में घुला हुआ है। जातिवाद से धार्मिक कट्टरता को प्रोत्साहन मिला है। यद्यपि राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे आदि समाज सुधारकों ने जातिवाद के विरुद्ध आवाजें उठाई जाँत-पाँत के भेद-भाव, छुआछूत, ब्राह्मणवाद का विरोध किया। महात्मा कबीर ने जाँत-पाँत पर कुठारघात करते हुए कहा-“जात पात पूछै नहीं कोई हरि को भजे सो हरि का होई।” यदि गुजरात के वर्तमान चुनाव पर नजर डालें तो वहाँ भी राजनीतिक क्षेत्र में उभरते हुए चेहरे जैसे हार्दिक पटेल और जिग्मवेश मेवानी भी जातिवाद से अछूते नहीं हैं।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुनन्दा पटवर्धन : चेन्ज एमन्ज इण्डियाज हरिजन्स, ओरियन्ट लॉग मैन, दिल्ली, 1973 पृ. 4-5
2. निरूपण विद्यालंकार : भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति, साहित्य भण्डार, मेरठ 1971 पृ. 426
3. जे0एच0 हट्टन : कास्ट इन इण्डिया, आक्सफोर्ड 1943 पृ. 206
4. उपर्युक्त, पृ. 2017
5. डी0एन0 मजूमदार : रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई, 1958 पृ. 226
6. जी0एस0 घुर्ये : जाति, वर्ग एवं व्यवसाय, पापुलर प्रकाशन, बम्बई, 1961, पृ. 24
7. आर0 आईसैक हेराल्ड : इण्डियन एक्स अनटमेंबुल्स, जानी डे, न्यूयार्क, 1965 पृ. 31
8. एम0 एन श्रीनिवास : कास्ट इन मार्डन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस बाम्बे, 1962 पृ. 42-62
9. एम0एन0 श्रीनिवास : पूर्वोक्त पृ. 70
10. नर्मदेश्वर प्रसाद : जाति व्यवस्था, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1965 पृ. 84
11. ए0आर0 देसाई : रूरल इण्डिया इन ट्रान्जिशन, पापुलर बुक डिपो, बम्बई 1967 पृ. 165-66
12. आस्कर ल्युइस : विलेज लाइफ इन नार्दन इण्डिया, यूनिवर्सिटी ऑफ इलियन्स अरबना 1958 पृ. 142

\* \* \* \* \*

## भारतीय समाज में उपेक्षित समूहों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने में सामाजिक न्याय की भूमिका का अनुशीलन

डॉ. रमेश चन्द्र प्रजापति\*

उपेक्षित समूह से तात्पर्य ऐसे समूह से है जो सामाजिक रूप से बहिष्कृत है तथा जिसे समाज की मुख्य धारा से हाशिये पर धकेल दिया गया है। ऐसे समूह प्रायः अल्पसंख्यक समूह के अन्तर्गत आते हैं, और सामान्यतः इनके हितों की अनदेखी की जाती है। उपेक्षित समूहों को वंचित समूह के रूप में भी जाना जाता है। ये लाभ से वंचित समाज के ऐसे समूह हैं, जो संसाधनों तक अपनी पहुँच सुनिश्चित करने तथा सामाजिक जीवन में पूर्ण सहभागिता हेतु संघर्षरत रहते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उपेक्षित समूह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और कानूनी रूप से उपेक्षित और बहिष्कृत भी हो सकते हैं और इसीलिए वे असुरक्षित होते हैं।

मानवाधिकारों सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार उपेक्षित समूह के अन्तर्गत वे लोग आते हैं, जिनकी प्रत्याभूत अधिकारों तक स्वतंत्र पहुँच सुनिश्चित नहीं होती है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दशाओं के परिप्रेक्ष्य में इनकी परिभाषा बदलती रहती है। सामान्य रूप से महिलाएं, बच्चे, सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्ग, निःशक्त और अल्पसंख्यक सभी उपेक्षित समूह के अन्तर्गत आते हैं। इनकी ऐसी स्थिति के लिए मुख्य रूप से निर्धनता ही उत्तरदायी होती है। इसके अतिरिक्त जिन लोगों के साथ लिंग, प्रजाति, जन्म, समुदाय अथवा धर्म के आधार पर विभेद किया जाता है, सामान्यतया उन्हें भी उपेक्षित समूह में शामिल किया जा सकता है। हालाँकि इन लोगों के साथ होने वाले भेदभाव का स्वरूप प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न हो सकता है।

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक प्रत्येक समाज में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलता है, जहाँ पर समाज के किसी समूह के साथ विभेदात्मक व्यवहार दिखाई देता है। सामान्यतः उपेक्षित समूहों के साथ होने वाला विभेदात्मक व्यवहार प्रायः उनके अपमान, उत्पीड़न एवं उन्हें डराने-धमकाने के रूप में देखने को मिलता है और ऐसे व्यवहार को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परम्पराओं तथा सांस्कृतिक कारकों से अनुचित समर्थन भी प्राप्त होता है। वंचित वर्गों की दयनीय दशा का मुख्य कारण उनकी कमजोर आर्थिक स्थिति जिम्मेदार होती है, परन्तु इसके साथ ही साथ लिंग निःशक्तता और सांस्कृतिक कारक भी इस विभेद के लिए समान रूप से जिम्मेदार हैं।

भारत में सामाजिक-आर्थिक रूप से प्रतिकूल परम्परागत व्यवहार और सदियों पुराना शोषण प्रचलित है, जिसने समाज के विभिन्न वर्गों के विकास को अवरुद्ध किया है। तकनीकी प्रगति, वैज्ञानिक विकास और आर्थिक प्रगति के साथ-साथ मानव जीवन व समाज में जबरदस्त परिवर्तन परिलक्षित हुए और नागरिक सुख-सुविधाओं में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई, लेकिन इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों से परे भी भारतीय समाज के कुछ वर्ग अभी भी असुरक्षित, उपेक्षित, वंचित तथा अलाभकारी स्थिति में हैं और समाज की मुख्यधारा से काफी दूर हैं। ज्ञान के अभाव में निःशक्त लोगों की संख्या दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है। आमतौर पर कहाते हैं कि निःशक्त लोग विकासशील देशों में न केवल सर्वाधिक वंचित हैं, बल्कि वे सर्वाधिक उपेक्षित भी हैं। निःशक्त लोग सभी तरह के सामाजिक और आर्थिक विकास के अवसरों से वंचित हैं। स्वास्थ्य शिक्षा और रोजगार जैसी मूलभूत सुविधाओं से उन्हें वंचित रखा जाता है। भारत में निःशक्त व्यक्तियों की समस्या से निपटने में राज्य की आधारभूत अवसंरचना पूरी तरह से अनुकूल नहीं है। लगभग 70% निःशक्त लोग बेरोजगार हैं। शारीरिक रूप से निःशक्त लोगों पर कम से कम ध्यान तो दिया ही जाता है, जबकि मानसिक रूप से पीड़ितों की भी समाज द्वारा अनदेखी की जाती है। शारीरिक समस्याओं के

\* शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज

साथ-साथ उन्हें सामाजिक कलंक एवं बहिष्कार भी झेलना पड़ता है। उपेक्षित, वंचित समूहों को समाज की मुख्य धारा में शामिल कर एक स्वस्थ समाज की स्थापना सम्भव बनाया जा सकता है। जहाँ समाज के सभी वर्ग बिना भेदभाव (भाषा, जाति, पंथ, सम्प्रदाय, लिंग, धर्म आदि) के समाज में आत्म-सम्मान एवं समान अधिकार उपलब्ध कराके आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से सशक्त हो सके। समानता और समान अधिकार न्यायपूर्ण समाज की स्थापना सामाजिक न्याय की अवधारणा को अपनाकर सुनिश्चित किया जा सकता है। सामाजिक न्याय मुख्यतः विधिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त करता है और समाज के उपेक्षित समूहों को समाज के मुख्यधारा से जोड़ने में मदद करता है।

आधुनिक युग में जान राल्स और अमर्त्य सेन जैसे विचारकों ने सामाजिक न्याय को एक प्रमुख अवधारणा बना दिया है। वर्तमान में लोक कल्याणकारी राज्य का मूल लक्ष्य भी सामाजिक न्याय की स्थापना करना है। सामाजिक न्याय से आशय एक ऐसे न्यायपूर्ण समाज की स्थापना से है, जिसमें सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ न्यूनतम हो, समाज समावेशी हो और संसाधनों का वितरण सर्वमान्य स्वीकृति के आधार पर हो। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए समाज के प्रत्येक वर्गों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक-आर्थिक कल्याण की न केवल कई योजनाएँ सरकार द्वारा चलाई जा रही हैं, बल्कि अनेक नीतिगत प्रयास भी किये जा रहे हैं।

सामाजिक न्याय का उद्देश्य राज्य के सभी नागरिकों को सामाजिक समानता उपलब्ध कराना है। समाज के प्रत्येक वर्ग के कल्याण के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आजादी आवश्यक है। भारत एक कल्याणकारी राज्य है और यहाँ सामाजिक न्याय का मुख्य उद्देश्य लैंगिक, जातिगत, नस्लीय एवं आर्थिक भेदभाव के बिना सभी नागरिकों की मूलभूत अधिकारों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना है।

मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच प्राथमिकता को लेकर विवाद रहा है। 20वीं सदी में सामाजिक न्याय की अवधारणा के तीव्र विकास के साथ ही उपरोक्त दोनों मूल्यों में व्याप्त भिन्नता और भी अधिक स्पष्ट हुई है। अतः एक ओर जहाँ पश्चिमी पूँजीवादी देशों ने अपनी संवैधानिक योजना में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रमुखता दी है, वहीं दूसरी ओर समाजवादी देशों ने सामाजिक न्याय को सर्व प्रमुख माना। जबकि राजनीतिक व्यवस्थाओं ने प्रमुखतया उदारवादी लोकतंत्र को अपनाते हुए सामाजिक न्याय व व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मध्य बेहतरीन सामंजस्य स्थापित किया है। भारतीय राजव्यवस्था में उदारवादी राजनीतिक लोकतंत्र के साथ-साथ समाजवादी आदर्शों को भी अपनाया गया है और इसे ध्यान में रखते हुए ही संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का उल्लेख किया गया है। भारत के संविधान निर्माताओं ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय में संतुलन स्थापित करने के उद्देश्य से संविधान के भाग (3) में मौलिक अधिकारों के रूप में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को और भाग IV में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत सामाजिक न्याय को सुनिश्चित किया गया है।

सामाजिक न्याय को कठोर प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध कमजोर, वृद्धों, दीन-हीनों, महिलाओं, बच्चों और अन्य सुविधा वंचितों को राज्य द्वारा संरक्षण के अधिकार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हम कह सकते हैं कि यह सिद्धान्त एक विषमतामूलक समाज के सर्वसमावेशी समाज के रूप में परिवर्तन में एक मार्गदर्शक का कार्य करता है। उल्लेखनीय है कि सामाजिक न्याय की संकल्पना का आविर्भाव सामाजिक अन्याय की पृष्ठभूमि में हुआ है। यह सबके लिए समान विकासीय दशाओं तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समानता सुनिश्चित करता है। सामाजिक न्याय न केवल एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करता है; बल्कि लोगों में विद्वेष और असांजस्य को भी समाप्त करता है। अतः भारत में एकता और सामाजिक स्थायित्व सुनिश्चित करने की दृष्टि से सामाजिक न्याय अत्यधिक महत्व है।

भारत के भूतपूर्व न्यायधीश के० सुब्बाराव के अनुसार, सामाजिक न्याय को हम व्यापक और सीमित दो अर्थों में समझ सकते हैं। सीमित अर्थों में इसका तात्पर्य लोगों के व्यक्तिगत सम्बन्धों में अन्याय को समाप्त करने से है, जबकि व्यापक अर्थों में इसका तात्पर्य लोगों के जीवन में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संतुलन कायम करने से है। अतः सामाजिक न्याय को व्यापक अर्थों में ही समझा जाना चाहिए। चूँकि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियाँ परस्पर अंतर्संबंधित हैं, इसलिए जब तक समाज हर तरह से प्रगति नहीं कर लेता तब तक

सामाजिक न्याय को उसके सीमित अर्थों में भी सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सामाजिक न्याय एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना में सहायक है।

सामाजिक न्याय का मूल उद्देश्य समाज में महिलाओं, पिछड़े वर्गों, जनजातीय समुदायों, दिव्यांगों, वृद्धों और अन्य अनाथ बच्चों को समाज की मुख्य धारा से जोड़कर एक समावेशी समाज की स्थापना करना है। सामाजिक न्याय का लक्ष्य उस व्यवस्था की समाप्ति है जिसमें रूसो के शब्दों में, “कोई व्यक्ति इतना अमीर न हो कि दूसरे व्यक्ति के जीवन पर नियंत्रण करे, न ही कोई व्यक्ति इतना गरीब हो कि वह स्वयं को बेचने को बाध्य हो जाय।” सामाजिक न्याय की संकल्पना का मुख्य उद्देश्य पूँजीवादी सिद्धान्त की कल्याणकारी विचारधारा को समाजवादी व्यवस्था के समतावादी लक्ष्य के साथ समायोजित करके समाज के प्रत्येक वर्ग का उत्थान एवं संतुलित विकास सुनिश्चित करना है।

विगत कुछ वर्षों में केन्द्र सरकार व विभिन्न राज्य सरकारों ने समावेशी और सम्पोषणीय विकास पर ध्यान केन्द्रित किया है। समाज के साथ-साथ सामाजिक न्याय शब्द भी अब काफी प्रचलित हो गया है तथा बुद्धिजीवियों, नीति-निर्माताओं और गैर सरकारी संगठनों में यह चर्चा का विषय बना हुआ है। कुछ बुद्धिजीवी तथा नीति-निर्धारक सामाजिक न्याय को समानता से जोड़कर देखते हैं, वही कुछ लोग इसका अर्थ स्वतंत्रता से लगाते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि सामाजिक न्याय के लिए स्वतंत्रता और समानता दोनों का होना जरूरी है, वही कुछ लोग एक कदम और आगे बढ़कर सामाजिक न्याय को समाज में बंधुता के रूप में देखते हैं। पूँजीवादी विचारक समानता की तुलना में स्वतंत्रता को वरीयता देते हैं। पूँजीवादी विचारक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था, प्रतिस्पर्धा, लाभ एवं विकास पर बल देते हैं, इसलिए उनकी दृष्टि में समानता के लिए विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। उपयोगितावादी विचारकों की मान्यता भी बहुत कुछ इसी प्रकार की है। उनका मानना है कि समाज में उपयोगिता की दृष्टि से व्यक्तियों के प्रकार्य भिन्न होते हैं। इसलिए उन्हें प्राप्त होने वाली आय में भिन्नता का होना स्वाभाविक है। उदारवादी विचारकों का मानना है कि आर्थिक क्रियाओं में समाज या राज्य का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। वे चयन की स्वतंत्रता को निजी स्वामित्व पर आधारित अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक व्यवस्था का आधारभूत तत्व मानते हैं। समाजवादी विचारकों के अनुसार, लाभ अर्जन की अनियंत्रित लालसा पर प्रभावकारी नियंत्रण लगाया जाना निर्धन, गरीब व शक्तिहीन लोगों की रक्षा की दृष्टि से जरूरी है जो कि राष्ट्रीयकरण और सार्वजनिक स्वामित्व के अधीन उत्पादन तथा उद्योगों पर राज्य के प्रभावकारी नियंत्रण के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। साम्यवादी विचारकों विशेष रूप से मार्क्स व एंजिल्स ने एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना पर जोर दिया है जिसमें समानता और असमानता का विवाद अप्रासंगिक हो जाता है। मार्क्सवादी विचारक एक वर्गविहीन और राज्यविहीन समाज की कल्पना करते हैं। जहाँ समाज से शोषण की समाप्ति होगी, निजी पूँजी पर प्रतिबंध होगा और सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ न्यूनतम होगी तथा समाज का नारा प्रत्येक अपनी योग्यता के अनुसार तथा प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार होगा।

स्वतंत्रता और समानता सामाजिक न्याय के मूलभूत तत्व हैं। दोनों में से किसी एक का अभाव सामाजिक न्याय का अभाव है। स्वतंत्रता व्यक्ति की अंतर्निहित शक्तियों के विकास के लिए जरूरी है। स्वतंत्रता के अभाव में उसकी सृजनशीलता, कार्यशीलता और उद्यमिता क्षीण होती है, जिससे समाज में उसका योगदान कम होता है। समानता के अभाव में दासत्व की स्थिति निर्मित हो जाती है। कुछ लोग बहुत आगे बढ़ जाते हैं वहीं लोग पीछे रह जाते हैं। स्वतंत्रता एवं समानता दोनों ही न्याय की दृष्टि से आवश्यक हैं।

सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में बहुत पहले ही भारत के संविधान में संवैधानिक एवं विधिक उपायों के माध्यम से प्रतिष्ठापित किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय संविधान निर्माता सामाजिक समानता और लोगों के कल्याण की भावना से अत्यधिक प्रभावित थे भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय के साथ-साथ विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समता सुनिश्चित की गयी है। सामाजिक न्याय में समानता और स्वतंत्रता दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। समानता का संविधान के भाग 3 के मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत समाहित किया गया है। मूल अधिकारों के अन्तर्गत समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18), शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24), धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28) और संस्कृति व शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29-30) भी

सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न वैधानिक आयोगों (महिला आयोग, मानवाधिकार आयोग, अल्पसंख्यक आयोग आदि) के गठन के माध्यम से सभी लोगों के लिए सामाजिक न्याय की उपलब्धता सुनिश्चित किया गया है।

यद्यपि संविधान के भाग-4 में राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत भारत में एक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना सुनिश्चित की गयी है जो सामाजिक न्याय का ही एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। अनुच्छेद-38 में प्रावधान किया गया है कि राज्य लोगों के कल्याण की अभिवृद्धि के लिए प्रयास करेगा तथा साथ ही साथ आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास भी करेगा। अनुच्छेद-39 में राज्यों को कुछ अनुसरण करने वाली नीतियों का प्रावधान किया है। जिसमें राज्य, समान कार्य के लिए समान वेतन, सामूहिक हित, जीविका के पर्याप्त साधन आदि की उपलब्धता सुनिश्चित करेगा। अनुच्छेद 39(ए) समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता, अनुच्छेद 41 कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार, अनुच्छेद 42, राज्य काम की न्यायसंगत और मनोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबन्ध करेगा। अनुच्छेद 46, राज्य जनता के दुर्बल वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि के साथ-साथ सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा उपलब्ध कराना सुनिश्चित करेगा।

भारतीय संविधान में समाजवाद आय की असमानता को समाप्त करने और जीवन स्तर के मानकों को सुधारने के लक्ष्य के रूप में निहित है। डी0एस0 नाकरा बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने समाजवाद को स्पष्ट करते हुए कहा है कि एक समाजवादी राज्य का प्रमुख उद्देश्य आय तथा प्रतिष्ठा की असमानता और जीवन स्तर में विद्यमान असमानता को समाप्त करना है। समाजवाद का मूल लक्ष्य कार्यशील लोगों को गरिमापूर्ण जीवन और विशेषकर जीवनपर्यन्त सुरक्षा उपलब्ध कराना है।

किसी भी देश में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक, न्याय की स्थापना में पशासन प्रमुख भूमिका निभाता है। 1991 के अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से आर्थिक सुधारों के साथ-साथ लोक कल्याणकारी राज्य की प्रवृत्ति को बनाये रखने की दृष्टि से नौकरशाही की प्रासंगिकता में कई गुना वृद्धि हुई है। अब इसी नौकरशाही को विकास प्रशासन के नाम से जाना जाता है। भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना में नौकरशाही/प्रशासन को एक अभिकर्ता के रूप में स्थापित करने वाले प्रमुख प्रावधान हैं। (1) शासन का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण (73वाँ और 74वाँ संविधान संशोधन), (2) सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए सार्वजनिक-निजी सहभागिता (PPP) को प्रोत्साहन, (3) लाइसेंस राज की समाप्ति, (4) कल्याणकारी योजनाएँ (आर.टी.आई., सिटीजन चार्टर) और ई-शासन के साथ-साथ शासन में अधिकाधिक जवाबदेहिता और पारदर्शिता।

भारतीय समाज व्यवस्था में सामाजिक न्याय व्यवस्था को स्थापित करने में भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, राज्य के नीति निर्देशक तत्व, सामाजिक उपाय, राजनीतिक एवं प्रशासनिक उपाय आदि के माध्यम से सामाजिक न्याय का मार्ग प्रशस्त हुआ तथा उपेक्षित समूहों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का सार्थक प्रयत्न किया गया है।

### सन्दर्भ-सूची

1. अग्रवाल, जी0 के0 (2008), समाजशास्त्र, आगरा : एस0 बी0 पी0 डी0 पब्लिशिंग हाउस।
2. डॉ0 जगदीश सक्सेना, सामाजिक सुरक्षा, कुरुक्षेत्र, जुलाई 2019 अंक, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, नई दिल्ली।
3. प्रमोद जोशी, वृद्धों और दिव्यांगों हेतु सामाजिक सुरक्षा, कुरुक्षेत्र, अंक जुलाई 2019
4. शर्मा, अमित कुमार (2006), भारतीय समाज की संरचना, नई दिल्ली : एन0 सी0 ई0 आर0 टी0 पब्लिकेशन।
5. शर्मा, गुप्ता (2012), भारतीय सामाजिक समस्याएं, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, (उ.प्र.)
6. मिश्रा, एस0एच0 मिश्रा (2009), भारतीय दण्ड संहिता, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

\* \* \* \* \*

## विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता जनित करने में संचार-साधनों की भूमिका

डॉ. ब्रह्म स्वरूप श्रीवास्तव\*

वस्तुतः भारत गांवों का देश है, जहाँ अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण-क्षेत्रों में निवास करती है। प्रस्तुत शोध-अध्ययन का संदर्भित क्षेत्र उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर जनपद की जखनियां क्षेत्र-पंचायत; जिसकी अधिसंख्य जनता ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी-रेखा से नीचे निवास कर रही है। सरकार ने ग्रामीण विकास हेतु विभिन्न प्रकार की योजनाओं तथा कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया है, जिसमें से अनेक योजनाएं संदर्भ क्षेत्र में संचालित हो रही हैं। निश्चित रूपसे विकास कार्यक्रम तथा योजनाएं तभी लाभकारी होंगी जबकि आम नागरिक को इनकी पूर्ण जानकारी हो। जानकारी के अभाव में इन योजनाओं के माध्यम से लक्ष्य की पूर्ति नहीं होगी।

शोध-क्षेत्र के अंतर्गत क्रियावित विकास-कार्यक्रमों तथा योजनाओं के अभिज्ञान हेतु ग्राम-पंचायतें, समाचार-पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, दूरदर्शन, टेलीफोन, मोबाइल फ़ोन, कम्प्यूटर आधारित सूचना-तंत्र तथा खण्ड विकास कार्यालय इत्यादि ग्रामवासियों के लिए सूचना के माध्यम हैं। अतः इन्हीं संदर्भों के आलोक में अनुसंधाता ने अध्ययन-क्षेत्र के अंतर्गत क्रियावित विभिन्न प्रमुख विकास-कार्यक्रमों (यथा स्वर्ण जयंती ग्राम रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना, राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना इत्यादि) के प्रति सूचनादाताओं की जानकारी एवम् जागरूकता की दशाओं का अध्ययन करने का यथेष्ट प्रयत्न किया गया है। विस्तृत विवरण को अग्रलिखित सारणियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

1. विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता : अध्ययन-क्षेत्र के अंतर्गत क्रियान्वित विभिन्न ग्रामीण विकास-कार्यक्रमों के प्रति सूचनादाताओं की जागरूकता है अथवा नहीं; की स्थिति पर गहन अध्ययनार्थ विभिन्न चरों यथा आयु, जाति, व्यवसाय, आय और शैक्षिक स्तर के आधार पर विश्लेषण किया गया है। जिसके लिए अग्रंकित सारणियों 1, 2, -3,4,5 का अवलोकन ध्यात्तव्य है।

1. आयुवर्ग के आधार पर विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता: सूचनादाताओं का विवरण आयुवर्ग के आधार पर विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता की स्थिति

सारिणी-1

सूचनादाताओं का आयुवर्ग	सूचनादाताओं की आवृत्तियाँ एम् प्रतिशत						समस्त योग
	विकसित गांव		अर्द्ध-विकसित गांव		अविकसित गांव		
	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	
20-30 वर्ष	14(19.4)	08(28.6)	18(29.0)	16(42.1)	10(24.4)	14(23.7)	80(26.7)
30-40 वर्ष	28(38.9)	11(39.3)	29(46.8)	14(36.8)	12(29.3)	20(33.9)	114(38.0)
40-50 वर्ष	08(11.1)	03(10.7)	09(14.5)	03(07.9)	09(22.0)	12(20.3)	14.7(62)
50 वर्ष से अधिक	22(30.6)	06(08.3)	06(09.7)	05(13.2)	10(24.3)	13(22.1)	62(20.6)
समस्त योग	72(100.0)	28(100.0)	62(100.0)	38(100.0)	41(100.0)	59(100.0)	300(100.0)

\* एम.ए. (समाजशास्त्र), नेट, पी-एच.डी.,



सारिणी-1 में अंतर्विष्ट प्राथमिक दत्तों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि विकास-कार्यक्रमों के प्रति सूचनादाताओं में विकसित गांवों के कुल 72, अर्ध-विकसित गांवों के कुल 62 तथा अविकसित गांवों के कुल 41 सूचनादाताओं के उत्तर सकारात्मक हैं।

स्पष्ट है कि आयुवर्ग के आधार पर 20-30 वर्ष के सूचनादाताओं को विकसित गांवों 14(19.4%) को, अर्ध-विकसित गांवों के 18(29.0%) को तथा अविकसित गांवों के 10(24.4%) को; 30-40 वर्ष आयु वर्ग के क्रमशः ग्रामवार 28(39.9%) को, 29(46.8%) को तथा 12 (39.3%) को; 40-50 वर्ष आयु वर्ग के क्रमशः ग्रामवार 08(11.1%) को, 09(14.5%) को तथा 09(22%) को; जबकि 50 वर्ष से अधिक आयु वर्ग वाले सूचनादाताओं में विकसित गांवों के 22(30.6%) को अर्ध-विकसित गांवों के 06(9.7%) को तथा अविकसित गांवों के 10(24.3%) को क्रियावित ग्रामीण विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता पायी गयी है। जबकि 30-40 वर्ष आयु वर्ग में जागरूकता सबसे अधिक है।

## 2. जाति-वर्ग के आधार पर विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता: सूचनादाताओं का विवरण

जातिवर्ग के आधार पर विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता की स्थिति अग्रलिखित सारिणी-2 सूचनादातों में विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता का उनके जातिवर्ग के आधार पर विश्लेषण करती है।

सारिणी-2

सूचना दाताओं का जातिवर्ग	सूचनादाताओं की आवृत्तियां एवम् प्रतिशत						समस्त योग
	विकसित गांव		अर्द्ध-विकसित गांव		अविकसित गांव		
	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	
सामान्य	25(34.7)	07(25.0)	22(35.4)	08(21.1)	17(41.5)	16(27.1)	95(31.7)
पिछड़ी	27(37.5)	13(46.4)	20(32.3)	08(21.1)	16(39.0)	28(47.5)	112(93)
अनु.जाति	20(27.6)	08(28.6)	20(32.3)	22(57.8)	08(19.5)	15(25.4)	93(31.0)
अनु.जनजाति	00(0.00)	00(0.00)	00(0.00)	00(0.00)	00(0.00)	00(0.00)	00(0.00)
समस्त योग	72(100.00)	28(100.00)	62(100.00)	38(100.00)	41(100.00)	59(100.00)	300(100.00)

चयनित समस्त सूचनादाताओं में से विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता रखने वाले 72 विकसित गांवों के, 62 अर्द्ध-विकसित गांवों के तथा 41 अविकसित गांवों के सूचनादाता हैं। जाति-वर्ग के आधार पर सामान्य- जाति के 25(34.7%) सूचनादाता विकसित गांवों के, 22(35.4%) अर्द्ध-विकसित गांवों के, तथा 17(41.5%) सूचनादाता अविकसित गांवों के हैं। पिछड़ी जातिवर्ग के 27(37.5%) सूचनादाता विकसित गांवों के, 20(32.3%) अर्द्ध-विकसित गांवों के, तथा 16(39.0%) सूचनादाता अविकसित गांवों के हैं तथा अनुसूचित जातियों में 20(27.87%) सूचनादाता विकसित गांवों के, 20(32.3%) अर्द्ध-विकसित गांवों के, तथा 08(19.5%) सूचनादाता अविकसित गांवों के हैं जबकि अध्ययन-क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति की उपस्थिति शून्य है। सारांशतः विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूक सूचनादाताओं पिछड़ी जातियों का संकेंद्रण सर्वाधिक है।

## 3. व्यवसाय-वर्ग के आधार पर विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता : सूचनादाताओं का विवरण

इस संदर्भ में सारिणी-3 का अवलोकन ध्यातव्य है, जो निम्नलिखित है—

### व्यवसाय के आधार पर विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता की स्थिति

अग्रलिखित सारिणी-3 सूचनादातों में विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता का उनके व्यवसाय-वर्ग के आधार पर विश्लेषण करती है

## सारिणी-3

सूचना दाताओं का व्यवसाय-वर्ग	सूचनादाताओं की आवृत्तियाँ एवम् प्रतिशत समस्त योग						समस्त योग
	विकसित गांव		अर्द्ध-विकसित गांव		अविकसित गांव		
	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	
कृषि	30(41.7)	15(53.6)	39(62.9)	25(65.8)	20(43.8)	46(79.8)	175(58.3)
नौकरी	22(30.6)	05(17.9)	12(19.4)	07(18.4)	08(19.5)	04(06.8)	58(19.3)
व्यापार	15(20.8)	07(25.0)	06(09.7)	05(13.2)	02(04.9)	05(08.6)	40(13.3)
मजदूरी	01(01.4)	00(0.00)	03(04.8)	00(0.00)	09(21.9)	02(03.4)	15(05.0)
अन्य	04(05.5)	01(03.5)	02(03.5)	01(02.6)	02(04.9)	02(03.4)	12(4.0)

सारिणी-3 के तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सस्त तीनों विकसित, अर्द्ध-विकसित तथा अविकसित गांवों के सकारात्मक उत्तरदाताओं की संख्या क्रमशः 72, 62 तथा 41 है। विकसित, अर्द्ध-विकसित तथा अविकसित गांवों के कृषि व्यवसाय में संलग्न सूचनादाताओं की संख्या क्रमशः 30(41.7%), 39(62.9%) तथा 20(43.8%), नौकरी पेशा सूचनादाता ग्रामवार क्रमशः 22(30.6%), 12(19.4%), 08(19.5%), तथा 08(19.5%), व्यापार करने वाले सूचनादाता ग्रामवार क्रमशः 15(20.8%), 06(09.7%) तथा 02(04.9%) हैं; मज़दूरी करनेवाले सूचनादाता ग्रामवार क्रमशः 01(01.4%), 03(04.8%), तथा 09(21.9%) है। जबकि पूर्वोक्त व्यवसायों से अन्य व्यवसाय में संलग्न विकसित गांवों के 04(5.5%) अर्द्ध-विकसित गांवों के 02(3.2%) तथा अविकसित गांवों के 02(03.3%) सूचनादाता क्रियांवित ग्रामीण विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता रखते हैं। विवरण से ज्ञात होता है कि 'विकास-कार्यक्रमों के प्रति कृषि व्यवसाय से जुड़े लोगों में ज्यादा जागरूकता है।'

4. आय-वर्ग के आधार पर विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता : सूचनादाताओं का विवरण

सारिणी-4 आयवर्ग के आधार पर सूचनादाताओं में विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता पर प्रकाश डालती है, जो निम्नरूप में उल्लिखित है-

## आय-वर्ग के आधार पर विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता की स्थिति

अग्रलिखित सारिणी-4 सूचनादातों में विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता का उनके आय-वर्ग के आधार पर विश्लेषण करती है।

## सारिणी-4

सूचना दाताओं का आयवर्ग(मासिक आय रूप में)	सूचनादाताओं की आवृत्तियां एवम् प्रतिशत						समस्त योग
	विकसित गांव		अर्द्ध-विकसित गांव		अविकसित गांव		
	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	
2000 से कम	24(33.3)	08(28.6)	21(33.9)	19(50.0)	17(41.5)	51(86.4)	140(46.7)
2000-5000	11(53.3)	08(28.6)	10(16.1)	08(21.1)	06(14.6)	02(03.4)	45(15.0)
5000-10000	31(40.1)	12(42.8)	28(45.2)	11(23.9)	17(41.5)	06(10.2)	105(35.0)
10000 से अधिक	05(03.0)	00(0.0)	03(04.3)	00(0.0)	01(02.4)	00(0.0)	10(03.3)
समस्त योग प्रतिशतता	72 (100.00)	28 (100.00)	62 (100.00)	38 (100.00)	41 (100.00)	59 (100.00)	300 (100.00)

सारिणी-4 में अंतर्विष्ट प्रथमिक आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सस्त चयनित सूचनादाताओं में से विकसित, अर्द्ध-विकसित और विकसित गांवों के क्रमशः 72, 62 और 41 सूचनादाताओं ने विकास कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता का सकारात्मक अभिमत प्रस्तुत किया है। आयवर्ग के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि-

विकसित, अर्द्ध-विकसित और अविकसित गांवों के रु. 2000 से कम आयवर्ग वाले क्रमशः 24(33.3%) , 21(33.9%), 17(41.5%) सूचनादाता; आयवर्ग रु. 2000–5000 में ग्रामवार क्रमशः 11(53.3%), 10(16.1%) एवम् 06(14.6) सूचनादाता; आयवर्ग रु. 5000–1000 में ग्रामवार क्रमशः 31(40.1%), 28(45.2%) एवम् 17(41.5%) सूचनादाता; आयवर्ग रु.10000 से अधिक में ग्रामवार क्रमशः 06(03.3%), 03(04.8%) एवम् 01(02.4%) सूचनादाता हैं, जो क्रियावित विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता रखते हैं। सारिणी यह स्पष्ट करती है कि : ग्रामीण विकास-कार्यक्रमों के प्रति सर्वाधिक जागरूक निम्नतम आयवर्ग के सूचनादाता हैं।”

5. शैक्षिक स्तर के आधार पर विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता : सूचनादाताओं का विवरण निम्न सारिणी-5 विभिन्न विकास- कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता का, उनके शैक्षिक स्तर के आधार पर संक्षिप्त समावेश है-

शैक्षिक स्तर के आधार पर सूचनादाताओं का विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकताका विवरण अग्रलिखित सारिणी-5 सूचनादाताओं में विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता का उनके आय -वर्ग के आधार पर विश्लेषण करती है.

सारिणी-5

सूचना दाताओं का शैक्षिक स्तर	सूचनादाताओं की आवृत्तियां एवम् प्रतिशत						समस्त योग
	विकसित गांव		अर्द्ध-विकसित गांव		अविकसित गांव		
	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	
अशिक्षित	15(20.8)	08(28.6)	20(32.3)	16(42.1)	14(34.1)	25(42.4)	98(32.7)
साक्षर	05(06.9)	02(07.1)	04(06.5)	02(05.3)	02(04.9)	02(03.8)	17(05.7)
जूनियर हाईस्कूल	05(06.9)	04(14.3)	03(04.8)	05(13.2)	04(09.8)	07(11.8)	28(09.3)
हाईस्कूल	08(11.1)	04(14.3)	09(14.5)	06(15.8)	04(09.8)	12(20.3)	43(20.3)
इण्टरमीडिएट	12(16.7)	06(21.4)	10(16.1)	04(10.5)	11(26.8)	09(15.3)	52(17.3)
स्नातक	08(11.1)	00(0.0)	02(03.2)	00(0.0)	02(04.9)	00(0.0)	12(04.0)
स्नातकोत्तर	02(02.8)	00(0.0)	07(11.2)	02(05.3)	02(04.9)	02(03.8)	15(05.0)
व्यावसायिक	08(11.1)	00(0.0)	03(04.8)	00(0.0)	01(02.4)	00(0.0)	12(04.0)
अन्य	09(12.5)	04(04.3)	04(06.5)	03(07.8)	01(02.4)	02(3.8)	23(07.7)
समस्त योग प्रतिशतता	72(100.00)	28(100.00)	62(100.00)	38(100.00)	41(100.00)	59(100.00)	300(100.00)

सारिणी-5 में समाविष्ट प्राथमिक दत्तों के विश्लेषणोंपरांत अभिज्ञान होता है कि विकसित, अर्द्ध-विकसित तथा विकसित गांवों के विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूक सूचनादाताओं में शैक्षिक स्तर के आधार पर अशिक्षित 15(20.8%), 20(32.3%) तथा 14(34.1%) है। विकसित, अर्द्ध-विकसित तथा विकसित गांवों के साक्षर सूचनादाताओं की संख्या ग्रामवार क्रमशः 05(06.9%), 04(06.5%) तथा 02(04.9%) है; जूनियर हाईस्कूल स्तर वाले सूचनादाता ग्रामवार क्रमशः 05(06.9%), 03(04.8%) तथा 04(09.8%) को; हाईस्कूल वाले सूचनादाताओं, ग्रामवार क्रमशः 08(11.1%), 09(14.5%) तथा 04(09.8%) को; इण्टरमीडिएट शैक्षिक स्तर वाले , ग्रामवार क्रमशः 12(16.7%), 10(16.1%) तथा 11(26.8%) सूचनादाताओं को ; स्नातक शैक्षिक स्तर वाले, ग्रामवार क्रमशः 08(11.1%), 02(03.2%) तथा 02(04.9%) सूचनादाताओं को विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता है। जबकि शैक्षिक स्तर स्नातकोत्तर वाले सूचनादाताओं में से विकसित गांवों के 02(02.8%), अर्द्ध-विकसित गांवों के 07(11.2%) तथा विकसित गांवों के 02(04.9%) सूचनादाता; जबकि व्यावसायिक शिक्षा रखनेवाले क्रमशः 08(11.1%), 03(04.8%) तथा 01(02.4%) सूचनादाता; और अन्य शैक्षिक स्तर वाले ) सूचनादाताओं में, ग्रामवार

क्रमशः 09(12.5%), 04(06.5%) तथा 01(02.4%) सूचनादाता विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि : अशिक्षित सूचनादाता विकास-कार्यक्रमों के प्रति सबसे अधिक जागरूक हैं। जबकि अपेक्षाकृत निम्न शैक्षिक स्तर वाले ग्रामीणों में विकास-कार्यक्रमों के प्रति अधिक जागरूकता है।”

**निष्कर्ष :** सूचनादाताओं से प्राप्त उत्तरों के विश्लेषण के उपरान्त निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त किए गए हैं—

1. विकसित ग्रामों के सूचनादाताओं में विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता सर्वाधिक पायी जाती है। साथ ही 30-40 आयुवर्ग में जागरूकता सबसे ज़्यादा है।
2. विकास-कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता सूचनादाताओं में पिछड़ी जातियों का संकेंद्रण ज़्यादा है।
3. विकास-कार्यक्रमों के प्रति सर्वाधिक जागरूक निम्न आयुवर्ग वाले सूचनादाता हैं।

### References

1. Singh, S.N. & Vijayraghavan, K. : “Mass media for Agricultural Development”, Social Change 13(4) ; 1983 Quoted ICSSR Journal of Allahabad and Reviews Vol. 13(II), July-Dec 1984; P-217
2. अग्रवाल, नरेश प्रकाश : ग्रामीण विकास में दूरदर्शन की भूमिका— ग्रामीण जागरूकता के विशेष संदर्भ में एक वस्तुनिष्ठ अध्ययन “सामाजिक सहयोग” राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध-पत्रिका, अंक-36, मार्च-अप्रैल-2001; श्री कृष्ण शिक्षण एवम् शोध संस्थान, उज्जैन, (म.प्र.), पृष्ठ-67
3. Dubey, S.C.: Indian Society, National Book Trust, India, New Delhi, 1990
4. Dubey, S.C.: Indian village, Routledge and Kegan Paul, London, 1995
5. Dubey, S.C.: India's changing village, Atlas and Kegan Paul, London, 1963
6. Dubey, S.C.: Tradition and Development, Vikas Publishing House, New Delhi, 1990
7. Dubey, S.C.: Understanding Change, Vikas Publishing House, New Delhi, 1993
8. Durkheim, E.: The Rules of Sociological Method, Translated by Solovay. S.A. and Muller, J.H.; The Free Press, New York, 1964
9. Gandhi, M.K.: Village Swaraj Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1954
10. Gandhi, M.K.: Sarvodaya Bharati, Vidya Bhavan, Bombay, 1964
11. Ganguli, B.N.: Population and Development, S. Chand, New Delhi, 1973
12. Ghurye, G.S.: Caste, Class and Occupation, Popular Book Depot, Bombay, 1961

\* \* \* \* \*

## महिला सशक्तिकरण की विभिन्न चुनौतियाँ

डॉ. शोभा कुमारी\*

महिला सशक्तिकरण का यह भाग तैयार करते समय अनेक प्रश्न कौंध रहे हैं। आखिर अतीत, वर्तमान और भविष्य की वह कौन सी चुनौतियों रही है और है, जो नारी के सदैव किसी न किसी रूप में चुनौतियों बनी रही है। आधुनिक समय में यह एक ज्वलन्त प्रश्न है। इस विषय पर एक खोजी दृष्टि होनी चाहिए, तभी हम किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। जितना सरल यह विषय लगता है उतना ही यह कठिन है। समय और परिस्थितियों की कोख से उपजती हैं। नारी की चुनौतियों की और ठीक समानान्तर रूप में एक प्रक्रिया नारी सोच की चलती है, जो समाज को चुनौतियाँ देती है। इसे हम महिलाओं की संज्ञा दे सकते हैं। किसी भी देश की आर्थिक-सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को देखकर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि अमुक देश में नारी की स्थिति, सम्मान और समाज में उसकी क्या भूमिका है, इसी संदर्भ में सर्वपल्ली राधाकृष्णन लिखते हैं कि “किसी भी देश की वास्तविक महिला की स्थिति का अनुमान उस देश की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सारिणी को देखकर लगाया जा सकता है। व्यक्ति उत्तरदायी है कि उसने नारी के लिए बहुत से विचारों को गढ़ा है, जो उसके सौंदर्य और अस्मिता को बताते हैं, वहीं वह पुरुष से निम्न भी है।”<sup>1</sup>

यह सत्य है कि पुरुष ने कभी भी स्वयं से अधिक महत्त्व नारी को नहीं दिया। नारी के लिए इतने ही धार्मिक, नैतिक व अन्य नियम और बंधन बनाए, जिन्होंने महिला को उठने का अवसर ही नहीं दिया। परिणामस्वरूप वह पुरुष के अधीन रह गई। शताब्दियों से महिलाओं के लिए यह चुनौती बनी रही कि वह पुरुष अधिपत्य से कैसे मुक्त हो। परन्तु 21वीं शताब्दी में इसमें बदलाव आया है।

आदिमयुग मनुष्य जाति का आरम्भिक काल था, जिसे शिशुकाल भी कहते हैं। अभी मनुष्य अपने मूल निवास जंगलों में रहता था। यह अवस्था हजारों वर्ष तक चलती रही, किन्तु विकास का अन्तः प्रवाह सदैव बहता रहता है। इसके पश्चात् जो युग आरम्भ होता है, उसमें मनुष्य मछली का प्रयोग अपने भोजन के रूप में करने लगा था। उसका सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण अविष्कार ‘अग्नि’ था। इस सामुदायिक जीवन में स्त्री-पुरुष एक साथ एक स्थान पर समूह में निवास करते थे। नारी यहाँ भी एक वस्तु थी। एक स्त्री सभी भाइयों की पत्नी होती थी। उससे उत्पन्न पहला बच्चा बड़े भाई का होता था। यह नीचे क्रमशः उतरता जाता था। समूह या कबीले से पथक उसका अस्तित्व था ही नहीं। यह उसके जीने की चुनौती थी, जिसे आदिम समाज से उपजी परिस्थिति की देन कह सकते हैं। खेतिहर समाज तक आते-आते मनुष्य भूमि का स्वामी बन गया और नारी उसकी वैयक्तिक सम्पत्ति हो गई।

आर्य पूर्व सभ्यता ताम्रयुग की कृषि-प्रधान ‘नागर’ सभ्यता थी। आर्य जब भारत आए तो बर्बर अवस्था में थे। इस समय भी स्त्री की अवस्था अच्छी नहीं थी। इस समय नारी की स्थिति का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि लड़की का जन्म दुःख का कारण था। स्त्री के लिए सबसे बड़ी चुनौती नारी का होना था। अनेक अंधविश्वासों, रुढ़ियों व परम्पराओं से जूझने का एहसास उसमें सुलगने लगा। जीने की चुनौतियों सामने आने लगी... ‘ऐतरेय ब्राह्मण के अंतर्गत नारी को भारी अनर्थ की जड़ कहा गया है।...शतपथ ब्राह्मण में नारियों को शूद्र से भी बुरा बतलाया गया है। वस्तुतः ब्राह्मणकाल तक आते-आते नारी की स्थिति गिरने लगी थी।’<sup>2</sup> नारी की कोमलता व भावुकता को औजार बनाकर उस बाह्य संसार से अलग-थलग रख गया यह पुरुष-प्रधान समाज की देन थी। हम यह कह सकते हैं कि धर्म के विभिन्न ग्रन्थों में नारी धार्मिक बंधनों से शनैः-शनैः ऐसी जकड़ दी गई कि वह परिवार की सीमाओं में बंधकर रह गई। अपने को मुक्त करने की सदियों की छटपटाहट उसमें करवटें ले रही थी।

अभी तक संस्कृति के उन पहलुओं पर विचार कर रहे थे, जो किसी भी समाज की आत्म-शक्ति होती है। मनुष्य के सोच और व्यवहार के केन्द्र में संस्कृति होती है। परम्परागत धार्मिक-सांस्कृतिक बंधन ही नारी के

सशक्तीकरण में बाधक रहे हैं, परजीवन और समाज की निरन्तरता संस्कृति के मूल्यों के कारण ही बनी रहती है, क्योंकि संस्कृति की जड़ों से पुरुष और नारी दोनों बंधे हैं। इसीलिए श्यामाचरण दुबे लिखते हैं, “समाज की जड़े अतीत में होती हैं, वह वर्तमान में जीता है और भविष्य उसके लिए चिंता और प्रावधान का होता है। परम्पराएं अतीत को वर्तमान को भविष्य से जोड़ती हैं। उनके माध्यम से सामाजिक जीवन को निरन्तरता मिलती है और उसका स्वरूप निर्धारित होता है। परम्पराएं ही समाज और विभिन्न समुदायों और समूहों की आत्म-छवि का अविभाज्य अंग होती हैं और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उनका दिशा-निर्देशन करती हैं। परम्पराओं की मूल्य केवल प्रतीकात्मक नहीं होता, उनमें महत्वपूर्ण प्रकार्य जुड़े होते हैं—वे समाज के समाकलन में सहायक होती हैं और उसे आस्था का आधार देकर जीवन के लक्ष्य और मूल्य निर्धारित करती हैं।”<sup>3</sup>

समाज की बुनियादी इकाई परिवारी है जहां से प्रेरणा मिलती है। चुनौतियों का सामना करने की। एक लड़की का समाजीकरण और पालन-पोषण किस प्रकार का होता है, जिससे वह भविष्य की चुनौतियों का सामना कर सकें। आधुनिक प्रगतिशील नगरीय परिवार लड़कियों को भी उसी स्तर पर तैयार करते हैं, जिस स्तर पर लड़कों को। यदि आज की नारी आधुनिक समाज का सामना कर रही है तो इसमें परिवार की भूमिका अहम् है। झांसी की रानी की एक्ट्रेस क्रांतिका सेंगर कहती हैं, “मैं अपने जीवन में अपनी मां से काफी प्रेरित हूँ। बचपन से ही मैंने उनसे हर परिस्थिति से लड़ने की कला सीखी है और आज भी वह मेरी प्रेरण की स्रोत है।...यह बीती बात हो गई कि महिलाएं पिछड़ी हुई थीं। अब महिलाओं ने हर मोर्चे पर अपनी विजय सुनिश्चित कर ली है। चाहे खेल का मैदान हो या कोई और क्षेत्र।”<sup>4</sup>

उदाहरण के लिए सार्क में पहली बार किसी महिला को महासचिव चुना गया है। मालदीव की 36 वर्षीय वकील फातीमाथ धीयाना सईद है। कृष्णा पूनिया एथलीट है अपनी बुआ से प्रेरणा लेकर एथलीट के मैदान में उतरी, जो पदक जीते। उनका कहना है— महिला होने के नाते मेरे सामने भी चुनौतियां थीं। मेरे पति ने भी मुझे सहयोग दिया। परिणामस्वरूप 52 वर्षों के बाद भारत को कॉमनवेल्थ खेलों में एथलेटिक्स में स्वर्ण दिलाया। ...हेमा सरदेसाई, प्लेबैक सिंगर है — वह कहती हैं “मां को गायन का शोकथा, पर रूढ़िवादी परिवार में जन्म लेने के कारण उन्हें अपना शोक पूरा करने का मौका नहीं मिला। मगर उन्होंने मेरी प्रतिभा को कभी मरने नहीं दिया। ...वास्तव में अब भी महिलाएं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के शिकंजे से मानसिक रूप से मुक्त नहीं हो पाई हैं।”<sup>5</sup>

भूमण्डलीकरण और कामकाजी महिलाओं की चुनौती — नारी के लिए बाहर की दुनिया बिल्कुल पृथक् होती है। कम्पनी अथवा कार्यालय में पुरुषों की संख्या अधिक और महिलाओं की कम होती। बहुत प्रगतिशील होने का दावा करने वाले पुरुष प्रधान समाज में स्त्री आज भी पुरुष की दृष्टि में उसके समकक्ष नहीं हैं। सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय भावना के आधार पर उन्हें नहीं देखा जाता। वे कभी भी देह सौन्दर्य का आकर्षण बनी हुई हैं।

समाज के सामने नारी की चुनौती है कि सरकार शासन, जनप्रतिनिधि और दकियानुसी परिवार के लोग हमारा कब तक शोषण करते रहेंगे। कब हम इस स्वतंत्र भारत में घर और बाहर सुरक्षित रहेंगे। कब तक हमारे जान-माल की सुरक्षा की उपेक्षा की जाती रहेंगी। क्या यह समाज नारी के अभाव में परिवार और समाज की कल्पना कर सकता है? नारी मात्र देह नहीं है। वह पुरुष से किसी भी अर्थ में और किसी भी क्षेत्र में कम नहीं है। परिवार, समाज और शासन को नारी चुनौती देती है उसके साथ बेशुमार हिंसात्मक घटनाएं क्यों की जाती हैं?

#### संदर्भ-ग्रंथ

1. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, ग्रेट वीमन ऑफ इन्डिया स0 स्वामी माधवनन्दन, अद्वैत आश्रम, दिल्ली, 2008: पृ. XIX.
2. डॉ. सरोजनी पाण्डे, भारतीय धर्म, समाज और नारी, ग्रन्थम कानपुर 2003, पृ. 10.
3. श्यामाचरण दुबे, समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 20.
4. रूपायन, अमर उजाला, मार्च, 2011.
5. रूपायन, अमर उजाला, मार्च, 2011.

\* \* \* \* \*



## दलितों की सामाजिक दशा एवं दिशा : एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन

डॉ. महेश कुमार पाण्डेय\*

भारतवर्ष की सम्पूर्ण जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग सदियों से न केवल अत्यन्त पिछड़ा अपितु समाज द्वारा उत्पीड़ित, लांछित व अवहेलना की त्रासदी से त्रासित रहा है। वैदिक काल में गुण कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था की स्थापना की गई जिनमें निम्नतम स्थान शूद्र वर्ण को प्राप्त हुआ। समानता एवं कर्म के सिद्धान्त पर आधारित सहज सुसंगठित एवं अनूठी वर्ण व्यवस्था गतिशीलता के प्रवाह में उत्तर वैदिक काल तक आते-आते जब जन्म पर आधारित होकर जाति व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो गई तभी से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शूद्र कहे जाने वाले वर्ण की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति अधोगति की दिशा में उन्मुख हो गई। वास्तव में लोगों ने अपनी व्यावसायिक स्थिति की सुरक्षा एवं सुदृढ़ता को बनाये रखने के उद्देश्य से गुण, कर्म एवं स्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था को कालान्तर में जन्म पर आधारित करके जाति व्यवस्था के रूप में रूपान्तरित कर दिया। इस प्रकार वैदिक कालीन चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के चार वर्ण न केवल चार जातियों में परिवर्तित हो गए प्रत्युत धीरे-धीरे प्रतिलोम विवाहों आदि के आधार पर हजारों जातियों एवं उप जातियों में विभक्त होते चले गए। परिणामस्वरूप व्यक्ति-व्यक्ति तथा समूह-समूह के बीच जातीय विभेदों, असमानताओं, उच्चता-निम्नता, पवित्रता-अपवित्रता, धार्मिकता-अधार्मिकता की अभेद्य दीवारें खड़ी हो गई। इन्हीं विभेदों, असमानताओं एवं नियोग्यताओं की प्रवृत्ति में उत्तरोत्तर विकास के फलस्वरूप, कालान्तर में दलित जैसे एक नवीन वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में भारतीय समाज के एक ऐसे बड़े वर्ग जिन्हें दलित, अस्पृश्य, पिछड़े वर्ग आदि के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक आदि की दशा एवं दिशा को प्राथमिक एवं द्वितीयक तौरों से एकत्रित किये गए तथ्यों के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

मानक हिन्दी शब्द कोश के अनुसार— 'दलित वर्ग समाज का वह निम्नतम वर्ग है जो उच्च वर्ग के लोगों के उत्पीड़न के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हीन दशा में हो, जैसे दास प्रथा वाले देशों में दास, सामन्तवादी व्यवस्था में कृषक और पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर।' दलित वह है जिसका दलन किया गया हो। उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, पीड़ित व्यक्ति इसी श्रेणी में आते हैं। सन् 1928 में साईमन कमीशन के समक्ष पुणे में डॉ० बी० आर अम्बेडकर ने दलित और अस्पृश्य को एक वर्ग माना है।<sup>1</sup> सन् 1931 के भारत के जनगणना आयुक्त जे० एच० हट्टन ने इन अस्पृश्यों को बाहरी जाति<sup>2</sup> के नाम से सम्बोधित किया। वहीं लोथिपिन समिति, 1932 ने भी डिप्रेसड क्लास अर्थात् अस्पृश्य वर्ग को ही दलित वर्ग स्वीकार किया है।<sup>3</sup> जबकि महात्मा गाँधी जी ने शूद्र जाति के सम्पूर्ण वर्ग को ही दलित वर्ग स्वीकार किया है। गाँधी जी के मत में सारे दलित वर्ग में अस्पृश्य सर्वाधिक दलित कहे जा सकते हैं। दलित जाति को स्पष्ट करते हुए जी.के. अग्रवाल ने कहा है कि— "अस्पृश्य जातियाँ, निम्नतर रही हैं।" वही पर संविधान की धारा<sup>4</sup>—341 (1) तथा (2) के अन्तर्गत अनुसूचित जाति की श्रेणी के अन्तर्गत रखे गये लोग दलित हैं। वैदिक और हिन्दू काल में इन्हें शूद्र, अति शूद्र, चाण्डाल और अस्पृश्य कहा गया। मुस्लिम काल में इन्हें अछूत कहा गया। गाँधी जी ने इन्हें 'हरिजन' नाम दिया तो श्रीमती एनी बेसेंट ने 'डिप्रेसड कास्ट' कहा, तथा भारतीय संविधान में इन्हें 'अनुसूचित जाति' कहा गया। किन्तु दलित स्वयं को 'दलित' कहलाना ही अधिक पसन्द करते हैं।

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा पी.जी., कॉलेज, लालगंज, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)

यद्यपि प्राचीन काल से ही दलित वर्गों का शोषण होता रहा है। उन्हें पठन-पाठन या मन्दिर में प्रवेश का अधिकार नहीं था। गाँव या शहर में उन्हें बस्ती से बाहर अलग इलाके में रहना पड़ता था। जिन सार्वजनिक कुओं और तालाबों का उपयोग ऊँची जाति के लोग किया करते थे वहाँ पर इन्हें जाने की अनुमति न थी। इतना ही नहीं इन्हें मन्दिरों में प्रवेश करने पर रोक लगा दी गयी थी। न केवल प्राचीन भारत में ही वरन् मध्यकालीन भारत के शासन काल में भी शूद्रों और अछूतों को शिक्षा, समानता और स्वतंत्रता के मानवीय अधिकार प्राप्त नहीं थे। दरबारों में उनका कोई स्थान नहीं था। ब्रिटिश शासन काल में भी इनके शोषण में और भी वृद्धि हुई तथा जो किसी भी लोकतांत्रिक समाज एवं लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध था।

इस प्रकार से अनेकानेक समस्याओं से त्रासित इस वर्ग को अपने उद्धार की कोई आशा दिखाई नहीं दे रही थी। परन्तु परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। अतः समय में परिवर्तन के साथ ही समय-समय पर इस शोषणवादी कु0 व्यवस्था एवं भेद-भाव के विरुद्ध लोगों ने आवाज उठाना प्रारम्भ किया जिससे सदियों से शोषण, उपेक्षा, तिरस्कार के शिकार इस शोषित वर्ग के लोगों को शोषण एवं शोषक वर्ग के चंगुल से निकालकर (छुड़ाकर) समाज में स्वतंत्रता एवं समानता का अधिकार दिलाया जा सके। जिनमें – सन्त कबीर, रैदास, सिक्ख गुरुओं में नानक, तेग बहादुर आदि के अतिरिक्त आधुनिक सामाजिक चिन्तकों में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, ज्योतिबा फुले, डॉ० भीम राव अम्बेडकर आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। परन्तु दलितों के मसीहा या दलितों के तारणहार के रूप में डॉ० भीमराव अम्बेडकर का ही नाम ही आता है जिन्होंने भारत विभाजन के प्रारम्भ में पाकिस्तान के समान ही दलितों के लिए एक पृथक राष्ट्र राज्य की माँग की परन्तु पूना पैक्ट में सरदार पटेल, महात्मागाँधी, जवाहर लाल नेहरू सरीखे राष्ट्र वादी नेताओं के समझाने एवं इनको समानता का अधिकार आरक्षण आदि की सुविधा का लाभ प्रदान कर उन्हें इस माँग को छोड़ने हेतु सहमत कर लिया तथा संविधान निर्मात्री सभा का अध्यक्ष नियुक्त कर इस समस्या का समाधान किया।

डॉ० अम्बेडकर के जीवन का सर्वप्रमुख लक्ष्य था, समाज के दलित जातियों का उद्धार अथवा उत्थान इस सम्बन्ध में इनका यह दृढ़ मत था कि “शिक्षित बनो, संगठित रहो तथा संघर्ष करो” क्योंकि दलित जाति में जन्म लेने के कारण इन्हें जीवन के प्रत्येक मोड़ पर अपमान तिरस्कार एवं अमानवीय व्यवहार झेलना पड़ा था। एक बार उन्होंने एक पत्रकार से कहा था— “मेरे दुःख-दर्द और मेहनत को तुम नहीं जानते, जब सुनोगे, रो पड़ोगे।”<sup>7</sup> यद्यपि दलित जातियों के उद्धार के लिये बौद्ध, सिख धर्म, ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि ने इनको अपना धर्म स्वीकार करने हेतु आमंत्रित किया जिसके मूल में इन धर्मावलम्बियों की यह मंशा थी कि इससे समाज में इनके धर्मानुनायियों की संख्या पर्याप्त मात्रा में बढ़ जायेगी। उनके धर्म का विस्तार एवं प्रचार-प्रसार बढ़ेगा परन्तु इन्होंने सभी धर्म के अर्न्तनिहित तथ्यों का सभी पहलुओं से अध्ययन करने के पश्चात् मानवतावादी तत्त्वों के आधिक्य से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म स्वीकार करना ही उचित समझा। यद्यपि कि इन सभी धर्म के धर्मगुरुओं द्वारा दलितोद्धार के क्षेत्र में तथा टूटते हिन्दू जाति के लोगों की संख्या को रोकने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए जा रहे थे, जिसमें जहाँ एक ओर आर्य समाजी एवं ब्रह्म समाजी पुनर्जागरण पाखण्डवाद, भेदभाव समाप्त करना चाहते थे वहीं **महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय** ने इनमें शैक्षिक जागृति का भरपूर प्रयास किया और गाँधी जी तो इस भेदभाव को समाप्त करने हेतु इनकी बस्तियों में जाकर रहते, कार्य करते तथा इन्हें ‘हरिजन’ अर्थात् ‘ईश्वर के लोग’ के नाम से सम्बोधित करते रहे, परन्तु ऐतदर्थ आरक्षण के माध्यम से इनको सामाजिक, आर्थिक विकास तथा सम्मान का अवसर उपलब्ध कराने का कार्य अम्बेडकर के प्रयासों से ही सम्भव हुआ। अम्बेडकर का यह दृढ़मत था कि चारों वर्णों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के कारण ही जाति व्यवस्था व अस्पृश्यता सम्बन्धी कुरीतियाँ उद्भूत हुई हैं। जातिवाद से कार्यक्षमता का विकास नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य को कार्य की प्राप्ति इच्छानुसार नहीं हो सकती। बी०आर० अम्बेडकर का यह दृढ़ मत था कि— ‘जाति प्रथा को नष्ट करने का एक ही मार्ग है, अन्तर्जातीय विवाह न कि सहभोज, खून का मिलना ही विभिन्न जातियों के मध्य दूरी समाप्त कर अपनेपन की भावना ला सकता है।’<sup>8</sup>

दलित जातियों के उत्थान के लिए 20 जुलाई, 1924 को इन्होंने बी०आर० अम्बेडकर ने—“**बहिष्कृत हितकारिणी सभा**”<sup>9</sup> की स्थापना हेतु एक सभा का आयोजन कर इसकी स्थापना की। इसके अतिरिक्त इन्होंने

दलित जातियों को सार्वजनिक स्थानों जैसे— कुएं, तालाब, मन्दिर आदि के उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार के आन्दोलन चलाये। जिसमें सर्वप्रथम 1937 का **महद तालाब**<sup>10</sup> सत्याग्रह था। यहाँ पर एक विशाल सभा का आयोजन कर अम्बेडकर ने कहा था कि— “अछूत वर्ग के भाईयों और बहिनो, याद रखो, अधिकार माँगने से नहीं मिलते, उन्हें हासिल करना होता है। आप लोग अपना भाग्य स्वयं बनाने का निश्चय लेकर महाड़ आये हैं।”<sup>11</sup> वे लोग जो दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ हुए अपमान का विरोध करते हैं, स्वयं अपने समाज के अछूत वर्ग को अपमानित करने और उनके अधिकार छीनने में रंचमात्र भी शर्म एवं संकोच का अनुभव नहीं करते। हिन्दू समाज में ऊँचे कहे जाने वालों का यही ढकोसला है, जिसे समाप्त करना ही हमारा कर्तव्य है।”<sup>12</sup> इनके इस प्रयास से ही दलितों को महाड़ तालाब का जल पीने पर लगा प्रतिबन्ध समाप्त हुआ। तत्पश्चात् रामगढ़ के **‘गंगा सागर तालाब’**<sup>13</sup> का पानी इन्होंने अपने एक सौ साथियों के साथ पिया। इसी क्रम में 1930 में इन्होंने **‘कलाराम मन्दिर में प्रवेश’**<sup>14</sup> के लिए नासिक में सत्याग्रह किया। इसमें संघर्ष की अनेक स्थितियाँ सामने आयी परन्तु इन्होंने हार नहीं मानी और इस मामले को गोलमेज सम्मेलन में भी उठाया। मन्दिर में प्रवेश से सम्बन्धित विधेयक पर बोलते हुए इन्होंने **‘केन्द्रीय सभा’** में कहा था कि—“धर्म जो अपने को मानने वालों के बीच में पक्षपात करता है, धर्म नहीं है। किसी भी गलत बात को धर्म के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता। धर्म व दासता का कोई साथ नहीं है।” हिन्दू धर्म में व्याप्त जटिलता एवं छुआछूत से मर्माहत होकर उन्होंने कहा था कि— “मैं पैदा तो हिन्दू में हुआ परन्तु हिन्दू रहकर मरूँगा नहीं।”<sup>15</sup> इसके अतिरिक्त इन्होंने **“महार वतन”** कानून का भी विरोध किया जो महाराष्ट्र के महारों के लिए बन्धुआ मजदूरी और दासता की व्यवस्था करता था।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने नागपुर में 1930 में आयोजित अखिल भारतीय दलित वर्ग सम्मेलन की अध्यक्षता की तथा दलित जातियों के सुधार हेतु प्रथम एवं द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में भाग लेकर उन्होंने दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व तथा राष्ट्र राज्य की माँग उठायी और स्पष्ट रूप से कहा कि— दलितों के प्रतिनिधि केवल दलितों द्वारा ही चुने जाएँ। अम्बेडकर के इस भाषण को बड़ौदा महाराज ने जब अपनी महारानी को बताया तो उनकी भी आँखें भर आयी और वे बोली—“आज के वक्ता पर जो धन व्यय किया गया, वह पूरा-पूरा वसूल हो गया।”<sup>16</sup> जनवरी 1932 में दलितों के लिए **‘कम्यूनल अवार्ड’** घोषित किया गया, जिसके विरोध में गाँधी जी ने आमरण अनशन का निश्चय किया। गाँधी जी चाहते थे कि भारत से छुआछूत समाप्त हो जाय, इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने **‘हरिजन’** नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया। गाँधी जी द्वारा जातीय भेदभाव समाप्त किये जाने सम्बन्धी किये गये प्रयास के फलस्वरूप ही जब हिन्दू नेताओं ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया कि—“ अब हिन्दुओं में कोई भी जन्म के आधार पर किसी को अछूत नहीं मानेगा” तथा दलितों को सामाजिक आर्थिक विकास के लिए विविध प्रकार की सुविधायें प्रदान करने के अतिरिक्त इन्हें हिन्दूओं के अन्य वर्गों के समान स्थिति में लाने के लिए दस वर्ष तक आरक्षण की सुविधा भी प्रदान की जायेगी पर बनी आम सहमति के पश्चात् पं० मदन मोहन मालवीय जी की मध्यस्थता एवं अथक प्रयास के कारण ही अम्बेडकर ने दलितों के लिए अलग राष्ट्र राज्य सम्बन्धी माँग छोड़ी तथा पूना में इस समझौते पर हस्ताक्षर किया, जिसे **“पूना पैक्ट”** के नाम से जाना जाता है। अम्बेडकर ने दलितों को कानूनी दृष्टि से भी सशक्त बनाने का प्रयास किया। उनका मानना था कि मनुस्मृति के आधार पर भारतीय अछूतों पर जो कानूनी पाबन्दियाँ लगी हुई हैं उन्हें कानून से ही समाप्त किया जा सकता है। अतः भारतीय संविधान के **अनुच्छेद-17** के अन्तर्गत अस्पृश्यता को कानूनन अपराध घोषित किया गया तथा अनुसूचित जातियों—जनजातियों के लोगों के लिए आरक्षण की व्यवस्था भी की गयी। एतदर्थ विविध सुधार तथा वैधानिक सहयोग की आवश्यकता को दृष्टिगत कर डॉ० अम्बेडकर को स्वतंत्र भारत का प्रथम विधि मंत्री बनाया गया इसके साथ ही दलित प्रारूप समिति का अध्यक्ष भी बनाया गया था। इन्होंने दलित जातियों को लक्ष्य कर इनके उद्धार हेतु निम्नलिखित पुस्तकों की रचना भी की, जो इस प्रकार हैं— कांग्रेस और गाँधी ने अछूतों के लिए क्या किया है? जाति का नाश (1936) (1945), अछूत, वे कौन थे? शूद्र कौन थे? (1946), और वे अछूत कैसे बने? (1948), आदि।

बी०आर० अम्बेडकर ने भारत में दलितोद्धार के लिए वह सब कुछ किया जो **अब्राहम लिंकन** ने दासों की मुक्ति के लिए और **पॉल राबसन** ने अमरीका के नीग्रो लोगों की मुक्ति के लिए किया था। दलित जातियों के

समग्र विकास की कल्पना एवं प्रयास के क्षेत्र में **ज्योतिबा फुले** का योगदान भी कम न था जो उनके इस कथन से स्पष्ट होती है कि—“अछूत कहकर दुत्कारे जाने वाले भील और कोल किरात सहित शूद्र और अतिशूद्रों के बच्चे आने वाले समय में जब शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ करेंगे और उच्च शिक्षित हो जायेंगे तो इन्हीं में से एक महापुरुष उभर कर सामने आयेगा, जो हमारी समाधियों पर पुष्प चढ़ाकर विजय तथा आनन्द की घोषण करेगा।”<sup>17</sup>

वर्तमान समय में विभिन्न राजनीतिक दलों, पार्टी प्रमुखों द्वारा अपने को दलितों का मसीहा बताकर निरन्तर दलित जनता के कल्याण का चाहे जितना भी दम्भ क्यों न भरा जाय उन्हें राजनीतिक लाभ प्राप्त कर सत्तासीन रहने का उपक्रम ही अधिक हो रहा है उनमें दलित कल्याण की भावना लेशमात्र भी नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक बार आरक्षण का लाभ प्राप्त कर चुके दलितों को पुनः आरक्षण के लाभ से वंचित कर दिये जाने का प्राविधान न किया जाना। जिसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि जो दलित एक बार आरक्षण का लाभ प्राप्त कर आगे बढ़ चुके हैं निरन्तर उन्हें तथा उनके परिवार जनों को ही इसका लाभ प्राप्त हो रहा है शेष दलितों कि दयनीय स्थिति में कोई आपेक्षित सुधार दृश्यमान नहीं हो रहा है। दूसरी ओर जिन दलितों की स्थिति में अम्बेडकर के द्वारा किये गये प्रयासों के फलस्वरूप आपेक्षित सुधार परिलक्षित हो रहे हैं वे अब अपनों से ही दूर होते जा रहे हैं परन्तु वैयक्तिक हित, राजनीतिक हित, वोट हित के समक्ष दलित हित गौण हो चुके हैं। अम्बेडकर ने तत्कालीन विषम परिस्थितियों के बीच अपने जीवन पर्यन्त निस्वार्थ भाव से जो कुछ भी किया आज के राजनेता उनके द्वारा निर्मित उस लकीर पर भी नहीं चल पा रहे हैं। प्रत्येक हिन्दू नागरिक को उनका ऋणी होना चाहिए क्योंकि इन्होंने वैधानिक समता सम्बन्धी विधान की रचना करके धर्मान्तर रोकने की पृष्ठभूमि तैयार करने के साथ ही समाज को असंतोष एवं संघर्ष से बचने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। यद्यपि दलितों में सामाजिक सुधार की भावना विभिन्न महापुरुषों में प्राचीन काल से चली आ रही है। जिनमें कबीर कि यह युक्ति चरितार्थ होती है—

**ऊँचे कुल की जनमियाँ, कुले न ऊँची होये,**

**सुबरन कलाश सुरै भरा, साधु निन्दा सोहे।**

इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में चल रहे महामाया आवास योजना, भीमराव अम्बेडकर आवास योजना, कांशीराम शहरी गरीब आवास योजना से दलितों को एक स्वच्छ आवास तो प्राप्त हुआ लेकिन इनका उत्थान नहीं। इसमें राजनीतिज्ञों का आत्मनिष्ठ राजनीतिक हित अधिक हैं— क्यों इससे एक ही स्थान पर एक साथ इनके मतदाता उपलब्ध होने लगे। वास्तव में यदि राजनीतिज्ञ इनका उत्थान चाहते हैं— तथा निम्न वर्ग, कमजोर वर्ग की सामाजिक आर्थिक स्थिति को ऊपर उठाना चाहते हैं। तो इसके लिए इनको दलित के अन्तर्गत निम्न स्थित वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सभी को स्थान देना चाहिए। क्योंकि अम्बेडकर की सोच के अनुसार— ही इनके साथ—साथ उठते बैठने सुख—दुख में भाग लेने, बच्चों के खेलने, मित्रवत व्यवहार कर, शादी विवाह, रीति रिवाज आदि के फलस्वरूप सामान्य रूप से समरसता, सहजता आपसी सौहार्द आदि से इनका समुचित विकास होगा और तभी उत्थान भी।

इसके अतिरिक्त दलितों के सामाजिक आर्थिक स्थिति को बदलने के लिए दलित में ही उच्चवर्ग या आरक्षण का लाभ प्राप्त कर चुकें, लोगों को पुनः लाभ प्राप्त करने से तब तक रोका जाय जब तक कि अन्य लोगों को कम से कम एक बार आरक्षण का लाभ मिल न जाय। इस सन्दर्भ में मैं उल्लेख करना चाहता हूँ कि—पूर्व राष्ट्रपति आर०के० नारायणन की पुत्री जो कि दलित वर्ग के ही थे, की लड़की आरक्षण का लाभ प्राप्त कर आई०एफ०एस० बनी, इसी प्रकार जगजीवनराम की पुत्री मीरा कुमार, नरेश चन्द्र गौतम (पूर्व कुलपति— पूर्वांचल विश्व विद्यालय जौनपुर), पी०एल० पुनिया, अजीत जोगी, इसी प्रकार के हैं जो कि उच्च पदों पर आसीन होकर भी आरक्षण का लाभ स्वयं तथा अपने संतानों को दिला रहे हैं। वास्तव में यदि ये दलितों का उत्थान करना चाहते हैं तो उनको अपने अन्दर गांधी, पण्डित मदन मोहन मालवीय, आचार्य विनोबा भावे, के सामन ही विचारों को लाना होगा तथा दलितों के उत्थान के भावना जागृत करनी होगी। क्योंकि आज इनका उच्च वर्णीय लोगों के द्वारा शोषण तो बन्द हो चुका है, परन्तु अपने उच्च वर्णीय नव अभिजात्य दलितों द्वारा नव वर्णीय शोषण प्रारम्भ हो चुका है, जिस पर सामान्य विधानों द्वारा नियंत्रण प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

## सन्दर्भ—सूची

1. अग्रवाल, डॉ० अमित, : समकालीन भारतीय समाज, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2009 पृ. 192
2. वही, पृ. 191
3. उपरोक्त, पृ. 193
4. वही,
5. वही,
6. सिंह, डॉ० एम० एन०, : आधुनिक समाजशास्त्रीय निबन्ध, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2008 पृ. 187
7. गुप्ता, एम.एल., शर्मा, डी.डी. : समाजशास्त्र, प्रतियोगिता साहित्य सिरीज, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृ. 70
8. गुप्ता, एम.एल., शर्मा, डी.डी. : समाजशास्त्र, प्रतियोगिता साहित्य सिरीज, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृ. 71
9. वही
10. वही
11. जैन धर्म चन्द्र, दरोगा कैलाश : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2010 पृ. 170
12. गुप्ता, एम.एल., शर्मा डी.डी. : समाजशास्त्र, प्रतियोगिता साहित्य सिरीज, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृ. 71
13. गुप्ता, एम.एल., शर्मा डी.डी. : समाजशास्त्र, प्रतियोगिता साहित्य सिरीज, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृ. 71
14. गुप्ता, एम.एल., शर्मा डी.डी. : समाजशास्त्र, प्रतियोगिता साहित्य सिरीज, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृ. 71
15. सिंह, डॉ. वी.एन. : भारतीय सामाजिक चिन्तन, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, 2008 पृ. 288
16. जैन, धर्म चन्द्र, दरोगा, कैलाश : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2010 पृ. 172
17. जैन, धर्म चन्द्र, दरोगा, कैलाश : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2010 पृ. 181

\* \* \* \* \*

## स्नातक स्तर पर अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. मुकेश कुमार सिंह\*

**सारांश**—आधुनिक मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में संतुष्टि-असंतुष्टि को मानव व्यवहार की एक महत्वपूर्ण विमा स्वीकार किया जाता है। प्रोफेनबर्गर (1961) ने ठीक ही कहा है कि “संतोष की एक झलक सम्पूर्ण दिन के कार्य को आल्हादित कर देती है तथा घटनाओं को निर्विघ्न रूप से सम्पन्न करती है, जबकि असंतोष की एक बदली कार्यकर्ता को नैराश्य की धुंध में घेर व लपेट लेती है। यही बात विद्यार्थी जीवन में भी अक्षरशः लागू होती है। विद्यार्थियों में अगर संतोष होगा, तो वे सुरुचिपूर्ण ढंग से, परिश्रम से, लगन से तथा तल्लीनता से अध्ययन कार्य को पूर्ण कर सकेंगे। शोधछात्र ने इसी समस्या का आधार मानते हुए शीर्षक स्नातक स्तर पर अनुदानित एवं गैर अनुदानित विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन” के अंतर्गत शोध कार्य किया। इस शोध कार्य को प्रयागराज शहर के छात्रों पर किया तथा शोध अध्ययन के उपरांत यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि स्नातक स्तर पर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि से सार्थक रूप से अधिक है।

**मूल शब्द** : प्रयागराज शहर स्नातक स्तर के छात्र, अनुदानित महाविद्यालय, गैर अनुदानित महाविद्यालयों और शैक्षिक उपलब्धि आदि।

**1. प्रस्तावना**—मानव ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। वही मानव आज यत्र, तत्र, सर्वत्र अत्यंत संतुष्ट एवं असंतुष्ट दिखाई पड़ रहा है। उसका व्यक्तित्व तथा पहचान विघटित या परिलक्षित हो रही है। वह अपने लक्ष्य के प्रति उदासीन तथा आत्म निर्णय लेने में असमर्थ सा प्रतीत होता है। शिक्षा जगत भी इसका अपवाद नहीं है। अधिकांश शिक्षक, शिक्षार्थी, प्रशासन एवं शिक्षा से संबंधित अन्य कार्यकर्ता येन केन प्रकारेण असंतुष्ट दिखाई पड़ते हैं। आज का विद्यार्थी ही आने वाले कल के भारत का कर्णधार है। वह देश के भविष्य की आशा है। छात्र शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य छात्रों द्वारा महाविद्यालयों में गठित क्रियाकलापों से प्राप्त अनुभव के प्रति उनके कुल दृष्टिकोणों से है। छात्र कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु महाविद्यालयों में आते हैं। वही छात्रों की रुचि, योग्यता एवं आवश्यकता का यथासंभव ध्यान रखते हुए निश्चित समय, निश्चित पाठ्यचर्या और निश्चित शिक्षण विधियों द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है। शोध अध्ययन द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है, कि स्नातक स्तर पर सरकारी एवं निजी महाविद्यालयों में ऐसे कौन से कारक हैं जो छात्रों की शैक्षिक संतुष्टि-असंतुष्टि को प्रभावित करते हैं। तथा किस प्रकार उनकी शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाया जाए जिससे छात्रगण शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करके राष्ट्र के विकास में अपना अधिकतम योगदान दे सकें।

**शोध अध्ययन में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों का स्पष्टीकरण**

**2. शैक्षिक उपलब्धि**— छात्रों का महाविद्यालयों के वातावरण, भौतिक सुख-सुविधाओं, शैक्षिक कार्यक्रमों और शिक्षण गतिविधियों के प्रति संतोष ही शैक्षिक उपलब्धि है। छात्रों द्वारा अपने शैक्षिक जीवन से सम्बन्धित पहलुओं में अर्जित ज्ञान, कौशल योग्यता आदि से है इसके अभाव में शैक्षिक विकास की प्रक्रिया पूर्णतया विफल हो जाती है। शैक्षिक उपलब्धि का अर्थ है कि विद्यार्थियों ने एक विषय या विभिन्न विषयों में कितने ज्ञान तथा कुशलता को अर्जित किया है।



**शोध के उद्देश्य**— स्नातक स्तर पर अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

**शोध परिकल्पना**— स्नातक स्तर पर अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

**शोध विधि**—प्रस्तुत शोध कार्य में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

**शोध न्यादर्श** : यादृच्छिक पद्धति द्वारा शोधकर्ता ने प्रयागराज शहर के महाविद्यालयों को शोध की जनसंख्या मानते हुए सभी महाविद्यालयों की एक सूची बनाकर, उसमें से 06 महाविद्यालयों का चयन यादृच्छिक विधि से कर लिया। अब चयनित महाविद्यालयों से इसी विधि द्वारा निजी महाविद्यालयों के छात्रों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया है।

**शोध उपकरण** : प्रस्तुत शोध हेतु डॉ० अलका गुप्ता द्वारा निर्मित “छात्र शैक्षिक संतोष मापनी का प्रयोग किया गया है।

**सांख्यिकीय प्रविधियाँ** : शोध कार्य में विश्वसनीय परिणाम निश्चित करने हेतु उच्च एवं विश्वसनीय सांख्यिकीय प्रविधि के रूप में मध्यमान, मानक विचलन तथा टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

**आँकड़ों का सारणीयन एवं विश्लेषण** : तालिका 1 : स्नातक स्तर पर अनुदानित एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन :

क्रम सं०	विद्यालय	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	t-अनुपात	सार्थकता स्तर
01	स्नातक स्तर पर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि	25	301.41	20.19	2.42	.05 स्तर पर सार्थक
02	स्नातक स्तर पर गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि	25	305.17	16.45		

उपर्युक्त परिणामों के अनुसार t-अनुपात का मान गणना द्वारा 2.42 प्राप्त हुआ है। ज. तालिका के अनुसार  $df = 50$  पर t का आवश्यक मान  $= 2.61$  है। यहाँ चूँकि t के आवश्यक मान से t का गणना द्वारा प्राप्त मान अधिक है, इसलिये .05 सार्थकता स्तर पर परिकल्पना “स्नातक स्तर पर सरकारी एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।” निरस्त करते हुए कह सकते हैं कि अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों का मध्यमान गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों के मध्यमान से अधिक है और दोनों मध्यमानों में सार्थक अन्तर है।

**शोध निष्कर्ष** : अन्तः स्पष्ट होता है कि अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि गैर अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों की अपेक्षा सार्थक रूप से अधिक है। अनुदानित महाविद्यालयों में छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का गैरअनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों से सार्थक रूप से अधिक होने के कारणों में सम्भवतः योग्य प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों द्वारा शिक्षण कार्य, विद्यार्थियों पर आर्थिक बोझ न होना तथा महाविद्यालयों में शैक्षिक वातावरण का होना महत्वपूर्ण कारण प्रतीत होते हैं।

**सुझाव** : अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि के सन्दर्भ में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये गए हैं—

- यह परिणाम गैर अनुदानित महाविद्यालयों के संचालकों को अपने महाविद्यालयों की गुणवत्ता सुधारने हेतु संकेत प्रदान करता है।

- अध्ययन का निष्कर्ष अनुदानित महाविद्यालयों एवं गैर अनुदानित महाविद्यालयों के हित धारकों को प्रेरित करता है कि वे इन महाविद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि हेतु योग्य शिक्षक, उचित शैक्षिक प्रशासन तथा मानकानुसार भौतिक सुविधाएं इत्यादि प्रदान करें तो इससे विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि निश्चित रूप से बढ़ेगी।

● पाठ्यचर्या, विषय आवंटन, समय सारणी, अध्यापकगण, शिक्षण युक्तियाँ, साथी समूह, प्रशासन, परीक्षा प्रणाली, पुस्तकालय और वाचनालय आदि अनेक ऐसे पक्ष व क्रियाकलाप हैं जो छात्रों के दृष्टिकोण को प्रभावित कर सकते हैं तथा जिनके फलस्वरूप छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि बढ़ सकती है। अतः इन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

#### संदर्भ-सूची

1. मासिक पत्रिका कुरुक्षेत्र , ग्रामीण शिक्षा, सितम्बर 2012.
2. मासिक पत्रिका और निरंतर विकास, सितम्बर 2013.
3. Elementary Teacher “ shaikshik sanvad ki bhumika” year 40 Ank 4 OCTOBER 2016, .
4. लाल,रमण बिहारी, 2003. भारतीय शिक्षा और उनकी समस्याएँ, रस्तोगी पब्लिकेशन.
5. <https://www.mygov.in/hi/talk/csgvjhu&f{k{kdksa&dk&fodkl@>
6. <https://hindi.news18.com/news/nation/new-education-policy-494897.htm>
7. <http://www.drishtias.com/hindi/current-affairs/the-need-to-improve-education>
8. <http://www.primaryteacher.com/create-a-new-education-policy-under-kasturirangan/>
9. <http://www.dprmp.org/NewsDetail.aspx?newsid=366139&disid=41>
10. <http://hn.newsabharati.com/Encyc/2016/6/30/New-draft-education-policy>

\* \* \* \* \*

## केन्द्रीय मूल्यांकन पद्धति के प्रति शहरी तथा ग्रामीण अध्यापकों के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. प्रवीन कुमार सिंह\*

**प्रस्तावना:**—हमारा देश शैक्षिक अभिजात वर्ग से शैक्षिक समाज की ओर बढ़ रहा है तथा इस प्रजातांत्रिक आंदोलन को कोई शक्ति रोक नहीं सकती है। यह भी सत्य है कि परीक्षा में विद्यार्थी की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है तथा उचित मूल्यांकन की पद्धति की अत्यंत आवश्यकता है। 1962 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अपनी रिपोर्ट में परीक्षा पद्धति में सुधार के लिए सिफारिश किया।

परीक्षा को इंग्लिश में एग्जामिनेशन कहते हैं। इसकी उत्पत्ति एक शब्द से हुई है जिसका अर्थ है “तराजू का काँटा”। परीक्षा से हमारा तात्पर्य यह है शिक्षक तथा अधिकारी वर्ग विद्यार्थी के कार्य की व्यवस्थित रूप से जांच करें और यह देखें कि उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में कितनी प्रगति की है। परीक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए पेज तथा थॉमस 1952 ने कहा है कि “परीक्षाएं योग्यता, उपलब्धि तथा किसी विषय का वर्तमान निष्पादन का मूल्यांकन है।”

परीक्षा का प्रमुख कार्य छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान का पता लगाना है परीक्षा के साधन हैं जिनके द्वारा विभिन्न विषयों तथा क्षेत्रों में छात्रों की उपलब्धियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है यह ज्ञान बालक के विकास के लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है थार्नडाइक का कहना है कि— “जिस वस्तु का अस्तित्व है उसका किसी न किसी मात्रा में अस्तित्व होता है और जो कुछ भी किसी मात्रा में उपस्थित है उसका मापन और मूल्यांकन किया जा सकता है।”

अतः इसे स्पष्ट है कि मूल्यांकन करने के लिए हमें एक परीक्षा में प्राप्त अंकों की ओर देखना पड़ता है। इसके बिना शैक्षिक प्रगति की जानकारी भी नहीं हो सकती है। इसलिए आवश्यक है परीक्षा संबंधित कमियों के विषय अनुसंधान किया जाय तथा यह जानने का प्रयास किया जाय कि इन कमियों को कैसे दूर किया जा सकता है। शिक्षा का क्षेत्र में शिक्षकों दृष्टिकोण जाने बिना तथा उनका सकारात्मक सहयोग लिए बिना शिक्षा की किसी भी समस्या का समाधान करना असम्भव है। इस अध्ययन से केन्द्रीय मूल्यांकन पद्धति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा।

**उद्देश्य**—केन्द्रीय मूल्यांकन पद्धति के प्रति शहरी तथा ग्रामीण अध्यापकों के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन करना।

**परिकल्पना**—शहरी तथा ग्रामीण अध्यापकों का केन्द्रीय मूल्यांकन के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

**शोध विधि**—प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

**समष्टि**—आजमगढ़ मंडल के समस्त उच्च स्तर एवं माध्यमिक स्तर के अध्यापकों एवं अध्यापिकाएं प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि हैं।

**न्यादर्श**—प्रस्तुत अध्ययन में यादृच्छिकी चयन विधि का प्रयोग करके उच्च एवं माध्यमिक स्तर के 1000 अध्यापक एवं अध्यापिकाओं का चयन न्यादर्श हेतु किया गया है।

**शोध उपकरण**—प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित उपकरण का प्रयोग किया गया है।

\* प्रवक्ता, बी.एड., स0ब0पी0जी0 कालेज, बदलापुर, जौनपुर

**केंद्रीय मूल्यांकन के प्रति मतकोण मापनी****डॉ० वी० के० राय\*****सांख्यिकी तकनीकी :- ^ टी परीक्षण \***

शहरी तथा ग्रामीण अध्यापकों का केंद्रीय मूल्यांकन के प्रति दृष्टिकोण में कोई अंतर नहीं है। इस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए न्यादर्श में वर्णित ग्रामीण तथा शहरी अध्यापकों एवं अध्यापकों के केंद्रीय मूल्यांकन के प्रति प्राप्त अभिवृत्ति अंको का क्रांतिक अनुपात (सी० आर० स्तर) ज्ञात किया गया जिस का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है।

**तालिका****शहरी तथा ग्रामीण अध्यापकों का अभिव्यक्ति स्तर के प्राप्तांकों के बीच व्याप्त सार्थक अंतर**

	शहरी अध्यापक	ग्रामीण अध्यापक	सी० आर० स्तर
संख्या	600	400	3.42
मध्यमान	135.53	131.08	.95 स्तर
मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि	.85	.98	सार्थक
प्रामाणिक विचलन	21.03	19.77	
प्रामाणिक विचलन की त्रुटि	.61	.701	.99 स्तर पर
चतुर्थांश	14.18	13.33	सार्थक
चतुर्थांश की त्रुटि	.677	.779	

**शोध निष्कर्ष :-** अतः उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि—

1. शहरी अध्यापकों एवं ग्रामीण अध्यापकों के अंकों के आधार पर ज्ञात टी परीक्षण का मान 3.42 है।
2. प्राप्त मान .05 स्तर पर सार्थक है क्योंकि यह तालिका मान (1.96) से अधिक है।
3. प्राप्त मान .01 पर भी सार्थक है क्योंकि यह मान 2.56 से अधिक है, शहरी तथा ग्रामीण अध्यापकों के माध्यमानों में सार्थक अंतर प्राप्त हुआ है। अतः शून्य परिकल्पना को स्वीकारा जाता है। तथा अनुसंधान परिकल्पना को अस्वीकार किया जाता है।

उपरोक्त पालिका से स्पष्ट है कि शहरी अध्यापकों का केंद्रीय मूल्यांकन के प्रति दृष्टिकोण ग्रामीण अध्यापकों की तुलना में अधिक सकारात्मक किया गया है। इसका संबन्धित कारण यह है कि कार्य के आधार पर अध्यापक घर में मूल्यांकन करने की कठिनाइयों से बचने की प्रक्रिया को अपनाना चाहते हैं इसलिए उनका दृष्टिकोण ग्रामीण अध्यापकों की तुलना में अधिक सकारात्मक है।

**संदर्भ—सूची**

1. राय, वी० के०, Attitude of Eaminers Towards Spot Evaluation Systaem, 1989
2. मथुरा, एस० एस०, Educational Psychology 1988-89.
3. गुप्ता, एस०के०, आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन 2003.

\* \* \* \* \*

## कला-एक शिक्षण माध्यम

दिवाकर सिंह पटेल\*

हम अपनी स्कूली शिक्षा-व्यवस्था से बच्चों के सर्वांगीण विकास की अपेक्षा रखते हैं और चाहते हैं कि बच्चे विद्यालय में स्वयं को सहज पायें, सीखने का आनन्द लें और सृजन के अधिक से अधिक अवसर पायें। इसके लिए वे कलायें ही हैं, जो विद्यार्थी की उत्सुकता, कल्पना, सृजन, सौन्दर्यानुभूति को विकसित कर सकती हैं। विभिन्न कलाएँ जैसे चित्रकला, मूर्तिकला, सज्जात्मक कला, संगीत, नृत्य, थियेटर ड्रामा आदि के माध्यम से बालक को उसकी वंशानुगत क्षमताओं को प्रकट करने एवं अभिव्यक्त करने का अवसर प्राप्त होता है।

प्रत्येक विद्यार्थी अपने आप में अद्वितीय होता है। उसमें गुप्त सृजनात्मक योग्यताएँ होती हैं। कला शिक्षा एक ऐसा माध्यम है, जो उन गुप्त सृजनात्मक योग्यताओं को पोषित कर सकती है। प्रत्येक बालक अपनी गति, योग्यता और अनुभव के अनुसार सीखते और कार्य करते हैं। इस कारण सभी को एक जैसा बनना संभव नहीं है, न ही वांछनीय है, क्योंकि हर बालक स्वयं में एक अलग व्यक्तित्व है। हर एक का विकास क्रम भी अलग होता है। विद्यार्थी की किस क्षेत्र में अधिक रुचि है, उसे पहचानते हुए शिक्षक को उसी क्षेत्र में सृजन के लिए प्रेरित करना चाहिये, जिससे उनकी यही रुचियाँ, अभिरुचियाँ तथा संवेदनशीलता उन्हें सुसंस्कृत एवं सृजनशील मानव के रूप में विकसित कर सकें।

कला-शिक्षण माध्यम का यह आशय नहीं है कि छात्र कला को ही अपना व्यवसाय चुनें। विभिन्न विषयों को समझने के लिए प्रमुख रोचक स्रोत के रूप में दृश्यात्मक एवं प्रदर्शनकारी कलायें ही हैं, जिसमें आकृतियाँ, रंगों, रूपों, लय, ताल, ध्वनि, फिल्म, नाटक, संगीत आदि साधन के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इन्हीं कलात्मक विधाओं के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति, सृजनात्मकता और संस्कृति बोध का विकास होता है। कला ही व्यक्ति के मानसिक, व्यावहारिक, भावनात्मक संवेगों की सौन्दर्यपूर्ण प्रस्तुति की कुशल संवाहक होती है। यही कारण है कि विद्यार्थी की रचनात्मक अभिव्यक्ति और सौन्दर्यात्मक परख की क्षमता के विकास एवं विस्तार के लिए कला शिक्षा को अन्य विषयों से जोड़कर शिक्षण को रुचिकर एवं आनन्ददायी बनाना चाहिए। अन्य विषयों के साथ कला के जोड़ने का अर्थ है कि कलाएँ-दृश्य कला, प्रदर्शन कला और साहित्यिक कला सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं का एक माध्यम बन जाती है, अर्थात् कला, कक्षा में अधिगम का आधार बन जाती है।

कला अगर पाठ्यक्रम के केन्द्र बिन्दु में हो तो इससे अमूर्त अवधारणाओं को स्पष्ट करने में मदद मिलती है। कला समेकित पाठ्यक्रम विभिन्न विषयों की सामग्री को तार्किक, बाल-केन्द्रित और अर्थपूर्ण तरीकों से जोड़ने के साधन प्रदान कर सकता है। पाठ्यक्रम में कला के समावेश होने से गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान तथा भाषाओं और उनकी अमूर्त अवधारणाओं के बीच एक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, उन्हें आपस में जोड़ा जा सकता है और प्रभावी ढंग से उन्हें सीखा जा सकता है।

कला के माध्यम से शिक्षा देने से सीखने-सिखाने के तरीकों को सरल व प्रभावी बनाया जा सकता है। विद्यार्थी कई बार अपने विचारों को मौखिक रूप में बयान नहीं कर सकते। उनको अपने विचारों को प्रकट करने के लिए कला का सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकार विषयों की अमूर्त अवधारणाओं को विभिन्न कला रूपों का उपयोग करके समझने में आसान और मूर्त रूप दिया जा सकता है। कला अभिव्यक्ति के लिए एक भाषा प्रदान करती है। यह गैर मौखिक अभिव्यक्ति को बाहर आने के लिए प्रोत्साहित करती है, चाहे वह गीत के रूप में हो या फिर पेंटिंग या प्रदर्शन के रूप में।

\* सहायक अध्यापक, श्री यशोदा लाल मिश्र उ.मा.वि., बड़गाँव, आजमगढ़

यदि हम ज्ञान को शिक्षार्थी के सम्मुख विविध रूपों में रखते हैं, तो उसे ज्ञानार्जन में कठिनाइयों का अनुभव होता है, परन्तु जब ज्ञान को संगठित रूप से प्रदान किया जाता है तो शिक्षार्थी उसे सरलतापूर्वक आत्मसात् कर लेता है। यही कारण है कि आज ज्ञान विविध विषयों के माध्यम से देने की अपेक्षा कला के माध्यम से देना अधिक लाभदायक है।

ज्ञान अखण्ड है, सुविधा की दृष्टि से उसे अलग-अलग विषयों में विभाजित किया गया है। अतः विभिन्न विषयों में सह-सम्बन्ध स्थापित करके ही ज्ञान को समग्र रूप से छात्रों को दिया जाना लाभप्रद है। कला शिक्षा अपने व्यापक अर्थ में तो ज्ञान-विज्ञान के समस्त विषयों को अपने में समाहित किये हुए हैं, किन्तु विशिष्ट अर्थ में उसका सम्बन्ध कुछ तथ्यों से प्रत्यक्ष एवं परिहार्य है। कला स्वयं में एक अत्यन्त रोचक व मनोरंजक विषय है, जब वह किसी जटिल विषय से जोड़ी जाती है, तो उस विषय की जटिलता समाप्त हो जाती है और वह सरलता से ग्रहणशील बन जाती है। कला जैसा क्रियात्मक विषय जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित करता है और बालक को उसके सुनहरे भविष्य के लिए तैयार करता है। इस प्रकार यह देखा गया है कि कला प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक विषय के साथ सह-सम्बन्धित है। यदि हमारे विद्यालय में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में कला समेकित शिक्षा का समावेश हो जाये तो यह न सिर्फ बच्चों के लिए रुचिकर होगा बल्कि शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए भी उनकी कक्षा बाल-केन्द्रित व आनन्ददायक बन जायेगी। कला के माध्यम से कुछ विषयों के अध्ययन की प्रक्रिया निम्नलिखित है :-

**1. कला के माध्यम से भाषागत विषयों का अध्ययन :** भाषा व कला एक दूसरे के पूरक हैं, भाषागत विषयों को भी कला के माध्यम से बहुत सुन्दर ढंग से पढ़ाया जा सकता है। जैसे-पद्य पाठ चाहे हिन्दी में हो, संस्कृत में हो, अंग्रेजी के हो या अन्य किसी भी भाषा में हो, यदि शिक्षक उन पाठों को संगीत की लय के अनुसार पढ़ाता है, तो बालकों पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है व इस तरह पाठ या विषय को रोचक बनाया जाता है।

कहानी लेखन को चित्रकला के माध्यम से बहुत सरल ढंग से समझाया जा सकता है। यदि शिक्षक ब्लैक-बोर्ड पर कछुआ और खरगोश का चित्र बनाता है और छात्रों से चित्र सम्बन्धी कहानी विकसित करने को कहता है, तो छात्र आसानी से चित्रों के माध्यम से कहानी का विस्तार कर सकता है।

भाषा स्वयं कला का ही रूप है। भाषा में साहित्य के माध्यम से काव्य, नाटक, कहानी, निबन्ध आदि का रसास्वादन किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि भाषा कला की अभिव्यक्ति है।

कलात्मक क्रियाओं द्वारा भाषा और साहित्य का ज्ञान देना अत्यन्त रोचक व सुगम है। इस प्रकार किसी भी चित्र की रचना के समय उसके भावों को काव्य में तथा काव्य की पंक्तियों के भावों को चित्र में व्यक्त कराया जा सकता है। इस प्रकार के ज्ञान देने से बालक में पूर्ण ज्ञान का विकास होगा।

कला एक ऐसी सार्वभौमिक भाषा है, जिसके माध्यम से बालक रंगों, आकारों की मदद से स्वयं को आसानी से व कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त कर पाता है। इस प्रकार यह कहना गलत नहीं होगा कि कला भाषा का ही एक रूप है।

**2. कला के माध्यम से इतिहास विषय का अध्ययन :** कला के माध्यम से ही प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति और सभ्यता का परिचय मिलता है। कला के माध्यम से इतिहास को बहुत ही सरलतम ढंग से समझाया जा सकता है। यदि शिक्षक छात्रों के सामने भीमबेटका, पंचमढ़ी, जोगीमारा, अल्तामीरा आदि पहाड़ियों की गुफाओं से प्राप्त चित्रों को प्रस्तुत करें और इसके बारे में बताये तो छात्र आसानी से प्रागैतिहासिक काल के संस्कृति और सभ्यता की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं।

एलोरा व एलिफैंटा की गुफाओं में बने भव्य मूर्तिशिल्प दर्शनीय हैं, जो कि विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों का परिचय देते हैं। पंजाब में हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई में जो बर्तन और दैनिक जीवन के उपकरण प्राप्त हुए उनसे सिन्धु घाटी सभ्यता का इतिहास प्राप्त होता है। वर्तमान समय में भी ऐतिहासिक जानकारी का मुख्य स्रोत कला ही है। अशोक कालीन स्तूप व शिलालेख हमें अशोक कालीन इतिहास की जानकारी देते हैं। ताजमहल, लालकिला, जामा-मस्जिद ये सब मुगलकालीन इतिहास के स्रोत हैं। मिस्र के पिरामिड, चीन की कलात्मक दीवार, उनके प्राचीन इतिहास को बताने के लिए पर्याप्त हैं, सिक्कों पर बने हुए राजाओं के चित्र राजाओं का इतिहास बताते हैं।



इतिहास, विज्ञान और कला दोनों ही हैं। जब यह सत्यों की खोज करता है, तब वह “विज्ञान” है और जब यह उन सत्यों के प्रतिपादन तथा वर्णन करता है, तब वह “कला” है। साहित्यकारों और कलाकारों का कहना है कि इतिहास साहित्य का एक अंग है। इतिहास में ऐसी बहुत सी सामग्री है, जिसको कला की सहायता से प्रस्तुत किया जा सकता है, इस कारण वह कला है। कला के माध्यम से दी गई शिक्षा आधारपूर्ण, जिज्ञासापूर्ण रोचक तथा प्रभावपूर्ण होती है। अतः कला व इतिहास का समन्वय अत्यन्त आवश्यक है।

**3. कला के माध्यम से गणित का अध्ययन :** चित्रकला का प्रादुर्भाव रेखाचित्र से हुआ। रेखाएँ कैसी हों, कितनी बड़ी हों, इसका ज्ञान गणित की परिधि में आता है। रेखागणित, प्राविधिक कला का ही विकसित रूप है। रंगों का उपयोग करते समय उनके बल व घनत्व को आँकते हैं, जो गणित के ही अन्तर्गत आता है। काव्यकला में किसी कविता या छन्द में वर्णित मात्राओं की गिनती के हिसाब से विभिन्न कविताओं की रचना गणित का आशय व्यक्त करती है। संगीत के सप्तक का आधार गणित ही है। आलेखन कला में विभिन्न ज्यामितीय आकृतियाँ निर्मित होती हैं, जिनका आधार गणित ही होता है। इस प्रकार गणित व कला एक दूसरे से सहसम्बन्धित हैं और कला के माध्यम से गणित की शिक्षा देने से बच्चे गणित की अवधारणाओं को अच्छी प्रकार से समझते हैं।

गणित में गिनती, माप और आकार प्रमुख हैं। कला शिक्षा बच्चों को सम-असम आकारों को पहचानने, द्विआयामी या त्रिआयामी आकृतियाँ बनाने में मदद करती हैं। जिससे बच्चे लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई क्षेत्रफल आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। कला के माध्यम से हम गणितीय अवधारणाओं को आसानी से बच्चों को समझा सकते हैं। जैसे— पतंग के माध्यम से बच्चों को लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, विकर्ण, परिमित, क्षेत्रफल आदि अवधारणाओं का ज्ञान, क्रिसमस ट्री के माध्यम से त्रिभुज का ज्ञान, फल और सूर्य के माध्यम से वृत्त का ज्ञान आसानी से करा सकते हैं। अतः कला के माध्यम से गणित का शिक्षण अत्यन्त आवश्यक है।

**4. कला के माध्यम से विज्ञान विषय का अध्ययन :** विज्ञान और कला एक दूसरे के पूरक हैं। विज्ञान का अध्ययन बिना चित्र के असम्भव है। उसी प्रकार कला का भी अध्ययन बिना चित्र के असम्भव है। जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, शारीरिक विज्ञान में तो विद्यार्थियों का हाथ बहुत ही सधा होना चाहिए, जिसका अभ्यास चित्रकला जैसे विषय का अध्ययन करने से ही हो सकता है। दूसरी ओर चित्रकला में विभिन्न रंगों से छाया तथा प्रकाश की सहायता से दृश्य अंकित करने की आवश्यकता पड़ती है। भौतिकशास्त्र के द्वारा प्रकाश तथा छाया का सही ज्ञान होता है तथा दृष्टि सम्बन्धित कई बातों की जानकारी होती है और बहुरूपदर्शी द्वारा तरह-तरह के डिजाइन चुनने में मदद मिलती है।

विज्ञान शिक्षक का यह कर्तव्य होता है कि वह अपने विषय के शिक्षण के बीच चित्रकला की ओर भी ध्यान दें और विद्यार्थियों को सरल, सुन्दर व स्वच्छ चित्र बनाने को प्रेरित करें।

जीव विज्ञान को कला के माध्यम से छात्रों को आसानी से समझाया जा सकता है, यदि बच्चों को छिपकली के बारे में बताना है, तो अध्यापक को चाहिए कि वह ब्लैक बोर्ड पर स्वच्छ व सुन्दर छिपकली का चित्र बनाये और उसके बारे में छात्रों को बताये। इस प्रकार का सीखा हुआ ज्ञान छात्रों में स्थायी रहता है। फूल-पत्तियों की बनावट वनस्पति विज्ञान और कला दोनों का विषय है। कला के माध्यम से ज्ञान देने से बालक में पूर्ण ज्ञान का विकास होता है।

**5. कला के माध्यम से भूगोल का अध्ययन :** भूगोल विषय भी कला से अछूती नहीं रही है। भारत की प्राकृतिक दशा, भारत की जलवायु तथा भारत का मानवीय भूगोल, आदि भारतीय चित्रकला के प्रमुख विषय रहे हैं। काव्यकला में प्रकृति का वर्णन, चित्रकला में बरसात व हरे-भरे वृक्षों की भरमार पायी जाती है। पर्वतमालाओं, बहते जल की अविरल धाराओं, सागर की लहरों, मूसलाधार वर्षा, मरुस्थल में ऊँट का उपयोग, हाथियों की लड़ाई जैसे विषय चित्रकला में अपनाये गये हैं। राजस्थानी शैली में नायक व नायिका को चुस्त पायजामें पहने दिखाया गया है। यह वेशभूषा भौगोलिक वातावरण की देन है।

भूगोल विषय को रुचिकर बनाने के लिए मानचित्र, मॉडल, चित्र आदि का प्रयोग करते हैं। भिन्न-भिन्न देशों के पशु-पंक्षी तथा वनस्पतियों का अध्ययन कला माध्यम से करके सुगम व स्थायी बनाते हैं। ग्राफ और रेखाचित्र खींचने में ड्राईंग की हस्तकुशलता की आवश्यकता पड़ती है। ड्राईंग में निपुण व्यक्ति सुन्दर मानचित्र बना सकते हैं।

इस प्रकार काव्यकला, चित्रकला, संगीत एवं भवन निर्माण कला के माध्यम से भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन भली प्रकार किया जा सकता है। अतः एक भूगोल शिक्षक के लिए कला का ज्ञान बहुत ही आवश्यक है।

**6. कला के माध्यम से समाजशास्त्र का अध्ययन :** समाजशास्त्र में कार्टून चित्रों का बड़ा प्रचलन है। ये कार्टून चित्र किसी विचार अथवा स्थिति को बड़े ही सरल और विनोदपूर्ण ढंग से व्यक्त करते हैं। ये कार्टून चित्र समाज के नित्य दिन की बातों से सम्बन्धित रहते हैं।

समाज-अध्ययन को पोस्टर के माध्यम से भी अच्छी प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं। पोस्टर में किसी एक विचार अथवा एक प्रसंग को स्पष्ट तथा प्रभावोत्पादक रूप में उपस्थित करते हैं। कला के द्वारा ही हम ऐतिहासिक घटनाओं को मूर्त कर सकते हैं, भौगोलिक स्थितियों को स्पष्ट कर सकते हैं तथा आधुनिक घटनाओं को कक्षा में प्रतिबिम्बित कर सकते हैं। अतः समाजशास्त्र में चित्रों का उपयोग अवश्य किया जाना चाहिए।

**7. कला के माध्यम से गृहविज्ञान का अध्ययन :** गृहविज्ञान स्वतः ही कला का रूप है, यह गृहनिर्माण की कला है। पाकशास्त्र, बुनाई, सिलाई व कढ़ाई आदि सभी क्रियात्मक रूप में दस्तकारी हैं। गृहविज्ञान में दस्तकारी का सब जगह समावेश है।

कला व गृहविज्ञान दोनों का उद्देश्य हाथ की योग्यता द्वारा मस्तिष्क का विकास करना, ज्ञानेन्द्रियों को पुष्ट करना तथा छात्र में कलात्मक प्रवृत्ति को जाग्रत करना है। छात्रों को इनके द्वारा सौन्दर्यानुभूति होती है, जो जीवन को सरल बनाती है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, माता प्रसाद : कला शिक्षा शिक्षण, उपोलो प्रकाशन, जयपुर, 2008.
2. शर्मा, डॉ० प्रभा : कला शिक्षा शिक्षण, श्रुति पब्लिकेशन, जयपुर, 2007.
3. अग्रवाल, गिराज किशोर : कला समीक्षा, देवऋषि प्रकाशन, अलीगढ़, 1997.
4. वालिया, डॉ० जे०एस० : भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, अहम पाल, पब्लिशर्स, पंजाब, 2012-13.
5. गुप्ता, डॉ० एस०पी० एवं डॉ० अलका गुप्ता : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2012.
6. सिंह, डॉ० योगेश कुमार एवं अर्चनेश शर्मा : इतिहास शिक्षण, ऐ०पी०एच० पब्लिकेशन कं०, नई दिल्ली, 2009.
7. गुरुसरनदास : इतिहास शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1996.
8. मंगल, डॉ० एस०के० : साधारण विज्ञान शिक्षण, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 1990.
9. सिंह, हरनारायण : भूगोल शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1968.
10. प्रसाद, मुनेश्वर : समाज अध्ययन शिक्षण, ज्ञानपीठ प्रा०लि०, पटना, 1968.
11. शैरी, डॉ० जी०पी० एवं डी०पी० सरन : गृह विज्ञान शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1976.
12. Dutt, Pulin : At in Education of Child, Report of Seminar on Art Education, Lalit Kala Academy, New Delhi, 1956.
13. वैश्य, आर०पी० : चित्रकला शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.
14. तिवारी डॉ० ज्योत्सना : विद्यालय में कला शिक्षा के कुछ आयाम, संपा०, दिसम्बर 2008.

\* \* \* \* \*

## बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

प्रदीप चौहान\*

मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समस्या ही समस्या हैं यत्र-तत्र-सर्वत्र समस्याओं के संसार से घिरा हुआ व्यक्ति अपने जीवन के बहुमूल्य समय को इन्हीं समस्याओं की जकड़ से निकल पाने की असफल कोशिश में गुजार रहा है। ऐसे समय में जब मानव जीवन नित्य नये वैज्ञानिक आविष्कारों, खोजों एवं निर्माण में सरलतम हुआ जा रहा है, तथा सम्पूर्ण भौतिक जगत में उसने अपना साम्राज्य सा स्थापित कर लिया है जिससे हर बालक के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समस्या ही समस्या है। आज के भौतिकावादी युग में मानव व्यक्तित्व में काफी गिरावट आ गयी है भारतीय संस्कृति के प्राचीन काल से ही व्यक्तित्व के विषय में छात्रों का बताया जाता था। वेदों के द्वारा व्यक्तित्व की शिक्षा दी जाती थी। उस समय उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के बालक तथ्य निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के बालकों को एक साथ शिक्षा प्रदान की जाती थी।

आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व की तो शिक्षा दी जाती है। लेकिन फिर भी अलग-अलग सामाजिक आर्थिक स्तर के बालकों में कुछ सम्बन्ध अवश्य हैं बालक के स्वभाव से ही उसके व्यक्तित्व के बारे में पता चलता है कि बालक का स्वभाव भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग होता है इनके व्यक्तित्व के द्वारा ही बालक के सभी क्रिया-कलापों के बारे में पता चलता है। हमारी भारतीय संस्कृति प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक व्यक्तित्व के सहारे आगे बढ़ा जा सकता है आज भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ने से हमारे व्यक्तित्व में ह्रास हो रहा है इन्ही व्यक्तित्व के ह्रास के कारण आज लूटपाट, मारपीट, घूसखोरी तथा आतंकवाद को बढ़ावा मिल रहा है।

मानव का स्वभाव एक दूसरे से भिन्न है और उसमें परस्पर व्यक्तिगत विभिन्नता हैं ये विभिन्नता शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रकट होती है। आधुनिक युग में जहाँ व्यक्ति के दैनिक जीवन में व्यक्तिक विभिन्नता दृष्टिगत हो रही है वहाँ समस्त मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से विशेष रूप से शैक्षिक क्षेत्र में सहायता लेकर विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विचारों, उनकी अभिवृत्तियों एवं उनके व्यक्तित्व को ज्ञात कर उनका उपयोग उचित दिशा में करना शैक्षिक जीवन में अत्यन्त उपयोगी होगा।

यदि व्यक्ति अपने जीवन में व्यक्तित्व के अनुसार कार्य करेगा तो उसे उच्च सफलता मिलने की संभावना होगी। कभी-कभी विद्यार्थियों को स्वयं ही नहीं पता होता है कि वे क्या करना चाहते हैं? उनकी अपने जीवन के लिये क्या इच्छा है? क्या लक्ष्य है? ऐसी स्थिति में उनका उचित मार्गदर्शन उनकी योग्यता के अनुसार किया जा सकता है। यह कार्य उनके व्यक्तित्व का मापन करके किया जा सकता है, और उनमें उत्तम व्यक्तित्व का विकास भी किया जा सकता है।

आज हमारा देश हर क्षेत्र में इस बात पर दुःख तथा चिन्ता प्रकट करता है कि लोगों के साथ तथा विशेष रूप से नयी पीढ़ी के जीवन में व्यक्तित्व का गिरता हुआ स्तर प्रतीत हो रहा है मूल्य हीन लोग दिशाहीन होते हैं। उचित व्यक्तित्व की शिक्षा आगे बढ़ने हेतु संकेत देती है और मार्ग का निर्धारण करती है। जीवन की प्राथमिकताओं को स्पष्ट करती है। बढ़ती हुयी अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता जीवन व्यक्तित्व में आयी गिरावट के कारण

\* शोध छात्र

ही है अतः आवश्यकता है कि छात्रों में सही व्यक्तित्व का समुचित विकास किया जाये, ताकि देश के भावी बालकों का मार्ग प्रशस्त हो। व्यक्तित्व का विकास बालकों के तीव्र के लिये बहुत अनिवार्य है, क्योंकि वे उनके आचरण का निर्धारण करते हैं, जीवन में स्तरों का निर्माण करते हैं, हमारे कार्यों की प्रथमिकताओं को तय करते हैं। मूल्य क्षण भंगुर नहीं हैं, अपितु जीवन के अर्थ तथा गुणवत्ता की खोज हैं, इसलिए बालकों में शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व का विकास किया जाना चाहिये। क्योंकि उनके अभाव में जीवन सारहीन सा लगता है।

प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि अनुसंधान के द्वारा यह ज्ञात किया जा सके कि शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत छात्र व छात्राओं के व्यक्तित्व को सामाजिक आर्थिक स्थिति कस प्रकार से प्रभावित करते हैं शैक्षिक स्तर पर व्यक्तित्व व सामाजिक आर्थिक स्थिति के मध्य किस तरह का प्रभाव एवं संबंध है। शोध के बाद शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्तित्व व सामाजिक-आर्थिक स्तर के सम्बन्ध के विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत करना, यह सभी बातें प्रस्तुत समस्या को अध्ययन का विषय है।

### उद्देश्य

1. उच्च तथा मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी०एड० प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन।
2. उच्च तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी०एड० प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन।
3. मध्य तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी०एड० प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन।

### शून्य परिकल्पना—

1. उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर तथा मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी०एड० प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी०एड० प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी०एड० प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है।

### प्रयुक्त शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन में 'वर्णनात्मक शोध विधि' का प्रयोग किया गया है। शोध प्रकृति को ध्यान में रखकर शोधकर्ता ने अपने शोधकार्य में निम्न प्रश्नावली का प्रयोग किया है।

1. व्यक्तित्व मापनी डॉ० रामजी श्रीवास्तव और क्यू० आलम जी की मापनी का प्रयोग किया गया है।
2. सामाजिक-आर्थिक स्तर मापनी डॉ० बीना शाह (शिक्षा-संकाय, गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर, गढ़वाल) की मापनी का प्रयोग किया गया है।

### जनसंख्या तथा न्यादर्श

प्रस्तुत शोध में इलाहाबाद जनपद में बी० एड० में अध्ययनरत विद्यार्थियों को जनसंख्या रूप में लिया गया है। शोधकर्ता ने जनसंख्या से न्यादर्श के रूप में नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, कोटवा, जमुनीपुर, दुबावल, इलाहाबाद के 50 विद्यार्थी तथा बेनी माधव सिंह महाविद्यालय माधवनगर फाफामऊ इलाहाबाद के 50 विद्यार्थी का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि से किया गया है। सामाजिक-आर्थिक स्तर के अनुसार न्यादर्श का वितरण निम्न है—

उच्च-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	मध्यम-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	निम्न-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी
30	40	30

**प्रयुक्त सांख्यिकी विधियाँ :** परीक्षाओं के द्वारा प्राप्त प्राप्तांकों के विश्लेषण के लिये मध्यमान प्रामाणिक विचलन तथा टी-प्राप्तांक ज्ञात किया गया है।

**विश्लेषण तथा व्याख्या**

**उच्च-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों एवं मध्यम-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मध्य टी-परीक्षण**

**सारणी-1**

क्र०सं०	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	ज अनुपात
1.	उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	30	3.80	0.8	4.02
2.	मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	40	4.47	1.374	

सारणी संख्या 01 के अवलोकन से ये ज्ञात होता कि उच्च तथा मध्यम समाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के मूल्य से सम्बन्धित ज परीक्षण का मान 4.02 जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है, इससे शून्य परिकल्पना उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर तथा मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी०ए० प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है। अस्वीकार हो जाती तथा शोध परिकल्पना उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर तथा मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी०ए० प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर है, स्वीकार कर ली जाती है। अतः यह स्पष्ट होता है कि उच्च तथा मध्यम समाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के व्यक्तित्व भिन्नता पायी जाती है।

सारणी 01 के मध्यमान से यह ज्ञात होता है कि उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर विद्यार्थियों के मूल्य का मध्यमान 3.80 है तथा मध्यम सामाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के मूल्य का मध्यमान 4.47 है इससे यह स्पष्ट होता है कि उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर विद्यार्थियों के मूल्य स्तर मध्य स्तर वाले विद्यार्थियों से कम होता है जिसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

1. मध्यम समाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के परिवारों पर समाजिक दबाव या नियंत्रण होना।
2. मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के परिवारों द्वारा समाजिक मूल्य को प्राथमिकता देना।

**उच्च-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों एवं निम्न-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मध्य टी-परीक्षण सारणी-2**

क्र०सं०	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	ज अनुपात
1.	उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	30	3.80	1.374	5.45
2.	निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	30	4.13	1.14	

सारणी संख्या 02 के अवलोकन से ये ज्ञात होता कि उच्च तथा मध्यम सामाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के मूल्य सम्बन्धित ज परीक्षण का मान 5.45 जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है, इससे शून्य परिकल्पना उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है, अस्वीकार हो जाती तथा शोध परिकल्पना उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर है स्वीकार कर ली जाती है। अतः यह स्पष्ट होता है कि उच्च तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के व्यक्तित्व भिन्नता पायी जाती है।

सारणी 02 के मध्यमान से यह ज्ञात होता है कि उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर विद्यार्थियों के मूल्य का मध्यमान 3.80 है तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के मूल्य का मध्यमान 4.13 है इससे यह स्पष्ट होता है कि उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर विद्यार्थियों के मूल्य स्तर निम्न स्तर वाले विद्यार्थियों से कम होता है जिसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

1. निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के परिवारों पर समाजिक दबाव या नियंत्रण होना।
2. निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के परिवारों द्वारा समाजिक मूल्य को प्राथमिकता देना।

**मध्य-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों एवं निम्न-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मध्य टी-परीक्षण**

**सारणी-3**

क्र०सं०	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	ज अनुपात
1.	मध्य सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	40	4.47	1.10	3.39
2.	निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी	30	4.13	1.14	

सारणी संख्या 03 के अवलोकन से ये ज्ञात होता कि उच्च तथा मध्यम सामाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के मूल्य सम्बन्धित t परीक्षण का मान 3.39 जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है, इससे शून्य परिकल्पना मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है अस्वीकार हो जाती तथा शोध परिकल्पना मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर है स्वीकार कर ली जाती है। अतः यह स्पष्ट होता है कि मध्य तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के व्यक्तित्व भिन्नता पायी जाती है।

सारणी 03 के मध्यमान से यह ज्ञात होता है कि मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर विद्यार्थियों के मूल्य का मध्यमान 4.47 है तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के मूल्य का मध्यमान 4.13 है इससे यह स्पष्ट होता है कि निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर विद्यार्थियों के मूल्य स्तर मध्य स्तर वाले विद्यार्थियों से कम होता है जिसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

1. मध्यम सामाजिक आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों के परिवारों पर समाजिक दबाव या नियंत्रण होना।
2. मध्य सामाजिक आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के परिवारों द्वारा समाजिक मूल्य को प्राथमिकता देना।

**निष्कर्ष :** बी0 एड में अध्ययनरत विद्यार्थियों का व्यक्तित्व पर सामाजिक आर्थिक स्तर के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों का बिन्दुवार विवेचन प्रस्तुत हैं –

1. उच्च की तुलना में मध्यम-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मूल्य उच्च कोटि के हैं।
2. उच्च की तुलना में निम्न –सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मूल्य उच्च कोटि के हैं।



3. निम्न की तुलना में मध्यम-सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मूल्य उच्च कोटि के हैं।

#### शैक्षिक निहितार्थ

1. मूल्य बालकों के आचरण के निर्धारक होते हैं, जीवन में स्तरों का निर्माण करते हैं, हमारे कार्य प्राथमिकताओं को तय करते हैं। अतः व्यक्तित्व का अध्ययन एवं उनकी शैक्षिक उपयोगिता सार्थक होती है।

2. यदि व्यक्ति अपने जीवन व्यक्तित्व के अनुसार कार्य करेगा तो उसे उच्च सफलता मिलने की आशा रहती है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, एस0पी0 (2003) – “आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन” इलाहाबाद; शारदा पुस्तक भवन
2. गुप्ता, एस0पी0 (2004) – “सांख्यिकीय विधियाँ” इलाहाबाद; शारदा पुस्तक भवन ।
3. गैरेट हेनरी ई (1989) – “शिक्षा मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग” नई दिल्ली; कल्याणी पब्लिशर्स ।
4. पाण्डेय आर0एस0 (2007)–“मूल्य-शिक्षा” आगरा; अग्रवाल पब्लिकेशन
5. भार्गव, महेश –“आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन”
6. गुप्ता, एस0पी0 (2004)–“शिक्षा मनोविज्ञान”, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन
7. Baron Robert A (2001)- “Psychology (5<sup>th</sup> Edition) New Delhi; Prentice Hall of India Pvt. Ltd.
8. Goleman. D. (1995) -“Emotional Intelligence” New York; Bantam.
9. Journal of Educational Studies (2005) - 4<sup>th</sup> Edition “Allahabad University Publication”
10. Journal of Educational Studies (2005) - 5<sup>th</sup> Edition “Allahabad University Publication”
11. 4<sup>th</sup> Survey of Educational Research - Vol. 1, 2 New Delhi : N.C.E.R.T.
12. 5<sup>th</sup> Survey of Educational Research - Vol. 1, 2 New Delhi : N.C.E.R.T.
13. “Encyclopedic Dictionary of Psychology, Lashay Publication, New Delhi.
14. Best John W. (2006)-“Research in Education” 9<sup>th</sup> Edition, Pearson; Prentice Hall.
15. Cattell R.B. (1957)-“Personality and motivation”, New York; Harcourt.
16. Guilford J.P. (1967)-“The Nature of Human Intelligence”, New York, Mc Graw Hill.
17. Maslow A.H. (1954)-“Motivation and Personality”, New York, Harper and Row.

\* \* \* \* \*

## शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं भौतिक अभिवृत्ति का सह-सम्बन्धात्मक अध्ययन

डॉ० विनय प्रताप सिंह\*

### प्रस्तावना

किसी भी शिक्षण प्रणाली की सफलता का आधार शिक्षक होता है। शिक्षक ही शिक्षण प्रक्रिया की धुरी है। उसके निदेशन एवं परामर्शन के बिना विद्यार्थी ज्ञान अर्जन करने की सही दिशा प्राप्त करना कठिन है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। वह शिक्षा के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करता है जिससे की बालक अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा एवं क्षमता का विकास कर सकें तथा भविष्य में उसका प्रयोग कर सकें। शिक्षक राष्ट्र का निर्माता होता है। राष्ट्र की शैक्षिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक प्रगति शिक्षक पर ही आधारित होती है। शिक्षक एक दीपक की तरह होता है जो स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाशित करता है।

### 2. समस्या कथन :

शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति का सह-संबन्धात्मक अध्ययन करना।

### 3. उद्देश्य :

1. शासकीय विद्यालयों की शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सह-संबंध का अध्ययन करना।
2. अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सह-संबंध का अध्ययन करना।

### 4. परिकल्पना :

1. शासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक सह-संबंध नहीं होगा।
2. अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक सह-संबंध नहीं होगा।

**जनसंख्या :-** छत्तीसगढ़ राज्य के जांजगीर-चाम्पा जिले के सक्ती ब्लाक के पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय शिक्षक जो वर्तमान समय में अध्ययनरत हैं, प्रस्तुत शोधकार्य की जनसंख्या है।

**न्यादर्श :** जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए छत्तीसगढ़ राज्य के जांजगीर-चाम्पा जिले के सक्ती ब्लाक के शासकीय और अशासकीय विद्यालयों में से 80 शिक्षकों का साधारण यादृच्छिक न्यादर्शन विधि के अन्तर्गत लॉटरी विधि के द्वारा चयन किया गया है।

\* सहायक अध्यापक, श्याम शिक्षा महाविद्यालय, सक्ती, जिला जांजगीर-चाम्पा (छत्तीसगढ़)

क्र	शासकीय विद्यालय का नाम	शिक्षक	
		पुरुष	महिला
1	शा. सदर पू० मा० कन्या शाला सक्ती	02	05
2	बालक शा० पू०मा० वि० सक्ती	05	01
3	शा० पू०मा० वि० कसोपारा सक्ती	05	01
4	शा० पू०मा० वि० बरपाली कला सक्ती	03	04
5	शा० पू०मा० वि० पतेरापाली कला सक्ती	03	04
6	शा० पू०मा० वि० बूढनपुर सक्ती	02	05
	योग	20	20

क्र.	अशासकीय विद्यालय का नाम	शिक्षक	
		पुरुष	महिला
1	जगन्नाथ पू०मा० वि० दमाउधारा सक्ती	06	01
2	ज्ञानकुंज पब्लिक स्कुल असौदा सक्ती	0	07
3	दिव्यज्योति पब्लिक स्कुल नवापारा सक्ती	05	00
4	सरस्वती षिषु मन्दिर पू. मा. वि. सक्ती	04	03
5	एम० एल० जैन पब्लिक स्कुल सक्ती	04	03
6	गुंजन पब्लिक स्कुल सक्ती	01	06
	योग	20	20
	कुल योग	80	

### शोध उपकरण

प्रस्तुत शोध में दो उपकरणों का प्रयोग किया गया है।

#### 1 सामान्य शिक्षण दक्षता मापनी

- विकासकर्ता— डॉ.बी. के. पासी एवं एम. एस. ललिता
- वर्ष—1994
- प्रकाशन — राष्ट्रीय मनोवैज्ञानिक कारपोरेशन (उ०प्र०)

#### 2 शैक्षिक अभिवृत्ति मापनी

विकासकर्ता :- डॉ एस. पी. अहलूवालिया

वर्ष— 1996

प्रकाशन — राष्ट्रीय मनोवैज्ञानिक कारपोरेशन आगरा (उ०प्र०)

### अध्ययन का परिसीमन

1. यह शोध जांजगीर-चाम्पा जिले के सक्ती ब्लॉक के पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय तथा अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों तक ही सीमित रहेगा।
2. यह शोध शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शिक्षण अभिवृत्ति पर ही रहेगा।
3. शिक्षकों के शिक्षण दक्षता के मापन के लिए बी०के० पासी एवं एम०एस० लालिता द्वारा निर्मित सामान्य शिक्षण दक्षता मापनी उपकरण का प्रयोग किया गया है।
4. शिक्षकों के शिक्षण अभिवृत्ति के मापन के लिए डॉ० एस०पी० अहलूवालिया द्वारा निर्मित शैक्षिक अभिवृत्ति मापनी उपकरण का प्रयोग किया गया है।

### शोध विधि

इस शोध में वर्णनात्मक शोध विधि के अंतर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

### आंकड़ों का विश्लेषण

संकलित आंकड़ों का वर्गीकरण एवं सारणीकरण करने के पश्चात् उनका उपयुक्त विश्लेषण एवं व्याख्या करने के लिए सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया। आंकड़ों के प्रकृति के आधार पर सांख्यिकी के रूप में टी-परीक्षण एवं कार्ल पियर्सन सहसंबंध का प्रयोग किया गया है। दो प्रदत्तों के मध्यमानों के मध्य अंतर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

### परिकल्पनाओं की पुष्टि

$H_1$  शासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक सह-संबंध नहीं होगा।

#### सारणी क्रमांक 1

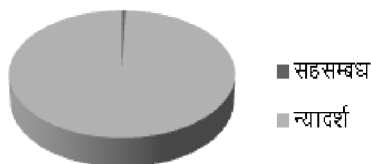
शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सहसंबंध का विवरण

समूह	चर	संख्या $N$	स्वतंत्रता कोटि $df$	r गणना-मान $r$ -value	r सारणी मान $r$ -critical
शासकीय विद्यालय के शिक्षक	शिक्षण दक्षता	80	78	0.414 *	0.217
	शैक्षिक अभिवृत्ति				

\*0.05 स्तर पर सार्थक सहसंबंध है।

#### आकृति क्रमांक 1

शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सहसंबंध



सारणी क्रमांक 1 एवं आकृति क्रमांक 1 के अवलोकन करने से विदित होता है कि शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों के दो चरों शैक्षिक अभिवृत्ति एवं शिक्षण दक्षता के मध्य आंकलित सह-संबंध  $r = 0.414$  है जो स्वतंत्रता कोटि 78 के लिए 0.05 की सार्थकता स्तर पर  $r$  सारणी मान 0.217 से अधिक है और चर शैक्षिक अभिवृत्ति एवं चर शिक्षण दक्षता के मध्य सार्थक उच्च धनात्मक सहसंबंध पाया गया है।

अतः शासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक सहसंबंध पाया गया।

विवेचना :- शासकीय विद्यालय के शिक्षकों के चरों शैक्षिक अभिवृत्ति एवं चर शैक्षिक अभिवृत्ति एवं शिक्षण दक्षता के मध्य सहसंबंध का विश्लेषण करने के पश्चात् पाया गया कि शासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शैक्षिक अभिवृत्ति बढ़ाने से शिक्षण दक्षता समान रूप से बढ़ती है। जिन शासकीय शिक्षकों की शैक्षिक अभिवृत्ति अधिक होगी उनकी शिक्षण दक्षता भी अधिक होगी एवं दोनों चरों के बढ़ने की गति भी लगभग समान पायी गई। शासकीय शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति समान गति से बढ़ने के कई कारण हो सकते हैं जिसके चलते दोनों चरों में धनात्मक संबंध पाया गया है। शासकीय शिक्षकों की नियुक्ति एक मानदण्ड के आधार पर होती है। जो शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं उन्हीं का चयन होता है इसलिए शासकीय शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति के साथ शिक्षण दक्षता समान रूप से बढ़ती है। उनमें शिक्षण के प्रति बहुत धनात्मक अभिवृत्तियाँ जन्म लेती हैं।

अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक सह-संबंध नहीं होगा।

## सारणी 2

अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सहसंबंध का विवरण

समूह	चर	संख्या $N$	स्वतंत्रता कोटि $df$	$r$ गणना मान $r$ -value	$r$ सारणी मान $r$ -critical
अशासकीय विद्यालय के शिक्षक	शिक्षण दक्षता	80	78	0.12 *	0.217
	शैक्षिक अभिवृत्ति				

\*0.05 स्तर पर सार्थक सह संबंध नहीं है।

## आकृति क्रमांक 2

अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सहसंबंध



सारणी क्रमांक 2 एवं आकृति क्रमांक 2 के अवलोकन करने से विदित होता है कि अशासकीय विद्यालयों के लिए 0.05 स्तर की सार्थकता पर 0.217 से कम है और दो चरों शिक्षण दक्षता एवं शिक्षण अभिवृत्ति के मध्य निम्न धनात्मक सह सम्बन्ध है जो कि 0.05 स्तर पर असार्थक है।

अतः अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं पाया गया।

अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

**विवेचना :** पाया कि अशासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता बढ़ने से उनकी शैक्षिक अभिवृत्ति में बहुत ही कम वृद्धि होती है एवं शैक्षिक अभिवृत्ति बढ़ने से शिक्षण दक्षता में कम वृद्धि होती है। एक चर में ज्यादा वृद्धि होती है तो दूसरे चर में बहुत कम वृद्धि होती है। यह निम्न धनात्मक सहसम्बन्ध है जो 0.05 की सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे – अशासकीय शिक्षकों की नियुक्ति का कोई निश्चित मानदण्ड नहीं होता है। सभी शिक्षक प्रशिक्षण नहीं किए रहते हैं। इसलिए उनमें उच्च सकारात्मक अभिवृत्तियाँ नहीं पायी जाती जिससे उनकी शिक्षण दक्षता भी प्रभावित होती है। अशासकीय शिक्षकों की शैक्षिक अभिवृत्ति के समान शिक्षण दक्षता के बढ़ने की गति एक समान नहीं होती। इसलिए एक चर तो तेजी से बढ़ता है लेकिन दूसरा चर कम गति से बढ़ता पाया गया। इसलिए इन दोनों चरों में असार्थक संबंध पाया गया।

#### अध्ययन का निष्कर्ष

**शोध से प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार है–**

1. शासकीय विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक सह-संबंध पाया गया।
2. अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं शैक्षिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक सह-संबंध नहीं पाया गया।

#### संदर्भ-ग्रंथ

- कविता (2011). छात्राध्यापकों का शिक्षण के प्रति शिक्षण दक्षता, आत्म-सम्प्रत्य और अभिवृत्ति पर कक्षा पूछताछ व्यवहार में प्रशिक्षण के प्रभाव का अध्ययन, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, <http://www.shodhganga.inflibnet.ac.in>, 15 feb 2014
- कुलश्रेष्ठ, एस.पी. (2012), शिक्षा तकनीकी के मूल आधार, आगरा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर।
- गुप्ता एस. पी. (2011), अनुसंधान संदर्शिका, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
- चौहान, आर. एवं गुप्ता पी. (jan. 2014), गाजियाबाद जिले के माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन [www.tspmt.com](http://www.tspmt.com), [asian journal of Education Research & Technology](http://www.asianjournalofeducationresearch.com) vol 4(1), Issn(print) : 2244.7374
- जायसवाल, आर. (2005), सर्वशिक्षा अभियान के परिप्रेक्ष्य में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों की शिक्षकीय अभिवृत्ति का छात्रों के उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन, लघुशोध प्रबंध, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर।
- तिवारी जी. एन. (2013), इलाहाबाद जिले के प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की शिक्षण दक्षता एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता का अध्ययन, गूगल स्कालर डॉट कॉम, Himgiri Education Review volume 1, Issue 2 2321-6336 Feb. 2014.
- देवांगन, (2005). शिक्षाकर्मियों एवं संविदा शाला शिक्षकों की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन, लघुशोध प्रबंध डी. पी. विप्र शिक्षा महाविद्यालय बिलासपुर।



- देवी, ए.एन. (2010), डिंडीगुल शैक्षिक जिले के उच्चतर माध्यमिक शिक्षकों के शिक्षण दक्षता एवं आत्म-प्रभावकारिता का उनके छात्रों के शैक्षिक उपलब्धि के संबंध पर अध्ययन, महिला मदर टेरेसा विश्वविद्यालय, कोडेकनल, <http://www.shodhganga.inflibnet.ac.in>, 15 feb 2014
- देवी, ए.एन. (2010), डिंडीगुल शैक्षिक जिले के उच्चतर माध्यमिक शिक्षकों के शिक्षण दक्षता एवं आत्म-प्रभावकारिता का उनके छात्रों के शैक्षिक उपलब्धि के संबंध पर अध्ययन, महिला मदर टेरेसा विश्वविद्यालय, कोडेकनल, <http://www.shodhganga.inflibnet.ac.in>, 15 feb 2014
- प्रसाद, के. (2006). शिक्षकों के उनकी अंग्रेजी भाषा शिक्षण योग्यता पर अभिप्रेरणा दक्षता एवं अभिक्षमता का अध्ययन, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (NCERT) मैसूर, <http://www.shodhganga.inflibnet.ac.in>, 15 feb 2014.

\* \* \* \* \*

## उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में शैक्षिक निर्देश एवं परामर्श की आवश्यकता का अध्ययन

चन्द्रशेखर शर्मा\*

### भूमिका

संसार में ऐसे बहुत कम व्यक्ति हैं, जिन्हें शिक्षा में रुचि न हो। शिक्षक, अभिभावक, विद्यालय-प्रबंधक, शिक्षा मंत्री, राजनीतिज्ञ आदि के मुख से यह शब्द प्रायः सुना जाता है। आल कल ही नहीं अति प्राचीन काल से शिक्षा को विभिन्न अर्थ दिये गये थे। शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति अपने जन्म से मृत्यु तक जो कुछ सीखता और अनुभव करता है, वह सब शिक्षा के व्यापक अर्थ के अन्तर्गत माना जाता है। उसके सीखने और अनुभव करने का परिणाम यह होता है कि वह विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण से अपना सामंजस्य स्थापित करता है।

### निर्देशन

निर्देशन को मार्गदर्शन, दिशानिर्देशन, निर्देश देना, परामर्श देना, रास्ता दिखाना या पथ प्रदर्शन करना समझा जाता है, जबकि निर्देशन इन सबसे भिन्न है।

निर्देशन किसी व्यक्ति को रास्ता दिखाना या मार्गदर्शन करना न होकर, यह केवल एक सहायता है जिससे बालक अपनी समस्याओं का समाधान करने योग्य बन पाता है।

### परामर्श

कोठारी आयोग (1964) ने भारतीय शिक्षा के समग्र ढाँचे का निरीक्षण किया तथा भारत के राष्ट्रीय विकास एवं ध्यान में रखते हुए आयोग ने भारत में निर्देशन एवं परामर्श की स्थिति पर विचार किया तथा परामर्श के सभी पक्षों को सम्मानित करते हुए परामर्श के विकास का एक व्यापक कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

“परामर्श का आशय पूछताछ, पारस्परिक तर्क-वितर्क अथवा विचारों का पारस्परिक विनिमय है।” इस शाब्दिक आशय के अन्य पक्ष हैं जिनके आधार पर परामर्श का अर्थ स्पष्ट हो सकता है।

### समस्या कथन

“उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता का अध्ययन”

### 2.3 अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं—

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता का अध्ययन करना।

**अध्ययन की परिकल्पना :** उक्त शोध हेतु निम्न परिकल्पनायें बनायी गयी हैं।

\* शोधार्थी, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता पायी जाएगी।

**समस्या का परिसीमन :** इस अध्ययन के अन्तर्गत केवल बिहार के बाँका शहर के अंतर्गत हिन्दी माध्यम के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों का चयन किया गया है।

इस अध्ययन हेतु 3 शासकीय तथा 3 अशासकीय शालाओं को लिया गया है।

इस अध्ययन हेतु शहरी छात्र-छात्राओं को लिया गया है।

इस अध्ययन हेतु 11वीं कक्षा के विद्यार्थियों को ही लिया गया है।

यह अध्ययन छात्रों में निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता के अध्ययन तक सीमित है।

**शोध विधि :** प्रस्तुत शोध के लिए आंकड़ों को एकत्र करने के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है, क्योंकि उसके प्रतिदर्श पूरे समष्टि में बिखरे हुए हैं, इसके अलावा इस विधि के निम्न गुण भी इसके चयन को आधार प्रदान करते हैं।

**जनसंख्या :** शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोध में शासकीय उच्चतर माध्यमिक शाला के शहरी क्षेत्रों के छात्र एवं छात्राओं का निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन हेतु बिहार के बाँका जिले में स्थित 3 शासकीय एवं 3 अशासकीय विद्यालयों का लिया गया है।

**न्यादर्श**

#### सारणी क्रमांक-1

न्यादर्श में लिए गए शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या

क्र०	विद्यालय का नाम	शासकीय/अशासकीय	छात्र
1	उत्कर्मित हाईस्कूल झपनिया, बाँका	शासकीय	20
2	डॉ हरिहर चौधरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बाराहाट, बाँका	शासकीय	20
3	आर० बी० आर० उच्चतर माध्यमिक विद्यालय पथरा, बाँका	शासकीय	20
4	प्रियव्रत नारायण सिंह उच्च विद्यालय, लोगाई, बाँका	अशासकीय	20
5	गुरु दुखमोचन जनादेन मण्डल उच्च विद्यालय बाँका	अशासकीय	20
6	गुलाबी महतो उच्च विद्यालय खावा, बाँका	अशासकीय	20
कुल छात्रों की संख्या			120

**3.7 शोध उपकरण :** प्रस्तुत शोध “उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता का अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। जिसके अंतर्गत 30 प्रश्नों का समावेश किया गया है। तथा पाँच प्रश्नों की एक परिकल्पना बनायी गयी है। जिसमें उत्तरदाता को प्रश्नों के उत्तर में हाँ या ना में उत्तर देना है। प्रत्येक सही उत्तर पर अंक तथा गलत उत्तर पर 0 अंक प्रदान किए जाएंगे।

**सांख्यिकीय अभिप्रयोग :** उक्त अध्ययन विशिष्ट उद्देश्यों को सामने रख करके उपर्युक्त निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए सांख्यिकीय की प्रविधि यथा प्रतिशत, केन्द्रित प्रवृत्ति का मान, का व्यवहार किया गया है।

**परिकल्पना H<sub>1</sub> :** “उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता पाई जाएगी।”

उपर्युक्त परिकल्पना की जाँच करने के लिए शोधकर्ता ने प्राप्त आंकड़ों का प्रतिशत मान निकाला है। जिसका विवरण अग्रलिखित सारणी में प्रदर्शित है।

## सारणी-2

‘उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता के प्राप्तांक

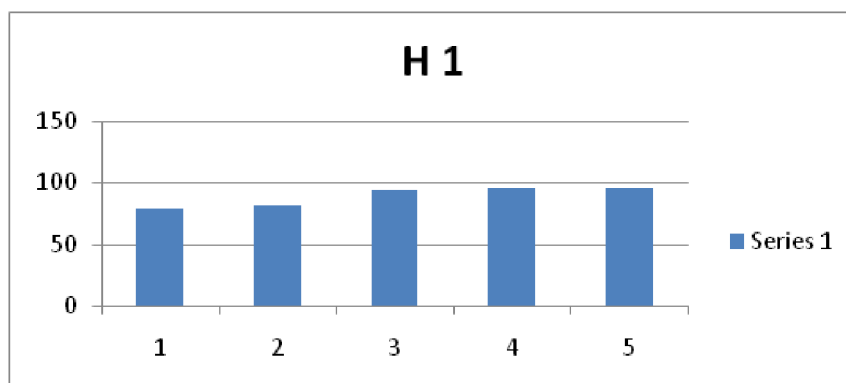
प्र0क्र0	प्रश्न	छात्रों की सं०	हाँ	नहीं	प्राप्तांक प्रतिशत में
1	क्या आपको विषय चुनने में समस्या होती है ?	120	94	26	78.33
2	क्या आपको विद्यालय के चुनाव में निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता महसूस होता है।	120	97	23	80.33
3	क्या आपको छात्रों के साथ सामन्जस्य की समस्या होती है?	120	113	07	94.16
4	क्या आप शैक्षिक परामर्श हेतु परिवार का सहयोग लेते हैं ?	120	115	05	95.83
5	क्या आपको पुस्तकों के चुनाव में समस्या का अनुभव होता है ?	120	114	06	95

## चित्र संख्या-1

उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता का

आरेख

प्राप्तांक प्रतिशत में



उपयुक्त आरेख से ज्ञात होता है कि 88.73 प्रतिशत विद्यार्थियों ने शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता महसूस की है।

अतः उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता पायी गई।

अतः परिकल्पना  $H_1$  स्वीकृत होती है।

**निष्कर्ष :** प्रस्तुत लघु शोध में प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में शिक्षा संबंधी निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता पायी गयी।

**सुझाव :** उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों व अन्य सर्वांगीण विकास के लिए निर्देशन एवं परामर्श अति आवश्यक है। अतः विद्यार्थियों को समय-समय पर आवश्यकतानुसार निर्देशन एवं परामर्श प्रदान करते रहना चाहिए।

इन विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं।

1. आधुनिक युग में हमारे समाज में बुराईयों का बोलबाला है। समाज में दिन-प्रतिदिन विभिन्न प्रकार की बुराईयों उत्पन्न होते जा रही हैं जिसके कारण विद्यार्थी एवं व्यक्ति समाज में अपना समायोजन नहीं कर पा रहा है। आज हमारे समाज में जातिवाद, धनवाद, दहेज-प्रथा, महिला उत्पीड़न, अशिक्षा आदि बढ़ता ही जा रहा है इन बुराईयों पर नियंत्रण पाने के लिए छात्र को समाज के सभी लोगों को सामाजिक निर्देशन एवं परामर्श उचित स्थिति अनुसार प्रदान किया जाना चाहिए।
2. वर्तमान समय में सभी छात्रों एवं व्यक्तियों को अपने पूरे जीवन काल में विभिन्न प्रकार के समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिसमें छात्र और व्यक्ति की अधिकांश समस्याएँ स्वयं अपने आप से या व्यक्तिगत समस्याएँ होती हैं। जिससे व्यक्ति अपने पूरे जीवनकाल में सुख शांति से नहीं रह पाता। अतः यह आवश्यक है कि छात्रों एवं व्यक्तियों के व्यक्तिगत समस्याओं का करण, निवारण और उचित निर्देशन एवं परामर्श प्रदान किया जाना चाहिए।
3. आज के भागदौड़ भरी तेज जिन्दगी में हर व्यक्ति अधिक से अधिक धन एकत्रित कर सभी सुविधाओं का लाभ उठाना चाहता है और भौतिक संसारिक सुख का लाभ उठाना चाहता है इन भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए वह अनैतिक कार्यों में लीन हो गया है और अनैतिक कार्य जैसे चोरी, घूसखोरी, बेइमानी, भ्रष्टाचार, करता है। जिससे सामाजिक एकता व एकरूपता का हरास हो रहा है अतः छात्रों एवं व्यक्तियों को उनके नैतिक मूल्यों के बारे में जानकारी एवं समय-समय पर उपयोगी निर्देशन एवं परामर्श प्रदान करते रहना चाहिए।

#### संदर्भित-सूची

1. शर्मा0आर0ए0, शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोधन प्रक्रिया पृ. 507-540
2. सरीन व सरीन, शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व, पृ. 215-228
3. भटनागर, सुरेश (1980), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, पृ. 120 से 138
4. पपाराव, एन0, शिक्षा में निर्देशन, पृ. 15 से 120
5. कपिल, एच0के0 (1978), सांख्यिकी के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, पृ. 678-711
6. पाठक पी0डी0 (1976), शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, पृ. 63-65
7. बुच, एम0बी0 (1972-78), सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च एण्ड एजुकेशन।
8. ए0बी0वी0जे0ओ0 (1970), नाईजीरियन किशोरों की शैक्षिक व्यवसायिक अध्ययन जनरल ऑफ एजुकेशन एण्ड वोकेशनल मेजरमेन्ट वोल्यूम 4, पृ. 5-67
9. कृष्णन बी0 एवं कूपूस्वामी, उच्चतर माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं व्यवसायिक समस्या का अध्ययन जनरल ऑफ साइकालॉजिकल रिसर्च, मैसूर विश्वविद्यालय, पृ. 24-29
10. ग्रवाल, जे0एस0 (1973), व्यवसायिक आवश्यकता का एक अध्ययन इंडियन एपलाईड साइक्लोजी।
11. शर्मा, आर0एन0 (1978), व्यक्ति प्रकाश, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ पृष्ठ नं0 - 63-65
12. गैरेट हेनरी ई0 (1980), शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी प्रकाशन लखियाना।
13. उपाध्याय आर0बी0 (1978), मंदिर आगरा पृ. 54-76
14. टाउथसेंड जे0सी0 (1953), प्रयोगात्मक विधियों के परिचय, मेलथ्रोहिल अध्याय 6, पृ. -321

\* \* \* \* \*

## 21 वीं सदी में अध्यापक शिक्षा

राहुल कुमार तिवारी\* डॉ. आलोक कुमार मिश्र\*\*

**सारांश**—हमारे देश में आधुनिक शिक्षा प्रशिक्षण का प्रारम्भ यूरोपीय जातियों ने किया। प्रारम्भ में तो यह भी शिक्षकों को केवल विषयों के प्रशिक्षण में प्रशिक्षित करते थे परन्तु आगे चलकर इन्होंने प्रशिक्षणार्थियों को शिक्षा और शिक्षण के मूल तत्वों का सैद्धांतिक ज्ञान कराना भी प्रारंभ कर दिया। वर्तमान में शिक्षक प्रशिक्षण अध्यापक शिक्षा के रूप विकसित है। शिक्षक हमारी शिक्षा व्यवस्था की नींव है। यदि शिक्षार्थी के भविष्य को संवारना है, तो कुशल एवं प्रशिक्षित शिक्षक की यह कार्य कर सकता है। प्रशिक्षित शिक्षक ही बच्चों को उचित एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से पढ़ा पायेगा। शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास करने में शिक्षकों की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है एवं योग्य व प्रशिक्षित शिक्षक की शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर सकता है। अध्यापक प्रशिक्षण की आवश्यकता कार्य को सफलतापूर्वक प्रभावी ढंग से सम्पादित करने के लिए, अति जटिल कार्यों के विशिष्ट ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल एवं व्यवहार की आवश्यकता होती है। इसलिए प्रत्येक कार्य या व्यवसाय के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है।

**शब्द कुन्जी**— आधुनिक, शिक्षा, प्रशिक्षण, अध्यापक शिक्षक इत्यादि।

**प्रस्तावना**—भारतीय शिक्षा का इतिहास अति प्राचीन है यह वैदिक काल से ही शिक्षण प्रशिक्षण का विकास हो चुका था तत्कालीन समय में यहां शिक्षा नय की एक आदत का प्रचलन था इससे कुछ इस गुण होने का प्रशिक्षण संस्था सही प्राप्त कर लेते थे वर्तमान समय में ऐसे छात्र अध्यापक पद्धति कहते हैं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षक बनने के लिए पूर्ण भिक्षुक होना आवश्यक था। शिक्षक बनने के इच्छुक भिक्षु धर्म दर्शन एवं अन्य विषयों का उच्च ज्ञान प्राप्त करते थे साथ ही अपने निम्न स्तर के शिष्यों को पढ़ाते थे मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा प्रणाली में मदरसों में कक्षा 9वीं की प्रणाली प्रचलित थी परन्तु इसका उद्देश्य शिक्षक तैयार करना नहीं था शिक्षकों का कार्यभार कम करना था। इस प्रकार कक्षा 9वीं की प्रणाली में श्रेष्ठ छात्रों को अध्यापक का व्यवहारिक प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता था।

हमारे देश में आधुनिक शिक्षा प्रशिक्षण का प्रारंभ यूरोपीय जातियों ने किया। प्रारंभ में तो यह भी शिक्षकों को केवल विषयों के प्रशिक्षण में प्रशिक्षित करते थे परन्तु आगे चलकर इन्होंने प्रशिक्षणार्थियों को शिक्षा और शिक्षण के मूल तत्वों का सैद्धांतिक ज्ञान कराना भी प्रारंभ कर दिया। वर्तमान में शिक्षक प्रशिक्षण अध्यापक शिक्षा के रूप विकसित है। प्राचीन काल में अध्यापन को एक सेवा के रूप में देखा जाता था जब ज्ञानदान को एक परम पवित्र और महत्वपूर्ण सामाजिक हित के कार्य के रूप में स्वीकृति और मर्यादा दी जाती थी। अर्वाचीन काल में यह एक व्यवसाय का रूप लेता गया और अध्यापक वेतन लेकर उसको एवज में ज्ञान देने का कार्य करने लगे। आधुनिक काल में इसे एक आजीविका का स्वरूप प्रदान किया जा रहा है क्योंकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस दिशा में अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा भी अध्यापक को आजीविका के रूप में मान लिया गया है और इसके गुणात्मक सुधार पर बल दिया गया है।

अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम इतना लचीला हो कि वह साधारण तथा सृजनात्मक शिक्षक दोनों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। वास्तव में सभी शिक्षकों से कक्षा में सृजनात्मक कार्य करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

\* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

\*\* विभागाध्यक्ष शिक्षक शिक्षा विभाग, मनीषी महिला पी.जी. कॉलेज, गौरीगंज, अमेठी (उ.प्र.)



आज कक्षाओं में भीड़ बढ़ती जा रही है। अस्तु समाज के विभिन्न स्तरों से बहुआयामी योग्यता वाले शिक्षकों को खोज निकालना होगा। अध्यापन शिक्षण-कार्यक्रमों में विविधता लानी होगी। अभिवृत्तियों तथा कौशलों के विकास पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योंकि इनके विकास में उद्देश्यपूर्ण अभ्यास की जरूरत है। तभी शिक्षक का शिक्षा के प्रति रुझान सम्भव है। वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षित उन्नति नहीं हो सकी है। अध्यापक-शिक्षक संस्थाओं में वृद्धि अधिक तीव्रता से तो हुई है, परन्तु अध्यापक शिक्षा में गुणात्मक विकास नहीं हो सका है। वर्तमान में अध्यापक शिक्षा में अनेक समस्याएँ देखने को मिलती हैं। शिक्षा के गुणात्मक विकास में अध्यापक शिक्षा की विश्वविद्यालय, विद्यालय, विभिन्न स्तरों पर अध्यापक शिक्षा में अलग-अलग की समस्या महत्वपूर्ण है। चयन की समस्या पर्याप्त अध्यापकों का चयन नहीं किया जाता। चयन की समस्या, अध्यापकों को सुविधा की समस्या, कार्य करने की परिस्थितियों की समस्या व सामाजिक स्वतंत्रता की समस्या आदि।

प्राचीन काल में अध्यापन योग्यता को एक जन्मजात प्रकृति प्रदत्त योग्यता स्वीकार किया जाता है। उस समय यह मान्यता थी कि अध्यापक बनने वाला व्यक्ति जन्म से ही अध्यापक संबंधी प्रतिभा से संपन्न होता है। उन्हें किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है। कालान्तर में इस मान्यता का खंडन किया जाने लगा है और अध्यापकों के प्रशिक्षण पर जोर दिया जाने लगा है। प्रभावी एवं उद्देश्य केंद्रित बनाने कठोर शिल्प उपागमों बहुआयामों एवं कंप्यूटर के प्रयोगों को महत्व दिया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में यंत्रीकरण की इस प्रवृत्ति ने शिक्षकों की भूमिका पर अनेक सवाल खड़े कर दिए हैं। यह तो स्पष्ट है कि मशीनों के प्रयोग होने के बाद भी शिक्षक का महत्व भविष्य में यथावत बना रहेगा। कारण यह है कि भले ही कठोर शिल्प उपागमों के आधार विद्यार्थियों का ज्ञानात्मक विकास हो जाए परन्तु उनके शारीरिक एवं संवेगात्मक पक्षों का विकास करने में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षक की सहायता के बगैर शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है।

**इस संदर्भ में 21वीं सदी में शिक्षकों की भूमिका का उल्लेख निम्न बिंदुओं के अंतर्गत किया गया है—**शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक तकनीकी का विकास वर्तमान समय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। एक शिक्षक के लिए शिक्षण तकनीकी का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षण तकनीकी के आधार पर किए जाने वाले शिक्षण से यह स्पष्ट हो गया है कि इसके माध्यम से ही औपचारिक प्रशिक्षण प्रक्रिया को सफल बनाना संभव है।

एक शिक्षक के लिए कंप्यूटर का संचालन कम्प्यूटर से संबंधित विभिन्न तकनीकों की जानकारी अनैतिक कार्य नारी शोषण वर्ग संघर्ष अनुशासनहीनता एवं स्वार्थपरता का तांडव हो रहा है तथा सामाजिक व्यवस्था में कानून व्यवस्था समाप्त होती जा रही है। ऐसी सामाजिक विघटन की विषम परिस्थितियों में एक कुशल अध्यापक ही नवीन समाज का निर्माण कर सकता है किसी भी देश की सामाजिक व्यवस्था में अध्यापकों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अतएव अध्यापक शिक्षा मुख्य उद्देश्य शैक्षिक तकनीकी माध्यम से शिक्षा – कौशलों का विकास करना है। अतएव अध्यापक को शैक्षिक तकनीक का ज्ञान होना आवश्यक है।

शैक्षिक प्रक्रिया के तीन महत्वपूर्ण ध्रुव होते हैं – शिक्षक, शिक्षार्थी, एवं पाठ्यक्रम। इनमें शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है। शिक्षक ही एक ऐसा मानवीय साधन है जो किसी भी पाठ्यवस्तु एवं उसे प्रस्तुत करने वाली विधियों एवं सहायक सामग्री का प्रभावी प्रयोग कर सकता है। शिक्षकों का विकास से संबंधित समस्त प्रक्रिया का प्रभावशाली संपादन एक शिक्षक की योग्यता एवं कुशलता पर ही आश्रित होता है।

भूमंडलीकरण और बाजारीकरण के इस दौर में मानवीय जीवन से संबंधित विभिन्न प्रक्रियाओं के यंत्रीकरण पर अत्यधिक बल दिया जाने लगा है। यंत्रीकरण का स्पष्ट प्रभाव उद्योग, वाणिज्य, सुरक्षा आदि के साथ-ही-साथ शैक्षिक क्षेत्र पर भी दिखाई देता है। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप शिक्षा प्रक्रिया को नया आयाम प्राप्त होता है।

**अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता—**प्रशिक्षण एवं व्यवसाय में गहरा सम्बन्ध है। यदि व्यवसाय के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल को व्यक्ति में विकसित किया जाए तो व्यवसाय की सफलता की भविष्यवाणी सफल सिद्ध हो सकती है। शिक्षण एक व्यवसाय है, जिसमें प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रत्येक पर शिक्षण का उद्देश्य ज्ञान प्रदान करना होता है। विभिन्न स्तरों पर उद्देश्य में परिवर्तन नहीं होता केवल पाठ्यवस्तु तथा प्रक्रिया में परिवर्तन होता है। विषय में विशेषता के साथ-साथ प्रशिक्षण द्वारा कई अन्य कौशल विकसित किये जाते हैं।

प्रभावी अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण कई आश्चर्यजनक गुणों को विकसित करता है। इसके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला गया है कि महाविद्यालय के अध्यापकों के लिए भी प्रशिक्षण आवश्यक है। कॉलेज में अध्यापकों के लिए भी प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। सामान्यतः अध्यापक प्रशिक्षण की आवश्यकता कार्य को सफलतापूर्वक प्रभावी ढंग से सम्पादित करने के लिए, अति जटिल कार्यों के विशिष्ट ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल एवं व्यवहार की आवश्यकता होती है। इसलिए प्रत्येक कार्य या व्यवसाय के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है।

### अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य

**बोधात्मक उद्देश्य**— सामाजिक संरचना, कार्य एवं अन्तःक्रिया का ज्ञान विद्यार्थियों के विकास एवं अधिगम प्रक्रिया का बोध, विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को बोध, आवश्यकता पूर्ण न होने पर उत्पन्न समस्याओं का बोध कर समाधान का प्रयास करना, विद्यालयीन/महाविद्यालयीन संगठन एवं प्रशासन का बोध, परीक्षा एवं मूल्यांकन विधियों का ज्ञान व बोध एवं अध्यापकों में विषय संबंधी ज्ञान।

**कौशल उद्देश्य**— विभिन्न शिक्षण विधियों के प्रयोग की योग्यता एवं कौशल, शिक्षण विधियों का विकास एवं विषय के प्रयोग की योग्यता, प्रभावपूर्ण कौशल एवं अभिप्रेरणा, शिक्षण के विशेष उद्देश्यों को बनाने की योग्यता, मूल्यांकन प्रविधियों के प्रयोग एवं पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के संगठन की योग्यता, शैक्षिक तकनीकी के प्रयोग करने के कौशल को प्रयोग करने की योग्यता एवं अन्वेषणात्मक एवं क्रियात्मक अनुसंधान को कक्षा कक्ष समस्याओं के अनुरूप प्रयोग करने की योग्यता।

**अभिवृत्ति से सम्बन्धित उद्देश्य**— शिक्षण व्यवसाय के प्रति स्वस्थ एवं सकारात्मक दृष्टिकोण, शिक्षण समस्याओं के प्रति वैज्ञानिक एवं वस्तुपरक दृष्टिकोण, अध्यापक में प्रजातान्त्रिक एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण, छात्रों की समस्याओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण एवं परिवर्तनशील समाज में अध्यापक की भूमिका।

**अध्यापक शिक्षा में शैक्षिक तकनीकी की उपादेयता**—किसी राष्ट्र की छवि भौतिक सम्पदा से नहीं अपितु उस राष्ट्र की मानव सम्पदा एवं बौद्धिक सम्पदा से बनती है और उस बौद्धिक सम्पदा को उत्तरोत्तर बढ़ाने का उत्तरदायित्व शिक्षा पर निर्भर करता है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में सबसे चुनौतीपूर्ण एवं अहम साक्ष्य है शिक्षक की भूमिका इस प्रकार शिक्षा जो एक प्रकार से मानव सम्पदा है और जो प्रत्यक्ष रूप से मानव की गुणवत्ता एवं क्षमता को प्रोत्साहन देती है के संपूर्ण विकास के लिए सबसे आवश्यक है सुयोग्य एवं सक्षम शिक्षक शिक्षा प्राप्ति की सुव्यवस्थिति शिक्षण एवं कर्तव्यनिष्ठ प्रति एवं कर्मठ शिक्षक प्रशिक्षक की व्यवस्था हो।

1960 से 70 का दशक शैक्षिक तकनीकी की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। 1966 में भारत में सर्वप्रथम अभिक्रमित अनुदेशन संगठन की स्थापना की गई। सन् 1970 में एन.सी.ई.आर.टी. तथा उच्च शिक्षा संस्थान बड़ौदा, मेरठ और शिमला विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभाग में एम.एड. तथा पीएच.डी. स्तर पर शोध कार्यों को बढ़ावा दिया। एन.सी.ई.आर.टी. के अन्तर्गत एक शिक्षा तकनीकी केन्द्र स्थापित किया गया।

**श्री अरविंद का कहना था** —“अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के एक ऐसे चतुर माली होते हैं, जो संस्कारों की जड़ों को खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें खींच खींच कर महाप्राण शक्तियां बनाते हैं।”

वर्तमान समय में भारतीय समाज में जातिवाद, प्रांतीयता जनसंख्या वृद्धि आर्थिक असमानता सांप्रदायिकतावाद, निरक्षरता, बेरोजगारी, राजनैतिक अस्थिरता जैसी अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं। समाज में चारों ओर संस्कृति, सांस्कृतिक एवं संस्कृत अस्थिरता हिंसा, अन्याय, आतंकवाद तथा कंप्यूटर में शैक्षिक प्रोग्राम बनाकर प्रेषित करने संबंधित कौशल में दक्ष होना आवश्यक होगा।

**निष्कर्ष**—इस प्रकार के पाठ्यक्रम को संप्रेषित करने के लिए यह आवश्यक होगा कि भविष्य में अधिकाधिक शिक्षकों में इस प्रकार का कौशल उत्पन्न किया जाये जो औद्योगीकरण की तीव्र रफ्तार में भी मजबूती के साथ खड़े रह सकें। एक अध्यापक, जो कि समाज का आदर्श होता है, अतः उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह सामाजिक, लोकतांत्रिक सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर ही अपने आचरण का प्रदर्शन करें। सक्षम और कार्यकुशल अध्यापकों के अभाव में सभी अच्छी पाठ्य चर्चाएँ और उपकरण व्यवहारतः बेकार होकर रह जाते हैं। एन.सी.ई.आर.टी. के अन्तर्गत एक शिक्षा तकनीकी केन्द्र स्थापित किया गया। अध्यापक का महत्वपूर्ण दायित्व

शिक्षा की सहायता करना, उसकी वैयक्तिक शैली में नई कुशलताओं का समावेश करना तथा हमेशा विकास की एक समग्र दृष्टि अपनाने में सहायता करना है। यह तभी सम्भव है जब अध्यापक भी स्वयं अधिकाधिक सक्षमता और कुशलता पाने का प्रयास करता रहे। अतः वर्तमान समय में अध्यापक का प्रशिक्षित होना अत्यधिक आवश्यक है। अध्यापक शिक्षा आज भी अंकुरण की अवस्था में ही है, जिसे सही ढंग से पल्लवित एवं पुष्पित करने के लिए पूर्ण प्रतिबद्धता और समर्पण के साथ भावी पीढ़ी को आगे आना होगा और पूर्व उपेक्षाओं को दूर करने के लिए सार्थक प्रयास करना होगा।

#### संदर्भ-ग्रंथ

- गुप्ता, एस. पी., 2003, भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद, उ.प्र.।
- भट्टाचार्य, जी. सी., 1987, अध्यापक शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर।
- मिश्रा, के. एस., 2005, मिश्रा, रामसकल 2005, भारतीय शिक्षा एवं समसामायिक समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर।
- डॉ. कुलश्रेष्ठ शैक्षिक तकनीक के मूल आधार
- [www.shareyouressys.com](http://www.shareyouressys.com)
- [www.indianyouth.net](http://www.indianyouth.net)
- राष्ट्र निर्माण, शिक्षक
- [www.livehidustan.com](http://www.livehidustan.com)
- Article shared by Aliva Manjari
- [www.newsspeechtopic.com](http://www.newsspeechtopic.com)
- <https://brainly.in>

\* \* \* \* \*

## अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में राधाकृष्णन आयोग एवं राम मूर्ति समिति के सुझाओं का समीक्षात्मक अध्ययन

**डॉ. अनुराधा कुमारी\***

शिक्षा मानव निर्माण का मूल साधन है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास एवं परिमार्जन करके उसे समाज एवं राष्ट्रहित में तत्पर सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक के रूप में विकसित किया जाता है। जगद्गुरु के रूप में महिमा मण्डित भारतवर्ष अपने अतीत की इस विरासत के आधार पर सदियों तक सिरमौर बना रहा। भारतवर्ष की सुदृढ़ शिक्षा व्यवस्था के कारण ही गुरु का स्थान ईश्वर तुल्य माना गया, परन्तु अपनी इस विरासत को सुरक्षित रख पाना आज के इस वैश्विक प्रतिस्पर्धा के दौर में सम्भव नहीं हो पा रहा है। इस लिए आज देश की शिक्षा व्यवस्था के पुनर्नियोजन की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

डॉ० एफ०ई०के०ई० ने लिखा है कि— “वर्तमान शिक्षा को नवीन गति प्रदान करने और रूपान्तरित करने के लिए गहन चिन्ता एवं विश्लेषण की आवश्यकता है।”

शिक्षक—शिक्षा के सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु माना जाता है, क्योंकि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सुदृढ़ संचालन में अध्यापक की केन्द्रीय भूमिका होती है। अध्यापक शैक्षिक प्रक्रिया का वह पावन माध्यम है जिसके सतत प्रयास से ही विद्यार्थी अज्ञानता की तामसिक शक्तियों से संघर्ष कर सकते हैं। शिक्षक सामाजिक अभियंता है, समाज का नेतृत्वकर्ता है। अतः उसके प्रशिक्षण एवं गुणवत्ता संवर्धन हेतु एक सशक्त माध्यम की आवश्यकता महसूस की जाती रही है। आजाद भारत में शैक्षिक प्रणाली के विकास एवं अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता प्रबन्धन हेतु सन् 1948 में डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। जिसका उद्देश्य—भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा के संदर्भ में रिपोर्ट देना और उन सुधारों एवं विस्तारों के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत करना था, जो देश के वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं के लिए वांछनीय है।

समय परिवर्तन एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं में वृद्धि ने शैक्षिक ढांचे को भी प्रभावित किया जिसकी परिणति 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के रूप में हुई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की प्रासंगिकता एवं आवश्यकतानुरूप पुनर्निरीक्षण हेतु मई 1990 को आचार्य राममूर्ति समिति का गठन किया गया। इस समिति ने भी अध्यापक शिक्षा के समुचित क्रियान्वयन एवं गुणवत्ता के संदर्भ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षक शिक्षा के सन्दर्भ में इन्हीं आयोगों व समितियों के द्वारा दिये गये सुझावों का विस्तृत विवेचना किया जायेगा।

### राधाकृष्णन आयोग का अध्यापक शिक्षा हेतु सुझाव :-

1. प्रशिक्षण कालेजों के पाठ्यक्रम में संशोधन एवं सुधार किया जाना चाहिए तथा पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा प्रशिक्षण एवं अभ्यास पर बल दिया जाना चाहिए।
2. छात्राध्यापकों का वार्षिक मूल्यांकन करते समय उनकी शिक्षण-योग्यता को केन्द्र बिन्दु मानना चाहिए।
3. विद्यालयों में अधिक अध्यापन अनुभव प्राप्त शिक्षकों को ही प्रशिक्षण विद्यालयों में नियुक्त किया जाना चाहिए।
4. शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में लचीलापन होना चाहिए तथा परिस्थितियों के अनुसार ही पाठ्यक्रम निर्मित करना चाहिए।
5. शिक्षण अनुभव प्राप्त व्यक्तियों की ही एम०एड० हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

\* प्राचार्या, पटेल बी.एड्. कॉलेज, लोधमा, खुटी, झारखण्ड

6. शिक्षक प्रशिक्षण में सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक कार्य पर समान बल देना चाहिए।  
सुझाव समीक्षा-उक्त सुझावों का समीक्षात्मक अध्ययन निम्नांकित रूप में किया जा सकता है—
1. आयोग के सुझावों के बावजूद भी प्रशिक्षण के लिए द्विवर्षीय पाठ्यक्रम क्रियान्वित नहीं किया जा सका। जिससे प्रशिक्षण में औपचारिकता बढ़ी।
2. विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा आज भी पुराने पाठ्यक्रम के अनुसार प्रशिक्षण दिया जा रहा है और प्रशिक्षणार्थी शिक्षण के नवीनतम ज्ञान से वंचित हैं।
3. आज भी प्रशिक्षण में पुस्तकीय ज्ञान एवं व्याख्यान पद्धति पर अधिक बल दिया जाता है। जिससे नैसर्गिक रूप से गुणों का विकास नहीं हो पा रहा है।
4. छात्राध्यापकों का वार्षिक मूल्यांकन एवं शिक्षण योग्यता का मूल्यांकन भिन्न-भिन्न प्रशिक्षकों से कराये जाने के कारण शिक्षण दक्षता पर अधिक ध्यान नहीं हो पा रहा है।
5. यू0जी0सी0 योग्यता मानकों में आज भी अध्यापन अनुभव को समुचित महत्व नहीं मिल पा रहा है। यद्यपि कई लोग इस मानक का दुरुपयोग भी करते हैं।
6. पाठ्यक्रम निर्माण में स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रख कर सम्बन्धित विश्वविद्यालयों को कुछ छूट दी जानी चाहिए। ताकि छात्रों में नीरसता एवं कृत्रिमता न आने पाये।
7. शिक्षण एवं सैद्धान्तिक विषयों में समान बल नहीं दिया जा रहा है। क्योंकि सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम इतना व्यापक है कि इसके शिक्षण में ही एक वर्ष लग जाते हैं। अतः प्रशिक्षण मात्र औपचारिकता बन कर रह जाता है।  
उक्त विवेचना से स्पष्ट है कि विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की सिफारिसों एवं सुझावों का पुनर्निरीक्षण एवं संचालित प्रशिक्षण की उक्त समस्याओं का निराकरण करके व्यवस्था को और अधिक गति एवं आधार दिया जा सकता है।

#### आचार्य राममूर्ति समिति के सुझाव:-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में संकल्प लिया गया था कि—‘शिक्षकों के प्रशिक्षण की गुणवत्ता को सुधारने के लिए शैक्षिक प्रौद्योगिकी की जानकारी एवं कला और संस्कृत के प्रति जागरूकता और स्थायी मूल्यों के संस्कार उत्पन्न करने के लिए प्रयास किया जायेगा। इस संकल्प के मूल्यांकन एवं शिक्षा नीति के पुनर्निरीक्षण हेतु गठित इस समिति ने शिक्षा की गुणवत्ता के संदर्भ में निम्नलिखित सुझाव दिये—

1. शिक्षक-शिक्षा हेतु छात्राध्यापकों का चयन केवल परीक्षाओं के आधार पर न करके उनकी अभिरुचि एवं निष्पत्ति को भी आधार बनाया जाना चाहिए।
2. प्रशिक्षण कार्यक्रम केवल खानापूर्ति न होकर दक्षता आधारित होना चाहिए।
3. सैद्धान्तिक पहलू पर ही ध्यान न देकर उसके क्रियात्मक एवं भावात्मक पक्ष पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।
4. सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों की आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिए।
5. अध्यापक शिक्षा की प्रथम उपाधि पत्राचार माध्यम से नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि प्रशिक्षण अभ्यास के पर्याप्त अवसर कुशल निदेशकों से नहीं मिल पाते।
6. शिक्षक प्रशिक्षण के लिए समिति ने निम्न माडल प्रस्तुत किया—
  - (i) अध्यापक प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की जाय।
  - (ii) यह वास्तविकता पर आधारित हो।
  - (iii) इसमें अनुभव को पर्याप्त स्थान दिया जाना चाहिए।
  - (iv) सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार का प्रशिक्षण अभ्यास के द्वारा प्रदान किया जाय।
7. राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रम संस्थाओं में विश्लेषण हेतु भेज कर उनकी प्रासंगिकता पर भी विचार मांगे जाय।

8. शैक्षिक संगोष्ठियों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता के संदर्भ में मंथन करके उनके सुधार के निरन्तर प्रयास किये जाय।

9. शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहन दिया जाय साथ ही अनुसंधानों के लिए गुणवत्ता मानक निर्धारित किया जाय।

10. डायट पर प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण, शिशुओं के समुचित विकास एवं शिक्षा के समुचित सम्प्रेषण की व्यवस्था हो।

11. शिक्षकों को पाठ्यक्रम निर्माण, नीति निर्माण, कार्यकारिणी परिषद एवं अन्य निर्णायक निकायों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाय।

12. शिक्षकों की सेवाशर्तों में सुधार करके उन्हें आवासीय, चिकित्सीय एवं यात्रा सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए।

समिति के उक्त सुझावों को ध्यान में रखकर अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में कुछ सुधार एवं संशोधन किये गये किन्तु उन सुधारों का समुचित क्रियान्वयन आज तक नहीं किया जा सका है। यही कारण है कि शिक्षा की वर्तमान स्थिति इस रूप में पहुँच गयी है कि इसे मात्र एक औपचारिक प्रशिक्षण मानकर खानापूर्ति की जा रही है। इसमें वास्तविकता एवं आधुनिकता लाकर वर्तमान शैक्षिक माँग के अनुरूप व्यवस्थित करने की महती आवश्यकता है।

#### संदर्भ-सूची

1. लाल रमन बिहारी-2005-6 भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें मेरठ रस्तोगी पब्लिकेशन।
2. भटनागर ए0बी0 एवं भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास भटनागर मीनाक्षी-2006 मेरठ, आर0एल0 बुक डिपो।
3. सिंह मयाशंकर-2004 अध्यापक शिक्षा गुणात्मक विकास, दिल्ली अध्ययन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन
4. गुप्ता एस0पी0-2005 भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्यायें, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
5. योजना मासिक पत्रिका एवं कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका।

\* \* \* \* \*



## प्राथमिक शिक्षा में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की प्रासंगिकता

पीयूष राज प्रभात\*

**शारांश**—शिक्षा एक जीवन्त पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जो बालक के जन्म से प्रारम्भ होकर जीवन भर चलती है। शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना, बालक को समाज का सभ्य एवं समायोजित नागरिक बनाना होता है। बालक के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए शारीरिक, मानसिक, सामाजिक विकास पर बल दिया जाना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा जो बालक के जीवन भर की शिक्षा का आधार होता है। इस अवस्था में बालक का शारीरिक और मानसिक विकास भी होता रहता है। विद्यालय में ज्ञान वर्धन के साथ-साथ अन्य क्रिया-कलाप भी होते हैं। बालक को पाठ्यक्रम से सम्बन्धित ज्ञान के अतिरिक्त विद्यालय में जो क्रियायें करायी जाती हैं वह पाठ्य सहगामी क्रियायें कहलाती हैं। जैसे खेल-कूद, शैक्षिक भ्रमण, वाद-विवाद, भाषा आदि जिससे बालकों में स्वतंत्र चिन्तन की शक्ति विकसित होती है और उनका सन्तुलित विकास होता है। पहले पाठ्य सहगामी क्रियाओं को विशेष महत्व नहीं दिया गया था, इसे विद्यालय के समय समाप्ति के बाद अतिरिक्त कार्य के रूप में जाना जाता था। परन्तु वर्तमान समय में इसके महत्व को देखते हुए पाठ्य सहगामी क्रियायें विद्यालय पाठ्यक्रम का आवश्यक अंग माना जाने लगा है। इससे छात्रों के ज्ञान को व्यवहारिक बनाया जा सकता है तथा बालकों के रुचि के अनुसार आगे बढ़ने के लिए सही दिशा प्रदान की जा सकती है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं से बालकों में नागरिकता के गुणों, सामाजिकता का विकास, अवकाश का सदुपयोग, ज्ञान का व्यवहार में उपयोग, स्वानुशासन की भावना, मानसिक विकास, शारीरिक विकास, मनोरंजन नैतिकता एवं मूल्यों का विकास संभव होता है, जो बालक के सर्वांगीण विकास के आवश्यक तत्व हैं। अतः विद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रियाओं के महत्व को स्वीकार किया जाना चाहिए और समय तालिका में स्थान देते हुए प्रभावी तरीके से पाठ्य सहगामी क्रियायें करानी चाहिए।

**प्रस्तावना**—शिक्षा एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जो व्यक्ति को परिवार, समाज विद्यालय एवं अनुभव से प्राप्त होती है। विद्यालयों को शिक्षा का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। जहाँ पर बालक को सुनियोजित ढंग से पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है। जिससे बालक शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ होकर समाज का सभ्य नागरिक बन सके। पहले विद्यालय के कार्यों में केवल पढ़ना, लिखना सिखाया जाना ही था, लेकिन वर्तमान समय शिक्षा व्यवस्था एवं आवश्यकता में परिवर्तन के कारण विद्यालयों में अन्य क्रिया कलापों पर भी बल दिया जाने लगा है। विद्यालय का प्रमुख कार्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। जिसके लिए विद्यालयों में पाठ्य सहगामी क्रियायें भी आयोजित होने लगी हैं। जिसके द्वारा बालकों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक विकास सम्भव हो सका है। पहले पाठ्य सहगामी क्रियाओं को विद्यालय में स्थान प्राप्त नहीं था लेकिन वर्तमान समय में इसका महत्व काफी बढ़ गया है।

प्राचीन अवधारणाओं में पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं के अलावा विद्यालय में जो क्रियायें की जाती थी उन्हें अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं की संज्ञा दी गयी थी। यह क्रियायें विद्यालय के सुविधाओं और बालक की इच्छा पर निर्भर थी। इनकी सफलता और असफलता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था और न ही समय तालिका में उनके लिए कोई विशेष स्थान था। यह सब क्रियायें विद्यालय के समय के बाद आयोजित की जाती थी परन्तु

\* शोध छात्र, ए.पी.एस. विश्वविद्यालय, रीवा ( म.प्र.)

वर्तमान समय में पाठ्य सहगामी क्रियायें विद्यालय के पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग बनती जा रही हैं और विद्यालय की समय तालिका में इनका उचित स्थान भी प्राप्त होने लगा है। यह विद्यालय के अतिरिक्त समय की क्रियायें न होकर विद्यालय पाठ्यक्रम एवं समय तालिका का एक आवश्यक भाग हो गया है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, “स्वच्छ आनंदप्रद तथा सुव्यवस्थित स्कूल भवन मिल जाने के पश्चात हम चाहेंगे कि स्कूल में विविध प्रकार की संवृद्धि क्रियाओं का आयोजन हो जो विद्यार्थियों के विकास सम्बन्धित आवश्यकताओं को पूरा कर सके उसमें मनोरंजक कार्यों, क्रियाओं तथा योजनाओं की व्यवस्था करनी होगी जो बच्चों को प्रभावित करे और उनकी विभिन्न रुचियों को विकसित करें।”

**पाठ्य सहगामी क्रियायें**—विद्यालयों में आयोजित होने वाली पाठ्य सहगामी क्रियायें निम्नलिखित हैं—

**1. दैनिक सामूहिक सभा**—विद्यालय में सर्वप्रथम प्रार्थना सभा का आयोजन होता है जो छात्र एवं अध्यापक दोनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है और प्रार्थना सभा के बाद दैनिक एक सभा का आयोजन होना चाहिए जिसमें नियमितता, अनुशासन और नैतिकता आदि से सम्बन्धित बातें भी बतायी जानी चाहिए जिससे बालकों में नैतिक मूल्यों का विकास होता है।

**2. विशय सम्बन्धी समिति**—विद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रियायें के अन्तर्गत कुछ ऐसे विषय हैं जिस पर विशेष समिति का गठन किया जाता है। जैसे— विज्ञान क्लब, कृषि समुदाय, भाषा समिति आदि। इससे छात्रों में स्वतंत्र चिन्तन एवं रुचि का विकास होता है।

**3. खेल-कूद**—बालकों की खेल-कूद के प्रति रुचि ज्यादा होती है। विद्यालयों में खेल-कूद का विशेष महत्व रहा है। खेल से बच्चों का मनोरंजन प्राप्त होता है तथा बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक गुणों का विकास होता है।

**4. विद्यालय पत्रिका प्रकाशन**—विद्यालय में समय-समय पर मासिक, त्रिमासिक, वार्षिक आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहता है जिसमें बच्चों के उत्कृष्ट लेखों का प्रकाशन होता है, इससे छात्रों में मौलिक लेखन शैली का विकास होता है।

**5. शैक्षिक भ्रमण**—विद्यालयों द्वारा समय-समय पर बालकों को शैक्षिक भ्रमण कराया जाता है जो बालक के ज्ञान को प्रत्यक्ष एवं व्यावहारिक बनाते हैं। यह बालकों को किसी विषय वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान प्रदान करने का एक माध्यम है।

**6. प्रदर्शन**—विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के कार्य कराये जाते हैं। नाटक, चित्रकला, संगीतकला, फोटोग्राफी आदि कुछ ऐसे कार्य हैं जो अभिरुचि प्रदर्शन के अन्तर्गत आते हैं। विद्यालयों में ऐसे अवसर प्राप्त होने चाहिए जिससे बालक अपने अभिरुचियों का प्रदर्शन कर सके जिससे बालक को सही दिशा देने में सहायता दी जा सके।

**7. वाद-विवाद**—वाद-विवाद और भाषण प्रतियोगिता छात्रों के अभिव्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। यह बालकों में तर्क चिन्तन एवं कल्पना शक्ति का विकास करती है तथा छात्रों को अपने विचारों को व्यवस्थित रूप में प्रदर्शित करने का अवसर देता है।

**पाठ्य सहगामी क्रियाओं का महत्व**—प्राथमिक विद्यालय जो कि बालक के शिक्षा के आधार होते हैं इस समय बालकों के बौद्धिक विकास के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक गुणों का भी विकास होता है। विद्यालय में करायी जाने वाली पाठ्य सहगामी क्रियायें बालक के सर्वांगीण विकास का सर्वोत्तम साधन होती हैं। जिससे बालकों का शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ-साथ बालकों में स्वतंत्र चिन्तन तर्क गुणों का विकास होता है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं के महत्व को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं—

- पाठ्य सहगामी क्रियाओं में खेल-कूद से बालकों में सहयोग, प्रेम, धैर्य, सहनशीलता एवं नेतृत्व के गुणों का विकास होता है। और वह अपनी रुचि के अनुसार कार्य करता है। बालक में नागरिकता के गुणों का विकास होता है।

- विद्यालय आयोजित होने वाले पाठ्यसहगामी क्रियाओं से बालकों में स्वार्थ की भावना कम हो जाती है और व समाज में परमार्थ जैसे कार्यों की ओर भी अग्रसर होता है।

- वर्तमान समय में शिक्षा सैद्धान्तिक के साथ-साथ व्यावहारिक रूप में भी प्रचलित है। यह केवल ज्ञान के भण्डार के रूप में नहीं बल्कि क्रियाओं का योग होता है जो बालक के व्यावहारिक ज्ञान को बढ़ाती है।
- प्रत्येक बालक की रुचि अलग-अलग होती है जैसे खेलकूद, चित्रकारी, नाटक आदि। पाठ्य सहगामी क्रियाओं में उसे अपने रुचि के अनुसार कार्य प्रदर्शन का अवसर प्राप्त होता है। जो आगे उसके मार्ग को प्रसस्त करती है।
- स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं से बालक शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ होता है।
- पाठ्य सहगामी क्रियाओं में जैसे-वाद-विवाद, कला प्रदर्शन आदि बालक के स्वतंत्र अभिव्यक्ति को बढ़ावा देते हैं जिससे बालक में स्वतंत्र चिन्तन की शक्ति का विकास होता है।
- विद्यालयों में ज्ञान के साथ-साथ मनोरंजन कार्य भी होना चाहिए जो पाठ्य सहगामी क्रियाओं से सम्भव है जिससे बालक शैक्षणिक ज्ञान के साथ-साथ मनोरंजन भी कर सके।
- पाठ्य सहगामी क्रियाओं से बालकों में नैतिकता के गुणों का विकास होता है। सही गलत के निर्णय लेने की शक्ति उत्पन्न होती है। दैनिक दिनचर्या सम्बन्धी कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।
- पाठ्य सहगामी क्रियाओं में जैसे शैक्षिक भ्रमण से बालक को प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है।
- पाठ्य सहगामी क्रियायें बालक के समय के सदुपयोग का साधन होती हैं।

**निष्कर्ष**—प्राथमिक विद्यालयों में जबकि बालक अपने बाल्यावस्था में होता है, उसका शारीरिक और मानसिक विकास दोनों हो रहा होता है। पाठ्य सहगामी क्रियायें बालक के सर्वांगीण विकास में सहायक होती हैं। पाठ्य सहगामी क्रियाओं से बालक की रुचि, गति एवं क्षमता का पता चलता है और बालक को स्वतंत्र रूप से विकास का अवसर प्राप्त होता है। पाठ्य सहगामी क्रियायें बालक के व्यावहारिक ज्ञान का आधार होती हैं। बालक को प्रत्यक्ष ज्ञान एवं अनुभव का अवसर प्राप्त होता है। वर्तमान समय में शिक्षा के मूलभूत लक्ष्य बालक का सर्वांगीण विकास एवं समाज का सभ्य नागरिक बनाने को पाठ्य सहगामी क्रियाओं से प्राप्त किया जा सकता है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- गुप्ता, एस0पी0 (2006), भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- पाठक, पी0डी0 (2008), भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- पाठक, पी0डी0 (2013), शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- सक्सेना, सरोज (2009), विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, साहित्य प्रकाशन आगरा।
- शर्मा, आर0 ए0 (2007), सामाजिक विज्ञान शिक्षण, आर0 लाल0 बुक डिपो, मेरठ।

\* \* \* \* \*

## डी.एल.एड. में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन

डॉ. रामेन्द्र कुमार\*

**प्रस्तावना :** व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उसके समायोजन पर प्रभाव पड़ता है। मानसिक उलझनों से ग्रस्त व्यक्ति प्रायः अपने दैनिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से उचित समायोजन करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि संसार में शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति ही उच्च सफलता प्राप्त करते हैं। अतः मानव जीवन में शारीरिक स्वास्थ्य के समान ही मानसिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना भी अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक मनोविज्ञान तथा चिकित्साशास्त्र ने मानसिक विसंगतियों को पहचानने, उनका कारण खोजने तथा उनको दूर करने के उपायों में काफी हद तक सफलता प्राप्त कर ली है। वर्तमान में मानसिक स्वास्थ्य को शारीरिक स्वास्थ्य से अधिक महत्त्व देने की बात कही जाती है। माना जाने लगा कि शारीरिक अस्वस्थता सम्पूर्ण समाज के लिए परेशानी उत्पन्न करती है। वास्तव में बालकों का सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है जब वे शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही दृष्टियों से पूर्णरूपेण स्वस्थ हों। शारीरिक स्वास्थ्य मानसिक स्वास्थ्य को तथा मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य को परस्पर प्रभावित करते रहते हैं।

विद्यालयों में छात्रों की मानसिक, बौद्धिक, चिन्तन, तर्क कल्पना, भाषा ज्ञान, इत्यादि की शिक्षा मिलती है जिनमें मानव व्यवहार के दर्शन होते हैं। मानव सामाजिक एवं भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है जिनके फलस्वरूप उसके क्रियाकलापों में परिवर्तन होता है। मानव उन्हीं क्रियाओं को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है, जो उसकी रुचि, अभिरुचि योग्यता स्वास्थ्य, वातावरण आदि कारकों के अनुरूप हो। कभी-कभी छात्र किसी कार्य को अरुचिपूर्वक या बिना वातावरण से सम्बन्धित हुये करते हैं तो वे सफल नहीं हो पाते हैं जिस छात्र का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। वह अपने निर्धारित लक्ष्यों को एक निश्चित समय सीमा में ही प्राप्त कर लेता है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान सम्बन्धी क्रिया-कलाप केवल मानसिक चिकित्सकों द्वारा ही नहीं अपितु अध्यापक संरक्षक माता-पिता तथा समाज सुधारक आदि द्वारा किया जा सकता है। सत्य तो यह है कि मानव मनोविज्ञान का ज्ञान तथा उसमें अन्तर्दृष्टि होने पर कोई भी व्यक्ति मानसिक आरोग्य में सहायक हो सकता है। इस तरह मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का उद्देश्य केवल मानसिक रोगों का उपचार अथवा रोकथाम मात्र न होकर प्रत्येक व्यक्ति में एक ऐसे व्यक्ति का विकास करना है जिसका वातावरण से अच्छी प्रकार सामंजस्य हो जिसके बौद्धिक, भावात्मक और शारीरिक पहलू भली प्रकार सन्तुलित हो, जो सन्तुष्ट और आशावादी हो और जिसका अपने साथियों से व्यवहार करने में कम से कम संघर्ष तथा तनाव का अनुभव हो। अतः मानसिक स्वास्थ्य का उद्देश्य भली प्रकार समायोजन, सुलझा हुआ और सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण करना है।

**कुप्पूस्वामी** के अनुसार—“मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है—दैनिक जीवन में भावनाओं, इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं और आदर्शों में सन्तुलन रखने की योग्यता। इसका अर्थ है — जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने और उनको स्वीकार करने की योग्यता।”

\* शोध छात्र, ए.पी.एस. विश्वविद्यालय, रीवा ( म.प्र. )

**नेशनल एशोसिएशन ऑफ मेन्टल हेल्थ** ने मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, “मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध उस तरीके से है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छायें महत्वाकांक्षाएं विचार एवं भावनाएं अपनी आत्मा से समन्वित करता है ताकि वह उन माँगों को पूरा कर सके जो उसके सामने आती हैं।”

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य हमारे मन की संयमित एवम् समन्वित अवस्था का द्योतक है। लेकिन यह अवस्था आवश्यक नहीं कि अपरिवर्तनशील हो। मनुष्य की अपनी तथा अपने परिवेश की परिस्थितियों के अनुसार इनमें परिवर्तन आता रहता है। हो सकता है कि आज हम अपने वातावरण के साथ पूर्ण सामंजस्य बनाने में सफल हों लेकिन सामंजस्य की यह स्थिति वातावरण में परिवर्तन के साथ बदल सकती है तथा हमारा सामान्य व्यवहार असामान्य व्यवहार में बदल सकता है। अतः कहा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य सदैव एक जैसा नहीं बना रहता बल्कि इसमें परिस्थितियों तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व को लेकर परिवर्तन आते रहते हैं।

आजकल हमारे समाज, विद्यालय, परिवार, एवं शैक्षिक विकास में अस्थिरता व असन्तोष की भावना व्याप्त है। इस अस्थिरता के बाहरी व आन्तरिक दो कारण हैं। बाह्य कारण के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक दशा तथा समाज का राजनैतिक वातावरण है। आन्तरिक कारणों में सामाजिक प्रशासन शिक्षण तथा छात्रों से सम्बन्धित समस्याएँ हैं। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि छात्रों की यह अस्थिरता, आर्थिक-सामाजिक स्तर, प्रवेश के लिए प्रमाणित मानदण्ड का अभाव, अध्यापकों तथा प्रशासकों द्वारा पक्षपातपूर्ण व्यवहार तथा बेरोजगारी को लेकर है, जिससे विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। अतः विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ना स्वाभाविक है। जैसा कि कुछ शोधों द्वारा इंगित होता है—

**बमागोल्ड एवं अन्य (2011)** ने निष्कर्ष के आधार पर पाया कि मानसिक स्वास्थ्य व शैक्षिक उपलब्धि में धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया। **अल-कैशी, लामा एम. (2011)** ने निष्कर्ष में पाया कि— दुश्चिन्ता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया। **मेंहदी एवं अन्य (2013)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि— शैक्षिक उपलब्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा अन्य चरों तनाव एवं दुश्चिन्ता के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया। **तलवार एवं दास (2014)** ने निष्कर्ष में पाया कि— जाति के आधार पर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि एवं मानसिक स्वास्थ्य में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। **कुमारी एवं अन्य (2014)** ने निष्कर्ष में पाया कि— मानसिक स्वास्थ्य के 6 पक्षों में से केवल दो पक्ष (बुद्धि व संवेगात्मक स्थिरता) विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है। **पुवा, पोह क्योंग एवं अन्य (2015)** ने निष्कर्ष में पाया कि— अध्ययन में पाया गया कि मानसिक स्वास्थ्य का मायूसी, दुश्चिन्ता, तनाव एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध पाया जाता है। **सिंह, शशि (2015)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि कॉलेज स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया। **पाण्डेय, इन्द्र मोहन (2017)** ने निष्कर्ष रूप में पाया कि— सार्थकता स्तर पर माध्यमिक स्तर के ग्रामीण विद्यार्थियों के अधिगम शैली एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सार्थक एवं धनात्मक सहसम्बन्ध है।

इन शोध अध्ययनों से पता चलता है कि मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव उनके शैक्षिक उपलब्धि को सार्थक एवं धनात्मक रूप से प्रभावित करता है। यही डी0एल0एड0 विद्यार्थी आगामी भविष्य में जब अपने शिक्षण कार्यों में संलग्न होते हैं तो वहाँ उनके शिक्षणों कार्यों में भी मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित करता है। जैसा कि कुछ शोध द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य पर विद्यालय से सम्बन्धित विभिन्न चरों का सार्थक प्रभाव पड़ता है। **अल्वी रजा एवं बेनडेकी (2005)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि — शिक्षकों के शैक्षिक स्तर, सेवा अवधि, शैक्षिक सहयोगियों की संख्या का उनके मानसिक स्वच्छता से अर्थपूर्ण एवं सकारात्मक सम्बन्ध होता है। **बासु, सारा (2011)** ने निष्कर्ष के रूप में प्राप्त किया गया — माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य एवं कार्य-सन्तुष्टि में अन्तर पाया गया। **बी.एस. एवं एडविन (2013)** ने निष्कर्ष में पाया कि आयु, कालेज के प्रकार, शिक्षण अनुभव, कालेज वातावरण तथा मासिक आय का उनके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव परिलक्षित होता है।

**समस्या कथन**—अध्ययन का शीर्षक इस प्रकार से निर्धारित किया है—

“डी.एल.एड. में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन।”

**अध्ययन का उद्देश्य**—प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया जायेगा—

1. डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

2. डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

3. डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

**शोध अध्ययन की परिकल्पनाएँ**—प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है—

1. डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध नहीं है।

2. डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध नहीं है।

3. डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध नहीं है।

**शोध प्रविधि** : शोध समस्या की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए षोधकर्ता ने वर्णनात्मक शोध की सहसम्बन्धात्मक विधि का प्रयोग किया है। वर्तमान शोध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने शोध की जनसंख्या के रूप में उत्तर प्रदेश में स्थित प्रयागराज जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत् डी0एल0एड0 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है, जो कि विषमजातीय सीमित वास्तविक जनसंख्या है। वर्तमान शोध हेतु न्यादर्श के रूप में उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जनपद में स्थित महाविद्यालयों में डी0एल0एड0 अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों जिसमें 100 छात्र एवं 100 छात्राओं का चयन बहुस्तरीय न्यादर्शन विधि द्वारा निम्नांकित ढंग से किया गया है। मानसिक स्वास्थ्य के मापन के लिए अरुण कुमार सिंह एवं अल्पना सेन गुप्ता द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य बैटरी (मानसिक स्वास्थ्य बैटरी) का उपयोग किया गया है। मानसिक स्वास्थ्य बैटरी में कुल 130 एकांश हैं जिन्हें छः लोकप्रिय उपसमूहों — संवेगात्मक स्थिरता, सम्पूर्ण समायोजन स्वायत्तता, सुरक्षा—असुरक्षा, स्वप्रत्यय तथा बुद्धि में वर्गीकृत किया गया है। प्रदत्तों के संकलन एवं परिगणन के पश्चात् निर्मित की गयी शून्य—परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध तकनीक का उपयोग किया गया है।

**प्रदत्तों का विप्लेशन एवं व्याख्या**—1. डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

$H_1$  डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध है।

$H_1$  डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

#### तालिका-1

डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य  $r$  का मान

लिंग एवं क्षेत्र	संख्या (N)	सहसम्बन्ध गुणांक $r$ का मान
विद्यार्थी	200	0.4107*
छात्र	100	0.3944*
छात्राएँ	100	0.4104*

\* .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक



डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य  $r$  का मान 0.4107 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना 'डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है', निरस्त की जा सकती है अतः कहा जा सकता है कि डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक सहसंबंध है। अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होगा तो शैक्षिक उपलब्धि अच्छा होगा।

**2. डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।**

$H_2$  डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध है।

$H_2$  डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

#### तालिका – 2

डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य

$r$  का मान

लिंग एवं क्षेत्र	संख्या (N)	सहसम्बन्ध गुणांक $r$ का मान
विद्यार्थी	200	0.4107*

\* .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य  $r$  का मान 0.3944 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना 'डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है', निरस्त की जा सकती है अतः कहा जा सकता है कि डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक सहसंबंध है। अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होगा तो शैक्षिक उपलब्धि अच्छा होगा।

**3. डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।**

$H_3$  डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध है।

$H_3$  डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

#### तालिका – 3

डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य  $r$

का मान

लिंग एवं क्षेत्र	संख्या (N)	सहसम्बन्ध गुणांक $r$ का मान
छात्र	100	0.3944*

\* .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य  $r$  का मान 0.4104 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना 'डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है', निरस्त की जा सकती है अतः कहा जा सकता है कि डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक सहसंबंध है। अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होगा तो शैक्षिक उपलब्धि अच्छा होगा।

**निष्कर्ष**—प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये—

- डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक सहसंबंध है।
- डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक सहसंबंध है।
- डी0एल0एड0 में अध्ययनरत् छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक सहसंबंध है।

**निहितार्थ**—डी0एल0एड0 स्तर पर विद्यार्थियों के मानसिक स्तर को अच्छा बनाने के लिए केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, संस्थाओं, महाविद्यालयों, नीति-निर्देशकों एवं समाज तथा परिवार के लोगों को इस पर विचार करना बहुत जरूरी है एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों के मानसिक स्तर को सुदृढ़ बनाना एवं उन्हें शहरी सुविधाओं के अनुसार शिक्षा व्यवस्था करनी चाहिए जिससे उन्हें तनाव, कृष्ण एवं दुश्चिन्ता आदि न पनपे।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कुमारी, सुधा एवं जाफरी, सदफ (2014). उत्तर प्रदेश बोर्ड के उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य व शैक्षिक उपलब्धि, जर्नल ऑफ कम्प्यूनिटी गाइडेन्स एण्ड रिसर्च, 31(2), पृ0 187-199
- तलवार, एम.एस. एवं दास, अन्निदिता (2014). द स्टडी ऑफ रिलेशनशिप बिटविन ऐकेडमी एचिवमेन्ट एण्ड मेन्टल हेल्थ ऑफ सेकेण्डरी स्कूल ट्राईब स्टूडेन्ट ऑफ असम, पैरीपेक्स- इण्डियन जर्नल ऑफ रिसर्च, वाल्यूम-3, इश्यू-11, पृ. 55-57
- पाण्डेय, इन्द्र मोहन (2017). माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के अधिगम शैली तथा उनके मानसिक स्वास्थ्य में सम्बन्ध का एक अध्ययन, अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध, राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर, सम्बद्ध पूर्वान्वल विश्वविद्यालय, जौनपुर
- पुवा, पोह क्योंग एवं अन्य (2015). द रिलेशनशिप बिटविन मेन्टल हेल्थ एण्ड ऐकेडमी एचिवमेन्ट एमंग यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट- ए लिटरेचर रिव्यू ग्लोबल इलूमिनिस्ट्रेटर पब्लिशिंग, मल्टीडिसिपिलनरी स्टडिज, पृ. 755-764 [www.globalilluminators.org](http://www.globalilluminators.org)
- बमागोण्ड एवं अन्य (2011). माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का उनके शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध, जी0सी0टी0ई0 जर्नल ऑफ रिसर्च एण्ड एक्सटेंशन इन एजुकेशन, 6(1)
- बासु, सारा (2011). "ए स्टडी ऑफ मेन्टल हेल्थ एण्ड जॉब सेटिसफैक्शन ऑफ सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स", भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, अंक 30, पृ0 19-25
- बन्दना एवं शर्मा, दर्शन, पी. (2012). होम इन्वार्मेन्ट, मेन्टल हेल्थ एण्ड ऐकेडमी एचिवमेन्ट एमंग हायर सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ साइंस एण्ड रिसर्च पब्लिकेशन, वाल्यूम-2, इश्यू-5, पृ0 1-4, [www.ijssrp.org](http://www.ijssrp.org)
- सिंह, प्रमोद कुमार (2012) हाईस्कूल स्तर के हिन्दी और अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, अवधेश प्रताप विश्वविद्यालय, रीवां (म0प्र0)
- सिंह, शशि (2015). मेन्टल हेल्थ एण्ड ऐकेडमिक एचिवमेन्ट ऑफ कॉलेज स्टूडेन्ट, द इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ इण्डिया साइकोलॉजी, वाल्यूम-2, इश्यू 4, ISSN 2348-5396(I), [www.ijip.in](http://www.ijip.in)

\* \* \* \* \*

## प्राथमिक शिक्षा और अवरोधन

विजय कुमार\*

**सारांश**—किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को वहां के शिक्षा जगत के माध्यम से प्रतिनिधित्व मिलता है क्योंकि शिक्षा उन उपायों के समूह का नाम है जो अल्प आयु के बालकों को सांस्कृतिक जीवन के योग्य बनाने के लिए निश्चित करने साथ ग्रहण किया जाता है और उसके दक्षता, आत्मविश्वास व बुद्धि को कुछ विशेष सौन्दर्य विषयक के उत्कर्ष पर केंद्रित किया जाता है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों में प्राथमिक स्तर की शिक्षा का स्थान पथ-प्रदर्शक के समान होता है जो बालक को न केवल उंगली पकड़कर जीवन के पथ पर चलना सिखाता है बल्कि उसमें ज्ञान के प्रकाश की ओर चलने हेतु आत्मविश्वास का भाव विकसित करता है, किन्तु समस्या यह है कि प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। अनिवार्य व निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों की अप्राप्ति का प्रमुख कारण अवरोधन (एक ही कक्षा में बार-बार फेल होना) की समस्या है तथा दोषपूर्ण पाठ्यक्रम, जटिल शिक्षण विधियां एवं योग्य अध्यापकों की कमी इसके प्रमुख कारण हैं। शोधकर्ता ने इन समस्याओं को ध्यान में रखकर ही शोध अध्ययन हेतु इस समस्या का चयन किया।

**मुख्य बिन्दु** :—अनिवार्य व निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, अपव्यय, अवरोधन

**प्रस्तावना** :—किसी राष्ट्र की उन्नति वहां की शिक्षा तथा स्वास्थ्य को समुचित व्यवस्था पर निर्भर करती है। शिक्षा को उद्देश्यपरक और उपयोगी बनाने के लिए उसमें समयानुसार परिवर्तन अपेक्षित होता है जिससे बालकों को राष्ट्रोत्थान में अपनी भूमिका सकुशल निभा सके। शरीर मन तथा बुद्धि का विकास शिक्षा के माध्यम से ही संभव है क्योंकि शिक्षण संस्थाएं संस्कृति की प्रहरी बनकर उसकी रक्षा में लगी रहती हैं। अतः कहा जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति वहां की शिक्षा जगत में मुखारित होती रहती है। शिक्षा समाज को और समाज शिक्षा को निरन्तर प्रभावित करता रहता है। वस्तुतः किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को वहां के शिक्षा जगत के माध्यम से प्रतिनिधित्व मिलता है। **आदिकाल से ही शिक्षाविदों का यह कथन रहा है कि "children is the father of man"** आज का बालक कल का भविष्य है और राष्ट्र के निर्माण में उसकी भूमिका अहम् होती है। डॉ० के०जी० सैय्येदन ने शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए यह कहा था कि "शिक्षा उन उपायों के समूह का नाम है जो अल्प आयु के बालकों को सांस्कृतिक जीवन के योग्य बनाने के लिए निश्चित करने साथ ग्रहण किया जाता है और उसके दक्षता, आत्मविश्वास व बुद्धि को कुछ विशेष सौन्दर्य विषयक के उत्कर्ष पर केंद्रित किया जाता है।"

शिक्षा के विभिन्न स्तरों में प्राथमिक स्तर की शिक्षा का स्थान पथ-प्रदर्शक के समान होता है जो बालक को न केवल उंगली पकड़कर जीवन के पथ पर चलना सिखाता है बल्कि उसमें ज्ञान के प्रकाश की ओर चलने हेतु आत्मविश्वास का भाव भी विकसित करता है। सामान्यतः इस स्तर पर अध्ययनरत बालक व बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध विशेषताएं उनके सामाजिक परिवेश, समायोजन और मनोवैज्ञानिक अभिवृत्तियों के अनुरूप होनी चाहिए। उदाहरणतः यह देखा जाता है कि यूरोपियन देशों में विशेषतः अमेरिका, जर्मनी जैसे विकसित देशों में प्राथमिक विद्यालय आकर्षण का केन्द्र होते हैं छात्र स्वतः ही विद्यालय के ओर आकृष्ट होते हैं जबकि भारत में विद्यालयों की स्थिति बिल्कुल ही इसके विपरीत है। संयुक्त राष्ट्र की सांस्कृतिक और शैक्षणिक मामलों की एजेन्सी यूनेस्को व ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग कमेटी के रिपोर्ट के अनुसार भारत में करीब पाँच करोड़ बच्चे अपर सेकेंड्री स्कूल

\* शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, मलवांचल विश्वविद्यालय, इन्दौर, मध्य प्रदेश

तक नहीं पहुँच पाते हैं अर्थात् वे अपनी कक्षा-6, 7 और 8 की पढ़ाई भी पूरी नहीं कर पाते हैं। वैश्विक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए 2014 में प्रथम नाम की संस्था ने अपनी शोध रिपोर्ट में बताया है कि भले ही 96.7 फीसद बच्चों ने स्कूलों में दाखिला लिया, लेकिन उसमें से केवल 71 प्रतिशत ही स्कूल जाते थे।

प्राथमिक शिक्षा के ऐतिहासिक विकास को देखने से विदित होता है कि प्राथमिक स्तर पर अनेकों समितियों, आयोगों के अथक प्रयास तथा तमाम संसाधन जुटाए गए इसके बावजूद विगत 70 वर्षों में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हो सका। अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के लिए काउन्सिल में पेस किया गया गोखले बिल (1907), हर्टोग समिति (1929) बेसिक शिक्षा की वर्धा योजना (1837), संविधान के अनुच्छेद 45 और कोटारी आयोग (1966), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) व संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992) की संस्तुति के अनुसार 6 से 14 वर्ष तक के सभी बालक बालिकाओं को 10 वर्षों के अन्दर निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था, जो आज तक पूरा न हो सका। अब इस उद्देश्य को नई शिक्षा नीति-2020 के द्वारा पूरा करने के वायदे किये जा रहे हैं।

सबसे पहले “संविधान सभा” जिसे स्वतंत्र भारत का संविधान निर्माण करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी, ने निम्नलिखित शब्दों में निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को राज्य का एक नीति निर्देशक सिद्धान्त घोषित किया—“राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किये जाने के समय से आगामी 10 वर्ष के अन्दर 6-14 आयु वर्ष तक के सभी बालक व बालिकाओं को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की चेष्टा करेगा”। लेकिन हम देखते हैं कि आज हम दस वर्ष के स्थान पर 70 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं संविधान को लागू हुए लेकिन आज तक हम 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया है। भारत सरकार के निर्णय के अनुसार प्राथमिक शिक्षा बेसिक प्रकार की होगी और सरकार इस शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने के लिए सन् 1950 से ही प्रयत्नशील है। केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को प्राथमिक शिक्षा पर कुल व्यय का 3/4 प्रतिशत अनुदान के रूप में देती है शेष व्यय को राज्य सरकार अपने संसाधनों से करना होता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने की नीति पूर्ण रूप से खोखली साबित हो रही है। क्योंकि सबको अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का लक्ष्य अभी भी कोसों दूर दिखाई देती है। गैर सरकारी संस्था ‘प्रथम’ द्वारा शिक्षा के स्तर पर जारी वार्षिक रिपोर्ट “असर-2018” के कहा गया है कि शिक्षा के अधिकार-2009 के अनुरूप पहली कक्षा में प्रवेश की आयु-6 वर्ष होनी चाहिए। परन्तु सर्वेक्षण में पाया गया कि पहली कक्षा में प्रवेश लेने वाले 10 बच्चों में से 4 बच्चों की आयु 5 वर्ष या 5 वर्ष से कम आयु वाले हैं। सन् 2018 में गैर नामांकन वाले छात्रों की संख्या 3 प्रतिशत से घटकर 2.8 प्रतिशत हो गई। जबकि स्कूली शिक्षा से वंचित रहने वाली बालिकाएँ जिनकी आयु 11 से 14 वर्ष के मध्य है उनकी संख्या सन् 2018 में 4.1 प्रतिशत थी भारत में इसका सबसे बड़ा कारण गरीबी है जिसके कारण बच्चे होश सम्भालते ही आजीविका के साधनों में संलग्न हो जाते हैं मां-बाप चाह कर भी उनको विद्यालय नहीं भेज पाते हैं क्योंकि बिना बच्चों के सहयोग से अर्थोपार्जन करना और परिवार का पेट पालना उनको असम्भव लगता है और इस तरह से बच्चे विद्यालय में पेन और पेन्सिल की जगह खेतों में हँसिया और फावड़ा लिये दिखाई देते हैं गरीबी के कारण उचित पोषण नहीं मिल पाता है, और नहीं उनका पूर्ण रूप से शारीरिक और मानसिक विकास हो पाता है। अधिकांश बच्चे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं। आज भी हमारे देश में लगभग 35 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे निवास करती है। भारत सरकार ने 1995 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग में एक “राष्ट्रीय प्रारम्भिक शिक्षा मिशन” का गठन किया गया। इस मिशन का उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिक लक्ष्यों को प्राप्त करना था। सन् 1995 में ही प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए एक नया पोषाहार सहायता कार्यक्रम भी शुरू किया गया था।

इस सबके बावजूद प्राथमिक शिक्षा में नामांकन एवं अवरोधन आज भी एक बहुत बड़ी समस्या बनी हुई है, जो अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सबसे बड़ी बाधा है। जब हम शुरुआती स्तर पर कक्षा 1 में नामांकन की स्थिति का अवलोकन करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि पहली कक्षा में 100 में से मात्र 83 बच्चों का ही विद्यालय में नामांकन हो पाता है इसके बाद शुरू होती है अवरोधन की समस्या अर्थात् बच्चा

एक ही कक्षा में 1 से अधिक वर्ष व्यतित करता है। अवरोधन के कारण कक्षा 6 तक 40 प्रतिशत और 8वीं कक्षा तक 22 प्रतिशत बच्चे ही पहुँच पाते हैं। अवरोधन की समस्या से निजात पाने के लिए सरकार ने अपने नियंत्रणाधीन विद्यालयों में बच्चों को कक्षा 1 से 8 तक के मध्य अनिवार्य रूप से कक्षाोन्नति करने का नियम लागू कर दिया है तथा उम्र के अनुसार बच्चे को कक्षा में प्रवेश पाने का अधिकार दे दिया गया है। जैसे कि यदि कोई बच्चा 6 वर्ष का है तो कक्षा 1 में प्रवेश पायेगा 7 वर्ष का है तो कक्षा 2, में 8 वर्ष का है तो कक्षा 3 में, इसी प्रकार उसे उम्र के आधार पर आठवीं तक किसी भी कक्षा में प्रवेश पाने का अधिकार दे दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्राथमिक शिक्षा अपने सार्वभौमिकरण के लक्ष्यों की ओर तो अग्रसर हुई है लेकिन शिक्षा का स्तर गिरता चला गया है। हम देखते हैं कि अवरोधन की समस्या अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़ी जातियों में तुलनात्मक रूप से अधिक है। अवरोधन का एक सबसे महत्वपूर्ण कारण शिक्षा की संरचना का दोषपूर्ण होना है। प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, परीक्षा आदि की कोई निश्चित रूप रेखा तैयार नहीं की जाती है। जिसके कारण बालक अपने को विद्यालयी वातावरण में समायोजित नहीं कर पाता है। अतः बालक को विद्यालय जाना भार प्रतीत होने लगता है और वह धीरे-धीरे वह पठन-पाठन और विद्यालय से दूर होता चला जाता है और इसका परिणाम यह होता है कि बार-बार वह एक ही कक्षा में अनुत्तीर्ण होता है। प्राथमिक विद्यालयों में कठोर दण्ड की प्रथा अवरोधन के लिए उत्तरदायी थी जिसे कि अब समाप्त कर दिया गया है। दण्ड से बालकों का शारीरिक एवं मानसिक विकास तो अवरुद्ध होता ही है साथ ही साथ बच्चों में हीन भावना का भी विकास होता है और बच्चे विद्यालय जाने से बचने का प्रयास करते हैं। विद्यालय से बच्चों का दूर होने का एक प्रमुख कारण विद्यालय का नीरस वातावरण एवं अरोचक पाठ्यक्रम का होना भी है। प्राथमिक स्तर पर विद्यालय का वातावरण एवं पाठ्यक्रम बच्चों के अनुकूल एवं उनके लिए आकर्षक होना चाहिए जिससे वे विद्यालय जाने एवं पठन-पाठन के प्रति स्वयं से प्रेरित हो। प्राथमिक स्तर पर शिक्षण प्रयोग आधारित होना चाहिए और बच्चों को खेल एवं गतिविधि के माध्यम से शिक्षा देने का प्रयास करना चाहिए। रटने की प्रक्रिया पर अंकुश लगाया जाना चाहिए क्योंकि इससे उनमें घबराहट पैदा होती है और अंततः वे विद्यालय से दूरी बनाने लगते हैं। अवरोधन का एक प्रमुख कारण बच्चों की बिमारी, घरेलू कार्यों में संगलता कृषि कार्यों में माता पिता का हाथ बटाना, एकल परिवारों में बहुत से विद्यालय जाने वाले बच्चे अपने छोटे भाई बहनों के देखभाल के लिए भी प्रायः विद्यालय से अनुपस्थित रहते हैं।

आज भी प्राथमिक विद्यालय में योग्य एवं अनुभवी शिक्षक एवं शिक्षिकाओं का आभाव है। जो बच्चों को उनके उम्र और रुचि के अनुसार प्यार और स्नेह के साथ शिक्षा दे सकें।

अवरोधन की समस्या से निजात पाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जा सकते हैं।

- ★ प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम खेल एवं गतिविधि आधारित होना चाहिए।
- ★ शिक्षक छात्र अनुपात का पालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- ★ दण्ड की व्यवस्था को पुरी तरह समाप्त किया जाना चाहिए।
- ★ कमजोर एवं पिछड़े बालकों के लिए उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- ★ शिक्षण विधि एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया में सुधार किया जाना चाहिए।
- ★ निर्बल एवं गरीब बच्चों को छात्रवृत्ति, पाठ्य-पुस्तक इत्यादि उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
- ★ प्राथमिक स्तर पर शिक्षण कार्य हेतु विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों को ही नियोजित किया जाना चाहिए।
- ★ विद्यालय में पठन-पाठन के साथ मनोरंजन का भी पर्याप्त साधन होना चाहिए।
- ★ नियमित रूप से बच्चों के उम्र के अनुसार खेल गतिविधियों का आयोजन किया जाना चाहिए।
- ★ विद्यालयों में जातिगत भेद-भाव को पूर्णतः निषिद्ध किया जाना चाहिए।
- ★ विद्यालयों में ऐसे सभी क्रिया कलाओं एवं गतिविधियों को पूर्ण रूप से निषेध किया जाना चाहिए, जिससे बच्चों में पठन पाठन के प्रति अरुचि पैदा होती हो और वे विद्यालय जाने से बचने का प्रयास करते हैं।

**निष्कर्ष :-**प्राथमिक शिक्षा को सुदृढ़ होना अति आवश्यक है प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य पूर्ण होना तभी माना जायेगा, जब हम 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बालक व बालिकाओं को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करा सकें। भारत सरकार ने संविधान में संशोधन करके अनुच्छेद 21(क) जोड़कर इसको मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया है जिससे की इस कार्यक्रम को और मजबूती प्रदान की जा सके। स्वामीविवेकानन्द ने अपने अनुभवों के आधार पर यह मत व्यक्त किया है कि यूरोप के अनेक शहरों में भ्रमण करते हुए और वहाँ के निर्बल एवं गरीब के जीवन में भी सुख सुविधा और शिक्षा को देखते हुए मेरे मन में अपने देशवासियों की दशा का चित्र घूम गया और मेरी आंखों से आंसू बहने लगे। इस अंतर का क्या कारण था, उत्तर मिला—शिक्षा।

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. चौबे, सरयू प्रसाद : भारत में शिक्षा का विकास, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1970
2. जेम्स, एच0आर : मैगनाकार्टा आफ एजुकेशन आफ इण्डिया, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1960
3. इण्डिया, 1986 : पब्लिकेशन डिविजन्स, मिनिस्ट्री आफ इनफार्मेशन एण्ड ब्राडकास्टिंग गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, 1987
4. भारतेन्दु मिश्र 1998 : प्राइमरी शिक्षक, राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
5. Internet-ShodhGangainfibnd. ac.in.
6. NCERT website
7. ASER -2018

\* \* \* \* \*



## उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन

**डॉ. राजेन्द्र कुमार जायसवाल\***

**सारांश**—ज्ञानात्मक प्रेरणा व इस नाशवान अनित्य जगत् के पीछे जो अपरिवर्तनशील, अविनाशी, नित्य सत्य है, उसको अन्वेषण करने का प्रयत्न सदा-सर्वदा से करता आ रहा है। जन्म से ही बालक चेतन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण चिन्तनशील होता है जिसके कारण वह ज्ञानात्मक प्रेरणा को प्रकट करता है यदि बालक के अंतर्मन से ज्ञानात्मक प्रेरणा या स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों को समाप्त कर दी जाये तो उसका जीवन सादृश्य हो जायेगा। स्व-अध्ययन सम्बन्धी आदतें ही बालक को जीवन स्तर में सुधार हेतु अभिप्रेरित करती हैं। मनोवैज्ञानिक भाषा में अधिगम के फलस्वरूप अर्जित व्यवहार को आदत कहा जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी आदतों को दृढ़ करने पर जोर दिया जाता है, आदतें सीखने की केन्द्रीय कारक होती हैं जो व्यक्ति की शैक्षणिकता, मुख्यतः उसके आदतों को बनाने और पुनःनिर्मित करने की योग्यता पर निर्भर करती हैं। उपरोक्त तथ्यों तथा संस्थागत वातावरण का विद्यार्थियों के स्व अध्ययन आदतों का शैक्षिक स्तर पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिये शोधकर्ता ने अपने शोध-पत्र में इस शोध समस्या का चयन किया।

**मुख्य बिन्दु** :—ज्ञानात्मक प्रेरणा, अंतर्मन, स्वअध्ययन, अर्जित व्यवहार

अनादिकाल से इस कथन की सत्यता से इनकार नहीं किया जा सकता है कि बालक सदैव चिन्तनशीलता व सृजनात्मक अभिवृत्तियों से ओत-प्रोत रहता है। वह नित्य ज्ञानात्मक प्रेरणा व इस नाशवान अनित्य जगत् के पीछे जो अपरिवर्तनशील, अविनाशी, नित्य सत्य है, उसको अन्वेषण करने का प्रयत्न सदा-सर्वदा से करता आ रहा है। जन्म से ही बालक चेतन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण चिन्तनशील होता है जिसके कारण वह ज्ञानात्मक प्रेरणा को प्रकट करता है। ज्ञानात्मक प्रेरणा के कारण ही वह अपने आस-पास के व्यक्तियों एवं वस्तुओं को देखकर स्वाभाविक रूप से क्रियाशील होता है। यदि बालक के अंतर्मन से ज्ञानात्मक प्रेरणा या स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों को समाप्त कर दी जाये तो उसका जीवन सादृश्य हो जायेगा। स्व-अध्ययन सम्बन्धी आदतें ही बालक को जीवन स्तर में सुधार हेतु अभिप्रेरित करती हैं। आदतों के कारण ही बालक चाहे किसी भी समाज से संबद्ध हो वह नित्य नवीन ज्ञानात्मक प्रेरणा को संपादित करता रहता है। **विलियम जेम्स** लिखते हैं कि “**आदतें प्राणी के पूर्वकृत व्यवहारों की तरह से व्यवहार की पुनरावृत्ति करने की प्रवृत्ति हैं।**” मनोवैज्ञानिक भाषा में अधिगम के फलस्वरूप अर्जित व्यवहार को आदत कहा जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी आदतों को दृढ़ करने पर जोर दिया जाता है, आदतें सीखने की केन्द्रीय कारक होती हैं जो व्यक्ति की शैक्षणिकता, मुख्यतः उसके आदतों को बनाने और पुनःनिर्मित करने की योग्यता पर निर्भर करती हैं।

वर्तमान समय में शिक्षा के परिक्षेत्र में नवीन नवचारों व तकनीकी संवर्धन के कारण शिक्षा प्रतिशील, भौतिकवादी और यथार्थपरक बनती जा रही हैं, जिसके कारण निम्न शैक्षिक उपलब्धि वाला बालक भी उच्च शैक्षिक योग्यता रखने वाले बालक पर प्रभाव डालता है। बालक को श्रेष्ठ एवं उन्नतिशील प्राणी बनाने में ज्ञानात्मक प्रेरणा के

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री गणेश राय पी.जी. कॉलेज, डोभी, जौनपुर, उ.प्र.

साथ-साथ संस्थागत वातावरण काफी हद तक उत्तरदायी होता है। यदि संस्थागत वातावरण अनुकूल है तो छात्रों में अपेक्षित गुणों का विकास होगा और वह जीवन में उत्तरोत्तर सफलता का परचम लहरायेगा, और यदि संस्थागत परिस्थितियाँ विपरीत हैं तो इसका बालकों के व्यवहार व प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा वह मानसिक रूप कुंठासे ग्रसित हो जाता है।

भारत में विभिन्न शैक्षिक वातावरण वाले विद्यालय विद्यमान हैं। प्रशासन के दृष्टि से इन्हें हम शासकीय, अर्द्धशासकीय अथवा अनुदानित शैक्षिक संस्थाओं में वर्गीकृत कर सकते हैं। प्रत्येक संस्थान का अपना एक अद्वितीय शैक्षिक वातावरण होता है। यदि विभिन्न संस्थागत वातावरण के परिदृश का अन्वेषण करें तो सभी शिक्षण संस्थाओं का एक मात्र उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण विकास करना है। लैंगिक आधार पर भारतीय विद्यालयों का विश्लेषण करने पर संस्थागत वातावरण का परिदृश्य को देखें तो इन्हें हम सह-शिक्षा आधारित विद्यालय, अर्थात् वे विद्यालय जहाँ पर बालक व बालिकाएँ साथ-साथ शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में संलग्न रहकर शैक्षिक उद्देश्यों या शैक्षिक आकांक्षाओं की संप्राप्ति करते हैं। सह-शिक्षा पद्धति आधारित विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थी एकल पद्धति के विद्यालयों के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक साहसी, सृजनशील एवं आत्मविश्वास से अधिक परिपूर्ण होते हैं। इन विद्यालयों के संस्थागत वातावरण का विद्यार्थियों के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का उपलब्धि अभिप्रेरणा पर भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति के सफलता के मानदण्ड उसके अपने आदतों के स्तर एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा पर निर्भर करती है क्योंकि आदतें और अभिप्रेरणाएँ ही व्यक्ति को नित नई ऊँचाइयाँ छूने में मदद करती हैं, स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों एक ऐसे स्तम्भ के समान होती हैं जो जीवन के प्रत्येक पक्ष को सम्बल और आधार प्रदान करती हैं। आकांक्षाएँ कोई जन्मजात शक्ति नहीं हैं बल्कि बालक अपने पूर्व अनुभव तथा पूर्व की सफलताओं के आधार पर निर्मित करता है, यही कारण है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी उपयुक्त संस्थागत वातावरण सृजित करने का निर्णय लिया गया। उपरोक्त तथ्यों तथा संस्थागत वातावरण का विद्यार्थियों के स्व अध्ययन आदतों का शैक्षिक स्तर पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिये शोधकर्ता ने अपने शोध-पत्र में इस शोध समस्या का चयन किया।

**शोध साहित्य का अवलोकन**—मेंहदी (1965) ने एक वृहद अध्ययन कराया ताकि यह पता चल सके कि अध्ययन आदतों का प्रभाव विद्यार्थियों शैक्षणिक दक्षता पर किस प्रकार से पड़ता है। इनमें विज्ञान, कला और वाणिज्य के विद्यार्थी शामिल थे। अपने अध्ययन में उन्होंने पाया कि अध्ययन आदतें विद्यार्थियों की शैक्षणिक सफलता में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रहती हैं।

त्रिवेदी और पटेल (1973) ने अध्ययन आदतों और कार्य कुशलता (बी0ए0 अंग्रेजी और गैर अंग्रेजी विषय के छात्रों के मध्य) का एक तुलनात्मक अध्ययन किया। अपने अध्ययन में पाया कि अंग्रेजी विषय वाले छात्रों की कार्य कुशलता गैर अंग्रेजी विषय वाले छात्रों से ज्यादा बेहतर थी।

लक्ष्मी नारायणन (2006) ने स्वअध्ययन कुशलता में सफल और असफल की तुलना करने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांकों के आधार पर 50 सफल और 50 असफल विद्यार्थियों को चयनित किया। अपने अध्ययन में पाया कि सफल विद्यार्थियों ने उच्च स्तर की अध्ययन कुशलता हासिल की थी असफलों की तुलना में।

#### समस्या का कथन :

“उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन।”

**शोध अध्ययन का उद्देश्य**—कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन सम्बन्धी आदतों का अध्ययन करने के लिए निम्नांकित उद्देश्यों की संरचना की गयी—

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग विद्यार्थियों के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के बालक एवं बालिकाओं के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

**शोध की परिकल्पना**—शोध अध्ययन हेतु निर्मित उद्देश्यों के अनुरूप कार्य सम्पादित करने के लिए शोधकर्ता द्वारा निम्न शून्य परिकल्पनाएँ निर्मित की गयी।

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग विद्यार्थियों के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों में कोई अन्तर नहीं है।

2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के बालक एवं बालिकाओं के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों में कोई अन्तर नहीं है।

**शोध अध्ययन की परिसीमाएं**—शोध अध्ययन की निम्नलिखित परिसीमाएं निर्धारित की गईं—

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन जौनपुर जनपद के शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में स्थित उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के अध्ययनरत विद्यार्थियों तक ही सीमित है।

2. शोध अध्ययन में एक ही चर का प्रयोग किया गया है।

3. जनसंख्या के रूप में अनुदानित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा-12 स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में से केवल 120 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया।

4. न्यादर्श के रूप में चयनित कुल विद्यार्थियों में से कला वर्ग से 60 तथा 60 विज्ञान वर्ग से चयनित किया गया है।

**शोध उपकरण**—प्रस्तुत शोध अध्ययन में डॉ० बी०वी० पटेल द्वारा निर्मित—“स्व अध्ययन आदतें सूची” का प्रयोग किया गया है।

**शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीकी**—प्रस्तुत शोध अध्ययन में संग्रहित आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया।

**आँकड़ों का विश्लेषण एवं परिणामों की व्याख्या**—प्रस्तुत अध्ययन में परिकल्पनाओं को ध्यान में रखते हुए मूल प्राप्तांकों के आधार पर विभिन्न तालिकाएँ तैयार की गयीं, तदुपरान्त आँकड़ों का विश्लेषण एवं परिणामों की व्याख्या परिकल्पनाओं के क्रम में किया गया—

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया—

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग विद्यार्थियों के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों में कोई अन्तर नहीं है।

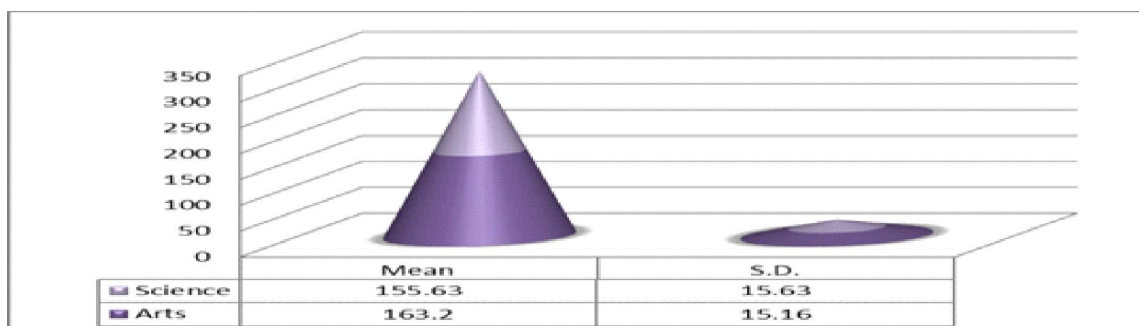
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के बालक एवं बालिकाओं के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों में कोई अन्तर नहीं है।

सर्वप्रथम शोधकर्ता ने जौनपुर जनपद के समस्त उच्चतम माध्यमिक विद्यालयों में से न्यादर्श में सम्मिलित विद्यालयों से चयनित 120 विद्यार्थियों (बालक/बालिका) पर “स्व अध्ययन आदतें सूची” को प्रशासित किया गया। इसके उपरान्त प्रयुक्त उपकरणों पर प्राप्त आँकड़ों के आधार पर आवश्यकतानुरूप आवृत्ति वितरण की प्रसामान्यता की जाँच की गयी, क्योंकि प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु उपयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियों (मध्यमान, मानक विचलन, क्रान्तिक अनुपात) का प्रयोग प्राप्तांकों की गणना में की गयी।

“स्व-अध्ययन आदतें सूची” पर प्राप्त अंकों की मध्यमान, प्रामाणित विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात का मान सारणी संख्या-1 से स्पष्ट है—**सारणी संख्या-01**

**उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग विद्यार्थियों के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन—**

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	अन्तर की प्रामाणिक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता का स्तर
कला	60	163.2	15.16	258	253	0.01 स्तर पर सार्थक है।
विज्ञान	60	155.63	15.30			



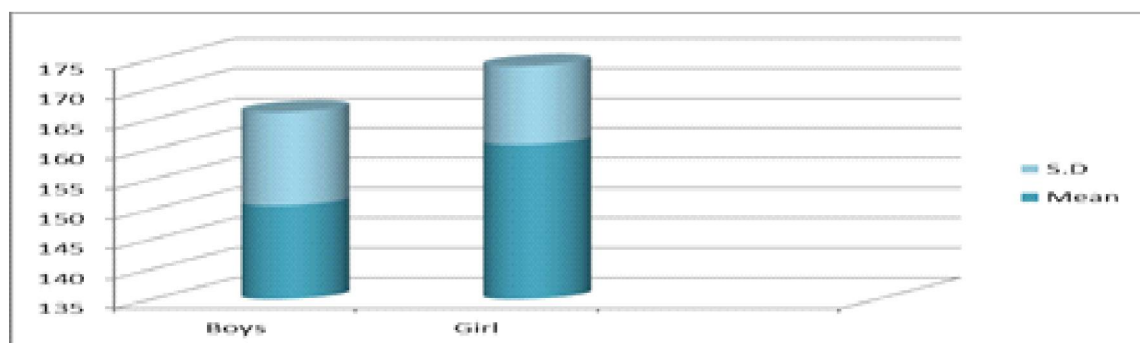
सारणी -01 से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला वर्ग के विद्यार्थियों की स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का मध्यमान 163.2 तथा प्रमाणित विचलन का मान 15.16 पाया गया। जबकि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों का स्वअध्ययन आदतों सम्बन्धी मापनी पर प्राप्त अंकों के आधार पर मध्यमान का मान 155.63 व प्रमाणित विचलन का मान 15.30 ज्ञात हुआ। दोनों समूहों के माध्यमानों के मध्य क्रान्तिक अनुपात की गणना करने पर 2.73 का मान प्राप्त हुआ, जो कि सार्थकता के मान 0.01 स्तर पर सार्थक है। क्रान्तिक अनुपात मान से स्पष्ट होता है कि कला व विज्ञान वर्ग अध्ययन के विद्यार्थियों की स्वअध्ययन आदत सम्बन्धी मापनी के प्राप्तांकों में सार्थक अन्तर है। इस परिणाम के आधार पर शोध हेतु निर्मित प्रथम परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है। प्रस्तुत अध्ययन में यह पाया गया कि पूर्व की अवधारणाओं कि उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों अन्तर नहीं होती हैं, इसकी पुष्टि शोध अध्ययन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर नहीं हो सकी। शायद इसका कारण यह भी हो सकता है कि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में दृढ़ अभिज्ञान की भावना व सृजनात्मक अभिक्षमता कला वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक होती है, इसके अलावा किशोरावस्था के दौरान चूँकि संवेगों की प्रबलता अधिक तीव्र और ज्ञानात्मक प्रेरणा स्वरूप भी अलग-अलग होने के कारण दोनों वर्ग के विद्यार्थियों में अन्तर परिलक्षित हो रहा है।

द्वितीय परिकल्पना के माध्यम से शोधकर्ता ने अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिंग का उनके शिक्षण संदर्भित स्वअध्ययन आदतों के साथ सम्बन्ध को जानने का प्रयास किया है। प्रस्तुत सम्बन्ध को जानने के लिए परिकल्पना बनायी गयी कि विद्यार्थियों के लिंग (बालक/बालिका) का उनकी स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। न्यादर्श के 60 विद्यार्थियों में से बालकों की संख्या 30 तथा बालिकों की संख्या 30 थी। इन दोनों समूहों के स्वअध्ययन आदतों सम्बन्धी मापनी पर प्राप्तांकों के आधार पर आवृत्ति वितरण अलग-अलग तैयार किया गया। बालकों के स्वअध्ययन आदत मापनी पर प्राप्तांकों के आधार पर मध्यमान 150.66 तथा प्रमाणित विचलन 15.61 प्राप्त हुआ। जबकि बालिकाओं के स्वअध्ययन आदत मापनी के प्राप्तांक के आधार पर मध्यमान 160.83 तथा प्रमाणित विचलन 13.17 ज्ञात हुआ। बालक तथा बालिकाओं की स्वअध्ययन आदतों की प्रभावशीलता के जाँच हेतु क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया जो तालिका सं0-02 से स्पष्ट है।

#### सारणी संख्या -02

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कला वर्ग के बालक व बालिकाओं की स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन-

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	अन्तर की प्रामाणिक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता का स्तर
बालक	30	150.66	15.61	3.71	2.74	0.01 स्तर पर सार्थक है।
बालिका	30	160.83	13.17			

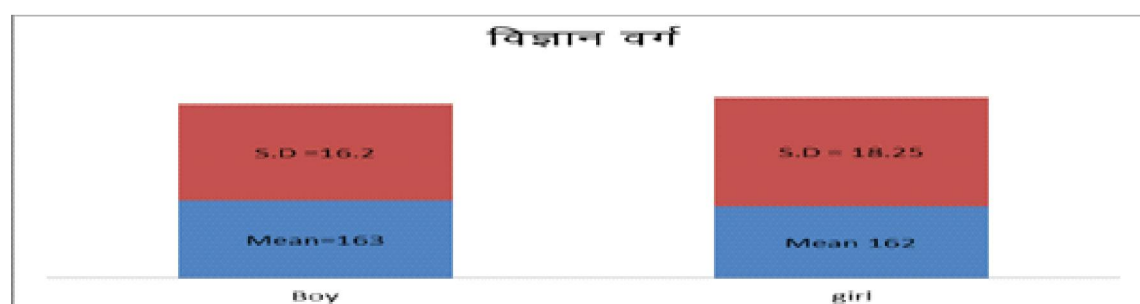


सारणी संख्या –02 के अवलोकन से स्पष्ट है कि क्रान्तिक अनुपात का मान 0.01 के स्तर सार्थक है। क्रान्तिक अनुपात मान से यह स्पष्ट होता है कि बालक व बालिकाओं की “स्वअध्ययन आदत मापनी” से प्राप्त प्राप्ताकों में सार्थक अन्तर है, जोकि सार्थकता के स्तर 0.01 स्तर पर सार्थक होने के लिये पर्याप्त है। इसके आधार पर शोध अध्ययन हेतु निर्मित शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है, अर्थात् माध्यमिक स्तर पर कला वर्ग अध्ययनरत बालक व बालिकाएं एक ही औसत आयु स्तर के होते हुये भी उनकी शैक्षिक क्रियापद्धति व संवेगों का शोधन एवं मार्गान्तरीकरण एक समान नहीं पायी गयी।

### सारणी संख्या–03

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत बालक व बालिकाओं के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन–

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	अन्तर की प्रामाणिक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात
बालक	30	163.16	16.2	4.47	0.12.
बालिका	30	162.6	18.25		



0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। सारणी संख्या–03 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत बालक व बालिकाओं की स्वअध्ययन आदत सूची के अंकों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर मध्यमान का मान क्रमशः 163.16 व 162.6 तथा मानक विचलन क्रमशः 16.2 व 18.25 ज्ञात हुआ। दोनों समूहों के मध्यमानों के मध्य गणना करने पर क्रान्तिक अनुपात का 0.12 प्राप्त हुआ, जोकि सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक नहीं हैं। शोध कार्य हेतु निर्मित परिकल्पना “ उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विज्ञान वर्ग के बालक एवं बालिकाओं के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों में कोई अन्तर नहीं है ” स्वीकृत की जाती है, अर्थात्

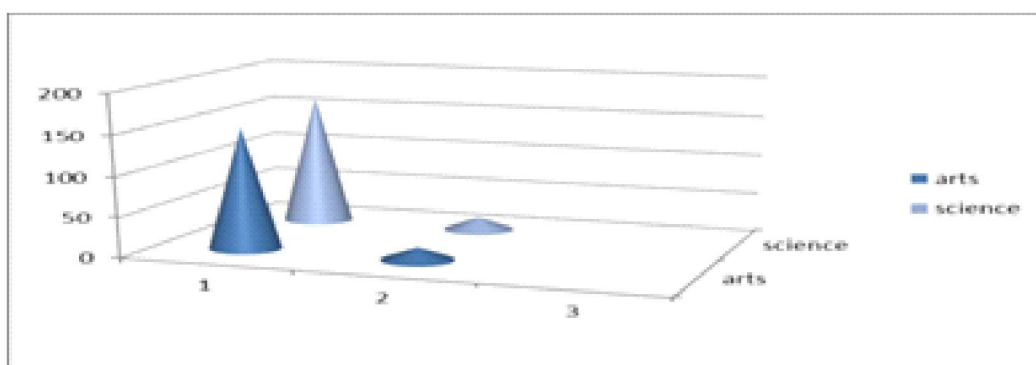
उच्चतर माध्यमिक स्तर विज्ञान वर्ग में अध्ययन करने वाले बालक व बालिकाएँ एक ही औसत आयु के होते हैं। अतः शैक्षिक क्रियापद्धति व सृजनात्मक कार्य के प्रति आदतें औसत एक समान ही पायी जाती हैं, क्योंकि एक ही आयु स्तर होने के कारण आदत सम्बन्धी क्रियाएं बहुत ही आसानी से एवं सुविधाजनक तरीके से कार्यान्वित होती हैं।

#### सारणी संख्या -04

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत् बालकों के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन-

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	अन्तर की प्रामाणिक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात
कला	30	150.66	15.61	4.12	3.03
विज्ञान	30	163.16	16.34		03

0.01 स्तर पर सार्थक है।



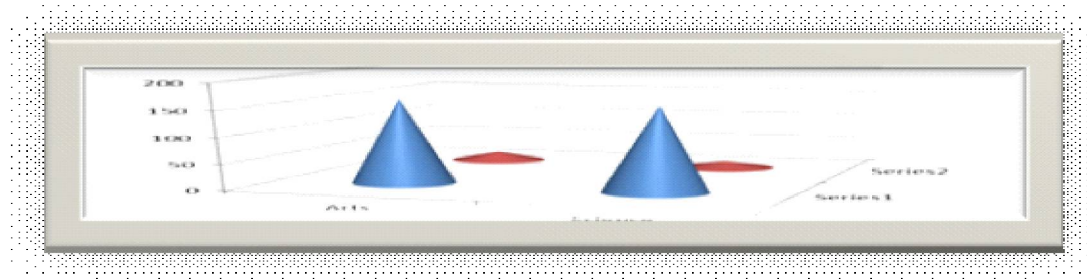
उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग के बालकों की अध्ययन संदर्भित आदतों का तुलनात्मक अध्ययन "स्वअध्ययन आदत सूची पर प्राप्त अंकों के आधार पर मध्यमान के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। दोनों समूहों की गणना से प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान 3.03 प्राप्त हुआ, जोकि 0.01 सार्थकता के स्तर पर सार्थक है। इससे स्पष्ट है कि शोध अध्ययन हेतु पूर्व पर निर्मित शून्य परिकल्पना अस्वीकृत है, अर्थात् विज्ञान व कला वर्ग के बालकों की अध्ययन संदर्भित आदतें एक समान नहीं हैं, चूँकि किशोरावस्था के दौरान बालकों के संवेग अस्थिर व उनमें तीव्रता से उतार-चढ़ाव के कारण उनके सृजनात्मक क्रियाओं व समस्या समाधान करने की प्रवृत्तियों और मानसिक शक्ति में कुछ अन्तर परिलक्षित होता रहता है यही कारण है कि कला वर्ग में अध्ययनरत विद्यार्थियों की तुलना में विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों की प्रबलता अधिक पाई गई।

## सारणी संख्या –05

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत बालिकाओं के स्वअध्ययन सम्बन्धी आदतों का तुलनात्मक अध्ययन—

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	अन्तर की प्रामाणिक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात
कला	30	162.6	18.25	4.1	0.41
विज्ञान	30	160.83	13.17		

0.05 पर सार्थक नहीं है।



उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत बालिकाओं की अध्ययन संदर्भित आदतों का तुलनात्मक अध्ययन स्वअध्ययन आदत सूची के अंकों के आधार पर मध्यमान का मान क्रमशः 162.6 व 160.83 तथा मानक विचलन का मान 18.25 व 13.17 हैं। दोनों समूहों के मध्यमानों के आधार पर सांख्यिकीय गणना करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 0.41 प्राप्त हुआ, जोकि सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक नहीं है। अतः शोध अध्ययन हेतु पूर्व में निर्मित शून्य परिकल्पना स्वीकार की जाती है, अर्थात् उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बालिकाओं में कलात्मक तथा सौन्दर्यात्मक व साहित्यिक वाद-विवाद जैसे शैक्षिक क्रियापद्धति के प्रति आदतें एक समान ही पायी गयी।

**निष्कर्ष :-**अध्ययन के प्राप्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन सम्बन्धी आदतों में शैक्षिक क्रियापद्धति व संवेगों का शोधन एवं मार्गान्तरीकरण सार्थक अन्तर पाया गया। जबकि दोनों वर्ग के अध्ययनरत विद्यार्थियों का लिंग आधारित विश्लेषण करने पर बालकों के आदतों में अन्तर परिलक्षित हुआ परन्तु बालिकाओं की अध्ययन सम्बन्धी आदतें लगभग एक समानता पायी गई।

#### शैक्षिक महत्व :-

1. विद्यार्थियों के बौद्धिक कौशकों एवं संप्रत्ययों के विकास हेतु विद्यार्थी की प्रकृति, मनोवृत्तियों तथा योग्यताओं का ज्ञान होना आवश्यक है इस दिशा में यह शोध अध्ययन सहायक है।
2. शोध अध्ययन से ज्ञात होता है कि कला व विज्ञान वर्ग के अध्ययनरत विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों की जानकारी प्राप्त होती है।
3. कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्ययन सम्बन्धित समस्याओं की सही जानकारी प्राप्त होती है।



**उपसंहार :-**प्रस्तुत शोध अध्ययन उच्चतर माध्यमिक स्तर के अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से सम्बन्धित होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है चूँकि इस स्तर के विद्यार्थी किशोरावस्था में होता है परिणामस्वरूप भविष्य को लेकर उनके मन व मस्तिष्क में अनेकानेक चिन्ताएं, दिवास्वप्न व संवेगात्मक अस्थिरताओं की बाहुल्यता होता है, क्योंकि उसका एक गलत कदम उसे अपने शैक्षिक उद्देश्यों से भटका सकता है। इस शोध अध्ययन से ज्ञात होता है कि विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता तथा अध्ययन आदतों का उसकी शैक्षिक निष्पत्ति से धनात्मक सह-सम्बन्ध है।

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, संध्या (2008) : शिक्षा मनोविज्ञान, अनु प्रकाशन, जयपुर
2. पाण्डेय, डॉ०के०पी० (2006) : शैक्षिक अनुसंधान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी
3. भटनागर, ए०वी० (2009) : अधिगम का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ
4. सिंह, अरुण कुमार (2014) : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में विधियाँ, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी
5. वर्मा, शेख और संगीता (1974), किशोरावस्था में छात्रों के अध्ययन आदत एवं शैक्षिक प्रेरणा परीक्षा चिन्ता में संबंध पर अध्ययन।" सारकोर्लिगुआ वाल्यूम -27
5. Thomas, H. [1985] Journal of Literacy Research
6. Kant,Ninmal : " A Comparative Study of Study Habits of High School Studend."
7. Niwartti Shinde Baliram [2014] " Compararative Study of Study Habits, Self Concept and Academic Achievement Among High School Students."

\* \* \* \* \*

## माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

अनुपमा सिंह\*

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं सुयोग्य नागरिक बनाया जाता है और यह कार्य मनुष्य के जन्म से ही प्रारंभ हो जाता है।

माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक और उच्च शिक्षा के मध्य की कड़ी होती है। माध्यमिक शिक्षा मुख्य रूप से किशोर बच्चों की शिक्षा है, उनके भविष्य निर्माण की शिक्षा है, तथा अपने आप में एक पूर्ण इकाई होती है। इसलिये सर्वमान्य रूप से मानी गयी माध्यमिक शिक्षा विद्यार्थी के नाजुक भविष्य के निर्धारण का एक महत्वपूर्ण अंग है। माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् विद्यार्थी व्यावसायिक जीवन में प्रवेश करता है तथा उसके जीवन में व्यक्तित्व निर्माण की विशेष प्रक्रिया होती है। माध्यमिक स्तर तक विद्यार्थी की किशोरावस्था विद्यमान रहती हैं। इस अवस्था में विकास की तीव्र प्रक्रिया के कारण जहाँ एक ओर छात्र-छात्राएँ आन्दोलित रहते हैं वही दूसरी ओर उनकी विभिन्न क्षमताओं का उच्चतम स्तर तक विकास होने की समस्या रहती है। इसलिये इस स्तर पर विभिन्न चरों के प्रभाव का अध्ययन अत्यन्त प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण हो जाता है।

शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि विद्यालय व शिक्षा के विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है। कार्य-संतुष्टि वह स्थिति है जो कि शिक्षक को अपने कार्य के सन्दर्भ में प्राप्त होने वाले आनन्द के मूल्यों का अनुमान देती है। कार्य-संतुष्टि व्यक्ति के कार्य के समान विभिन्न पहलुओं जैसे- वेतन, पदोन्नति के अवसर, अधिकारियों एवं सहयोगियों के प्रति दृष्टिकोण आदि के कारण उत्पन्न मानसिक संवेगात्मक स्थिति है। किसी व्यवसाय में संतुष्टि एक अति आवश्यक तत्व है, क्योंकि एक व्यक्ति अपने व्यवसाय से जितना अधिक संतुष्ट होगा उतने ही प्रभावशाली रूप से अपने कार्य को पूरा करेगा। यही बात शिक्षक के व्यवसाय के सम्बन्ध में भी सत्य है कि यदि एक शिक्षक का अपने शिक्षण व्यवसाय में संतुष्टि की भावना दृष्टिगत होगी तब वह अपने कर्तव्यों का निर्वाह सही प्रकार से कर पायेगा।

जहाँ तक अध्यापकों की कार्य सन्तुष्टि के अर्थ का प्रश्न है, यह लिखना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि अध्यापकों की व्यवसायिक सन्तुष्टि पर पूरे विश्व का भविष्य निर्भर है। अध्यापक हो या अध्यापिका कार्य से मिलने वाले सन्तोष पर ही भावी पीढ़ी के सुखद भविष्य की कामना की जा सकती है। यदि शिक्षक अपने कार्य में असन्तुष्ट होगा तो अपने दायित्वों को वह भली प्रकार नहीं निभा पायेगा। इसका प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ेगा और इसके उपरान्त समाज का पतन अवश्यम्भावी है।

अतः शिक्षक युग निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि शिक्षक अपने कार्य से सन्तुष्ट होंगे तो निश्चित ही ऐसे समाज का निर्माण होगा जो स्वस्थ मस्तिष्क और बौद्धिक प्रतिभा का धनी होगा।

वास्तव में अध्यापक ही किसी राष्ट्र के भाग्य के निर्णायक होते हैं। वे राष्ट्र के वास्तविक शिल्पकार होते हैं। किसी राष्ट्र की महानता उसकी ऊँची-ऊँची इमारतों, विशाल परियोजनाओं तथा विशाल सेनाओं पर निर्भर नहीं करती है बल्कि किसी राष्ट्र की महानता का स्वतः परीक्षण उसके नागरिकों की गुणवत्ता से होती है। यदि एक राष्ट्र अपने नवयुवकों को चरित्रवान बनाकर और उनके अन्दर दोषरहित राष्ट्रप्रेम उत्पन्न कर सके तो वह सभी

\* शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग

क्षेत्रों में तेजी से प्रगति करने में सफल हो जायगा। शिक्षण व्यवसाय को नवयुवकों के संरक्षण में सौंप दिया जाय और यदि ऐसा करना है तो उसके लिए शिक्षकों का यह परम व पवित्र कर्तव्य है कि छात्रों को अच्छा नागरिक बनाने के लिए उन्हें अच्छी प्रकार की शिक्षा प्रदान करें। इस प्रकार अध्यापक अपनी देखभाल में सौंपे गये बालकों पर ध्यान देकर, भारत के भविष्य का निर्माण करने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

शिक्षा किसी देश की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक उन्नयन तथा सांस्कृतिक स्थानान्तरण में परिवर्तन लाने का एक अतिप्रभावशाली उपकरण है। हमारे देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से शिक्षा का विकास एवं विस्तार अद्भुत रहा है और यह देश के भविष्य के लिए एक अच्छा संकेत है। शिक्षा का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब शिक्षण व्यवसाय में जाने वाले लोग सुयोग्य, प्रतियोगी, प्रशिक्षित तथा शिक्षण व्यवसाय में अत्यधिक रुचि लेने वाले हों। दुर्भाग्यवश इस तेजी से बदलते विश्व में इस तरह के शिक्षकों का मिलना, बहुत कठिन है। नये वैज्ञानिक युग की चुनौतियों तथा सामाजिक आवश्यकताओं के लिए अप-टू-डेट शिक्षकों की आवश्यकता होती है।

वर्तमान पाठ्य-पुस्तकों का जो निर्माण हो रहा है उसमें विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक एवं मूल्यों से सम्बन्धित तथा वैज्ञानिक एवं संचार प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित है। अतः प्रशिक्षित शिक्षकों की शिक्षण कौशल अधिक कारगर साबित होती है। जहाँ अप्रशिक्षित शिक्षक इन पाठ्य-पुस्तकों को समझने में नकामयाब है वहीं उनके समायोजन एवं कार्य-संतुष्टि में अभाव देखने को मिल रहा है।

प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों में कार्य-संतुष्टि का महत्वपूर्ण योगदान होता है, जहाँ शिक्षक संतुष्टि रहेगा उसकी शिक्षणशीलता अधिक प्रभावित होगी। सरकारी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों में असंतुष्टि का प्रभाव देखने को मिलता है जहाँ उन्हें अच्छा वेतन, सारी सुख-सुविधाएँ मिल रही हैं वहीं विद्यालय का वातावरण, प्रधानाचार्य का मानवीय व्यवहार न होना, पढ़ाने के लिए विद्यालय में सारी सुविधाएँ उपलब्ध न होना, विद्यार्थियों का सहयोग न मिलना, अन्य शिक्षकों से अच्छा सम्बन्ध न होना आदि ऐसे कई कारक हैं जिनका सरकारी एवं प्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य-संतुष्टि को प्रभावित करता है।

वहीं अप्रशिक्षित एवं वित्तीय एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में पढ़ाने वाले शिक्षकों का तो वेतन कम होता ही है, उन्हें घर से अधिक दूर जाकर पढ़ाना, देर समय तक विद्यालय में रहकर कार्यों को समाप्त करना, अन्य शिक्षकों का रवैया अच्छा न होना, पाठ्यक्रम को अपने मन-माफिक न पढ़ाने को मिलना, विद्यार्थियों का सहयोग न प्राप्त होना आदि ऐसे कारक हैं जिनका अप्रशिक्षित शिक्षकों के समायोजन के साथ-साथ कार्य-संतुष्टि को प्रभावित करता है।

वर्तमान समय शिक्षकों का शिक्षा के प्रति समर्पण भाव का कम होना स्वाभाविक है। अतः शोधकर्त्री ने अपने लघु शोध के माध्यम से यह जानने का प्रयास करेगी कि क्या माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य-संतुष्टि में अन्तर होता है, और यह अन्तर किस स्तर तक होता है?

**शोध का उद्देश्य :** प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है—

1. माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित महिला एवं पुरुष शिक्षकों के कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के अप्रशिक्षित महिला एवं पुरुष शिक्षकों के कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

**शोध की परिकल्पना :** प्रस्तुत शोध में उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जायेगा—

1. माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य-संतुष्टि में अन्तर है।
2. माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित महिला एवं पुरुष शिक्षकों के कार्य-संतुष्टि में अन्तर है।
3. माध्यमिक स्तर के अप्रशिक्षित महिला एवं पुरुष शिक्षकों के कार्य-संतुष्टि में अन्तर है।

**शोध विधि :** शोध एक ऐसा व्यवस्थित तथा नियंत्रित अध्ययन है जिसके अन्तर्गत सम्बन्धित चरों व घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का अन्वेषण तथा विश्लेषण उपयुक्त सांख्यिकी विधि द्वारा किया जाता है। सिद्धान्त की रचना खोज व पुष्टि की जाती है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्त्री ने सर्वेक्षण अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है, क्योंकि अध्ययन में माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य-संतुष्टि का पता लगाना है।

शोधकर्त्री द्वारा इलाहाबाद जिले के शहरी क्षेत्र में स्थापित माध्यमिक स्तर के विद्यालयों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा कर उक्त विद्यालयों में अध्यापनरत् 100 शिक्षक-शिक्षिकाओं का उद्देश्यपरक विधि से चयन न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया गया है जिसमें 50 प्रशिक्षित एवं 50 अप्रशिक्षित शिक्षकों को लिया गया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि को मापने के लिए डॉ० मीरा दीक्षित द्वारा निर्मित कार्य सन्तुष्टि मापनी (**Job Satisfaction Scale**) का प्रयोग किया गया है।

#### परिकल्पनाओं का परीक्षण :

$H_1$  : माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है।

$H_{01}$  : माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

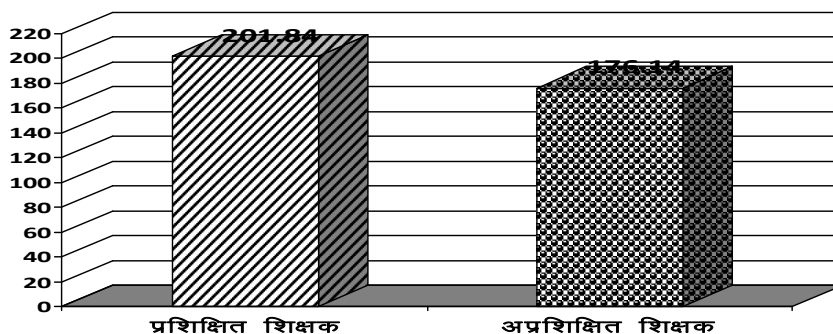
#### तालिका : 1

माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि के मध्यमान, प्रमाणिक विचलन व t-मान की गणना –

क्र. सं.	समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	मध्यमानों का अन्तर ( $M_1 - M_2$ )	मानक त्रुटि ( $\sigma_D$ )	t-मान	सार्थकता स्तर
1.	प्रशिक्षित शिक्षक	50	201.84	19.31	25.70	4.02	6.39	.05 एवं .01 स्तर पर सार्थक
2.	अप्रशिक्षित शिक्षक	50	176.14	20.82				

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि के अन्तरों का t-मान 6.39 है जो कि मुक्तांश 98 तथा सार्थकता स्तर 0.05 एवं 0.01 पर t- के तालिका मान 1.98 एवं 2.63 से अधिक है। अतः मध्यमानों के बीच का अन्तर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना ( $H_{01}$ ) अस्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना ( $H_1$ ) स्वीकृत की जाती है। माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है अर्थात् प्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि अप्रशिक्षित शिक्षकों की अपेक्षा उच्च पाया गया।

प्रशिक्षित शिक्षकों में कार्य सन्तुष्टि अधिक पाया जाने का कारण उनके द्वारा परीक्षण से उनमें शिक्षण दक्षता एवं अभिमुखता में वृद्धि होना एवं नये पाठ्यक्रम की जानकारी होना भी उनके सन्तुष्टि में वृद्धि का कारण है। एम० दीक्षित (1986) ने अपने अध्ययन में पाया कि माध्यमिक विद्यालयों के अधिक सेवाकाल वाले शिक्षक, कम सेवाकाल वाले शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थे।



आरेख चित्र-1

माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि के मध्यमान का आरेख चित्र  $H_2$  : माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है।

$H_{02}$ : माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

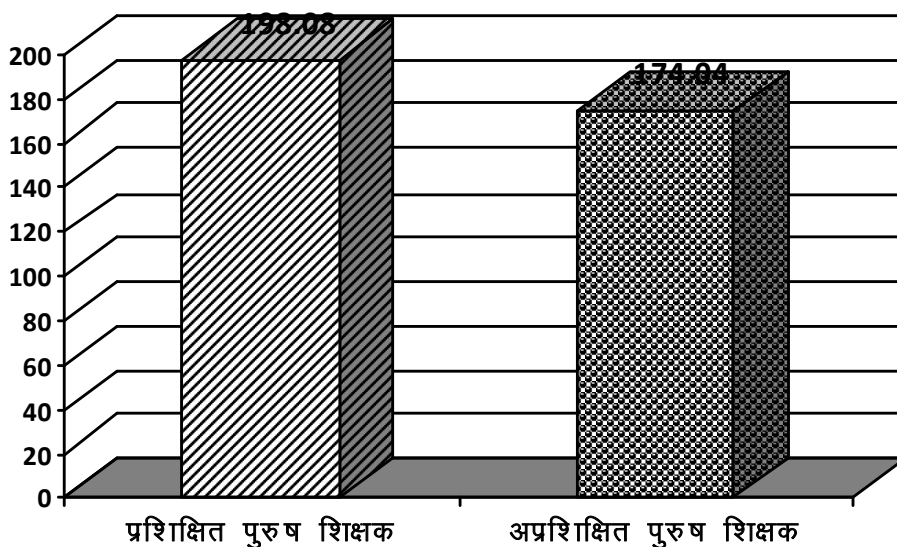
### तालिका 2

माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि के मध्यमान, प्रमाणिक विचलन व t-मान की गणना –

क्र. सं.	समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	मध्यमानों का अन्तर ( $M_1 - M_2$ )	मानक त्रुटि ( $\sigma_D$ )	t-मान	सार्थकता स्तर
1.	प्रशिक्षित पुरुष शिक्षक	25	198.08	22.71	24.04	6.23	3.86	.05 एवं .01 स्तर पर सार्थक
2.	अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षक	25	174.04	20.37				

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि के अन्तरों का t-मान 3.86 है जो कि मुक्तांश 98 तथा सार्थकता स्तर 0.05 एवं 0.01 पर t- के तालिका मान 1.98 एवं 2.63 से अधिक है। अतः मध्यमानों के बीच का अन्तर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना ( $H_{02}$ ) अस्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना ( $H_2$ ) स्वीकृत की जाती है। माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है अर्थात् प्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों की तुलना में अधिक पाया गया।

प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में अन्तर पाये जाने का कारण इसका प्रमुख कारण शिक्षिकाओं का मानसिक तनाव, प्रशासनिक समस्या, वेतन, सामाजिक स्तर, संगठनात्मक वातावरण परिवार से दूरी इत्यादि हो सकती है। **सक्सेना, जे. एवं सिंह, एस. (2008)** ने अपने अध्ययन में पाया कि प्रभावी शिक्षण करने वाले शिक्षक अपने व्यवसाय से अधिक संतुष्ट पाये गये।



आरेख चित्र-2

माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि के मध्यमान का आरेख चित्र

$H_3$ : माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है।

$H_{03}$ : माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 3

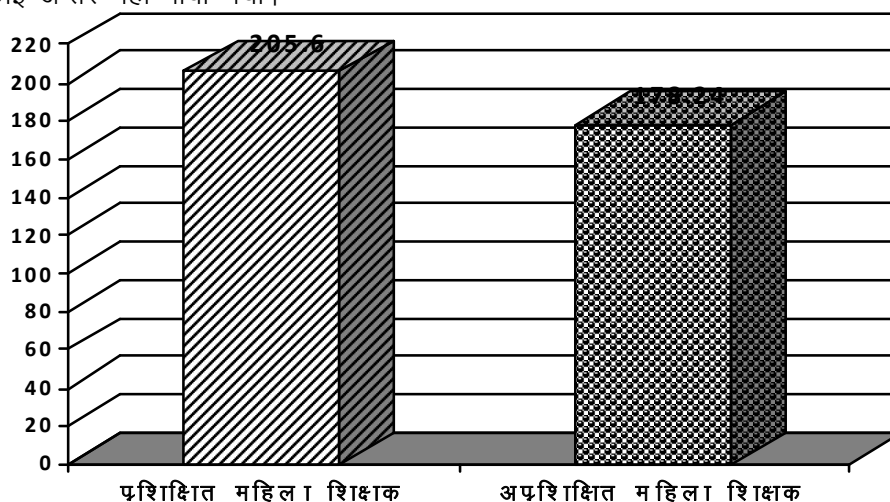
माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित महिला शिक्षकों की कार्य- सन्तुष्टि के मध्यमान, प्रमाणिक विचलन व t-मान की गणना –

क्र. सं.	समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	मध्यमानों का अन्तर ( $M_1 - M_2$ )	मानक त्रुटि ( $\sigma_D$ )	t-मान	सार्थकता स्तर
1.	प्रशिक्षित महिला शिक्षक	25	205.60	14.18	27.36	5.19	5.26	.05 एवं .01 स्तर पर सार्थक
2.	अप्रशिक्षित महिला शिक्षक	25	178.24	21.16				

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि के अन्तरों का t-मान 5.26 है जो कि मुक्तांश 98 तथा सार्थकता स्तर 0.05 एवं 0.01 पर t- के तालिका मान 1.98 एवं 2.63 से अधिक है। अतः मध्यमानों के बीच का अन्तर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना ( $H_{03}$ ) अस्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना ( $H_3$ ) स्वीकृत की जाती है। माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है अर्थात् प्रशिक्षित महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि अप्रशिक्षित महिला शिक्षकों की तुलना में अधिक पाया गया।

इसका प्रमुख कारण महिला शिक्षकों का अपने व्यवसाय के प्रति वचनबद्धता, प्रशासनिक संगठन, प्रशासनिक समस्या, सामाजिक स्तर, संगठनात्मक वातावरण, अध्यापकों सहयोगात्मक व्यवहार इत्यादि हो सकते हैं।

कुमारी, ललिखा, वाई. (2010) ने अपने अध्ययन में पाया कि लिंग, क्षेत्र का माध्यमिक स्तर के हेड मास्टर के कार्य सन्तुष्टि में अन्तर पाया गया जबकि आयु, शैक्षिक योग्यता, व्यवस्था, अनुभव एवं माध्यम का उनके कार्य सन्तुष्टि में कोई अन्तर नहीं पाया गया।



आरेख चित्र-3

माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि के मध्यमान का आरेख चित्र

**निष्कर्ष :** प्रस्तुत शोध “माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन” से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये—

1. माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है अर्थात् प्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि अप्रशिक्षित शिक्षकों की अपेक्षा उच्च पाया गया।
2. माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है अर्थात् प्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि अप्रशिक्षित पुरुष शिक्षकों की तुलना में अधिक पाया गया।
3. माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर है अर्थात् प्रशिक्षित महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि अप्रशिक्षित महिला शिक्षकों की तुलना में अधिक पाया गया।

**शैक्षिक निहितार्थ :** प्रस्तुत शोध में माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया। कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर पाया जाना इस बात को इंगित करता है कि यदि शिक्षक अपने कार्य के प्रति संतुष्टि नहीं है तो वह शिक्षण कार्य में पूरी लगन एवं निष्ठा के साथ नहीं कर सकता है। अतः शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि को उच्च बनाने के लिए कुछ निहितार्थों का होना जरूरी है। जो निम्नांकित है—

1. शिक्षकों को शिक्षण कार्य के दौरान तनावमुक्त होकर अध्यापन कार्य करना चाहिए जिससे उनका शिक्षण कार्य प्रभावशाली हो सके।
2. शिक्षकों को अपने शिक्षण कार्य करते समय बालकों को भी मानसिक तनाव से मुक्त रखें जिससे बालकों का अधिगम और सुदृढ़ हो सके।
3. शिक्षकों को अपने शिक्षण कार्य में भ्रमण, योग, नाटक, तकनीकी आदि का प्रयोग करें जिससे शिक्षण कार्य प्रभावपूर्ण हो सके।
4. शिक्षकों को अपने सहकर्मियों के साथ सहयोगात्मक एवं सहानुभूति सम्बन्ध रखना चाहिए जिससे उचित एवं प्रभावपूर्ण शैक्षिक वातावरण का निर्माण हो सके।
5. शिक्षकों को कार्य सुरक्षा, लचीली सेवा शर्तें तथा कार्य में स्वायत्तता प्रदान की जाय। जिससे वे अपने कार्य के प्रति संतुष्टि को अनुभव कर सकें।
6. शिक्षकों का मानसिक तथा आर्थिक शोषण रोकने के लिए सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिए जिससे शिक्षक अपने कार्य के प्रति सन्तोष प्राप्त कर सकें और अपना शिक्षण प्रभावपूर्ण ढंग से करें।
7. प्रत्येक कक्षा में छात्र व शिक्षक का निश्चित अनुपात होना चाहिए जिससे शिक्षक पर अधिक कार्य का बोझ न पड़े और वह अपने कार्य को सन्तोषजनक एवं प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकें।
8. महिला शिक्षकों में अपने कार्य के प्रति सन्तोष का न होना उनके पारिवारिक कारण के साथ-साथ प्रबन्धन तथा प्रशासनिक कारण है। अतः सरकार एवं निजी प्रबन्ध को चाहिए कि महिला शिक्षकों की इन समस्याओं का समाधान करें जिससे वे भी उचित स्थान एवं नेतृत्व का सम्पदान करने में समर्थ हो सकें।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **अस्थाना, विपिन (2008).** मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन मूल्यांकन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
2. **एम0 दीक्षित (1986).** प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों तथा माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के मध्य कृत्य-संतोष का तुलनात्मक अध्ययन, पी-एच0डी0 एजुकेशन, लखनऊ विश्वविद्यालय, एम0बी0 बुच, फोर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, पृ. 932
3. **गुप्ता, ए0पी0 एवं गुप्ता, अलका (2004).** आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याएँ. इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
4. **नायक (1990),** अस्थायी तथा शिक्षण सहायकों की व्यवसायिक सन्तुष्टि का उनके व्यवसाय सम्बन्धी कारकों के सम्बन्धों में अध्ययन, लघुशोध प्रबन्ध, कानपुर : छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय।



5. नदीम, एन.ए., पूजू, अहमद जावेद एवं जहूर, नादिया (2013). ए स्टडी ऑफ पर्सनालिटी एडजेस्टमेंट एण्ड जॉब सैटिस्फैक्शन ऑफ रूरल एण्ड अर्बन सेकेंडरी स्कूल टीचर्स, स्टैंडर्ड जर्नल ऑफ एजुकेशन ऐसे, वाल्यूम-1(1)।
6. पाण्डेय, के0पी0 (2008). शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सांख्यिकी, मेरठ: अमिताश प्रकाशक।
7. मंगल, एस0के0 (2009). शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, पी0एच0आई0लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड प्रकाशन।
8. राय, पारसनाथ (2007). अनुसंधान परिचय, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल।
9. सक्सेना, जे. (1995). ए स्टडी ऑफ टीचर इफेक्टिवनेस इन रिलेशन टु एडजस्टमेंट जॉब सैटिस्फैक्शन एण्ड एटिट्यूड टुवर्ड टीचिंग प्रोफेशन, इण्डियन एजुकेशन ऐसोसिएट्स (2002); वाल्यूम. II, पब्लिशड बाई एन.सी.ई.आर.टी., पृ. 85.
10. सिंह, अरुण कुमार (2002). मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, संस्करण-पंचम।

\* \* \* \* \*

## बाल अपचारियों ( अपराधियों ) की शिक्षा : एक अध्ययन

डॉ. अंजू सिंह\*

**सारांश :** आधुनिक समाज आज जिन महत्वपूर्ण समस्याओं से घिरा हुआ है, बाल अपराध उनमें से एक प्रमुख समस्या है। भारत में औद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण की असंतुलित वृद्धि के साथ पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया जैसे-जैसे तीव्र होती गई, बाल अपराधों की दर तथा प्रकृति में अभूतपूर्व वृद्धि होने लगी। जी.सी. दत्त, का कथन है कि “भारत में आज बाल-अपराध की समस्या गंभीर रूप धारण कर चुकी है। देश के अनेक भागों में जो कुछ पहले तक पूर्णतया ग्रामीण क्षेत्र थे, औद्योगिकीकरण व विकास के कारण यह समस्या शीघ्र ही पश्चिमी देशों के समान इन क्षेत्रों में गंभीर रूप धारण कर सकती है। वास्तव में बाल अपराध की समस्या को बच्चों के जीवन से संबंधित एक सामान्य समस्या समझकर छोड़ देना उचित नहीं है। बाल अपराध पर समुचित नियंत्रण न होने से यही बच्चे और किशोर भविष्य में गंभीर अपराधी बनकर समाज को विघटित करने का स्रोत बन जाते हैं। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि बाल अपराध की प्रकृति तथा कारणों का विश्लेषण कर इस समस्या के समाधान के व्यावहारिक प्रयत्न किये जावें। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से बाल-अपराधियों का सुधार कार्य पूर्णतया राज्यों को सौंप दिया गया। अब प्रत्येक राज्य बाल-अपराधियों की आयु के निर्धारण तथा उन्हें दी जाने वाली सुविधाओं से संबंधित कानून बनाने के क्षेत्र में स्वतंत्र है। यद्यपि बाल-अपराधी की आयु विभिन्न राज्यों में कुछ विभिन्नता लिए हुए है।

**प्रस्तावना :-** बाल अपराध की परिस्थितियाँ चाहे आर्थिक हो या सामाजिक, सांस्कृतिक, अब सभी व्यक्ति यह स्वीकार करने लगे हैं कि समाज की परिस्थितियाँ ही किसी बच्चे अथवा किशोर को अपराधी बनाती है। इस प्रकार यह दायित्व भी समाज का ही है कि बाल अपराध के दोषी बच्चे को अपराधी पर्यावरण से बचाकर उसका सुधार किया जाये। इस सिद्धान्त के आधार पर भारत में बाल अपराधियों का सुधार कार्य सर्वप्रथम सन् 1850 से आरंभ हुआ जब सरकार ने सबसे पहले एक शिक्षार्थी अधिनियम बनाकर 10 से 18 वर्ष तक की आयु के निरुद्देश्य घूमने वाले बच्चों के लिए किसी उद्योग धन्धे का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की। ऐसे अवारा बच्चों का कोई भी न्यायाधीश या धर्मार्थ संगठन का प्रबंधक अपने संरक्षण में ले सकता था। सन् 1857 में भारतीय दण्ड संहिता में यह व्यवस्था कर दी गई कि न्यायालय 15 वर्ष से कम के किसी बाल अपराधी को जेल के स्थान पर किसी सुधारगृह में रखने का भी आदेश दे सकता है। इसके फलस्वरूप सन् 1876 में एक विशेष सुधारगृह अधिनियम पारित करके इसे संपूर्ण देश में लागू कर दिया गया। सन् 1897 में इस अधिनियम में संशोधन करके यह व्यवस्था की गई कि 15 वर्ष तक की आयु तक के बाल अपराधियों को जेल न भेजकर किसी सुधार गृह में ही रखा जायेगा। सन् 1920 के पश्चात् मद्रास, बम्बई और बंगाल में बाल न्यायालयों की भी स्थापना की गई। जिससे बाल अपराधियों को न्यायालय की जटिल प्रक्रिया से बचाया जा सके। धीरे-धीरे भारत के अन्य सभी राज्यों में बाल-अपराधियों के सुधार के लिए व्यापक प्रयत्न किये जाने लगे।

**बाल अपराध का अर्थ :-** बदलते सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक वातावरणीय परिवेश में हमारी शिक्षा प्रणाली में भी काफी बदलाव आया है। यह बदलाव बालकों के व्यवहार को भी प्रभावित करता है। इसी आधार पर हमारी शिक्षा प्रणाली में भी यथोचित सुधार आना आवश्यक है। शिक्षा प्रणाली तथा अन्य सुविधाओं में यथोचित सुधार के बिना हम बाल अपराध जैसी समस्या का उचित निदान नहीं कर सकते हैं। आधुनिक प्रगतिशील देशों में किशोरावस्था या बाल्यावस्था में अपराध को दण्ड का पात्र नहीं समझा जाता है, बल्कि उसमें सुधार के उपाय किये जाते हैं।

\* बी.एड. विभाग, ए.पी.एस. विश्वविद्यालय, रीवा ( म.प्र. )

विकसित देशों में 14 से 20 वर्ष आयु वर्ग के बालकों द्वारा किए गए अपराध को बाल अपराध की श्रेणी में रखा जाता है, जबकि भारत सरकार के गजट में 7 से 12 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को बालक की श्रेणी में रखा जाता है। वही 12 से 18 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को किशोर की श्रेणी में शामिल किया जाता है। भारतीय दण्ड संहिता, 1861 के अंतर्गत 7 से 18 वर्ष तक के बालकों द्वारा किए गए अपराधों को बाल अपराध की श्रेणी में रखा जाता है।

**बाल अपराध की परिभाषाएँ :-**डॉ. सेथना (M.J. Sethana) का कथन है कि 'बाल-अपराध के अंतर्गत किसी स्थान विशेष के कानून के अनुसार एक निश्चित आयु से कम के बच्चे द्वारा किये गये समाज-विरोधी कार्यों को सम्मिलित किया जाता है।'

न्यूमेयर (Neumeyer) के अनुसार, बाल अपराधी एक निश्चित आयु से कम का वह व्यक्ति है जिसने समाज विरोधी कार्य किया है तथा जिसका दुर्व्यवहार कानून को तोड़ने वाला है।'

इन सभी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अपराध तथा बाल अपराध का अंतर मुख्य रूप से अपराधी की आयु तथा अपराध के प्रति राज्य के दृष्टिकोण की भिन्नता से संबंधित है। एक निश्चित आयु से कम का बच्चा जब कानून के द्वारा निषिद्ध कोई व्यवहार प्रदर्शित करता है अथवा सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा उत्पन्न करता है तब ऐसे व्यवहार को ही बाल अपराध कहते हैं। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, हम कुछ प्रमुख विशेषताओं के आधार पर बाल अपराध की धारणा को स्पष्ट कर सकते हैं।

सर्वप्रथम भारत में सात वर्ष की आयु से कम के बच्चे द्वारा किये जाने वाले समाज विरोधी कार्य को किसी भी प्रकार की अपराध श्रेणी में नहीं रखा जाता। इस आयु तक के बच्चे को नादान तथा अपराधी इरादे के अयोग्य समझा जाता है।

**बाल अपचारी के स्वरूप :-** किशोर अपराध का निर्धनता से अत्यधिक घनिष्ठ संबंध होता है, क्योंकि जब निर्धन परिवार के बालक धनवान परिवार के बालकों को तरह-तरह के सामानों का प्रयोग करते हुए देखते हैं, तो उनके मन में भी ललक उत्पन्न होती है, फलस्वरूप ये बालक अपराधिक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने लगते हैं।

इसलिए बाल या किशोर अपराध के लिए कठोर दण्ड के प्रावधानों की जगह उनमें सुधार की गुंजाइश को मान्यता दी जाती है। अनेक मनोवैज्ञानिक द्वारा अपराधी बालकों का उपचार करने तथा उन्हें समुचित शिक्षा प्रदान करने के कई उपायों का वर्णन निम्नानुसार है -

ये वह प्रविधियाँ हैं, जिनका समुचित अनुपालन करने से किसी बालक को अपराधी बनने से रोक लिया जाता है। इस प्रविधि का मूलमन्त्र यह है कि "निवारण उपचार से अच्छा होता है।" अर्थात् किसी बालक को अपराधी बनाकर पुनः उसमें सुधार की गुंजाइश रखना मूर्खता है। इससे कहीं अच्छा यह है कि उसे अपराधी बनने से ही रोका जाए। इसलिए माता-पिता को बालकों के साथ सीमित अनुशासनात्मक तथा स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

**बाल अपचारी के उपचार एवं शिक्षा के उपाय :-**बाल अपचारियों के उपचार व शिक्षा के निम्नलिखित महत्वपूर्ण उपाय हैं।

**सरकारी सहायता :-**बाल अपराध रोकने के लिए सरकार तथा सामाजिक संगठनों को आगे आना चाहिए। निम्नांकित तरीकों से अपराधीकरण को कम किया जा सकता है।

- गरीब तथा मेधावी छात्रों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करना।
- शासकीय पाठशालाओं की व्यवस्था।
- लावारिस तथा अवैध बालकों की शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबंध होना चाहिए।
- अश्लील चित्रों को बालकों के देखने पर रोक।

**माता-पिता तथा परिवार के सदस्यों द्वारा तिरस्कार :-**बैण्डूरा तथा वाल्टर्स के अनुसार, माता-पिता दोनों के ही द्वारा बालकों को तिरस्कार तथा घृणा के कारण बालकों में अपराध करने की प्रवृत्ति काफी तीव्र हो जाती है। वे दोषपूर्ण कार्य करने लगते हैं तथा आपराधिक प्रवृत्ति बढ़ जाती है।

**घरेलू वातावरण :-**किसी बालक के अपराधी बनने में उसके घरेलू वातावरण का काफी ज्यादा योगदान होता है। अगर घरेलू वातावरण उचित न हो तो बालक आंतरिक रूप से बिखर जाते हैं। लगातार माता-पिता से अनबन, अलगाव, सम्बंध विच्छेद, मृत्यु, कैद इत्यादि के कारण यदि अस्थिर पारिवारिक वातावरणीय परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहें, तो बच्चों को बुरी लत लग जाती है। अन्ततः ये अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं।

**पाठशाला** :—बाल अपराध का प्रमुख कारण स्कूल का दोषपूर्ण वातावरण भी हो सकता है। बुरी संगति, शिक्षकों का अनुचित व्यवहार, अनुशासन की कमी आदि प्रमुख कारकों में शामिल है। यदि छात्रों को अवकाश की अवधि में खेल या मनोरंजन के पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं होते हैं, तो खाली समय में प्रायः बालक असामाजिक योजनाएँ बनाना प्रारंभ कर देते हैं। साथ ही यदि स्कूल में अनुशासन अधिक सख्त या कमजोर हो तो छात्रों में आपराधिक प्रवृत्तियों की ओर बढ़ने की आदत देखी जाती है। अक्सर ऐसे छात्र स्कूल नहीं आते या स्कूल से भाग जाते हैं।

**आवांछित संबंध** :—सामान्यतः अनजाने में बालकों की दोस्ती जब आपराधिक प्रवृत्ति वाले बच्चों या आपराधिक पृष्ठभूमि वाले बालकों के साथ हो जाती है, तो वे स्वयं भी अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। तरह-तरह के अपराध करने लगते हैं। एक अध्ययन में पाया गया है कि 66 प्रतिशत बालक अपराध कार्य अन्य बालकों की संगति में आकर करते हैं।

**समुचित घरेलू अनुशासन** :—यदि घर का वातावरण सही हो तो भी बालकों को अपराधी बनने से बचाया जा सकता है। माता-पिता को अपने बालकों में किसी बालक को अधिक या कम स्नेह नहीं देना चाहिए। सभी बच्चों को समान सुविधाएँ मिलनी चाहिए तथा उनके साथ समान तरीके से व्यवहार किया जाना चाहिए।

**इच्छाओं की आपूर्ति** :—यदि बालकों की उचित इच्छाओं या आवश्यकताओं की आपूर्ति नहीं होती है तो वे कक्षा या घर में छोटी-मोटी चोरियाँ करते हैं। यही शुरुआत, बाद में बड़े अपराधों की ओर प्रवृत्त हो जाती है। अतः माता-पिता को अपने बालकों द्वारा अभिव्यक्त उचित इच्छाओं की आपूर्ति कर देनी चाहिए, जिससे उनमें बाहरी वातावरण के प्रति हीनता की स्थिति उत्पन्न न हो। अन्ततः वे गलत प्रवृत्तियों की ओर आकृष्ट न हो जाएँ। यदि बच्चों की किसी माँग को माता-पिता पूर्ण नहीं कर पाते हैं, तो उसकी वस्तुस्थिति बालकों के सामने माता-पिता द्वारा रखी जाना चाहिए।

**उचित शिक्षा** :—बालकों को अपराधी होने से रोकने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम यह है कि उन्हें उचित शिक्षा दी जानी चाहिए, क्योंकि इसके अभाव में बालकों में न तो नैतिकता का स्तर कायम रह सकता है और न ही उनके व्यक्तित्व तथा चरित्र निर्माण का कार्य पूर्ण हो पाता है। इन सबके अभाव में बालक तरह-तरह के अपराध करना प्रारंभ कर देता है।

**स्कूल का वातावरण** :—स्कूल का वातावरण तथा संतुलित अनुशासन भी बालकों को अपराधी बनने से रोकता है। स्कूल का वातावरण स्नेहपूर्ण, शिक्षकों का दोस्ताना तथा अच्छा सौहार्दपूर्ण व्यवहार, शैक्षिक अभिरुचि तथा मनोरंजन साधनों की उपस्थिति आदि बालकों के मन में पाठशाला तथा पढ़ाई के प्रति अभिरुचि को जगाता है। बालकों को अनावश्यक कार्यों में लिप्त होने का मौका कम ही मिलता है। अतः शिक्षक तथा छात्र एक-दूसरे को आत्मविश्वास में लें। इससे छात्रों में शैक्षिक अभिरुचि का संचार होता है।

**बाल अपराध निरोध प्रविधियाँ** :—यदि बालक अपराधी हो जाए तो उसके अपराध का सुधार रोगनाशक प्रविधियों के माध्यम से किया जाता है। इनमें निम्नांकित तत्व प्रमुख हैं।

**पुनर्वास विधि** :—इसके अंतर्गत अपराधी बालकों को मानवीय वातावरण में रखा जाता है, जिससे उनमें स्वतः ही अपराध न करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। जब अपराधी बालकों को पुनर्वास घरों में रखा जाता है, तब उन्हें उचित प्यार तथा वातावरण मिले तो वह अच्छे कार्यों की ओर प्रवृत्त हो सकते हैं।

**मनोगतिक विधि** :—परामर्श, मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सा, विधि द्वारा बाल अपराधियों में यथोचित सूझ-बूझ तथा समझ उत्पन्न करके उनके आपराधिक मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने की पुरजोर कोशिश करनी चाहिए। एक मनोचिकित्सक को सबसे पहले बाल अपराधी को विश्वास में लेना चाहिए। उसके साथ दोस्ताना व्यवहार करते हुए उसकी समस्या का यथोचित समाधान किया जाना चाहिए।

**बाल अपराध न्यायालय** :—बाल अपराध सुधार की यह प्रथा पुरानी है। यह व्यवस्था विश्व के करीब सभी देशों में विद्यमान है। इस प्रथा के तहत अपराधी बालकों को बाल अपराध न्यायालय में पेश किया जाता है। उनसे औपचारिक ढंग से पूछताछ की जाती है और वे कोशिश करते हैं कि उनके अपराध के कारणों को समझकर उन्हें अपराध न करने में मदद करें। सामान्यतः बालकों को समझाकर या चेतावनी देकर छोड़ा जाता है। यह व्यवस्था अपराध की गंभीरता को देखते हुए की गई। सुनवाई से पूर्व जज बाल अपराधियों के पूर्व रिकार्ड्स देखते हैं। अपराध की गंभीरता को देखते हुए बालक को सुधार गृह, परख अवधि, कैम्प इत्यादि के लिए भेजा जाता है।

**बाल अपराध निरोध के सुझाव :-**भारत में बाल अपराधों की संख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि को ध्यान में रखते हुए आज बाल-अपराधियों का सुधार करने के साथ ही ऐसे उपाय करना भी आवश्यक है जिनकी सहायता से बच्चों को अपराधी बनने से रोका जा सके। इसके लिए बाल अपराध को प्रोत्साहन देने वाली परिस्थितियों को कम से कम करना तथा बच्चों की समस्याओं का प्रभावपूर्ण ढंग से समाधान किये जाते हैं। जैसे की परिवारों को संगठित किया जाये, स्कूलों के वातावरण को अच्छा बनाया जाये तथा सामाजिक नियंत्रण में वृद्धि की जाये। इन्हें निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है-

सर्वप्रथम, यह आवश्यक है कि मनोरंजन के साधनों के बारे में अत्यधिक सावधानी रखी जाये। अश्लील साहित्य से अपराध की ओर पवृत्त होते हैं। यह आवश्यक है कि अपराधी तथा कामोत्तेजक कथानक से भरपूर चलचित्रों पर सेंसर के नियम अधिक कड़े हों तथा किसी भी स्थिति में निश्चित आयु के बच्चों को ऐसे चलचित्रों को देखने की अनुमति प्रदान न की जाये।

भारत में बाल अपराधियों के प्रति एक सुधारवादी दृष्टिकोण को लेकर सरकार द्वारा अनेक योजनाओं के रूप में व्यापक प्रयत्न किये गये हैं, लेकिन कानूनी दोषों तथा नीतियों का क्रियान्वित करने की कठिनाईयों के कारण बाल-अपराधियों के सुधार की दिशा में हमें मिलने वाली सफलता बहुत कम है।

**उपसंहार :-**भारत में प्रति वर्ष 70 से 80 हजार तक बाल-अपराधियों की न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। यह संख्या बाल अपराधियों की वास्तविक संख्या से बहुत कम है। इसका सर्वप्रथम कारण यह है कि साधारणतया किसी बाल अपराधी को तभी पकड़ा जाता है, जब या तो उसका अपराध बहुत गंभीर प्रकृति का हो अथवा वह बार-बार अपराध करने का दोषी हो। भारत में बाल अपराध के आँकड़ों तथा शोध ब्यूरो ने यह भी स्पष्ट किया है कि हमारे देश में बाल-अपराध की समस्या मुख्य रूप से महानगरों, बड़े-बड़े व्यापारिक केन्द्रों तथा भीड़ भरे क्षेत्रों से संबंधित है। इन स्थानों में अवैध ढंग से शराब बनाने, वेश्यालयों में रहने तथा भीख माँगने में हजारों बच्चे संलग्न रहते हैं। घर का दोषपूर्ण वातावरण, माता-पिता से तिरस्कार तथा शारीरिक दण्ड, स्वस्थ मनोरंजन का अभाव एवं कुसंगति इन स्थानों पर बाल-अपराध को प्रोत्साहन देने वाले विशेष कारण हैं। इन संपूर्ण परिस्थितियों के संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि बाल-अपराध के विभिन्न कारणों तथा भारत में बाल-अपराध के उपचार के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों का सही दृष्टिकोण से विश्लेषण किया जाय।

#### सन्दर्भ-सूची

1. अग्रवाल जी.के., सामाजिक विघटन, आगरा बुक स्टोर, आगरा
2. मिश्रा, आराधना, अप्रकाशित शोध A.P.S.U. Rewa 2013, जनजाति में अपराध तथा शिक्षा का एक समीक्षात्मक अध्ययन (शहडोल जिला के विशेष संदर्भ में)
3. पाठक अंजू, अप्रकाशित शोध BHU 1998, वाराणसी मण्डल में जनजातियों की शिक्षा में बाधाएँ
4. पाठक पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान 2005-2006, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
5. वर्णवाल सुमित कुमार, शिक्षा शास्त्र, अरिहन्त पब्लिकेशन्स लिमिटेड
6. शर्मा बी.एल. एवं सक्सेना आर.एन., शिक्षा शास्त्र, सूर्या पब्लिकेशंस, मेरठ

\* \* \* \* \*

## शिक्षा नीति का वैदिक मानदण्ड

डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय\*

किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के विकास की मेरुदण्ड उसकी शिक्षा होती है। क्योंकि उसके नागरिकों के विचार और बौद्धिकता उस समाज एवं राष्ट्र की धमनियों में प्रवाहित होती है। जैसा खाये अन्न वैसा बने मन। तदैव राष्ट्र का समाज शिक्षा के ही अनुकूल निर्मित होता है। शासनसत्ता के हस्तक्षेप से मुक्त प्राचीन भारतीय शिक्षा आत्म निर्भर छात्रों में स्वावलम्बी, नैतिक सदाचार के जीवन मूल्यों का आधान करती हथी, फलतः शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ छात्र समाज एवं राष्ट्र के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते थे। शिक्षक, शिक्षा एवं शिक्षार्थी सर्वत्र आदरणीय होते थे, राजसत्ता भी नतमस्तक हुआ करती थी। वर्तमान शिक्षा प्रणाली कल्याणकारी एवं आत्मनिर्भर नागरिक उत्पन्न करने में सर्वथा असफल रही है। कालक्रमेण में अनेक आयोगों, समितियों, संस्थाओं पाठ्यक्रमों आदि के द्वारा भी शिक्षा समयानुकूल, व्यापक एवं समावेशी नहीं बनाई जा सकी। उसके कारण अज्ञात नहीं हैं।

व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र में से चाहे जिसको संदर्भित करें स्वाधीनता एवं पराधीनता के अपने पृथक परिवेश एवं परिदृश्य स्थापित होते हैं। स्वाधीनता के केन्द्र में यह स्वयं चेतना है एवं पराधीनता केन्द्र में पर अर्थात् स्वयं के अतिरिक्त कोई अन्य! अन्य कौन? पराधीनता या गुलामी में जाने-अनजाने अथवा चाहे-अनचाहे स्वामी ही उसका आदर्श होता है, वही अनुकरणीय होता है। यदि पराधीनता दीर्घकालिक हो तो यो जाने-अनजाने अथवा चाहे अनचाहे के विकल्प भी परिसमाप्त हो जाते हैं तथा स्वामी एक आदर्श अनुकरणीय संस्कार बन जाता है। यदि समाज की बात करें तो यह मान्य सामाजिक, संस्कृति बन जाती है अर्थात् ऐसा होना किसी समाज या राष्ट्र के लिए सर्वाधिक अभिशाप है जिससे त्राण पाना एक कठिन चुनौती होती है।

भारतीय स्वाधीनता के अनन्तर भारतीय शिक्षा के संदर्भ के बिल्कुल सटीक यही हुआ। विदेश शासकों ने अपने शिक्षाविद एवं नौकरशाहों से अपने मनोकुल परिणाम देने वाले वैचारिक विमर्शोपरान्त अपने उद्देश्यों को आदर्श के रूप में प्रसारित एवं प्रतिष्ठित करने तथा अपने मन्तव्यों के लिए समुचित संसाधन जुटाने के निमित्त भारत के लिए एक शिक्षा नीति का मसौदा तैयार करवाया था।<sup>1</sup>

आजाद हो जाने के बाद भारत का उद्देश्य तो बदला, परन्तु आदर्श वही रहे। महात्मा गांधी द्वारा बुनियादी शिक्षा की पहल अलबत्ता की गई किन्तु आजादी मिलने के समय तक गांधी जी व्यावहारिक रूप से अप्रासंगिक हो चुके थे।<sup>2</sup>

आजाद भारत के अधिकारों द्वारा शिक्षा नीति पर विचार विनिमय हेतु आयोग का गठन किया गया जिनमें नौकरशाह या फिर शिक्षा के क्षेत्र में नौकरशाह की हैसियत प्राप्त कर चुके शिक्षाविदों को सम्मिलित किया गया। ऐसे लोगों द्वारा भारत की पुरातन मौलिक पृष्ठभूमि और तथ्यगत परिवेश को नज़रअंदाज कर विदेशी उद्देश्यों एवं आदर्शों का ही भारतीयकरण करने का प्रयास किया गया, जो नितान्त अव्यावहारिक साबित हुआ।<sup>3</sup> इसका ज्वलन्त प्रमाण यही माना जाना चाहिए कि अधिकांश आयोगों की सिफारिशें सरकारी फासलों तक ही परिसीमित रह गई। जब-जब शिक्षा पर विचार विनिमय की अनिवार्यता अनुभव की गई तब-तब पुनः आयोगों एवं समितियों का गठन तो किया गया, किन्तु प्रक्रिया नौकरशाही वाली ही अपनाई गई जिसका सूत्र वाक्य है-पीछे देखा आगे बढ़। अर्थात् पूर्ववर्ती अपनाई गई प्रक्रियाओं का अनुकरण कर सिफारिशों का नवीनीकरण। फाइलों और संदर्भ सामग्री तक का अम्बार लग गया किन्तु शिक्षा के सामाजिक सरोकार सूदृढ़ आयाम प्राप्त कर नहीं पाये। परिणामस्वरूप सामाजिक समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं, उनके समाधान के लिए यद्यपि जन जागरण एवं जनसमुदाय को शिक्षित करने

\* एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सल्लतनत बहादुर पी.जी. कॉलेज बदलापुर, जौनपुर (उ.प्र.)

की आवश्यकता रेखांकित की जाती है। इसका मतलब विल्कुल साफ है कि शिक्षा जन समुदाय को भारतीय सामाजिक संदर्भों के अनुरूप शिक्षित करने में सफल नहीं हो सकी। संदर्भ चाहे जनसंख्या का हो या फिर बेरोजगारी अथवा संस्कृति नाम पर सामाजिक कुरीतियों का हो अथवा अनचाहे जो हो।<sup>9</sup>

ध्यातव्य है कि यह उसी भारत भूमि की संदर्भ है जो कदाचित् सभा जगत के लिए शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा था। नालन्दा तक्षशिला, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी सदृश विश्वविश्रुत विश्वविद्यालयों ने सुदूर विश्व के देशों में प्रतिभाओं को भारत भ्रमण हेतु विवश कर दिया था। भारत का शैक्षिक सुराग सभ्य जगत् में सर्वत्र परिव्याप्त था, अशेष विश्व के देश भारत को एक समृद्ध राष्ट्र के रूप में जानते थे।<sup>10</sup> वर्तमान परिदृश्य पर दृष्टिपात करे तो आज की दुनिया में जब ऐसे देश का प्रसंग उठता है तो दृष्टि पाश्चात्य देशों की ओर दुनिया में जब ऐसे देश का प्रसंग उठता है तो दृष्टि पाश्चात्य देशों की ओर विशेषकर अमेरिका की ओर उन्मुख हो उठती है।

भारतीय राजनीतिक नेतृत्व तथा सामाजिक मानस इच्छा शक्ति, परिवेश और परिपक्वता की दृष्टि से अभी भी इतनी योग्यता एवं क्षमता नहीं जुटा पाया है कि इतने वैविध्य पूर्ण और अनेक दृष्टियों से जटिल समास के नव निर्माण हेतु अपनी ही विरासत के मौलिक एवं आधार भूत सोच को संरचनात्मक स्तर पर निर्मित प्रदान कर व्यावहारिक बनाया जाय। समाज के सबसे प्रबुद्ध वर्ग के एक बड़े भाग का अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठापूर्ण आकर्षण के साथ-साथ अध्ययन, अनुशासन, शोध एवं साहित्य द्वारा समकालिकता की पुष्टि इस कार्य की पहली शर्त है। अभी तो पहली ही शर्तपूरी नहीं हो पाई है। इसके प्रति जो भी झुकाव है वह या तो पारम्परिक है या फिर धार्मिक अस्थाओं से अवेष्टित है। जबकि आज हम व्यावहारिक जीवन के ऐसे युग में रह रहे हैं जो पूर्णतः तर्क अथवा मुक्ति पर आधारित है। हमारी अस्था सांस्कृतिक वैज्ञानिकता पर आधारित नहीं है। हमारे लिए अस्था एवं विश्वास हारे को हरिनाम की भाँति ही है। बड़े से बड़े डॉक्टर से इलाज के बाद भी यदि मरीज मन जाये तब हमें पता लगता है कि ईश्वर की यही इच्छा थी अस्तु शिक्षा विषयक एक नई सामाजिक मनःस्थिति के निर्माण की भी आवश्यकता है।

शिक्षा किसी समाज में राज्य अथवा राष्ट्र की अवधारणा को व्यवहार में परिणत करने का एक मात्र सशक्त माध्यम होती है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मानदण्डों पर विमर्श अपरिहार्य हो जाता है। एतदर्थ मेरी सम्मति में 'केनोपनिषद्' का शनित मंत्र जो भोजन मंत्र के रूप में जाना जाता है। शिक्षा नीति की कसौटी प्रतीत होता है जो इस प्रकार है—

ॐ सह नावतु सह नौ भुनक्तु

सह वीर्यं करवावहै, तेतजस्विनाव धीतमस्तु मा विद्विषावहै।

अर्थात् हमारा अध्ययन किया हुआ (अधीत) दोनों का साथ-साथ संरक्षणकरे, हम दोनों का साथ-साथ पोषण करे या भोजन देवे (आजीविका) हमारी दोनों की शक्ति या पराक्रम साथ-साथ कार्यान्वित हो सहयोगी कार्य संस्कृति) हमारा अध्ययन किया हुआ यह ज्ञान तेजस्वी रहे (प्रासंगिकता) हममें परस्पर विद्वेष अत्यन्त करे (सद्भाव एवं सहिष्णुता)।

उक्त मन्त्र में दोनों की चर्चा है—एक मन्त्रोच्चारक, मन्त्रद्रष्टा आचार्य अथवा कोई अथ। यह दूसरा कौन? यह दूसरा है—शिक्षार्थी समूह। क्योंकि मन्सानुार हमारे द्वारा अध्ययन किया हुआ—अर्थात् यह अध्येता समूह है।<sup>11</sup> मन्त्र से किसी पार लौकिक अध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा नहीं है। जिसे परिश्चम में सुकरात ने अन्तःकरण से उद्दीप्त वास्तविक ज्ञान कहा था, अपितु उस ज्ञान की चर्चा है जो शैक्षिक पठन-पाठन द्वारा अर्जित किया जाता है। यदि इसे शिक्षित समाज के संदर्भ में लिया जाय तो कहा जा सकता है कि हम दोनों अर्थात् व्यक्ति एवं समाज।<sup>12</sup>

सम्पूर्ण मन्त्र शिक्षानीति के निदेशक एवं निर्धारक तत्त्व प्रस्तुत करता है यथा—सहनावतु—शिक्षा का पाठ्यक्रम, प्रक्रिया एवं पर्यावरण ऐसा हो कि समाज में सबको बिना भेद-भाव संरक्षण प्राप्त हो। संरक्षण सुरक्षा से अधिक व्यापक है। संरक्षण स्वाभाविक रूप में निरन्तर उपलब्ध समस्त प्रकार की सुरक्षा का अवबोधक है। सह नौ भुनक्तु—शिक्षा की स्वरूप ऐसा हो कि सबकी आजीविका सुनिश्चित हो सके, सबको समानरूपेण सन्तुलित भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित हो सके, अतः आवश्यक है कि शिक्षा का पाठ्यक्रम मान जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने की सामर्थ्य प्रदान करने वाला हो। सह वीं करवाव है अपनी अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य को साथ-साथ कार्यान्वित करने की स्थिति एवं परिस्थिति उपलब्ध कराना शिक्षा का ही दायित्व हो, यथा शक्ति सबको कार्य के



अवसर उपलब्ध कराने वाली हो। शिक्षा का उद्देश्य रोजगार की उपलब्धता एवं ईमानदान कार्य संस्कृति हो। शिक्षा का उद्देश्य रोजगार की उपलब्धता एवं ईमानदार कार्य संस्कृति हो। निश्चित है कि न तो सब में एक तरह की शक्ति हो सकती है न ही सामर्थ्य। दूसरी ओर सामाज में आवश्यकताओं का स्वरूप भी बहुआयामी ही होता है, अतः सहवीर्य करवावहें का अभिप्राय नहीं हो सकता है कि सब अपनी-अपनी विशिष्ट योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुरूप भूमिका में रहकर पूर्ण निष्ठा, क्षमता एवं ईमानदारी से अपना-अपना कार्य सम्पादित करें। तेजस्विनावधीतमस्तु—हम दोनों द्वारा किया गया अध्ययन (ज्ञान) तेजस्वी रहे। प्रत्येक ज्ञान-विज्ञान की आयु उसकी प्रसंगिकता की आयु के बराबर होती है, साथ ही किसी ज्ञान की प्रासंगिकता की आयु सामाजिक पर्यावरण के परिवर्तन के साथ अनुकूलन की क्षमता पर निर्भर करती है। मन्त्र में ज्ञान की तेजस्विता की कामना से स्पष्ट है कि मन्त्र द्रष्टा का संकेत ऐसे लचीले एवं विकासशील अध्ययन पाठ्यक्रम की आरंभ है जिसमें आवश्यकता एवं अनुसंधान द्वारा लगातार प्रगति होती रहे अन्यथा अधीत ज्ञान को तेजस्वी बनाये रखने का कोई दूसरा उपाय है ही नहीं शैक्षिक पाठ्यक्रम पूर्णरूपेण समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप तथा परिवर्तनशील हो। किसी देश की शिक्षा नीति में समाज की समकालिक एवं भावी आवश्यकताओं को निरीक्षण एवं अनुसंधान द्वारा रेखांकित करने तथा दतनुकूल अनुसंधान एवं विकास को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की संस्थानीकृत व्यवस्था शिक्षा नीति की सफलता की गारण्टी हो सकती है।

**मा विद्विषावहै**—हमारा अध्ययन परस्पर द्वेष पैदा करने वाला न हो। सामाजिक विद्वेष कब और कैसे उत्पन्न होता है, ऐसे कारकों को रेखांकित कर पाठ्यक्रम तथा पठन-पाठन की प्रक्रिया से दूर रखा जाय तभी उस शिक्षा की गारण्टी दी जा सकती है जिससे सामाजिक विद्वेष उत्पन्न न हो। भारत जैसे विविध्यपूर्ण देश में यह और भी कठिन चुनौती है। समान शिक्षा, सबको शिक्षा सहिष्णुता एवं सहअस्तित्व की प्रारम्भ से ही शिक्षा की आधारभूत संरचना एवं मूल पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की सुदृढ़ता को विविधताओं से उपर रखना आदि उपाय उक्त लक्ष्य को साधने में सहायक हो सकते हैं।

यह मन्त्र यही परिसमाप्त नहीं हो जाता प्रत्युत तीन शान्ति कामनाओं के साथ निष्कर्षित होता है—ओम् शान्ति: ओम् शान्ति इनकी शक्तियों को निम्न तीन प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। (1) आध्यात्मिक शान्ति की कामना—जो इन्द्रिय मन, बुद्धि एवं आत्मा में होती है। इन अवयवों को दोष मुक्त करके यह शान्ति प्राप्त की जा सकती है। अर्थात् शिक्षा के प्रथम निष्कर्षित ध्येय प्राप्ति हेतु व्यक्तिगत सुचिता का अभ्यास पठन-पाठन की प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा होना अपेक्षित है, अन्यथा की स्थिति में अधीत ज्ञानकृतार्थ नहीं होगा।

**अधिभौतिक शान्ति**—का समबन्ध प्राणियों एवं भौतिक वस्तुओं से है। समाज के विभिन्न प्राणियों के मध्य सम्बन्ध एवं पारस्परिक व्यवहार मुख्यतः भौतिक वस्तुओं के वितरण में संतुलन द्वारा ही निर्धारित होता है। अतः राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर मानवीय आचार शास्त्र और सामाजिक वितरण प्रणाली को मध्य अन्तर्सम्बन्धों के अध्ययन एवं अनुसंधान द्वारा भौतिक जीवन में शान्ति की महती भूमिका का दायित्व भी शिक्षा के क्षेत्र में सम्मिलित किया जाना अपेक्षित है जिससे समस्या के उत्पन्न होने पर या जन जागरण अथवा जनता को शिक्षित करने के अभियान न चलाने पड़े। निष्कर्षतः मनुष्यों, समाजों, एवं राष्ट्रों में पारस्परिक सामंजस्य से प्राप्त शान्ति अधि भौतिक शान्ति है।

**अधि दैविक शान्ति**—देवताओं से सम्बन्धित है। पृथ्वी, जल, वायु, चन्द्र, सूर्य आदि जीवन प्रदायक देवता हैं। अर्थात् आधुनिक शब्दावली में पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण को नियन्त्रित करने वाले तत्त्व की विभिन्न देवी-देवता हैं। हमारे द्वारा ऐसा कोई भी कार्य कदापि न किए जाएँ जिससे उनकी अति हो और वे कुचित होकर हमें क्षति पहुँचाये। पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण संरचना तथा सुरक्षा के गहन अध्ययन एवं तदनुकूल विकास की रूपरेखा तय करना और पर्यावरण को क्षति पहुँचाये बिना उसे कार्यान्वित करने के उपाय शिक्षा का नहीं तो किसका काम हो सकता है?

उक्त बिन्दुओं को अलोक में विमर्श का निष्कर्ष है कि शिक्षा की नीति ऐसी हो कि हमारे द्वारा अधीत शैक्षिक ज्ञान व्यक्तित्व में संतुलन भौतिक वस्तुओं एवं प्राणियों के मध्य संतुलन तथा विकास और प्रकृति के साथ सामंजस्य द्वारा सर्वतोमुखी शान्ति की मूल कामना की प्राप्ति के निमित्त ऐसा शैक्षिक पाठ्यक्रम एवं पठन-पाठन प्रक्रिया का सृजन एवं क्रियान्वयन हो जो सम्पूर्ण समाज में बिना किसी प्रकार का द्वेष उत्पन्न किए सभी के निरन्तर साथ-साथ

रक्षण, पोषण, कार्य संस्कृति, गरिमापूर्ण जीवन उपलब्ध करा सके। शिक्षानीति के मौलिक आधार के रूप में इसके उत्तम एवं व्यापक विचार का हो सकता है कि शिक्षा का विकास अपनी मौलिक विरासत पर आधृत होनी चाहिए जिसके बलपरक भी भारत विश्ववन्द्य शिक्षा का केन्द्र ही नहीं, प्रत्युत विश्वगुरु के उच्च यक्ष एवं कीर्ति तक पहुँच गया था।

स्वाधीनता की अमरबेल, राजनीति से नहीं, अपितु सोच से पुष्पित, पल्लवित एवं फलित होती है।

#### संदर्भ-सूची

1. चौबे, सरयू सागर, आदि एवं मध्य युगीन भारत में शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा सम्वत 2031 वि०पृ० 124
2. दुबे, अभय, (सं०) लोक तत्व के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-2005
3. लाल, महात्मा गाँधी पूर्णाहुति, प्रथम खण्ड, नवजीवन प्रकाशन आदि। अहमदनगर, 1965, गुहा, रामचन्द्र, भारत गांधी के बाद पेंग्विन बुक्स 2012
4. त्यागी, गुरशरण दास, भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं विकास
5. रावत, पी.एल., हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजुकेशन, आगरा, 1965, पृ. 96
6. अल्टेकर, ए०एस०, एजुकेशन इन एन्श्यट इण्डिया, प्रस्तावना
7. केनोपनिषद्, 1/3/3-4
8. शर्मा, सी०डी०, भारतीय दर्शन आलोचनात्मक अनुशीलन, पृ. 245
9. कृष्णन, एस., फिस्लासफी ऑफ द उपनिषद्, पृ. 345

\* \* \* \* \*

## Effect of Population Education Program on Graduate Students

*Sadhana Tripathi\**

**Key Words** : Population Education, Graduate students experimental group, S.L.M pre and post-test.

**Introduction** : Population Education in the term to aquire the knowledge skill attitude and values that will enable them to informed decisions about population events and issues which will effect their quality of life and of their society both now and in the future.

**Unesco – 1976 103]** : The National Seminar on Population is held on Bombay gives a compressive definition of population education “It’s is essentially related to human resource but also with the developing values and attitudes which take care of the quality and ofcourse the quantity of the population. It must explain to the graduate students causes and effect to the relationship so as enable them make national decision and their own Behaviors and population matters,”

In the view of the concerted efforts at the National level to control the growth of population phenomenon. The Awareness away among the students regarding the various population issues became more important, since they will be largely responsible for the future growth of population. Today due to advancement of medical science, the death rate has been checked where as the birth rate on checked. There are so many social, religious, culture and climate reasons for the high birth rate, but, its main reason is lack of population education (P.E) among the students. Students of Higher Education are mentally mature than the students of lower classes. They can transmit their knowledge to their pears and the younger what they have learned from populating education on the haves all we can say that along with different means of controlling population growth. It is require to proceed sufficient knowledge of population Education related issues to the graduate students.

### **Objective of the study.**

1. To compare the population education awareness in graduate students [Arts Stream.]
2. To compare the population education awareness in graduate students [Science streams]

**Hypothesis** : The following Hypothesis have been made on the basis f mentioned objectives:-

1. There is no difference (during Pre- Test) between experimental and central group of graduate students of art streams.
2. There is no deference (during post- test) between experimental and central of graduate students of science stream.

**Sample** : With the help of Random sampling method 100 of graduate students in Arts streams have selected from self-learning materials (S.L.M) A self-learning materials was developed related to different aspects and diminutions of populationEducation byresearch family planning. new and

\* *Assistant Professor, Faculty of Teacher, Education, Nehru Gram Bharti University, Prayagraj U.P*

importance of population Education, sex education about education family planning. H.I.V, AIDS family norms, health Education Social and Physical Environment. Sex diseases, were the main factors or categories of the self-learning materials was given for students to study of the experimental group but it was not available for control group. The main concept works behind the development of self-learning materials was the S.L.M will in hence knowledge of population Education among graduate students of Arts and Science Steams.

**Research Deigns and Methods :** In the range of above research experimental research method were applied.

**Tools :** A Hindi medium multiple choice type objectives test were constructed and uses in both processes pre and post-test. This test includes 50 questions and for answers options related to all aspects and points of self-learning materials. The validity was established and reliability efficient was satisfactory.

**Study Procedure :** Four groups was formed S.L.M was provided for any for experimental groups. Pre-test and post-test all two group were taken and compared. Post-test were done after two methods of pre-test and compare all four groups.

**Result and inter Pertain :** Collect data and resources were classified in given Tables

**Table No-1**

Mean, S.D.T. Value and result (Pre-test) of graduate students of arts and sciences.

S.N	Group	Sample	Men	S.E	Calculated	df	
		Size N.	(M)	(sd)	E- Value		
1	Experimental Group	75	23.37	9.70	0.048	98	N.S
2	Central group	75	22.90				

Not significant as 0.05 level of significance table 1 show that their significance difference between the main scores of experimental and control group of graduate students of arts streams or the basis of protest result calculated E- Value (0.048) was proud less-than the table value (1.98) then compared and tested at df (98) and level g significance (0.05) then all null Hypothesis can be accepted.

**Table No-2**

Mean S.D T-value and results (Post-Test) of graduate students of arts stream:-

S.N	Group	Sample	Men	S.E	Calculated	df	
		Size N.	(M)	(sd)	E- Value		
1	Experimental Group	50	39.43 42.43	6.67	2.16	98	5
2	Central group	50	24.97				

Significance at 0.05 level of significance table no.2 revealed that there is a significance difference between the mean score of experimental and central group. when post-test was conducted, because calculated t-valve found.

(2-16) that is the higher than t-value when compared and tested at df (98) and level of significance (0.05). Therefore the Hypothesis No.2 “The is difference (during post-test) between experimental and central group” is rejected.

#### **Inferences :-**

1. The knowledge related to the population education in students (arts stream) was not found significantly different during pre-test.
2. All students of arts stream were found having equal awareness about population education during pre-test
3. The high achievements of the students of experimental group Arts students in comparison of their respective control group in The positive effect of self-learning materials.

#### **References**

1. Anthony Act of (1974) population growth and development. New Delhi Indian Social Institute.
2. Chouhan H.S (2009) impact of population and on udolcents, New Delhi Indian journal of population education. 45
3. Mathar R.S (1995) Population Education sustainable development- [J.P.E] Vol. 1.PP. 48-54
4. Mathur R.S (1995) Population sustainable development- LLPE Vol. 1.PP. 48-54
5. Mehta at population education selected reading New Delhi population Education cell N.C.E.R.T.
6. Pandey A. [2014] Impact of Population Education and student Teacher Ahemdabad Indian Journal of Applied research.
7. Sharma, R.K (2001) Knowledge and Perspective about Population and sexually.

\* \* \* \* \*

## भारतीय शिक्षा नीतियों का अध्ययन

(1986, 1991 एवं 2020 के सन्दर्भ में )

डॉ. जनमेजय मिश्र\* डॉ. वसीम हासमी\*\*

**सारांश :-** भारत की शिक्षा नीति शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसके लिए भारत सरकार हमेशा से ही कुछ बदलाव लाने की कोशिश कर रहे हैं। जिसके अंतर्गत बच्चों को एवं समाज में नीहित परिवार को अच्छी शिक्षा दे सकें। नियमन व्यवस्था को राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक प्राधिकरण के तहत लाया जायेगा। इसके मानकों का निर्धारण सामान्य शिक्षा परिषद और वित्तपोषण उच्च शिक्षा अनुदान परिषद द्वारा किया जायेगा। इसकी व्यापक समीक्षा करनी होगी, क्योंकि भारत के उच्च शिक्षा आयोग से संबंधित मौजूदा विधेयक से इसके प्रावधान मिलते-जुलते हैं। मसौदा नीति में इंस्टीट्यूट ऑफ एमिनेंस और हायर एजुकेशन फंडिंग एजेंसी पर कोई स्पष्ट कार्य योजना नहीं है।

**शब्द कुंज** – शिक्षा, शिक्षा नीति, विचार, क्रियान्वयन, राष्ट्रवाद इत्यादि।

**प्रस्तावना :-** भारतीय संविधान के चौथे भाग में उल्लिखित नीति निदेशक तत्वों में कहा गया है कि प्राथमिक स्तर तक के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाय। 1948 में डॉ० राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के गठन के साथ ही भारत में शिक्षा-प्रणाली को व्यवस्थित करने का काम शुरू हो गया था। 1952 में लक्ष्मणस्वामी मुदलियार की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग, तथा 1964 में दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग की अनुशंशाओं के आधार पर 1968 में शिक्षा नीति पर एक प्रस्ताव प्रकाशित किया गया जिसमें 'राष्ट्रीय विकास के प्रति वचनबद्ध, चरित्रवान तथा कार्यकुशल' युवक-युवतियों को तैयार करने का लक्ष्य रखा गया। मई 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की गई, जो अब तक चल रही है। इस बीच राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा के लिए 1990 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समीक्षा समिति, तथा 1993 में प्रो. यशपाल समिति का गठन किया गया।

अगस्त 1985 'शिक्षा की चुनौती' नामक एक दस्तावेज तैयार किया गया जिसमें भारत के विभिन्न वर्गों (बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यावसायिक, प्रशासकीय आदि) ने अपनी शिक्षा सम्बन्धी टिप्पणियाँ दीं और 1986 में भारत सरकार ने 'नई शिक्षा नीति 1986' का प्रारूप तैयार किया। नौ सदस्यीय कस्तूरीरंगन समिति द्वारा तैयार नयी शिक्षा नीति के प्रारूप पर चर्चा जारी है। इस दस्तावेज पर मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने नागरिकों और संगठनों से सुझाव आमंत्रित किये हैं।

केंद्र सरकार के गठन के तुरंत बाद प्रारूप के सार्वजनिक होते ही बहस इसके भाषा संबंधी हिस्से पर केंद्रित हो गयी। विवाद के माहौल में प्रस्तावों पर समुचित रूप से चिंतन नहीं हो सका है। आगामी दो दशकों से अधिक समय तक देश के शैक्षणिक भविष्य को निर्धारित करने वाले इस प्रारूप पर देशव्यापी बहस आवश्यक है। नीतिगत प्रस्तावों के प्रमुख बिंदुओं के विवरण एवं विश्लेषण के साथ प्रस्तुत है—

### विषयवस्तु

**शिक्षा नीति : मील के पत्थर :** 1948— डॉ० राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन।

\* पी-एच.डी. राजनीतिशास्त्र, डॉ. सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

\*\* शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

- 1952— लक्ष्मणस्वामी मुदलियार की अगुआई में माध्यमिक शिक्षा आयोग बना
- 1964— दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग
- 1968— कोठारी आयोग के सुझावों पर शिक्षा नीति का प्रस्ताव
- 1986— नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू
- 1990— आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समीक्षा समिति बनी
- 1993— प्रो यशपाल के नेतृत्व में समीक्षा समिति का गठन
- 2017— नयी शिक्षा नीति का प्रारूप बनाने के लिए कस्तूरीरंगन समिति का गठन
- 2020— नयी शिक्षा नीति

**इस नीति की प्रमुख विशेषताएँ संक्षेप में निम्नलिखित हैं :**

- शिक्षा के सारतत्त्व व उसकी भूमिका के बारे में नीति में कहा गया है कि शिक्षा सबके लिए आवश्यक है, शिक्षा की सांस्कृतिक भूमिका है, शिक्षा वर्तमान और भविष्य के लिए अपने आय में एक अद्वितीय निवेश है।
- समानता के लिए शिक्षा : महिलाओं, अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा वंचित समूह को समान अवसर उपलब्ध करवाना।
- शिक्षकों की शिक्षा, कार्य-प्रणाली, जिम्मेदारी, वेतन आदि सभी स्तरों पर गुणात्मक सुधार की आवश्यकता।
- तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा को महत्त्व देना।

**संशोधित राष्ट्रीय नीति, 1986 :** आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में 7 मई, 1990 को भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति को संशोधित करने के लिए एक समिति गठित की। इसके मुख्य विचार निम्न बिन्दुओं पर केन्द्रित थे।  
**शिक्षा के उद्देश्य**

- सामान्य स्कूल प्रणाली
- व्यक्तियों का कार्य हेतु सशक्तीकरण
- स्कूली विश्व व कार्य स्थल में सम्बन्ध स्थापित करना।
- परीक्षा सुधार
- मातृभाषा को स्थान
- स्त्रियों की शिक्षा
- धार्मिक अन्तरों को (शैक्षिक उपलब्धि, अवसरों आदि के सन्दर्भ में) कम करना
- विद्यालय प्रशासन का विकेन्द्रीकरण

**संशोधित शिक्षा नीति 1992**

- भारत की नई शिक्षा नीति 8 मई, 1986 को लोकसभा में पारित हुई जबकि राज्य सभा में 13 मई, 1986 को पारित हुआ।
- अगस्त 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के लिए एक कार्य योजना बनाई गई।
- इस कार्य योजना के दबाव के कारण मानव संसाधन विकास मंत्रालय इस शिक्षा नीति के क्रियान्वयन की प्रगति की रिपोर्ट तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी को प्रति छमाही प्रकाशित करके भेजता रहा।
- जब विश्वनाथ प्रताप सिंह प्रधानमंत्री बने तो इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा के लिए 7 मई, 1990 को आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समिति की घोषणा की इसने अपना प्रतिवेदन दिसंबर 1990 में प्रस्तुत किया
- इस नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन की प्रगति की समीक्षा के लिए जुलाई 1991 में केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड एक समिति का गठन किया गया।
- समिति की अध्यक्षता का कार्यभार आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री जनार्दन रेड्डी को सौंपा गया इसमें विभिन्न राज्यों के 6 शिक्षा मंत्री और 8 शिक्षाशास्त्री भी शामिल थे।
- इस समिति ने अपना संशोधित कार्य योजना 1992 में प्रस्तुत किया जिसमें निम्न सुझाव थे।



● बिना जाति पाति के भेदभाव बिना मजहब के भेदभाव बिना लिंग के भेद भाव शिक्षा की प्राप्ति हो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वित्त पोषित कार्यक्रम प्रारंभ किए जाएं।

- समान विद्यालयी प्रणाली के क्रियान्वयन की दृष्टि से प्रभावी कदम उठाया जाए।
- ऐसी व्यवस्था की जाए जिससे सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्राप्त हो।
- प्रत्येक चरण पर प्रदान की जाने वाली शिक्षा का न्यूनतम स्तर निर्धारित किया जाए।
- संपर्क भाषा को प्रोत्साहित करना पुस्तकों की एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना तथा बहुभाषा शब्दकोश और शब्दावलियों के प्रकाशन के लिए कार्यक्रम चलाया जाए।
- राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से योग्य विद्यार्थियों को दूसरे क्षेत्र में अध्ययन करने की सुविधा दी जाए।
- विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षा के संस्थाओं को सार्वदेशिक स्वरूप देने का प्रयास किया जाए।
- राष्ट्र का दायित्व होगा की वह शिक्षा की पुनर्रचना के लिए शिक्षा में असमानताओं को कम करने के लिए वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसंधान के लिए साधन उपलब्ध कराएं।

● राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के स्वरूप को निश्चित करने के लिए इन संस्थाओं को प्रबल बनाया जाए।

- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
- अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
- भारतीय चिकित्सा परिषद

- शिक्षा संबंधित विषयताओं को दूर किया जाए।
- वंचित व्यक्तियों को विशेष अवसर प्रदान किया जाए।
- 14 वर्ष तक की आयु को नियमित पाठशाला भेजें।
- त्रिभाषा सूत्र को सक्रियता से लागू करें।
- पर्यावरण शिक्षा संपूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग होना चाहिए।
- योग पर विशेष ध्यान दिया जाए।
- शिशु की देखभाल के लिए शिशु केंद्र की स्थापना करें।
- बालकों के लिए अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम चलाया जाए।
- विकलांगों शिक्षा पर ध्यान दें।

**राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में शिक्षण व्यवस्था को मुख्य रूप से चार भागों में बांटा गया है। पहले भाग में विद्यालयी शिक्षा, दूसरे में उच्च शिक्षा और तीसरे में प्रौद्योगिकी, व्यावसायिक व वयस्क शिक्षा को रखा गया है। प्रारूप के चौथे भाग में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के जरिये शिक्षा में बदलाव लाने की बात कही गयी है। विद्यालयीय शिक्षा इसके तहत निम्न बातों को शामिल किया गया है।

**बचपन की देखभाल और शिक्षा :** वर्ष 2025 तक तीन से छह वर्ष की उम्र के सभी बच्चों को निःशुल्क, सुरक्षित, उच्च गुणवत्ता पूर्ण और विकास के लिए उपयुक्त देखरेख और शिक्षा मुहैया कराने का लक्ष्य है। यह सब स्कूल और आंगनबाड़ी जैसे संस्थानों के माध्यम से किया जायेगा। इन संस्थानों पर बच्चों के समग्र कल्याण यानी पोषण, स्वास्थ्य व शिक्षा की जिम्मेदारी होगी। ये संस्थाएं तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चों के विकास के लिए उनके घरों में समान सहायता प्रदान करेंगी।

**मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान :** वर्ष 2025 तक ग्रेड पांच और ऊपर के प्रत्येक विद्यार्थी अपनी आयु के अनुसार मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान प्राप्त कर लें, इस प्रकार की विस्तृत योजना का खाका तैयार किया गया है। ऐसा करने का उद्देश्य बच्चों को पढ़ने, लिखने और प्राथमिक गणित को हल करने की योग्यता प्रदान करना है। अनेक सरकारी और गैर सरकारी सर्वेक्षणों से यह बात सामने आयी है कि वर्तमान में प्राथमिक स्कूल के अधिकांश विद्यार्थी अपनी कक्षा की पुस्तकों को पढ़ने, लिखने और गणित के प्रश्न हल करने में सक्षम नहीं हैं।

**सभी तक शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित करना :** वर्ष 2030 तक तीन से 18 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य गुणवत्ता युक्त स्कूली शिक्षा मुहैया कराना और स्कूलों तक बच्चों की पहुंच सुनिश्चित करना, नयी शिक्षा नीति का उद्देश्य है। इसके साथ ही सरकार का इरादा यह भी सुनिश्चित करना है कि बच्चे स्कूल आना जारी रखें और अपनी पढ़ाई अधूरी न छोड़ें।

**नये पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धति :** वर्ष 2022 तक स्कूली पाठ्यक्रम और शिक्षण के तरीके में बदलाव किया जायेगा, ताकि बच्चों के रटने की आदत में कमी आये और उनका समग्र विकास हो। साथ ही उनके भीतर गहन सोच, रचनात्मकता, वैज्ञानिक मनोवृत्ति, संचार, सहयोग, बहुभाषावाद, समस्या समाधान, नैतिकता, सामाजिक दायित्व और डिजिटल साक्षरता जैसी 21वीं सदी के कौशल का भी विकास हो।

इसके लिए शिक्षण पद्धति को 5334 के स्वरूप में डिजाइन किया जायेगा। क्लासरूम को आकर्षक और मजेदार बनाया जायेगा, ताकि बच्चे पढ़ने के लिए उत्साहित हों। पाठ्यक्रम सामग्री कम की जायेगी। विद्यार्थियों, विशेष रूप से माध्यमिक स्कूल के छात्रों के लिए विषय चयन के लचीले और ज्यादा विकल्प उपलब्ध होंगे। बच्चे अच्छी तरह समझ सकें, इसके लिए ग्रेड पांच तक उन्हें मातृभाषा में पढ़ाने की सुविधा उपलब्ध कराने की बात भी कही गयी है।

**शिक्षकों की नियुक्ति :** नयी नीति के तहत यह भी सुनिश्चित करना होगा कि स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों में पढ़ाने वाले शिक्षक जिज्ञासु, प्रोत्साहित करनेवाले, उच्च शिक्षित, प्रशिक्षित और गुणों से संपन्न हों। वर्ष 2030 तक शिक्षण के लिए न्यूनतम योग्यता चार वर्षीय लिबरल इंटीग्रेटेड बी.एड. डिग्री होगी। शिक्षण क्षेत्र में आने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए उत्कृष्ट छात्रों को मेरिट-बेस्ड स्कॉलरशिप प्रदान की जायेगी। इसके तहत हाइस्कूल में बेहतर प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों के लिए, माध्यमिक स्कूल से ग्रेजुएशन तक और कॉलेज व विश्वविद्यालयों में चार वर्षीय इंटीग्रेटेड बी.एड. प्रोग्राम करने के लिए स्कॉलरशिप देने की शुरुआत की जायेगी। शिक्षकों की नियुक्ति प्रक्रिया को कठिन और पारदर्शी बनाया जायेगा, ताकि बेहतर शिक्षकों की तलाश की जा सके। योग्यता और ज्ञान की बेहतर परख के लिए शिक्षक पात्रता परीक्षा (टेट) में सुधार किया जायेगा। इतना ही नहीं, टेट का दायरा भी बढ़ेगा और प्रीपरेटरी, मिडिल व सेकेंडरी स्कूल एजुकेशन के शिक्षकों के पात्रता की जांच भी अब टेट के माध्यम से होगी। स्कूलों में शिक्षकों की कमी दूर करना भी नयी शिक्षा नीति का हिस्सा है।

**समावेशी व न्यायसंगत शिक्षा :** नयी शिक्षा नीति के तहत सरकार का उद्देश्य ऐसी शिक्षण प्रणाली विकसित करना है, जहां बिना किसी भेदभाव के सभी बच्चों को शिक्षा का समान अवसर मिले और उनका विकास हो। देश के दूर-दराज के क्षेत्रों में विशेष शिक्षा क्षेत्र भी स्थापित किये जायेंगे। वर्ष 2030 तक सभी बच्चों तक शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित करना भी शिक्षा नीति का हिस्सा है। वंचित व अल्पसंख्यक समुदाय के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति, संसाधन और सुविधाएं प्रदान करने के लिए विशेष राष्ट्रीय कोष का गठन होगा। सभी लड़कियों को गुणवत्ता युक्त व एक समान शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए अलग से राशि (जेंडर-इक्लूजन फंड) मुहैया करायी जायेगी। विशेष सक्षम बच्चों की स्कूल तक पहुंच सुनिश्चित कराने के उपाय किये जायेंगे। बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए स्कूल परिसर को बुनियादी ढांचा, पुस्तकालय, कला संगीत शिक्षक समेत सभी संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करनी होगी।

**स्कूल रेगुलेटरी ऑथोरिटी का गठन :** स्कूलों के रेगुलेशन के लिए स्वतंत्र राज्य विद्यालयीय नियामक प्राधिकरण का गठन किया जायेगा।

## उच्च शिक्षा

### गुणवत्ता आधारित विश्वविद्यालय और कॉलेज

- उच्च शिक्षा तंत्र में व्यापक सुधार करते हुए देशभर में विश्वस्तरीय और विविध विषयों पर आधारित उच्च शैक्षणिक संस्थानों का निर्माण, वर्ष 2035 तक सकल नामांकन अनुपात को न्यूनतम 50 प्रतिशत तक बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है।

- सभी उच्च शिक्षण बहुविषयक (मल्टी डिस्सीप्लनरी) संस्थानों में होंगे। संसाधनों के बेहतर इस्तेमाल से सभी विषयों और क्षेत्रों के अध्ययन को सुविधाजनक बनाया जायेगा।

### भारतीय भाषाओं को बढ़ावा

- पाली, पर्सियन और प्राकृत भाषा के लिए राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना।

- वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए आयोग की पुनर्संरचना।

### राष्ट्रीय शिक्षा आयोग

• एक नयी शीर्ष संस्था, राष्ट्रीय शिक्षा आयोग या नेशनल एजुकेशन कमीशन का गठन किया जायेगा। यह प्रधानमंत्री के नेतृत्व में संचालित होगा।

• राष्ट्रीय शिक्षा आयोग देश में शिक्षा के विकास, कार्यान्वयन, मूल्यांकन और दृष्टिकोण के विकास पर काम करेगा।

• राज्य शीर्ष स्तर पर राज्य शिक्षा आयोग या स्टेट एजुकेशन कमीशन का गठन कर सकेंगे।

• उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावी विकास और गुणवत्ता आधारित शिक्षण के लक्ष्य को हासिल करने के लिए नियामक तंत्र में बदलाव होगा।

• नियमन व्यवस्था जवाबदेही पूर्ण और उत्कृष्टता आधारित होगी।

• मानक निर्धारण, वित्त पोषण, मान्यता और विनियमन जैसी व्यवस्थाओं को बेहतर और परस्पर स्वतंत्र किया जायेगा।

• राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक प्राधिकरण एकमात्र सभी प्रकार की उच्च शिक्षा के लिए नियामक संस्था होगी, जिसमें व्यावसायिक शिक्षा भी शामिल होगी।

• सभी उच्च शिक्षा योग्यता, जो सीखने के परिणामों पर आधारित होगी, उसकी व्याख्या राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा योग्यता फ्रेमवर्क द्वारा निर्धारित की जायेगी।

• सभी निजी और सार्वजनिक संस्थान नियामक व्यवस्था के तहत संचालित होंगे।

• नेशनल रिपॉजिटरी ऑफ एजुकेशनल डेटा सभी संस्थानों, शिक्षकों और छात्रों का रिकॉर्ड डिजिटल प्रारूप में संरक्षित करेगा।

• वोकेशनल एजुकेशन सभी स्कूल और उच्च शिक्षा का अभिन्न अंग होगा।

• वोकेशनल एजुकेशन माध्यमिक स्कूल पाठ्यक्रम में शामिल होगा।

### सभी उच्चतर शिक्षण संस्थान

• वोकेशनल एजुकेशन कोर्स और प्रोग्राम संचालित करेंगे।

• प्रौढ़ शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क तैयार किया जायेगा, जिसमें पांच प्रमुख क्षेत्रों को शामिल किया जायेगा— मूलभूत साक्षरता व संख्यात्मक ज्ञान, महत्वपूर्ण जीवन कौशल, व्यावसायिक कौशल, आधारभूत शिक्षा और वयस्क शिक्षा।

**नीतियों को लागू करने में चुनौतियां :** राष्ट्रीय शिक्षा नीति मसौदे में निश्चित ही प्रगतिशील विचारों को अहमियत दी गयी है। लेकिन, दिये गये सुझावों को लागू करने में वित्तीय और प्रशासनिक स्तर पर कई अड़चनों का सामना करना है।

**शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च :** मसौदे में पब्लिक फंडिंग को दोगुना करते हुए इसे जीडीपी के छह प्रतिशत तक करने का सुझाव है। साथ ही शिक्षा पर कुल सार्वजनिक खर्च को 10 फीसदी से बढ़ा कर 20 फीसदी करने लक्ष्य रखा गया है। चूंकि, ज्यादा तक खर्च राज्य को वहन करना होगा, ऐसे में हालात को देखते हुए यह काम थोड़ा मुश्किल हो सकता है। हालांकि, निजी क्षेत्रों को बढ़ावा देने की योजना का भी जिक्र है।

**आरटीई का विस्तार :** शिक्षा के अधिकार (आरटीई) अधिनियम को विस्तार देते हुए इस में प्री-स्कूल के बच्चों को शामिल करने की बात कही गयी है। संरचनागत व्यवस्था और शिक्षकों की रक्तियों को देखते हुए इसे लागू करने में समय लगेगा। अधिनियम में बदलाव में भी समय लगेगा।

**राष्ट्रीय शिक्षा आयोग :** प्रधानमंत्री के नेतृत्व में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन का विचार दिया गया है। विभिन्न विभागों और कार्यक्रमों में एमएचआरडी के तहत यह आयोग कैसे काम करेगा, यह स्पष्ट नहीं है। प्रशासनिक स्तर की चुनौतियों के अलावा मेडिकल, एग्रीकल्चर और लीगल एजुकेशन को एक साथ व्यवस्था दे पाना आसान नहीं होगा।

**राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक प्राधिकरण** : नियमन व्यवस्था को राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक प्राधिकरण के तहत लाया जायेगा। इसके मानकों का निर्धारण सामान्य शिक्षा परिषद और वित्तपाषण उच्च शिक्षा अनुदान परिषद द्वारा किया जायेगा। इसकी व्यापक समीक्षा करनी होगी, क्योंकि भारत के उच्च शिक्षा आयोग से संबंधित मौजूदा विधेयक से इसके प्रावधान मिलते-जुलते हैं। मसौदा नीति में इंस्टीट्यूट ऑफ एमिनेंस और हायर एजुकेशन फंडिंग एजेंसी पर कोई स्पष्ट कार्य योजना नहीं है।

**भाषा के मुद्दे** : भाषा का भावनात्मक मुद्दा है। इसके राजनीतीकरण को रोकना होगा और मुद्दों को प्रभावी तरीके से हल करना होगा। अमूमन, मसलों को समझे बगैर ही धरना-प्रदर्शन का दौर शुरू हो जाता है।

### व्यावसायिक शिक्षा

- 21वीं सदी की मांग अनुरूप प्रोफेशनल तैयार करने के मकसद से नयी कार्ययोजना बनायी जायेगी। उच्च क्षमता वाले प्रोफेशनल तैयार करते समय सामाजिक और मानवीय मूल्यों के विकास पर भी बल दिया जायेगा।
- व्यावसायिक शिक्षा उच्च शिक्षा का अहम और अभिन्न हिस्सा होगी।
- मात्र प्रोफेशनल एजुकेशन के लिए ही विश्वविद्यालय निर्माण करने की प्रक्रिया पर रोक लगेगी।
- केवल प्रोफेशनल या जनरल एजुकेशन आधारित संस्थानों को वर्ष 2030 तक दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों को एक साथ संचालित करने वाले संस्थान के रूप में विकसित किया जायेगा।

### शिक्षा सुधार की स्वागत योग्य पहल

- हर देश की आवश्यकता है कि वह अपनी शिक्षा नीति को गतिशील बनाये रखे। हमारे यहां शिक्षा नीति बनाने में थोड़ी देर हुई, लेकिन जो नीति बनी है, वह गहन विचार विमर्श के बाद बनी है। इसमें बहुत-सी ऐसी चीजें हैं, जो काफी फलदायी होंगी। एमएचआरडी का नाम अब शिक्षा मंत्रालय होगा, जिसे शिक्षा क्षेत्र के लोग बहुत पहले से चाहते थे।
- पब्लिक स्कूल के नाम पर एक मजाक बहुत सालों से चल रहा था। उन स्कूलों को पब्लिक स्कूल कहते थे, जिनके दरवाजे के भीतर पब्लिक के जाने की संभावना नहीं थी। अब उन स्कूलों को 'पब्लिक' शब्द का इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं होगी। ये प्राइवेट स्कूल हैं, प्राइवेट कहलायेंगे।
- नयी व्यवस्था में स्कूली शिक्षा में तीन से 18 साल के बच्चों को शामिल किया गया है, यह एक प्रगतिशील कदम है। अब करिकुलर और एक्स्ट्रा करिकुलर का भेद समाप्त कर दिया जायेगा। यह आशाजनक काम है।
- अध्यापकों की नियुक्ति के लिए भी कुछ सुझाव दिये गये हैं, इससे काफी सुधार होगा, क्योंकि अध्यापकों की नियुक्तियों को लेकर पिछले वर्षों में अनेक प्रकार की 'दुर्घटनाएं' हुई हैं। पांच-पांच, छह-छह सालों से अध्यापकों की नियुक्तियां ही नहीं हुई हैं। शिक्षाकर्मी और मानदेय वाले अध्यापकों की प्रथा समाप्त की जायेगी, जिसे बहुत पहले हो जानी चाहिए था। इस नीति में अनेक सुझाव हैं।
- इन्हीं में से एक सुझाव उच्च शिक्षा में संबद्ध कॉलेज के कॉन्सेप्ट को लेकर है। एक विश्वविद्यालय से दो सौ-चार सौ कॉलेज संबद्ध होते हैं। इनमें से कई कॉलेजों में परीक्षाएं ही नहीं हो पाती हैं। होती भी हैं, तो पर्चे लीक हो जाते हैं। नतीजतन विद्यार्थी परेशान रहते हैं। इन सब परेशानियों को दूर करने के लिए संबद्ध कॉलेज की प्रथा धीरे-धीरे समाप्त की जायेगी। अब हर एक कॉलेज को अपने ढंग से शुरुआत करनी होगी।
- विद्यार्थियों को डिग्री देना होगा और फिर जॉब मार्केट में उसका परिणाम देखना होगा। यह बहुत अच्छा कदम है। इसका फायदा यह होगा कि जो कॉलेज चलाना चाहेगा, वह चलायेगा, अपने कोर्स तैयार करेगा, विद्यार्थियों को पढ़ायेगा और उन्हें डिग्री देगा। ऐसे कॉलेजों में पढ़े बच्चे जब बाजार में नौकरी के लिए जायेंगे, तो उनकी गुणवत्ता के आधार पर उन्हें नौकरी मिलेगी। आजकल इंजीनियरिंग, एमबीए आदि कॉलेजों के बंद होने की खबरें आती रहती हैं। यहां प्रश्न उठता है कि आखिर वे कॉलेज क्यों बंद हो रहे हैं? उत्तर है कि मार्केट में उनकी साख नहीं बची है। इसे ऐसे समझा जा सकता है कि दिल्ली में सीबीएसइ की साख है, लेकिन बिहार बोर्ड की परीक्षा की साख नहीं है। हालांकि इसमें सुधार की कोशिश हो रही है, जो अच्छी बात है। इसी बात को ध्यान में रख कर कहा गया है कि कॉलेज अपना उत्तरदायित्व निभाएं। अगर आप कॉलेज चलाते हैं, तो उस कॉलेज पर ध्यान दीजिए। बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराइए। ये क्या बात हुई कि पढ़ाई को लेकर कोई गंभीरता ही नहीं है। कॉलेज में पढ़ाई नहीं हुई, क्योंकि वहां अध्यापक ही नहीं थे।

• ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों को विषय संबंधी जानकारी कहाँ से होगी? उधर माता-पिता खेत बेच कर अपने बच्चों को पढ़ने भेजते हैं, लेकिन पढ़ कर जब बच्चे नौकरी की तलाश में निकलते हैं, तो उन्हें पांच हजार-सात हजार की नौकरी मिलती है। अब ऐसा नहीं चलने वाला। अब जो कॉलेज अपने बच्चों की पढ़ाई के साथ खिलवाड़ करेंगे, मार्केट में उनकी साख खत्म हो जायेगी। संबद्ध कॉलेज का कॉन्सेप्ट समाप्त हो जाने के बाद विश्वविद्यालय पर कोई प्रश्न नहीं उठायेगा। उसकी साख अब ऐसे कॉलेजों की वजह से प्रभावित नहीं होगी।

• इस नयी शिक्षा नीति के तहत, बहुत अच्छे इंस्टीट्यूट भी बनाये जायेंगे, जहाँ उच्चतम स्तर का शोध होगा। इस तरह के बहुत से कदम उठाये जाने की बात ड्राफ्ट में की गयी है। यह भी कहा गया है कि यूजीसी, मेडिकल काउंसिल समेत जो तमाम नियामक संस्थाएँ हैं, वे अलग-अलग जिम्मेदारियों को उठाने की बजाय कोई एक काम करेंगी। जैसे यूजीसी पैसे भी दे, रेगुलेशन भी करे, मान्यता भी दे, रैंकिंग भी करे, यह सब अब नहीं होगा। अब एक संस्था एक काम करेगी यानी जिसे गुणवत्ता की जांच करनी है, वह गुणवत्ता की जांच करेगी, जिसे मानक देखना है, वह मानक देखेगी। इस व्यवस्था के अंतर्गत अब काम होगा।

#### संदर्भ-सूची

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, एन0सी0ई0 आर0 टी0 नई दिल्ली, 2006
2. गांधी जी के शैक्षिक विचार, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 1999
3. भारतीय आधुनिक शिक्षा (त्रैमासिक), एन0सी0ई0 आर0 टी0 नई दिल्ली, जनवरी 2008
4. भारतीय आधुनिक शिक्षा (त्रैमासिक), एन0सी0ई0 आर0 टी0 नई दिल्ली, जुलाई 2011
5. अध्यापक शिक्षा के कतिपय विशिष्ट मुद्दे एवं संदर्भ, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2004
6. उच्च शिक्षा पत्रिका (त्रैमासिक), विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली, वर्ष 6 अंक 2 ग्रीष्म 1998
7. आजकल पत्रिका (मासिक), प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, नवम्बर 2009
8. <http://sunbeamacademy.com/>
9. <http://www.univarta.com/news/states/story/612946.html#budjJFdwCLGIG8L99>

\* \* \* \* \*

## उच्च शिक्षा में संप्रेषण कौशल की भूमिका

डॉ. मयानन्द उपाध्याय\*

उच्च शिक्षा (Higher Education) का अर्थ सामान्य रूप से सबको दी जाने वाली शिक्षा से ऊपर किसी विशेष या विषयों में विशेष विशद तथा सूक्ष्म शिक्षा। यह शिक्षा के उस स्तर का नाम है जो विश्वविद्यालय, व्यावसायिक विश्वविद्यालयों, कम्युनिटी महाविद्यालयों लिवरल आर्ट कॉलेजों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों आदि के द्वारा दी जाती है। प्राथमिक एवं माध्यमिक के बाद यह शिक्षा का तृतीय स्तर है जो प्रायः ऐच्छिक (Non-compulsory) होता है। इसके अन्तर्गत स्नातक, परास्नातक एवं व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि आते हैं।

ऐसी शिक्षा का स्वरूप विशदता के साथ भारतवर्ष में प्रतिष्ठित हुआ था। उच्च शिक्षा देने वाले भारतीय गुरुकुलों की बड़ी विशेषता यह भी उनमें प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा शिक्षाध्यापक प्रणाली (मोनीटोरियल सिस्टम) से दी जाती थी। सबसे ऊपर के छात्र अपने से नीचे वर्ग के छात्रों को पढ़ाते थे और वे अपने से नीचे वालों को। इन गुरुकुलों का प्रारम्भ वास्तव में उन परिषदों से हुआ जिनमें चार से लेकर 21 तक विद्वान और मनीषी किसी नैतिक सामाजिक या धार्मिक समस्या पर व्यवस्था देने के लिए एकत्र होते थे। कुछ गुरुकुलों ने वर्तमान सावास विश्वविद्यालय (रेजीडेंशन यूनिवर्सिटी) का रूप धारण कर लिया था। इन गुरुकुलों में वेद, वेदांग, दर्शन, नीतिशास्त्र, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, दंडनीति, सैन्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद और आयुर्वेद आदि सभी विषयों की उच्चतम शिक्षा दी जाती थी। और जब छात्र सब विद्याओं में पूर्ण निष्णात हो जाता था तभी वह स्नातक हो पाता था।

भारत का उच्च शिक्षा तंत्र अमेरिका, चीन के बाद विश्व का तीसरा सबसे बड़ा उच्च शिक्षा तंत्र है। विगत 50 वर्षों में देश के विश्वविद्यालयों की संख्या में 11.6 गुना, महाविद्यालयों में 12.5 गुना, विद्यार्थियों की संख्या में 60 गुना और शिक्षकों की संख्या में 25 गुना वृद्धि हुई है। सभी को उच्च शिक्षा के समान अवसर सुलभ कराने की नीति के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और साथ ही उच्च शिक्षा की अवस्थापना सुविधाओं पर विनियोग भी तदनु रूप बढ़ा है।

‘सम्प्रेषण’ शब्द के अन्तर्गत प्रेषण एवं प्रेषित करना क्रियायें सम्मिलित हैं। अतः सम्प्रेषण का तात्पर्य सूचनाओं अर्थात् किसी भाव या विचार को दूसरों तक पहुँचाना है। पत्र, टेलीफोन, टेलीग्राम, फ़ैक्स इत्यादि द्वारा संदेश प्रेषित करना जैसे वाक्यों का प्रयोग अधिकांशतः दैनिक जीवन में करते रहते हैं। यह प्रेषण एकपक्षीय होता है क्योंकि इसमें विचार, सूचना या संदेश सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्ति तक केवल पहुँचाने की बात है। सम्प्रेषण इससे कुछ अधिक व्यापक प्रत्यय है। इसमें विचार, सूचना या संदेश भेजने का धैर्य एक पक्षीय न होकर द्वि या बहुपक्षीय बन जाता है।

विचार के आदान-प्रदान के लिए शाब्दिक एवं अशाब्दिक (Verbal and Non-Verbal) दोनों ही प्रकार के संकेतों का प्रयोग किया जाता है। शाब्दिक संकेतों के अन्तर्गत भाषा का प्रयोग किया जाता है। जिसे प्राप्तकर्ता आसानी से समझ सकता है और अशाब्दिक के अन्तर्गत चित्रों, संकेतों, चिन्हों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। सम्प्रेषण के प्रकार निम्न हैं—

1. **शाब्दिक सम्प्रेषण**—कक्षा-कक्षा की परिस्थितियों में शिक्षक एवं विद्यार्थियों के मध्य सम्प्रेषण को इस प्रकार को देखा जा सकता है। कक्षा में शिक्षक सूचनाओं व विचारों को मौखिक एवं लिखित दोनों ही रूपों में विद्यार्थियों तक पहुँचाता है। शाब्दिक सम्प्रेषण में उसी भाषा का प्रयोग किया जाता है जो सरल एवं सुगम्य हो, स्रोत तथा प्राप्तकर्ता दोनों को ही उसके प्रयोग से कठिनाई न हो।

2. **अशाब्दिक सम्प्रेषण**—भाषा प्रयोग में कुशल होने के उपरान्त भी हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अशाब्दिक सम्प्रेषण का प्रयोग करते ही रहते हैं। जिन लोगों को भाषा का ज्ञान नहीं होता या वे सुनने बोलने,

\* एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र, आर.एस.के.डी. पी.जी. कॉलेज, जौनपुर

पढ़ने, लिखने में असमर्थ होते हैं उनके द्वारा सम्प्रेषण के इसी रूप का प्रयोग किया जाता है। अशाब्दिक सम्प्रेषण के कई प्रकार होते हैं—

- (क) मुख मुद्रा (Expressions)
- (ख) आँखों की भाषा (Language of Eyes)
- (ग) शारीरिक भाषा (Body Language)
- (घ) वाणी या ध्वनि संकेत (Sound Symbols)
- (ङ) संकेतात्मक कूट भाषा इत्यादि

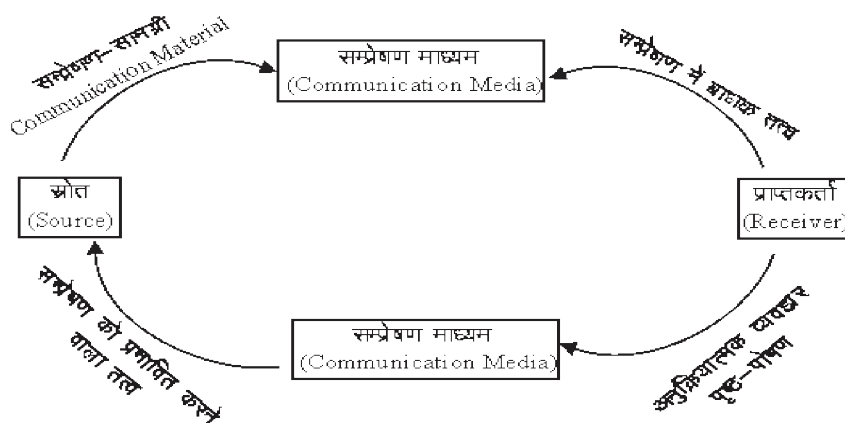
**3. स्वाभाविक सम्प्रेषण**—जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों का समूह बिना किसी कृत्रिम साधन या उपकरण की सहायता से स्वाभाविक रूप से विचारों तथा भावों का आदान प्रदान करते हैं तो उसे प्राकृतिक या स्वाभाविक सम्प्रेषण कहते हैं। इस प्रकार के सम्प्रेषण के निम्न रूप हो सकते हैं—

- (क) द्विवैयक्तिक सम्प्रेषण
- (ख) लघु समूह सम्प्रेषण
- (ग) दीर्घसमूह सम्प्रेषण
- (घ) सार्वजनिक सम्प्रेषण
- (ङ) संगठन या संस्थागत सम्प्रेषण

**4. यान्त्रिक सम्प्रेषण**—जब व्यक्ति या समूह द्वारा सम्पन्न सम्प्रेषण में यन्त्रों या मशीनों का प्रयोग किया जाता है तो उसे यान्त्रिक या मशीनी सम्प्रेषण कहा जाता है। इस सम्प्रेषण का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक होता है। रेडियो, आडियो, टेलीफोन, टेलीप्रिन्टर, पेजिंग, फिल्म, सिनेमा, वीडियो, रिकार्डिंग, उपग्रह, समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें आदि सभी साधनों का प्रयोग इस प्रकार के सम्प्रेषण में माध्यम के रूप में किया जाता है। यह एक प्रकार का अप्रत्यक्ष सम्प्रेषण है, जिसमें स्रोत और प्राप्तकर्ता के मध्य कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता लेकिन कोई व्यक्ति या संगठन अपने विचारों एवं भावों को समय में अधिक से अधिक व्यक्तियों तक पहुँचा सकता है।

#### सम्प्रेषण की प्रक्रिया (Process of Communication)–

सम्प्रेषण की प्रक्रिया को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—



आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष एवं क्रिया को प्रभावित किया है। इसके प्रभाव से शिक्षा भी अछूती नहीं रही है। आज शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान की नित नवीन शाखाओं का विकास हो रहा है। इस ज्ञान को आत्मसात करने, ज्ञान का संचय, प्रसार एवं वृद्धि एवं सम्प्रेषण के लिए विकसित तकनीकी के ज्ञान एवं उपयोग की आवश्यकता है और इस आवश्यकता की पूर्ति केवल सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी (ICT) द्वारा ही सम्भव है।



जनसंचार के माध्यम से व्यक्ति के ज्ञान-अनुभव कौशल में वृद्धि लाते हैं। निरीक्षण एवं विचार शक्ति का विकास करते हैं। इससे व्यक्ति को नवाचारों के गुण दोष को परखने में भी मदद मिलती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जनसंचार के माध्यम से और शिक्षा एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। इससे व्यक्ति का जीवन सुखमय कल्याणकारी मन्तव्यों से परिपूरित होता है। यह जनसंचार के माध्यम एवं शिक्षा की घनिष्ठता का परिचायक है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रभावी प्रयोग के लिए विद्यार्थियों को प्रशिक्षण के माध्यम से वे सभी तरीके सिखाये जाने चाहिए जिनके द्वारा वे सूचनायें सरलता और विश्वसनीय ढंग से प्राप्त कर सकें तथा आवश्यकतानुसार उनका सही उपयोग भी कर सकें। आज वह समय आ गया है कि सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीक के उपयोग से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान ढूँढ़ा जाये और इसके प्रयोग को अनिवार्य रूप से प्राथमिकता देते हुए ऐसे प्रयत्न किये जाये जिससे सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी शिक्षा के प्रत्येक आवश्यकत क्षेत्रों, विद्यालयों की समस्त गतिविधियों के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निर्धारित की जाये।

#### संदर्भ-ग्रन्थ

1. शिक्षा में नवीन प्रवृत्तियाँ एवं नवाचार, भाई योगेन्द्रजीत
2. आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएँ, डॉ० एस०पी० गुप्ता
3. शिक्षक अभिव्यक्ति (प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के संदर्भ)
4. प्रदीपिका प्रवेशांक/संयुक्तांक वर्ष 2008-09/2009-10) राजकीय महाविद्यालय नानौता, सहारनपुर।

\* \* \* \* \*

## Donot Play With Fire.....

*Dr. Suman Shukla 'Hans'\**

A legendary region on the Globe being the coldest among all has recorded a temperature of 38 degrees. A shiver runs through as one goes in the alleys of one's membrane while drawing a sketch of the Russia itself but this time the heart of Russia, the Siberia has made history of heat. Scientists and Analysts may offer myriads of causes for the fire in the snowy Planet, the fact is the presence of heat. Many have enumerated the reason of being Dry weather which does not satiate me. NASA fellows have claimed the deposit of a certain undecomposed vegetation material over the millennia especially of like Coniferous tree 'Dahurian Larch' needles which due to long winters did not get decomposed but stored massive amount of carbon in peat and soils susceptible to fire thus the climate change is now not distant. In comparison to the year 2003, most fires have been witnessed in eastern most part of the Region in 2020.

Russian Emergencies Minister Evgeny Zinichev was seen reporting via a video conference to the Russian President Vladimir Putin that in comparison to the last year 10 times more the territory is ablaze while 3 times in TransBaikal and 1 and ½ times more in Amur Region. Out of many reasons arson, campfires and agricultural fires too have been cited responsible for the fire incidents in the Region. A NASA image is widely available of 27 April this year depicting several thermal points. The end of April saw gusty winds as that of Australia giving thrust to the soaring temperature.

In April around 2 Million Hectares of Grassland and Forest was on fire. Head of the Federal Forest agency Rosleskhoz had stated that by April 28 last year in TransBaikal 382,000 Hectares had been burnt and this year by far it is surpassing 477,000.

It was 08 May when the Siberian Times had reported that the Drivers had claimed that Walls of fire are burning on both sides of federal R-255 Highway from Irkutsk to Angarsk. Several Videos were shared warning each other over the Fire. More than 1000 hectares of another world known region taiga was burnt by the fire as overnight the winds had fuelled the fire whereby the Bolshoye Goloustnoye Village with more than 600 residents was evacuated. More than half of the affected area will take years to re grow.

One more important reason of such wildfire is stated to be burning of dry grass by the Agriculturists, interestingly in India burning of Parali, kind of dry grass also takes place in the start of the year though since last 1-2 years the National Green Tribunal in India took the initiative to ban the same yet in the vicinity States of the Capital of India it briskly takes place whereby the smog wraps the entire region and the level of Pollution reaches to the alarming state which once led to the introduction of odd-even formula of allowing Motor Vehicles to run on the roads of the Capital which has got a Population of around 1.9 crores.

---

\* *Assistant Professor, Shambhunath College of Education, Jhalwa, Prayagraj (U.P.)*

On 26 June when the temperature of 38 degrees was recorded in the Arctic Region, the World Meteorological Organization had stated to check the data to verify this historical rise in the mercury. From January through May in north central Siberia the temperature remains around 8 degree above average. Its unusually warm in this period of the region. One will not be oblivious of the fact that snow was brought and laid on the St. Petersburg Streets to unabate the celebration fervour as the temperature was risen and the roads and streets were devoid of any snow.

The burning of Parali kind of grass and often the encroachers too to occupy more of the forest adjacent area set the fire on but the fire becomes mighty and the Administration by all means is incapacitated to stop it. In the State of Uttarakhand of India often such fires gone uncontrolled while the entire region is cool with comparatively low temperature and average annual rainfall around 1285mm.

This phenomena is observed worldwide that too when people are spending more to cop up with the environment every year subsequently in the form of varied kind of taxes they have to pay to the Governments thus there is a vicious circle yet none is ready to understand the devolution. The Global Air Conditioning Market size was US \$102.02 Billion in 2018. The CEO of the Panasonic India in 2019 was overjoyed to note that 25% Increase in Selling of Airconditioners has been observed. One will be startled to find that Indian ACs market is 6 Million Units annual whereby it is understandable that the ratio is very wide and entirely against the Environment.

From January to October Brazil had witnessed 77% more fire events in comparison to 2018. An image released by the Terra Satellite of the NASA in August 2019 showed almost the entire Latin America burning. There is nothing unusual in fire events in the Amazon during the dry season but the sudden spike is worrisome factor world over. As in terms of the fire events the year of 2019 proved to be the worst year in our history. Douglas Morton who heads the Biospheric Sciences Laboratory at NASA's Goddard Flight Space Center had stated that timing and location of the fires were more consistent with land clearing than with regional drought. Activists had alleged that Brazilian President Jair Bolsonaro had encouraged such tree clearing activities whereon he had banned such actions for 60 days deploying 44,000 Soldiers accepting 4 Planes to stop the fire from the Chilean Government.

There has been large percentage increase in fires especially in the areas of Acre, Rondonia, Roraima and Amazonas in comparison to past years. It is to be noted that the gravity of the fire had forced the State of Amazonas to declare State of emergency. Scale of clearing areas has almost tripled. Deforestation is being cited as the invincible reason of fires in Brazil. National Institute for Space Research has released Data formulating the clearing of around 2250 Sq. Kms since the President Jair Bolsonaro took over the Office in January 2019. The Smoke has travelled as far as the Atlantic Coast. Amazon Basin which is home to around 3 million species is possibly the biggest regulator of the Carbon emission world over but this unprecedented fire will considerably reduce its capacity to absorb. Venezuela is not lagging behind as it has also reported more than 26000 fires by the end of August 2019. The forests were ablaze even in the start of July 2020.

Albeit the most prosperous State in USA also witnessed a historical fire incident wherein the entire 'Paradise' in California was burnt. This Incident occurred in October 2019 left nothing survived in Paradise where possibly most expensive homes were made but reduced to ashes. Nothing could stop the fire as it raged more and more causing damages to the illogical proportions. The Yankees experienced

the historical Black out and state of emergency. Power Companies were more busy in locating the damaged Power cables than to restore the Power supplies.

Thus the 'Fire' may be seasonal but the Cost of it will have to be paid by us and by the coming generations throughout. For the petty gains world over, the damage caused to the environment is irreparable. The petty Campfire at Siberia or burning of Parali in India have brought heavy consequences. Clearing of forests in Amazon will certainly invite backlash from the mother nature to which even the 21st Century may surrender. Best means by the richest Nations failed miserably checking the fires yet the Civilization is not ready to accept the supremacy of NATURE.

#### **References**

1. Explanation offered by Amber Soja, a NASA and National Institute of Aerospace Associate Research Fellow in his Field Research in the Region.
2. NASA Report Dated July 02, 2020
3. MODIS Report dated June 22, 2020
4. Newsweek Article/report by Artistos Georgio dated 24.06.2020
5. Excerpt from the Report by Elizabeth Claire Alberts of 'Mongabay' dated 23 July 2020
6. Report dated 27 May 2020 from indiatimes.com
7. Siberian Times Report dated 08 May 2020

\* \* \* \* \*

## मूल्य आधारित शिक्षा का जीवन में महत्त्व

डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय\*

‘मूल्य’ हमारी संस्कृति का ही एक भाग है, समाज के पथ के अनुरूप सभ्यता के अनुसार ‘मूल्य’ धीरे-धीरे संस्कृति के परिवर्तन के साथ-साथ घटते-बढ़ते, बदलते रहते हैं ‘अब्राहम मैसलो’ का विचार है कि व्यक्ति किसी भी स्तर पर पूर्णतः संतुष्ट नहीं होता है। आवश्यकताएं उसे अभिप्रेरित करती रहती हैं। अर्थात् आवश्यकताओं की क्रमबद्धता चलती रहती है। यही जीवन का दर्शन है।

मूल्य आधारित शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षा से है जिसमें हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य समाहित होते हैं। इसमें विभिन्न विषयों को मूल्य परक बनाकर उसके माध्यम से विभिन्न मूल्यों को छात्रों के व्यक्तित्व में समाहित करने पर बल दिया जाता है जिससे उनका संतुलित और सर्वोन्मुखी विकास हो सके। यह वह शिक्षा है जो विद्यालय प्रांगण व उसके बाहर अनौपचारिक रूप से बालक को विकास व व्यवहार की उचित दिशा प्रदान करती है।

सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा मूल्य विषय पर चर्चा करते हुए ‘ब्रेकम बर्नहम’ ने जीवन में मूल्यों के महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहा है, कि किसी भी विषय पर हमारे विचार, हमारे जीवन की पद्धतियों का मूल्यांकन करते हैं। हमारे मूल्यों के लिए संघर्ष करते हैं, जबकि वे घटनाओं के साधारण क्रम में पर्याप्त होते हैं, मूल्य हमारे अन्दर पूर्वकालिक रचना के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

सफलता स्वयं के मूल्यों एवं राष्ट्रीय, मानवीय और सार्वभौमिक मूल्यों के बीच सन्तुलन व समरूपता पर निर्भर करती है क्योंकि यही मूल्य सफलता-असफलता के लिए तुलनात्मक कसौटी प्रस्तुत करते हैं। मूल्य आधारित शिक्षा के लिए आवश्यक है कि ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाय जो बालक में स्वतः ही मूल्यों का परिचय देकर उसे प्रेरित करे। साथ ही पढ़ाये जाने वाले विषय की ओर ध्यान आकृष्ट कर उन्हें विकसित करे। इसके अतिरिक्त धार्मिक, सामाजिक उत्सवों के माध्यम से भी मूल्यों का विकास किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति आदर्श एवं मूल्यों के अनुरूप ढलना चाहता है और बाधक वृत्तियों से बचना चाहता है। इस इच्छा की पूर्ति न हो पाने के कारण व्यक्ति के उत्साह में कमी पायी जाती है। वह ऊर्जा में ह्रास का अनुभव करता है तथा उसमें हीनता, निराशा व निरर्थकता के भाव उत्पन्न होते हैं। मूल्यों से भटकाव व्यक्ति में भाव शून्यता एवं निराशावाद की ओर संकेत करता है। व्यक्ति में सांवेगिक पृथक्ता, आशा का अभाव, निषेधात्मक भाव, आत्मविश्वास का अभाव, आत्म आदर का अभाव, सामाजिक अयोग्यता, आत्मालोचन आदि अनेक मनो-शारीरिक लक्षणों के कारण व्यक्ति में मूल्य-विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

भारतीय शाश्वत, सनातन मूल्य निरन्तर कमजोर पड़ते जा रहे हैं। हमारा शिक्षक भी इससे प्रभावित होने से बच नहीं पा रहा है। चूंकि शिक्षकों में अपने कार्य के प्रति असंतोश, अत्यधिक उत्तरदायित्व, अपर्याप्त वेतन, प्रोन्नति के अल्प अवसर, अनुपयुक्त कार्य दशाएँ, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ, उपयुक्त समायोजन का अभाव, अत्यधिक कार्यभार, कार्य असन्तोष, चिन्ता आदि पाया जाता है जिससे सम्पूर्ण जीवन के प्रति शिक्षकों का दृष्टिकोण बदल जाता है व उनके मूल्य प्रभावित होते हैं। ये समस्याएँ सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त और निजी क्षेत्र के अध्यापकों में व्यापक रूप से पायी जाती है जिससे उनमें मूल्यों के प्रति समर्पण भाव की कमी पायी जाती है और उनमें मूल्यों के प्रति प्रतिकूल एवं अस्वस्थ मनोवृत्ति का विकास हो जाता है। आज की शिक्षा प्रणाली इतनी दूषित हो गयी है, कि इसमें मूल्यों का स्थान नहीं रहा। भारतीय शिक्षा के इसी दोष की ओर संकेत करते हुए सन् 1952 में कानपुर

\* एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़, झारखण्ड

में अखिल भारतीय कांग्रेस में 40वें अधिवेशन में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए भारत कोकिला सरोजनी नाइडू ने कहा था— “हमारी शिक्षा ने हमें उपयुक्त मानसिक मूल्यों एवं पृष्ठभूमि से रहित कर दिया है, तथा आत्मप्रकाशन की अधिकार पूर्ण शैली को खोजने में जो सच्ची लगन एवं मौलिकता की अपेक्षा है, उससे भी वंचित कर दिया है।” किसी भी शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, वह शिक्षण के लिए उपयुक्त वातावरण तभी निर्मित कर सकता जब वह स्वयं मान्य एवं स्थापित मूल्यों के प्रति पूर्णतः समर्पित हो।

वर्तमान शोध अध्ययन के परिणामस्वरूप यह पाया गया कि सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त एवं निजी क्षेत्र में कार्यरत शिक्षक-शिक्षिकाओं के मूल्यों में सार्थक अन्तर है, जो समाज एवं व्यक्ति के विकास में बाधक है। इन कारणों को ज्ञात करके इन्हें दूर करने के प्रयास किये जा सकते हैं जिससे नकारात्मक मूल्यों का प्रभाव उनकी शिक्षण पद्धति एवं व्यवहार में न पड़े व उससे जुड़े विद्यार्थी इस समस्या से प्रभावित होने से बच सकें। क्योंकि शिक्षक एवं शिक्षार्थी एक दूसरे के पूरक होते हैं।

व्यक्ति जब बालक के रूप में इस संसार में प्रवेश करता है तो उसके साथ उसका अविकसित शरीर, मस्तिष्क तथा कुछ गुण जैसे मूल प्रवृत्तियाँ आदि निहित रहती है जो कि जन्मजात विशेषताएँ कही जाती हैं। सामाजिक प्राणी होने के कारण धीरे-धीरे व्यक्ति का विकास स्वाभाविक रूप से होता रहता है। इस विकास काल में अपनी जन्मजात विलक्षणताओं के आधार पर वह नाना प्रकार की कुशलताएँ अथवा योग्यताएँ जैसे-चरित्र, रुचियों, आदतों, दृष्टिकोण तथा विचार आदि विकसित कर लेता है। व्यक्ति के विचार, दृष्टिकोण आदि को ही दूसरे षड्यों में मूल्य कहते हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति का विकास होता है, वैसे-वैसे वातावरण से समायोजित करने के लिए उसकी इन जन्मजात एवं अर्जित विलक्षणताओं में संगठित रूप से परिवर्तन एवं परिमार्जन होता रहता है।

इनमें कुछ विलक्षणताएँ जैसे व्यक्ति का शरीर, उसकी मुखमुद्रा, उसकी वेशभूषा एवं बोल-चाल आदि व्यक्तित्व के वाह्य पहलू के अन्तर्गत आती है अथवा जो विलक्षणताएँ व्यक्ति के शरीर से सम्बन्धित होती हैं, वे व्यक्ति के वाह्य पहलू का प्रतिनिधित्व करती हैं। शेष विलक्षणताएँ जैसे बुद्धि, योग्यता, आदतें, इत्यादि आन्तरिक पहलू के अन्तर्गत आते हैं अथवा ये विलक्षणताएँ मनुष्य के मस्तिष्क से सम्बन्धित रहती हैं, वे आन्तरिक पहलू का प्रतिनिधित्व करती हैं।

व्यक्ति के व्यक्तित्व में इन शारीरिक तथा मानसिक विलक्षणताओं के अतिरिक्त सामाजिक विलक्षणताएँ भी पायी जाती हैं। वह जिस समाज में रहता है, उसके साथ अनुकूलन करता है तथा समाज का समायोजित सदस्य बनने का प्रयत्न करता है जिसके फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व में सामाजिक मूल्यों का विकास होता रहता है। जैसा कि जी० डब्ल्यू० आलपोर्ट ने कहा है—

“व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोशारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो उसके वातावरण से समायोजन को निर्धारित करता है।”

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में गुणों, व्यवहार, योग्यता, रुचि, आदत, अभिवृत्ति आदि को सम्पूर्ण रूप से जाना जाता है। मन के अनुसार —

“व्यक्तित्व एक व्यक्ति के संगठन, व्यवहार की रीति, रुचियों, अभिरुचियों तथा दृष्टिकोण को जन्म देती है जिन्हें मूल्य कहा जाता है। इस प्रकार मूल्य व्यक्तित्व के अभिन्न अंग है। मूल्यों के बिना व्यक्तित्व अधूरा है।

सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं। पहली आवश्यकता वैयक्तिक है जिसे दार्शनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने भावात्मक क्रियाओं के रूप में भी देखा है।

दूसरी आवश्यकता सामाजिक तथा आध्यात्मिक बतायी गयी है। इसके अन्तर्गत मानवीय साहचर्य, आर्थिक सुरक्षा और पारिवारिक जीवन आते हैं। मनुष्य इन आवश्यकताओं के बिना जीवित नहीं रह सकता। इसकी संतुष्टि एवं प्राप्ति के लिए वह विभिन्न प्रतिक्रियाएँ देता है। इनका प्रयोग मानव जीवन के मूल्यों के विकास के लिए करता है। मूल्य इस प्रकार व्यक्ति के जीवन या प्रत्येक क्रिया व्यवहार से सम्बन्धित है।

मनुष्य अपने को समाज के अन्तर्गत उच्च प्रतिष्ठित एवं समायोजित रूप से देखना चाहता है। उसकी कामना तथा प्रयास सदैव उसे उच्च रूप में प्रदर्शित होने का होता है। जिससे वह प्रतिष्ठापूर्वक जीवनयापन कर सके। इस प्रकार मानव जीवन में मूल्य अपना विशेष महत्व रखते हैं। मूल्यों की उत्पत्ति समूह से होती है तथा प्रत्येक मूल्य समाज की रुचियों के अनुकूल होते हैं।

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र' के अन्तर्गत लिखा है कि समूह द्वारा प्रदान किये गये प्रतिमानों, आदर्शों की प्राथमिकता ही सामाजिक मूल्यों का रूप ले लेती है। कुछ व्यक्तिगत मूल्य भी होते हैं जिनका जन्म व विकास अनुभव के साथ-साथ होता है। अनुभव के आधार पर ही व्यक्ति कुछ सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण करता है जो जीवनदर्शन का रूप ले लेता है जिन्हें मूल्य कहते हैं। अतः व्यक्ति को समाज में समायोजित होने के लिए मूल्यों का स्थान महत्वपूर्ण है।

#### सन्दर्भ-सूची

1. कोली, लक्ष्मीनारायण, रिसर्च मेथडोलॉजी (2003), वाई0के0 पब्लिशर्स, आगरा
2. लाल, जयन्ती और जे0, राना, माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण को प्रभावित (1992) करने वाले घटक, नया शिक्षक, वाल्यूम-34, सं0-3
3. मोरिल, आर0एल0, टीचिंग वैल्यूज इन कालेज (1980), जासीवास पब्लिशर्स, फ्रेन्सिस्को
4. पाण्डेय, रामशकल, मूल्य शिक्षण, (2003) विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. राय, बी0एस0के0, मैन, एजुकेशन एण्ड वैल्यूज (1980), पंग्विन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
6. सुखिया, एस0पी0, विद्यालय प्रशासन, संगठन व स्वास्थ्य शिक्षण, (2005) माडर्न प्रिन्टर्स, आगरा
7. पुस्कन, देव, (2003) टीचर्स ट्रेनिंग, कर्मभूमि प्रकाशन, लखनऊ

\* \* \* \* \*



## वर्तमान समय में प्रचलित दूरस्थ शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का अधिगम में योगदान

डॉ. गिरजा प्रसाद मिश्र\*

आज की दूरस्थ शिक्षाप्रणाली हमारी शिक्षाव्यवस्था का अभिन्न अंग है जो वर्तमान में इक्कीसवीं सदी की शैक्षिक आवश्यकता को पूरा करने में सक्षम है। कुछ वर्षों पूर्व तक दूरस्थ शिक्षा औपचारिक की सहवर्ती या पूरक शिक्षा व्यवस्था मानी जाती थी लेकिन 21वीं सदी के पदार्पण के साथ ही दूरस्थ शिक्षा अपने अभिनव स्वरूप के साथ उभरी है। अब इसका अस्तित्व स्वतंत्र हो गया है।

दूरस्थ शिक्षा औपचारिक, अनौपचारिक तथा औपचारिकोत्तर शिक्षा के लक्षणों का सम्मिलित रूप है। दूरस्थ शिक्षा के विकास के साथ-साथ दूरस्थ शिक्षा के अर्थ में भी परिवर्तन होता रहा है। जैसे कि प्रारम्भ में 1850 से 1970 तक यह पत्राचार शिक्षार्थी, सन् 1970 से 1990 तक दूरस्थ शिक्षा को मुक्त शिक्षा कहा जाने लगा। 1990 के पश्चात यह कम्प्यूटर पर आधारित शिक्षा या वर्चुअल शिक्षा कहलाने लगी। वर्तमान समय में यह इन्टरनेट शिक्षा बेव की सहायता से शिक्षाया आन लाइन एजुकेशन का रूप लेती जा रही है अर्थात् दूरस्थ शिक्षा का एक विशिष्ट अर्थ नहीं हो सकता।

विभिन्न देशों में दूरस्थ शिक्षा को अन्य नामों से भी जाना जाता है— जैसे फ्रांस में टेली असाइनमेन्ट, जर्मनी में फर्म स्टूडियम, स्पेन आदि देशों में एजुकेशन ए डिस्टेंसिया, आस्ट्रेलिया में इक्सटर्नल स्टडीज या आफ कैम्पस स्टडीज, न्यूजीलैण्ड में एक्स्ट्रा मूलर, U.S. में होम स्टडीज या इंडिपेन्डेंट स्टडी तथा भारतवर्ष में ये पत्राचार शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा, मुक्त शिक्षा आदि नामों से प्रचलित है। अर्थात् हम कह सकते हैं कि दूरस्थ शिक्षा वह शिक्षा व्यवस्था है जिसमें विद्यार्थी शिक्षकों से भौगोलिक दृष्टि से दूर रह कर मुद्रित सामग्रियों तथा संचार माध्यमों के प्रभावशाली सम्प्रेषण द्वारा शिक्षा प्राप्त करते हैं।

दूरस्थ शिक्षाकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें शिक्षण के स्थान पर अधिगम पर अधिक बल दिया जाता है। यह सीखना विद्यार्थी के सुविधा या आवश्यकतानुसार होता है। विद्यार्थी अपने स्वचेष्टता तथा स्वक्रिया द्वारा शिक्षा प्राप्त करता है।

दूरस्थ शिक्षा का प्रमुख आधार संचार माध्यम है। आधुनिक समय में दूरस्थ शिक्षा बहु संचार माध्यमों पर आधारित हो रही है। यह मुद्रित माध्यमों, संचार माध्यम तथा बहु संचार माध्यमों जैसे सभी माध्यमों का संयुक्त प्रयोग कर अधिगम कर्ता को मानसिक रूप से जोड़कर शिक्षण अधिगम सुचारु रूप से चलाने की व्यवस्था है। यह विद्यार्थी को कठोर औपचारिक नियमों और समयसीमा में नहीं बांधती, यह समूह अधिगम के स्थान पर व्यक्तिगत अधिगम पर अधिक बल देती है।

वर्तमान समय में सूचना और संचार तकनीकी का प्रवेश जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो गया है। शिक्षा तकनीकी का पर्याय ही संचार तकनीकी बन गयी है। यूनेस्को ने मास्को में शिक्षा में तकनीकी की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नोलॉजी इन एजुकेशन की स्थापना की है जो ICT से सम्बन्धित नीतियों, शैक्षिक प्रशिक्षण और विकास कार्यक्रमों को देख रही है। यूनेस्को का क्षेत्रीय आफिस बैंकाक इस समय एशिया और प्रशान्त सागरीय क्षेत्र में शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर सूचना संचार तकनीकी के प्रयोग को प्रोत्साहित कर रहा है।

भारतवर्ष में सर्वप्रथम 10वीं पंचवर्षीय योजना में यह सुनिश्चित किया गया कि कॉलेज व विश्वविद्यालयी शिक्षकों को U.G.C नेट के द्वारा आपस में इन्टरनेट व इन्ट्रानेट के माध्यम से जोड़ा जाय तथा शिक्षकों व प्रशासकों को कम्प्यूटर और इन्टरनेट की साक्षरता प्रदान की जाय। विभिन्न मंत्रालयों U.G.C., N.C.T.E, NCERT, NEP। स्कूल बोर्ड तथा अन्य संगठन भी शिक्षा के क्षेत्र में ICT के प्रवेश को प्रोत्साहित करने के लिए सहायता प्रदान कर रहे हैं।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने यह अध्यादेश लागू किया की वे अपने पाठ्यक्रम में ICT को केन्द्रीय विषय के रूप में ग्रहण करें। CASE ने शिक्षा में संचार तकनीकी के प्रयोग की दृष्टि से बी0एड0 स्तर पर 2003 में अनिवार्य

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, पी.जी. कॉलेज, पट्टी, प्रतापगढ़

विशय के रूप में जू को पाठ्यक्रम में शामिल करने का प्रस्ताव दिया इसके साथ ICT का प्रयोग N.C.R.T के विद्यालयी पाठ्यक्रम तथा N.C.R.T के शिक्षण प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में ICT के सम्मिलित करने पर विशेष बल दिया क्योंकि ICT में कुशल शिक्षकों के अभाव में यह योजना क्रियान्वित नहीं हो सकती।

शिक्षा में ICT के क्षेत्र में कुछ प्रयास किये जा रहे हैं जो निम्न हैं:-

1. गोवा विश्वविद्यालय ने 2001 दूरदर्शन सेटेलाइट नेटवर्क 2. Mail, Fax तथा S.T.D के माध्यम से प्रशासन प्रबन्धन शिक्षण एवं मूल्यांकन के लिये अपने सम्बन्धित 25 महाविद्यालयों के साथ प्रयोगात्मक रूप में Internet स्थापित किया।
2. इग्नू अपने विभिन्न सर्टीफिकेट, डिप्लोमा और डिग्री कार्यक्रमों को C Band के माध्यम से टू वे कम्प्यूटरीकरण के द्वारा सहायता प्रदान कर रहा है।
3. ग्वालियर के लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान का पूरा कैम्पस नेटवर्क से जुड़ा है।
4. बड़ौदा विश्वविद्यालय अपने पूरे संकायों में Intranet via Internet सुविधायें क्रियान्वित कर रहा है।
5. देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर ग्रामीणों के लिये कम्प्यूटर साक्षरता चला रहा है।
6. रूहेलखण्ड वि.वि. में इन्स्टीट्यूट आफ एडवान्स स्टडीज आफ एजुकेशन में एक अच्छा विकसित वीडियो स्टूडियो, मल्टी मीडिया लैब एवं कम्प्यूटर प्रयोगशाला विकसित किया है।

भारत वर्ष में अभी तक शिक्षा में ICT के जितने भी प्रयास किये गये हैं उनकी संख्या संतोषजनक नहीं है। शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में उपयुक्त स्तर की ICT की सुविधा उपलब्ध नहीं है। आज जबकि पूरा विश्व शिक्षण अनुदेशन की पुरानी विधियों को छोड़ कर आधुनिक शिक्षा की ओर अग्रसर है वहीं हम कक्षा शिक्षण की पुरानी विधि चाक एण्ड टाल्क से ही काम चला रहे हैं। यदि किसी शिक्षण संस्थान में ICT प्रयोगशाला है भी तो केवल प्रदर्शनी के लिये है प्रयोग के लिये नहीं विद्यालयी शिक्षा का शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं, राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार का आपस में ताल-मेल नहीं है जिसके कारण ICT से सम्बन्धित नीतियों का क्रियान्वयन सम्भव नहीं है। विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा के शिक्षकों के ओरियन्टेशन और पुनश्चर्या कार्यक्रमों का संचालन करने वाले एकेडमिक स्टाफ, कालेज A.S.C के पास भी ICT से सम्बन्धित सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से यह मालूम होता है कि शिक्षा में ICT के क्षेत्र में शासन, प्रशासन एवं संस्थाओं को बहुत कुछ करना शेष है। शिक्षा में ICT के प्रयोग को प्रभावी बनाने के लिये सरकार के द्वारा जो भी प्रयास किये जा रहे हैं वह अपर्याप्त हैं क्योंकि जो भी योजनायें क्रियान्वित की जाती हैं उसका क्रियान्वयन व मूल्यांकन ठीक ढंग से नहीं हो पा रहा है क्योंकि किसी भी योजना को क्रियान्वित करने के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति, सरकारी प्रशासन का योगदान तथा मूल्यांकन असंभावी होता है। इसके बिना अच्छे परिणाम की आशा नहीं कर सकते हैं।

शिक्षा में कम्प्यूटर माध्यम की सहायता से शिक्षण के लिये शिक्षकों को ही ICT के प्रयोग हेतु सक्षम बनाना होगा। शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम के साथ ICT को समाकलित करना होगा। इसमें राज्य सरकार, केन्द्र सरकार, निजी व प्राइवेट संस्थाओं को भी शिक्षा में ICT के प्रयोग के लिये शिक्षा के क्षेत्र में उतरना होगा।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग जीवन का अभिन्न अंग बन गया है, इसके बिना समसामयिक परिप्रेक्ष्य में वैश्विक साक्षरता की कल्पना तक नहीं की जा सकती। यह जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है, इसके द्वारा कम समय एवं कम खर्च में हम किसी काम को सुव्यवस्थित ढंग से अधिक प्रभावशाली रूप में स्थापित कर सकते हैं। इसका प्रयोग सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है, इसलिए यह अनिवार्य हो गया है कि बालकों में प्रारम्भ से ही प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ICT के प्रयोग को प्रभावी ढंग से लागू किया जाय तथा उसका आउटपुट प्रभावी एवं उत्साहवर्धक हो जिससे वर्तमान समय के प्रति स्पर्धात्मक वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हम अपने को स्थापित कर सकें। इससे हमारा तथा हमारे देश का एवं समाज का विकास सम्भव हो सकेगा। यह हम सबकी जिम्मेदारी है।

#### सन्दर्भ-सूची

1. डॉ० रामशकल पाण्डेय, शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ
2. प्रो० एस०पी० गुप्ता, शोध सन्दर्शिका
3. प्रो० एस०पी० गुप्ता, भारत में शिक्षा का विकास एवं समस्याएं
4. डॉ० प्रतिभा उपाध्याय, शिक्षा की समसामयिक समस्याएं

\* \* \* \* \*

## वर्तमान शैक्षणिक व्यवस्था एवं छात्रों का भविष्य

कल्पना यादव\* डॉ. धीरेन्द्र सिंह यादव\*\*

मनुष्य का अस्तित्व प्रकृति से माना जाता है। मनुष्य के द्वारा ही अपनी सभ्यता का विकास किया गया है। प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने की उसकी क्षमता ने ही उसे शिक्षा की ओर प्रोत्साहित किया है। शिक्षा का विकास करने का श्रेय भी मनुष्य को जाता है। भारत में प्राचीन काल में वेदों तथा धर्म ग्रन्थों को शिक्षा का आधार माना जाता था। उस समय शिक्षा का उद्देश्य बालक में भौतिक विकास करना तथा उसमें अनुशासन भावों को उत्पन्न करना

भारतीय शिक्षा में जो गुरुकुल परम्परा की रचना ऋषि-मुनियों के द्वारा की गयी थी वह विश्व भर में एक आदर्श परम्परा मानी गई। समय का चक्र एक अश्व की तरह धरती को रौंदता चला आ रहा है। प्रत्येक युग में व्यक्ति और समाज अपनी प्रथाओं, रीति रिवाजों अपनी सभ्यता और संस्कृति को जी कर नये समय का इन्तजार करते हैं। 21वीं सदी तक आते-आते अतीत और आधुनिकता का द्वन्द्व पैदा हो गया और शिक्षा के आकार एवं प्रकार दोनों ने ही पश्चिमी शिक्षा के संस्थागत स्वरूप को ही शिक्षा का माध्यम मान लिया।

जब समाज आधुनिक होता है तब उसमें समाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन होन के साथ वित्त व्यवस्था का औद्योगीकरण भी हो जाता है। आज लोगो को अपने बच्चों के लिये प्राइवेट (पब्लिक स्कूल) चाहिये, प्राइवेट इलाज चाहिये, प्राइवेट संसाधन चाहिये। फिर नोकरी क्यों सरकारी चाहिये। वर्तमान समय में शिक्षा और शिक्षक की रचनात्मक चुनौतियां सामने हैं। सरकारी अध्यापक प्रशिक्षण लेकर आते हैं फिर भी प्राइवेट विद्यालयों के बच्चों सरकारी स्कूल के बच्चों से हर क्षेत्र में आगे निकल रहे हैं। जब तक सभी मनुष्यों को सामान्य अवसर नहीं मिलते तब तक अनेक प्रतिभाएँ तो अज्ञान होकर ही विदा लेती हैं। आज ग्रामीण क्षेत्रों से ही ज्यादातर प्रतिभाएँ आगे आ रही हैं लेकिन उन्हें और आगे जाने के लिए संसाधन नहीं मिल पाते हैं। ग्रामीण बच्चों को पर्याप्त संसाधन नहीं मिल पा रहे हैं। और नगरीय क्षेत्रों को नैतिक मूल्यपरक शिक्षा में गिरावट दिख रही है। ईसाई मिशनरियों ने तो पाश्चात्य शिक्षा को शिक्षा का माध्यम बना कर समाज को दो धड़ों में विभक्त कर दिया है। एक और गाँवों की 70 प्रतिशत आबादी शिक्षा की शुरुआत साक्षरता से कर रही हैं वहीं नगरीय कानवेन्ट स्कूल की संस्कृति बच्चों को वस्तु ज्ञान अंग्रेजी में हैं मातृभाषा से वस्तु की पहचान ही नहीं है। (दवे रमेश 2007, हम और हमारी शिक्षा, शालिनी प्रकाशन, शिवकुटी इलाहाबाद)<sup>2</sup>

वर्तमान शिक्षा का आधार मात्र जीविकोपार्जन रह गया है और समाज में टेक्निकल शिक्षा को प्रतिष्ठित दृष्टि मिल रही है। वहीं व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त छात्र बेरोजगारों की भीड़ में शामिल हो रहे हैं। शिक्षित बेरोजगार की स्थिति तो ऐसी है न तो वह अच्छी नोकरी पा रहे हैं और न ही कृषि उद्योग या अर्थोपार्जन के संसाधन ढूँढ पा रहे हैं। वर्तमान की शैक्षिक संस्थाएँ छात्रों को डिग्री तो बाट रही है पर जीवनयापन करने का मार्ग प्रशस्त नहीं कर रही हैं। निजी शिक्षण संस्थानों का जगह-जगह खुलना तो यह दर्शाता है कि समाज और शिक्षा की ओर अग्रसर हैं। लेकिन देश की बेरोजगारी उन संस्थानों की व्यापारिकता दर्शा रही है। (मिश्र राजेन्द्र, तिवारी प्रहलाद 2010, आधुनिक शिक्षा की चुनौतियां, विद्यार्थी प्रकाशन कृष्णा नगर दिल्ली)<sup>3</sup>

शिक्षा में लगातार सुधार तथा परिवर्तन की आवश्यकता शैक्षिक प्रगति का ही नहीं देश की प्रगति का भी आधार है। सामान्य शिक्षा के लिए सभी स्तरों पर कार्य-अनुभव और समाज-सेवा अनिवार्य होनी चाहिये। नैतिक शिक्षा

\* पी.एच.डी. शोध छात्रा, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

\*\* बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

पर बल तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करना स्कूलों की जिम्मेदारी हैं। पाठ्यक्रमों में उन बातों को सम्मिलित किया जाये जो राष्ट्रीय एवं सामाजिक विकास में बच्चों का भावी सम्बन्ध हो।

आज शिक्षा का निजीकरण तेजी से बढ़ रहा है ठीक वैसी ही जैसे वैश्वीकरण हावी हो रहा है। शिक्षा के गुणवत्ता में समाज के हर वर्ग की रुचि बढ़ी है। शैक्षिक नीतियां तथा नियम इस स्थिति को समझने तथा इसका उचित उपयोग करने की ओर ध्यान देकर शैक्षिक सुधार आदि छात्रों के स्वर्णिम भविष्य के लिये नये क्षितिज ढूँढ़ रहे हैं। शिक्षा में सहयोग तथा सहायता देने के लिये समाज के हर वर्ग में उपस्थित भावना को यदि सम्मानपूर्वक स्वीकार किया जाये तो शैक्षिक व्यवस्था में सुधार करके छात्रों के भविष्य के लिये कठोर कदम उठाने होंगे। अभी तो दौर उन लोगो का ही अधिक है जो नई शब्दावली के अनुसार शिक्षा को एक सुनिश्चित व्यापार का अवसर मानकर नये-नये पब्लिक स्कूल खोले जा रहे हैं तथा साधनों एवं सुविधाओं का समायोजन कर रहे हैं। (शर्मा डॉ० राजेन्द्र 2009, नैतिक मूल्य शिक्षा, विवेक बाहरी पुस्तक संसार जयपुर)<sup>4</sup>

आज नई युवा पीढ़ी (छात्रों) के सामने सबसे पहले चिन्ता है अपना भविष्य, एक अच्छा जीवन जीने की आकांक्षा और इसके लिये उन्हें चाहिये अच्छी और उपयोगी तथा भविष्योन्मुखी शिक्षा। अब केवल डिग्री पा लेना ही काफी नहीं है। भारत में लगभग 18-30 आयुवर्ग के 30 करोड़ युवा हैं। ये आज गाँवों, कस्बों तथा बड़े शहरों में बिखरे हुये हैं। क्या इनकी नीयति केवल रोजगार के अधिकार के अधिनियम तक ही सीमित रह जायेगी। युवा छात्र सृजनात्मक आज अवसरहीनता तथा शोषण की शिकार हो रहे हैं और इस ओर ध्यान न देना देश के भविष्य के साथ खिलवाड़ करना है। लाखों बच्चों बीच में ही शिक्षा छोड़ दे रहे हैं जिनमें ज्यादातर संख्या लड़कियों की हैं। करोड़ो युवा बेकार है काम करने की प्रतिक्षा में प्रौढ़ और बूढ़े हो रहे हैं। आज भी नई शिक्षा नीति के तहत 1 से 14 वर्ष के बच्चों को शिक्षा के मूल अधिकार के बावजूद स्कूल से बाहर हैं। (राजपूत जगमोहन सिंह 1999, क्यों तनावग्रस्त हैं शिक्षा व्यवस्था, किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड़ दरियागंज नयी दिल्ली)<sup>5</sup>

अतः छात्रों के भविष्य को दृष्टिगत रखते हुये पाठ्यक्रमों में रोजगारपरक शिक्षा को जोड़ना आवश्यक होगा वर्तमान में अध्यापकों को अपनी नैतिक जिम्मेदारी के साथ-साथ छात्र को एक अच्छे नागरिक के रूप में तैयार करने की भी जिम्मेदारी लेनी होगी छात्र डिग्री लेकर न बैठे अपितु समाज के विकास में उसकी शिक्षा सार्थक हो इसके लिये शिक्षक, पाठ्यक्रम, शिक्षा आयोग और छात्रों से छात्रों के अनुरूप समय-समय पर सुझाव लेते रहने से छात्रों के उज्ज्वल भविष्य की नींव गढ़ी जा रही है। (शास्त्री मदन गोपाल 2003, शिक्षक समाज की व्यथा कथा, शिलालेख सुभाष गली विश्वास नगर शाहदरा दिल्ली)<sup>6</sup>

#### सन्दर्भ-सूची

1. बक्शी एन.एस. 2014, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, प्रेरणा प्रकाशन दिल्ली
2. दवे रमेश 2007, हम और हमारी शिक्षा, शालिनी प्रकाशन, शिवकुटी इलाहाबाद
3. मिश्र राजेन्द्र, तिवारी प्रहलाद 2010, आधुनिक शिक्षा की चुनौतियां, विद्यार्थी प्रकाशन कृष्णा नगर दिल्ली
4. शर्मा डॉ० राजेन्द्र 2009, नैतिक मूल्य शिक्षा, विवेक बाहरी पुस्तक संसार जयपुर
5. राजपूत जगमोहन सिंह 1999, क्यों तनावग्रस्त हैं शिक्षा व्यवस्था, किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड़ दरियागंज नयी दिल्ली
6. शास्त्री मदन गोपाल 2003, शिक्षक समाज की व्यथा कथा, शिलालेख सुभाष गली विश्वास नगर शाहदरा दिल्ली

\* \* \* \* \*

## भारत में लिंगानुपात : एक विश्लेषण

(जनगणना 2001 एवं 2011 के संदर्भ में)

डॉ. अहिल्या तिवारी \*

**सार-संक्षेप**—पिछले दो दशकों में जनसंख्या में एक नया असंतुलन लिंग अनुपात में भारी बदलाव के तहत उभर कर सामने आया है। यह सही है कि वर्ष 2001 की जनगणना के आधार पर देश के प्रति हजार पुरुषों पर 933 महिलाएं हैं जो कि वर्ष 1991 की जनगणना के 927 के आँकड़ों से अधिक है, परन्तु यदि शून्य से 6 वर्ष तक के बच्चों का लिंग अनुपात देखा जाए तो स्थिति की भयावहता स्पष्ट हो जाती है। पिछले दस वर्षों में यह 945 से गिरकर 927 प्रति हजार पुरुषों तक पहुँच गई है। 6 वर्ष से कम आयु वाला आबादी का यह वर्ग जिसे आज से 10-15 वर्ष बाद देश की वयस्क जनसंख्या में शामिल होना है उस समय का लिंगानुपात आज से भी कम होगा।

**शब्द-कुंजी**—लिंगानुपात, प्रावधान, पितृसत्तात्मक, क्रियान्वयन, परीक्षण, डिमार्क, असंतुलित, विसंगति, जनगणना, असमानता, भयावहता, प्रबंधन, वंचित, सोनोग्राफी।

**प्रस्तावना**—प्राचीन काल से संसार में स्त्री एवं पुरुष दो लिंगों का उल्लेख रहा है; जिसमें स्त्री एवं पुरुष एक गाड़ी के दो पहिए के समान होते हैं, यदि एक पहिया खराब हो गया तो गाड़ी चलाने में परेशानी होती है, परन्तु यदि एक ही पहिया हो तो गाड़ी चलना तो दूर, हिल भी नहीं सकती। यही स्थिति हमारे समाज की भी है, जिसमें स्त्री एवं पुरुष दोनों का समान अनुपात होना अनिवार्य है, वरन् सामाजिक संरचना में बहुत समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। पिछले कुछ दशकों में हम इन्हीं समस्याओं से जूझ रहे हैं। स्त्री एवं पुरुषों का अनुपात असंतुलित हो रहा है जिस कारण कई सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं, जिसे दूर करना एक चुनौती के रूप में हमारे सामने है। आज घटता लिंगानुपात के कारण तो असंख्य हैं, किन्तु निवारण नहीं के समान है। जिस युग में दोनों को समान दर्जा दिया गया था लेकिन जब से दोनों में असमानता या भेदभाव बरती गई तब से दोनों के अनुपात में अंतर आने लगा जो अब विकराल रूप लेने लगा है। ऐसे में समाज का अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

लिंगानुपात या लिंग का अनुपात से तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष में पुरुष एवं स्त्री की संख्या के अनुपात को कहते हैं। प्रायः किसी भौगोलिक क्षेत्र में प्रति हजार पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों की संख्या को इसकी इकाई माना गया है।

21वीं सदी का भारत जो विकास के पथ पर अग्रसर है अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना कर रहा है, वहाँ घटता लिंगानुपात एक चिंताजनक तस्वीर बना रहा है। 2011 के आँकड़ें हमारे सामने आ चुके हैं। 1901 में जहाँ प्रति 1000 पुरुषों पर 972 महिलाएं थीं वहीं 2011 में यह आँकड़ा 943 पर आकर सिमट गया है।<sup>1</sup>

कन्या भ्रूण हत्या ने इस समस्या को और भयावह बना दिया है। एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक छठी कन्या को जन्म लेने से पहले ही मार दिया जाता है। इंडियन मेडिकल एसोसिएशन का मानना है कि देश में प्रतिवर्ष 50 लाख कन्या भ्रूण हत्या होती है। आँकड़ें चिन्ताजनक हैं और यही लिंगानुपात में असमानता की बड़ी वजह है। घटते लिंगानुपात ने समाज में अनेक विसंगतियों को जन्म दिया है, शादी के लिए वधु का न मिलना, साथ ही उन पर होने वाले अपराधों में वृद्धि होना।

पिछले दो दशकों में जनसंख्या में एक नया असंतुलन लिंग अनुपात में भारी बदलाव के तहत उभर कर सामने आया है। यह सही है कि वर्ष 2001 की जनगणना के आधार पर देश के प्रति हजार पुरुषों पर 933 महिलाएं हैं जो कि वर्ष 1991 की जनगणना के 927 के आँकड़ों से अधिक है, परन्तु यदि शून्य से 6 वर्ष तक के बच्चों का लिंग अनुपात देखा जाए तो स्थिति की भयावहता स्पष्ट हो जाती है। पिछले दस वर्षों में यह 945 से गिरकर 927

\* सहायक प्राध्यापक, अध्यापक शिक्षा संस्थान, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर

प्रति हजार पुरुषों तक पहुँच गई है। 6 वर्ष से कम आयु वाला आबादी का यह वर्ग जिसे आज से 10-15 वर्ष बाद देश की वयस्क जनसंख्या में शामिल होना है उस समय का लिंगानुपात आज से भी कम होगा।<sup>2</sup>

वर्तमान में हम जितने आधुनिक होते जा रहे हैं, उतने ही सामाजिक समस्याओं से घिरते भी जा रहे हैं। आज जितनी भी सरकारी योजनाएँ लागू हो रही हैं, उन सभी योजनाओं की पुनर्व्याख्या करनी होगी। लिंग परीक्षण के लिए कानून बनाना ही पर्याप्त नहीं है, उसके लिए कड़े एवं मजबूत प्रबंधन एवं उसकी अनिवार्यता को भी लागू करने की आवश्यकता है।

**कारण**—भारत में हर राज्य की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पहचान है। यही पहचान विभिन्नता के कारक भी है और विशेषता भी है और यही कारण है कि प्रत्येक राज्यों की लिंगानुपात भी घटते-बढ़ते क्रम में है, क्योंकि लिंगानुपात कम होने का कारण प्राकृतिक नहीं है और न ही किसी विशेष वर्ग में व्याप्त है। समाज के सभी वर्गों से इसका संबंध है। यह देश की सभी जातियों, वर्गों, समुदाय एवं हिस्सों में व्याप्त है। ऐसा भी नहीं है कि ये पुरानी परंपरा है। यह आधुनिक समाज एवं आधुनिक सोच में भी पैठ बनाए हुए है। जैसे-जैसे हम आधुनिक होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे ही विचारशून्य भी हो रहे हैं। आधुनिक टेक्नोलॉजी हमें लाभ कम हानि अधिक पहुँचा रहा है। यदि कारणों की बात करें तो सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारणों को प्रमुख माना जा सकता है।

**सामाजिक कारण**—पितृसत्तात्मक मानसिकता ही घटते लिंगानुपात का मुख्य कारण है। यहाँ पुरुष वर्ग लड़के एवं लड़की के परवरिश में जन्म के साथ ही भेदभाव शुरू कर देते हैं। जहाँ पुरुषों को अपना वर्चस्व डगमगाता नजर आता है, उनकी इस मानसिकता को आधुनिक तकनीकी ने और अधिक बल दिया है। जहाँ लड़कियों को जन्म से पहले ही दुनिया से वंचित कर दिया जाता है। कन्या भ्रूण हत्या के मामले 1980 से बदनस्तूर जारी है। 1980 में शुरू हुई सोनोग्राफी से लड़के की चाह रखने वाले लोगों को वरदान मिल गया। कन्या भ्रूण हत्या का गोरखधंधा करने वालों में शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों वर्गों के लोग शामिल हैं, जिसमें पुत्र के प्रति लालसा, आस्था एवं अन्धविश्वास के कारण पुत्र को जन्म देना गर्व की बात माना जाने लगा है। लड़कियों की सुरक्षा एवं कुछ सामाजिक दूषित परंपरागत रूढ़िवादी विचारधाराएँ लड़कियों को बोझ साबित करती हैं और यही वजह है कि समाज अपने दायित्वों को निभाने में पीछे हट जाता है और लिंगानुपात असंतुलित हो जाता है। महिलाओं पर होने वाली हिंसा भी लिंगानुपात में अंतर होने का एक महत्वपूर्ण कारण है, जिसके चलते लोग समाज में लड़कों को अधिक प्राथमिकता देते हैं।<sup>3</sup> कुछ सामाजिक मूल्य भी मात्र लड़कियों को ही सिखाए जाते हैं और मूल्य तोड़ने पर अपराध मान कर दण्ड भी दिया जाता है। पर्दा प्रथा इसका जीवंत उदाहरण है।

**धार्मिक कारण**—धर्म भी कुछ सीमा तक लड़कों एवं लड़कियों में भेदभाव स्थापित करने के लिए एक कारण के रूप में नजर आता है। लड़कों द्वारा अग्नि संस्कार, पिंडदान एवं वंश परंपरा को आगे बढ़ाना आदि धार्मिक कारण होते हैं जो लड़कियों की महत्ता को समाज में कम आँकते हैं। अभी भी कुछ मंदिरों में महिलाओं का प्रवेश वर्जित है। कुछ परंपराएँ भी लड़कों द्वारा निभायी जाती हैं, जो कि पितृसत्तात्मक सोच को बढ़ावा देते हैं।<sup>4</sup> धार्मिक मान्यताओं के आधार पर हर जाति एवं धर्म में घरेलू हिंसा किसी न किसी रूप में मौजूद है। हिन्दू समाज हो या मुस्लिम समाज, धार्मिक कट्टरता के कारण महिलाएँ ही भेदभाव का शिकार होती हैं और लिंगानुपात में वृद्धि होती है।

**आर्थिक कारण**—भारतीय समाज में लड़कों को बुढ़ापे का सहारा एवं मनी बैंक समझा जाता है। लड़का पैदा होगा तो परिवार की परवरिश करेगा, अधिक धन कमाएगा, शादी में दहेज लाएगा; लेकिन लड़की पैदा हुयी तो खर्च ही खर्च होंगे, पढ़ाने में खर्च, शादी में खर्च एवं लड़की से आर्थिक मदद भी नहीं प्राप्त होगी। जायदाद एवं पुश्तैनी व्यवसाय को भी मात्र लड़का ही संभाल सकता है, जैसी मानसिकता घटते लिंगानुपात का आर्थिक कारण है। लड़कों के लिए तमाम अवसर खुले रहते हैं, लेकिन लड़कियों के लिए सीमित एवं समाज के दायरे तक ही होते हैं। भारत में आर्थिक दृष्टि से पुरुष वर्ग ही सशक्त है। महिलाएँ नौकरीपेशा होकर भी आर्थिक रूप से सशक्त नहीं हैं।

ये कारण एवं समस्या मात्र भारत की नहीं वरन् पूरे विश्व की है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार 2018 में दुनिया का लिंगानुपात प्रत्येक 100,000 पुरुषों में 98248 महिलाएँ हैं। 12 देशों में लिंगानुपात 90.0 से कम है और 37 देशों में 95.0 से कम हैं। मार्टीनिक का लिंगानुपात 83.919 है। 10 देशों की सूची में 6 देश यूरोप महाद्वीप में, 3 उत्तरी अमेरिका में और एक एशिया में स्थित है।<sup>5</sup>

**राज्यगत आँकड़े**—यदि राज्यगत आँकड़ों में जाते हैं तो स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाएगी। कई राज्यों में लिंगानुपात की स्थिति बहुत ही खराब है। ये राज्य “डिमरू” शमन्य की श्रेणी में आते हैं। यहाँ डि का अर्थ डॉटर तथा मारु का अर्थ घातक माना गया है।



यह सूची भारत के राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को 2011 की जनगणना में लिंगानुपात के अनुसार क्रमवार करती है। इसके साथ ही 2001 की जनगणना के आँकड़े भी दिए गए हैं।<sup>1</sup> इस सूची में लिंगानुपात का अर्थ है। प्रति एक हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या। इस सूची में पूरी जनसंख्या के लिए लिंगानुपात दिया गया है।

### तालिका क्रमांक 1

#### राज्यगत आँकड़े

क्र.	राज्य / संघ क्षेत्र	लिंगानुपात 2011	लिंगानुपात 2001	2001 से 2011 के बीच लिंगानुपात परिवर्तन
1.	केरल	1084	1058	+26
2.	पाण्डिचेरी	1038	1001	+37
3.	तमिलनाडु	995	986	+9
4.	आन्ध्र प्रदेश	992	978	+14
5.	छत्तीसगढ़	991	990	+1
6.	मणिपुर	997	978	+19
7.	मेघालय	986	975	+11
8.	उड़ीसा	978	972	+6
9.	मिजोरम	975	938	+37
10.	हिमाचल प्रदेश	974	970	+4
11.	कर्नाटक	968	964	+4
12.	गोवा	968	960	+8
13.	उत्तराखण्ड	963	964	-1
14.	त्रिपुरा	961	950	+11
15.	असम	954	932	+22
16.	लक्षद्वीप	946	947	-1
17.	झारखण्ड	947	941	+6
18.	पश्चिम बंगाल	947	934	+13
19.	नागालैण्ड	931	909	+22
20.	मध्यप्रदेश	930	920	+10
21.	राजस्थान	928	922	+6
22.	महाराष्ट्र	925	922	+3
23.	अरुणाचल प्रदेश	920	901	+19
24.	गुजरात	918	921	-3
25.	बिहार	918	921	-3
26.	उत्तरप्रदेश	908	898	+10
27.	पंजाब	893	874	+19
28.	सिक्किम	889	875	+14
29.	जम्मू और कश्मीर	883	900	-17
30.	अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह	878	846	+32
31.	हरियाणा	877	861	+16
32.	दिल्ली	866	821	+45
33.	चण्डीगढ़	818	773	+45
34.	दादर और नागर हवेली	775	811	-36
35.	दमन और दीव	618	709	-91
	कुल औसत	943	933	+10

**विश्लेषण :** जनगणना 2011 के अंतिम आँकड़ों हमारे सामने आ चुके हैं। जो एक भयावह सामाजिक असमानता एवं सामाजिक समस्या का तस्वीर दिखा रहा है। यह आँकड़ा चिंतनीय एवं शोध का विषय बन गया है। 1901 में जहाँ प्रति 1000 पुरुषों पर 972 महिलाएँ थी, वहीं 2011 में यह आँकड़ा सिमट कर 943 पर आ चुका है। यद्यपि पिछली जनगणना की तुलना में 10 की वृद्धि हुई है, परन्तु राज्यवार सूची देखने पर स्पष्ट होता है कि



यह आँकड़ा अगली जनगणना में और अधिक असमानता उजागर करेगी। जहाँ हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, जम्मू-कश्मीर, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में लिंगानुपात में सबसे खराब स्थिति दर्शाते हैं, तो वहीं दूसरी ओर केरल, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, मणिपुर, छत्तीसगढ़, मेघालय आदि में लिंगानुपात बेहतर स्थिति में है।

पांडिचेरी और केरल जैसे राज्य जहाँ महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश एवं महाराष्ट्र में लिंगानुपात में सुधार है, जबकि दमन दीव और दादर नागर हवेली में महिला जनसंख्या का घनत्व सबसे कम है। 2021 की जनगणना करीब है। यदि इसमें असमानता अधिक आयी तो देश को कुछ नई नीतियों पर कठोरता से खड़ा होना होगा।

नीति आयोग की ओर से जारी रिपोर्ट के मुताबिक देश के 21 बड़े राज्यों में जनगणना के समय लिंगानुपात में गिरावट दर्ज की गई है। सिर्फ भारत ही नहीं दुनिया भर में कई देश ऐसे हैं जो लिंगानुपात की समस्या को लेकर परेशान हैं। भारत की तरह कई देशों में बेटी बचाओ संबंधित योजनाएं चलाई जा रही हैं, ताकि इस अनुपात को नियंत्रित किया जा सके।

**निष्कर्ष :** निष्कर्ष एवं परिणाम हमारे सामने हैं। आँकड़ों का विश्लेषण करने के पश्चात् भी यदि हम इस असंतुलन को संतुलित नहीं कर पाए तो बाइसवीं सदी के बारे में कल्पना करना मुश्किल होगा। एक ऐसा समाज जो दो विपरीत लिंगों पर टिका है, उसे हम धराशायी होते देखते रह जाएंगे। मात्र महिला दिवस मनाना ही पर्याप्त नहीं है। इसके औचित्य को भी समझना होगा। हमारे देश में महिला सशक्तिकरण के लिए योजनाएं बनती हैं, मगर पुरुष वर्ग ही सशक्त बन पाता है। महिलाओं के अधिकारों का प्रयोग पुरुष वर्ग करता है। महिला यदि राजनीति में है तो डोर पुरुष के हाथ में रहती है। बाहर से हमें महिलाओं की स्थिति सुधरी दिखती है, मगर महिलाओं को अभी भी भेदभाव का दंश झेलना पड़ता है। वर्तमान में चल रहा धिनौना अपराध भी लोगों को यह सोचने के लिए मजबूर करता है कि हम समाज में लड़की पैदा ना करें।

**सुझाव :** घटती लिंगानुपात को संतुलित करने के लिए कानून भी मजबूत होने चाहिए। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग द्वारा कुछ सकारात्मक पहल हो जो आम जनता तक पहुंच सके। सोनोग्राफी सेंटरों पर कड़ी निगरानी एवं कठोर दंड का प्रावधान हो। सभी अस्पतालों में इस संबंध में सूचना प्रेषित हो। पितृसत्तात्मक मानसिकता को बदले एवं लड़कियों की परवरिश में किसी भी प्रकार की कोई कमी ना करें। उनकी आवश्यकताओं एवं उनके विचारों का सम्मान कर समाज में बराबरी का दर्जा दें। 1994 में चिकित्सकीय तकनीकों के बढ़ते दुरुपयोग को रोकने के लिए अधिनियम बनाया गया था, उसे कठोरता के साथ पुनः पूरे देश में लागू किया जाए। बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना को उन राज्यों में अधिक क्रियान्वित करें, जहाँ लिंगानुपात गंभीर स्थिति में है। बालिका शिक्षा एवं सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए सामाजिक एवं जागरूकता अभियान का कार्यान्वयन करें। सोशल मीडिया की भूमिका भी महत्वपूर्ण है।

वर्तमान समय में कानून योजना और सुप्रीम कोर्ट के प्रयास जरूरी तो हैं, लेकिन यह प्रयास पर्याप्त नहीं है। इस समस्या के मुख्य कारणों को जैसे सामाजिक कारण सांस्कृतिक कारण एवं आर्थिक कारणों को भी समाप्त करना होगा, ताकि समस्या ही न उत्पन्न हो। पितृसत्तात्मक मानसिकता, लड़के की चाह एवं लड़के को मनी बैंक समझना, कन्या शिशु को बोझ समझ देखभाल न करना जैसी मानसिकता एवं दहेज जैसी कुप्रथा को जड़ से समाप्त करना जैसी चुनौतीपूर्ण समस्याओं को समाप्त करना पहली प्राथमिकता होनी चाहिए।

### संदर्भ-सूची

1. Census 2011.co.in. 2011. Retrieved 30 September 2011.
2. "Decline in Child Sex Ratio" Press Information Bureau of India, 11 February 2014, अभिगमन तिथि 5 May 2015.
3. बटौलिया, A (2017) जेंडर, विद्यालय एवं समाज, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा.
4. त्रिपाठी प्रमिला, (2015) लिंग एवं समाज, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.
5. "2010 Resident Population Data" U.S. Census Bureau. Archived from the original on 19 October 2013. Retrieved 30 September 2011.
6. "Provisional Population Totals" Government of India. Census Data 2011, 19 April 2014, अभिगमन तिथि 22 April 2014.

\* \* \* \* \*

## Moderate Phase of the Indian National Movement (1885 – 1905)

*Dr. Rais Ahmad\**

**Abstract :** This article deals with the Moderate Phase (1885-1905) of the Indian National Movement. It begins with introduction of the moderate nature of the early Congress leaders. The objectives and functions of the Indian National Congress and the attitude of the moderate leaders towards Indian National Movement are highlighted. Besides the proceedings and resolutions of the early Congress its organisation, the methods of demands its leaders is covered and explained in simple terms. The political, social, economic and religious ideologies of the moderate leaders are brought forward. The views of Indian intellectuals of the last half of the 19th century and their feelings, attitude towards British rule are explained in this article. At last the article also explains the drawbacks of the Indian National Movement of this period.

**Introduction :** The establishment of the Indian National Congress was not the one day affair but it was the result of long struggle of the various individual and grouped socio-religious activities. The British Civil Servant Mr. Allan Octavian Hume who planned with 17 renowned people to have a platform through which Indians can project their problem was unexpectedly multiplied as an organisation. Starting from 72 to members in first session it reached to 1248 representatives in its fourth session. These representatives were very important of their own area as they were highly intellectual. Most of them were lawyers. They were well aware of the social, political, psychological and economic suffering of the Indians due policies of the British Government. They were aware that Indians are innocent and untrained to project their problems in front of the British officials. And any of the wrong steps of the people against the Government will lead them to face the dire consequences. Thus their demanding approach was very moderate and supportive to the colonial rule. This is the reason that the period of 1885 to 1905 is called a Moderate Phase or Moderate Era. Let it be anything, this period of intellectual unrest successfully spread the national consciousness among Indians. This time is also known as the seeding time of the national awakening. They sow the seeds of the nationalism so brilliantly that the interests of the India and the British became contradictory.

**Nature of Early Congress Leaders :** The Indian National Congress was the organisation of all the community leaving aside the caste and creed, region and religion class and community. If we analyse the formation of the Congress then we find that its founder was Mr. A. O. Hume who arranged the meeting in South India i.e. Madras with only 17 prominent persons but in the first meeting 72 representatives of different parts of India and different religion and profession were present. Out of these 72 representatives, the 39 were the barristers and others were journalists, teachers and even doctors. Its first president W.C. Banerjee was Indian Christian. Second President Dadabhai Nauroji

\* Assistant Professor Department of Political Science, Gandhi Faiz-e-Aam College, Shahjahanpur

was Parsi. Third President Badruddin Tayyabji was Muslim. Fourth and fifth president, Mr. George Yule and Sir Willam Wedderburn both were Englishmen. These highly educated and intellectual leaders were very soft spoken and mild in their approach. Thus they were having trust in peaceful and constitutional methods instead of revolutionary, violent and reactionary methods. They were God fearing and always tried not to hurt the sentiments of others. They were not adamant for their demands because they knew that the administrative system cannot be changed in a day or two but it will take time. They did not want sudden change in existing ruling system but believed in gradual reforms. To fulfil their objectives instead of the violent methods like throwing bombs etc they projected their demands through public meetings, advertisements, peaceful agitations, memorandums, petitions, resolutions, pamphlets, and delegations. This approach was appreciated by one and all at that time. Hence the strength of the Congress continuously increased in every session. In those days, nobody dreamt that one day this organisation will become such a large that it will play great role in freedom of the India from shackles of the British Government. This was possible because of the continuously painstaking efforts of these leaders those have developed the national feelings among every Indians. Thus the Indian National Congress became the organisation of national level.

**Objectives of the Early Congress and Functions of its Leaders :** The leaders of the Congress of this period were called as Moderator. They called themselves as learners and trainee and believed in constitutional reforms gradually. The first President of the Indian National Congress Mr. W.C. Banerjee in his Presidential speech clearly explained the objectives of the Indian National Congress. These are as follows :

- (i) Promotion of personal intimacy and friendship amongst the countrymen, and
- (ii) Eradication of all possible prejudices, relating to race, creed or provinces, and consolidation of sentiments of national unity,
- (iii) Recording of the opinions of educated classes on pressing problems and preparing the authoritative record.
- (iv) Laying down the guidelines for native politicians for next 12 months that they will work for public and national interest.

**Proceedings and Resolutions of First meeting of the Congress :** The first meeting of the Indian National Congress was organised in Bombay on 28th December 1885. It was attended by 72 very important and influential delegates like: Dadabhai Nauroji, M.G. Ranade, Phirozshah Mehta, Badruddin Tayyabji, Gopal Ganesh Agarkar, Narain Ganesh Chandravarkar, Kashinath Ambakji Telang, Jhaveri Lal Yagyik, Dinshaw Idulji Wacha, S. Subba Rao Aiyar, Deewn Bahdur Raghunath Rao, Ganga Prasad Verma, P. Anand Charlu, P. Rangia Naidu, M. V. Raghvacharya, Babu Narendra Nath Sen, Babu Ganga Prasad Verma, W.C. Banerjee etc. In this first meeting some of the government officials were also present, hence proper protocol was followed in very efficient way. Everyone, whoever delivered the lecture in first meeting everyone advocated the faith in the British Government. The resolutions, those were proposed by one member were supported by the other and then only moved, discussed and passed in similar way as in the parliamentary system of the government. The following 9 important resolutions were put up:

- (i) The Royal Commission to be appointed with adequate participation of Indians for enquiring Indian matters.

- (ii) Abolition of the Indian Council, Secretary of State for India. Because the Congress wanted that the Secretary of State should be responsible directly to the British Parliament.
- (iii) A resolution on foreign policy for condemnation and the annexation of Upper Burma and Lower Burma.
- (iv) The resolution on liberalising the Constitution and functions of the Central and Provincial Legislative Councils,
- (v) Holding of Civil Service Examination in India and Britain both and
- (vi) Reducing the expenditure on the army etc. were the main resolutions those put forward in first session of the Congress.

All the leaders those have projected their problems were very soft spoken. But the Congress regularly pressurised the British Government for his reformative functions. The main purpose of the Congress was to make the social and economic life of the Indians smooth. Their main demands were:-

- (i) Reduction in Land Tax.
- (ii) Management of Irrigation.
- (iii) Reducing the Government Expenditure.
- (iv) Imposing Tax on imported Foreign goods
- (v) Prohibition of Tax on staple (Grains), Exported from India.
- (vi) Educational Reforms
- (vii) Prohibition of Liquor
- (viii) Establishment of Agriculture Banks.
- (ix) Reduction in appointment of foreigners in India.
- (x) Development of Indian Industries etc.

The Congress projected many demands through resolutions, related with Government administration and Constitutional reforms. These are mentioned as below :

- (i) Maximum Representation of Indians should be there in the Executive Council and these members should be elected by the Indians.
- (ii) Either Indian Council should be abolished or the necessary and useful reforms should be made.
- (iii) Imposed restrictions on the Indian press should be removed. (Freedom of speech and expression).
- (iv) Executives should be separated from Judiciary.
- (v) Abolishing of salt tax and duty on sugar.
- (vi) Reducing Military related expenditure
- (vii) The Indian Civil Service Examination should be conducted in India also besides the England.
- (viii) The Indian should also be appointed on higher post of Military.
- (ix) Repealing of the Arms Act 1878.
- (x) Increase spending on the education of the Indians.
- (xi) Local Institutions should be given more powers.
- (xii) Indian should be appointed in Government Services.

It is important to know that out of all these demands many were continuously raised by Moderate leaders since first session but not accepted even after 20 years.

**Political Philosophy and Demands of the Moderates :** The moderates believed in constitutional methods to get fulfilled their demands. Thus, they put their demands through applications, peaceful agitations, memorandums, petitions, resolutions, pamphlets, news papers and lectures etc. In this connection, sometimes they use to send their representative to the England. In those days the newspaper being the main source of the communication played pivotal role as some of the moderate leaders were the editors themselves. Of course, the early Congress leaders were patriot to their country but they were supporter of the western education and civilisation also. The reason is that they were thinking that by praising the British officials only the expansion of education, communication, transportation, and socio-cultural can be developed. That is why once Mr. Surendranath Banerjee said 'England is our guide'. The moderate leaders were having faith in justice and fair play of the British Government and they were confident that the day Indians will become politically mature to lead the nation then they will leave the India without hesitation. This was the reason that the Congress always tried to win the support and courtesy of the British officials. Their methods described as 3P i.e. Prayers, Petition and Protest. They were impressed with the western education and considered it as blessings of the British. They believed that whatever facilities of English language, education system, transportation, judiciary etc. are provided is their courtesy only. The moderators believed in constitutional methods. They never ready to fight with the Government. They did not like the violent and revolutionary way to fight for right such as throwing bomb etc. They asked through requests, applications, agitations, memorandums, and delegation to fulfil their justified demands. They believed that the success through revolutionary way will be doubtful. Sri Malviya ji said in third session of the Congress in Madras: 'Though we have not got any success till now, we should approach to the British Government and request repeatedly to meet our demands'. Indeed, the object of the moderators was only to get some administrative reforms but also to achieve self-government. Actually, they wanted to establish self-government under British rule initially. Later only, they want to say that; now India is ready for self-government.

**The Liberal Approach of the Moderators was Questioned :** Some of the people were not happy with the concept of the moderators that the British rule was blessing of the God. They said that the interest of the British India and England are not the same. It is said that the moderators were unable to judge the British officials and they continued to exploit the India in their capital interests. The British government is not in favour to transfer the self-governing power to Indians. Further it is said that, though, Moderators trusted in justice of the British Government while government has not accepted even their simple demand in last 20 years. Some of the leaders questioned this liberal approach. They categorised these policies as political-mendicancy. That is why the leaders of this phase were unable to attract the masses. But, when Mahatma Gandhi came from South Africa, he became leader of the masses through mass movements.

**Achievements of the Moderates :** The leaders of the moderate phase were learners as well as teachers. They organised strong and powerful agitation against the important social and economic policies of the British government. Because of their policies only, people have understood the discrimination policies of the British and colonial structure against them. The moderators always used the bold and decorated language against the Government. The Dadabhai Nauroji made poverty his special subject and spent his entire life to awaken the Indians. Besides social and economic policies these nationalists also gave the political education to Indians. Because of their efforts, people have developed the tendency to learn and understand the ideals of democracy. They provided a stage in the form of Indian National Congress to discuss the problems of the urgent nature and find out their

solutions. They tried to attract the attention of government towards the problem of the people. Though government have not responded much, still they were able to bring public awakening and sowed the seeds of the nationalism. So, this period is called the seed time of national consciousness. Being well educated and intellectuals they were able to engrave the nationalism in the hearts of the people. They efficiently differentiated the interests of their own and British Government. Hence the moderate leaders of the congress were only the founding fathers of the Indian Nationalism. These leaders promoted the ideals like; democracy, liberty and equality among the Indians and it has played major role to unite them. Thus, the Congress became a strong link between public and government. These leaders might be weak in some of the cases but they were true patriotic, hence taken the country on right track of the freedom. They were aware that at present it is infeasible to apply violent or aggressive methods. The moderate leaders were aware that they are making the way of political freedom from a very strong country of that time. Undoubtedly, the credit of laying the foundation stone of struggle of the Independence goes to the leaders of moderate era only. They taught Indian to fight for their right from Englishmen. Though these leaders have neither started any serious agitation or movement nor put any demand forward for Indian freedom but they prepared the background on the basis of which a lot of movements taken place later. It may be easy to criticise the moderate leaders for their methods and approach and also to make fun by saying Political Mendicancy to their approach but their contribution and efforts for freedom cannot be kept aside.

**Conclusion :** The painstaking studies and writings in different journals and magazines of the early nationalist leaders had exposed the true nature of the British Rule in India. They conclusively proved by elaborate statistical data that British rule and its policies were responsible for the economic ruin of India and her deepening poverty. Dadabhai Naoroji exposed the economic exploitative nature of the British rule in India and said that 'Britain was bleeding India white through constant drain of wealth from India' and further added that the British is directly responsible for India's economic miseries. He characterized British rule in India as 'a constant and continuous plunder'. It may be said that these leaders were very liberal but whenever needed it took hard steps also. As after the Act of 1892 they raised the 'No taxation without representation'. Thus the Indian Council Act of 1892 became the first achievement of the Indian National Congress. Beside these Dadabhai Naoroji in 1904, G. K. Gokhale in 1905 and Lokamanya Tilak in 1906 began to put forward the demand for self-government like a model of the self-governing colonies of Canada and Australia. Thus it can said that the role played by the Moderate leaders were very significant according to the time and situation of the British rule.

#### References

1. National Movement and Constitution of India. By Prof. L. Prasad and S.N. Dubey
2. Kiran's One Liner Approach (G.K. Book).
3. History of Modern India By Bipan Chandra
4. Indian Polity by M. Laxmikanth
5. Political Science. By Dr. Pukhraj Jain
6. A Brief History of Modern India By Rajiv Ahir (I.P.S.)

\* \* \* \* \*



## The Role of Media in Indian Politics

*Jamil Ahmad Khan\**

**Abstract :** The role of media in Indian Politics has been widely debated. India has the largest democracy in the world with powerful presence of सूँ in the country. In recent times Indian media has been subject to a lot of criticism for the manner in which they have disregarded their obligation to social responsibility. Dangerous business practices in the field of media have affected the fabric of Indian democracy. Big industrial conglomerates in the business of media have threatened the existence of pluralistic viewpoints. Post liberalisation, transnational media organisations have spread their wings in the Indian market with their own global interests. This has happened at the cost of an Indian media which was initially thought to be an agent of ushering in social change through developmental programs directed at the non privileged and marginalised sections of the society. Though media has at times successfully played the role of a watchdog of the government functionaries and has also aided in participatory communication, a lot still needs to be done.

**Keywords :** Media, Social responsibility, democracy, Indian media, Indian democracy, public sphere.

**INTRODUCTION :** India is regarded as the quasi federal democratic republic where everything is possible in the periphery of early declaration. Starting from the 1780 till today the Indian media were ornamented with different mode and approach and also burn with the orders/ instructions of different media giants but truth always comes up with flying different hue. In a broad brain the media can be of Print, and electronic but if we dive deep the reach are unlimited. Starting from Newspaper, Magazine, Radio, Television, Cinema, Mobile, Internet based wave sites (social media, new media) the Indian media along with different developed country media are promoting itself with time and situation. This huge industry performing smoothly its task and responsibilities on the pillars of advertisement, subscription, and sales of copyright materials. 70,000 different newspaper and is the world biggest market — over 100 million copies are sold each day, 1600 satellite (more than 400 are news channels) The very beginning of the newspaper was started from Bengal gazette(1780), The India gazette, The Calcutta Gazette, The Madras Courier (1785), The Bombay Herald (1789), Bombay Samachar, the oldest newspaper of Asia Region, Udant Martand (The rising sun, 1926), The Times of India (1838), The Hindustan Times(1924), The Hindu (1878). From that juncture India has achieved the land mark of circulating 80 million Hindi newspaper and 40 million English newspaper. In relation to the readership Dainik Jagaran the most popular Hindi news daily with a total readership (TR) of about 55,583,000 according to the IRS Round one 2009, followed by Dainik Bhaskar with TR 33,500,000, Amar Ujala with TR28,674,000, Hindustan Dainik with TR of 26,769,000, Rajasthan Patrika with TR of 14, 051,000. The sum total of readership of 10 Hindi dailies is estimated at 188.68 million, which is nearly five times of top 10 English dailies that have 38, 76 million of total readership. The Radio Broadcasting was initially initiated in the year 1927 but in 1937 it was awarded with the name of All India Radio and since

\* Assistant Professor, G.F.College, Shahjahanpur, U.P.



1957 it has been called Akashvani. Prasar Bharati in 1997 a public service Broadcasting came as an autonomous body under Prasar Bharati Act to take care of the All India Radio and Doordarshan. The terrestrial format of broadcasting was started as the experimental basis in Delhi on 15th September 1959 with a small transmitter and a makeshift studio but in the year 1965 the regular basis of transmission started as a part of All India Radio. From that juncture the television has reached to the peak and the journey is still on. The film in India begins with the screening of Auguste and Louis Lumiere moving pictures in Bombay in July 1895. A full-length feature film namely Raja Harishchandra, was initiated in 1912 and Alam Ara was the first Indian movie with dialogue. With the advent of Digital format of media in the early 2000s many traditional print media transform itself to modern digital version and now a days India has become the hub of many online publications including digital newspaper, magazine, news portal and publishing house.

### **Importance and Role of Media**

**Defining Goals :** Today, the word media is used by the general public in all the spectrums of life. It is not a surprise because no industry has grown, extended and succeeded as media in the present times. Under the garb of speech and expression, media is now omni present; it has invaded upon all the facets of life of an individual. This fact is not only applicable to the Indian soils, but is global. Not only this, the media has become so powerful that it can make or break the government by influencing the people. The public also heavily depends on the media to secure information. In this scenario the question of the accountability of powerful media arises. Here we need to understand that We “Public” are the active participant, we are required to shape the role of media because this commanding instrument can use as a boon or as bane too. Media has a fundamental right of freedom of speech and expression which can be used as per its whim or wish. The modern age is generally considered to be the age of representative democracy, and the mass media are an informal but an essential component of that representative democratic polity. Equally important is the fact that a democratic polity is an institutional guarantee of a free, fair and fearless media.

**Media Freedom and People Participation :** Media freedom shapes the social, legal, political, economic and the cultural factor. People know very less about the political issues and activity in countries where the government interfere with the media. Corruption has a very adverse impact on the development of the country. Media extracts the fact and informations from the institutes and makes it available to the people. And this role of media makes the life of corrupt government officials tough. The media even at times releases the secret files which may include the actual instance of corruption. So in countries where the government does not interfere with media, people participation in the functioning of the governance is more and the people can easily punish the corrupt politicians. So free media repeatedly report the action of the government to the people and it put everything in front of the people to decide whether if it is right or not. When people are not conversant of the political activity, they become ignorant of the political affairs of the country.

So if the media is not free, the information does not reach the people and the people lose its interest in government functions. Also when the information about the political leader and the political parties does not reach the people, they become unaware about the detail of the political party or candidate of the election. So either they vote in darkness or they choose not to vote. So, lack of information has a very adverse impact on the voters turnout. So, free media play a very significant role in enhancing the voters turnout. As voters turnout is a very essential aspect of democracy it definitely contributes to the

strengthening of the democracy. So it is the media who help the people to collect information from these institutes easier and cheaper. So, a medium play a vital role in digging out the facts from these transparent institutes and makes these facts available to the people. Therefore media contribute a lot to these three processes namely transparency, publicity and accountability which strengthen the democracy.

**Role of Media in Public Policy :** The foundation of the democratic institutions dates back to the French revolution in 1789. There were three centers of power namely the monarchy, the church and the feu-dal lords during those days. So the fourth estate media was added by the French revolution first. It was because of the major role played by the media in the democratic institutions. So even during the inception era of democracy the media had a very important role to play. Therefore we cant imagine democracy in present day without media. It has a two aspects or faces of one coin. Media structures the policy of a country by making public opinion. The policy output is actually authoritative action i.e. the decisions of the government on various problems of the people. Media directly cant shape the policy but definitely it can criticize the policy and force the government to change the policy in case if it is not in the interest off the people. Media mediates between the state and the society and hence criticism by the media has very adverse impact on the popularity of ruling party. In a way media exercises the decisive influence over the public policy. Media is the reg-ulating flow of communication between the policymakers, policy and others in any political system. This role of media influences the policy making and hence makes a country and its political system more democratic.

**Role of Media in Bringing Social Change :** Earlier the Indian society presumed that women are weak-er in terms of earning capacity and physical stamina. The society was patriarchal and hence women were given less importance. Also gender discrimination, lack of access to healthcare and gender based violence are some reasons which was prevailing in the Indian society. These are some of the main reasons of terrible crimes which used to dom-inate our country. So the awareness about such problems was communicated to the people by the media. Actually the information about this heinous crime was provided to the people through television drama, animated news packages, influential radio documentary and persuasive films. Now government started using media as a platform for eliminating social evils and bringing positive change. Finally the people reacted positively to it and now the cases of social evils are decreasing. The media as an unbiased informer acts as an educator, as a mentor, as the guardian with the free participation of the public. So unless in a society everyone is equal that society cant be considered to be a democratic society. It is because equality is one of the essential features of the democracy. Promoting equality is actually making an attempt to strengthen de-mocracy. Therefore the media plays a very significant role in strengthening democracy in India.

**Election and Media :** Media and politics are most important and too integral part of the democracy and one cannot be expected without others. Media allows its citizen to take smooth and prospective part in the process of different election procedure. Politics and media are two different tire of democracy and without proper balance the vehicle called democracy cannot be used or dive. With the advent of media the politics become more possible than early and every information and decision can be communicated to the citizen in right time and situation. Without media politics cannot be expected and without politics media too cannot be dreamt of. Starting from the announcing the date to till result the media works as the most effective and most important part and it too works after that too. The to and fro flow of information between government and its citizen possible only because of media. In the run of globalization and modernization the media must be well developed and media person must be well

knowledge to go parallel otherwise one will lack behind to others and there may be some collision. Convergence has made everything possible and affordable too. In the matter of democratic election the unbiased mass media are most essential. This cannot be categorized as the free and fair election procedure by casting a vote in proper condition but to make the people well informed and well educated about political parties, different policies, candidates, election process so that voters can make independent choice at the time of casting their valuable votes. Shackles over media cannot be expected in the democratic election. This is not only the sole responsibilities of media to providing a good platform for voters and politicians but also has a more wide responsibilities like educating voters, reporting on election campaign, allowing the different political parties to debate on development agendas, reporting on election results and monitoring on vote countings, scrutinizing the electoral process itself in order to evaluate its fairness, efficiency, and probity. Without the existence of independent media and free and fair elections, India would not be able to describe itself as the world largest democracy. Being the fourth pillar democracy media should perform its responsibilities as the watchdog more consciously at the time of election. Prior to the rise of modern electronic media the political information was fetched through print media or by direct personal contacts. But with advent of modern forms of mass media the election process has become simpler and speedier. In the era of modernization and globalization the relationship between politics and media are inseparable and cannot be expected their disperse from one another.

**Conclusion :** The importance and role of media in a democratic system is debatable. India has the largest democracy in the world and it is widely accepted that media has a powerful presence in the country. In the current scenario the Indian media has been subject to a lot of criticism for disregarding its obligation to social responsibility. Perilous commercial practices in media have affected the fabric of Indian democracy. In the race of sustainability and commercial interest transnational media organizations have spread their wings in the Indian market with their own global interests at the cost of truth and accuracy which was initially thought to be an agent of escorting in social change through developmental programs aimed to uplift the weaker section of the society and showcase the truth only. But Extreme coverage or propaganda of sensitive news has led to communal riots at times. Constant repetition of the news, especially sensational news, breeds apathy and insensitivity. Though media has at times successfully played the role of a watchdog of the government activities and has also aided in participatory communication, a lot still needs to be done. Media should take utmost care in airing or publishing such sensational news. It is a mirror of society and a powerful tool in implementing laws. Although the Indian constitution does not have an exclusive act defining the liberty of the press but it is evidently included in the freedom of speech and expression under the Article 19 (1) (a).

Media organizations, whether in print, audio visual, radio or web have to be more accountable to the general public. It should be monitored that professional integrity and ethical standards are not sacrificed for sensational practices. The freedom of press in the country is a blessing for the people. However, this blessing can go terribly wrong when manipulations set in. No one is perfect in this world. Still there is a lot of scope for improvement by which media can raise up to the expectations of the public for which it is meant. We cannot think of a democracy without active and neutral media. Media employs the tools of discussion, opinion polls, debates, and write ups to stimulate authorities for taking appropriate action. Media offers an indicative and investigative platform for discussing the different causes of and solutions to, to the problem of improper implementation of law. The Indian democracy has survived and is functioning relatively well, and the media no doubt have great contribution

in it. However, the Indian media have its own serious criticism, elitists; urban oriented; politically biased; under the grip of big industrial and business houses; using hate politics and sensationalizing the news for economic interest; using communal and caste politics especially by the vernacular media.

When there is information, there is enlightenment. When there is debate, there are solutions. When there is no distribution of power, no rule of law, no accountability, there will be exploitation, corruption, suppression and annoyance. Media does more than mere reporting news. It also monitors administration and keeps a check on corruption and bad administration. The fight against corruption has been largely fueled by the media. With the passage of time it has become a more matured and a more responsible entity. Big media conglomerates are a serious threat. Citizen -friendly democracy is a goal that the media should strive for in a country like India. The present media insurgency has led to people in making an informed decisions and beginning of a new era in a democracy. This study ends with the suggestion that this complex issue and its other dynamics need further investigation.

#### References

1. Tripathy, Devidutta (25 July 2008), "Reuters (2008), India Adds 8.94 mln Mobile Users in June". UK.reuters.com. Retrieved 1 September 2010.
2. "Why are India's Media Under Fire?". BBC News, 12 January 2012.
3. Hena Naqvi (2007), Journalism And Mass Communication. Upkar Prakashan. pp. 42
4. [http://www.iosrjournals.org/iosr-jhss/papers/Vol19\\_issue9/Version7/H019975051.pdf](http://www.iosrjournals.org/iosr-jhss/papers/Vol19_issue9/Version7/H019975051.pdf).
5. M.R. Masani, "The Importance of Free Press in a Democracy." Freedom of the Press in India, Edited by, 7.A.G. Noorani, Bombay, Nachiketha Publications, P. 69). (1979)
6. A.D. Gorwala. "The Press as an Educative Factor, Freedom of the Press in India, Edited" by, A.G. Noorani, Bombay, P. 36. 12. I

\* \* \* \* \*

## राजस्थान में महिला कल्याण प्रशासन : शासकीय क्षेत्र में कार्यरत मध्यम वर्गीय महिलाओं का अलवर जिले के विशेष संदर्भ में अनुभवमूलक अध्ययन

डॉ. सुमित्रा\*

राष्ट्र के संपूर्ण विकास के लिए देश के मानव संसाधन का सभी पहलुओं की दृष्टि से विकास एवं कल्याण आवश्यक है। भारत में पुरुषों की तुलना में महिलायें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनितिक दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं। सामाजिक संरचना पितृसत्तात्मक होने के कारण महिलाओं के विकास को संपूर्णता प्राप्त नहीं हो सकी। समाज के संपूर्ण विकास के लिए महिलाओं के कल्याण पर अधिक जोर देने की आवश्यकता है।

स्वाधीनता के बाद भारतीय संविधान से सभी को समानता का अधिकार प्राप्त हुआ। इससे महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हुये। महिलायें समता के पथ पर अग्रसर होकर विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन गयी हैं। आंकड़े ये दर्शाते हैं कि यह संख्या अभी सम्माननीय स्थिति में नहीं है। घर में काम करने वाली महिलाओं की गिनती आज भी कामकाजी महिलाओं की श्रेणी में नहीं की जाती है। जीविकोपार्जन के लिए किये जाने वाले किसी भी काम को "कामकाज" कह सकते हैं। जीविकोपार्जन शब्द से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि श्रम का भुगतान किया जाये। इसी भुगतान के कारण ही एक गृहणी और कामकाजी महिला में अंतर किया जा सकता है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि कामकाजी नारी के लिए अर्थाजन ही प्रमुख है।

सार रूप में कहें तो "अपनी बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमता के उपयोग से कुशल श्रम के माध्यम से घर में रहकर या बाहर जाकर कार्य करके अर्थोपार्जन करने वाली महिलाएँ कामकाजी महिलाएँ कहलाती हैं।" आधुनिक और आत्मनिर्भरता के लिए महिलाओं में जो नई सोच नई चेतना पैदा हुई है तथा स्त्री शिक्षा में प्रगति हुई है, परिणामस्वरूप देश में कामकाजी महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। प्रस्तुत अध्ययन कामकाजी महिलाओं के बहुआयामी विकास की स्थिति को समझने का एक अनुभव मूलक प्रयास है।

आज भारतीय महिलायें विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन गई, यद्यपि अनुपात में यह संख्या अब भी कम है। स्वतंत्र भारत में धर्म, राजनीति, अर्थ और समाज की दृष्टि से प्रत्येक मानव का समान मूल्य निर्धारित किया गया और इसी क्रम में महिलाओं का स्वतंत्र और गौरवपूर्ण स्थान स्वीकृत हुआ और महिला पुरुष के समान प्रत्येक क्षेत्र में भाग लेने लगी हैं।

भारतीय संविधान में महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए प्रावधान—स्वतंत्रता के 72 वर्षों में महिला उत्थान के लिए बहुत कानून बनाये गये जिनकी सहायता से वह पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर बात कर सकती है। देश में महिला उत्थान व उसके सामाजिक, आर्थिक व न्यायिक विकास के लिए अनेकों कानून उपलब्ध हैं जो यह दर्शाते हैं कि नारी भी पुरुष के समान की कार्य कर सकती है तथा इन अधिनियमों का सहारा लेकर वह तेजी से पुरुषों के साथ बराबर का दर्जा प्राप्त कर सकती है। संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय संविधान में पुरुषों और स्त्रियों को बराबर का दर्जा देने का अथक प्रयास किया है।

कामकाजी महिलाओं के लिए अंतराष्ट्रीय श्रम मानक और राष्ट्रीय कानून द्वारा अधिकार प्राप्त है।

1. कार्यस्थल पर समान अवसर और उचित व्यवहार।

\* पूर्व पी-एच.डी. छात्रा, लोक प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय

(अ) समान काम के लिए समान वेतन

(1) समान वेतनमान कन्वेंशन (न० 100) 1951

(2) समान वेतनमान अधिनियम, भारत 1976

## 2. प्रशिक्षण और रोजगार के समान अवसर

(1) भेदभाव (रोजगार और व्यवसाय) कन्वेंशन (न० 111)

(2) मानव संसाधन विकास कन्वेंशन (न० 142) 1958

(3) भारतीय संविधान 1950

## 3. वेतनमान सुरक्षा

(1) वेतनमान सुरक्षा कन्वेंशन (न० 95) 1949

(2) न्यूनतम वेतन निर्धारण कन्वेंशन (न० 131) 1970

(3) वेतन भुगतान अधिनियम, भारत 1936

(4) न्यूनतम वेतन अधिनियम, भारत 1948

संविधान एवं उसके द्वारा अधिकृत विधि द्वारा अवश्य ही समानता प्रदान की गयी है किन्तु समाज में व्याप्त असमानता और रुढ़िवादी के जाल को तोड़कर संविधान की समानता को व्यवहार में लाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। कामकाजी महिलाओं की स्थिति को व्यावहारिक दृष्टि से समझने का प्रयास इस अनुभव मूलक अध्ययन में किया गया है।

**महत्त्व :** महिलाओं द्वारा नौकरी करना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण और उचित कहा जायेगा कि नौकरी की बदौलत ही उसे समाज में उचित सम्मान मिल रहा है। परिवार का जीवन सुखद एवं संपन्न बनता जा रहा है। किन्तु इसके साथ ही उनके विचारों में विशेष परिवर्तन नहीं आया है। महिलाओं को चाहिए कि वे पुरुष के वर्चस्व रूपी विचार से स्वयं मुक्त होकर न्याय व समानता के तत्व पर अपना दृष्टिकोण विकसित करें। आज एक ओर जहाँ वो पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। वहीं दूसरी ओर वे परिवार को, वे सहूलियतें नहीं दे पा रही हैं जिनकी उससे अपेक्षा की जाती है उनके बच्चों सहज स्नेह से वंचित रह जाते हैं पारिवारिक वातावरण में एक अनकहा तनाव व्याप्त होता जा रहा है।

आधुनिक परिवेश में नारी को जहाँ अधिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई है वहीं वह अनेक समस्याओं से घिर भी गई है आज की नारी की जिम्मेदारियाँ बहुत हद तक बढ़ गई हैं समाज में महत्वपूर्ण स्थान पा लेने के पश्चात् उसके उत्तरदायित्वों में और अधिक वृद्धि हो गई है।

### अनुभवमूलक अध्ययन के उद्देश्य

1. महिला शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करना।
2. महिला उत्थान के लिए सरकारी प्रयासों का मूल्यांकन करना।
3. महिला उत्थान में गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका का मूल्यांकन करना।
4. महिलाओं को कार्यस्थल पर होने वाली प्रमुख समस्याओं एवं उनके समाधान का आंकलन करना।
5. कामकाजी महिला होने के नाते समाज में प्रतिष्ठा की स्थिति को समझना।
6. कामकाजी महिला होने के नाते सामाजिक रूपांतरण में भूमिका को समझना।

**अध्ययन क्षेत्र**—अनुभव मूलक अध्ययन के लिए राजस्थान के अलवर जिले की 12 तहसीलों को शामिल किया गया है। अलवर जिले में 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 3,674,179 जिसमें से 1,939,626 पुरुष एवं 17,34,553 महिलायें हैं। जिसमें से 11,50,000 महिलायें कामकाजी हैं। अधिकतर मजदूर हैं। महिला साक्षरता दर 52.16 है।

**शोध प्रविधि**—अनुभव मूलक अध्ययन के लिए 400 कामकाजी महिलाओं के संपूर्ण जिले के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों से रैंडम प्रतिदर्श के माध्यम से चयन किया गया। एवं उनके जवाबों का विश्लेषण किया गया है। शोध के संपूर्ण आँकड़े प्राथमिक स्रोतों पर आधारित हैं।

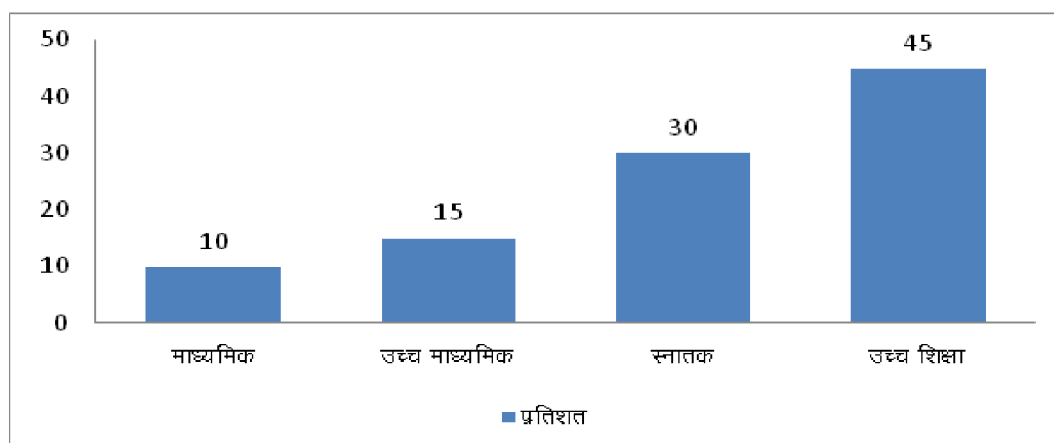
**उत्तरदाताओं की पृष्ठभूमि का अध्ययन**  
**उत्तरदाताओं की आयु**  
**सारणी संख्या 01**

क्र.सं०	आयु वर्ग (वर्ष में)	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	30 वर्ष से कम	68	17.07%
2	30 – 40	163	41.5%
3	40 – 50	108	27.0%
4	50 – 60	44	11.0%
5	60 से अधिक	14	3.5%
	<b>कुल योग</b>	<b>400</b>	<b>100%</b>

अधिकतर कामकाजी महिलायें 30 – 50 आयु वर्ग में हैं। 30 वर्ष से 50 वर्ष के बीच वाली 68% महिलायें कामकाजी श्रेणी में अधिक होती हैं।

**शैक्षणिक स्तर :** महिलाओं के कामकाजी होने एवं शिक्षा के स्तर का सीधा संबंध है।

**अलवर जिले में उत्तरदाताओं का शैक्षणिक स्तर**



उपरोक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि उच्च शैक्षणिक योग्यता रखने वाली महिला उत्तरदाताओं की संख्या अधिक है। 75 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातक या उच्च शिक्षित हैं।

1. कामकाजी महिलायें 30 से 50 आयु वर्ग में अधिक हैं। एवं उनका शैक्षणिक स्तर भी स्नातक एवं उच्च शिक्षा स्तर का है।
2. आर्थिक मजबूरी के कारण ही अधिकतर महिलाएँ नौकरी करती हैं।
3. शिक्षा का स्तर अच्छा होने के कारण अधिकतर महिलाएँ अपने अधिकारों के बारे में जानती हैं।
4. महिला उत्थान के लिए किये जा रहें सरकारी प्रयासों से महिलायें ज्यादा खुश नहीं हैं।
5. महिलायें अपने निर्णय लेने में स्वतंत्र नहीं हैं। उनके निर्णय परिस्थितियों एवं पारिवारिक सदस्यों के कारण प्रभावित रहते हैं।
6. नौकरी करना अधिकतर महिलाओं को अच्छा लगता है।
7. कामकाजी महिलायें मानती हैं कि गैर-सरकारी संगठन महिला उत्थान में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं।
8. महिलायें स्वीकार करती हैं कि कार्यस्थल पर उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं होता है।
9. नौकरी महिलाओं को समाज में प्रतिष्ठा प्रदान करती है।



10. नौकरी के कारण महिलाओं की आर्थिक स्थिति सुधरी है।

11. अधिकतर महिलायें मानती हैं कि कामकाजी होने से सामाजिक रूपांतरण में उनकी भूमिका अहम् है।

उपरोक्त अध्ययन से यह परिलक्षित होता है कि कामकाजी महिलाओं के कारण सामाजिक रूपांतरण में बिगुल बज चुका है, उनकी आर्थिक स्थिति में एवं सामाजिक स्थिति एवं मनोदशा में सकारात्मक परिवर्तन आया है। इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि अब भी वह निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। अभी भी कार्यस्थल पर उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं होता। अब जरूरत है कि महिलाओं को लेकर पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता में परिवर्तन करना एवं सरकारी प्रयासों को बड़ी सिद्दत के साथ लागू करने की है। जिसके परिणामस्वरूप एक न्यायपूर्ण समाज का निर्माण कर सकें।

**अनुभव मूल अध्ययन के निष्कर्ष :** प्रस्तुत शोध अध्ययन से सैद्धान्तिक विवेचन के पश्चात् राजस्थान विशेष रूप से अलवर जिले में कार्यरत कामकाजी महिलाओं की स्थिति एवं भूमिका का आंकलन किया गया है। शोध के उद्देश्यों में शोधार्थी द्वारा निर्मित परिकल्पनाओं के समर्थन में विभिन्न स्रोतों से सूचनाएँ आंकड़ों सहित चित्रों के माध्यम से दर्शाया गया है। प्रस्तुत शोध अनुभवमूलक क्षेत्रीय अध्ययन पर आधारित होने के कारण इसके निष्कर्ष का केन्द्रीय विषय अनुभवपरक अध्ययन ही है। अनुभवपरक क्षेत्र अलवर जिला रहा है। यहाँ पर कार्यरत शासकीय क्षेत्र की महिलाओं में से 400 महिला उत्तरदाताओं के आधार पर अध्ययन किया गया है।

#### **निष्कर्षों के आधार पर समाधान एवं सुझाव**

● कामकाजी महिलाओं को घरेलू या निजी समस्याओं का दफ्तर में हर किसी के सामने दुःखड़ा नहीं रोना चाहिए।

- कामकाजी महिलाओं के परिवार वालों को कार्यशील महिलाओं के दुहरे कार्य भार और मानसिक परेशानियों को समझना चाहिए। उन्हें घर के काम में सहयोग देना चाहिए।
- कामकाजी महिलाओं को प्रतिकूल परिस्थितियों में अधिक धैर्य अधिक सूझबूझ से काम लेना चाहिए।
- कामकाजी महिलाओं को छोटे-बच्चों की देखभाल के लिए बाहरी संस्थाओं की अपर्याप्त व गैर-ईमानदार सेवाओं पर अधिक निर्भर न करके संयुक्त परिवार के उज्जवल पक्ष को अपनाना चाहिए।
- स्थान की दूरियों के साथ परिवहन की समस्या कार्यालयी समय पर अतिरिक्त बसें चलाकर दूर की जा सकती हैं।

● एक घरेलू समस्या है, कामकाजी पत्नी पर अत्यधिक कार्य भार की। एक तरफ कामकाजी गृहिणी पर काम का बोझ बढ़ा है तो दूसरी तरफ घरेलू काम की सुगमता के लिए तकनीकी-वैज्ञानिक उपकरण भी सुलभ हुए हैं, जिनसे घंटों का काम मिनटों में होता है। शिक्षित महिलाओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तकनीकी कुशलता भी बढ़ी है। इससे हर काम सुनियोजित-सुव्यस्थित ढंग से चलाया जा सकता है। आवश्यकता है – समयानुकूल मानसिकता बनाने की, कार्य विभाजन का सिद्धान्त अब घर-बाहर या स्त्री पुरुष के बीच ही लागू नहीं होना चाहिए। अपितु बच्चे से लेकर वृद्ध तक परिवार के हर सदस्य से उसकी क्षमतानुसार काम करना चाहिए जिससे कामकाजी महिला की मदद हो सके।

● नौकरी करने वाली महिला को पति के साथ अपने संबंधों की तरफ भी विशेष ध्यान देना पड़ता है। इन संबंधों में निहित कर्तव्यों को यदि निश्चित रूप से स्पष्ट कर दिया जाये तो उन अनेक दिशाओं, अनिश्चयों तथा मानसिक उलझनों से बचा जा सकता है।

● राज्य सरकार के अधीन कार्यरत महिला कर्मिकों का पदस्थापन उनकी इच्छा से नहीं होता है और वह अपने बच्चों, पति एवं पारिवारिक सदस्यों से अलग रहने को मजबूर होती हैं राज्य सरकार को ऐसी नीति का निर्माण करना चाहिए जिससे महिला कर्मिकों की पारिवारिक, सामाजिक दायित्वों का निर्वहन हो सके।

● लिंग भेद एवं असमानता के लिए वास्तविक उत्तरदायी पुरुष प्रधान समाज की अवधारणा है और अपनी बेटी के बाल विवाह के लिए महिलाएँ इसलिए जोर देती हैं कि उनको पारिवारिक सदस्यों की नियत पर भरोसा नहीं होता है।

● सेवारत महिलाओं के कार्य की उचित प्रशंसा की जानी चाहिए और उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए। महिला कार्मिकों को उपेक्षित दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

● सेवारत महिलाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव लाने की आवश्यकता है।

● राजस्थान सरकार ने राज्य महिला कर्मचारियों के मातृत्व अवकाश के लिए 6 माह का प्रावधान किया हुआ है जो दो बच्चों तक सीमित है परन्तु भारत सरकार ने केन्द्रीय महिला कर्मचारियों के लिए दो बच्चों तक अपने सेवा अवधि में बच्चों के 18 वर्ष उम्र होने तक 2 वर्ष के अवकाश का प्रावधान किया हुआ है। राजस्थान सरकार को महिला कार्मिकों के हित में सेवा अवधि में 2 वर्ष के अवकाश का प्रावधान करना चाहिए।

#### संदर्भ-सूची

1. संगीता शर्मा, महिला विकास एवं राजकीय योजनाएँ, रितू पब्लिकेशन 2005,
2. सुभाष चन्द्र गुप्ता, कार्यशील महिलाएँ एवं भारतीय समाज, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस
3. सुलीयना देश पाण्डे, श्रीहरि, भारतीय समाज में कार्यशील महिलायें, श्रुति पब्लिकेशन्स 2006 पृ. 19
4. आशारानी बहोरा, भारतीय नारी दशा एवं दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली पृ. 3
5. वार्षिक रिपोर्ट 2009.2010, जिला सांख्यिकीय विभाग, अलवर

\* \* \* \* \*

## वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत-अमेरिका सम्बन्ध

डॉ. उपमा सिंह\*

भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका का द्विपक्षीय संबंध शीत युद्ध से बाहर निकलकर उदारीकरण तथा क्षेत्रीय व वैश्विक सांभरिक उद्देश्य के आधार पर आज निर्मित व विकसित हो रहा है। आज दोनों के बीच संबंध परस्पर आदान-प्रदान पर आधारित है जिससे दोनों देशों के हित जुड़े हुए हैं, इसलिए सहयोग का क्षेत्र भी अब व्यापक हो गया है इसमें व्यापार एवं आर्थिक रक्षा एवं सुरक्षा, स्वच्छ ऊर्जा पर्यावरण और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में सहयोग सम्मिलित है।

स्वतंत्रता पश्चात के भारतीय आर्थिक इतिहास में अमेरिका भारत का बड़ा व्यापारिक भागीदार निवेश का प्राथमिक स्रोत, प्रौद्योगिक अधिग्रहण का पहला पनाह तथा धन व अनुदान सहायता महत्वपूर्ण भागीदारी वाला देश रहा है। भारतीय विदेश नीति के तमाम उलझनों एवं विवादों के बावजूद वर्ष 1975 में अमेरिका भारत का सबसे बड़ा व्यापार साझेदार तथा यूनाइटेड किंगडम के पश्चात दूसरा सबसे बड़ा निवेशक रहा था। 1980 के दशक में भारत अमेरिका आर्थिक संबंधों को नई दिशा प्राप्त हुई। राजीव गांधी के प्रधानमंत्रीत्व काल में अमेरिका यात्रा के बाद भारत में ज्ञान अर्थ व्यवस्था की नींव रखी गई तथा अमेरिका को प्राथमिकता वाला व्यापारिक साझेदार बताया गया।

वर्ष 1991 में सोवियत संघ के पतन तथा उदारीकरण की नीति से भारत अमेरिका संबंध का आधार ही आर्थिक हो गया और व्यापार तथा निवेश में जबर्दस्त बर्द्धि परिलक्षित हुई। यद्यपि भारत अमेरिकी संबंधों में गंभीर बाधाएं भी आती रही हैं। उदाहरण के लिए वर्ष 1998 में बाजपेयी सरकार के दौरान भारत द्वारा नाभिकीय परीक्षण किए जाने के बाद अमेरिका ने ग्लोबल सुधार के तहत भारत पर कई प्रतिबंध लगा दिए थे फिर जब जसवन्त सिंह तथा स्ट्रोव टोलवोट की वार्ता के बाद जब नई बाधाओं को सुलझा लिया गया तब जाकर ही वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारत को भूमिका को ईमानदारी से स्थान दिया गया और दोनों देशों के बीच सही संबंधों के रास्ते खुल गए।

राष्ट्रपति क्लिंटन के कार्यकाल में जब अमेरिका रणनीतिक सहयोग के लिए आर्थिक संबंधों को बढ़ा रहा था, भारतीय बाजार की विशालता और क्षमता ने उसका ध्यान आकर्षित किया। इससे प्रेरित होकर ही वर्ष 1995 में वाणिज्य सचिव रॉन ब्राउन द्वारा राष्ट्रपति व्यापार विकास मशीन की शुरुआत की गई। वर्ष 1999 में भारत अमेरिका संबंधों की गति और दिशा में काफी परिवर्तन आया 9/11 के हमले के बाद वर्ष 2000 में राष्ट्रपति क्लिंटन की भारत यात्रा और उसके तुरंत बाद वर्ष 2001 में प्रधानमंत्री बाजपेयी की अमेरिका यात्रा के बाद कई वैश्विक, चुनौतियों का सामना करने में अमेरिका भारत को एक आवश्यक साथी के रूप में देखने लगा। इसमें राष्ट्रपति बुश की वह अवधारणा भी काम कर रही थी जिसके अनुसार एशिया में चीन के उभार को रोकने में एक मजबूत भारत की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती थी। इन दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने अमेरिकी नीति को नई दिशा दी।

इन सबके बावजूद भारत अमेरिका संबंधों में सुधार की गति धीमी रही, क्योंकि अमेरिका अपने वित्तीय और बैंकिंग समस्याओं और यूरो क्षेत्र की समस्याओं से जूझ रहा था और भारत की आर्थिक मामलों में निर्णय हीनता की अपनी समस्याओं से दो चार हो रहा था।

मौजूदा प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने जब अपना कार्यकाल शुरू किया तो भारत अमेरिका संबंध एक प्रकार से ठहराव की अवस्था में थे। दोनों ही देशों में एक बड़े परिदृश्य को सामने रखने के बजाय व्यक्तिगत हितों के प्रभाव में निर्णय लिए जा रहे थे। भारत ने दोहा व्यापार वार्ता में अपने खाद्य सुरक्षा के मुद्दों को तरजीह नहीं दिए

\* सहायक प्राध्यापक, राजनीतिशास्त्र, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा ( म.प्र. )

जाने के कारण विरोध प्रकट किया था। भारत द्वारा कड़े परमाणु मुआवजा कानून बनाए जाने से अमेरिका अपमानित महसूस कर रहा था टकराव के अनेक मुद्दे पैदा हो रहे थे। यह वह समय था जब दोनों देशों के नेताओं द्वारा व्यवस्थाओं को फिर से बहाल करने के लिए ऊपर से नीचे तक हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक था। सितम्बर 2014 में प्रधानमंत्री की अमेरिका यात्रा और राष्ट्रपति बराक ओबामा की जनवरी 2015 में भारत यात्रा ने परस्पर संबंधों में गति प्रदान की। ओबामा अपने कार्यकाल में दो बार भारत आने-वाले और साथ ही भारत के गणतंत्र दिवस पर मुख्य अतिथि होने वाले पहले अमेरिकी राष्ट्रपति हैं। प्रधानमंत्री की अमेरिका यात्रा और अमेरिकी राष्ट्रपति की भारत यात्रा के दौरान दोनों नेताओं द्वारा जारी संयुक्त वक्तव्य से यह साफ दिख रहा था कि दोनों के बीच परस्पर विश्वास और सहयोग के विषय बढ़े हैं।

सितम्बर 2014 में मोदी की अमेरिका यात्रा (वांशिंगल वार्ता) के मुख्य मुद्दे –

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पाँच दिन की ऐतिहासिक अमेरिका यात्रा 26-30 सितम्बर को हुई उनकी इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र महासभा के 69 वें सत्र को संबोधित करना था। इसके साथ ही 30 सितम्बर को अमेरिकी राष्ट्रपति के साथ द्विपक्षीय संबंधों पर बहुप्रतीक्षित का कार्यक्रम निर्धारित था।

30 सितम्बर को आयोजित इस वार्ता में विदेश मंत्री सुषमा स्वराज, राष्ट्रपति सुरक्षा सलाहकार अजीत जयशंकर के अतिरिक्त प्रधानमंत्री कार्यालय व विदेश मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी शामिल थे। अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा के साथ वार्तालाप दल में उपराष्ट्रपति जो बिडेन विदेश मंत्री जॉन कैरी एशिया मामलों की सहायक विदेश सचिव निशा देसाई विस्वाल शामिल थी। इन वार्ताओं के परिणामस्वरूप कई विन्दुओं पर सहयोग करने की सहमति बनी जैसे –

(1) दोनों देशों ने आतंकवाद के खतरे से निबटने के लिए ठोस उपायों को अपनाए जाने पर बल दिया (मुम्बई पर हुए 26/11 के हमले के अपराधियों का पाकिस्तान द्वारा प्रत्यर्पण कराए जाने का भी उल्लेख किया गया।

(2) उच्च तकनीक, अंतरिक्ष और स्वास्थ्य सहयोग के मुद्दों पर उन क्षेत्रों पर ध्यान दिया गया है जो भारत को विनिर्माण में 21 वीं सदी के स्तर का विशेषज्ञता दिला सकता है। सरकार ने एक नई पहल की है ज्ञान अर्थात ग्लोबल इनिशिएटिव ऑफ एकेडमिक नेटवर्क (जी.आई.ए.एन) के नाम से इसके तहत प्रत्येक वर्ष 1000 अमेरिकी शिक्षाविद् पढ़ाने के लिए भारत आया करेंगे। आज भारत का कोई भी विश्वविद्यालय एशिया के टॉप रैंकिंग में नहीं है। ऐसे में वह पहल उच्च शिक्षा संस्थानों के स्तर ऊपर उठाने का त्वरित उपाय है।

(3) स्वास्थ्य के क्षेत्र में नई और पुरानी महामारियों से लड़ने और वैक्सीन तैयार करने में सहयोग किया जायगा।

(4) दोनों पक्षों के बीच 2005 में हुए असैन्य परमाणु समझौतों को लागू करने से जुड़े मुद्दों को सुलझाने के लिए अन्तर एजेंसी संपर्क समूह गठित करने का निर्णय वार्ता में किया गया। वार्ता के पश्चात जारी संयुक्त घोषणा पत्र में उपर्युक्त सहमति का उल्लेख करते हुए भारत अमेरिकी संबंधों को नई ऊँचाइयों तक ले जाने का वायदा किया गया।

पाँच दिवसीय यात्रा के समापन पर नरेन्द्र मोदी ने अमेरिका को धन्यवाद दिया और अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा को भारत आने का निमंत्रण दिया जिसे उन्होंने स्वीकार किया और जनवरी 2015 में उन्होंने भारत की यात्रा की इस अवसर पर तीन दस्तावेज साझा रूप से जारी किए गए। उनमें 2014 में जारी दस्तावेजों का विस्तार किया गया जिसमें विशेष दस्तावेज है मैत्री घोषणा-पत्र यह घोषणा-पत्र अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा क्षेत्रीय और वैश्विक शांति, स्थिरता व समृद्धि के लिए साझा रणनीतिक दृष्टि की व्याख्या करता है। ये बड़े ही उदात्त लक्ष्य है जिसको पाने के लिए अतीत में भी भारत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। इसके बाद यह घोषणा पत्र साझा मूल्यों जैसे कि लोकतंत्र, मानवाधिकार आदि की चर्चा करता है, यह जलवायु परिवर्तन से सामना करने स्थिर विकास करने जैसे कर्तव्यों की बात करता है और नियमबद्ध तथा पारदर्शी बाजार का भरोसा दिलाता है।

आज भारत और अमेरिका एक नई द्विपक्षीय संबंधों की दिशा में कदम बढ़ा रहे हैं, अमेरिका और भारत के मध्य आने वाले समय में यह चुनौती होगी कि वे अतीत में गंवा दिए गए मौकों की भरपाई आने वाले दशक में करें।

संदर्भ सूची

1. Stoberg, Sheryl (8 Nov. 2010) Obama Backs India for Seat on Security Council The New York Times.
2. 20 July, 2009 B.B.A हिन्दी समाचार।  
भारत और अमेरिका में समझौते।
3. 6 अप्रैल 2010 बी.बी.सी हिन्दी समाचार (भारत अमेरिका आर्थिक साझेदारी)।
4. प्रतियोगिता दर्पण नवम्बर 2014।
5. योजना जुलाई 2015।
6. दैनिक भारत 21 सितम्बर 2015।
7. शोध ग्रन्थ, शीतयुद्ध के पश्चात भारत अमेरिका संबंध।
8. भारत एवम अन्तर्राष्ट्रीय संबंध।
9. भारतीय विदेश नीति, वेदप्रकाश वैदिक।
10. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, पी.डी. कौशिक।
11. क्रानिकल अप्रैल 1998।
12. हिन्दुस्तान टाइम्स— 2005।
13. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध—मथुरालाल शर्मा।

\* \* \* \* \*

## भारत-अफ्रीका सम्बन्ध के बदलते आयाम : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. गौतम कुमार\*

**सारांश—** भारत की नई विदेश नीति जो मोदी सरकार के आने के बाद निर्देशित हुई है। उन नीतियों की सर्वोच्च प्राथमिकताओं में अफ्रीका का स्थान अग्रणी है। मोदी सरकार बनने के बाद से लेकर अब तक जिस प्रकार से भारतीय राजनायकों द्वारा अफ्रीकी देशों की यात्राएँ की गई हैं। वह निःसंदेह ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की अफ्रीका के साथ आपसी संबंध को प्रगाढ़ करने की दिशा में एक नई व अनुपम इतिहास गढ़ रही है। 21वीं सदी में ईबसा, ब्रिक्स और भारत-अफ्रीका शिखर सम्मेलन इसका जीवंत उदाहरण है कि भारत-अफ्रीका के साथ अपने विदेश नीति को लेकर कितना गंभीर है।

**शब्द कुंज :** प्राथमिकता, राजनायिक, प्रगाढ़, जीवंत।

**विषय-वस्तु—** 21वीं सदी में भारत और अफ्रीका के आपसी संबंधों ने निःसंदेह ही एक नई करवट ली है। जहाँ भारत की बढ़ते आर्थिक ताकत ने इस रिश्ते के एक नयी पहचान दी है। भारत-अफ्रीकी शिखर सम्मेलन इसका जीवंत उदाहरण है कि भारत अफ्रीका के साथ अपने विदेश नीति को लेकर कितना गंभीर है। पिछले कुछ वर्षों तक अफ्रीका के संदर्भ में भारत की विदेश नीति काफी हद तक निराशा एवम् अनिच्छाओं से वशीभूत उत्पन्न प्रतिक्रियाओं की प्रतिबिम्ब थी। इतना ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अफ्रीका के प्रति कई मंचों पर राजनीतिक उदासीनता भी दृष्टांत हुए हैं। भारतीय राजनयिकों के द्वारा भी इस महाद्वीप की यात्राएँ बहुत कम की जाती थी एवम् भारत की विदेश नीति के व्यापक ढांचे में इसको खास महत्व नहीं दिया जाता था। आजादी के बाद से लेकर अगर 21वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक देखा जाए तो अधिकांश भारतीय राजनायिकों के द्वारा अफ्रीकी देशों के यात्राएँ या तो गुटनिरपेक्ष आंदोलन, जी-15 सम्मेलन के संदर्भ में हुई हैं या फिर विशिष्ट आतिथ्य के रूप में हुआ है। हालाँकि भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी और नरसिम्हा राव की कुछ अफ्रीकी यात्राएँ आवश्यक ही राजनैतिक संदर्भ में हुआ है। जिसमें राजीव गाँधी की अंगोला, तंजानिया और मॉरीशस की यात्राएँ जबकि नरसिम्हा राव की ब्राजील और ट्यूनिशिया यात्रा एक राजनीतिक पहल थी। भले ही अफ्रीका के साथ भारत का समकालीन संबंधों का वर्णन हमारी सदियों पुरानी व्यापारिक साझेदारी, समृद्ध प्रवासी भारतीयों द्वारा विकसित सामरिक-सांस्कृतिक संपर्क, सूत्रों और नेहरू युग के दौरान चलाए गए राष्ट्रीय आंदोलनों एवम् ऐतिहासिक तथ्यों पर ही केन्द्रित रहे हो जिसमें साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष का समर्थन एवम् गुटनिरपेक्ष आंदोलन के बदलते भू-राजनैतिक तथ्यों का ही उल्लेख देखने को मिलता है। लेकिन 21वीं सदी के प्रारंभ में ही वस्तुतः भारत अफ्रीका के संबंधों में एक नयी ऊर्जा का संचार हुआ। इस क्रम में भारतीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और मनमोहन सिंह ने अफ्रीका के साथ अपने संबंधों को व्यावहारिक पटल पर लाना प्रारंभ कर दिया था। वर्ष 2006 में मनमोहन सिंह द्वारा ब्राजील की यात्रा के दौरान इबसा (इंडिया, ब्राजील, साउथ अफ्रीका) की गठन दोनों महाद्वीपों के मधुर संबंध के लिए एक अनूठी व असरदार प्रयास थी। वस्तुतः इबसा, ब्रिक्स, जी-15, गुटनिरपेक्ष आंदोलन एवं भारत अफ्रीका फोरम सम्मेलन जैसे बड़े अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अफ्रीका के साथ भारत का शिरकत किया जाना निश्चित ही एक नयी बदलाव का संकेत है। कई यूरोपीय दाताओं के नेतृत्व के बाद भारत भी अफ्रीकी क्षेत्रीय संस्थानों जैसे की ए.यू. और नेपाड, इकोवॉस

\* पी-एच.डी., राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

और दक्षिणी अफ्रीकी विकास समुदाय का समर्थन कर रहा है। दरअसल मनमोहन सिंह की अगुआई में भारत का अफ्रीका के साथ मजबूत संबंधों की अगली कड़ी में 2003 में एस.ए.डी.सी.— इंडियन फोरम के गठन के माध्यम से और त्रिपक्षीय भारत ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका के संदर्भ में औपचारिक रूप दिया गया था तथा नेपाड के तहत विभिन्न परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए भारत के द्वारा लगभग 200 मिलियन डॉलर का योगदान दिया गया था। इस तरह भारत-अफ्रीका के बीच आपसी संबंध जो आजादी के बाद शिथिलता से आगे बढ़ रही थी उसमें अचानक से तेजी आ गयी।

अफ्रीका के लिए भारत के विदेश नीति में आये बदलाव अचानक यू ही नहीं हुआ है। कारण यह है कि भारत यू.एन.ओ के सुरक्षा परिषद को स्थायी सदस्यता ग्रहण कर विश्व के महाशक्तिशाली राष्ट्रों की कतार में खड़ा होकर अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर खुद को एक सुपर पावर के रूप में प्रतिस्थापित करना चाहता है। जिसके लिए अफ्रीका का समर्थन नितांत आवश्यक है क्योंकि अफ्रीका महाद्वीप में कुल देशों की संख्या 54 है। जिनका समर्थन भारत के पक्ष में काफी कारगर साबित हो सकता है। दूसरा अफ्रीका बहुत बड़ा महाद्वीप है जो बाजार प्रतिमान के दृष्टिकोण से भी भारत के लिए काफी लाभप्रद साबित हो सकता है। खासकर इथियोपिया, घाना, कोर्ट-डी आइवर, जिबूती, सेनेगल और तंजानिया जैसे राष्ट्र जिस तरह से पिछले एक दशक में आर्थिक तौर पर काफी सुदृढ़ हुए हैं वह भारत के व्यापारिक नजरिए से बहुत ही लाभप्रद हो सकता है। इसके अलावा इस महाद्वीप शक्तिशाली देशों खासकर चीन की अति सक्रिय भूमिका ने नई दिल्ली को इस पर पुनर्विचार करने को बाध्य किया। परिणामस्वरूप भारत-अफ्रीकी शिखर मंच का तीसरा शिखर सम्मेलन का आयोजन ने एक नयी राजनीति वातावरण को परिलक्षित किया जिसका प्रभाव अबतक देखने को मिल रहा है।

खासकर भारत में मोदी सरकार के आने के बाद अन्यथा ही इस मिटते रिश्ते को एक नयी मंजिल मिली है जिस संदर्भ में भारत ने अफ्रीका के प्रति अपने विदेश नीति के क्षेत्र में अनेकों भारी कदम उठाए। जिसका उल्लेखनीय उदाहरण पिछले चार-पांच वर्षों में भारतीय राजनयिकों द्वारा 23 अफ्रीकी देशों की यात्राएँ की गई जहाँ लगभग तीन दशक बाद किसी भारतीय राजनयिक के यात्रा के क्रम में मोदी द्वारा चार अफ्रीकी देशों की यात्रा के दौरान द्विपक्षीय दौर में मोजाम्बिक की यात्रा की गई। इसके अतिरिक्त सेसल्स, तंजानिया, केन्या, उजबेकिस्तान, ताजकिस्तान तथा दक्षिण अफ्रीका जैसे अफ्रीकी देशों के यात्राएँ कर मोदी ने अपनी भारतीय विदेश नीति में अफ्रीका की प्राथमिकताओं को स्पष्ट कर दी। जहाँ दोनों महाद्वीप के बीच न सिर्फ आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक बल्कि राजनीतिक तौर पर भी आपसी संबंध प्रगाढ़ हुए हैं।

माननीया राष्ट्रपति कोविंद द्वारा अक्टूबर 2017 में जिबूती और इथियोपिया की पहली विदेश यात्रा की गई। जबकि उपराष्ट्रपति हमीद अंसारी फरवरी 2017 में रावांडा की यात्रा करने वाले पहले भारतीय राजनेता बने।

भारत की इस नई दिलचस्पी का कारण यह भी है कि अफ्रीका महाद्वीप इस समय अपने संक्रमण के महत्वपूर्ण दौर से गुजर रहा है, और उसकी विकास यात्रा में भारत अनेक भूमिकाओं का निर्वाह कर सकता है। कृषि विकास और खाद्य सुरक्षा दो ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ अफ्रीका और भारत के बीच सहयोग के संभावित अवसर पर्याप्त हैं।

अफ्रीका में कच्चे तेल, गैस कोयला, हाइड्रोकार्बन एवम् कई महत्वपूर्ण खनिज के प्रचुर भंडार हैं दूसरी ओर भारत उर्जा संकट जैसी समस्याओं में जूझ रहा है, जिस हेतु भारत अपनी 70 प्रतिशत उर्जा जरूरतों की पूर्ति आयात द्वारा पुरी करता है। हाइड्रोकार्बन का आयात करने वाला भारत विश्व का सबसे बड़ा देश है। लिहाजा भारत की उर्जा समस्याओं को हल करने और आर्थिक विकास की दृष्टि से भी अफ्रीका भारत के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त भारतीय तकनीकी व आर्थिक सहयोग, टीम-9 और अखिल अफ्रीकी ई-नैटवर्क जिनका उद्देश्य है, संस्थागत और मानवीय क्षमता का निर्माण और कौशल व ज्ञान-अंतरण को सुगम बनाना, दिलचस्प बात तो यह है कि हाल ही में दिए गए व्यक्तियों और संयुक्त बयानों की नजदीकी जाँच-पड़ताल से पता चलता है कि अफ्रीका के प्रति नई दिल्ली की नजरिये जाँच-पड़ताल "Win Win Corporation" अर्थात् दोनों पक्षों में परस्पर सहयोग और जीत की भावना से की जा सकती है। और यह निश्चित हो "विकास के वैकल्पिक मॉडल" को दर्शाने के लिए एक सुविचारित नैतिक प्रयास है। मनमोहन सरकार को अगुआई में 2008 में भारत-अफ्रीका शिखर सम्मेलन



होने के बाद से लेकर 2013 तक दोनों देशों की व्यापारिक साझेदारी कई गुना बढ़ी है। जहाँ 2008–2013 के बीच अफ्रीकी देशों के साथ आयात 80 फीसदी बढ़ा है वहीं निर्यात में 100 फीसदी की बढ़ोतरी हुयी है। अगर 2016–17 की आकड़ों की बात की जाए तो दोनों देशों के बीच का द्विपक्षीय व्यापार डॉलर का है। फिर भी भारत और अफ्रीका के रिश्तों का आधार महज आर्थिक नहीं बल्कि सामाजिक, शैक्षणिक, एवम् समकालीन मुद्दे भी रहे हैं।

भारत-अफ्रीका आज आतंकवाद जैसे साझा खतरे से जूझ रहे हैं। भारत यहाँ लश्कर, तालिवान, आईएसआईएस के निशाने पर है तो अफ्रीकी के कई देश की भी बोको हरल, अलकायदा की गतिविधियों के चलते परेशान है जिस हेतु राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खुफिया सूचना के आदान-प्रदान और राजनीति सहयोग के जरिए दोनों ही पक्ष एक-दूसरे के लिए काफी मददगार साबित हो सकते हैं। खासकर सोमालिया में समुद्री लुटेरों से निपटने में काफी सहायक सिद्ध हो सकता है। वैश्विक स्तर पर भी कई अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत और अफ्रीका ने आतंकवाद के खिलाफ एकजुटता और प्रतिबद्धता दिखाई है। 2016 में प्रधानमंत्री मोदी और 2018 में विदेश राज्यमंत्री ने मोजाम्बिक का दौरा किया जिसके फलस्वरूप समुद्री रास्तों की सुरक्षा और सैन्य क्षेत्र में काफी सहयोग बढ़ा है। मोजाम्बिक चैनल के रास्ते ही भारत का बहुत समुद्री कारोबार होता है जिस कारण भारतीय वाणिज्यिक जहाजों की सुरक्षा भारत का सर्वोपरी राष्ट्रहित है क्योंकि भारतीय जहाजों अर्थव्यवस्था पर इसका सीधा असर पड़ता है। इससे पहले भी भारतीय नौसेना ने अफ्रीकी यूनियन के शिखर सम्मेलन और विश्व आर्थिक मंच की बैठकों को सुरक्षा प्रदान की थी। हालांकि इस क्षेत्र से भारत की उर्जा और सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण हित सीधे-तौर पर जुड़े हुए हैं।

भारत पेट्रोलियम कॉरपोरेशन, ओनएनजीसी विदेश लिमिटेड और ऑयल इंडिया जैसे कम्पनियों ने मिलकर “रोबुम ऑफशोर एरिया” में 6 अरब अमेरिकी डॉलर का निवेश कर रही है तथा साथ ही मोजाम्बिक की गोलफिन्हों और अटुम मोजाम्बिक को एलएन जी प्रोजेक्ट के लिए ट्रेनिंग दे रही हैं। वस्तुतः भारत की नजरिय से देखी जाए तो पूर्वी कारोबारी रास्तों के साथ-साथ पश्चिमी व्यापारिक समुद्री रास्तों को हिफाजत भी बहुत अहम हैं खासकर उस जगह जहाँ अरब सागर और हिंद महासागर मिलते हैं।

आज पूरे विश्व में जलवायु परिवर्तन को लेकर जिस तरह की सक्रियता को देखा जा रहा है और विकसित देश जिस प्रकार से इस मुद्दों पर अपनी एजेडो को विकासशील देशों पर थोपने की कोशिश कर रहे हैं उस लिहाज से भी भारत और अफ्रीकी की साझा रणनीति एक दूसरे के लिए हितकारी है।

भारत और अफ्रीकी के देश जैव-विविधता को दृष्टि से असाधारण रूप से समृद्ध हैं, जहाँ जीव जंतुओं एवम् वनस्पतियों की दुर्लभ प्रजातियाँ हैं जो अत्यधिक शोषण के अलावा जलवायु परिवर्तन की वजह से खतरे में हैं।

वस्तुतः एक मजबूत वैश्विक जलवायु परिवर्तन व्यवस्था में हमारी रुचि एक जैसी है। जो पर्यावरणीय दृष्टि से संपोषणीय ढंग से विकास करने में समर्थ बनाएगी। इस संदर्भ में पेरिस में होने वाले संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन का हवाला देते हुए मोदी ने कहा— “हम ऐसे बदलना चाहते हैं कि किलीमंजारों का बर्फ भी न पिघले, गंगा का पानी देने वाला ग्लेशियर न खिसके और हमारे द्वीप भी न डुबें।” और साथ ही भारत ने अफ्रीका को सौर उर्जा वाले देशों के गठबंधन से जुड़ने का न्योता दिया है।

भारत का अफ्रीका के संबंधों की अगली कड़ी में वैश्विक स्तर पर राजनीतिक दबदबा का भी है जिसका प्रमुख केन्द्र पूर्वी अफ्रीका है दूसरे शब्दों में यदि कहा जाए तो “हिंद प्रशांत महासागर” क्षेत्र जहाँ बहुत से देश चीन के भार से दबे हुए हैं। ऐसे में भारत ने अफ्रीका के विकास और प्रचार के लिए निजी क्षेत्र की साझेदारी को सर्वोपरी रखा है। भारत ने भारत-अफ्रीका फोरम की एक शृंखला भी शुरू की है और साथ ही जापान के साथ मिलकर एशिया-अफ्रीका विकास गलियारे पर भी काम कर रहा है। जिसको चीन के वन बेल्ट वन रोड के परिणाम के रूप में देखा जा सकता है जिसमें खांडा की अति सक्रिय भूमिका है। खांडा अफ्रीकी यूनियन की अध्यक्षता करने वाला तथा अफ्रीका की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में तीसरे नंबर का देश है। लिहाजा भारत की राजनैतिक प्रवेश की दृष्टि से यह काफी महत्वपूर्ण है, और यही कारण है कि भारत ने इसके साथ कई रणनीतिक समझौते किए हैं तथा खांडा में एक उच्चायोग की स्थापना भी की गई है। व्यापारिक दृष्टिकोण से भी भारत अफ्रीकी संबंधों में तेजी देखने को मिला है वर्ष 2017–18 में दोनों महाद्वीपों का द्विपक्षीय व्यापार 62.66 अरब डॉलर का रहा जो पिछले वर्षों को तुलना में 22 प्रतिशत अधिक है। हालिया समय में इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण व ठोस कदम

अफ्रीकी देशों के साथ “मुक्त व्यापार क्षेत्र” पर हस्ताक्षर किया जाना है। जिसे अफ्रीका के साथ व्यापार और आर्थिक पक्षों को मजबूत करने के एक अन्य अवसर के तौर पर देख रहे हैं।

आज वर्तमान समय में कई भारतीय कम्पनियाँ अफ्रीकी देशों में कई अधिग्रहण कर रही हैं और अपना उद्यम स्थापित कर रही हैं। वर्ष 2015 तक भारत-चीन यूरोपीय संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद चौथे सबसे बड़े व्यापार भागीदार के रूप में उभरा है, जबकि अफ्रीका यूरोपीय संघ, चीन, संयुक्त अरब अमीरात, संयुक्त राज्य अमेरिका और आसियान के पीछे भारत का छठा सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार बनकर उभरा है। हालांकि बहुपक्षीय व्यापार वार्ता दोहा चक्र कई वर्षों से पेचीदा है। जहाँ विश्व के अनेक क्षेत्रों में, जिसमें एशिया और अफ्रीका भी शामिल हैं, क्षेत्रीय मुक्त करार करने की रूझान है। तथापि वैश्विक परिदृश्य में ‘मेगाट्रेड ब्लॉक’ की दिशा में प्रयास किया जा रहा है। इस कमोवेश में “प्रशांत पारीय साझेदारी” पर वार्ता का पूरा होता एक शुभ संकेत है। संभावनाएं ऐसी हैं कि टीपीपी अखिल अटलांटिक व्यापार एवम् निवेश साझेदारी का अनुसरण करेगी। न तो भारत और न ही अफ्रीकी देश इन नए व्यापार गुटों के अंग हैं जिनके बीच 65 प्रतिशत से अधिक वैश्विक व्यापार संभव है। भारत और अफ्रीका के देशों के आर्थिक हित विश्व व्यापार संगठन के तहत एक सार्वभौमिक बहुपक्षीय स्तर पर वार्ता, नियमों पर आधारित विश्व व्यापार व्यवस्था सबसे अच्छे ढंग से पूरे होंगे। दोनों पक्षों को दोहा चक्र को बहाल करने तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था के विखण्डन को रोकने के लिए उपायों एवम् तरीकों का पता लगाने के लिए एक दूसरे से तथा समान सोच वाले अन्य देशों के साथ परामर्श करना नितांत आवश्यक है। वैश्विक अर्थव्यवस्था को इस तरह के विखण्डन का उनके आर्थिक संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव भी हो सकता है। जैसा कि आज विश्व भूमण्डलीकरण तथा परस्पर एक दूसरे से जुड़ा हुआ होता जा रहा है जिससे एक-दूसरे से जुड़े वैश्विक मुद्दों की अहमियत बढ़ रही है। जिनका समाधान चंद शक्तिशाली देशों या क्षेत्रीय प्रयासों के माध्यम से ही संभव मात्र नहीं है। इनमें कई मुद्दे जैसे जलवायु परिवर्तन, वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौतियाँ एवम् मानव तस्करी, व्यापक विनाश के हथियारों का प्रसार तथा अंतराष्ट्रीय आतंकवाद तथा साइबर सुरक्षा एवम् अंतरिक्ष सुरक्षा जैसे नए आयाम सम्मिलित हैं।

**निष्कर्ष**—भारत-अफ्रीका के प्रति अपनी अतीत का संबंधों को बरकरार रखते हुए कई नई अंतराष्ट्रीय मुद्दों पर अफ्रीकी देशों के साथ भारत अंतराष्ट्रीय मंचों पर सहभागी हैं चाहे वह आतंकवाद हो, उर्जा संकट हो या फिर जलवायु परिवर्तन हो, हर मुद्दों पर भारत-अफ्रीका देशों के साथ रणनीतिक साझेदारी को तैयार है। दक्षिण अफ्रीका, अंगोला, खांडा, सेनेगल, मॉरीशस, मोजाम्बिक तथा जिबुती जैसे अफ्रीकी राष्ट्रों के साथ भारत की यह रणनीतिक साझेदारी आने वाले समय में निःसंदेह ही काफी लाभप्रद साबित होगी। वस्तुतः इन मुद्दों पर अफ्रीका और भारत जैसे विकासशील महाद्वीपों की सक्रिय भागीदारी अपरिहार्य है। जैसे-जैसे अफ्रीकी देशों में भारत नए सिरे से अपनी गतिविधि बढ़ा रहा है, एक ऐसा गतिशील वातावरण बनने लगा है जिसमें तेजी से हुए परिवर्तन की लहर दिखाई पड़ने लगी है।

#### संदर्भ—सूची

1. एस.मेनन, भारत की विदेश नीति, व्याख्यान दिनांक 19 जनवरी 2009 को दिल्ली विश्वविद्यालय में एक संगोष्ठी में वितरित, पृ. 9-10
2. मीरा सान्याल, एच, इंडिया ए इकोनॉमिक पावर, वर्ल्ड फोकस, वॉल्यूम-xxxi, नं. 5, मई 2010, पृ. संपादकीय
3. द इकोनामिक टाइम्स, 04.11.2014
3. संपादकीय हिन्दुस्तान, 30.10.2015
5. राग चेगप्पा का आलेख, इंडिया टुडे, 04.11.2015
6. एशिया टाइम्स, 18.08.2018

\* \* \* \* \*

## भारत में महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा : एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ. प्रीतम कुमार यादव\* डॉ. सत्येन्द्र कुमार\*\*

**सारांश :** हम भारत के लोग गर्व अनुभव करते हैं कि हम विश्व के ऐसे सबसे बड़े लोकतंत्र के निवासी हैं जहां संविधान द्वारा महिला एवं पुरुषों को समानता का दर्जा दिया गया है किन्तु हमारा इतिहास है कि पुरुष के साथ हर कार्य क्षेत्र में सहभागी महिला का स्थान पुरुष की तुलना में बहुत नीचे आंका जाता है। “महिला शब्द जो समाज के आधे हिस्से का प्रतिधित्व करता है उसकी कल्पना से रहित कोई समाज नहीं हो सकता।” महिला समाज की निर्मात्री है और सृष्टि व सभ्यता का शुभारम्भ है।

भारतीय समाज में महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा एक ज्वलंत सामाजिक समस्या है। चिन्ता की बात यह भी है कि विविध नियमों-कानूनों के बावजूद न्यायिक और प्रशासनिक ढाँचा उत्पीड़ित महिला को न्याय नहीं दिला पाता। चाहे वह बलात्कार की शिकार महिला हो या दहेज उत्पीड़न की शिकार। जब वह अपने विरुद्ध किये गए अन्याय, अत्याचार या अपराध का प्रतिकार करने या न्याय माँगने के लिए सक्रिय होती है, तो सबसे पहले परिवार संस्था ही उसे हतोत्साहित करती है। अपवादों को छोड़कर आमतौर पर पुलिस का रवैया भी अपराध की शिकार महिला के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नहीं होता। इस तरह उसे पुलिस से भी कम हताशा नहीं मिलती।

**तथ्य विश्लेषण :** महिलाओं के प्रति हिंसा किसी व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला वह घिनौना कार्य है जहाँ एक व्यक्ति अपने रिश्तों के लिए अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है। घरेलू हिंसा के रूपों में शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना शामिल है। यह हिंसा रिश्तों में भय व अन्य प्रकार की प्रताड़नाओं द्वारा अपना दबदबा बनाये रखने का एक गलत प्रयास है। प्रताड़ित करने वाला व्यक्ति अपने शिकार को शाब्दिक रूप से धमकियों द्वारा मानसिक और मारपीट द्वारा शारीरिक प्रताड़नायें देता है। वैसे तो महिलाएँ हत्या, लूट, चोरी, डकैती जैसी घटनाओं की भी शिकार होती हैं लेकिन शोषण, बलात्कार, छेड़खानी, मारपीट करना तमाम तरह की मानसिक-शारीरिक यातनाएँ और दहेज हत्या ऐसा अपराध है जिनकी मार केवल महिलाएँ ही झेलती हैं। दैनिकी समाचार पत्रों में पृष्ठ पलटने पर एक पृष्ठ अवश्य ही महिलाओं के विरुद्ध हिंसक घटनाओं से भरा होता है। हिंसात्मक व्यवहार महिलाओं के साथ जीवन के सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षेत्रों में कभी भी कहीं भी घटित हो सकता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय समाज सदैव से ही पुरुष प्रधान समाज रहा है जहाँ कि लड़कों को लड़कियों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। घरेलू हिंसा के अन्तर्गत यह बात मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होती है कि अधिकांशतः घरेलू हिंसा का शिकार महिलाएँ ही होती हैं। महिलाओं का उत्पीड़न, शोषण, बलात्कार, भगा ले जाना, मारपीट करना, अपशब्दों का प्रयोग करना, जला देना, मार डालना आदि। महिलाओं के विरुद्ध अपराधों के प्रमुख प्रकार हैं। राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो द्वारा दी गई रिपोर्ट के अनुसार प्रति 04 मिनट में एक महिला उत्पीड़न, प्रति 01 मिनट में पति सम्बन्धी उत्पीड़न, प्रति 15 मिनट में महिला छेड़छाड़, प्रति 53 मिनट में यौन उत्पीड़न, प्रति 70 मिनट में दहेज हत्या तथा प्रति 29 मिनट में बलात्कार की घटना घटित होती है।<sup>1</sup> राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो के वर्ष 2014 के आंकड़े कहते हैं कि पिछले 10 वर्षों में महिलाओं के खिलाफ अपराध दोगुने हुए हैं। पिछले

\* राजनीति विज्ञान, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

\*\* एसोसिएट प्रोफेसर, जे.पी. नारायण कॉलेज (तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय), भागलपुर

एक दशक में महिलाओं के विरुद्ध 22.40 लाख अपराध दर्ज हुए हैं। इस आंकड़ों के आधार पर इंडिया स्पेंड के एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में हर घंटे में महिलाओं के खिलाफ 26 हिंसक मामले दर्ज होते हैं यानी हर दो मिनट में एक शिकायत दर्ज होती है। इन मामलों में गंभीरता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि ये आंकड़े थानों में दर्ज अपराधों के हैं वरना न जाने कितने अपराध समाजिक प्रतिष्ठ का भय दिखाकर घर में दफन करा दिये जाते हैं। पुलिस थानों तक नहीं पहुँच पाते, कुछ शिकायत लेकर पहुँचते भी हैं तो रिपोर्ट नहीं लिखवाई जाती और अगर रिपोर्ट लिखी भी जाती है तो कार्यवाई बहुत लम्बी हो जाती है या दोषी को सजा नहीं होती है। ये समस्याएँ नई नहीं हैं। हमारा समाज जब से पुरुष प्रधान है और महिलाएँ अपने पुरे जीवनकाल में पुरुष के शासन में रहती हैं बाल्यवस्था में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहती हैं। यह समस्या किसी एक समाज की नहीं है। यह समस्या शहर तथा गाँव दोनों ही क्षेत्रों में विद्यमान है। मद्यपान, दहेज, अशिक्षा तथा जागरूकता में कमी इस हिंसा के प्रमुख कारण हैं। भारतीय महिलाओं की स्थिति लम्बे समय से कामोबेस ऐसी ही है। यौन उत्पीड़न मानव समाज की प्राचीनतम मान्यताओं में से एक है। आज मन की कोमल भावनाएँ समाप्त हो चुकी हैं। महिलाओं के प्रति हमारा जनरिया दिन प्रतिदिन बदतर होता जा रहा है। हिंसा के खिलाफ कदम उठाने वाली महिलाओं के लिए सुरक्षा के कवच न तो परिवार में होते हैं और न ही परिवार के बाहर। इस लिए घरेलू हिंसा कितनी भयानक और व्यापक हो, उसके प्रति महिलाओं का विरोध आज भी उतना ही सीमित है।

**महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा के कारण :** दरअसल, महिलाओं विरुद्ध बढ़ते अपराधों का संबंध उन अनेक सामाजिक परिवर्तन से है, जो पिछले कई दशकों से भारतीय समाज में घटित हो रहे हैं और उन नई प्रवृत्तियों से भी जो भारतीय समाज का हिस्सा है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि पिछले दशकों में नारी अधिकार चेतना का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। जाहिर है कि इन प्रवृत्तियों से जुड़ी महिला चेतना कहीं न कहीं पुरुष के बर्चस्व को चुनौती दे रही है। अगर पुरुष के पारंपरिक वर्चस्व को चुनौती मिलती है तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप महिलाओं का शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। इस तरह महिलाओं के विरुद्ध बढ़ते अपराधों का एक कारण नारी अधिकार चेतना की स्वस्थ प्रवृत्ति में छिपा हुआ है।

आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी ने बड़ी संख्या में महिलाओं को घर से बाहर की व्यवस्था से जोड़ा है। एक सामान्य लिपिक से लेकर अधिकारी होने और एक सामान्य सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका से लेकर राजनीतिक नेतृत्व तक की भूमिकाओं से जुड़ने वाली आज की औरत पुरुष वर्ग के अहम को चुनौती दे रही है। यहाँ भी अपने प्रति दमनात्मक दृष्टि के विरोध में खड़ी होकर उसने अपने ऊपर होने वाले हमलों को धार दी है। जब एक और अपने परिवार में अपनी मर्जी से शादी करने या बाहर जाकर नौकरी करने की बात करती है अर्थात् जब वह परिवार के आर्थिक आधार पर अपना अधिकार जताती है और परिवार से बाहर अपनी क्षमता पुरुषों के समान स्थापित करती है तो जाहिर है कि वह घर और बाहर दोनों जगह टकराहट मोल लेती है। इस तरह औरत की सामाजिक प्रगति भी उसके विरुद्ध होने वाले अपराधों की एक वजह है।

बढ़ते अपराधों का एक महत्वपूर्ण कारण पारंपरिक यौन नैतिकता तथा नई यौन चेतना के बीच टकराहट में निहित है। जहाँ पारंपरिक यौन नैतिकता आज भी शील-संकोच, पर्दा, कौमार्य जैसे मूल्यों के प्रति दुराग्रहशील है, तो नई यौन चेतना इन सबको नकार कर दैहिक माँग को प्रधानता देने और गर्भ निरोधक संस्कृति को स्वीकारने से जुड़ी है। इन दोनों की टकराहट से भी बहुस्तरीय उत्पीड़न बढ़ा है। एक ओर एक औरत उत्पीड़न का शिकार इसलिए होती है कि वह पारंपरिक नैतिकता का उल्लंघन कर रही है, तो दूसरी ओर वह इसलिए उत्पीड़न का शिकार होती है कि उसने उन नैतिकाओं को छोड़कर पुरुष को अपने प्रति मनमाने ढंग से व्यवहार करने के लिए न्यौता दिया है।

गरीबी, अशिक्षा जैसे कारणों के अलावा असंतुलित विकास और अनियंत्रित उपभोक्ता संस्कृति के फैलाव से भी महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराध बढ़े हैं। जहाँ गरीब महिलाओं को अपराधियों के सामने चारा बनकर फेंक देती है, वहाँ उपभोक्ता संस्कृति महिलाओं को अपराधियों की ओर ललचा ले जाती है।

**महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा को रोकने के उपाय :** इस तरह महिलाओं के विरुद्ध होने वाले घरेलू हिंसा का न कोई एकाकी कारण है और न एकाकी निराकरण। ऐसा नहीं है कि सरकार की ओर से इस विषय में कोई सकारात्मक कदम नहीं उठाये गए हैं। महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा के मामलों पर सकारात्मक सुनवाई और कार्यवाही के लिए ही महिलाओं के विरुद्ध अपराध प्रकोष्ठ दिल्ली, महिला आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग

और महिला पुलिस थानों का गठन किया गया। फिर भी घरेलू हिंसा के इस पेचीदा रूप को पहचानते हुए लम्बे इंतजार के बाद “घरेलू हिंसा रोक अधिनियम 2005, 26 अक्टूबर 2006 को लागू किया गया। हालांकि संविधान में महिलाओं के अधिकारों और उनके उत्पीड़न को रोकने के लिए अनेक प्रावधानों के बावजूद महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं रही है। सर्वेक्षण बताते हैं कि विभिन्न सामाजिक और आर्थिक स्तर की 70 प्रतिशत भारतीय महिलाएं किसी न किसी प्रकार की घरेलू हिंसा की शिकार होती हैं। घरेलू हिंसा रोक अधिनियम 2005 से पहले घरेलू हिंसा के विरुद्ध अनुच्छेद 498ए के तहत घरेलू हिंसा मामलों की सुनवाई और कार्यवाही होती थी। यह एक अपराधिक कानून था जिस दहेज प्रताड़ना वैवाहिक घर में पति व ससुराल वालों द्वारा मारपीट के मामलों को दर्ज किया जाता था। महिलाओं के साथ होने वाली घरेलू हिंसा पर रोक लगाने के उद्देश्य से ही क्राईम अग्रन्स्ट विमेन की भी स्थापना की गई थी। इन कानूनी प्रावधानों के होते भी घरेलू हिंसा के मामलों में महिलाओं को उतना न्याय नहीं मिला जितनी कि उम्मीद थी और ना ही घरेलू हिंसा की घटनाओं पर रोक लगायी जा सकी। घरेलू हिंसा रोक अधिनियम 2005 भी कोई सकारात्मक तस्वीर प्रस्तुत नहीं कर पाया। आज भी महिलाएं घर की चारदिवारी में चुपचाप पति के अत्याचार इसलिए सहती हैं कि यदि घर से बाहर कहीं थाने या अदालत में शिकायत की तो घर का आसरा, बसा हुआ घर ही टूट जायेगा और अगर शिकायत करने कोई महिला आगे बढ़ती है तो वही जिसे अपने घर टूटने की परवाह नहीं है। विकल्प का अभाव घर छोड़ने की स्थिति में जीवन की आर्थिक आवश्यकताएं बढ़ा कारण है। यह समस्या तब और भी जटिल हो जाती है जब महिलाएं अशिक्षित हों। क्योंकि महिला सशक्तिकरण में शिक्षा बहुत ही अहम भूमिका अदा करती है। महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक “दी रोल ऑफ विमेन” में लिखा है, यह कहना गलत नहीं होगा कि बिना शिक्षा के मानव एक पशु से बहुत अलग नहीं है, इसलिए यह महिलाओं के लिए उतनी ही जरूरी है जितनी पुरुषों के लिए। शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तियों का उत्थान ही नहीं होता अपितु यह सामाजिक समस्याओं से मुक्ति, सामाजिक परिवर्तन और विकास का एक सशक्त साधन है। भारतीय समाज की आधी आबादी महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत स्वाधीनता के 70वें वर्ष में भी 65 प्रतिशत को नहीं छू सका है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो तस्वीर और भी फीकी है। ऐसे में घरेलू हिंसा रोक अधिनियम की सही जानकारी वहां की महिलाओं के लिए दूर का ढोल ही है।

**निष्कर्ष :** हम कह सकते हुए हैं कि कुछेक घटनाओं को छोड़कर महिला हिंसा/अपराध को रोकने में पुलिस की महती भूमिका रही है और आये दिन पुलिस की कार्यशैली में भी काफी बदलाव आई है। परन्तु आज आवश्यकता इस बात की है कि महिलाएं अपने स्वरूप को पहचानें, अपने अस्तित्व को समझे और अपने भविष्य के प्रति स्वयं जागरूक बनें। अन्ततः अपने इस शोध पत्र के माध्यम से कहना चाहता हूँ कि हिंसा से बचना है तो हमें समाज में संदेश फैलाना होगा कि अपनी बहिन, बेटियों को ज्यादा पढ़ाये क्योंकि पढ़कर ही वे सशक्त होंगी और उनका आत्मविश्वास मजबूत होगा। महिलाओं को सम्मान न देने वालों की निंदा करें और महिला हिंसा के विरुद्ध मानसिक और शारीरिक प्रभावों की गम्भीरता के प्रति जागरूकता पैदा करें। तभी हम एक ऐसे समाज का निर्माण कर पायेंगे जहाँ न महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा होगी न हमें अधिनियमों की आवश्यकता होगी, सभी शिक्षित होकर अपने व्यवहार के द्वारा आपसी रिश्तों को मजबूती प्रदान कर समाज में कंधे से कंधा मिलाकर चल सकेंगे। शिक्षा, खान-पान, रहन सहन और उन्मुक्त जीवन शैली के आधार पर भले हम यह कहें कि शहरी इलाकों में महिलाओं की स्थिति सुधरी है, लेकिन ग्रामीण इलाकों में अधिकांश स्थिति बदतर ही है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं को भी बराबरी का हक मिला है, लेकिन ये हक ज्यादातर संविधान एवं कानून की किताबों तक ही सीमित है, इसे व्यवहारिक धरातल पर उतारना होगा।

#### संदर्भ-सूची

1. शुक्ल अमित : “महिला सशक्तीकरण नई सहस्राब्दी में अवधारणा” पृ. 137.
2. माशा : “नारी के विरुद्ध अपराध : पूरी दुनिया की आप बीती” योजना, अंक सितम्बर 2016, पृ. 47-48.
3. आहूजा, राम : सामाजिक समस्याएँ, पृ. 435.
4. माथुर, प्रियंका : महिला सशक्तीकरण, पृ. 24.
5. श्री कृष्ण, बी0एन0, हिन्दुस्तान, 29 दिसम्बर 2012.
6. गान्धी, महात्मा : द रोल ऑफ विमेन।

\* \* \* \* \*

## समसामयिक परिप्रेक्ष्य में नगरों समस्याएँ : चुनौतियाँ व समाधान

डॉ० मुकेश कुमार शर्मा\*

नगरीकरण एक सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया है जिसमें कस्बों व शहरों की तीव्र जनसंख्या वृद्धि के साथ संकेन्द्रण होता है। नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या का संकेन्द्रण नगरों की संख्या व आकार में वृद्धि करती है। 1991-2001 में नगरीकरण में वृद्धि 31 प्रतिशत रहा है। 20 वीं शताब्दी में नगरों की जनसंख्या में 144.6 वृद्धि हुई है। भारत की 73 प्रतिशत जनसंख्या प्रथम वर्ग के नगरों में निवास करती है। गोवा, मिजोरम, तमिलनाडु व महाराष्ट्र में क्रमशः 49.7 प्रतिशत, 49.6 प्रतिशत, 43.86 प्रतिशत तथा 42.4 प्रतिशत तथा केन्द्र शासित राज्यों में दिल्ली, चण्डीगढ़ व पाण्डिचेरी में क्रमशः 93 प्रतिशत, 89.8 प्रतिशत व 66 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय है।

अनियंत्रित और अनियोजित नगरीकरण केवल नगरीय जीवन को दुखदायी ही नहीं बल्कि समीपस्थ क्षेत्रों को भौतिक, सामाजिक व आर्थिक रूप से अति खतरनाक पर्यावरण पैदा कर देती है। नगरीय समस्याएं दो प्रकार की होती है – 1. आन्तरिक समस्या, 2. बाह्य समस्या।

1. **आन्तरिक समस्या**—कुछ आन्तरिक समस्याएं इस प्रकार हैं—जैसे नगरों में स्थान की कमी, आवास की कमी, यातायात समस्या, स्वच्छ पेयजल की अनुपलब्धता, विभिन्न प्रकार के प्रदूषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, शहरी अवशिष्ट (मलमूत्र, कूड़ा करकट, व गन्दा जल) गन्दे पानी के निकास (सीवर) की समस्या, विद्युति आपूर्ति, ईंधन की समस्या, नियमों व आदेशों को यथास्थिति बनाये रखने की समस्या तथा अपराधों में नियंत्रण आदि जैसी विकट समस्याएँ महानगरों एवं शहरों में व्याप्त है। जिनका निराकरण करना सामाजिक वैज्ञानिकों, प्रशासकों, नियोजन, नीतिनिर्माताओं तथा पर्यावरण वैज्ञानिकों आदि का परम कर्तव्य है।

2. **बाह्य समस्या**—उपान्त क्षेत्र व सेवा क्षेत्र के जनसंख्या व क्षेत्र पर प्रभाव इसके अन्तर्गत नगर क्षेत्र, नगरीय सेवा क्षेत्र, बाह्य भागों में कालोनियों, औद्योगिक केन्द्र, ग्राम नगर सम्बन्ध आदि प्रमुख हैं।

**नगर प्रदूषण समस्या व समाधान**—स्थानाभाव, आवास, परिवहन, जलापूर्ति विद्युति आपूर्ति, चिकित्सा, शिक्षा नगरीय अपशिष्ट, मलमूत्र विसर्जन, जल निकासी, नगर प्रदूषण, ध्वनि, वायु, जल सामाजिक अपराध, मलिन बस्तियाँ मनोरंजन की समस्याएँ व समाधान निम्न प्रकार हैं—

1. **स्थान की समस्या व समाधान**—शहर अपने विकास के लिए अधिक-से-अधिक स्थान चाहते हैं अतः कालोनियों, उद्योग केन्द्रों, शिक्षा केन्द्र, व्यापारिक केन्द्र, वाणिज्यिक केन्द्र व यातायात केन्द्रों को शहर के उपान्त में स्थापित करना चाहिए। इसके लिए पर्याप्त सस्ता यातायात की व्यवस्था करनी चाहिए तथा विभिन्न प्रकार के उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए।

2. **आवास की समस्या व समाधान**—भारत के नगरों में 17 लाख घर की आवश्यकता है। नगरों में आवास की अधिक कमी से मासिक आय का 30 से 40 प्रतिशत भाग उच्च किराया दरों में खर्च हो जाता है। इसी कारण से निम्न आय वर्ग के लोग गन्दी बस्तियों, फुटपाथ व सड़कों के किनारे रहते हैं। जो कि नगरों के लिए विभिन्न समस्याओं को उत्पन्न करते हैं। इनके निराकरण के लिए नगरों में लम्बवत् कालोनियों की व्यवस्था, पार्कों की व्यवस्था, मनोरंजन केन्द्र आदि की समुचित व्यवस्था करनी चाहिए।

नगरीय क्षेत्रों में गन्दी बस्तियाँ पाई जाती हैं। ऐसे घर में स्वस्थ व सभ्य समुदायों के लिए अनुपयुक्त होता है जो अति भीड़, अव्यवस्थित मकान, हवा, जल व शौचालय सुविधाओं की कमी, असुरक्षित स्वास्थ्य नीति तथा

\* व्याख्याता, अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय, सारण, छपरा



अनैतिक कार्यों वाले आवासीय क्षेत्रों को गन्दी बस्ती कहा जाता है। शहर व नगर विकास नियोजन संगठन के अनुसार—“भारत की सम्पूर्ण नगरीय जनसंख्या का 21.3 प्रतिशत गन्दी बस्तियों में रहती है। इन क्षेत्रों में अशिक्षित, ग्रामीण क्षेत्रों से आये हुए अकुशल कृषक श्रमिक जो रोजगार की खोज में महानगरों में आते। ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं। “1991 में मुंबई 54 लाख जनसंख्या 2641 गन्दी बस्तियों में रह रही थी। 2001 में इनकी जनसंख्या में 93.64 की वृद्धि हुई है। मुम्बई में धारावी एशिया की सबसे बड़ी गन्दी बस्ती है। जिसका क्षेत्रफल 4.5 वर्ग किमी० व मकानों की संख्या 65 हजार से अधिक है। जिसमें 3 स्थायी व 1 लाख लोग शहर के केन्द्र में घूमते रहते हैं। धारावी मलिन बस्ती को श्रमिक विद्यापीठ (एन.जी.ओ.) ने सुधार कर एक लघु औद्योगिक स्टेट बना दिया है। इन मलिन क्षेत्रों में स्वास्थ्य, शौचालय, हवा व शुद्ध जल के अभाव से विभिन्न रोगों (क्षयरोग, कालरा, मलेरिया व पीलिया) से अधिक प्रभावित रहते हैं।

**3. परिवहन की समस्या व समाधान**—भारत में विभिन्न नगर परिवहन की समस्याओं से ग्रस्त है। जिनमें सड़क, गलिया, ओवर ब्रिज, बाइपास आदि प्रमुख हैं। परिवहन व औद्योगीकरण के फलस्वरूप वायुमण्डलीय प्रदूषण होता है। परिवहन साधनों द्वारा विसर्जित प्रदूषित गैसों, वातानुकूलित, फ्रीज, फर्नीचर, पॉलिश आदि द्वारा विसर्जित सी.एफ.सी.एस. से ओजोन का छय आदि मुख्य हैं। नगर के संरचनात्मक व कार्यात्मक कार्यों से नगरों के ऊपर का तापमान बढ़ जाता है जो गाँव के ऊपर के शीतल वायुमण्डल की अपेक्षा गरमदीप के रूप में, उष्मार्थि के रूप में निर्मित होता है। नगर की गर्म हवाओं के साथ नगर की धूल, प्रदूषित तत्व, विषाक्त पदार्थ तथा उद्योगों एवं परिवहन से विसर्जित कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड व कार्बन मोनो आक्साइड इत्यादि ऊपर उठकर प्रदूषण व जलवायु गुम्बद के रूप में स्थापित हो जाता है। जिससे शीतकाल में वायुमण्डलीय दबाव में वृद्धि के कारण अम्लीय वर्षा होती है। जो मानव फेफड़ों को हानि पहुंचाती है। कार्बोनिक एसिड, सल्फ्यूरिक एसिड आदि जाल वाष्प से मिलकर गांव के ऊपर अम्ल वर्षा करती है। वायु प्रदूषण सल्फर डाई आक्साइड विसर्जन के आधार पर मुम्बई 18, दिल्ली 27वें, कलकत्ता 37 में स्थान पर आता है। मुम्बई में कुल वायुप्रदूषण का 52 प्रतिशत परिवहन साधनों के द्वारा होता है। सल्फर डाईऑक्साइड के विसर्जन में 48 प्रतिशत उद्योग तथा 33 प्रतिशत शक्ति गृहों का योगदान है। दिल्ली में 11 लाख पंजीकृत वाहन प्रतिदिन 250 टन कार्बन मोनो आक्साइड, 400 हाइड्रो कार्बन, 6 टन सल्फर डाईऑक्साइड तथा अधिक मात्रा में अन्य प्रदूषित गैसों हवा में छोड़ती है। कानपुर में वायु प्रदूषण व अन्य प्रदूषण प्रमुख है।

इन समस्याओं के समाधान के लिए परिवहन के क्षेत्र में यूरो 1 तथा यूरो 2 सीसा रहित पेट्रोल, बैटरी चालित टैक्सियों आदि का विकास के साथ ग्रीन सिटी व हरित पेटी का विकास किया जाना चाहिए। जैसे दिल्ली के चारों ओर 1—6 किमी चौड़ी वृक्षपेटी का निर्माण हुआ है।

**4. स्वच्छ पेयजल की समस्या व समाधान**—नगरों में स्वच्छ पेयजल आपूर्ति की एक विकट समस्या है। नगरों में पेयजल आपूर्ति पाइपलाइनों के स्रोत में सीवेज पानी के मिश्रण से जल भण्डार प्रदूषित हो रहा है। जल शुद्धीकरण सुविधाओं का अभाव, नदियों व झीलों में सीवर व अपशिष्ट पदार्थों के अनियंत्रित बहाव, खुले शौच से जल की गुणवत्ता में हास हो रहा है जबकि शहरों को इन्हीं प्रदूषित नदियों व झीलों में जल आपूर्ति की जाती है। कलकत्ता में प्रति व्यक्ति 272 लीटर, मुम्बई 190 लीटर दिल्ली में 90 लीटर प्रति व्यक्ति जल की आवश्यकता होती है। जबकि लास एन्जिल्स में 1200 लीटर, शिकागो में 1058 लीटर व लन्दन में 200 लीटर प्रति व्यक्ति जल का उपयोग किया जाता है।

**5. ध्वनि प्रदूषण की समस्या व समाधान**—“अनचाहे उच्च स्तर की आवाज या ध्वनि जो मानव के लिए असुविधाजनक व कष्टदायक होते हैं ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न करने वाले ऑटोमोबाइल, फैक्ट्री, मिल, लाउडस्पीकर भीड़-भाड़ युक्त बाजार आदि मुख्य हैं। जो इन तत्वों से महानगर ध्वनि प्रदूषण से प्रभावित है। चेन्नई में 89 डेसीबल, मुंबई में 85 डेसीबल, दिल्ली में 89 डेसीबल, कोलकाता में 87 डेसीबल, कानपुर में 75 डेसीबल तक का उच्चतर को ध्वनि प्रदूषण है।

**6. अवशिष्ट पदार्थों के विसर्जन की समस्या तथा इसका समाधान**—घरों में प्रयुक्त होने के बाद फेंक दी जाने वाली बेकार वस्तुओं व पदार्थों, टूटे हुए शीशों के टुकड़े, प्लास्टिक के सामान, पोलिथिन बैग, टिन, पुराने समाचार, पत्र व घर के अवशिष्ट पदार्थों को इस श्रेणी में शामिल किया जाता है। इसके अलावा नगरीय व औद्योगिक कार्यों से विसर्जित पदार्थ भी इस श्रेणी में आते हैं।



भारत के 45 शहर प्रतिदिन 3 लाख जनसंख्या वृद्धि के साथ 50 हजार टन अवशिष्ट पदार्थ पैदा करते हैं। मुंबई में 4400 टन कूड़करकट प्रतिदिन उत्पन्न होता है जिसको हटाने के लिए 16 हजार कर्मचारी व 270 ट्रकों को लगाया गया है। कोलकाता में 4 हजार टन प्रतिदिन विसर्जित अवशिष्ट पदार्थों को 70 : भाग नगर निगम के कर्मचारियों द्वारा हटाया जाता है। कानपुर व लखनऊ में क्रमशः 1000 व 900 टन प्रतिदिन विसर्जित कूड़ा-करकटों को 1/3 नागरिक संस्थाओं द्वारा हटाया जाता है सड़क के किनारे पर अवैज्ञानिक तरीके से जमा किये गये अस्पतालों के अवशिष्ट पदार्थ जो विभिन्न विषाणुओं व जीवाणुओं से प्रदूषित होते हैं, का समुचित नैदानिक उपाय अपनाने के लिये सरकार को कड़े नियम बनाने चाहिए। इन अवशिष्ट पदार्थों के वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग करने के लिए दिल्ली में तिमारपुर नामक स्थान पर ऊर्जा उत्पादक केन्द्र की स्थापना की गयी।

7. सामाजिक समस्याएँ एवं समाधान—नगरों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याएं होती हैं। जैसे—चोरी, डकैती, बलात्कार, अपहरण, मादक द्रव्यों की तस्करी, वेश्यावृत्ति, धार्मिक उन्माद, बाल अपराध, अशान्ति व असुरक्षा जैसी सामाजिक समस्याएँ नगर को अवनति की तरफ लाती हैं। इसका प्रमुख कारण भौतिकवादी संस्कृति, उपभोगवाद में वृद्धि, स्वार्थ, संघर्षपूर्ण प्रतियोगिता, सामाजिक, आर्थिक असमानता, बेरोजगारी में वृद्धि, अकेलापन आदि हैं। अपराधियों के क्रियाकलापों को क्रियान्वित करने के लिए राजनीतिज्ञों, धनी वर्गों व नौकरशाही लोगों ने संरक्षण देकर बढ़ावा दिया है। निम्न वर्ग, गरीब व शोषित तथा शीघ्र धनी बनने के लालच में उच्च घरानों के बेरोजगार युवा आदि मुख्य हैं। इस श्रेणी में बलात्कार, हत्या, अपहरण, डकैती, चोरी आदि आते हैं। आर्थिक अपराध (चोरी, धोखा, विश्वास दिलाकर अपराध करना) उत्तरी भारत में होता है तथा ऐसे अपराध पश्चिमी महाराष्ट्र में भी हैं। गरीबी से सम्बन्धित अपराध पूर्वी भारत के पटना, दरभंगा, गया व मुंगेर में होता है। यह अपराध करने वाले गरीब जाति के दलित निम्नवर्ग के होते हैं।

इसके अलावा स्वास्थ्य सेवाएं, शिक्षा, शौचालय, परिवार नियोजन, नगरीय जनसंख्या में नियंत्रण, उद्योगों का विकासात्मककरण, रोजगार में वृद्धि, आय-स्तर में वृद्धि, पोषण स्तर वृद्धि, यातायात, व्यापार, संचार आदि का वृद्धि करके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक व प्राकृतिक आदि रूपों से नगरों के विकास के लिए भावी रणनीति बनानी चाहिए। नगरों में बढ़ रही अपराधिक प्रवृत्तियों, पाश्चात्य सभ्यता, वेश्यावृत्ति, अपहरण, बाल अपराध, मादकद्रव्य, हिंसा, बलात्कार तथा अश्लील फिल्मों आदि को रोकने के लिए जनता व सरकार दोनों को जागरूक होना चाहिए।

## REFERENCES

1. Bala : Raj . ( 1986 ) : Trends in Urbanization in India, Rawat Pub., Jaipur
2. Bose ; A. ( 1980 ) : India's Urbanization 2000 & 2001, New Delhi .
3. Chandana , R.C. ( 1992 ) : A Geography of Population, Kalyani Publication Ludhiyana .
4. Chauhan : V.S. & Gautam , A. ( 2002-03 ) : Bharat Varsha Ka Vistrit Bhoogol, Rastogi Publication Meerut .
5. Datta A.K.et. AL . ( 1996 ) : Cultural Pattern of Indian in New Frontiers in Indian Geography.

\* \* \* \* \*

## गढ़वाल हिमालय में पर्यटन उद्योग के विकास की सम्भावनाएँ

डॉ. प्रदीप कुमार\*

**सारांश**—आकर्षणों की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र में पर्यटन विकास की अपार संभावनायें विद्यमान हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन आकर्षणों को पर्यटन उत्पाद के रूप में प्रस्तुत करने के लिए पर्यटन की पूरक सुविधायें जैसे— परिवहन, आवास व मनोरंजन की सुविधा सुलभ करायी जाये। इसी के साथ-साथ गढ़वाल में पर्यटन की दृष्टि से उपयोगी क्षेत्रों की खोज की जाये।

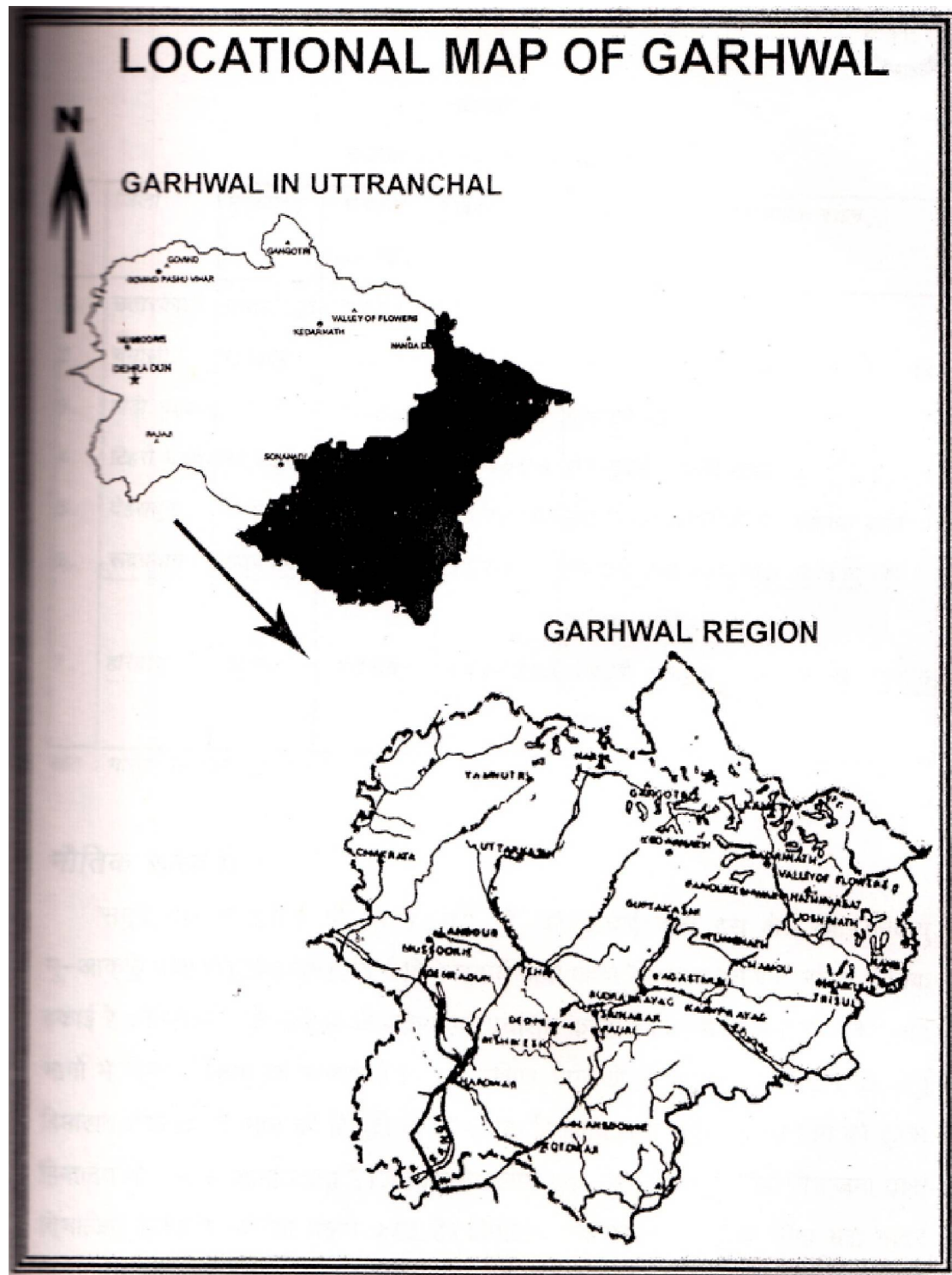
प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी द्वारा पुस्तकें व अन्य उपलब्ध साहित्य तथा वहाँ के निवासियों एवं साहसिक पर्यटकों से बात-चीत करके जो कुछ भी गढ़वाल के पर्यटन विकास में सहायक सिद्ध हो सकता है, को संकलित करके प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आकर्षण की दृष्टि से गढ़वाल मण्डल एक धनी क्षेत्र है जहाँ पर्यटन विकास की अपार सम्भावनायें विद्यमान हैं, परन्तु अभी तक जहाँ पर पर्यटन विकास सामान्यतया तीर्थाटन, ग्रीष्म पर्यटन, शीत पर्यटन, मनोरंजन पर्यटन, साहसी पर्यटन, इको पर्यटन आदि के रूप में हुआ है तथा पर्यटन के अनेकों क्षेत्र जैसे मेडिकल पर्यटन (योगा, मेडिटेशन, प्राकृतिक, चिकित्सा), सम्मेलन पर्यटन, सामाजिक पर्यटन, व्यावसायिक पर्यटन, खेल पर्यटन, शैक्षिक पर्यटन आदि को विकसित नहीं किया जा सका है। अतः इन क्षेत्रों का विकास करके अध्ययन क्षेत्र गढ़वाल हिमालय में पर्यटन उद्योग का विकास किया जा सकता है। सामान्यतः सभी निष्कर्ष मेरे द्वारा किये गये समीक्षात्मक अध्ययन पर आधारिक हैं।

धवल हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं, हरी-भरी वादियों और कल-कल निनादिनी गंगा-यमुना की पावन भूमि का सीमान्त प्रान्त उत्तरांचल अपनी आध्यात्मिक और धार्मिक विविधता के कारण पूरे विश्व में देव-भूमि के नाम से विख्यात है। दिव्य हिमालय की गोद में बसे इस नवसृजित उत्तरांचल राज्य का जन्म 9 नवम्बर 2000 को देश के 27वें राज्य के रूप में हुआ। गढ़वाल हिमालय 20°-26' उत्तरी अक्षांश से 31°-27' उत्तरी अक्षांश तथा 77°-34' पूर्वी देशान्तर से 81°-07' पूर्वी मध्य स्थित है। गढ़वाल हिमालय का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 32510 वर्ग किलोमीटर है। प्रशासनिक दृष्टिकोण से उत्तरांचल गढ़वाल एवं कुमाऊँ दो मण्डलों में विभक्त है। मैंने गढ़वाल हिमालय को शोध के लिए चुना है। गढ़वाल हिमालय की प्राचीन संस्कृति उतनी ही विविधतापूर्ण है जितनी भारतीय संस्कृति है।

मध्य हिमालय की गोद में वसे गढ़वाल हिमालय की विविधतामयी संस्कृति यहाँ के प्राकृतिक भौगोलिक परिवेश, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, धर्म-संस्कृति, लोकगीत एवं कलाएँ सामाजिक आर्थिक परिवेश, वन्य जीव एवं वानस्पतिक विविधता कुल मिलाकर एक ऐसे प्राकृतिक-सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश को जन्म देते हैं। जो पर्यटकों के लिए असीम आकर्षण का विषय बन गया है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से गढ़वाल हिमालय में पर्यटन उद्योग के महत्व एवं सम्भावनायें खोजने का अथक प्रयास किया गया है। सुरम्य और शान्त गढ़वाल हिमालय में पर्यटन की अपार सम्भावनायें हैं। तीर्थ के रूप में पर्यटन का जो परम्परागत धार्मिक आध्यात्मिक स्वरूप प्रचलन में रहा है उसमें कोई कमी नहीं आयी है बल्कि वृद्धि ही हुई है। इसे और आधुनिक तथा सुविधाजनक बनाने की आवश्यकता है। गढ़वाल हिमालय के उच्च पर्वतीय शिखरों पर शक्ति पीठ और सिद्ध पीठों की अवस्थिति मनुष्य को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करती है और हमारी आस्था को दृढ़ करती है। गढ़वाल हिमालय में स्थित धर्मस्थल, देवालय, सरोवर तीर्थ, गुरुद्वारे, मस्जिदें एवं ऐतिहासिक स्थल हमारी अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर हैं। इस देवभूमि

\* भूगोल विभाग, झम्मन लाल पीजी. कॉलेज, हसनपुर, अमरोहा



में हिन्दू धर्म के साथ अन्य धर्मों के उपासना गृहों का भी पाया जाना हमारे देश, प्रदेश और क्षेत्र की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक सहिष्णुता का सबसे बड़ा प्रमाण है। हमारी लोक-संस्कृति हमारी महत्वपूर्ण धाती है जो हमारे लोक जीवन में व्यक्त होती है। इसमें हमारी आत्मा बोलती है। अतः गढ़वाल हिमालय की लोक कलाओं, लोकनाट्य, लोक-नृत्यों, लोक संगीत, पर्व, त्योहार एवं मेलों जैसे कला रूपों का भी पर्यटन से जोड़ कर प्रस्तुत षोष-पत्र में गहन अध्ययन किया गया है। गढ़वाल हिमालय पर्यटन की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध है। धार्मिक पर्यटन की प्रमुखता होते हुए भी यहाँ की नैसर्गिक प्रकृति ने रोमांचकारी साहसिक पर्यटन के लिए बहुत से आकर्षण केन्द्र हमें सौंपे हैं। इन्हीं केन्द्रों में पर्वतारोहण, पथारोहण (ट्रेकिंग) खेल पर्यटन की अपरिमित सम्भावनायें विकसित हुई हैं। अवकाश पर्यटन के कई आदर्श स्थल यहाँ हैं। वियाबान विचरण, वन्य जीव एवं पक्षी विहार जैसे पर्यटन के नये रूप भी यहाँ विकसित किए जा सकते हैं।

इस प्रकार यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो गढ़वाल हिमालय में पर्यटन विकास की अपार संभावनायें विद्यमान हैं। यह लगभग सभी प्रकार के पर्यटकों की दृष्टि से पर्यटन आकर्षण को संजोये हुए हैं। यह हिमालय की सुदूर वादियों में फैले अनेक मनमोहक, रोमांचकारी व साहसिक पर्यटक स्थलों से लेकर देवस्थली कहे जाने वाले ब्रदीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्री, गंगोत्री हेमकुण्ड साहित्य, हरिद्वार, ऋषिकेश जैसे अनेक धार्मिक व पुण्य स्थलों से पटा पड़ा है। इस क्षेत्र में साहसिक पर्यटन हेतु औली एक आदर्श पर्यटक स्थल है जहाँ पर हिमक्रीड़ा हेतु प्रत्येक वर्ष फरवरी माह में इन खेलों का आयोजन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है। देवप्रयाग से ऋषिकेश तक का क्षेत्र गंगा में राफ्टिंग के लिए उपयुक्त माना गया है। गंगोत्री, यमुनोत्री, कार्बेट नेशनल पार्क, राजाजी नेशनल पार्क आदि को इको टूरिज्म माना गया है। यही नहीं हरिद्वार व ऋषिकेश के उत्तराखण्ड में होने के कारण देशी-विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने वाले पर्यटन विभाग के महत्वाकांक्षी कार्यक्रम यथा योग व आयुर्वेद महोत्सव आदि भी गढ़वाल के पर्यटन विकास में सहायक सिद्ध होंगे। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक सौन्दर्य के धनी पर्यटक नगर जैसे मसूरी, पौड़ी, चकराता, उत्तरकाशी आदि पर्यटकों को आकर्षित करने की अपार क्षमता रखते हैं।

### पर्यटन सुविधाओं का विकास

1. परिवहन सुविधाओं का विकास
2. आवास सुविधाओं का विकास
3. अन्य सुविधाओं का विकास

**1. परिवहन सुविधाओं का विकास**—उत्तराखण्ड सरकार द्वारा पर्यटकों की सुविधा को ध्यान में रखकर तथा पर्यटन उद्योग के विकास को दृष्टिगत रखकर परिवहन साधनों में वृद्धि हेतु वृहत योजना तैयार की गयी है परन्तु धनाभाव के कारण उसे पूरा होने में समय लगेगा। विकासात्मक दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र में परिवहन सुविधाओं का विकास निम्न प्रकार हुआ है—

(i) **हवाई सुविधाओं का विकास**—जौलीग्रान्ट (देहरादून) हवाई अड्डा गढ़वाल। क्षेत्र की हवाई यातायात सुविधा को ध्यान में रखकर हरिद्वार तथा देहरादून मुख्य मार्ग पर स्थापित किया गया है। स्विटजरलैंड की एक पर्यटन संस्था 'स्विस कनेक्ट' द्वारा देहरादून नगर में एक हवाई अड्डा विकसित किया गया है। ब्रदीनाथ एवं केदारनाथ में हवाई यात्रा की हैलीकॉप्टर सुविधा राज्य सरकार द्वारा शुरू की जा चुकी है।

(ii) **रेल सुविधाओं का विकास**—हरिद्वार को देश की बड़ी लाइन से जोड़ा गया है। बड़ी लाइन का यह मार्ग रायबाला से दो भागों में बंट जाता है। एक ऋषिकेश को तथा दूसरा डोईबाला होते हुए देहरादून को जाता है। यह रेलमार्ग गढ़वाल मण्डल में रेल यातायात सुविधा सुलभ कराने हेतु विकसित किया गया है। 2001 से काठगोदाम एवं देहरादून सीधी रेल सेवा उपलब्ध करायी गयी है। इस प्रकार उत्तराखण्ड राज्य में यातायात की सुविधाओं को विकसित करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है।

(iii) **सड़क यातायात सुविधाओं का विकास**— सड़क यातायात सुविधाओं को इस क्षेत्र में सुलभ कराने की दृष्टि से सीमा सड़क संगठन द्वारा उल्लेखनीय कार्य किया गया है। लगभग सभी जिला नगरों तथा धार्मिक नगरों को पक्के सड़क मार्गों से जोड़ दिया गया है। जैसे— ऋषिकेश से गंगोत्री, उत्तरकाशी, ब्रदीनाथ, टिहरी, देहरादून, हरिद्वार तथा लैसडाइन को सड़कें जाती हैं। इसके अतिरिक्त देहरादून, हरिद्वार, अल्मोड़ा, श्रीनगर, कर्णप्रयाग, देवप्रयाग, बागेश्वर आदि प्रमुख सड़क मार्गों के जंक्शन हैं।

(2) **आवास सुविधाओं का विकास**—अध्ययन क्षेत्र के प्रमुख पर्यटक स्थलों पर आवास व्यवस्था होटल तथा अनुपूरक आवास व्यवस्था के रूप में उपलब्ध है। संक्षेप में इसे निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

#### आवास व्यवस्था

होटल आवास व्यवस्था	अनुपूरक आवास व्यवस्था
होटल	टूरिस्ट बंगले
मोटल	धर्मशालायें
रिसोर्ट्स	गेस्ट हाउस
	यूथ हॉस्टल
	फॉरेस्ट लॉज
	रेलवे रिटायरिंग रूम
	हॉस्टल
	डाक बंगले
	पेइंग गेस्ट हाउस
	हॉली-डे-कैम्प

**होटल**—अध्ययन क्षेत्र में अभी तक मात्र एक पांच सितारा होटल है जो मंसूरी से लगभग 6 किमी० दूर स्थान पर अवस्थित है। इसे जे०पी० रेजीडेन्सी के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त देहरादून में एक (मधुवन), मंसूरी में एक (सॉलीटर प्लाजा), ऋषिकेश में एक (आम्रपाली), हरिद्वार में एक (शेरवानी हिलटॉप) रामनगर में एक (टाईगर टॉप्स), कार्बेट लॉज तीन सितारा श्रेणी के होटलों में वर्गीकृत हैं। दो सितारा होटलों की श्रृंखला में— होटल रिलेक्स देहरादून, होटल प्रेसीडेन्ट देहरादून, होटल इन्द्रलोक देहरादून, होटल इन्द्रलोक ऋषिकेश, होटल क्वालिटी देहरादून, होटल शिप्रा कॉन्टीनेंटल, मंसूरी आदि उल्लेखनीय हैं।

**मोटल**—सरल शब्दों में मोटल हाईवे अथवा नगर से कुछ दूरी पर स्थित वह स्थल है जो यात्रियों को अस्थायी सुविधा प्रदान करने, गाड़ी पार्किंग की सुविधा प्रदान तथा सूक्ष्म जलपान की व्यवस्था प्रदान करता है। हरिद्वार में राही मोटल, गढ़वाल मण्डल विकास निगम के अधिपत्य में ही कार्य कर रहा है। ऋषिकेश—बद्रीनाथ मार्ग पर तथा हरिद्वार—देहरादून मार्ग पर कुछ मोटलों को बनाने की योजना है तथा कुछ निर्माणाधीन हैं।

**रिसोर्ट**—वह आवास स्थल जो प्राकृतिक वातावरण में स्थित है तथा यात्रियों को ठहरने, पार्किंग करने, खान-पान की सुविधा व मनोरंजन की सुविधा प्रदान करता हो, रिसोर्ट कहलाता है। मंसूरी में गोल्डन-फॉरेस्ट इण्डिया लि० द्वारा एक रिसोर्ट की स्थापना की गयी है मंसूरी तथा देहरादून में उच्च स्तरीय आवास व्यवस्था को विकसित करने की दृष्टि से उसके आस-पास के क्षेत्रों में रिसोर्ट्स का निर्माण करने हेतु विनियोजकों को सरकार द्वारा आमंत्रित किया गया है।

**अन्य सुविधाओं का विकास**—पर्यटन उद्योग की उत्प्रेरक अन्य सुविधाओं के अन्तर्गत मुख्य रूप से निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है—

- मनोरंजन सुविधाओं का विकास
- संचार सुविधाओं का विकास
- पर्यटन केन्द्रों में खान-पान सुविधाओं का विकास
- स्वास्थ्य सेवाओं का विकास
- सुरक्षात्मक प्रबन्धन का विकास
- क्षेत्रीय वस्तुओं एवं कलाकृतियों के बाजार का विकास
- संरचनात्मक सुविधाओं का विकास

(i) **मनोरंजन सुविधाओं का विकास**—यद्यपि वर्तमान समय में 'पैकेज टूर' जो ट्रेवल एजेंसियों द्वारा संचालित किए जाते हैं, पर्यटकों का आकर्षण बनते जा रहे हैं, क्योंकि इनके माध्यम से सभी सुविधायें एकमुश्त प्राप्त हो जाती हैं।

• गढ़वाल मण्डल में अनेक स्थानों जैसे रुद्रप्रयाग, श्रीनगर, कर्णप्रयाग, टिहरी गढ़वाल, उत्तरकाशी, चमोली, कोटद्वार, गोपेष्वर, पोड़ी गढ़वाल, जोशीमठ आदि में पर्यटन महत्व के मेलों का आयोजन किया जाता है।

• गढ़वाल मण्डल में चैत्र-नवरात्र, नागपंचमी, कृष्ण-जन्माष्टमी, विजयदशमी, दीपावली, होली, ईद, मुहर्रम, नन्दाष्टमी आदि प्रमुख त्यौहार हैं जो पर्यटकों को मनोरंजन के लिए उपयुक्त आधार प्रस्तुत करते हैं।

• यहाँ पर लोकसंगीत के साथ-साथ धार्मिक गीत, ऋतु गीत, संस्कार गीत, विरह गीत, खुदेड़ गीत, आदि को प्रस्तुत किया जाता है, जो पर्यटकों का आकर्षण है।

**(ii) संचार सुविधाओं का विकास**—वर्ष 1994-95 में उत्तराखण्ड में प्रति लाख जनसंख्या पर डाकघरों एवं तारघरों की संख्या क्रमशः 40.7 एवं 11.6 थी जो कि उत्तर प्रदेश के औसत क्रमशः 13.5 एवं 4.4 से बहुत अधिक है। परन्तु यदि दूरी की दृष्टि से देखा जाये तो उत्तराखण्ड के 14.2 प्रतिशत ग्रामों के निवासियों को 5 किमी० या उससे अधिक दूरी तय करके डाकघर की सुविधा प्राप्त होती थी।

**(iii) खान-पान सुविधाओं का विकास**—देहरादून, मसूरी, श्रीनगर, जोशीमठ, इत्यादि में तो खान-पान की उचित व्यवस्था है, साफ-सुथरे रेस्टोरेंट है। मिठाई की दुकानें भी अच्छी हैं जो मिठाई के अतिरिक्त छोले-भटूरे, सब्जी-पूड़ी, समोसे, ब्रेड पकौड़े इत्यादि भी बनाते हैं परन्तु दूर-दराज के पर्यटन स्थलों में साफ-सुथरे रेस्टोरेंट की कमी है। राज्य सरकार द्वारा इस संदर्भ में ध्यान दिया जा रहा है।

**(iv) स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास**—राज्य में लगभग सभी प्रमुख पर्यटन केन्द्रों पर सरकार द्वारा तथा निजी डाक्टरों द्वारा स्वास्थ्य सेवाओं का प्रबन्ध किया गया है परन्तु दूर-दराज के पर्यटन स्थलों में स्वास्थ्य सेवायें विकसित नहीं हो पायी हैं।

**(v) सुरक्षात्मक सुविधाओं का विकास**—देवस्थली में रहने के कारण पर्यटकों की सुरक्षा को कोई खतरा नहीं है। यहाँ पर चोरी व लूट जैसी घटनायें बहुत कम होती हैं। पर्यटकों के साथ अभद्र व्यवहार की घटना भी बहुत कम सुनने को मिलती है।

**(vi) क्षेत्रीय वस्तुओं तथा कलाकृतियों के बाजार का विकास**—क्षेत्र की यादगार हेतु पर्यटक वहाँ की स्थानीय वस्तुओं तथा कलाकृतियों का क्रय करके ले जाना चाहता है जिससे कि उस स्थल या क्षेत्र विशेष की याद उसे भविष्य में भी आती रहे। इस सम्बन्ध में मुख्य पर्यटन स्थलों में स्थानीय वस्तुओं एवं कलाकृतियों के शो-रूम विकसित किये गये हैं तथा दूर-दराज के पर्यटन केन्द्रों में स्थानीय व्यक्तियों द्वारा भी ये वस्तुएं व कलाकृतियाँ आंशिक रूप से सुलभ करायी जाती हैं।

**(vii) संरचनात्मक सुविधाओं का विकास**—संरचनात्मक सुविधाओं से शोधार्थी का अभिप्राय विद्युत व्यवस्था, ड्रेनेज सिस्टम, पीने के पानी की व्यवस्था आदि से है। जहाँ तक गढ़वाल मण्डल में विद्युत व्यवस्था का प्रश्न है यहाँ पर विद्युतगृहों की स्थापना के कारण विद्युत की कोई कमी नहीं है। जहाँ भी इसके वितरण की व्यवस्था ठीक है। यहाँ पर 24 घण्टे सामान्यतः विद्युत उपलब्ध है।

**नये क्षेत्रों की खोज**—पर्यटन आकर्षणों की दृष्टि से गढ़वाल हिमालय एक धनी क्षेत्र है जहाँ पर्यटन विकास की अपार सम्भावनायें हैं। यहाँ पर अभी तक निम्न प्रकार का पर्यटन प्रकाश में आया है—

**तीर्थाटन**—कोई भी यात्रा जो कि तीर्थ (यथा देवस्थान, प्राकृतिक स्थलों, सरोवरों, पवित्रता प्रदान करने वालों मानव निर्मित स्थलों आदि) को किसी प्रयोजन (आत्मसंतुष्टि, फल) के लिए की जाती है तीर्थयात्रा या तीर्थाटन कहलाती है।

**ग्रीष्मकालीन पर्यटन**—भारतवर्ष के मैदानी क्षेत्रों में मई व जून के महीनों में भारी गर्मी पड़ती है। इसी काल में विद्यालयों एवं कॉलेजों में अवकाश भी रहता है। फलस्वरूप गर्मी से निजात पाने के लिए अपने बच्चों सहित मैदानी क्षेत्र के व्यक्ति इस क्षेत्र के भ्रमण हेतु यात्रा करते हैं। जलवायु अनुकूल होने के कारण विदेशी पर्यटक भी ग्रीष्मकाल में इस क्षेत्र को पर्यटन के लिए अनुकूल समझते हैं।

**शीतकालीन पर्यटन**—भारतवर्ष के अनेक मैदानी क्षेत्रों में दिसम्बर से फरवरी तक कोहरा छाया रहता है तथा अत्यधिक ठंड पड़ती है जबकि पर्वतीय क्षेत्रों में जहाँ एक ओर बर्फ पड़ती है वही दूसरी ओर पहाड़ों पर मौसम



साफ रहता है तथा धूप निकलती है। फलस्वरूप मैदानी क्षेत्रों के व्यक्ति परिवार सहित ठंड से निजात पाने के लिए तथा वर्ष का आनन्द लेने के लिए इस क्षेत्र को उपयुक्त मानकर पर्यटन के लिए यात्रा करते हैं।

**मनोरंजन पर्यटन**—इस वर्ग में उन पर्यटकों को सम्मिलित किया जाता है जो अपने अवकाश को आराम करने तथा मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ महसूस करने के लिए आते हैं। अध्ययन क्षेत्र ऐसे पर्यटकों की दृष्टि से एक आदर्श स्थान है।

**साहसिक पर्यटन**— साहसिक पर्यटन की दृष्टि से गढ़वाल एक आदर्श क्षेत्र है यहाँ पर नन्दा देवी एवं अन्य हिमशिखरों, दरों की यात्रा, रापिंग, स्कीइंग, पैराग्लाइडिंग इत्यादि के लिए उपयुक्त संरचना तथा मैदान उपलब्ध है। रॉक-क्लाइमिंग के लिए भी अनेक पहाड़ियाँ एवं पहाड़ उपयुक्त हैं।

**इको-टूरिज्म**—प्रकृति प्रेमियों तथा प्रकृति का सम्मान करने वाले पर्यटकों द्वारा किये गये पर्यटन को इको-टूरिज्म की संज्ञा दी जाती है, जिसमें वन्य जीव विहार को भी सम्मिलित किया जाता है।

इको-टूरिज्म की दृष्टि से भी यहाँ अपनी सम्भावनायें हैं। यमनोत्री, गंगोत्री तथा क्षेत्र के राष्ट्रीय उद्यान व वन्य जीव विहार मिलकर गढ़वाल को इको-टूरिज्म की दृष्टि से एक आदर्श क्षेत्र की अनुभूति कराते हैं।

**मेडिकल टूरिज्म**—मेडिकल टूरिज्म के अन्तर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है—

- योगा मैडिटेशन
- प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना

**सम्मेलन पर्यटन**—यदि उत्तराखण्ड सरकार प्रयास करे तब इस क्षेत्र की जलवायु अनुकूल होने के कारण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन यहाँ पर किया जा सकता है। अतः अध्ययन क्षेत्र में वर्ष भर पर्यटन को बनाये रखने की दृष्टि से सम्मेलन पर्यटन का विकास उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसी मेरी धारणा है।

**सामाजिक पर्यटन**—सामाजिक पर्यटन से अभिप्राय उस पर्यटन से है जिसके अन्तर्गत क्षेत्रीय पर्यटन स्थलों का पर्यटन करने के साथ-साथ पर्यटक सामाजिक वातावरण में रहने का इच्छुक होता है। ऐसा करने के दो कारण हैं— प्रथम, इन पर्यटकों के पास धन की कमी होती है जिसके कारण वे महंगे होटलों में निवास नहीं कर सकते हैं। द्वितीय, सामाजिक परिवेश में रहकर ये क्षेत्र विशेष की संस्कृति को आत्मसात करते हैं।

**व्यावसायिक पर्यटक**—व्यावसायिक पर्यटन से अभिप्राय व्यापार करने से नहीं है बल्कि क्षेत्र में व्यावसायिक गतिविधियों के विकास से है। जैसे—व्यापारिक मेलों का आयोजन करना। यदि राज्य सरकार अपनी पर्यटन योजना में इस प्रकार के पर्यटन का समावेश करे तब यह क्षेत्र व्यावसायिक पर्यटन से लाभान्वित होगा।

**खेल पर्यटन**—गढ़वाल मण्डल में पर्यटन विकास हेतु तथा पर्यटन को वर्ष भर बनाये रखने हेतु खेल पर्यटन के विकास की संस्तुति की जा सकती है। वर्तमान में इस प्रकार का पर्यटन युवाओं को आकर्षित करने की पर्याप्त क्षमता रखता है।

**शैक्षिक पर्यटन**—शैक्षिक पर्यटन से अभिप्राय उस पर्यटन से है जिसमें पर्यटक द्वारा यात्रा आस्थाई रूप से शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से अथवा वहाँ की ऐतिहासिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन करने के लिए की जाती है। शैक्षिक पर्यटन भी एक नये क्षेत्र के रूप में गढ़वाल हिमालय के पर्यटन विकास में सहायक सिद्ध होगा।

**दीर्घकालिक पर्यटन विकास हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव—**

- कर्मचारियों तथा पर्यटकों को आसपास के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण की जानकारी देने हेतु व्याख्यात्मक कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिए।
- विभिन्न पर्यटन स्थलों पर वहाँ के रीति-रिवाज का आदर करने के निर्देश दिए जाने चाहिए जिससे स्थानीय संस्कृति सुरक्षित रहे और अधिक पर्यटक उसके प्रति आकर्षित हो सकें।
- विभिन्न धार्मिक स्थलों में भ्रमण करने से पूर्व ही पर्यटकों को निर्देशित कर देना चाहिए कि उन्हें किस प्रकार आचरण करना है और जूते व चप्पल कहाँ उतारना है, बाथरूम कहाँ जाना है, शौच के लिए कहाँ जाना है, स्नान कहाँ करना है, धूम्रपान व मद्यपान वर्जित है आदि। ऐसा करके पर्यटक न केवल धार्मिक केन्द्र की मर्यादा को सुरक्षित रखेंगे बल्कि आध्यात्मिक सुख की अनुभूति भी कर सकेंगे।



- स्थानीय सौन्दर्य स्थलों को सुरक्षित रखकर उनका उपयोग पर्यटन के लिए करना तथा स्थानीय जागरूक युवकों का एक इकाई के रूप में कार्य करना आवश्यक है।
- सभी स्थलों की स्वच्छता, सफाई एवं सौन्दर्यकरण आवश्यक है।
- धरोहर स्थलों का व्यापक पर्यटक प्रयोग आवश्यक है।
- इन स्थलों का प्रचार-प्रसार आवश्यक है।

#### सन्दर्भ-सूची

1. उत्तरांचल में पर्यटन : नये क्षितिज, डॉ० हरिमोहन, तक्षिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. उत्तरांचल द अवोड आफ गाइड्स : नेस्ट एण्ड विंग्स, मालवीय नगर, नई दिल्ली।
3. उत्तरांचल : समग्र अध्ययन, डा० सविता मोहन, विद्यावती प्रकाशन, मल्लीताल, नैनीताल।
4. Madan, B.K. (1970): Mussoorie: A Project Report, Unpublished, Dehradun D.B.S. College.
5. Nautiyal, G.P. (1962): Call of Badrinath, Chamoli, Badrinath Temple Committee.
6. Negi, S.S. (1990): A Handbook of the Himalaya, New Delhi, Indus Publishing Company.
7. Pande, B.D. (1973): Kumaon ka Itihas, Almora, Almora Shakti Press.
8. Pandey, Trilochan (1973): Kumaon Lok Saahitya Ki Pristhbumi, Sahitya Bhawan, Allahabad.
9. Sharma, M.M. (1985): The Valley of Flowers, Vision Books, New Delhi.
10. Tyagi, N. (1991): Hill Resorts of Uttar Pradesh Himalayas: A Geographical Study, Indus Publishing Co., New Delhi.
10. Valdiya, K.A. (1988): Kumaon Land and People, Gyanodaya Prakashan, Nainital.

\* \* \* \* \*

## इटावा जिले का एक विस्तृत भौगोलिक अध्ययन

डॉ० बिमलकान्त द्विवेदी\*

**प्रस्तावना**—इटावा उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण जनपद जो कानपुर मण्डल के अन्तर्गत निम्न गंगा यमुना दोआब भाग 1 में स्थलाकृतिक मानचित्र 54N के अनुसार 26025'18" से 27001' उत्तरी अक्षांश एवं 78045' से 79019' पूर्वी देशान्तर के मध्य 2478.9 वर्ग किमी० क्षेत्र में विस्तृत है। यह पूर्व में औरैया, उत्तर में कन्नौज, मैनपुरी पश्चिम में आगरा फिरोजाबाद एवं भिण्ड (म०प्र०) एवं जालौन में घिरा हुआ है। इटावा उत्तर से दक्षिण तक 65 कि०मी० लम्बा है तथा पूर्व से पश्चिम का विस्तार 60 किमी० है। प्रशासनिक दृष्टि से जनपद इटावा की छः तहसीलें क्रमशः इटावा, जसवंत नगर, सैफई, भरथना, ताखा चकर नगर हैं। जनपद इटावा में आठ विकास खण्ड जसवंत नगर, बसरेहर, बड़पुरा, ताखा, भरथना, चकरनगर, एवं सैफई है। 75 न्याय पंचायत है तथा 6 नगरीय क्षेत्र है जिसमें से इटावा सबसे बड़ा नगर है। इटावानगरीय क्षेत्र में 8 ग्रामों को भी 2001 में सम्मिलित किया गया है। इटावा नगर राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 2 परस्थित है जो कि प्रधानमंत्री की स्वर्णिम चतुर्भुज योजना में सम्मिलित है। इटावा जंक्शन से भिण्ड, वाह, आगरा, मैनपुरी के लिए रेलमार्ग जाते हैं तथा दिल्ली हावड़ा रेलमार्ग इस नगर के मध्य से होकर गुजरता है। यह रेलमार्ग जनपद के चौमुखी विकास में पूर्णतः सहायक सिद्ध हुआ है।

**उच्चावच एवं अपवाह**—अध्ययन क्षेत्र विभिन्न उच्चावचीय विषमताओं से भरा पड़ा है। इन विषमताओं के लिए अध्ययन क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली यमुना, चम्बल, सेंगर, क्वारी, रिन्द, अहनैया एवं पुरहा नदियाँ उत्तर दायी है।<sup>1</sup> स्थलाकृतिक मानचित्र के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में सबसे अधिक ऊँचाई एवं कम ऊँचाई क्रमशः 166 एवं 119 मी० है। अध्ययन क्षेत्र का सामान्य ढाल उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर है। यमुना, चम्बल एवं क्वारी नदियों ने बड़े पैमाने पर ऊबड़-खाबड़ बीहड़ क्षेत्र को विकसित किया है जहाँ धरातलीय विषमता दृष्टिगत होती है।

धरातलीय स्वरूप अपवाह तंत्र एवं मिट्टी के आधार पर अध्ययन क्षेत्र को चार प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. सेंगर नदी का उत्तरी भाग
2. सेंगर यमुना दोआब
3. यमुना नदी का उत्तरी भाग
4. चम्बल एवं यमुना का बीहड़

**सेंगर नदी का उत्तरी भाग**—सेंगर नदी के उत्तर तथा उत्तर पूर्व में यह पेटी सम्पूर्ण क्षेत्रफल के 32 प्रतिशत क्षेत्र में फैली हुई है। पचार के नाम से अभिहित इस भूकृति विभाग का धरातल कुछ अपरदित कटकों तथा सामान्य धाराओं द्वारा विखण्डित हुआ है। यह विस्तृत उपजाऊ मैदान की औसत ऊँचाई 144 मी० से 166 मी० के मध्य है तथा इसका ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है। इस समतल भू-भाग को पुरहा, अहनैया, सिरसा एवं सेंगर नदियों ने यत्र-तत्र विखण्डित किया है। कहीं-कहीं पर ऊसर भूमि का विस्तार एवं 'झाबर' भूमि परिलक्षित होती है।

**सेंगर यमुना दोआब**—यह एक समतल मैदानी भाग यमुना तथा सेंगर नदियों के मध्य है। इस भू-आकृतिक भाग को स्थानीय भाषा में 'घार' के नाम से पुकारते हैं। इस भाग की समुद्रतल से ऊँचाई 119 मी० से 156.6 मी० के मध्य एवं ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है इस भाग में ऊसर और झाबर भूमि का अभाव है, कुछ भागों में रेह एवं 'भूड़' के टीले अथवा 'पूठ' हैं।

\* विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, श्री दर्शन महाविद्यालय, औरैया (उ०प्र०)

**यमुना नदी का उत्तरी भाग**—यह भू-आकृतिक भाग अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी पश्चिमी भाग में यमुना एवं चम्बल नदियों के साथ एक लम्बी एवं सकरी पट्टी के रूप में विस्तृत है। इस कछारी भाग को स्थानीय भाषा में 'कुरका' कहते हैं। वर्षा के दिनों में जल प्लावन इस भाग की प्रमुख विशेषता है यह भाग असमतल है तथा इस भू-भाग की समुद्रतल से ऊंचाई 119 मी० 135 मी० के मध्य है कहीं-कहीं ऊंचे टीले हैं तो कहीं-कहीं गहरे खार भी हैं। इस क्षेत्र में गांव अधिकतर कछारों एवं टीलों पर बसे हैं।

**चम्बल एवं यमुना का बीहड़**—इस भू-आकृतिक भाग के अन्तर्गत यमुना, चम्बल और क्वारी नदियों का समीपवर्ती भाग सम्मिलित है। कृषि की दृष्टि से यह भाग अनुपयुक्त है। इस भागकोस्थानीय स्तरपर 'जमुनापार' कहा जाता है। यह इटावा क्षेत्र के दक्षिणी पश्चिमी भाग में विस्तृत है। यमुना नदी के उत्तरी किनारे पर इस बीहड़ क्षेत्र की पूर्व और चौड़ाई बढ़ती जाती है। यमुना चम्बल दोआब में जल प्रवाह अनियंत्रित है। इस कटी-फटी भूमि वाले भू-भाग की समुद्र से ऊंचाई 137 मी० से 15 मी० तक है। इस भाग का ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है। चम्बल और क्वारी नदियों के मध्य तथा क्वारी नदी के दक्षिण पश्चिम में जंगल एवं बीहड़ की भयाव्यता के दर्शन होते हैं।

इस बीहड़ क्षेत्र में कांटेदार झाड़ियां और जंगली बहुत की बहुलता है। कंकड़ मिश्रित मिट्टी एवं निम्न जलस्तर इस भू-आकृतिक भाग की विशेषता है।

अध्ययन क्षेत्र में जल प्रवाह तंत्र के अन्तर्गत आने वाली नदियों, झीलें, धाराओं, एवं नालों को सम्मिलित किया गया है। यमुना और चम्बल प्रमुख नदियाँ हैं।

**अपवाह**—अध्ययन क्षेत्र की अन्य प्रमुख नदियों में क्वारी सेंगर, अहनैया, पुराहा, सिरसा, रिन्द नदियों, के नाम महत्वपूर्ण हैं।

**यमुना नदी**—यमुना अध्ययन क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी है जो अध्ययन क्षेत्र में उत्तर पश्चिम में बाउथ ग्राम के समीप जनपद में प्रवेश करती है। विसर्पाकार बहती हुई भरेह के पास यमुना नदी में चम्बल आकर मिलती है तथा औरैया एवं जनपद जालौन की सीमा बनती है। इसकी सहायक नदी क्वारी है यमुना बीहड़ों में प्रसिद्ध है। जो कालान्तर में डकैतों की शरण स्थली के रूप में विख्यात रही है।

**चम्बल नदी**—अध्ययन क्षेत्र के दक्षिण पश्चिमी भाग में चम्बल नदी इस क्षेत्र में मुरांग ग्राम के पास जनपद की सीमा में प्रवेश करती है। यमुना की सबसे बड़ी सहायक नदी है। इसका मार्ग काफी टेढ़ा-मेढ़ा है। जनपद इटावा के दक्षिण में 35.2 कि०मी० प्रवाहित होकर भरेह के निकट यमुना में मिल जाती है। इस नदी को चर्मवती के नाम से भी पुकारते थे। इसके द्वारा निर्मित बीहड़ डाकुओं की शरणगाह के नाम से जाने जाते हैं।

**क्वारी नदी**—चम्बल के दक्षिण पश्चिम में क्वारी नदी प्रवाहित होती है जो जनपद में 12.5 कि०मी० प्रवाहित होकर जनपद की दक्षिणी सीमा का निर्धारण करती है तथा ग्राम ततारपुर के पास यमुना में मिलती है। नदी के समीपवर्ती भागों में बीहड़ का विकास हुआ है।

**सेंगर नदी**—मथुरा की नौहझील से निःसृत सेंगर नदी धनुआ ग्राम के समीप इटावा जनपद में प्रवेश करती है तथा यमुना नदी के सामान्तर प्रवाहित होती हुई जनपद कानपुर देहात में यमुना में मिल जाती है। इसकी प्रमुख सहायक नदी हिस्सा इटावा जनपद से 6.4 कि०मी० उत्तर में अमृतसर ग्राम के समीप सेंगर में विलीन हो जाती है। इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र की अन्य प्रमुख नदियां पुराहा, अहनैया तथा रिन्द हैं। ये तीनों मौसमी नदियाँ हैं। इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र में कुछ स्थानीय जलाशय भी मिलते हैं इनमें से कुछ झील के रूप में हैं। जनपद में बरालोकरपुर, स्माइन, सरसई, गौहानी, कुदरैल, नौधना तथा ऊसराहार की झीलें मुख्य हैं।

**जलवायुविक विशेषताएँ**—जलवायु भौतिक पर्यावरण का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। भूतल पर निवास करने वाले मानव के जीवन पर भौतिक पर्यावरण के जिन अंगों का प्रभाव पड़ता है। उनमें जलवायु का महत्व सर्वाधिक एवं सर्वोपरि है। जलवायु मानव को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

**तापमान एवं वर्षा**—इस जनपद में अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान क्रमशः 45.2 से०ग्रे० तथा 1.8 से०ग्रे० (2011) रहता है ग्रीष्म काल में शीतलहर भी चलती है जिससे जन-जीवन प्रभावित होता है। वर्षा यहां 292 मिमी० (2012) होती है जो यहां के कृषि कार्यों एवं जल स्तर को बढ़ाने में सहायक के रूप में कार्य करती है।

**वनभूमि**—प्राकृतिक वनस्पति से अभिप्राय भौतिक दशाओं अथवा परिस्थितियों में स्वतः उगने वाली वनस्पति से है जिसमें पेड़-पौधे झाड़ियाँ, घासों आदि सम्मिलित होते हैं जो जिले के समस्त भू-भाग में देखने की मिलती है। प्राचीन काल में हमारे देश का अधिकांश भाग प्राकृतिक वनस्पति से आच्छादि तथा। कालान्तर में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कृषि भूमि को प्राप्त करने के लिए वनों का निर्दयता पूर्वक विनाश किया गया जिसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्रों के मध्य यत्र-तत्र फैले हुए मात्र वन वक्ष रह गये हैं।

**तालिका 1 जनपद इटावा वन क्षेत्र (हेक्टेयर में)**

क्र०सं०	विकासखण्ड का नाम	कुलप्रतिवेदित क्षेत्र (हे०में)	वन क्षेत्र (हे०में)	वन क्षेत्र (हे०में)	कुलवन क्षेत्र का प्रतिषत
1	जसवन्तनगर	25525	1290	0.55	4.34
2	बसरेहर	27154	2063	0.88	6.94
3	बढ़पुरा	38594	8171	3.47	27.51
4	ताखा	27461	1751	0.74	5.89
5	भरथना	25909	1527	0.65	5.14
6	महेवा	322216	2446	1.04	8.23
7	चकरनगर	37727	11873	5.05	29.91
8	सैफई	19219	533	0.22	1.79
ग्रामीण योग		233805	29654	12.63	99.63
नगरीय योग		1426	49	-	0.17
जनपदीय योग		235231	29703	-	100.00

इटावा जिले में मानसूनी जलवायु में पाये जाने वाले वनों की अधिकता है। यहाँ नीम, आम, बबूल, पीपल, बरगद, शीशम, गोल्ड मोहर, यूकेलिप्टस, वृक्षों की प्रधानता है। इटावा एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों में मुख्य तौर पर यमुना एवं सेंगर नदी के तटवर्ती भागों में विलायती बबूल के वृक्षों की प्रधानता पायी जाती है। इटावा नगर के समीप फिशर वन है। उ०प्र० के मुख्यमंत्री जी का ड्रीम प्रोजेक्ट 'लाइन सफारी' विकसित किया गया है जहाँ पर अनेक वन्य जीवों को रखा गया है। इटावा जिले का विकास करने में इसकी असीम भूमिका रही है।

**मिट्टी**—मानव विकास हेतु मिट्टी अहम संसाधनों के रूप में जानी जाती है। मिट्टी मनुष्य, पशुओं व पौधों के लिए आधारभूत संसाधन है। सम्पूर्ण जैव संसाधन इसी पर टिका हुआ है। पशु जीवन पौधों पर आधारित है। पौधे मिट्टी पर आधारित हैं। अतः मानव जाति का कल्याण मिट्टियों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। जनपद की मिट्टियों का वैज्ञानिक अध्ययन कानपुर में स्थित चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय में 'मृदा सर्वेक्षण संगठन' के द्वारा किया गया है। उनके द्वारा किये गये वर्गीकरण को ही यहाँ दिया गया है।

**नवीन कॉप**—अध्ययन क्षेत्र में ये मिट्टियाँ हल्के धूसर से हल्के धूसर रंग की हैं साथ ही ये साधारण क्षारीय हैं। इस मिट्टी में गहराई के साथ जैव तत्वों का वितरण असमान है। यह मिट्टी इटावा जनपद के दक्षिणी भाग में यमुना एवं चम्बल नदी के तटवर्ती भागों में पायी जाती है। ये मिट्टियाँ युवा और पयूवियल लक्षण वाली हैं।

**सेंगर फ्लेड्स लवणीय**—इस मिट्टी का रंग धूसर का है। ये साधारण से उच्च और अति उच्चलक्षणीय हैं जिनमें घुलनशील लवण पाये जाती हैं। इस मिट्टी में खारापन अधिक पाया जाता है इसलिये इसे ऊसर मिट्टी कहते हैं। ये मिट्टियाँ इटावा जनपद के उत्तरीय भाग में सेंगर, अहनेया एवं पुरहा के मध्यवर्ती भाग में संकरी पेटी के रूप में पायी जाती हैं।

**सेंगर फ्लेड्स**—ये मिट्टियाँ धूसर से भस्म रंग वाली हैं जबकि अवमृदायें, मृत्तिका दुमट से लेकर पांशुमृत्तिका है। ये निचले स्तरों पर साधारण चूना युक्त होती हैं। ये मिट्टियाँ अधिक उपजाऊ हैं। ये मिट्टियाँ इटावा नगर के उत्तरी पश्चिमी भाग में सेंगर पुरहा के मध्य भाग में स्थित है।

**यमुना उच्च भूमि बलुई**—इस वर्ग की बलुई दुमट मिट्टियाँ अधिक भूरे रंग तथा अवमृदा भूरे पीले से पीले भूरे रंग की होती है। इनकी गहराई में चूना पाया जाता है तथा ये मिट्टियाँ पारगम्य होने के कारण यहाँ जल

स्तर नीचा है। इस कारण यहां पानी की कमी पायी जाती है। यह मिट्टियां इटावा नगर के दक्षिणी भाग में पायी जाती है।

**यमुना उच्च भूमि लोमी**—ये मिट्टियां धूसर भूरे से लेकर पीली भूरी हैं। ये मृदायें उदासीन से लेकर साधारण क्षारीय हैं तथा ये साधारण पारगम्य होने के साथ-साथ उर्वर भी हैं। ये मिट्टियां इटावा नगर के उत्तरीय भाग में पायी जाती हैं।

### अध्ययन क्षेत्र की सांस्कृतिक भूमिपृष्ठ

**जनसंख्या**—देश के अन्य भागों की भांति यहां भी जनसंख्या में विभिन्नता आकलित की जाती है। जनसंख्या एवं संसाधन में अन्योन्याश्रित तथा पूरक सम्बन्ध होता है। किसी क्षेत्र में संसाधनों की उपलब्धता पर ही वहां की जनसंख्या द्वारा की गयी व्यावसायिक संरचना से आर्थिक विकास तथा जीवन स्तर निर्धारित होता है। संसाधन जनसंख्या को आकर्षित करते हैं और जनसंख्या द्वारा संसाधनों की भविष्यता, संसाधनता तथा नये संसाधनों में अभिवृद्धि होती है। संसाधन विकास तथा उपयोग की सम्पूर्ण प्रक्रिया में मानव सार्वधिक गतिशील, महत्वपूर्ण मूल्यवान एवं विकास का अंग है। जनपद की जनसंख्या को निम्न तालिका से जान सकते हैं—

**तालिका 2 इटावा जनपद में जनसंख्या**

क्रम	वर्ष	जनसंख्या
1	1961	6362261
2	1971	755697
3	1981	90917
4	1991	1124620
5	2001	1338871
6	2011	1581810

**साक्षरता**—अध्ययन क्षेत्र साक्षरता की दृष्टिकोण से सर्वसम्पन्नता की श्रेणी में आती है। भौगोलिक एवं सामाजिक आर्थिक दृष्टि से साक्षरता विकास का बहुआयामी सूचक भी है अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता की स्थिति को निम्न तालिका से जान सकते हैं।

**तालिका 3 इटावा जनपद की साक्षरता (1961–2011)**

क्र०सं०	वर्ष	साक्षरताप्रतिष्ठतमें		
		पुरुष	स्त्री	कुल
1	1961	33.86	10.04	22.94
2	1971	38.98	16.60	28.80
3	1981	48.60	23.50	37.29
4	1991	66.61	39.17	54.32
5	2001	80.14	59.13	70.50
6	2011	86.60	69.61	78.41

उपरोक्ततालिका से स्पष्ट है कि जनपद में साक्षरता दर निरन्तर बढ़ने की प्रवृत्ति को दर्शा रही है। यह प्रगति 1981 से 1991 के मध्य अधिक रही है। यहाँ का लिंगानुपात 370 है तथा जन घनत्व 684 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी० है।

**कृषि**—कृषिकार्य इस जिले की विशेषता ही जिसके कारण जिला इटावा की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। यहां जीवन निर्वाह कृषि (अन्नोत्पादक) है क्योंकि मुख्यतः खाद्यान्नों को उगाया जा सकता है यहां पर 6.141 (2013) प्रतिशत भूमि पर कृषि कार्य सम्पादित किये जा रहे हैं। जनपद इटावा दक्षिणी भाग को छोड़कर शेष भाग में कृषि योग्य भूमि भी अधिक है। फार्म कृषि अथवा कृषि पर आधारित अन्य संलग्न कार्यों की सर्वथा कमी है।

**औद्योगिक विकास**—आधुनिक भारत औद्योगिकरण के लिए लगातार प्रयत्नशील है। नियोजन की दृष्टि से देश के ग्रामीण प्रदेशों में कृषि के विकास के साथ औद्योगिकरण के प्रयास करना अति आवश्यक हैं, क्योंकि किसी

भी क्षेत्र में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या का भरण-पोषण केवल कृषि और सम्बन्धित कार्यों से सम्भव नहीं है। औद्योगिकरण का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान करना तथा आर्थिक जीवन स्तर में प्रगति से सम्बन्धित है। औद्योगिक विकास का सम्बन्ध क्षेत्र में पाये जाने वाले संसाधनों, यातायात की सुविधाओं, जलपूर्ति बाजार केन्द्र, श्रमिक उपलब्धता जीवन और सामाजिक सुविधाओं जैसे-बैंक आदि से है उद्योग के स्वरूप के अध्ययन में औद्योगिक गठन का विश्लेषण तभी सार्थक होगा, जबकि उद्योगों को प्रभावित करने वाले सम्बन्धित पक्षों का भी अवलोकन किया जाये।

इटावा में पंजीकृत कारखानों की संख्या वर्ष 1998-1999 में 74 थी जो वर्ष 1999-2000 में 75 एवं वर्ष 2001 में 78 हो गई है लेकिन कार्यरत कर्मचारियों की संख्या कम है। कार्यरत कर्मचारियों की संख्या 1998-1999 में 19 थी जो वर्ष 1999-2000 में 20 हो गई एवं वर्ष 2000-2001 में घटकर 18 रह गई। इसी औसत से कारखानों में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या में वर्ष 1998-99 में एवं वर्ष 2000-2001 में कमी आयी है। वर्ष 1998-99 में औसत दैनिक कार्यरत श्रमिक एवं कर्मचारियों की संख्या 616 थी जो वर्ष 1999-2000 में 390 एवं वर्ष 2000-2001 में घटकर 368 रह गयी है। इटावा नगर में औद्योगिक कारखानों में उत्पादन का मूल्य वर्ष 1998-99 में 450056 था एवं वर्ष 1999-2000 में 485894 एवं वर्ष 2000-2001 में 504008 हो गया।

#### सन्दर्भ-सूची

1. सिंह, उजागर एवं पाण्डेय, जे0एन0 (1970) निचला गंगा-यमुना दोआब एक प्रादेशिक अध्ययन, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 6 संख्या 2 दिस0, पृ. 67.
2. राजपूत, प्रेमप्रकाश (2001) ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा उपयोग : संकट एवं संसाधन, बसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृ. 21.
3. Shukla, P.N. (1990) – Yamuna and Chambal Rivers Eroded land and its Reclamation in Etawah (U.P.)
4. Singh, U.B. (1991) Agricultural Development and Planning for Etawah District, Zone-V (U.P.) Chandra Sekhar Azad University of Agriculture and Technology Kanpur p. 15, 16.
5. दुबे, के0के0सिंह एम0पी0-जनसंख्या भूगोल, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली.

\* \* \* \* \*

## बस्ती जनपद में शस्य गहनता एवं कृषि उत्पादकता का एक प्रतीक अध्ययन

डॉ० विवेक शुक्ल\* डॉ० श्रवण कुमार शुक्ल\*\*

**शोध सारांश :** वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप बढ़ती खाद्यान्न की जरूरत एवं तज्जनित समस्याओं की पूर्ति हेतु भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन तो हुआ ही है शस्यप्रतिरूप में भी स्थानिक परिवर्तन हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में बस्ती जनपद के शस्य गहनता का स्थानिक विवेचन करके उसमें हुए धनात्मक या ऋणात्मक परिवर्तन को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

**प्रमुख शब्द :** पद्धति, प्रतिरूप, शस्य गहनता, उत्पादकता, निर्वाही।

**प्रस्तावना :** प्राकृतिक संसाधनों में भूमि एक प्रमुख संसाधन है जिसपर विश्व के बहुसंख्यक लोगों की जीविका निर्भर करती है। सम्प्रति भारत की कुल जनसंख्या का 55 प्रतिशत कृषि कार्य में संलग्न है। यहां उत्पादित कृषि पदार्थों से लोगों को भोजन तथा उद्योगों को कच्चा माल मिलता है। यहां दूषित भूमि उपयोग पद्धति के कारण देश में गरीबी एवं कुपोषण जैसी अनेक समस्याएँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं।

वस्तुतः जनसंख्या एवं भूमि के मध्य बढ़ते असंतुलन को देखते हुए सम्पूर्ण क्षेत्र के भूमि उपयोग का गहन सर्वेक्षण एवं कुल भूमि की क्षमता के अनुसार उसके अधिकतम उपयोग के लिए नियोजन की महती आवश्यकता है। जिससे कृषि भूमि का अधिकाधिक प्रयोग करते हुए अधिकतम उत्पादन लिया जा सके। ताकि तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या की मांग एवं आपूर्ति में संतुलन स्थापित किया जा सके। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु बस्ती जनपद की शस्य गहनता एवं कृषि उत्पादकता का अध्ययन किया गया है।

**अध्ययन का उद्देश्य :** प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र बस्ती जनपद में ग्रामीण विकास की दृष्टि से शस्य विविधता के स्वरूप, स्तर, प्रकृति एवं क्षेत्रीय वितरण का मूल्यांकन करना है। प्रस्तुत शोध अध्ययन का निम्नलिखित उद्देश्य है –

- (1) शस्य गहनता का अध्ययन
- (2) कृषि की उत्पादकता का अध्ययन
- (3) शस्य क्षेत्रों में शस्य विविधता के स्वरूप का अध्ययन

**आंकड़े एवं विधितन्त्र :** प्रस्तुत शोध अध्ययन में शस्य गहनता के विश्लेषण हेतु विकासखण्ड स्तर पर उपलब्ध द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। इन द्वितीयक आंकड़ों का स्रोत बस्ती जनपद की सांख्यिकीय पत्रिका 1993 तथा 2016 है।

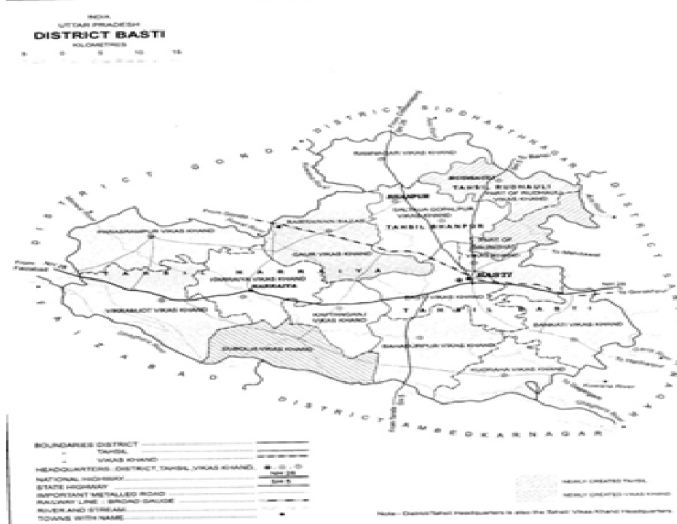
**अध्ययन क्षेत्र :** उत्तर प्रदेश के राज्य मुख्यालय से 200 किमी० दूर पूर्वांचल के प्रवेश द्वार पर स्थित बस्ती जनपद 2688 वर्ग किमी० क्षेत्र के विस्तृत भूभाग पर फैला हुआ है। यह जनपद 26°23' से 27°30' उत्तरी अक्षांश तथा 82°17' से 83°20' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसके उत्तर में सिद्धार्थ नगर जनपद, पश्चिम में गोण्डा, पूरब में संत कबीर नगर, और दक्षिण में अम्बेडकर नगर जनपद स्थित है। दक्षिण में परम पावन सरयू नदी इस

\* भूगोल विभाग, आ.न.दे. कि.पी.जी. कॉलेज, बभनान, गोण्डा

\*\* भूगोल विभाग, आ.न.दे. कि.पी.जी. कॉलेज, बभनान, गोण्डा



जिले को फैजाबाद तथा अम्बेडकर नगर जनपद से अलग करती है। सामान्यतः जनपद की लम्बाई 96 किमी<sup>0</sup> और चौड़ाई 70 किमी<sup>0</sup> है। जनपद की प्रशासनिक व्यवस्था चार तहसीलों (हरैया, बस्ती सदर, भानपुर तथा रुधौली), 14 विकासखण्डों, 139 न्यायपंचायतों तथा 1045 ग्रामसभाओं में विभक्त है। यहां की कुल जनसंख्या (2011) 2461056 जिसमें पुरुष 1256158 तथा स्त्रियां 1204898 हैं। जनसंख्या घनत्व 916 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी<sup>0</sup> तथा लिंगानुपात 959 प्रति हजार है। यहां की साक्षरता 69.69 प्रतिशत है जिसमें पुरुष साक्षरता 80.65 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 58.35 प्रतिशत है। यहां का कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 277039 हे० है जिसमें 4087 हे० पर वन, 4364 हे० कृष्य बेकार भूमि, 5580 हे० वर्तमान परती, 3595 हे० अन्य परती, 3965 हे० ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि, 38462 हे० कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि, 518 हे० चारागाह, 6615 हे० उद्यान एवं बाग तथा 209096 हे० शुद्ध कृषित भूमि के अधीन है। चावल, गेहूँ, गन्ना अध्ययन क्षेत्र की मुख्य फसलें हैं। यहां कृष्याधारित लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रबल संभावनाएँ हैं।



**शस्य क्रम गहनता में परिवर्तन :** शस्य गहनता से आशय सामान्यतया किसी क्षेत्र विशेष के उस कृषि क्षेत्र से है, जिस पर एक वर्ष के भीतर एक से अधिक कितनी शस्यों का उत्पादन किया जाता है।<sup>1</sup> किसी भी क्षेत्र में शुद्ध बोये गये क्षेत्र की अपेक्षा कुल शस्य क्षेत्र का अधिक होना शस्य गहनता की मात्रा को प्रदर्शित करता है।<sup>2</sup> जसवीर सिंह ने शस्य गहनता के स्थान पर भूमि उपयोग क्षमता का प्रयोग किया है।<sup>3</sup> किसी क्षेत्र पर एक वर्ष में एक से अधिक फसलें उगाया जाता है शस्य क्रम गहनता की द्योतक है।<sup>4</sup> शस्य क्रम गहनता वह सामाजिक बिन्दु है जहां भूमि, श्रम, पूंजी तथा प्रबन्धन का उचित तालमेल होता है।<sup>5</sup> अध्ययन क्षेत्र में भूमि कृषि का एक आधार भूत कारक है, मानव श्रम का बाहुल्य है, तथा यहां कृषि उद्योग/व्यापार परक न होकर निर्वाही प्रकार की है। ऐसी स्थिति में भूमि, श्रम, पूंजी तथा प्रबन्धन इन चारों चरों को शस्य गहनता के निर्धारण का आधार बनाना तर्क संगत होगा। वस्तुतः उपर्युक्त चार चरों के समवेत प्रभाव का बहुफसली क्षेत्र के रूप में व्यक्त होता है। शुद्ध बोया गया तथा बहुफसली क्षेत्र का योग ही सकल फसल क्षेत्र के नाम से जाना जाता है।<sup>6</sup> किसी क्षेत्र में शुद्ध बोये गये फसल क्षेत्र से सकल क्षेत्र जितना ही अधिक होगा शस्य गहनता उतनी ही अधिक होगी। शस्य क्रम गहनता<sup>7</sup> का निर्धारण निम्न आधार पर होता है:-

$$\text{शस्य गहनता सूचकांक} = \frac{\text{सकल फसल क्षेत्र}}{\text{शुद्ध फसल क्षेत्र}} \times 100$$

अध्ययन क्षेत्र की शस्य क्रम गहनता वर्ष 1950-51 में 56.50, 1960-61 में 62.34, 1970-71 में 67.15, 1980-81 में 71.45, 1990-91 में 79.07, 2009-10 में 138 तथा वर्ष 2016 में 147 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि इसमें निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति है जो सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि तथा निरन्तर बढ़ती जनसंख्या हेतु अधिक से अधिक

अनाज की आवश्यकता के कारण है। सारणी-1 से स्पष्ट है कि वर्ष 1990 की अवधि में परशरामपुर विकासखण्ड की गहनता 82.17, गौर की 61.21, हरैया की 60.94, विक्रमजोत की 82, कप्तानगंज की 81.64, रामनगर की 69.7, सल्टौआ की 78.64, रुधौली की 83.45, साऊँघाट की 72.54, बस्ती सदर की 95.41, बनकटी की 82.86, बहादुरपुर की 78.15, कुदरहा की 93.84 तथा दुबौलिया विकासखण्ड की 84.56 प्रतिशत थी। सर्वाधिक 95.41 शस्य क्रम गहनता बस्ती सदर विकासखण्ड में तथा सबसे कम 60.94 हरैया ब्लॉक में थी। वर्ष 2010 में परशरामपुर विकासखण्ड की गहनता बढ़कर 144, गौर की 121, हरैया की 124, विक्रमजोत की 112, कप्तानगंज की 137, रामनगर की 110, सल्टौआ की 139, रुधौली की 161, साऊँघाट की 148, बस्ती सदर की 157, बनकटी की 150, बहादुरपुर की 153, कुदरहा की 128 तथा दुबौलिया विकासखण्ड की 144 प्रतिशत हो गयी, और पूर्व की भांति बस्ती सदर की गहनता जनपद में सर्वाधिक थी। वर्ष 2010 में जनपद की औसत गहनता 138 थी। वर्ष 2016 में परशरामपुर विकासखण्ड की गहनता 154, गौर की 130, हरैया की 134, विक्रमजोत की 124, कप्तानगंज की 155, रामनगर की 123, सल्टौआ की 150, रुधौली की 164, साऊँघाट की 153, बस्ती सदर की 166, बनकटी की 159, बहादुरपुर की 159, कुदरहा की 144 तथा दुबौलिया विकासखण्ड की 166 प्रतिशत हो गयी। ऐसा सिंचाई सुविधाओं के निरन्तर वृद्धि एवं नव्य कृषि उपकरणों की अधिकता के कारण हो सका। सम्प्रति (वर्ष 2016) जनपद की औसत गहनता 147 प्रतिशत हो गयी है।

#### सारणी -1 बस्ती जनपद में शस्य गहनता विकासखण्डवार 1990, 2010, तथा 2016

क्रम सं०	विकासखण्ड	1990	2010	2016
1	परशरामपुर	82.17	144	154
2	गौर	61.21	121	130
3	हरैया	60.94	124	134
4	विक्रमजोत	82	112	124
5	कप्तानगंज	81.64	137	155
6	रामनगर	69.7	110	123
7	सल्टौआ	78.64	139	150
8	रुधौली	83.45	161	164
9	साऊँघाट	72.54	148	153
10	बस्ती सदर	95.41	157	166
11	बनकटी	82.86	150	159
12	बहादुरपुर	78.15	153	159
13	कुदरहा	93.84	128	144
14	दुबौलिया	84.56	144	166
	योग ग्रामीण	79.07	138	147

**कृषि उत्पादकता :** किसी क्षेत्रीय इकाई में प्रतिहेक्टेयर या प्रति एकड़ उत्पादन कृषि उत्पादकता का तात्पर्य है। यह उस क्षेत्र के सकल प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के समेकित प्रभाव का प्रतिफल होता है। किसी क्षेत्र विशेष के प्राकृतिक-सांस्कृतिक पर्यावरण में गुणात्मक सुधार करके उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। कृषि उत्पादकता एवं कृषि क्षमता से सम्बन्धित अध्ययन कैण्डल, स्टाम्प, शफी, बक, देश पाण्डेय एवं स्प्रे, गांगुली, भाटिया, इनेदी, सिन्हा, सिंह तथा शफी एवं हुसैन प्रभृति विद्वानों ने किया है।<sup>8</sup> कैण्डल<sup>9</sup> महोदय ने गुणांक श्रेणी विधि द्वारा कृषि उत्पादकता ज्ञात की है जो प्रति एकड़ उपज पर आधारित है। स्टाम्प<sup>10</sup> ने कैण्डल के गुणांक श्रेणी विधि का प्रयोग अपने अध्ययन में किया है। इस कार्य के लिए इन्होंने नौ फसलों को चुनकर प्रत्येक के प्रति एकड़ उत्पादन का परीक्षण 20 देशों का अध्ययन करके किया है। बक<sup>11</sup> महोदय ने अन्न तुल्य विधि का प्रयोग कृषि उत्पादकता

ज्ञात करने के लिए किया है। इन्होंने सभी अनाजों को एक समान इकाई मानकर प्रतिव्यक्ति उपलब्धता के आधार चीन के विभिन्न क्षेत्रों की उत्पादकता ज्ञात की है। बाद में इनकी आलोचना करते हुए बताया गया कि सभी प्रकार की फसलों को अन्न के रूप में बदलना उचित नहीं है।

सिंह<sup>12</sup> ने कृषि उत्पादकता का आकलन भूमि की पोषण क्षमता के आधार पर किया गया है। इनके अनुसार अधिक उत्पादन वाले क्षेत्रों की पोषण क्षमता भी अधिक होगी। पोषण क्षमता ज्ञात करके इन्होंने सभी कृषि उत्पादों को कैलोरी में बदल दिया है। इनके अध्ययन की मुख्य कमी यह है कि इन्होंने कपास, तम्बाकू, जूट, चारा तथा चाय को भी कैलोरी में बदल दिया है जबकि इनमें कैलोरी होती ही नहीं। इनेदी<sup>13</sup> तथा शफी<sup>14</sup> ने फसल क्षेत्र तथा प्रति क्षेत्र इकाई विधि का प्रयोग किया है। हुसैन<sup>15</sup> ने सतलज गंगा के मैदान की कृषि उत्पादकता के ज्ञान हेतु कृषि उपजों के कुल मूल्य विधि का सहारा लिया है। अध्ययन क्षेत्र को चार कृषि उत्पादकता वाले वर्गों में विभाजित किया गया है (सारणी-2)।

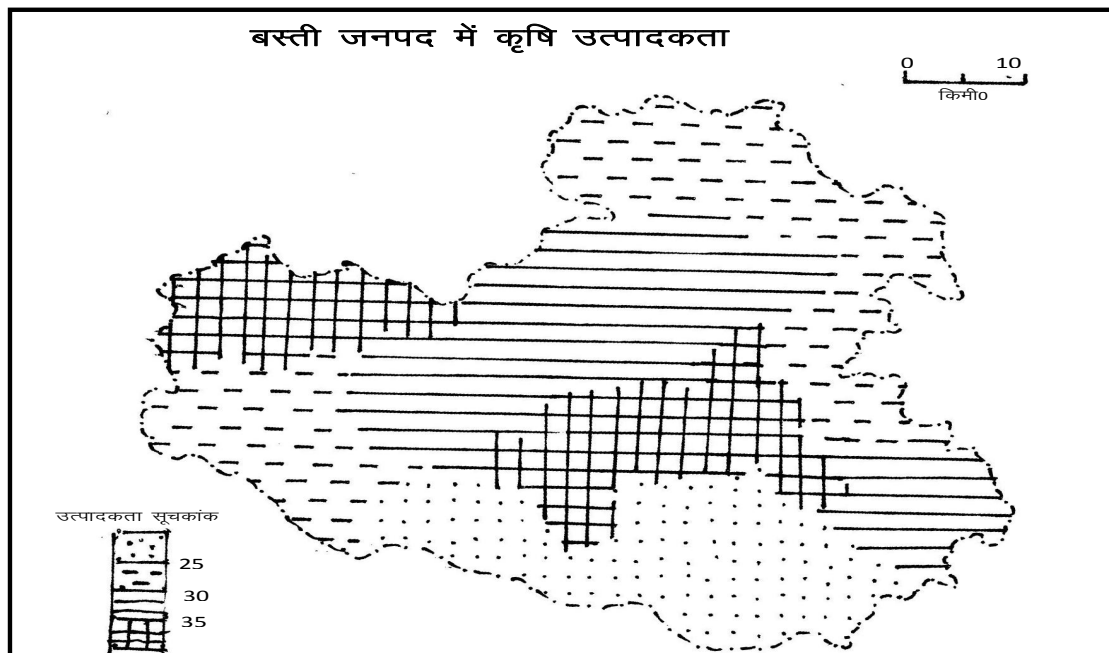
सारणी -2 : बस्ती जनपद में कृषि उत्पादकता

सारणी -2		
बस्ती जनपद में कृषि उत्पादकता		
क्रम सं०	विकासखण्ड	उत्पादकता सूचकांक
1	परशुरामपुर	36.28
2	गौर	35.25
3	हरैया	34.18
4	विक्रमजोत	26.29
5	कप्तानगंज	40.16
6	रामनगर	28.17
7	सल्टौआ	33.26
8	रुधौली	29.22
9	साऊँघाट	26.21
10	बस्ती सदर	38.39
11	बनकटी	31.29
12	बहादुरपुर	24.06
13	कुदरहा	21.35
14	दुबौलिया	23.24
योग ग्रामीण		30.53

1. उच्च उत्पादकता (35 से अधिक) : अध्ययन क्षेत्र के कुल तीन विकासखण्ड इस संवर्ग में आते हैं। इनमें परशुरामपुर (36.28), कप्तानगंज (40.16) तथा बस्ती सदर (38.39) विकासखण्ड आते हैं। यहां की मृदा उत्पादकता उत्तम तथा कृषि दशाएं अनुकूल हैं।

2. मध्यम उत्पादकता (30 से 35) इस वर्ग में अध्ययन क्षेत्र के चार विकासखण्ड गौर, हरैया, सल्टौआ तथा बनकटी आते हैं। यहां की उत्पादकता क्रमशः 32.35, 34.18, 33.26 तथा 31.29 है।

3. निम्न उत्पादकता (25 से 30) : अध्ययन क्षेत्र के चार विकासखण्ड विक्रमजोत (26.29), रामनगर (28.17), रुधौली (29.22) तथा साऊँघाट (26.11) इस संवर्ग में आते हैं। इन क्षेत्रों में सिंचाई की व्यवस्था न होने एवं उपजाऊ मिट्टी के अभाव के कारण उत्पादकता कम है।



हैं। इनमें बहादुरपुर, कुदरहा तथा दुबौलिया विकासखण्ड आते हैं। यहां उत्पादकता सूचकांक 25 से कम है।

जनपद में भूमि उपयोग क्षमता के उन्नयन हेतु सिंचाई सुविधा एवं क्षमता का विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि सिंचाई साधनों एवं सिंचाई क्षमता में वृद्धि के फलस्वरूप कृषि योग्य भूमि को कृषिगत क्षेत्र में परिणत किया जास सकेगा। फलतः बहुफसली क्षेत्र एवं शस्य गहनता में वृद्धि होगी और भूमि उपयोग क्षमता बढ़ जायेगी। इसके द्वारा प्रति इकाई कृषिगत क्षेत्र से अधिकतम लाभ प्राप्त होगा तथा क्षेत्र की जनसंख्या भार वहन करने की क्षमता बढ़ जायेगी।

#### सन्दर्भ-सूची

1. एस० एल० दुग्गल, 1971 : "स्पेशियल वैरियेसन्स एण्ड चेंज इन द क्रपिंग पैटर्न इन द नार्थ ईस्ट रीजन ऑफ हरियाणा," द ज्याॅग्रफिकल आब्जर्वर, वाय० 7, पृ. 39
2. मिनाती सिंह, 1983 : "लोअर गंगा घाघरा दोआब, ए स्टडी इन रूरल सेटिलमेंट्स," पृ. 166
3. जसबीर सिंह, 1974 : "एग्रीकल्चरल एटलस आफ इण्डिया", देलही।
4. ब्रजभूषण सिंह, 1979 : कृषि भूगोल, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, पृ.-104-151
5. आर० के० टण्डन तथा अन्य 1967 : प्रिन्सपुल एण्ड मेथड ऑफ फार्म मैनेजमेंट पृ.-60
6. किशन गोपाल 1979 : द कान्सेप्ट ऑफ एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट, इन्डोब्रिटिश सेमिनार मद्रास में प्रस्तुत शोध पत्र।
7. कृषि विकास का स्तर ज्ञात करने की विधि श्री कमल शर्मा के शोध लेख मध्य प्रदेश में क्रियाशील जनसंख्या की व्यवसायिक संरचना और कृषि विकास में सम्बन्ध, विकासशील भूगोल पत्रिका, 1983, वर्ष-2, संख्या-1 से ग्रहण की गयी है।
8. पूर्व उद्धृत सन्दर्भ 4, पृ.-122-128 में श्री सिंह ने कृषि क्षमता एवं कृषि उत्पादकता में मूलतः विशेष अन्तर नहीं माना है।

9. एम0 जी0 कैण्डल, 1939 : द ज्योग्राफिक डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ क्रॉप प्रॉडक्टिविटी इन इंग्लैण्ड, जर्नल ऑफ द रॉयल स्टैटिस्टिकल सोसाइटी, अंक-162, पृ.-24-28
  10. एल0 डी0 स्टैम्प 1960 : आवर डेवलपिंग वर्ल्ड, लन्दन, पृ.-108 से 109
  11. जे0 एल0 बक 1967 : लैण्ड यूटिलाइजेशन इन चाइना, अंक-1, यूनीवर्सिटी ऑफ नानकिंग।
  12. जसवीर सिंह 1972 : ए न्यू टेक्निक ऑफ मेजरिंग एग्रीकल्चर प्रोडक्टिविटी इन हरियाणा (इण्डिया) द ज्योग्राफर, अंक-21, पृ.-14-33।
  13. जी0 वाई0 इनेदी, 1964 : ज्योग्राफिकल टाइप्स ऑफ एग्रीकल्चर एप्लाइड ज्योग्राफी इन हंगरी, बुडापेस्ट।
  14. एम0 शफी, 1972 : मेंजरमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल प्रॉडक्टिविटी ऑफ द ग्रेट इण्डियन प्लेन, द ज्योग्राफर, अंक-21, संख्या-1, पृ.-4 से 13
  15. मजिद हुसैन 1976 : ए न्यू एप्रोच टू द एग्रीकल्चरल प्रोडक्टिविटी रीजन्स ऑफ द सतलज गंगा प्लेन्स ऑफ इण्डिया, ज्योग्राफिकल रिव्यू ऑफ इण्डिया, अंक-38, संख्या-3, पृ.-230 से 236।
-

## चन्दौली जनपद ( उ०प्र० ) में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता एवं उनका मूल्यांकन

डॉ० महेन्द्र कुमार\*

### शोध-सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र चन्दौली जनपद उ०प्र० के विशेष संदर्भ में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता से सम्बन्धित है। चन्दौली जनपद उत्तर प्रदेश प्रान्त का एक नवसृजित जनपद है जो 25 मई 1997 को उ०प्र० सरकार द्वारा वाराणसी जनपद से अलग होकर अस्तित्व में आया। यह एक पिछड़ा जनपद है जो लगभग 50 प्रतिशत पठारी भूमि एवं 30.5 प्रतिशत वनाच्छादित भूमि में आज भी यहां की आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास की नींव पर ही आधारित है। उत्तर में गंगा कमनाशा मैदान एवं दक्षिण में नौगढ़ के पठारी भाग में आच्छादित है। इसका दक्षिणी भाग पठारी तथा अत्यधिक पिछड़ापन होने के कारण स्वास्थ्य सुविधाओं की अत्यन्त कमी महसूस की जाती रही है।

**मुख्य शब्द :** स्वास्थ्य, चिकित्सीय सुविधा, एलोपैथिक, होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक, यूनानी, औषधालय, सामुदायिक

### शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य निम्नलिखित निर्धारित किये गये हैं-

1. प्रस्तुत शोध का उद्देश्य जनपद चन्दौली में स्वास्थ्य सुविधाओं का अध्ययन करना तथा स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता में विषमता की स्थित सुधारने हेतु आवश्यक सुझाव देना।
2. स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी को दूर करना।
3. स्वास्थ्य सुविधाओं को और सशक्त बनाना।
4. जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार करना।
5. अन्ततः क्षेत्र में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी को दूर करने हेतु कारगर नीति/सुझाव प्रस्तुत करना।

### विधि-तन्त्र

प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है तथा प्राथमिक आंकड़ों को भी शामिल किया गया है। सम्बन्धित आंकड़े जनपद के कार्यालयों, सी०एम०ओ० कार्यालय, जनपद गजेटियर, भू-पत्रक, जिला सांख्यिकीय पत्रिका, जिला समाजार्थिक पत्रिका जनपद चन्दौली, विभिन्न शोध पत्र एवं पुस्तकों आदि से एकत्र किये गये हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में आनुभविक एवं अन्य विधियों का सहारा लिया गया है।

### क्षेत्र परिचय

अध्ययन क्षेत्र उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी मण्डल के अन्तर्गत स्थित जनपद चन्दौली 25 मई 1997 को उ०प्र० के वाराणसी जनपद की चकिया, सकलडीहा और चन्दौली तहसीलों को जोड़कर अस्तित्व में आया। इस जनपद की भौगोलिक दृष्टि से दक्षिणी सीमा विन्ध्य पर्वत श्रृंखलाओं से आच्छादित है तथा पूरब की तरफ कर्मनाशा नदी घाटी एवं पश्चिमोत्तर गंगा नदी के दाहिने तरफ से लगे हुए मैदानी भाग के रूप में यह जनपद विकसित है।

\* पूर्व शोध छात्र, भूगोल विभाग, राणाप्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुलतानपुर ( उ०प्र० )

जनपद चन्दौली का अक्षांशीय विस्तार  $24^{\circ}56'$  उत्तरी अक्षांश से  $25^{\circ}35'$  उत्तरी अक्षांश एवं देशान्तरीय विस्तार  $81^{\circ}04'$  पूर्वी देशान्तर से  $83^{\circ}34'$  पूर्वी देशान्तर के मध्य है। चन्दौली जनपद का सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल 2541.70 वर्ग किमी० है। इसका उत्तर से दक्षिण का विस्तार अधिक (120 किमी०) जबकि पूरब से पश्चिम की चौड़ाई (70 किमी०) कम है। जनपद चन्दौली का उत्तरी भाग गंगा के उपजाऊ मैदान तथा दक्षिणी भाग बिन्ध्यन पठारी क्रम से सुव्यवस्थित है। जनपद चन्दौली के उत्तर एवं उत्तरी-पश्चिमी भाग में गंगा नदी, पश्चिम में मिर्जापुर जनपद, दक्षिण-पश्चिम एवं दक्षिण में सोनभद्र जनपद एवं पूरब में बिहार प्रान्त की सीमाएँ सीमांकन का कार्य करती हैं। कर्मनाशा नदी इसे बिहार राज्य से अलग करती है। गंगा, कर्मनाशा एवं चन्द्रप्रभा नदियाँ इस जनपद की प्रमुख नदियाँ हैं। पावन गंगा जनपद चन्दौली एवं वाराणसी को अलग करती है। गंगा नदी इसके उत्तरी भाग का प्राकृतिक सीमांकन करती है जबकि पूरब में कर्मनाशा बिहार प्रान्त के मध्य सीमा बनाती हुई उत्तर दिशा में प्रवाहित होती है। चन्द्रप्रभा नदी दक्षिण से उत्तर की ओर (कर्मनाशा के पश्चिम) पठारी भाग से प्रवाहित होकर चन्दौली विकासखण्ड में काटा के समीप कर्मनाशा से मिल जाती है (चित्र सं० 01)।

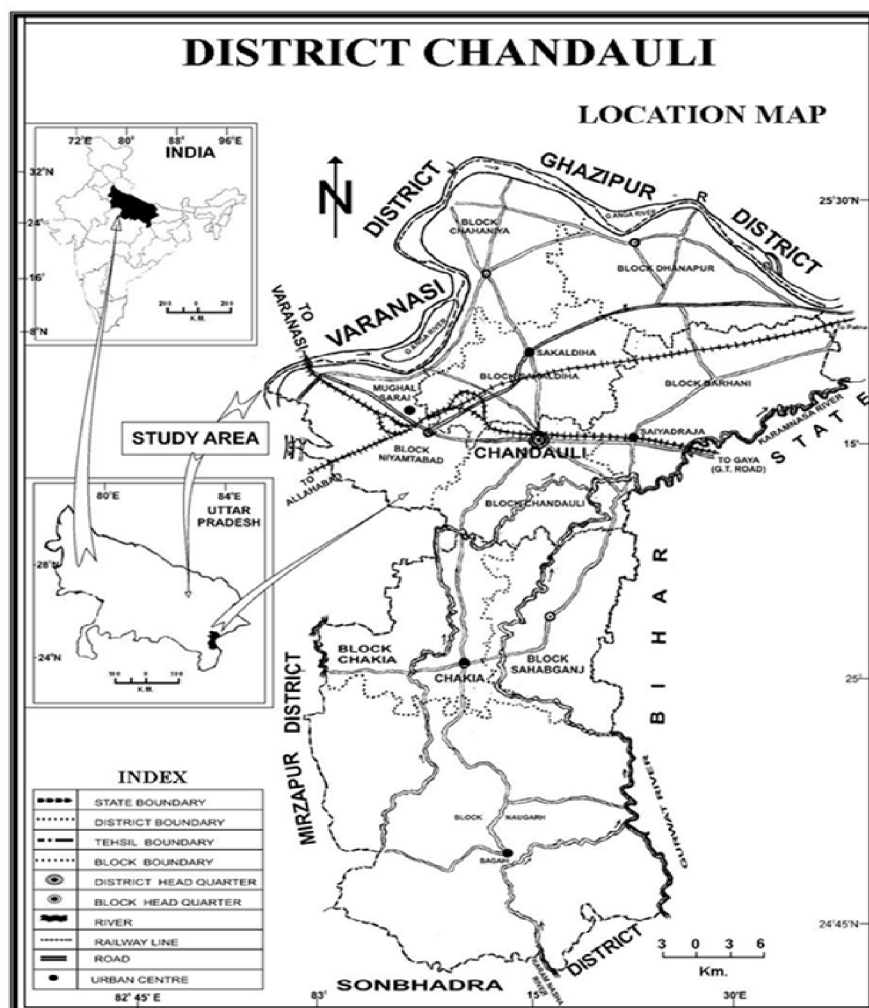


FIG. 01



**स्वास्थ्य :** रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा एवं स्वास्थ्य मानव की पंच आधारभूत आवश्यकताएँ हैं जिसमें स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वास्थ्य जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है। केवल स्वस्थ मनुष्य ही धन और ज्ञान का अर्जन कर सकता है। राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में शिक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य भी महत्वपूर्ण है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है। स्वस्थ व्यक्ति अपना प्रत्येक कार्य सुव्यवस्थिति ढंग से सम्पादित करता है।

**जनपद चन्दौली में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता :** जनपद चन्दौली में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता चित्र सं० 02 में दृष्टांकित है। अध्ययन क्षेत्र में चिकित्सीय सुविधा हेतु एलोपैथिक, होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक एवं यूनानी औषधालय उपलब्ध हैं। इन चिकित्सालयों में कुछ राजकीय, कुछ स्वैच्छिक संस्थाओं के अधीन तथा कुछ निजी हैं। तालिका सं० 01 एवं चित्र सं० 02 में जनपद में प्रति लाख जनसंख्या पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या वर्ष 2008-09,

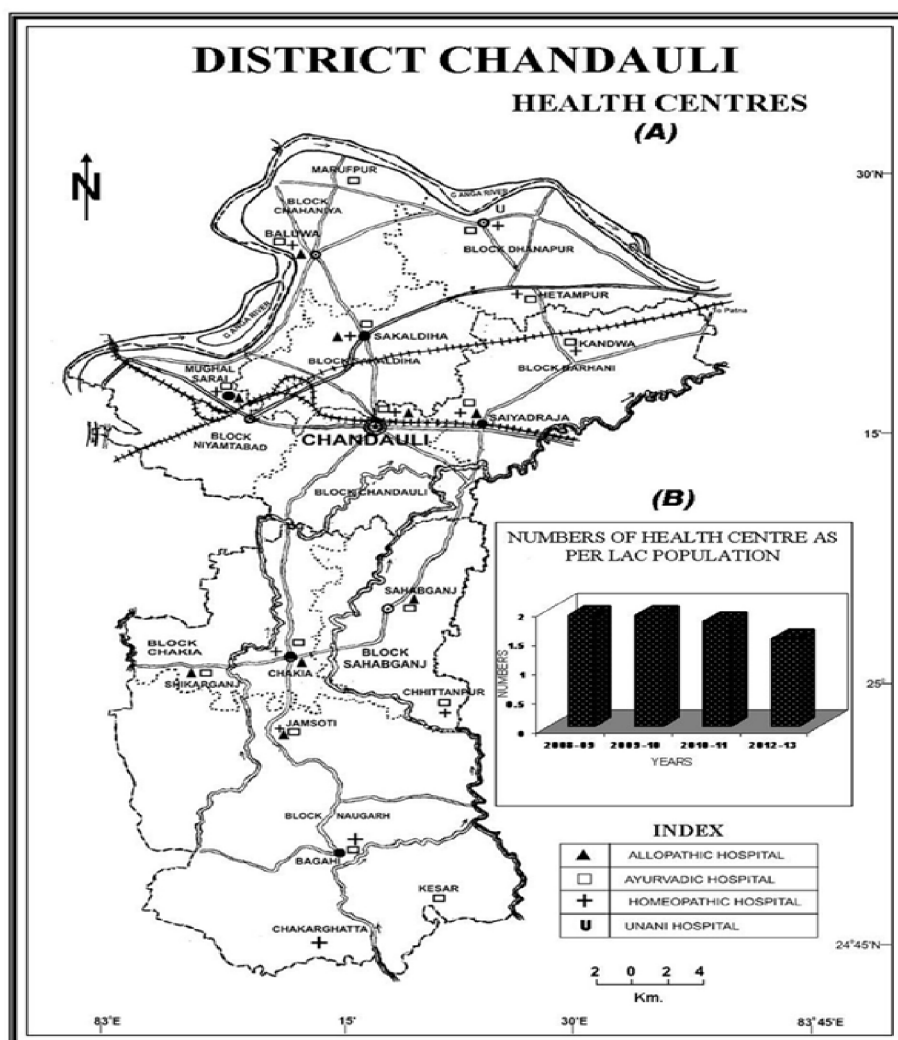


FIG. 02

2009–10, 2010–11 एवं 2012–13 के संदर्भ में प्रदर्शित की गयी है। अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत उपर्युक्त संदर्भ वर्ष में प्रति लाख जनसंख्या पर स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या क्रमशः 1.9, 1.9, 1.8 एवं 1.5 ही मिलती है।

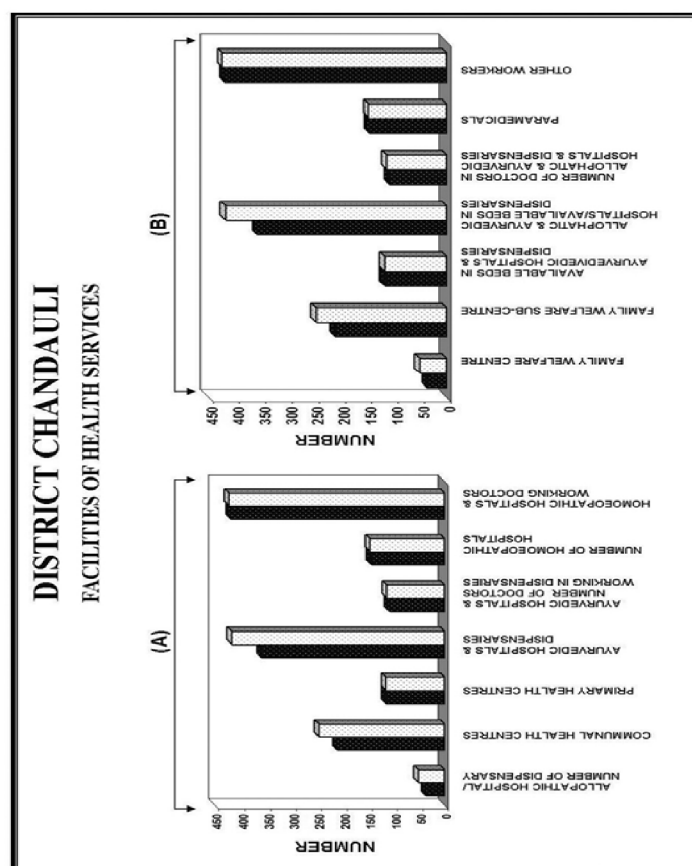


FIG. 03

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि जनपद में जन भार को देखते हुए लगातार प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में कमी हो रही है, जिसका कारण बढ़ती हुई तीव्र जनसंख्या के सापेक्ष स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या में पर्याप्त बढ़ोत्तरी का न हो पाना है।

तालिका संख्या 01 : प्रति लाख जनसंख्या पर स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या

क्रम सं०	वर्ष	प्रतिलाख जनसंख्या पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या
1.	2008–2009	1.9
2.	2009–2010	1.9
3.	2010–2011	1.8
4.	2012–2013	1.5

स्रोत— जिला सांख्यिकीय पत्रिका जनपद—चन्दौली 2009,2010,2012,2013

तालिका सं0 02 एवं चित्र सं0 03 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2008–09 में एलोपैथिक चिकित्सालयों की संख्या 8, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या 4, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या 30, आयुर्वेदिक चिकित्सालयों की संख्या 31, आयुर्वेदिक चिकित्सालयों में डाक्टरों की संख्या 25, होमियोपैथिक चिकित्सालयों की संख्या 20 तथा होमियोपैथिक चिकित्सालयों में डाक्टरों की संख्या भी 20 थी, जबकि वर्ष 2012–2013 में इनकी संख्या क्रमशः 3,4,29,31,25,21 तथा 22 हो गयी। इसी प्रकार वर्ष 2008–09 में परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण केन्द्रों की संख्या 38 एवं उपकेन्द्रों की संख्या 212, आयुर्वेदिक चिकित्सालयों एवं औषधालयों में उपलब्ध शैय्याओं की संख्या–117, एलोपैथिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सालयों में उपलब्ध शैय्याओं की संख्या–360, समस्त डाक्टरों की संख्या 109 थी, जबकि इसी समय यहाँ 146 पैरामेडिकल एवं 421 अन्य कर्मचारी थे जो बढ़कर वर्ष 2012–2013 में क्रमशः 52,248,117,420,114 148 एवं 425 हो गयी चित्र सं0 03।

तालिका संख्या 02  
स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति (वर्ष 2012–2013)

क्रम सं0	स्वास्थ्य सेवाओं का विवरण	सर्वेक्षण वर्ष में पंजीकृत संख्या	
		2008–09	2012–2013
1	एलोपैथिक, चिकित्सालयों/औषधालयों की संख्या	8	3
2	सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	4	4
3	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	30	29
4	आयुर्वेदिक, चिकित्सालयों एवं औषधालयों की संख्या	31	31
5	आयुर्वेदिक चिकित्सालय एवं औषधालयों में डाक्टरों की संख्या	25	25
6	होमियोपैथिक चिकित्सालयों की संख्या	20	21
7	होमियोपैथिक चिकित्सालयों में डाक्टरों की संख्या	20	22
8	परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण केन्द्र	38	52
9	परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण उपकेन्द्र	212	248
10	आयुर्वेदिक चिकित्सालय एवं औषधालय में उपलब्ध शैय्याओं की संख्या	117	117
11	एलोपैथिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सालयों/ औषधालयों में उपलब्ध शैय्याओं की संख्या	360	420
12	एलोपैथिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सालय/ औषधालयों में डाक्टरों की संख्या	109	114
13	पैरामेडिकल	146	148
14	अन्य कर्मचारियों की संख्या	421	425

## तालिका संख्या 03 : मरीजों का विवरण

क्रम सं०	सर्वेक्षण वर्ष	सम्बन्धित मरीजों का विवरण			
		कुल मरीज (ओपीडी)	कुल भर्ती मरीज	खून-पेशाब जांच की संख्या	जननी सुरक्षा योजना के लाभार्थी
1.	2010-2011	392923	5228	29021	28862
2.	2011-2012	358881	5710	21485	28619
3.	2012-2013	336037	6910	22829	25778
4.	2013-2014	358680	8959	27783	25063

स्रोत-जिला मुख्य चिकित्साधिकारी कार्यालय से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर।

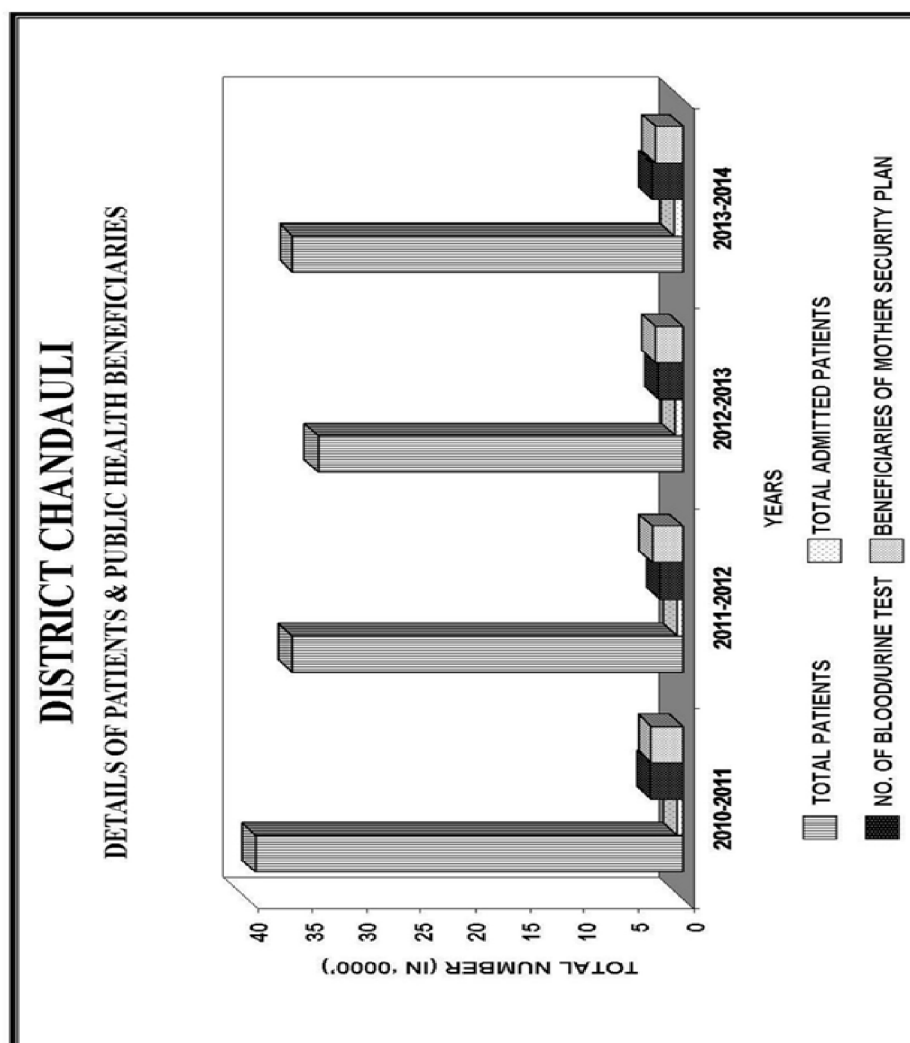


FIG. 04

अध्ययन क्षेत्र में जनस्वास्थ्य से सम्बन्धित मरीजों को तालिका सं० 03 एवं चित्र सं० 04 में दर्शाया गया है। स्पष्ट है कि वर्ष 2010-11 में कुल भर्ती मरीजों की संख्या 392923 थी, जबकि वर्ष 2011-2012, 2012-13 एवं 2013-14 में इनकी संख्या क्रमशः 358881, 336037 एवं 358680 पायी गयी है। इसी प्रकार वर्ष 2010-2011, 2011-2012, 2012-2013 एवं 2013-2014 में कुल भर्ती मरीज एवं खूनपेशाब जांच की संख्या क्रमशः 5228, 5710, 6910 एवं 8959 तथा 29021, 21485, 22829 एवं 27783 पायी गयी है। उपरोक्त सन्दर्भ वर्षों में जननी सुरक्षा योजना के लाभार्थी की संख्या क्रमशः 28862, 28619, 25778 एवं 25063 रही है।

आंकड़ों से स्पष्ट है कि वर्ष 2010-2011 के कुल मरीज (392923) संख्या की तुलना में वर्ष 2013-2014 में कुल मरीज (358680) संख्या में कमी आयी है जबकि इन्हीं वर्षों में कुल भर्ती मरीजों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है। वर्ष 2010-2011 में खून पेशाब जांच की संख्या-29021 की तुलना में वर्ष 2013-2014 में खून पेशाब जांच की संख्या घटकर 27783 हो गयी। इसी प्रकार वर्ष 2010-11 में जननी सुरक्षा योजना के लाभार्थी की संख्या 28862 थी जो 2013-2014 में घटकर 25063 हो गयी।

अतः आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जनपद में स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार से रोगों में रोकथाम हुई है। **निष्कर्ष** : राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में शिक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य भी महत्वपूर्ण है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है। स्वस्थ व्यक्ति अपना प्रत्येक कार्य सुव्यवस्थित ढंग से सम्पादित करता है। अध्ययन क्षेत्र जनपद चन्दौली के उत्तरी मैदानी भाग की अपेक्षा दक्षिणी भाग पठारी तथा अत्यधिक पिछड़ा होने के कारण स्वास्थ्य सुविधाओं की अत्यन्त विषमता है। यद्यपि कि क्षेत्र में चिकित्सीय सुविधाओं हेतु एलोपैथिक, होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक एवं यूनानी औषधालय की उपलब्धता बढ़ रही हैं। इन चिकित्सालयों में कुछ राजकीय, कुछ स्वैच्छिक संस्थाओं के अधीन तथा कुछ निजी हैं। परन्तु स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। जनपद में प्रति लाख जनसंख्या पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या वर्ष 2008-09, 2009-10, 2010-11 एवं 2012-13 के संदर्भ में प्रदर्शित की गयी है। अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत उपर्युक्त संदर्भ वर्ष में प्रतिलाख जनसंख्या पर स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या क्रमशः 1.9, 1.9, 1.8 एवं 1.5 ही मिलती है। उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि जनपद में जनभार को देखते हुए लगातार प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में कमी हो रही है, जिसका कारण बढ़ती हुई तीव्र जनसंख्या के सापेक्ष स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या में पर्याप्त बढ़ोत्तरी का न हो पाना है। आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जनपद में स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार से रोगों में रोकथाम हुई है।

पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता, डाक्टरों की संख्या बढ़ाकर, नये मेडिकल कालेज की स्थापना, आदि द्वारा यदि सही ढंग से उपयोग करके जनसंख्या वृद्धि के सापेक्ष जनपद की स्वास्थ्य सुविधाओं की स्थिति में काफी परिवर्तन सकता है। साथ ही पड़ोसी राज्य बिहार तथा आसपास के पिछड़े जिलों के लिए भी काफी मददगार हो सकता है। विकास की चर्चा में स्वास्थ्य सुविधाओं की सुलभता स्वाभाविक तौर पर क्षेत्र की मांग कही जा सकती है।

### संदर्भ-सूची

1. जिला सांख्यिकीय पत्रिका जनपद चन्दौली वर्ष , 2007-8, 2009, 2010, 2012, 2013 अर्थ एवं संख्या प्रभाग राज्य नियोजक संस्था, उ०प्र०।
2. जिला समाजार्थिक पत्रिका जनपद चन्दौली वर्ष 2008, 2010, 2011, 2012, 2013।
3. जनपद स्वास्थ्य सूचना (सी०एम०ओ० कार्यालय) जनपद चन्दौली वर्ष 2013, 2014।
4. प्रसाद जी पाण्डेय ए० एवं किसलय एस०, 2007 : मानव एवं पर्यावरण, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस दरियागंज, नई दिल्ली।
5. सिंह टी० 1996 : जनसंख्या संसाधन एवं पर्यावरण, अप्रकाशित पी-एच०डी० थीसिस वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर।
6. कुमार, महेन्द्र 2015 : चन्दौली जनपद (उ० प्र०) में जनसंख्या संसाधन विकास एवं नियोजन, अप्रकाशित पी-एच०डी० थीसिस डॉ० राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।
7. Gazetteer of India, 1986: District Varanasi, Govt. Press, Lucknow.
8. Prasad, G. and Gitanjali 1972: Land use studies appeared in Modern Development of Environment and Agriculture DPH New Delhi 1st Edition PP 259-279.

\* \* \* \* \*

## विकासखण्ड सिरकोनी ( जनपद जौनपुर ) में साक्षरता का भौगोलिक अध्ययन

डॉ० राजेन्द्र कुमार सिंह\* प्रगति मौर्या\*\*

शोध सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में विकासखण्ड सिरकोनी में साक्षरता के परिवर्तनशील स्वरूप का अध्ययन किया गया है। 2001 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की औसत साक्षरता 63.01 प्रतिशत थी जबकि 2011 में बढ़कर कुल साक्षरता 72.98 प्रतिशत हो गयी है। साक्षरता व्यक्ति के विकास के लिए महत्वपूर्ण तत्व है, जिसके बिना व्यक्ति के विकास की कल्पना करना कल्पनातीत है। विभिन्न न्यायपंचायतों की साक्षरता भिन्न-भिन्न है जिसमें राजेपुर में सबसे अधिक (68.54%) तथा सबसे कम साक्षरता हौज (57.95) अध्ययन क्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा महिलायें कम साक्षर हैं।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र विकासखण्ड सिरकोनी जनपद जौनपुर का एक नवसृजित विकासखण्ड है जिसका अक्षांशीय  $25^{\circ}36'25''$  उत्तरी अक्षांश रेखा से  $25^{\circ}45'25''$  उत्तरी अक्षांश रेखाओं के मध्य एवं देशान्तरीय विस्तार  $82^{\circ}37'12''$  पूर्वी देशान्तर रेखा से  $82^{\circ}49'25''$  पूर्वी देशान्तर रेखाओं के मध्य में स्थित है। अध्ययन क्षेत्र विकासखण्ड सिरकोनी वाराणसी मण्डल के जौनपुर जनपद की सदर तहसील में अवस्थित है, जो मध्य गंगा मैदान का अभिन्न अंग हैं। अध्ययन क्षेत्र में 11 न्याय पंचायतें एवं 73 ग्राम पंचायतें तथा 201 राजस्व ग्राम हैं। अध्ययन क्षेत्र के उत्तर में सिकरारा, धर्मापुर, पूर्व में केराकत और जलालपुर, दक्षिण पश्चिम में मड़ियाहूँ विकासखण्ड अवस्थित है। अध्ययन क्षेत्र के बीच से होकर मुख्य सड़क NH56 गुजरती है। 2011 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में कुल 180775 जनसंख्या निवास करती है जो कि जनपद की कुल जनसंख्या का 4.35 है। विकासखण्ड सिरकोनी का कुल क्षेत्रफल 131.219 है जो जौनपुर जनपद के कुल क्षेत्रफल का 3.25 प्रतिशत है। विकासखण्ड सिरकोनी के उत्तर और दक्षिण में कुछ दूरी तक क्रमशः गोमती और सई नदियाँ प्रवाहित होती हैं। गठिया नाला अध्ययन क्षेत्र के मध्य में प्रवाहित होता है।

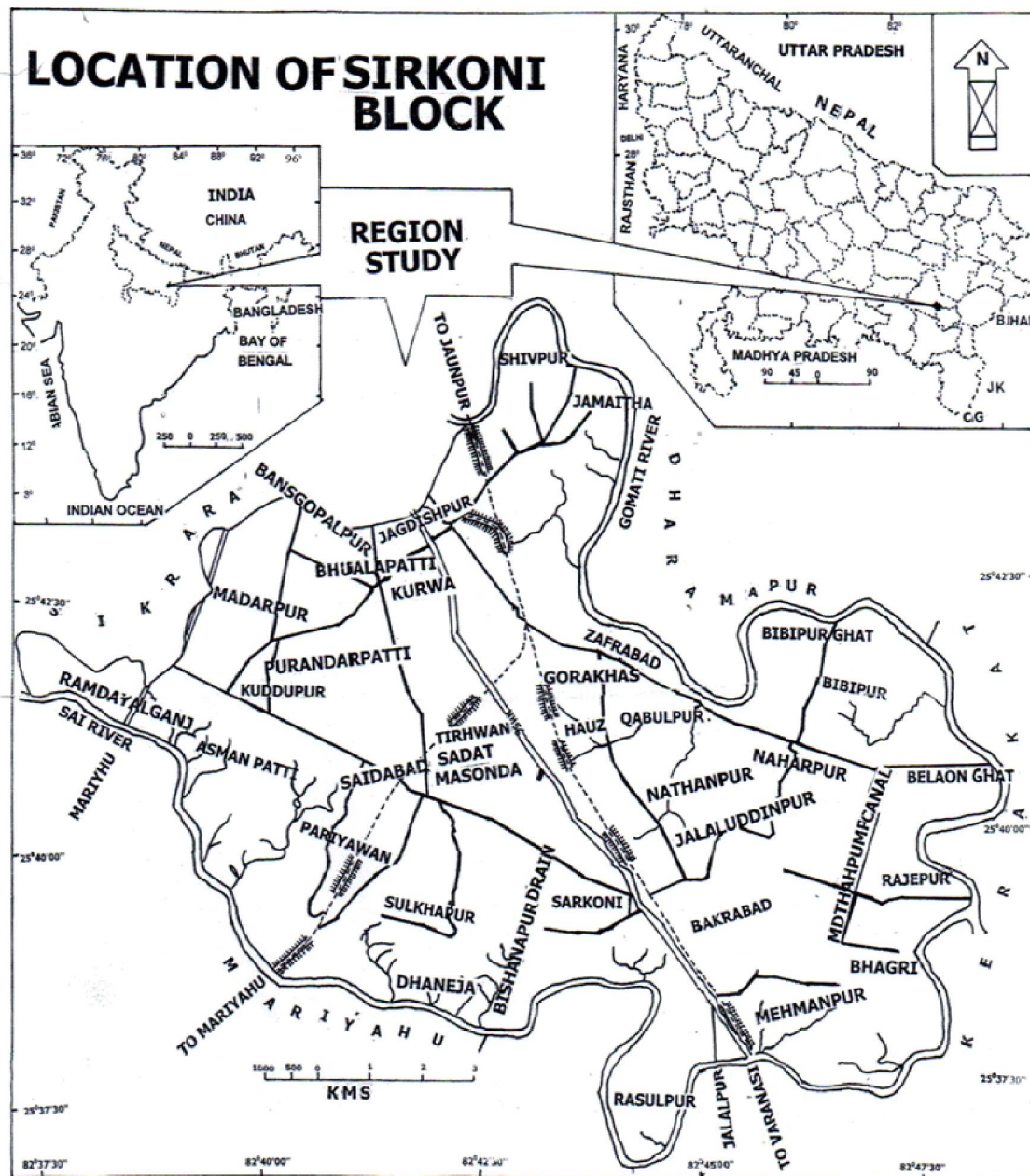
भूमिका

किसी भी व्यक्ति में पढ़ने-लिखने और लिखे हुए तथ्य को समझने की क्षमता को साक्षरता कहा जाता है। जैसे-जैसे किसी भी देश विशेष में जनसंख्या की गुणवत्ता में सुधार आता है, साक्षरता की परिभाषा परिवर्तनशील होती रहती है। साक्षरता सामाजिक उन्नयन का उत्कृष्ट मापदण्ड है। साक्षरता के अभाव में क्षेत्र विशेष में अज्ञानता

\* एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, तिलकधारी, पी.जी. कालेज, जौनपुर

\*\* शोध छात्रा, भूगोल विभाग, तिलकधारी, पी.जी. कालेज, जौनपुर





अधिक रहती है जिससे तकनीकी विकास अवरुद्ध हो जाता है। साक्षरता में धनात्मक परिवर्तन के साथ-साथ क्षेत्र विशेष का बहुआयामी विकास होता है और जनसंख्या की संरचना के विभिन्न घटक सुदृढ़ होते जाते हैं। साक्षरता किसी भी जनसंख्या की सर्वोत्तम उच्चकृत विशेषता है, सामाजिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में मनुष्य गुणवत्तात्मक परिवर्तन तभी कर सकता है, जब वह साक्षर हो। भारत में प्रचलित किसी भी भाषा की वर्णमाला का ज्ञान होने अथवा अपने हस्ताक्षर बना लेने और पढ़ने-लिखने की योग्यता होने पर व्यक्ति को साक्षर माना जाता है। (डा० शम्भूराम, और आशुतोष यादव 2010) "सात वर्ष और उससे अधिक आयु का जो



व्यक्ति किसी भी भाषा को समझ सकता हो, उसे साक्षर माना गया। साक्षर होने के लिए यह जरूरी नहीं कि व्यक्ति ने कोई औचारिक शिक्षा प्राप्त की हो अथवा कोई न्यूनतम परीक्षा उत्तीर्ण की हो। नेत्रहीन व्यक्तियों को जो ब्रेल लिपि में पढ़ सकते हैं, उन्हें साक्षर माना गया है” (उत्तर प्रदेश, प्राथमिक जनगणनासार, 2001)

किसी भी व्यक्ति द्वारा पढ़ने-लिखने की योग्यता को साक्षरता कहते हैं। साक्षरता मनुष्य के बौद्धिक स्तर में उन्नयन करती है साथ ही नवाचारों से परिचित होता है और उसमें अनुसंधान की प्रवृत्ति जागृत होती है, जिससे सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। साक्षरता शिक्षा का प्रमुख अंग है। समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता, सामाजिक भेदभाव, निर्धनता आदि को दूर करने में साक्षरता का महत्व और भी बढ़ता जा रहा है, क्योंकि निरक्षर या अनपढ़ व्यक्ति समाज और देश की वर्तमान वास्तविक स्थिति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को समझने में असमर्थ होता है तथा तकनीकी दृष्टि से अकुशल होने के कारण आधुनिक उद्योगों तथा सेवाओं में उचित योगदान भी नहीं कर पाता है। (डी.एस.डी. मौर्य, 2015) जनसंख्या की मूलभूत समस्याएँ मात्र तीन हैं— स्वास्थ्य शिक्षा और सुरक्षा। अर्थात् शिक्षा किसी जनसंख्या की प्रमुख समस्या है। शिक्षा का सम्बन्ध साक्षरता से है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 37 में नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत किसी भी जनसंख्या के लिए शिक्षा को अनिवार्य बताया गया है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा प्रस्तावित ‘मानव विकास प्रतिवेदन’ में प्रतिवर्ष मानव विकास से सम्बन्धित सूचकांक में स्वास्थ्य, शिक्षा और प्रतिव्यक्ति को आधार बनाया जाता है यहाँ भी शिक्षा का तात्पर्य साक्षरता से है। भारतीय संविधान की संकल्पना को आगे बढ़ाते हुए 2001 से देश में ‘सर्व शिक्षा अभियान’ की शुरुआत की गयी। (राम कुमार तिवारी, 2017)।

शिक्षा कितना अनिवार्य विषय है इसकी अनिवार्यता को समझते हुए ही प्रत्येक व्यक्ति को साक्षर होना अनिवार्य बनाया गया है। साक्षरता वस्तुतः वह वैयक्तिक गुण है जो किसी व्यक्ति के पढ़ने लिखने की क्षमता को प्रकट करती है। साक्षरता ही है जो किसी व्यक्ति के सोच-विचार और कार्य करने की योग्यता में वृद्धि करती है और नित्य उसे नयी खोजों की दिशा में प्रवृत्त करती है। इसी से सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है।

### शोध पत्र का उद्देश्य—

प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र (विकासखण्ड सिरकोनी, जनपद—जौनपुर) में साक्षरता के वितरण का न्यायपंचायत स्तर पर वर्णन करना है। जनसंख्या संरचना से सम्बन्धित विभिन्न तत्वों जैसे लिंगानुपात, आयु संरचना, जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। इस शोध पत्र के माध्यम से इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि साक्षरता में क्षेत्रीय असमानता क्यों पायी जाती है। साथ ही साथ इस तथ्य का वर्णन भी किया गया है कि साक्षरता का प्रतिशत जनसंख्या पर किस प्रकार के प्रभाव डालता है।

### विधि तन्त्र

प्रस्तुत शोध पत्र जनगणना विभाग द्वारा प्रकाशित द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर तैयार किया गया है। विकासखण्ड सिरकोनी जनपद—जौनपुर की 2001 व 2011 के साक्षरता के आंकड़े लेखराज डालर मार्केट, इन्दिरा नगर लखनऊ से प्राप्त किये गये हैं। जनसंख्या और प्रकाशित आंकड़ों को स्पष्ट प्रमाणित करने के लिए अध्ययन क्षेत्र में जाकर समय-समय पर गहन क्षेत्र सर्वेक्षण किया गया है। शोध पत्र को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने के लिए सारणी और मानचित्र बनाये गये हैं।

### तथ्य विश्लेषण

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल साक्षरता 74.04 प्रतिशत थी जिसमें पुरुष साक्षरता 82.14 प्रतिशत और स्त्री साक्षरता 65.46 प्रतिशत थी। उसी समय उत्तर प्रदेश की कुल साक्षरता 69.72 प्रतिशत थी जिसमें पुरुष साक्षरता 79.24 और स्त्री साक्षरता 59.26 प्रतिशत थी। उसी समय जनपद—जौनपुर की कुल साक्षरता 71.55% थी जिसमें पुरुष साक्षरता 83.80% और स्त्री साक्षरता 59.81% थी तथा अध्ययन क्षेत्र विकासखण्ड सिरकोनी जनपद जौनपुर का नवसृजित विकासखण्ड है, जिसकी कुल साक्षरता 2011 की जनगणना के अनुसार

72.98% है जिसमें पुरुष साक्षरता 85.86 प्रतिशत और स्त्री साक्षरता 60.23 प्रतिशत थी।

समकों के आलोक में विश्लेषण करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र और जनपद दोनों ही प्रदेश की साक्षरता दर की तुलना में अच्छी स्थिति में है। अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता उत्साहवर्धक है।

2001 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की कुल साक्षरता 63.01 प्रतिशत थी। उसी समय अध्ययन क्षेत्र में उच्चतम साक्षरता राजेपुर न्यायपंचायत (68.54%) थी और न्यूनतम साक्षरता 53.8 प्रतिशत हौज न्याय पंचायत की थी। इस आधार पर उच्चतम और न्यूनतम साक्षरता का अन्तर 14.74% आता है। अतएव अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता के वितरण में विविधता पायी जाती है यद्यपि की अध्ययन क्षेत्र सूक्ष्म स्तरीय प्रदेश हैं। अध्ययन क्षेत्र में 2001 की तुलना में 2011 में साक्षरता में 9.97% की धनात्मक वृद्धि अंकित की गयी जबकि जौनपुर जनपद की साक्षरता में 11.71% की धनात्मक वृद्धि पायी गयी तथा उत्तर प्रदेश की साक्षरता में 13.42 की धनात्मक वृद्धि दृष्टि गोचर होती है। भारत की साक्षरता में 9.24% की धनात्मक वृद्धि परिलक्षित होती है। उपरोक्त विश्लेषण के आलोक में यह तथ्य प्रकट होता है कि भारत की तुलना में अध्ययन क्षेत्र की साक्षरता का धनात्मक परिवर्तन उत्साहित करने वाला है। परन्तु उत्तर प्रदेश और जौनपुर के साक्षरता परिवर्तन की तुलना में अध्ययन क्षेत्र की साक्षरता का परिवर्तन हतोत्साहित करने वाला है। यह तथ्य इसलिए भी उल्लेखनीय है कि अध्ययन क्षेत्र जनपद मुख्यालय से अत्यन्त निकट है। यहाँ तक की अध्ययन क्षेत्र की पश्चिमी सीमा नगरपालिका जौनपुर द्वारा निर्धारित की जाती है।

#### सारणी संख्या:-01

##### विकासखण्ड सिरकोनी में साक्षरता का स्थानीय वितरण प्रतिरूप का (प्रतिशत में)

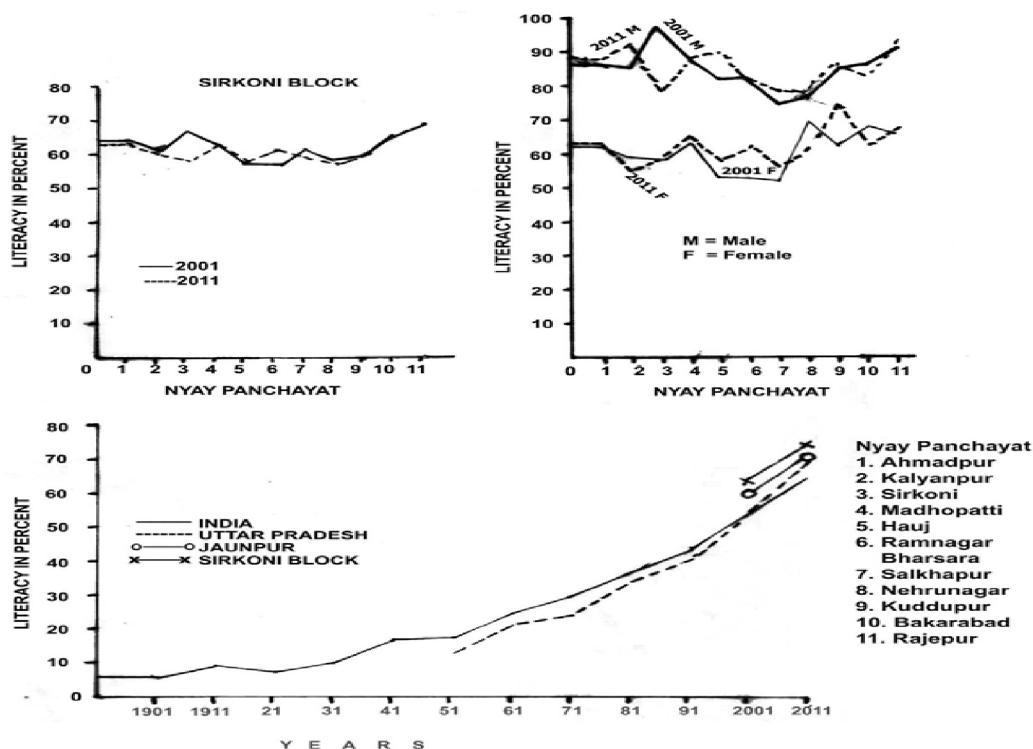
क्र० सं०	2001				2011			
	न्याय पंचायत	कुल साक्षरता	पुरुष साक्षरता	स्त्री साक्षरता	कुल साक्षरता	पुरुष साक्षरता	स्त्री साक्षरता	साक्षरता में परिवर्तन
1	अहमदपुर	63.03	86.50	62.32	63.3	85.95	62.63	0
2	कल्यानपुर	61.30	84.40	59.63	61.55	92.23	54.64	+0.12
3	सिरकोनी	66.30	96.17	58.70	58.94	78.61	57.43	-7.36
4	माधेपट्टी	63.45	86.19	63.93	63.45	88.88	65.23	0
5	हौज	53.8	82.58	53.71	57.15	89.67	58.22	+ 3.35
6	रामनगर भरसड़ा	56.93	83.06	52.26	61.88	82.96	61.98	+ 4.95
7	सलखापुर	61.17	74.61	69.53	61.17	78.90	56.94	0
8	नेहरुनगर	59.93	75.95	61.91	59.93	79.12	62.00	0
9	कुदुपुर	60.56	84.89	58.18	67.52	85.04	74.62	+ 6.96
10	बाकराबाद	65.50	84.00	68.15	61.11	83.42	61.69	- 4.39
11	राजेपुर	68.54	91.28	66.49	68.54	91.28	66.72	0
अ	अध्ययन क्षेत्र	63.01	78.55	47.67	72.98	85.86	60.23	+ 9.97
ब	जौनपुर	59.84	76.18	44.07	71.55	83.80	59.81	+ 11.71
स	उत्तर प्रदेश	56.3	68.8	42.4	69.72	83.30	59.81	+ 11.71
द	भारत	64.8	75.3	53.7	74.04	82.14	65.46	+ 9.24

स्रोत:- सेन्सस सी0डी0 के प्रिन्ट से परिकलित।

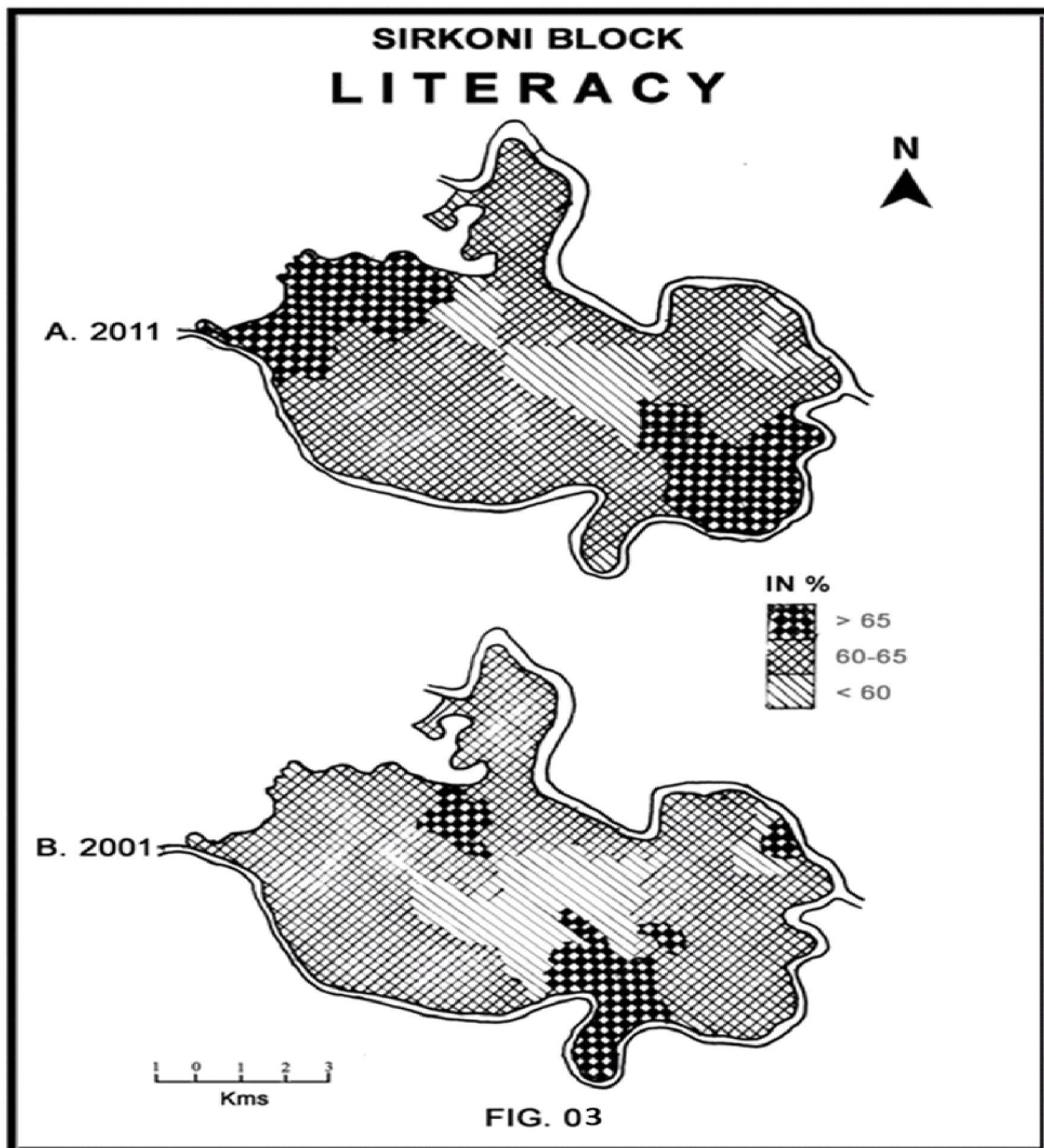
अध्ययन क्षेत्र में 2001 और 2011 की साक्षरता को प्रदर्शित करने के लिए शोधार्थिनी ने मानचित्र संख्या 03 की रचना किया है जिसमें अध्ययन क्षेत्र की साक्षरता को तीन संकेतांकों— उच्च, मध्यम, निम्न में विभाजित किया है जिसमें 65% से अधिक साक्षरता को उच्च, 60% से 65% मध्यम साक्षरता और 60% से कम को निम्न साक्षरता में रखा गया है। 2001 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की न्याय पंचायतों की साक्षरता में विभिन्नताएँ पायी गयी है जिसमें सिरकोनी (66.30%), बाकराबाद (65.50%), राजेपुर (68.54%) न्याय पंचायतों में उच्च साक्षरता दर पायी गयी थी। उसी समय कुददपुर (60.56%), कल्याणपुर (61.30%), सलखापुर (61.17%), अहमदपुर (63.03%), माधोपट्टी (63.45%), आदि न्यायपंचायतों में मध्यम साक्षरता पायी गयी थी तथा उसी समय हौज (53.8%), रामनगर भरसड़ा (56.93%), नेहरुनगर (59.93%) आदि न्याय पंचायतों में निम्न साक्षरता दर पायी गयी थी।

2011 की जनगणना के अनुसार सिरकोनी विकासखण्ड की न्यायपंचायतों की साक्षरता में विभिन्नताएँ पायी गयी थी, जिसमें कुददपुर (67.52%) राजेपुर (68.54%) आदि न्यायपंचायतों में उच्च साक्षरता दर पायी गयी है, और बाकराबाद (61.11%), सलखापुर (61.17%), रामनगर भरसड़ा (61.88%), माधोपट्टी (63.45%), अहमदपुर (63.03%), कल्याणपुर (61.55) आदि न्यायपंचायतों में मध्यम साक्षरता पायी गयी तथा सिरकोनी (58.94%), हौज (57.15%), नेहरुनगर (59.93%) आदि न्यायपंचायतों में निम्न साक्षरता दर पायी गयी है। अध्ययन क्षेत्र के न्यायपंचायतों में साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 की साक्षरता में परिवर्तन सारिणी संख्या 1 के अनुसार प्रदर्शित

### LITERACY RATE



किया गया है, जिसमें न्यायपंचायत अहमदपुर की साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है जबकि कल्यानपुर न्यायपंचायत में 2001 की तुलना में 2011 की साक्षरता में  $(-0.12\%)$  ऋणात्मक परिवर्तन पाया गया है तथा सिरकोनी न्यायपंचायत में  $(-7.36\%)$  भी साक्षरता का ऋणात्मक परिवर्तन हुआ है, परन्तु माधेपट्टी न्यायपंचायत की साक्षरता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है तथा हौज न्यायपंचायत की साक्षरता में  $(+ 3.35\%)$  धनात्मक परिवर्तन हुआ है तथा रामनगर भरसड़ा न्यायपंचायत की साक्षरता में  $(+ 4.95\%)$ , कुदुपुर न्यायपंचायत की साक्षरता में  $(+6.96\%)$ , धनात्मक परिवर्तन हुआ है, जबकि बाकराबाद न्यायपंचायत की साक्षरता में  $(-4.39\%)$



ऋणात्मक परिवर्तन हुआ है, तथा नेहरूनगर, सलखापुर, राजेपुर न्यायपंचायत की साक्षरता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। 2001 की जनगणना की तुलना में 2011 की जनगणना में विकासखण्ड सिरकोनी के विभिन्न न्यायपंचायतों की साक्षरता 63-30% तथा बाकराबाद न्यायपंचायत की साक्षरता 65.50% थी, जबकि 2011 के जनगणना के अनुसार सिरकोनी न्यायपंचायत की साक्षरता 58.94% तथा बाकराबाद न्यायपंचायत की साक्षरता 61.11 हैं अतः इन न्यायपंचायतों की साक्षरता हतोत्साहित अवस्था में हैं। अध्ययन क्षेत्र आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़ा हुआ है जिसका कारण यह है कि अध्ययन क्षेत्र स्त्री और पुरुष साक्षरता के मध्य लम्बा अन्तराल है 2001 की जनगणना के अनुसार पुरुष साक्षरता का प्रतिशत 78.55% है जबकि स्त्री साक्षरता 47.67 प्रतिशत ही है इस प्रकार 2001 में पुरुष और स्त्री साक्षरता में अन्तर 30.88 प्रतिशत जो चिन्तनीय है। इसी प्रकार 2011 की जनगणना के अनुसार पुरुष साक्षरता 85.86 प्रतिशत है जबकि स्त्री साक्षरता 60.23 प्रतिशत ही है इस प्रकार स्त्री और पुरुष साक्षरता में अन्तर 25.63 प्रतिशत का है। स्वतन्त्रता के 73 वर्ष बाद भी स्त्री पुरुष की साक्षरता में इतना बड़ा अन्तर एक गम्भीर समस्या है। स्त्रियों की निम्न साक्षरता समाज में विकास की सोच की गति को मन्द कर देती है। स्त्रियों की अल्प साक्षरता के कारण समाज में अनेक समस्याओं का जन्म होता है जो यहाँ विद्यमान है।

#### साक्षरता को प्रभावित करने वाले कारक:-

अध्ययन क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण तथा कृषि कार्य में संलग्न होने के कारण शिक्षा का स्तर पिछड़ी हुई अवस्था में है। अध्ययन क्षेत्र नगर के परिधि क्षेत्र से सटे होने के कारण यहाँ विभिन्न संस्थानों शिक्षा मूल्य या फीस उच्चतम होने से सामान्य परिवार उस मूल्य को दे नहीं पाता जिससे उनके बच्चे किसी अच्छे संस्थानों में प्रवेश नहीं ले पाते हैं उन्हें मजबूर होकर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश करवाना पड़ता है जहाँ शिक्षा के उचित व्यवस्था का सर्वथा अभाव पाया जाता है तथा सरकार द्वारा चलायी गयी तमाम योजनाओं को अध्यापकों द्वारा संचालित किया जाता है जैसे जनगणना, मतदाता सूची तैयार कराना, चुनाव सम्बन्धी कार्य करवाना इत्यादि जिससे अध्यापक विद्यालय में पूरा समय नहीं दे पाते और साक्षरता पर इसका ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है। अध्ययन क्षेत्र का शोधार्थिनी ने गहन सर्वेक्षण के समय लोगों से वार्तालाप किया तो लोगों का यह मानना था कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने का कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि कई युवक उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद भी बेरोजगार हैं, जिसमें अधिकांश जनसंख्या का यह मत है कि जब बच्चा छोटा हो तभी से कोई रोजगार या कृषि तथा मजदूरी करने लगे तो कुछ जीवन यापन के साधन जुटा सकता है। यह सोच साक्षरता का हतोत्साहित करती है मानव के जीवन स्तर का प्रभाव साक्षरता पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ता है। उच्च जीवन स्तर होने पर साक्षरता या शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है जबकि निम्न जीवन स्तर के लोगों का ध्यान शिक्षा न होकर जीवन यापन के लिए कुछ धन अर्जित करना होता है। निर्धन व्यक्ति अपने बच्चों की शिक्षा के विषय में अपने को अक्षम पाता है और शिक्षा के बारे में सोच नहीं पाता है तथा बच्चे अल्पायु से ही अपने परिवार के साथ या अलग से मजदूरी करके कुछ धन अर्जित करने में लग जाते हैं और विद्यालय न जा पाने के कारण प्रायः निरक्षर ही रह जाते हैं। किसी भी क्षेत्र या देश का अध्ययन करें या प्रखण्ड स्तर का अध्ययन करें साक्षरता में सभी जगह विषमता पायी जाती है प्रायः सभी क्षेत्रों में साक्षरता की विषमता के लिए एक ही नहीं बल्कि अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं। वह क्षेत्र जहाँ तकनीकी एवं उद्योग अपनी चरम अवस्था में हैं वहाँ पर साक्षरता उत्साहवर्धक स्थिति में हैं लेकिन संसार में आज भी कई ऐसे पिछड़े एवं अविकसित स्थान हैं जहाँ लोगों का ध्यान शिक्षा की ओर बिल्कुल नहीं है और न ही लोगों में इसके प्रति कोई जागरूक है। ऐसी स्थिति में साक्षरता को हतोत्साहित करते हैं। साक्षरता को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारक उत्तरदायी हैं जैसे— अर्थव्यवस्था प्रकार, जीवन स्तर, यातायात संचार के साधन, तकनीकी विकास स्तर, शिक्षा की लागत, शिक्षा के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण, समाज में स्त्रियों की स्थिति, धार्मिक विश्वास, शिक्षा संस्थाओं की उपलब्धता, शिक्षण का माध्यम, सरकारी नीति तथा नगरीकरण इत्यादि साक्षरता को प्रभावित करते हैं।

**निष्कर्ष :** शोधार्थिनी ने गहन क्षेत्र सर्वेक्षण के समय अनेक लोगों से वार्तालाप किया तो पता चला कि निर्बल अर्थतंत्र वाले लोग बच्चे के विकास को उपेक्षित करते हैं। ये निर्धन लोग बच्चों पर धन न व्यय करके अपने व्यसन पर अधिक ध्यान देते हैं जिसके परिणामस्वरूप उपेक्षित बच्चे साक्षरता की दृष्टिकोण से पिछड़ जाते हैं। अध्ययन क्षेत्र ग्रामीणांचल होने के कारण वहाँ प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों का अभाव पाया जाता है तथा वे काफी दूर स्थित होते हैं जहाँ पहुंचने के लिए यातायात के साधन भी प्रायः उपलब्ध नहीं होते हैं लेकिन अब धीरे-धीरे यातायात के साधन तथा संचार माध्यमों के प्रसार से साक्षरता तथा शैक्षिक स्तर में उल्लेखनीय प्रगति हो रही है। अध्ययन क्षेत्र में प्रचलित परम्परागत एवं रूढ़िवादी समाजों में व्याप्त अंधविश्वास भी साक्षरता की प्रगति में मुख्य अवरोधक के रूप में उपस्थित हैं। सामाजिक अवरोध प्रायः शिक्षा के प्रसार और जनगणना से ही दूर होते हैं इससे स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में शैक्षिक सुविधाओं का अभाव होते हुए भी शिक्षा के क्षेत्र में नवीन योजनाओं का विकास कर शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है।

### सन्दर्भ सूची

1. मौर्य, एस.डी.(2015) जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ.सं.(325–341)
2. तिवारी, रामकुमार (2017) जनसंख्या भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, पृ.सं.(218)
3. पाण्डेय कुमार राघवेन्द्र, शम्भूराम और यादव शिवराम(2011), तहसील लम्बुवा (जनपद सुल्तानपुर) में साक्षरता एक भौगोलिक अध्ययन, भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, ISSN:0974-0694, VOL.20. No.2, JUN-2011, पृ.सं. (63–67)
4. डा० शम्भूराम और यादव आशुतोष (2010), जनपद अम्बेडकर नगर में साक्षरता एक भौगोलिक अध्ययन, भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, ISSN:0974-0694, VOL.19. No.1, DECEMBER-2010, पृ.सं. (62–65)
5. पटेल, अजय कुमार और राय, विनय कुमार (2017), अम्बेडकर नगर जनपद (उ०प्र०) में साक्षरता वृद्धि : एक भौगोलिक विश्लेषण, राष्ट्रीय भौगोलिक पत्रिका, NGSI-BHU, ISSN:2230-9942/2017/0138, वर्ष 8, अंक 2, दिसम्बर- 2017 पृ.सं. (87–93)
6. चान्दना, आर.सी. (2017) जनसंख्या भूगोल, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
7. शुक्ला, संगीता और कश्यप, डी०डी० (2016), छत्तीसगढ़ राज्य में साक्षरता दर का मापन, उत्तर प्रदेश भौगोलिक पत्रिका, ISSN.-0975-4903, VOL-21, 2016
8. उपाध्याय, अखिलेश कुमार (2011), गोरखपुर मण्डल में साक्षरता का भौगोलिक अध्ययन, भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, ISSN: 0974-0694, VOL-20, No. 2, June 2011
9. त्यागी, नूतन (1990), पूर्वी उत्तर प्रदेश में साक्षरता तथा ग्रामीण विकास, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 26, पृ.1–2.
10. Trewartha, G.T., 1969 : A Geography of Population : World Patterns, John Wiley and Sons, New York.

\* \* \* \* \*



## विकासखण्ड जखनियाँ, जनपद गाजीपुर के समन्वित ग्रामीण विकास में ग्रामीण सेवा केन्द्रों की भूमिका केन्द्रों की भूमिका

डॉ० अरविद कुमार चतुर्वेदी\*

### ग्रामीण सेवा केन्द्र

सेवा केन्द्र वह अधिवास होता है जो मुख्यतया अपने चतुर्दिक फैले अधिवास को सेवाएं प्रदान करने एवं अतिरिक्त उत्पादों को आकृष्ट करने में सचेष्ट करता है। वर्तमान समय में नगर ग्राम सम्बन्ध दिन-प्रतिदिन घनिष्ठ होता जा रहा है। अतः इस सम्बन्ध में सेवा केन्द्रों का महत्व एवं उनकी भूमिका और भी बढ़ जाती है। जिसका ग्रामीण विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सेवा केन्द्र क्षेत्रीय जनसंख्या को न केवल आवश्यक सामग्री पूर्ति करते हैं बल्कि स्थानीय विकास हेतु नीति निर्धारण और कार्यक्रम के क्रियान्वयन में सहायक होते हैं। ग्रामीण सेवा केन्द्र ग्रामीणों की सामाजिक आर्थिक क्रिया को उत्प्रेरित करते हैं तथा अपने चतुर्दिक क्षेत्रों को सामाजिक आर्थिक सेवाएं प्रदान करने के साथ-साथ क्षेत्र के अतिरिक्त उत्पादों को अभावयुक्त क्षेत्रों में वितरित करके क्षेत्रीय संतुलन हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य उच्च स्तरीय सेवा केन्द्रों से प्राप्त नवाचारों का अपने सेवा क्षेत्रों में प्रसार करके कृषि उद्योग वाणिज्य व्यवसाय आदि का रूपान्तरण करते हैं तथा केन्द्रों में रोजगार के नवीन अवसर प्रदान करके नगरोन्मुख जनसंख्या पलायन को रोकने का प्रयास करते हैं।

केन्द्रीय स्थान का तात्पर्य क्षेत्रों के सेवा प्रदान करने वाले केन्द्रों से है। इनकी स्थित केन्द्रीय महत्व की होती है। यहाँ ऐसी सभी सेवाएं अथवा प्रकार्य जो कि सेवा केन्द्रों द्वारा सम्पन्न होते हैं। केन्द्रीय स्थान के नाम से जाने जाते हैं। ये केन्द्र स्थल प्रशासन (तहसील ब्लाक), शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, व्यापार, बैंकिंग आदि सेवाएं समाहित रखते हैं। जो उस क्षेत्र में बसे जनसंख्या को प्रभावित करते हैं।

**सेवा केन्द्रों की केन्द्रीयता** —सेवा केन्द्र ग्राम नगर के मध्य आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विषमता की खाँई को पाटते हुए ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस अध्ययन में सेवा केन्द्रों की केन्द्रीयता का व्यापारिक जनसंख्या, सेवाओं तथा अन्य क्रिया कलापों के आधार पर अध्ययन किया गया है।

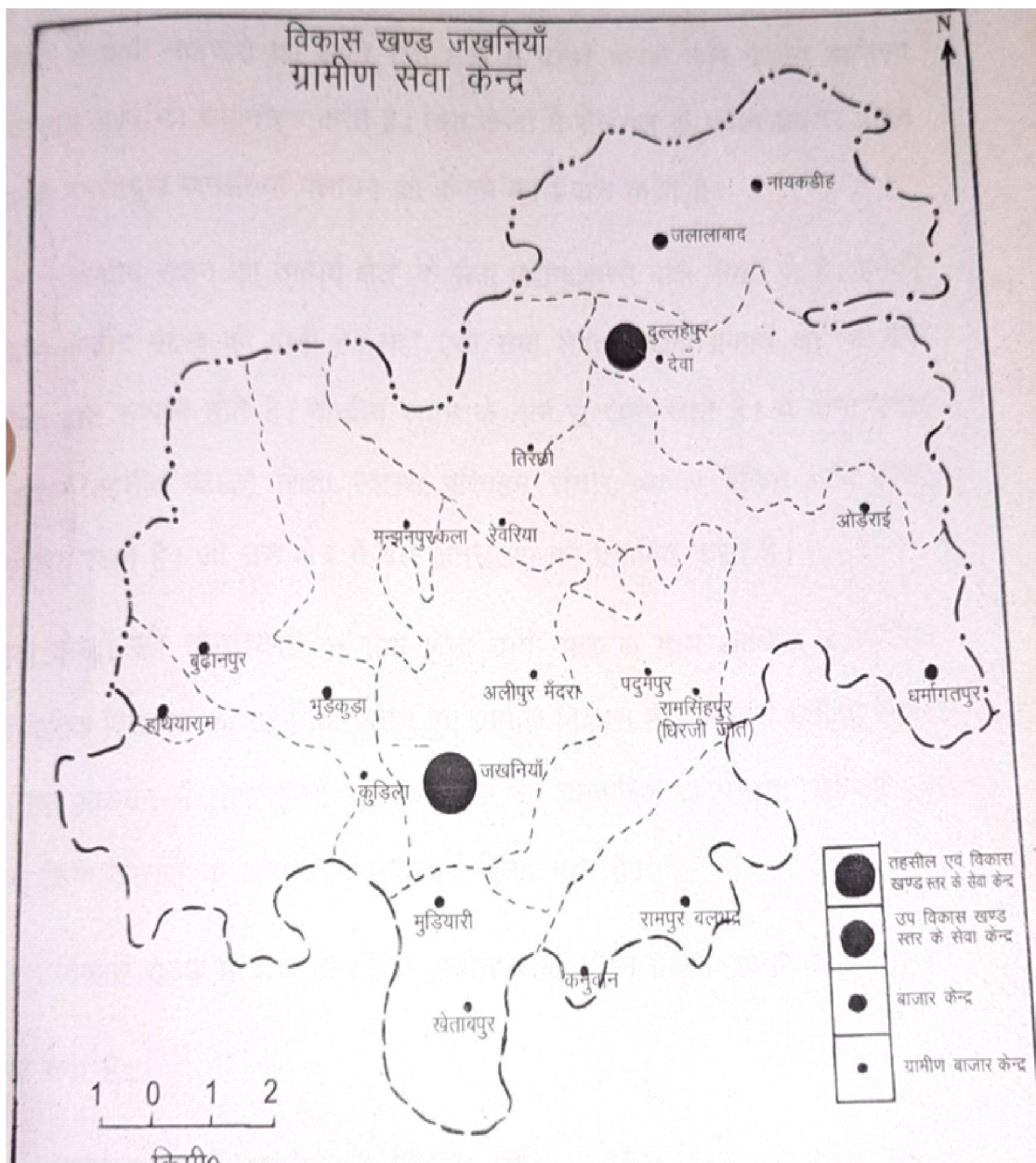
विकास खण्ड में सेवा केन्द्रों के अध्ययन हेतु निम्न प्रमुख तथ्यों को ध्यान में लिया गया है।

1. अध्ययन क्षेत्र में तहसील एवं विकास खण्ड को केन्द्र के रूप में माना गया है।
2. अध्ययन क्षेत्र की समस्त बाजारों को सेवा केन्द्र के रूप में माना गया है। जिन गाँवों की जनसंख्या 5000 या उससे अधिक है तथा उसमें तीन या तीन से अधिक कार्य सम्पन्न होते हैं। उन्हें भी सेवा केन्द्र माना गया है।

चूँकि विकास खण्ड विकास मान की एक इकाई है जिसका मुख्यालय जखनियाँ बाजार में ही स्थित है। अतः सेवा केन्द्रों के अध्ययन में इसे विकासखण्ड एवं तहसील के रूप में माना गया है। जिसे सेवा केन्द्र की प्रथम श्रेणी में रखा गया है जहाँ-जहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य यातायात, वाणिज्य-प्रशासन तथा संचार आदि सेवाएं विद्यमान हैं।

\* सहायक प्रोफेसर, सुभाष विद्या मन्दिर महाविद्यालय, बहरियाबाद, गाजीपुर





अध्ययन में सेवा केन्द्रों की सम्पूर्ण सेवाएं यथा यातायात, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, वाणिज्य तथा पशासन सम्बन्धी कार्यात्मक इकाईयाँ को सम्मिलित कर अध्ययन किया गया है। क्षेत्र के वर्तमान सभी सेवा केन्द्रों का भारांक निम्न सूत्र से निकाला गया है—

सेवा भारांक =  $100 /$  सेवा समूह की संख्या

इस क्षेत्र में उपलब्ध कुल सेवा समूह की संख्या से 100 को विभाजित करके सेवा भारांक प्राप्त किया गया है। इस तरह सभी सेवाओं का भारांक प्रदान किया गया है। इस विधि द्वारा निकालने से भारांक केन्द्र की केन्द्रीयता

एवं पदानुक्रम बना रहता है। अध्ययन क्षेत्र में जिस सेवा की संख्या अधिक है। उसका भारांक अधिक है। क्षेत्र कृष्येत्तर जनसंख्या के संदर्भ में कृष्येत्तर जनसंख्या की केन्द्रीयता केन्द्र के कृष्येत्तर प्रतिशत द्वारा ज्ञात की गई है। तत्पश्चात् सभी सेवा समूह की केन्द्रीयता केन्द्र की कृष्येत्तर जनसंख्या के केन्द्रीयता के आधार पर केन्द्र की औसत केन्द्रीयता ज्ञात करके सेवा केन्द्रों का पदानुक्रम निर्धारण किया गया है।

**सेवा केन्द्रों का पदानुक्रम** – ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पिछड़े एवं अविकसित क्षेत्रों के लिए सेवा केन्द्र बहुत ही उपयोगी होते हैं। इन्हीं के माध्यम से केन्द्र स्थलों तथा आसन्न वर्ती क्षेत्रों के विकास में गतिशीलता का प्रवेश होता है। क्षेत्र के विकास हेतु बनाए गये केन्द्र स्थलों के पदानुक्रमिक स्तर अत्यन्त महत्वपूर्ण माध्यम होते हैं। गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो० जगदीश सिंह ने अपने एक महत्वपूर्ण प्रकाशित अध्ययन में गोरखपुर प्रदेश के केन्द्रीय स्थानों के पदानुक्रम में कार्यों के सापेक्षिक महत्व को ध्यान में रखकर निर्धारित किया और उसे मापने के लिए विभिन्न प्रकार्यों के अनुसार उसका भारांक प्रदान किया गया है। शोधकर्ता ने भी उक्त विधि को आधार मानते हुए जखनियाँ विकास खण्ड का पदानुक्रम ज्ञात किया है। प्रदानुक्रम मापने के लिए 6 मुख्य कार्यों एवं 19 उपकार्यों का उपयोग किया गया है। ये सात केन्द्रीय प्रकार अधोलिखित हैं—

- (1) प्रशासनिक सेवाएं –तहसील केन्द्र 2, विकास खण्ड 1, पुलिस स्टेशन 1
- (2) शैक्षणिक सेवाएं –प्राइमरी स्कूल 1, जूनियर हाईस्कूल 1, हायर सेकेन्डरी स्कूल, इण्टर कालेज 3, डिग्री कालेज 4, विश्वविद्यालय एवं उच्च तकनीकी संस्थाएं 5
- (3) संचार सम्बन्धी सेवाएं –डाकघर 1 एवं तार घर 2, प्रधान डाकघर 3, टेलीफोन एक्सचेंज 3
- (4) स्वास्थ्य सेवाएं –चिकित्सक 2, डिस्पेन्सरी क्लीनिक 2, सरकारी चिकित्सालय 3
- (5) परिवहन सेवाएं –बस स्टेशन, (साधारण) 1, बस स्टेशन एक्सप्रेस 1, रेलवे स्टेशन साधारण 1, रेलवे स्टेशन एक्सप्रेस 2
- (6) वित्तीय सेवाएं –सहकारी समिति 1, व्यापारिक बैंक 1

#### **स्रोत –व्यक्तिगत सर्वेक्षण**

ये केन्द्रीय प्रकार्य केवल कुछ स्थानों पर ही उपलब्ध है। लेकिन इनका लाभ अनेकों बस्तियाँ उठाती हैं। अतः कर्मोपलक्षी केन्द्र सर्वव्यापी होते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० जगदीश सिंह के विभाजन के अनुसार इनके कोटि क्रम का निर्धारण किया गया है।

1. **प्रथम कोटि के पदानुक्रम** –इसे वृद्धि ध्रुव कहते हैं जहाँ पर कई प्रकार का संक्रेन्दण होता इस श्रेणी में विकास खण्ड मुख्यालय जहाँ स्थित है जखनियाँ बाजार आती है। जहाँ सभी प्रकार के प्रकार्यों का महत्व प्रदानांक 65.00 है।

2. **द्वितीय कोटि के पदानुक्रम** –इस कोटि के अन्तर्गत (दुल्लहपुर) (49 महत्व प्रदानांक) जलालाबाद (30 महत्व प्रदानांक) जिसमें एक डिग्री कालेज तथा 1 स्नातकोत्तर महाविद्यालय और रेलवे स्टेशन है जहाँ एक्सप्रेस ट्रेन भी रुकती है।

3. **तृतीय कोटि के पदानुक्रम** –इस कोटि के अन्तर्गत भुड़कुड़ा (22 महत्व प्रदानांक) हथियाराम (13 महत्व प्रदानांक) नामकडीह (12 महत्व प्रदानांक) धर्मागतपुर (14 महत्व प्रदानांक) रामपुर बलभद्र (14 महत्व प्रदानांक) तथा मड़ियारी और पड़मपुर (12-12 महत्व प्रदानांक है) रामपुर बलभद्र (14 महत्व प्रदानांक) एक महाविद्यालय एवं प्राथमिक केन्द्र हैं।

4. **चतुर्थ कोटि के पदानुक्रम** –इस कोटि के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र के पाँच सेवा केन्द्र क्रमशः तिरछी और ओड़राई (11-11 महत्व प्रदानांक) अलीपुर मँदरा (10 महत्वप्रदानांक), बुढानपुर और देवाँ (9-9 महत्व प्रदानांक) आते हैं।

**4- पंचम कोटि के पदानुक्रम** – इस कोटि के अर्न्तगत रेवरिया, कुडिला और रामसिंहपुर आते हैं। इनके महत्व प्रदानांक क्रमशः 6 और 8-8 है। यहाँ छोटी-छोटी दुकानें एवं छोटे बस स्टैण्ड है। जो नीचे तालिका में प्रदर्शित है-

सेवा केन्द्रों के नाम	प्रशासनिक सेवाएं				वैशेषिक सेवाएं				संचार सेवाएं				वित्तीय सेवाएं				स्वास्थ्य सेवाएं				योग
	तहसील	विकास	पुलिस	प्राथमरी	जुनियर	हाईस्कूल	कनिडी	कालेज	डाकघर	सारधारा	टेलीफोन	अहकारी	बैंक	वित्तियसक	डिस्पेंसरी	सरकारी	साधारण	एकप्रेस	साधारण	एकप्रेस	
	कामंड	स्टेशन	स्कूल	हाईस्कूल	इण्टर						एकप्रेस	समिति				वित्तियसक	बसस्टाण्ड	बसस्टाण्ड	रेलवे	रेलवे	स्टैंड
1- जखनियाँ	2	1	1	6	12	12	4	—	2	2	1	3	8	8	3	1	—	—	—	2	88
2- दुल्हनपुर	—	—	1	4	8	6	4	1	—	2	1	3	8	4	3	—	2	—	—	2	49
3- जलालाबाद	—	—	—	3	4	6	8	1	—	—	1	1	2	—	3	1	—	—	—	—	30
4- मुड़कुडा	—	—	—	2	4	4	4	1	—	—	1	1	2	2	—	1	—	—	—	—	22
5- इधियालम	—	—	—	1	2	—	4	—	—	—	1	—	2	—	3	—	—	—	—	—	13
6- नाथकडीह	—	—	—	1	2	3	—	1	—	—	1	2	1	—	—	—	1	—	—	—	12
7- धर्मगतपुर	—	—	—	1	2	3	—	1	—	—	1	—	1	—	—	—	—	—	—	—	12
8- मुडियाली	—	—	—	1	2	3	4	—	—	—	1	—	1	—	—	—	—	—	—	—	10
9- जलपुष्पंदरा	—	—	—	2	2	3	—	1	—	—	—	—	1	—	—	—	1	—	—	—	09
10- मुद्रानपुर	—	—	—	1	2	—	—	1	—	—	1	2	1	—	—	—	1	—	—	—	12
11- चटुनपुर	—	—	—	2	2	3	—	1	—	—	1	—	2	—	—	—	1	—	—	—	08
12- वैरिया	—	—	—	1	1	3	—	—	—	—	—	—	2	—	—	—	—	—	—	—	09
13- देवा	—	—	—	1	2	3	—	—	—	—	1	1	—	—	1	—	—	—	—	—	18
14- तिराही	—	—	—	1	4	3	—	1	—	—	1	—	—	—	—	—	—	—	—	—	14
15- रामपुर बालाद	—	—	—	1	4	3	—	1	—	—	1	1	2	—	—	1	—	—	—	—	11
16- जोरहर्द	—	—	—	1	2	3	—	1	—	—	1	—	2	—	1	—	—	—	—	—	8
17- मुडिला	—	—	—	1	2	3	—	—	—	—	1	—	1	—	—	—	—	—	—	—	8
18- रामसिंहपुर (विशाली)	—	—	—	1	2	3	—	—	—	—	—	—	1	—	—	—	1	—	—	—	8

#### ग्रामीण अधिवास एवं सेवा केन्द्रों का ग्रामीण विकास पर प्रभाव -

अध्ययन क्षेत्र में जहाँ उपजाऊ भूमि है वहाँ अधिवास सघन और गाँव आस-पास पाये जाते हैं। साथ जहाँ नौकरी पेशा वाले लोग है वहाँ मकान पक्के तथा कृषि में लगे लोगों के आवास कच्चे है और मजदूरों की झोपड़िया है। जहाँ उसर एवं अनुपजाऊ भूमि है वहाँ अधिवास दूर-दूर पाये जाते हैं। गाँवों को छोड़कर सड़कों पर घर आवास बनाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है जो धीरे-धीरे सेवा केन्द्र के रूप में विकसित होते जा रहे हैं और लोग सेवा केन्द्रों की ओर रोजगार की तलाश में उन्मुख हो रहे है। इस प्रकार ग्रामीण अधिवास एवं सेवा केन्द्र ग्रामीण विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

#### संदर्भ-सूची

1. सिंह, जे0 (1979), "सेन्ट्रल प्लेस आफ एण्ड स्पेशियल आर्गनाइजेशन इन ए बैकवर्ड इकानामी", गोरखपुर रीजन- ए स्टडी इन इन्ट्रीग्रेटेड रीजनल डेवलपमेन्ट यू0पी0वी0पी0 गोरखपुर, पेज -47-75।

\*\*\*\*\*

## सन्त रविदास नगर जनपद में नगरीय जनसंख्या वृद्धि एवं नगरीकरण का स्तर

धर्मेन्द्र कुमार मौर्य\* डॉ० सी०वी० पाल\*\*

### भूमिका

सन्त रविदास नगर जनपद भदोही 01 सितम्बर सन् 1993 में वाराणसी जनपद से अलग होकर एक नवसृजित स्वतन्त्र जनपद के रूप में अस्तित्व में आया यह उत्तर प्रदेश में मध्य गंगा के मैदान में 25° 10' उत्तरी अक्षांश से 25° 32' 15" उत्तरी अक्षांश तथा 82° 12' 24" पूर्वी देशान्तर से 82° 42' 48" पूर्वी देशान्तर के बीच में अवस्थित है।

प्रशासनिक दृष्टि से इस जनपद को तीन तहसीलें भदोही, ज्ञानपुर व औराई और 6 विकास खण्ड सुरियावां, भदोही, ज्ञानपुर, औराई, डीघ एवं अभोली समाहित है। इस जनपद में कुल ग्रामों की संख्या 1224 है जिसमें 1097 आबाद व 127 गैर आबाद ग्राम है जनपद में कुल 7 नगरीय क्षेत्र—सुरियावां, भदोही, नईबाजार, ज्ञानपुर, गोपीगंज, खमरियाँ एवं घोसियां है। इस जनपद का मुख्यालय ज्ञानपुर में स्थित है। जनपद की कुल जनसंख्या 1353705 है। जिसमें 1180220 ग्रामीण व 173485 नगरीय जनसंख्या है।

### नगरीय जनसंख्या वृद्धि—

किसी भी नगर की कुल जनसंख्या में कालिक परिवर्तन को नगरीय जनसंख्या वृद्धि परिवर्तन कहते हैं। यह परिवर्तन धनात्मक/ऋणात्मक रूप में होता है। जनसंख्या में उस परिवर्तन को जनसंख्या वृद्धि कहते हैं। जनसंख्या वृद्धि निरपेक्ष एवं प्रतिशत दोनों रूपों व्यक्त की जाती है। नगरीय जनसंख्या वृद्धि का आकलन निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से किया गया है।

सूत्र—

$$G = \frac{H-L}{L} \times 100$$

जहाँ—

G = नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर

H = वर्तमान दशक की जनसंख्या

L = वर्तमान दशक के पहले वाले दशक की जनसंख्या।

अध्ययन क्षेत्र के नगरीय केन्द्रों की जनसंख्या वृद्धि में भिन्नता पायी जाती है, जो जनपद के सन्दर्भ में 12.82 प्रतिशत से 47.36 प्रतिशत के मध्य पायी जाती है। तालिका संख्या 0.1 में प्रतिशत जनसंख्या वृद्धि के आधार पर नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर को तीन — कोटियों उच्च नगरीय जनसंख्या वृद्धि, मध्यम नगरीय जनसंख्या वृद्धि एवं निम्न नगरीय — जनसंख्या वृद्धि दर में विभक्त किया गया है। (तालिका संख्या 01 व मानचित्र संख्या 01)

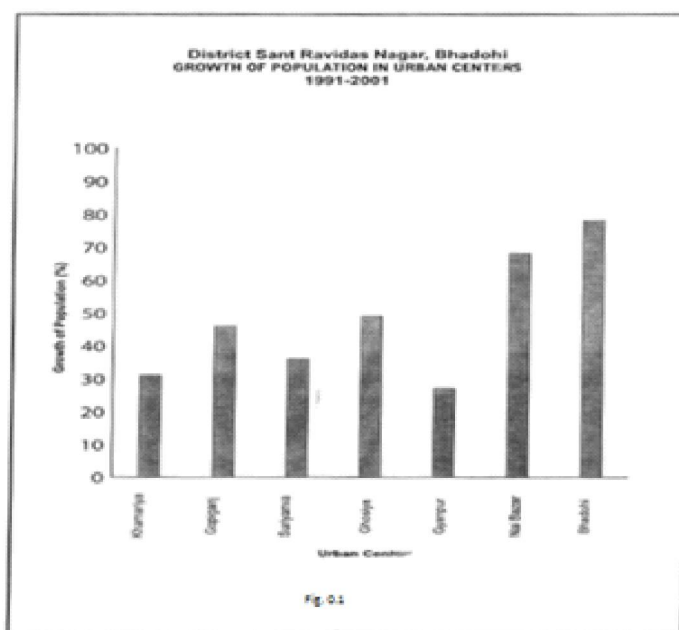
\* शोध छात्र, भूगोल विभाग, काशी नरेश राजकीय पी.जी. कालेज, ज्ञानपुर ( सन्त रविदास नगर ) भदोही

\*\* विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, कुटीर पी.जी. कालेज, चक्के, जौनपुर

**तालिका संख्या-01**  
**जनपद-सन्त रविदास नगर भदोही**  
**नगरीय जनसंख्या वृद्धि (1901-2001) एवं प्रक्षेपित जनसंख्या**

नगरों के नाम	1901	1911	1921	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1991	2000	वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर प्रतिशत में	प्रक्षेपित जनसंख्या		
													2011	2021	2031
खमारियाँ		—	—	—	—	—	—	—	11113 (+49.69)	17909 (+61.15)	23546 (+31.47)	2.72	29185	36174	44837
गोपीगंज		—	3363 (+52.39)	5293 (+21.42)	4159 (+20.05)	4993 (+16.28)	5806 (+22.49)	7112 (+44.90)	10305 (+44.90)	15035 (+45.90)	17235 (+19.28)	176	20621	23710	27262
सुरियावाँ		—	—	—	—	—	—	—	9082	12304	17423	550	29761	50836	86835
घोसियाँ		—	—	—	—	—	—	—	8688	13005	16105	212	19864	24500	30219
ज्ञानपुर		—	846	4071	1126	2911	—	5224	7020 (+34.38)	8908 (+26.89)	12066 (+35.45)	3.02	16247	21877	29458
नई बाजार		—	—	—	—	—	—	—	4784	8067 (+68.62)	11888 (+47.36)	3.83	17312	25210	36711
भदोही		—	1786	9701	2038	16399	20302	250	32192	64010	74522	1.52	86656	100761	117174
योग		—	5995	19065	7323	24303	26108	96	83184	139238	173485	2.19	215450	261565	332287

नगरीय समूह/कस्बा प्राथमिक जनगणना पुस्तिका 2001





1. **उच्चनगरीय जनसंख्या वृद्धि दर— (40 प्रतिशत से अधिक)** : उच्च नगरीय जनसंख्या वृद्धि के अन्तर्गत दो नगरीय केन्द्र आते हैं। इनकी नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर, नई बाजार 47.36% सुरियावां 41.60% है ये नगर भदोही तहसील में स्थित है।
2. **मध्यम नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर— (25% से 40%)**: मध्यम नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर के अन्तर्गत दो नगरीय केन्द्र ज्ञानपुर तथा खमरियाँ आते हैं जिनकी नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर क्रमशः 35.45% व 31.47% हैं। ज्ञानपुर नगर ज्ञानपुर तहसील में स्थित है जबकि खमरियाँ नगर औराई तहसील में स्थित है।
3. **निम्न नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर—(25% से कम)** : निम्न नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर के अन्तर्गत (5) तीन नगर क्रमशः घोसिया, गोपीगंज व भदोही आते हैं जिसकी नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर क्रमशः 23.83%, 19.28% व 16.42% है। घोसिया औराई तहसील गोपीगंज ज्ञानपुर तहसील तथा भदोही नगर भदोही तहसील में स्थित हैं।

#### नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर (विकासखण्डवार) (1981–1991) व (1991–2001)

अध्ययन क्षेत्र के कुल 7 नगर जनपद के 4 विकासखण्डों में स्थित हैं तालिका संख्या 0.1 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि विकास खण्डवार नगरीय जनसंख्या वृद्धि के स्तर में क्षेत्रीय भिन्नता पायी जाती है। नगरीय जनसंख्या में वृद्धि दर 1981–91 के दशक में 35.48% से 94.93% के मध्य तथा 1991–2001 के दशक में 19.89% से 41.60% के मध्य रही है। विकासखण्डवार नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर को तीन वर्गों उच्च, मध्यम एवं निम्न में विभाजित किया गया है। (तालिका संख्या 0.1 मानचित्र सं0 0.1)

#### तालिका संख्या-02

##### नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर (1991–2001) विकास खण्डवार दशकीय वृद्धि

विकास खण्ड का नाम	कुल जनसंख्या	नगरीय जनसंख्या 1991	नगरीय जनसंख्या 2001	नगरीय क्षेत्र 1991 वर्ग किमी.	नगरीय क्षेत्र 2001 वर्ग किमी.	जनसंख्या वृद्धि दर प्रतिशत में	क्षेत्रफल वर्ग. 1991 प्रतिशत	क्षेत्रफल वर्ग. 2001 प्रतिशत
सुरियावां	146528	12304	17423	3.54	3.54	41.60	10.28	10.02
भदोही	335117	72077	86410	16.00	16.00	19.89	46.47	45.29
औराई	307286	30914	39651	10.00	10.00	28.26	29.04	28.30
ज्ञानपुर	225346	23943	30001	4.89	5.79	25.30	14.20	16.39
डीहा	225162	.....	.....	.....	.....	.....	.....	.....
अभोली	116266	.....	.....	.....	.....	.....	.....	.....
	<b>1353705</b>	<b>139238</b>	<b>173485</b>	<b>34.43</b>	<b>35.33</b>		<b>112.00</b>	<b>100.00</b>

स्रोत—जिला प्राथमिक जनगणना पुस्तिका 2001, नगरीय समूह/कस्बा प्राथमिक जनगणना पुस्तिका, 2004–2005

#### 1. निम्न नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर—(20% से कम)

अध्ययन क्षेत्र के कुल नगरीय क्षेत्र के 45.28% (1991–2001) भू भाग पर निम्न दर से नगरीय जनसंख्या की वृद्धि हुई है। इसके अन्तर्गत भदोही विकासखण्ड सम्मिलित थे, जिसमें नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर 19.89% रही है, इस विकासखण्ड में भदोही और नई बाजार नगर स्थित है।

#### 2. मध्यम नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर—(20–40%)

अध्ययन क्षेत्र में कुल, नगरीय क्षेत्र के 44.69% (1991–2001) भू भाग पर मध्यम में नगरीय जनसंख्या वृद्धि हुई है इसके अन्तर्गत दो विकासखण्ड औराई व ज्ञानपुर सम्मिलित थे जिनमें नगरीय जनसंख्या वृद्धि दर क्रमशः

28.26% व 25.30% रही है। इसके अन्तर्गत 4 नगर ज्ञानपुर, गोपीगंज, घोसिया व खमरिया नगर स्थित है। ज्ञानपुर व गोपीगंज ज्ञानपुर विकास खण्ड तथा घोसिया व खमरिया नगर औराई विकास खण्ड में स्थित है।

### 3. उच्च नगरीय जनसंख्या वृद्धिदर--(40% से अधिक)

अध्ययन क्षेत्र में नगरीय क्षेत्र के 10.01% (1991-2001) भू भाग पर उच्च दर से जनसंख्या वृद्धि पायी जाती है। इसके अन्तर्गत मात्र एक विकास खण्ड सुरियावाँ सम्मिलित। जिसमें नगरीय जनसंख्या वृद्धि पर 41.60% रही है। सुरियावाँ विकास खण्ड में सुरियावाँ नगर स्थित है।

#### नगरीकरण का स्तर (2001)

नगरीकरण का स्तर निर्धारित करने के लिए मुख्यतः दो विधियों का प्रयोग किया जाता है।

1. Single indicator method

(ख) बहुनिर्देशक विधि (Multi indicator method)

अधिकतर भूगोलवेत्ता, समाजशास्त्रियों एवं अर्थशास्त्रियों ने नगरीय क्षेत्र के नगरीकरण के स्तर के निर्धारण में Single indicator method का ही प्रयोग किया गया है। इस विधि के अन्तर्गत कुल जनसंख्या तथा नगरीय जनसंख्या अनुपात की गणना निम्नलिखित सूत्र के आधार पर की जाती है।

सूत्र-

$$R = \frac{U}{T}$$

जहाँ-

R = नगरीय जनसंख्या अनुपात

U = कुल नगरीय जनसंख्या

T = कुल जनसंख्या

इसी सूत्र का प्रयोग करके अबीओदन<sup>1</sup> (Abiothun), जाक्सन एवं जय प्रकाश<sup>2</sup> (Jakobsan and Jai Prakash), केन्सली<sup>3</sup> (Kansly), नार्थम<sup>4</sup> (Northam), मोबोगईन<sup>5</sup> (Moboguine) होयट<sup>6</sup> (Hoyet), डीजीओन्सकी<sup>7</sup> (Dzoewpmski), टीसडेल<sup>8</sup> (Tisdale)

आदि ने नगरीकरण के स्तर की गणना की है। अध्ययन क्षेत्र के नगरीकरण स्तर की गणना में निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया गया है।

सूत्र-

$$P = \frac{U}{T} \times 100$$

जहाँ-

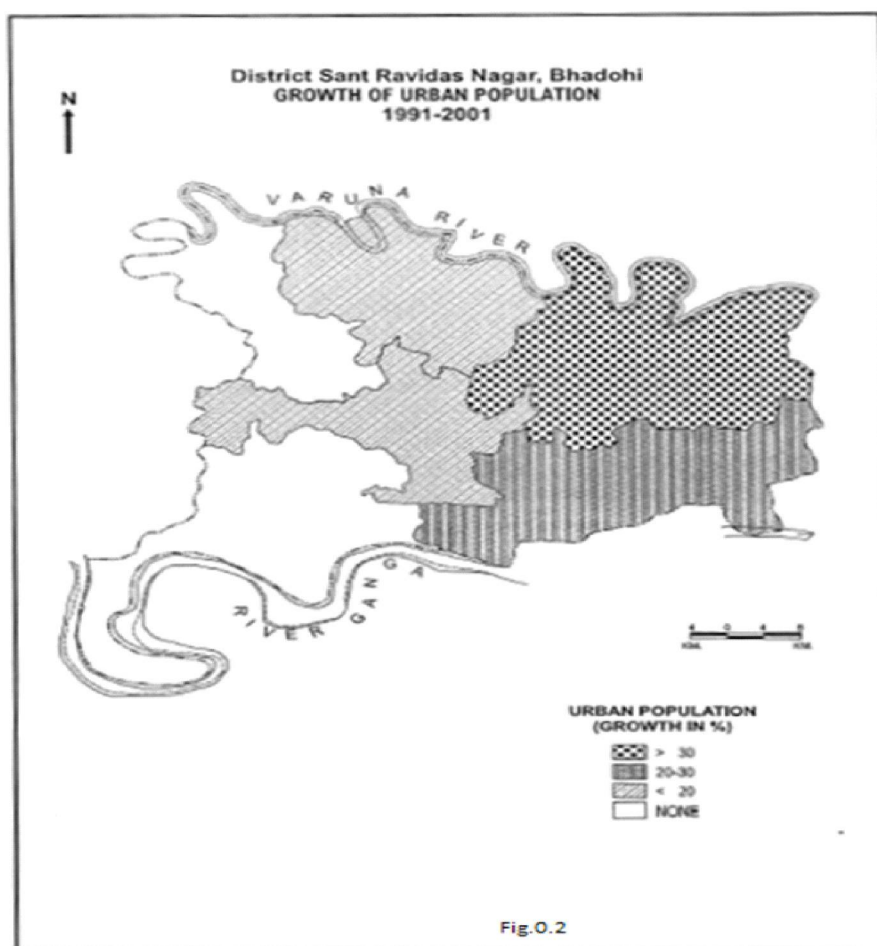
P = नगरीय जनसंख्या प्रतिशत

U = नगरीय जनसंख्या

T = कुल जनसंख्या

तालिका संख्या 3.1 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में नगरीकरण का स्तर 11.89% से 25.78% के मध्य पाया जाता है तथा इसके क्षेत्रीय वितरण में भिन्नता पायी जाती है। तालिका संख्या 0.3 में अंकित आगणन के आधार पर नगरीकरण के स्तर को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।



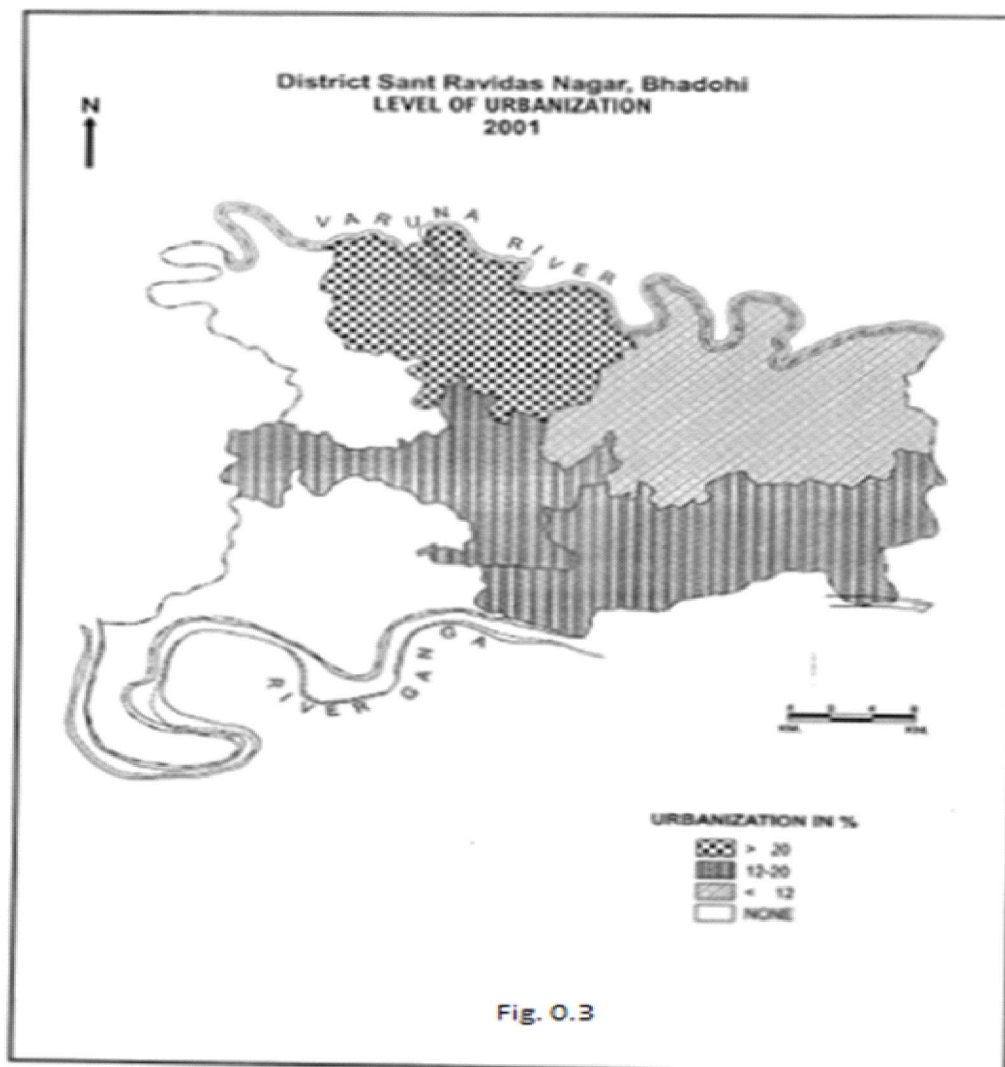


1. उच्चस्तरीय नगरीकरण का क्षेत्र : उच्च स्तरीय नगरीय-करण क्षेत्र के अन्तर्गत केवल दो नगर भदोही व नई बाजार सम्मिलित है, जो भदोही तहसील के भदोही विकास खण्ड में स्थित है। इस विकास खण्ड की कुल जनसंख्या का 25.78% जनसंख्या उन नगर में निवास करती है।

#### तालिका संख्या-3

जनपद- सन्त रविदास नगर भदोही  
विकास खण्डवार नगरीकरण का स्तर-2001

विकास खण्ड का नाम	कुल जनसंख्या	नगरीय जनसंख्या 1991	नगरीय जनसंख्या 2001
सुरियावां	146528	17423	11.89
भदोही	335117	86410	25.78
औराई	307286	39651	12.90
ज्ञानपुर	225346	30001	13.31
डीहा	225162	.....	.....
अभोली	116266	.....	.....
योग	1353705	173485	12.82



स्रोत—जिला प्राथमिक जनगणना पुस्तिका 2001, नगराय समूह / कस्बा प्राथमिक जनगणना पुस्तिका, 2004-2005

**2. मध्यम स्तरीय नगरीकरण का क्षेत्र**—मध्यम स्तरीय नगरीकरण क्षेत्र के अन्तर्गत जनपद के 4 (चार) नगरीय केन्द्र सम्मिलित हैं औराई विकास खण्ड में घोसिया व खमरियाँ नगर स्थित हैं। ज्ञानपुर विकासखण्ड में ज्ञानपुर व गोपीगंज नगर आते हैं। इन विकासखण्डों की कुल जनसंख्या का क्रमशः 13.31% व 12.90% जनसंख्या यहाँ स्थित नगरीय केन्द्रों में निवास करती है।

**3. निम्न स्तरीय नगरीकरण क्षेत्र**—इस वर्ग में अध्ययन क्षेत्र का मात्र एक नगरीय केन्द्र सुरियावां सम्मिलित है। सुरियावां नगरीय केन्द्र भदोही तहसील के सुरियावां विकासखण्ड में स्थित है। इस नगरीय – केन्द्र में विकासखण्ड की कुल जनसंख्या की 11.89% जनसंख्या निवास करती है।

**विभिन्न श्रेणी के नगरों में जनसंख्या वृद्धि**—भारतीय जनगणना में जनसंख्या आकार के आधार पर नगरों को निम्नलिखित 6 वर्गों में विभाजित किया गया है।

प्रथम वर्ग के नगर, जनसंख्या 100000 से अधिक  
 द्वितीय वर्ग के नगर, जनसंख्या 500000-99999 तक  
 तृतीय वर्ग के नगर, जनसंख्या 20000-49999 तक  
 चतुर्थ वर्ग के नगर, जनसंख्या 10000-19999 तक  
 पंचम वर्ग के नगर, जनसंख्या 5000-9999 तक  
 षष्ठम वर्ग के नगर, जनसंख्या 5000 से कम ।

उपयुक्त वर्गीकरण के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के नगरों को 6 वर्गों में विभाजित किया गया है तालिका संख्या-3 से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के प्रथम वर्ग के अन्तर्गत एक भी नगर नहीं आता है। द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत एक नगर आता है। षष्ठम वर्ग का एक भी नगर वर्ष 2001 में नहीं था।

**1. प्रथम वर्ग के नगर में जनसंख्या वृद्धि**— इस वर्ग में एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों को सम्मिलित किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में इस वर्ग के नगरों का अभाव है।

**2. द्वितीय वर्ग के नगर में जनसंख्या वृद्धि**— इस वर्ग में 50000-99999 के बीच जनसंख्या वाले नगरों को शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत केवल एक नगर भदोही आता है। इस नगर में कुल 74522 जनसंख्या निवास करती है तथा इस वर्ग में नगरीय जनसंख्या की कुल 42.96% जनसंख्या पायी जाती है, इस नगर में 1991 व 2001 के दशक में जनसंख्या में 16.42 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

**3. तृतीय वर्ग के नगर में जनसंख्या वृद्धि**— इस वर्ग के अन्तर्गत 20000-49999 के बीच जनसंख्या वाले नगर को सम्मिलित किया गया है। इसके अन्तर्गत केवल एक नगर खमरिया आता है। अध्ययन क्षेत्र में 2001 ई0 में इस वर्ग के नगर में कुल 23546 जनसंख्या निवास करती थी। इस वर्ग में नगरीय जनसंख्या की कुल 13.57% जनसंख्या पायी जाती है। इस संवर्ग के नगर की 1991-2001 में जनसंख्या वृद्धि दर 31.47% अंकित की गयी।

**4. चतुर्थ वर्ग के नगर में जनसंख्या वृद्धि**— इस वर्ग में 10000-19999 जनसंख्या वाले नगर सम्मिलित किए जाते हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत 5 (पाँच) गोपीगंज, सुरियावां, घोसिया, ज्ञानपुर व नई बाजार आते हैं। सन् 1991 में इस वर्ग में कुल नगरीय जनसंख्या का 41.84% जनसंख्या निवास करती थी। 1991-2001 के दशक में इस वर्ग की जनसंख्या में 31.57% वृद्धि हुई।

**5. पंचम वर्ग के नगर में जनसंख्या वृद्धि**— अध्ययन क्षेत्र में इस वर्ग के अन्तर्गत एक भी नगर नहीं आता है।

**6. षष्ठम वर्ग के नगर में जनसंख्या वृद्धि**— इस वर्ग में 5000 से कम जनसंख्या वाले नगर सम्मिलित किये गये हैं। अध्ययन क्षेत्र में इस वर्ग के नगरों का अभाव है।

#### REFERENCES

1. **Abiodun. J.O. (1983)** – Accelerated urbanization and the Problem of urban Peripheries the case of Nigeria India Journal of Region Science. Volxv. P-59-75.
2. **Jakobsan. L. and Prakash V. (1976)** : “Urbanization in India the need of Normative Regional Development Strategise” in A.G. Noble and A. Dutt (Ed) Indian Urbanization and Planning, vehicle of Modernization Tata Mcgraw Hill Publishing. Co. New Delhi P-157-180.
3. **Kansly K.J.(1976)** – “Urbanization Under Socialism. The Case of Czechoslovakia Praeger publishers, Newyork p-12-13.
4. **Northan. R.M. (1975)** – “Urban Geography John Wiley & Sons New York P-154.
5. **Mobogunje, A.L. (1968)** – “Urbanization in Nigeria. University of London Press P-33-43.
6. **Hoyeth. H. (1962)** - World Urbanization : Expanding population in a Shriking world. Urban Land institute Washington (D.C.) P-8-31.
7. **Dziewonski. K. (1954)** – “Urbanization in Contemporary Poland, Geographical Polonica voll II P-35-42.
8. **Tisdale. H. (1942)**- “The Process of Urbanization” Social Forces. Vol. XX. P-78-95.

\* \* \* \* \*

## वैश्वीकरण के कालिक आयाम

डॉ. प्रशान्त पाण्डेय\*

वैश्वीकरण की परिघटना अपने मूल ही नहीं अपितु विस्तृत अर्थ में भी मूलतः व्यक्तिगत लाभ में माल-उत्पादन, वितरण-विक्रय वाली आर्थिक प्रणाली की उपज है, जिसमें पूँजी की भूमिका सर्वोपरि रही है। अतः स्वाभाविक है कि पूँजी के स्वरूप में आये ऐतिहासिक परिवर्तनों के क्रम में वैश्वीकरण की परिघटना में चरित्रगत वैशिष्ट्य में भी अवश्यमेव अन्तर दिखायी दे। चूँकि अपने पिछले लगभग 500 वर्षों के विकास के अन्तराल में पूँजी ने मुख्यतः अपने को तीन रूपों में प्रकट किया है, जिन्हें क्रमशः व्यापारिक पूँजी, औद्योगिक पूँजी और वित्तीय पूँजी के रूप में जाना जाता है, अतः इसी आधार पर वैश्वीकरण की परिघटना की ऐतिहासिक प्रक्रिया की दीर्घावधि को भी तीन अलग-अलग चरणों में विभक्त करके समझा जा सकता है। इस संदर्भ में यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि पूँजी के तीनों विभिन्न रूपों एवं तदनुरूप 'वैश्विक परिघटना' के विविध चरणों को अलगाने वाली कोई निर्वर्तन निर्माणक चीनी दीवाल कभी नहीं रही है। पूँजी के तीनों रूपों हमेशा एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध एवं पूरक की भूमिका में मिलकर ही आर्थिक प्रणाली को सक्रिय बनाते हैं। बस होता यह है कि किसी दौर विशेष में किसी एक को ज्यादा प्रभावकारी भूमिका मिली होती जिसके आधार पर उस अवधि को अलग संज्ञा दे दी जाती है। वैश्विक परिघटना के कालिक आयाम का विवरण निम्नवत है—

1. व्यापारिक पूँजी द्वारा वैश्वीकरण (1455-1750 ई.)।
2. औद्योगिक पूँजी द्वारा वैश्वीकरण (1750-1870 ई.)।
3. वैश्वीकरण की तृतीय काल (वित्तीय पूँजी द्वारा वैश्वीकरण) (1870 से आज तक) : इसके चार उपचरण किये जा सकते हैं :

(अ) 1870-1900 तक का काल।

(ब) 1900-1945 तक का काल।

(स) 1945-1980 तक का काल।

(द) 1980 से आज तक का काल (उत्तर आधुनिक काल)।

1. **व्यापारिक पूँजी द्वारा वैश्वीकरण (1455-1750 ई.)** : पूँजीवादी वैश्वीकरण का यह वह काल था जबकि अभी यूरोपीय पूँजीवाद अपने राष्ट्रीय बाजारों को संगठित करने के बाद अपने राष्ट्र-सीमा से बाहर कदम बढ़ाना शुरू ही किया था। उसका उत्पादक आधार नहीं शक्तिशाली हो पाया था और न ही विविधरूपी बहुआयामी अपितु अभी वह कमजोर एवं सरल तथा कम जटिल रूप वाला था। वह मूलतः व्यापार पर ज्यादा निर्भर करने वाला व्यापारिक स्वरूप वाला था। इस समय व्यापार की प्रधानता पर निर्भर करने के कारण यूरोपीय पूँजीवाद उन्हीं क्षेत्रों/इलाकों/देशों और उनकी उन्हीं उपजों को महत्व प्रदान करता था, जो उसके व्यापारिक लाभखोरी के उद्देश्य को पूरा करते हैं। फलतः व्यापारिक महत्व की अपनी हैसियत के अनुसार ही उनका वैश्वीकरण भी हो रहा था। व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भारत, चीन और पूर्वी द्वीप समूह के क्षेत्र/देश इसीलिए उस समय भी अरबों के मार्फत अथवा प्रत्यक्ष तौर पर भी यूरोपीय व्यापारिक शक्तियों के सम्पर्क में अपने लग गये थे। यही स्थिति भूमध्य सागर तटीय अफ्रीकी मध्य-पूर्व एशियाई राष्ट्रों/इलाकों की भी थी। चूँकि यूरोप और एशिया का इस समय का व्यापार मूलतः भूमध्य सागर से होते हुए मध्य-पूर्व होकर स्थल मार्ग द्वारा होता था। इसलिए कुस्तुनतुनिया (इस्ताम्बुल) इस मार्ग का सबसे महत्वपूर्ण प्रवेश द्वार बन गया। यूरोपीय और एशिया के मिलन बिन्दु पर सागरीय

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, डी.सी.एस. पी.जी. कॉलेज, मऊ

तट की अपनी स्थिति के कारण। लेकिन 1453 ई. में इस पर तुर्कों ने कब्जा कर लिया। परिणामतः यह स्थल मार्ग जिसकी खोज सिकन्दर महान ने 327 ई. पूर्व में भारत पर हमले के दौरान की थी, यूरोपीय व्यापारिक शक्तियों के हाथ से निकल गया। परिणामस्वरूप यूरोपीय व्यापारिक पूँजी को अपने व्यापारिक कारोबार से देश के भीतर और देश के बाहर विदेशों में व्यापारिक लाभ को बनाये रखने के लिए नये-नये समुद्री मार्ग खोजने के लिए मजबूर होना पड़ा। उस समय व्यापार की दृष्टि से आगे बढ़ी शक्तियों— स्पेन, पुर्तगाल और इटली ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इसी अभियान को व्यावहारिक रूप देने की कड़ी में ही कोलम्बस ने 1492 ई. में भारतीय मार्ग की खोज करते हुए नई दुनिया का पता लगाकर ज्ञात विश्व का दायरा बढ़ाया तो 1498 ई. में वास्का—डी—गामा ने पुर्तगाल के तट से चल करके अन्ध महासागर का चक्कर लगाते हुए उत्तमाशा अन्तरीप पार करके भारतीय तट पर कालीकट में अपना लंगर डाल ही दिया और फिर थोड़ी ही अन्तराल में भारतीय तट पर पुर्तगालियों की छावनी—बस्ती स्थापित कर दी। परिणामतः भारत का पश्चिमी तट जो अभी अरबी व्यापारियों के द्वारा यूरोपीय शक्तियों से सम्बन्धित था वह यूरोपीय शक्तियों के प्रत्यक्ष प्रभाव में वैश्वीकृत होने को बाध्य हो गया।

व्यापारिक आवश्यकताओं की अभिपूर्ति के लिए धीरे-धीरे यूरोपीय व्यापारिक शक्तियों ने विश्व के सभी देशों और बाजारों में आने-जाने के समुद्री रास्तों का पता लगा लिया। सर्वप्रथम इन्हीं यूरोपीय व्यापारिक पूँजियों ने ही दुनिया के अज्ञात देशों के नामों, स्रोतों और भौगोलिक स्थितियों का पूरा पता लगाया। इसी व्यापारिक पूँजी ने ही सबसे पहले विश्व के बारे में ज्ञात खोजों को इकट्ठा करके पहली बार विषय का सही मानचित्र तैयार किया। दुनिया के बाजारों एवं समुद्री रास्तों की खोज और दुनिया के सही-सही मानचित्र निर्माण के द्वारा ही दुनिया में वैश्वीकरण का पहला दौर शुरू हुआ। इसी दौर में कोपरनिकस ने 1526 ई. में और गेलिलियो ने पृथ्वी द्वारा सूर्य का चक्कर लगाने और सूर्य के ही सौर मण्डल का केन्द्र होने के तथ्य को प्रामाणिक ढंग से स्थापित किया।

व्यापारिक पूँजी के उदय के साथ ही विश्व बाजार की पहली बार स्थापना हुई। यदि व्यापारिक पूँजी ने दुनिया के बाजार के समुद्री रास्तों की खोज और मानचित्र निर्माण का काम न किया होता तो आज 'वैश्विक गांव' का विकास भी नहीं होता। रेशम और पुनर्जागरण काल के महान नायकों ने विश्व मानवता को करीब लाने में व्यापक पैमाने पर कार्य किया। इस व्यापारिक पूँजी और इसके चलते होने वाले वैश्वीकरण में अमेरिका से सोने और चाँदी की लूट तथा अफ्रीका से काले लोगों को जबरिया पकड़ करके गुलाम बना करके अमेरिका में बेचने के तथ्य ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। दोनों अमेरिकाओं में करोड़ों आदिवासी लोगों के जन संहार के बाद जो हजारों टन सोना एवं चाँदी लूटी गयी और यूरोप लायी गयी उससे अफ्रीका गुलामों के व्यापार से एवं भारत-चीन के साथ रेशम, कपास, वस्त्र, मसाले एवं अन्य उपजों वाले वाणिज्य से न केवल यूरोपीय शक्तियों के पास व्यापारिक/वाणिज्यिक पूँजी का भण्डार खड़ा हुआ बल्कि उसी से उनके यहाँ औद्योगिक क्रांति की भी शुरुआत हुई और औद्योगिक पूँजीवाले पूँजीवाद का विकास भी संभव हो सका, जिससे वैश्वीकरण के दूसरे दौर की शुरुआत भी आसान हो गयी।

**2. औद्योगिक पूँजी द्वारा वैश्वीकरण अथवा विश्व पूँजीवाद का जन्म (1750-1870) :** विश्व पूँजीवाद का जन्म : यह व्यापारिक पूँजी के अग्र विकास का वह चरण है जबकि यूरोपीय शक्तियों के पास दोनों अमेरिका से लूटे गये हजारों टन सोने, चाँदी एवं अफ्रीकी गुलामों की बेरोक-टोक बिक्री आदि से अथाह धन इकट्ठा हो चला, जिसके आधार पर इनके यहाँ औद्योगिक क्रांति साकार हो सकी। इस औद्योगिक विकास में द. अमेरिका पर स्पेन और पुर्तगाल के तथा उत्तरी अमेरिका पर इंग्लैण्ड के कब्जे ने भी भारी सकारात्मक भूमिका निभायी। इस समय तक इंग्लैण्ड एवं अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ-साथ सं. राज्य अमेरिका में भी औद्योगिकरण की शुरुआत हो चली और वह इंग्लैण्ड के प्रभुत्व से मुक्त हो करके आजाद एवं संप्रभु देश के रूप में सामने आ गया। इसी दौर में (1789-1799 ई.) फ्रांस की महान क्रांति घटित हुई, जिससे वहाँ औद्योगिकरण को तेज बढ़ावा मिला। स्वयं इंग्लैण्ड में हुई 'सुनहरी क्रांति' ने वहाँ के औद्योगिक विकास में तीव्र त्वरण प्रदान कर दिया। जर्मनी ने औद्योगिकरण की दिशा में छलांग लगाया। देखते-देखते अधिकांश यूरोपीय शक्तियाँ व्यापारिक पूँजी के प्रभुत्व वाले देश से औद्योगिक पूँजी के प्रभुत्व वाले देश में अन्तरित हो चली। औद्योगिक पूँजी के प्रभुत्व में आते ही स्पेन-पुर्तगाल और इटली जैसे पुरानी महत्वपूर्ण व्यापारिक पूँजी वाले राष्ट्र विकास के प्रक्रिया में औद्योगिक पूँजी वाले ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, सं. राज्य अमेरिका आदि देशों के मुकाबले काफी पीछे छूट गये।

जहाँ व्यापारिक पूँजीवाद के जमाने की खास विशेषता एशिया विशेषकर के भारत, चीन एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मालों का यूरोप में व्यापार, अफ्रीकी गुलामों का व्यापार एवं अमेरिकी सोने-चाँदी की लूट थी वहाँ

औद्योगिक पूँजीवादी-वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषता यूरोप की फैक्ट्रियों में बने मालों की दुनिया के भारत जैसे देशों में बिक्री बढ़ गयी। मालों की प्रकृति एवं उनके आवागमन की दिशा में भी बदलाव आ गया। इस औद्योगिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया में एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के देश कच्चे मालों के उत्पादक एवं यूरोपीय तैयार मालों की मण्डियाँ बनाये जाने लग गये। यूरोपीय शक्तियाँ एवं सं. रा. अमेरिका उद्योगों एवं औद्योगिक मालों के उत्पादक तथा कच्चे मालों के आयातक बन बैठे। औद्योगिक पूँजीपतियों ने बन्दरगाहों, रेल, सड़क, डाक, तार, अखबार एवं किताबों आदि के निर्माण के जरिये वैश्वीकरण के दूसरे चरण को गति प्रदान किया। इससे 'विश्व पूँजीवादी व्यवस्था' के जन्म को वास्तविक अर्थों में सार्थकता प्राप्त हुई। यूरोप में बड़े पैमाने के फैक्ट्री उत्पादन से जहाँ एक ओर मालों के विक्रय की समस्या खड़ी हुई तो वहीं दूसरी ओर इनके लिए कच्चे माल की प्राप्ति की निरंतरता एवं निश्चिन्तता बनाये रखने की भी समस्या काफी महत्वपूर्ण रही। परिणामतः माल विक्रय के लिए बाजार एवं मालों की तैयारी हेतु विविध कच्चे मालों की प्राप्ति की निरंतरता एवं सुनिश्चिता बनाये रखने की समस्या भी तीव्र बन चली। परिणामतः इन दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण इलाकों/देशों की तलाश एवं उन पर वर्चस्व तथा अधिभार बनाये रखने को लेकर औद्योगिक शक्तियों में परस्पर होड़ भी अत्यन्त उग्र एवं गला-काट हो उठी। इसके फलस्वरूप जो देश या इलाके मण्डी बन सकते थे अथवा उत्पादन के लिए संसाधन आपूर्क एवं आधार क्षेत्र, वे औद्योगिक पूँजी द्वारा प्रत्यक्ष उपनिवेश बनाये जाने लगे। इंग्लैण्ड चूँकि इस समय औद्योगिक दृष्टि से ज्यादा आगे था इसलिए उसने सबसे ज्यादा देशों/इलाकों का अपना प्रत्यक्ष उपनिवेश भी बनाया।

यूरोपीय औद्योगिक शक्तियों ने जिन देशों को अपना उपनिवेश बनाया अथवा अपनी अर्थव्यवस्था के स्वार्थों में वैश्वीकृत किया वहाँ की स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के तमाम आधारों को जबरिया विनष्ट करके अपना परावलम्बी बना लिया। परिणामस्वरूप भारत और चीन जैसे प्राचीन सभ्यता-संस्कृति वाले सम्पन्न देश जो 1750 ई. तक यूरोपीय देशों के मुकाबले औद्योगिक उत्पादन में आगे रहते आये थे। उनका विऔद्योगीकरण हो गया। भारत में तो यह प्रक्रिया इतनी अधिक प्रभावी रही कि जो भारत 1800 ई. तक यूरोपीय देशों को वस्त्रों का भारी पैमाने पर निर्यात करता था वह 1800 ई. के बाद वस्त्रों का बड़ा आयातक बन गया। वस्त्र निर्यात के बदले कपास का निर्यातक रह गया। ब्रिटिश नीति के फलस्वरूप होने वाले इस वैश्वीकरण में जहाँ भारत विऔद्योगीकृत होता चला गया वहीं यहीं के संसाधनों एवं मण्डियों में अपने मालों की बिक्री सुनिश्चित एवं सुगम बनाये रखने के आधार पर इंग्लैण्ड औद्योगीकृत होता गया। इस मुनाफे से उसके यहाँ औद्योगिक पूँजी विस्तार विकास काफी तीव्र हो उठा।

अन्य औद्योगिक शक्तियों के साथ औपनिवेशिक सम्बन्धों बलात बांधकर वैश्वीकृत होने को मजबूर अफ्रीकी, एशियाई एवं द. अमरीकी, पोलेनेशियाई मूलकों की भी भारत जैसी ही स्थिति ही रही।

इस दौर के वैश्वीकरण का मुख्य वैशिष्ट्य औद्योगिक राष्ट्रों से खासकर अमरीका एवं पं. यूरोपीय राष्ट्रों से दुनिया के दीगर मूलकों को औद्योगिक मालों का निर्यात और इनके लिए कच्चे माल की दृष्टि से महत्वपूर्ण इलाकों के लिए हड़प्पा-हड़पी की बढ़ती प्रतिद्वन्द्विता थी। इसके कारण दुनिया तमाम देश और भू-भाग इन औद्योगिक शक्तियों के उपनिवेश बना लिये गये। इस प्रत्यक्ष उपनिवेशन में वृद्धि के साथ ही वैश्वीकरण की प्रक्रिया अपना अग्र-विकास के तीसरे चरण में प्रविष्ट हुई।

**3. वैश्वीकरण का तीसरा दौर-वित्तीय पूँजी द्वारा वैश्वीकरण-(1900 ई. से आज तक) :** विश्व रंगमंच पर औद्योगिक देशों खास करके ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, सं. राज्य अमरीका एवं इटली एवं अन्य यूरोपीय औद्योगिक ताकतों के प्रादुर्भाव तथा विकास ने विश्व को एक नये परिवेश में ला खड़ा किया, जहाँ औद्योगिक पूँजीपतियों में अति तीव्र प्रतिद्वन्द्विता ने 1870 ई.से 1900 ई. के बीच 'एकाधिकार पूँजीवाद' को जन्म दिया, जिसके गर्भ से 'वित्तीय पूँजी' का अभ्युदय हुआ। इस पूरा काल में हुए वैश्वीकरण को चार उपचरणों में विभक्त किया जा सकता है।

(अ) 1870 से 1900 ई. तक का काल।

(ब) 1900-1945 ई. तक का काल।

(स) 1945-1980 ई. तक का काल।

(द) 1980 से आज तक का काल अथवा उत्तर आधुनिक काल।

(अ) **1870 से लेकर 1900 तक का काल :** व्यापारिक पूँजी पर औद्योगिक पूँजी की पूर्ण श्रेष्ठता का स्थापित होना, इजारेदारियों का जन्म, इनसे वित्तीय पूँजी का उद्भव और फिर इनके बीच विश्व का बंटवारा इस काल की प्रमुख लाक्षणिकतायें हैं। बाजारों और कच्चे मालों की दृष्टि देशों की उपनिवेश बनाने की प्रक्रिया इस



काल में उग्र हो उठी। 'मार्क्स-एंगेल्स' ने इस काल (1848) की अपनी विश्व-प्रसिद्ध रचना 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र' में इस काल में हो रही वैश्वीकरण की प्रक्रिया का वैज्ञानिक एवं सजीव चित्र प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है :

“अपने माल के लिए बराबर फैलते हुए बाजार की जरूरत के कारण पूँजीपति वर्ग दुनिया के कोने-कोने की खाक छानता है। वह हर जगह घुसने को, हर जगह पैर जमाने को, हर जगह सम्पर्क कायम करने को बाध्य होता है।...”

विश्व बाजार को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर पूँजीपति वर्ग ने देश के उत्पादन और खपत को एक सार्वभौमिक रूप दे दिया। प्रतिगामियों की भावनाओं को गहरी चोट पहुंचाते हुए उसने उद्योग या तो नष्ट कर दिये गये हैं या नित्य प्रति नष्ट किये जा रहे हैं, उनका स्थान ऐसे नये-नये उद्योग ले रहे हैं जिनकी स्थापना सभी सभ्य देशों के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन जाती है। उनका स्थान अब ऐसे नये उद्योग ले रहे हैं, जिनके उत्पादन की खपत सिर्फ उस देश में नहीं बल्कि पृथ्वी के कोने-कोने में होती है। उन पुरानी आवश्यकताओं की जगह जिन्हें स्वदेश में बनी चीजों से पूरा किया जाता था, अब ऐसी नई आवश्यकताएं पैदा हो गयी हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए दूर-दूर के देशों और भू-भागों से माल मंगाना होता है। पुरानी स्थानीय और राष्ट्रीय पृथक्ता और आत्मनिर्भरता का स्थान चौतरफा पारस्परिक संपर्क ने, सार्वभौमिक आत्मनिर्भरता ने ले लिया। उत्पादन के अलावा औजारों में तीव्र उन्नति और संचार साधनों की विपुल सुविधाओं के कारण पूँजीपति वर्ग सभी राष्ट्रों को यहां तक कि बर्बर से बर्बर राष्ट्रों को भी सभ्यता की परिधि में खींच लाता है। इसके माल की सस्ती कीमत एक ऐसा तोपखाना है, जिसके जरिये वह सभी चीनी दीवारों को ढहा देता है और विदेशियों के प्रति तीव्र घृणा रखने वाली बर्बर जातियों की आत्मसमर्पण के लिए मजबूर कर देता है। प्रत्येक राष्ट्र को इस भय से कि अन्यथा वह लुप्त हो जायेगा — वह पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली अपनाने के लिए मजबूर कर देता है कि जिसे वह सभ्यता कहता है। उसे वह भी अपने-अपने बीच कायम करें। अर्थात् खुद पूँजीपति बन जायें। संक्षेप में, पूँजीपति सारे वर्ग को अपने ही सांचे में ढाल देता है।...

जिस तरह पूँजीपति वर्ग ने देहातों को शहरों का आश्रित बना दिया है, उसी तरह उसने बर्बर और अर्द्धबर्बर राष्ट्रों को सभ्य देशों का, कृषक राष्ट्रों को पूँजीवादी राष्ट्रों का और पूरब को पश्चिम का आश्रित बना दिया है।”

यह बढ़ती आश्रितता वास्तव में वैश्वीकरण की ही सघनतर अभिवृद्धि है। इस प्रकार औद्योगिक पूँजी की श्रेष्ठता, बढ़ते वर्चस्व, इसके फैलते विश्व बाजार एवं विश्व के लगभग सभी देशों/जातियों को अपने स्वार्थानुरूप पूँजीवाद भंवरजाल में खींच लाने और उन्हें विश्व-पूँजीवादी-आर्थिक प्रणाली का अंग बनाते जाने के रूप में इस काल के वैश्वीकरण की अलग से पहचान की जा सकती है।

**(ब) 1900-1945 ई. तक का काल :** वैश्वीकरण का यह दौर कई एक संदर्भों में पहले के सभी चरणों में होने वाले वैश्वीकरण से बहुत भिन्न रहा है जिसके कारण पहले से चले आये पूँजीवादी वैश्वीकरण का अग्र चरण होने के बावजूद इसने तत्कालीन पूँजीवाद के स्वरूप को मूलतः बदल ही दिया। इस बदलाव में सबसे बड़ी भूमिका 1876 से 1914 ई. के बीच दुनिया के इजारेदार संघों के बीच बढ़ते बंटवारे और 1890-1913 ई. के बीच हुए रेलों के विश्वव्यापी विस्तार एवं विकास ने निभायी। इसका व्यापक परिणाम 'लेनिन' के शब्दों में निम्न रूप में घटित हुआ —

“छोटे-छोटे मालिकों की मेहनत पर आधारित निजी सम्पत्ति, मुक्त प्रतियोगिता, जनवाद अर्थात् वे तमाम आकर्षक शब्द जिनके जरिये पूँजीपति और उनके अखबार, मजदूरों और किसानों को धोखा देते हैं— बीते हुए जमाने की बातें बन चुके हैं। पूँजीवाद आज विकसित होकर कुछ मुट्ठी भर “आगे बढ़े हुए” देशों द्वारा औपनिवेशिक उत्पीड़न की और वित्तीय दृष्टि से दुनिया की आबादी के विशाल बहुमत का गला घोट देने वाली विश्वव्यापी व्यवस्था का रूप धारण कर चुका है।”

औद्योगिक पूँजी और औद्योगिक मालों के निर्यात की तुलना में वित्तीय पूँजी का बढ़ता निर्यात चन्द आगे बढ़े हुए देशों के वित्तीय अल्पतंत्र द्वारा दुनिया के तमाम देशों का बंटवारा एवं बढ़ती औपनिवेशिक लूट इस काल में पराकाष्ठा को पहुंच गये। 'लेनिन' के शब्दों में स्थिति वहां पहुंच गयी जहां कि —

“पूँजीवाद ने अब मुट्ठीभर असाधारण रूप से धनी और शक्तिशाली राज्यों को चुन लिया है जो केवल — ‘कूपन काटकर’ सारी दुनिया को लूट रहे हैं। इस प्रकार इस चरण में यद्यपि कि मालों का उत्पादन एवं निर्यात बन्द नहीं होता, लेकिन इसकी जगह वित्तीय पूँजी का निर्यात प्रमुखता प्राप्त कर लेता है। आर्थिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इजारेदारियों का नियंत्रण स्थापित होने लगता है। इसका ठोस सबूत उस समय के औद्योगिक राष्ट्रों के अर्थतन्त्र के स्वरूप में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ जर्मनी में उद्योगों में जिनमें व्यापार-यातायात भी शामिल



है, बड़े कारखानों की संख्या 1907 में कुल कारखानों की मात्र 0.91 थी, लेकिन कारखानों के काम करने वाले कुल मजदूरों का 39.4 प्रतिशत इन्हीं में कार्यरत था। कुल कारखानों द्वारा उपभोग की गई भाप की ताकत का 75.3 प्रतिशत एवं बिजली का 77.2 प्रतिशत ये ही 0.9 प्रतिशत कारखाने ही उपभोग कर रहे थे। संयुक्त राज्य अमरीका जो आज का सबसे प्रमुख औद्योगिक-वित्तीय-सामरिक महाशक्ति है, उस समय भी (1904 में) संकेन्द्रण काफी अधिक था। उस समय 10 लाख डालर या सबसे अधिक पैदावार करने वाले कारखानों की संख्या कुल कारखानों की 0.91 थी। लेकिन कारखानों में काम करने वाले कुल मजदूरों का 25.6 प्रतिशत इन्हीं में काम करता था और कारखानों में तैयार कुल माल का 38 प्रतिशत (मूल्याधार पर) ये ही 0.9 प्रतिशत कारखाने ही तैयार करते थे। 5 साल के भीतर यह संकेन्द्रण और बढ़ गया। 1909 में बड़े कारखानों की संख्या कुल कारखानों की 1.1 प्रतिशत ही थी। पर 30.5 प्रतिशत मजदूर इन्हीं में कार्यरत थे और 43.8 प्रतिशत तक उत्पादन इन्हीं से किया जा रहा था। इस प्रकार 1860-70 ई. की खुली प्रतियोगिता से खड़ी होने वाली इजारेदारियों, कार्टेल, सिण्डीकेट, 1900-03 ई. तक आते-आते समूचे आर्थिक जीवन के आधार बन गये जहां पहुंचकर ये कार्टेल और ट्रस्ट अब उद्योग की किसी शाखा की कुल पैदावार के 10 में से 8 से भी अधिक हिस्से पर नियंत्रण कायम करने में सफल हो चले। बैंकों का भी इसी समय अभूतपूर्व विकास हुआ।

परिणामस्वरूप इस दौर में आकर के औद्योगिक पूँजी एवं बैंक पूँजी मिलकर एक होने की प्रक्रिया में 'वित्तीय पूँजी' का रूप धारण करने लगी। यह काम विशेषकर के 1897 ई. के बाद से खास करके 1900 ई. के आर्थिक संकट के बाद से विशेष तीव्रता से घटित हुआ। जहां पहुंच करके 'लेनिन' के अनुसार 'इजारेदारियों' का राज कायम हो गया जिनकी सबसे प्रमुख विशेषता "पूँजी" का निर्यात हो जाती है। 1890 ई. के लगभग ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी से केवल 3 यूरोपीय ताकतों ने ही अमरीका, यूरोप, एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में 140 अरब मार्क से ज्यादा की पूँजी लगाई हुई थी। वित्तीय पूँजी के इस निर्यात से वैश्वीकरण की प्रक्रिया में भी अभूतपूर्व तेजी आ जाती है। क्योंकि, "पूँजी का निर्यात उन देशों में जहां वह भेजी जाती है पूँजीवाद के विकास पर प्रभाव डालता है और उसकी रफ्तार को बहुत तेज कर देता है।" दुनिया का अपने लाभ के क्षेत्रों में बंटवारा और तदनु रूप उपनिवेशन इसका एक और प्रमुख लक्षण है। इसके कारण—“अब यह नहीं हो सकता कि कोई ऐसा इलाका जिसका कोई मालिक न हो किसी “मालिक” के कब्जे में आ जाय बल्कि अब तो केवल यह हो सकता है कि इलाके एक “मालिक” के हाथ से दूसरे मालिक के हाथ में चले जाय।”

इलाकों की छीना-झपटी और उसका औपनिवेशीकरण इस चरण में कितना तेज था इसका ठोस उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका समेत पश्चिम यूरोपीय औपनिवेशिक ताकतों के आधिपत्य में आये इलाकों की संवृद्धि में देखा जा सकता है। 1876 ई. की तुलना में 1900 ई. में अफ्रीका में इनके सम्मिलित कब्जे में 79.6 प्रतिशत, पोलेनेशिया में 42.1 प्रतिशत और एशिया में 5.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई। (एशिया और आस्ट्रेलिया 1876 ई. तक लगभग पूरी तरह उपनिवेश बनाये जा चुके थे)

विष्व की ऐसी ही परिस्थिति में अक्टूबर 1917 ई. में रूस में सोवियत समाजवादी क्रान्ति सफल हो गयी जिसके परिणामस्वरूप एक बहुत बड़ा भाग 'विश्व-पूँजी' के आधिपत्य से मुक्त एवं बाहर आ गया। नये समाजवादी सोवियत रूस की देखा-देखी और समर्थन एवं सहयोग से पूर्वी यूरोप के कई एक देशों में भी क्रान्तियां हो गयीं और उन्होंने भी 'समाजवाद' को अपना लक्ष्य घोषित किया। इन सबसे अब तक निर्विरोध चले आ रहे पूँजीवादी वैश्वीकरण की प्रवृत्ति-प्रकृति एवं प्रसार में तीव्र व्याघात उपस्थित हो गया। अब केवल पूँजीवादी वैश्वीकरण के दिशा-निर्देशन में होने वाला वैश्विक आर्थिक एकीकरण ही प्रमुख वैश्विक परिघटना नहीं रहा, अपितु इसके ठीक विपरीत सोवियत रूस और उनके साथी पूर्वी यूरोप के देश एवं इनके संगठन 'वार्सा' एवं 'कामेकान' के नेतृत्व में एक अलग तरह का वैश्वीकरण होना शुरू हो उठा जिसे 'केन्द्रीय नियंत्रित-नियोजित-समाजवादी' वैश्वीकरण के रूप में जाना जाता है। 1984-90 में बचे-खुचे समाजवाद के उखड़ जाने तक कमोबेश इस वैश्वीकरण की परिघटना भी पूँजीवादी वैश्वीकरण के साथ-साथ चलती रही है।

इस दौर में जहां एक ओर 'समाजवादी केन्द्रीय नियोजित' वैश्वीकरण के अपने पक्ष में दुनिया के देशों में समर्थन हासिल किया और खोया भी वहीं दूसरी ओर इसी दौर में 'पूँजीवादी वैश्वीकरण' पर नियंत्रण, प्रभुत्व एवं वर्चस्व को लेकर पूँजीवादी शक्तियों के बीच उत्पन्न असमाधेय अन्तर्विरोध के कारण इनमें द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-45) भी लड़ा

गया, जबकि अभी 1914-18 के दौरान ही ऐसे अन्तर्विरोधों के कारण ये शक्तियां दुनिया को प्रथम महायुद्ध की विभीषिका में बखूबी मौका चुकी थीं और उसमें बहे खून व बर्बादी की व्यापकता एवं भीषणता के पश्चाताप बोध से पुनः वैसा न करने की 'लीग आफ नेशन्स' जैसे अन्तर्राष्ट्रीय समझौते साकार करके शपथें भी खायी हुई थी।

दुनिया को विनाश की ओर ले जाने वाले दूसरे विश्वयुद्ध के आगे-पीछे की विश्व परिस्थिति में कई एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिन्होंने वैश्वीकरण की परिघटना को नया आयाम देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

**(स) 1945-1980 ई. तक का काल :** विश्व के बंटवारे और पुनर्बंटवारे को लेकर चले द्वितीय विश्व युद्ध (1945-48 ई.) ने विश्व के राजनीतिक-आर्थिक फलक पर कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। एक तो इसमें धुरी राष्ट्र-जर्मनी, जापान और इटली बुरी तरह पराजित एवं बर्बाद हो गये साथ ही ब्रिटेन, फ्रांस आदि अन्य यूरोपीय ताकतें जीत के बावजूद लहलुहान हो उठीं और विश्व प्रभुत्व की उनकी दावेदारी कमजोर पड़ गयी। अपने अब तक के उपनिर्देशों पर पूर्ववत् प्रभुत्व एवं वर्चस्व बनाये रखना इनके लिए भारी मुश्किल का काम हो गया। जहाँ अन शक्तियों की यह हातल थी कि वही दूसरी ओर संयुक्त राज्य अमेरिका इस महायुद्ध में पूँजीवादी दुनिया का एकमात्र स्वीकृत अगुवा एवं सर्वश्रेष्ठ नेता बन गया। मई 1945 ई० में जर्मनी और सितम्बर 1945 में जापान के पराजित हो जाने पर जैसे मित्र राष्ट्रों की अगुवाई करने वाले अमेरिका को अपने गठबंधन की जीत एवं धुरी राष्ट्रों की सुनिश्चित पराजय। हार का ठोस आभास हुआ अमेरिका की चिन्ता विश्व व्यवस्था के निमंत्रण एवं दिशा निर्देशन तथा उस पर वर्चस्व को लेकर के कफी तीरवी हो गयी। जिसे सोवियत खेमे के विरोध विश्व की अगुवाई एवं निमंत्रण के उसके इरादे से उपजी चिन्ता ने उसे और भी उग्र बना दिया।

इन समस्याओं के वैश्विक स्तर पर समाधान एवं निपटारे के लक्ष्य से अमेरिका ने 40 यूरोपीय ताकतों कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं जापान आसदि की साझेदारी में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय समझौते किये और संघ बनाये। 'विश्व बैंक', अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, गाट, फाओवाद तेजी से घटित हुए जिनसे वैश्वीकरण की तीसरे चरण की लाक्षणिकाओं की जगह अन्य नयी विशेषतायें वैश्विक फलक पर प्रभावशाली बन गईं और जिनके परिणामस्वरूप 'विचारधारा के अन्त', 'इतिहास के अन्त' जैसी घोषणाओं को बल मिला और 'उत्तर आधुनिकतावाद' की प्रासंगिकता खड़ी हो चली, फलस्वरूप वैश्वीकरण भी एक नये दौर में प्रविष्ट हो गया।

**(द) 1980 से आज तक का काल (उत्तर आधुनिक काल) :** वैश्वीकरण की परिघटना का यह सबसे महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी काल कहा जा सकता है क्योंकि इस चरण में आकर समूचा विश्व वास्तव में 'वैश्विक गाँव' बन सका है और इसके साथ ही आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामरिक दृष्टि से एकीकृत एवं सघन रूप से अन्तर्ग्रथित होने की ओर कारगर रूप से अग्रसर है। यह अन्तर्सम्बद्धता इतीनी तेज, निर्वाध, एवं प्रभावशाली है कि माल, मुद्रा, वित्त विचार एवं मनुष्यों के ब्राह की दृष्टि से राष्ट्र, राज्यों एवं देशों की सीमायें कृत्रिम एवं प्राकृतिक दोनों ही सारहीन सी हो चली हैं। सूचना क्रान्ति में आये तीव्र विकास से उद्भूत त्वरित संचार के अनुरूप ही पूँजी, मुद्रा, वित्त का प्रवाह भी अति सत्वर एवं सर्वव्यापी रूप धारण कर चुका है। राष्ट्र, राज्य की विधायी शक्तियाँ इसकी शक्ति और गतिशीलता के आगे निहायत ही दुर्बल, कमजोर एवं असहाय साबित होती जा रही है। यह कमजोरों, साधनहीनों, वंचितों, मेहनतकशों के खिलाफ शक्तिशाली एवं साधन-अधिकर सम्पन्नों का एक विश्वव्यापी नये तरह का पूँजीवादी वैश्वीकरण है, जो अपने प्रवाह के अभिमूल प्रत्यक्ष/परोक्ष सारी बाधाओं, अवरोधों को बहा ले जाना चाहता है, विनष्ट कर डालता है।

#### संदर्भ-ग्रन्थ

1. AMIYA KUMAR BAGCHI: Globalization, Liberalization and Vulnerability; India and Third World Countries. EPW 6 Nov. 1999
2. BOSERUP E. (1965): The Condition of Agricultural Growth; The Economics of Agricultural Change Under Population Pressure, London.
3. DEBASHISH BHATTACHARJEE : Globalising Economy, Localising Labour. EPW 14 Oct., 2000, P. 3763
4. इण्डिया टुडे : नयी आर्थिक नीतियाँ और मानव तस्करी में वृद्धि, 13 अक्टूबर, 2003
5. जितेन्द्र कुमार : विश्व व्यापार संगठन के दस साल 'फिलहाल' 01-03 मार्च, 2005

\*\*\*\*\*

## भारत नेपाल सीमावर्ती क्षेत्र में सामाजिक सांस्कृतिक परिदृश्य का एक भौगोलिक अध्ययन ( राप्ती-गण्डक )

डॉ. घनश्याम दुबे\*

**प्रस्तावना :** यह प्रक्षेत्र विश्व धरातल पर अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अनूठा है, जहाँ प्रतिपल दो पावन सलिला नदियाँ अपनी शीतलता प्रवाहित करती रहती है। क्षेत्र विशेष के सामाजिक, सांस्कृतिक परिदृश्य पर उस क्षेत्र में होने वाले कालिक परिवर्तन का विशेष प्रभाव होता है। देश के सीमावर्ती क्षेत्रों में यह कालिक परिवर्तन विभिन्न कारणों से तीव्र गति से होता है। यह सामाजिक परिवर्तन प्राकृतिक प्रक्रिया के विपरीत होता है तथा क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक ढांचे को ध्वस्त करते हुए नये रूप में सकारात्मक और नकारात्मक परिवर्तन से क्षेत्र विशेष की जनसंख्या तीव्र गति से प्रभावित होती है तथा क्षेत्र विशेष का आधारभूत ढांचा टूटने से अध्ययन क्षेत्र में सामाजिक व आर्थिक रूप से शीघ्रता से परिवर्तन देखने को मिलता है, जिसके कारण नकारात्मक शक्तियाँ प्रभावी होने लगी हैं। उपरोक्त सैद्धान्तिक तथ्यों के आलोक में भारत नेपाल बार्डर (राप्ती-गण्डक दोआब) का अध्ययन करने से यह पुष्ट होता है कि इसका प्रभाव नेपाल की राजनीति पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से पड़ता है। नेपाल में राजशाही समाप्त होने के बाद संवैधानिक तौर पर नेपाल 2008 में एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित हुआ। इस तरह वर्तमान समय में भारत और नेपाल दोनों देशों में लोकतंत्र है। भारत की राजनैतिक स्थिति का प्रभाव नेपाल के शासन-प्रशासन पर पड़ता है। नेपाल में वामपंथी आन्दोलन एवं राजनैतिक परिवर्तन के पीछे कहीं न कहीं भारत विरोधी शक्तियाँ भी सक्रिय रहीं। वर्तमान समय में नेपाल भारत विरोधी शक्तियों का केन्द्र बना हुआ है। नकली मुद्रा के माध्यम से बाजार में मंदी पैदा करना, जिससे भारतीय उद्योग जगत मृतप्राय हो जाय, बेरोजगारी को बढ़ावा मिले। भारत विरोधी शक्तियाँ भारत-नेपाल शासन-प्रशासन में घुसपैठ कर देश विरोधी गतिविधियों को खुली सीमा होने के कारण संचालित करती हैं, जिसका प्रभाव भारत-नेपाल के राजनीतिक सम्बन्धों पर भी पड़ता है। इसका मूल कारण अशिक्षा, बेरोजगारी, गरीबी, नैतिकता का अभाव व राष्ट्रीय भावना की कमी है।

**अध्ययन क्षेत्र :** भारत के उत्तर में खड़े नागराज हिमालय की तराई में पड़ने वाला यह अध्ययन क्षेत्र राप्ती-गण्डक नदियों के मध्य स्थित है, वहीं दो देश, भारत-नेपाल की सीमा रेखा को स्पर्श करते हैं, जिसकी अवस्थिति इस प्रकार है 26°5' उत्तरी अक्षांश से 28°30' उत्तरी अक्षांश तथा 81°57' देशांतर से 84°29' पूर्वी देशांतर तक है।

अध्ययन क्षेत्र की जलवायु सब मिलाकर मानसूनी है, परन्तु तराई में उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु है, जिसमें विभिन्न मौसमों में अपनी विशेषताओं के अनुरूप विभिन्न प्रकार की विशमताएँ एवं अनिश्चितताएँ प्राप्त होती हैं, फिर भी प्रमुख रूप से ग्रीष्म, वर्षा, शीत ऋतु का प्रभाव अपने चक्रीय रूप में रहता है। इस इलाके का तापमान जून में 33.0 के पार चला जाता है। कभी-कभी आग बरसने लगती है। जुलाई अगस्त में वर्षा से तापमान में गिरावट शुरू हो जाती है। दिसम्बर का तापमान 12.0 से 15.0 रेंज में रहता है। 90% वर्षा मानसूनी हवाओं से होती है। वायुदाब और आर्द्रता अपने पूर्ण नैसर्गिक रूप में पायी जाती है। उच्चावच, भावर एवं तराई प्रदेश के रूप में है। शिवालिक श्रेणी, मैदान का संगम स्थल है। अध्ययन क्षेत्र का निर्माण चतुर्थ कल्प में हुआ है, जहाँ तराई, बांगर, खादर है, जिसकी भौमिकी संरचना शिवालिक निक्षेप और जलोढ़ की गहराइयों में स्थित है।

वनस्पतियों में कन्द-मूल, काष्ठ, औषधि की वनस्पतियाँ पायी जाती हैं, साथ ही सम्पूर्ण क्षेत्र में पतझड़ की वनस्पतियों की अधिकता है।

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, डी.सी.एस.के. पी.जी. कॉलेज, मऊ

**प्रशासनिक इकाइयाँ (1993)**  
**जनपद प्रशासनिक इकाइयों की सारणी**

क्रमांक	जनपद	तहसील	विकास खण्ड	न्याय पंचायत	ग्रामसभा
1	बहराइच	4	19	190	1449
2	श्रावस्ती	3	5	—	400
3	बलरामपुर	3	9	101	801
4	सिद्धार्थनगर	4	14	159	1540
5	महाराजगंज	4	12	102	2166
6	कुशीनगर	6	14	140	944
7	देवरिया	6	29	317	2654
8	गोरखपुर	6	9	191	1718

**स्रोत : पत्रिका फैजाद एवं गोरखपुर मण्डल सन् 1993 से।**

सम्पूर्ण परिक्षेत्र में उत्तर प्रदेश के कुल आठ जनपद क्रमशः बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, सिद्धार्थनगर, महाराजगंज, कुशीनगर, देवरिया, गोरखपुर के रूप में समाहित हैं।

क्रमांक	जनपद	जनसंख्या	लिंगानुपात	साक्षरता	जनसंख्या घनत्व
1	सिद्धार्थनगर	2559297	976	59.25	884
2	महाराजगंज	2684703	943	62.67	909
3	देवरिया	3100946	1017	71.13	1221
4	बहराइच	3487731	892	49.36	666
5	कुशीनगर	3564544	961	65.25	1227
6	श्रावस्ती नगर	1117361	881	46.74	681
7	गोरखपुर	4440895	950	70.83	1337
8	बलरामपुर	2148665	928	49.51	642

इन आठ जनपदों में कुल 2 करोड़ 41 लाख 4 हजार 1 सौ बयालिस जनसंख्या निवास करती है। उपरोक्त चार्ट से अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या, लिंगानुपात, साक्षरता, जनसंख्या घनत्व की स्थिति का पता चलता है।

**अध्ययन का उद्देश्य :** 1. सामाजिक बदलाव का अध्ययन।, 2. सांस्कृतिक परिवर्तन का अध्ययन।  
3. भारत नेपाल सम्बन्धों का अध्ययन।

**विधितंत्र :** प्रस्तुत अध्ययन में आलोचनात्मक, विश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक, वर्णात्मक विधितंत्र का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र की प्रस्तुति के लिए प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण कर, तथ्यों का विवेचन के बाद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

**विश्लेषण : सामाजिक बदलाव का अध्ययन।**

**इतिहास एवं रीति रिवाज :** भारत और नेपाल दो ऐसे पड़ोसी राष्ट्र हैं, जो भौगोलिक दशाओं के साथ एक दूसरे की सभ्यता और संस्कृति को भी आत्मसात् करते आये हैं। भारत-नेपाल सम्बन्ध अनादि काल से हैं। दोनों देश अपने-अपने यहाँ सभी धर्मों को समानता प्रदान किये हुए हैं, जहाँ भारत का नाम लेते ही एक तेजवी मनमोहक, उदात्त, सौम्य छवि उभरती है, वहीं नेपाल हिमालय की गोद में सुरम्य देश सर्वदा स्वतंत्र रहा है। अपने वीर पराक्रमी निवासियों के लिए विश्व विश्रुत है। कुछ दिनों पहले यहाँ राजशाही थी, अब प्रजातंत्र है। आधुनिक भारत-नेपाल सम्बन्धों का श्रीगणेश 31 जुलाई 1950 की संधि से हुआ है। नेपाल के दक्षिणी भाग को **मधेस** के नाम से जानते हैं और इस क्षेत्र में निवास करने वाले नागरिकों को **मधेशी** कहते हैं। इस क्षेत्र की भूमि तर होती है, इसलिए इसे तराई कहते हैं। **मधेश** शब्द मध्य देश का अपभ्रंश है। इधर भारत में थारु प्रमुख जनजाति जिसका उल्लेख अथर्ववेद में भी है। पहले इनका नाम अथरु था, जो बाद में थारु हो गया। कुछ विद्वान तराई क्षेत्र में ठहरने के कारण इनको थारु कहते हैं। प्रमुख भूगोलवेत्ता **नोल्स** के अनुसार थारु शब्द की उत्पत्ति थरना से हुई है। कुछ विद्वान इनकी उत्पत्ति थार (राजस्थान) के राजपूत राजाओं की सन्तान से मानते हैं। यह समाज स्त्री प्रधान है।

इनके यहाँ विवाह युवावस्था में हो जाता है। इनमें पत्नी विनिमय, तलाक, विधवा विवाह, अपहरण प्रथा से शादी करने की परम्परा है।

#### सीमावर्ती गतिविधियाँ

**1. धार्मिक स्वरूप व शैक्षिक संस्थाएँ :** अध्ययन क्षेत्र में आने वाले 8 जनपदों के भू-भाग पर हिन्दुओं के 316 मन्दिर तथा उनके शैक्षिक संस्थाओं की संख्या 135 है। मुस्लिम समाज की 194 मस्जिद एवं 262 मदरसे हैं। सिखों की संख्या कम होने से यहाँ गुरुद्वारा सीमित हैं, इनकी कोई शैक्षिक संस्था नहीं है। इसी तरह इसाई धर्म के प्रतीक 11 चर्च व 6 शैक्षिक संस्थाएँ हैं।

क्रमांक	जनपद	मन्दिर	शिशु मन्दिर	मस्जिद	मदरसा	गुरुद्वारा	चर्च	चर्च स्कूल
1	बहराइच	11	—	11	6	—	—	—
2	श्रावस्ती	21	17	24	32	1	—	—
3	बलरामपुर	42	26	23	41	3	1	1
4	सिद्धार्थनगर	34	23	47	71	2	1	1
5	महराजगंज	89	32	38	61	5	2	1
6	कुशीनगर	8	—	6	9	—	1	—
7	देवरिया	38	16	21	23	2	2	1
8	गोरखपुर	73	21	19	19	4	4	2

स्वयं संकलित आंकड़े से प्राप्त।

**सामाजिक सम्बन्ध :** अरस्तु कहते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वहीं रूटर कहते हैं एक समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध पाये जाते हैं। भारत-नेपाल के बीच रोटी और बेटी का सम्बन्ध है। भगवान राम का जन्म भारत अयोध्या में हुआ, तो सीता जी का जन्म स्थान मिथिला जनकपुर नेपाल में है। महात्मा बुद्ध का जन्म स्थान नेपाल के लुम्बिनी, तो निर्वाण भारत के कुशीनगर जनपद में हुआ। एक अनुमान के अनुसार 30 लाख नेपाली रोजी-रोटी भारत में कमा रहे हैं, वहीं 10000 भारतीय नेपाल में हैं। हिन्दी दोनों देशों में प्रमुखता से बोली जाती है। अध्ययन क्षेत्र में इण्डे आर्य निवासियों का एक रक्त समूह व परम्पराएँ अधिक हैं, जिसमें ब्राह्मण, राजपूत व अन्य पेशेवर जातियों में थारू, धावर, मांझी, दराई, राजवंशी वेदों, धीमर, सतवार, मुसलमान में भी खान, पठान, शेख, मिल्की, अंसारी के रूप में जातीय संरचना पायी जाती है। तिब्बती, वर्मी रक्त के मिश्रित समूह में नेवार किरिन्त (राय और लिम्बू) तमांग, नागर, गुरुंग, थाकली, पंगरुले, ओचेपांग इस तरह हम सामाजिक संरचना में एक हैं। इसलिए हमारे सम्बन्ध मजबूत हैं। जजमानी प्रथा का अस्तित्व आज भी आंशिक रूप में बचा हुआ है। दोनों ओर वैवाहिक सम्बन्ध होने, शारीरिक बनावट में भी अन्तर आने लगा है।

### परिवर्तन

1. परम्पराएँ टूट रही हैं।
2. जजमानी प्रथा का अंत हो रहा है।
3. जागरूकता बढ़ी है।
4. आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ा है।
5. शिक्षा के प्रति चेतना जगी है।
6. विकास और प्रगति में तीव्रता आयी है।
7. जातीय विद्वेष बढ़े हैं।
8. धार्मिक विद्वेष बढ़े हैं।
9. सामाजिक विद्वेष बढ़े हैं।

### सांस्कृतिक परिवर्तन

**संस्कृति :** एडवर्ड महोदय के अनुसार वैचारिक गुणों की सम्पूर्णता जिसमें कला, ज्ञान, नीति, कानून, परंपराएँ, विश्वास, रीति-रिवाज, आदत सभी समाज में संस्कृति के अंग हैं। इस तरह सांस्कृतिक उद्भव संस्कार से माना जाता है और संस्कार मानव समूह की कार्यशैली के समन्वय की उपज है। सांस्कृतिक परम्परा में दोनों देशों का अतीत एक है। किसी देश के विकास में सांस्कृतिक संबंधों की भूमिका अहम होती है। यह सर्व विदित है कि रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल एवं पर्व-त्योहार में काफी समानता है। मिथिला साहित्य, चित्रकला, विद्यापति के गीत, महासप्तमी के मौके पर शोभा-यात्रा नेपाल में निकाली जाती है। माँ भगवती को डोली में बिठाकर नगर भ्रमण कराया जाता है। इधर भारतीय क्षेत्र में भी साल में दो बार शारदीय और बसंत नवरात्रि में दुर्गा के नौ रूपों की आराधना की जाती है। सांस्कृतिक गतिविधियों में विजयदशमी में राम की लीलाओं का मंचन किया जाता है। समाज में मनोरंजन के लिए जातीय आधार पर नृत्य हैं, फरुआही, कहरवा, लोरीकायन, चनैनी, बिरहा (यादव), इन्द्रासनी नृत्य (चमरुवाँ नाच), नौटंकी, धोबिया नृत्य, बनदेवी की पूजा, वैवाहिक सम्बन्ध में चढ़ शादी वह रस्म है, जिसमें लड़का बारात लेकर लड़की के घर जाता है। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। दूसरी प्रथा डोला है, जिसमें कन्या पक्ष के लोग वरपक्ष के यहाँ जाकर शादी की रस्म पूरी करते हैं। यह प्रथा अब समाप्त हो चुकी है। कुर्ता, पाजामा, अचकन, पगड़ी, धोती, तहबन, लंगोट, सूट, सलवार, साड़ी, बुर्का, परदा, भगही प्रमुख पहनावे हैं। हिमालय की तलहटी के कारण इस क्षेत्र में पानी के अन्दर फलोराइड की मात्रा अधिक है, जिसके कारण यहाँ पानी पीला पड़ जाता है, इसीलिए इस इलाके के लोग मशाले का अधिक प्रयोग भोजन में करते हैं। प्रमुख रूप से यहाँ के निवासी मांसाहारी और शिकारी प्रवृत्ति के होते हैं। यहाँ की मुख्य फसल चावल व गन्ना है।

भारत सरकार लोगों से लोगों को प्रोत्साहित करती है। सांस्कृतिक सम्बन्धों की मजबूती के लिए सेमीनारों का आयोजन करती है।

भारत सरकार सांस्कृतिक सम्बन्धों को सम्बल प्रदान करने के लिए श्री सिस्टर सिटी पर हस्ताक्षर किया है, जो निम्नवत् है :-

- |             |            |
|-------------|------------|
| 1. काठमांडू | 4. वाराणसी |
| 2. लुम्बिनी | 5. बोधगया  |
| 6. जनकपुर   | 7. अयोध्या |

#### परिवर्तन

1. वैश्वीकरण के प्रभाव में पुरातन संस्कृति में परिवर्तन हुआ है।
2. जीवन शैली में बदलाव हुआ है।
3. नवाचार का प्रभाव पड़ा है।
4. आधुनिक खोजें।
5. तकनीक का प्रभाव।
6. रूढ़ियाँ समाप्त हो रही हैं।
7. प्रथाएँ समाप्त हो रही हैं।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि मनुष्य ही समस्या है और मनुष्य ही समाधान है। कुछ अराजक तत्व भारत नेपाल रिश्तों में कड़वाहट लाने के लिए समय-समय पर भारत विरोधी गतिविधियों को हवा देते हैं। इसमें आई0एस0आई0 धर्म विशेष के लोगों का इस्तेमाल अपने मिशन को अंजाम तक पहुँचाने के लिए अहिंसा करती रहती हैं। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये सीमा पार नेपाल में वहाँ के मुस्लिमों ने बागडोर संभाल रखा है। भारत-नेपाल बार्डर पर अब्दुल रज्जाक ने तरुणदल के साथ मिलकर इस विरोध का नेतृत्व किया। भारतीय रिश्तों की तासीर को समझते हुए, नेपाली सशस्त्रबल ने बल प्रयोग कर स्थिति को संभाला और भारत-नेपाल सम्बन्धों में किसी प्रकार की कड़वाहट आने से बचाव किया। इस तरह सीमावर्ती क्षेत्र में अराजकता फैलाने का यह कुत्सित प्रयास था, उसका दमन हुआ। पाकिस्तान की खुफियाँ एजेन्सी आई0एस0आई0 वर्तमान समय में एन0आर0सी0, सी0ए0ए0 और एन0पी0आर0 पर जनभावनाओं को भड़काकर वर्ग विशेष को उन्मादी बना रही है। इस प्रकरण पर देश को संवेदनशीलता के साथ सतर्क रहने की जरूरत है, साथ ही विधिसम्मत न्यायोचित कार्यवाही इन्सानियत के दायरे में रहकर करने की समय की माँग है।

**भारत-नेपाल सम्बन्ध :** 31 जुलाई 1950 की संधि के अनुसार नेपाली नागरिक भारतीय नागरिकों के समान अवसरों का लाभ उठा सकते हैं। भारत की मान्यता है कि नेपाल का मित्र भारत का मित्र, नेपाल का शत्रु भारत का शत्रु होगा। इस संधि के अनुसार अनुच्छेद-2, 5, 6, 7 में शान्ति और मित्रता पर जोर दिया गया है। भारत-नेपाल सम्बन्धों की पृष्ठभूमि उच्चस्तरीय आदान-प्रदान जिसमें सार्क और विमसटेक आदि संगठनों तथा द्विपक्षीय संस्थागत वार्ता तंत्र पर आधारित है। भारत निम्न बिन्दुओं पर रागात्मक संवेदनायुक्त सहयोग बनाए हुए हैं।

**मानवीय सहायता :** भारत, नेपाल में भूकंप पुनर्निर्माण की परियोजनाओं के लिए राष्ट्रीय आपदा मोचन बल (एन0डी0आर0एफ0) टीम का गठन कर, मदद के लिए राहत सामग्री 750 मिलियन अमेरिकी डालर भेजना, लाइन ऑफ क्रेडिट समझौते पर हस्ताक्षर इसके प्रमाण हैं।

**आर्थिक :** 1996 के बाद नेपाल से भारत को निर्यात में 11 गुना वृद्धि हुई तथा द्विपक्षीय व्यापार 7 गुना बढ़ा है। नेपाल में 150 भारतीय उपक्रम हैं।

**जल संसाधन :** नेपाल में जल-विद्युत परियोजनाओं में 700 मेगावॉट स्थापित हैं, जबकि क्षमता 80000 मेगावॉट की है। भारत की मंशा इसके विस्तार की है। इलेक्ट्रानिक पॉवर ट्रेड, ट्रांसमिशन इण्टर कनेक्शन एवं ग्रिड कनेक्टिविटी पर 2014 में हस्ताक्षर।

**रक्षा सहयोग :** भारत रक्षा उपकरणों, प्रशिक्षण, आपदा प्रबन्धन क्षेत्र में सहयोग, साथ ही नेपाली सेना के आधुनिकीकरण में मदद की है। इसके अतिरिक्त भारतीय सेना में गोरखा सिपाहियों की बड़े पैमाने पर भर्ती होना तथा दोनों सेनाएँ एक दूसरे के सेना प्रमुखों को जनरल की मानद रैंक प्रदान करती है।

**शिक्षा :** भारत सरकार नेपाली नागरिकों को प्रत्येक वर्ष 3000 छात्रवृत्ति देती है।



**सकारात्मक प्रभाव :** फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ देहरादून ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद, भारतीय नीति अनुसंधान प्रतिष्ठान नेपाल के संयुक्त तत्वाधान में एक संगोष्ठी की जिसमें कहा कि हमारे सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन हैं। भूगोल इतिहास की अनिवार्यता के परिणामस्वरूप दोनों पड़ोसियों की नियति का अन्तर्गुप्त इतना अन्तर्निहित है कि चाहकर भी एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते। नेपाल का दो तिहाई व्यापार भारत से है। बैंकिंग, बीमा, शिक्षा, दूरसंचार, ऊर्जा, परिवहन, पर्यटन, राजमार्ग, पुल, ऑप्टिकल फाइबर, लिंकों मेडिकल कालेज, ट्रामासेंटर, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में भारत के सहयोग से निर्माण हो रहा है।

**वर्तमान परिदृश्य :** भारत-नेपाल सम्बन्धों की पुनर्स्थापना के प्रयास के बावजूद चिंता का कारण विम्वेक की बैठक में दिख गया। इसकी बानगी भारत-नेपाल संयुक्त सैन्य अभ्यास में नेपाल के इनकार से सतह पर आ गया। नेपाल की चिंता का कारण भारत की 2015 की आर्थिक नाकेबन्दी।

इधर भारतीय पक्ष का कहना है कि नेपाल को हर सम्भव मदद किया है। भूकंप में सहयोग हो या सूर्य किरण के माध्यम से सेना की मजबूती हो, नेपाल में द्वाचागत सुधार, सड़क, रेल, बिजली, शिक्षा, स्वास्थ्य भारत हमेशा बड़े भाई की भूमिका में रहा है।

सत्ता परिवर्तन के साथ नेपाल की अपेक्षाएँ इधर सुरसा के मुँह की तरह अन्नत विस्तार को प्राप्त है। उसका चीन की तरफ झुकाव भारत के लिए चिन्ता का विषय है। अब वह पहले वाला नेपाल नहीं रह गया है। वह मोल-तोल पर उतर आया है, जबकि नेपाल की धरातलीय बनावट ऐसी है कि वह चाहकर भी चीन से लम्बे समय तक प्रेम की पेंगें नहीं बढ़ा सकता है। भारत-नेपाल एक चिर स्थाई दोस्त हैं।

**चुनौतियाँ :** भारत का मानना है कि नये नेपाली विधान ने तराई के लोगों की समस्याओं का समुचित समाधान नहीं किया। भारत दबाव बनाने के लिए आपूर्तियों को बाधित किया। मधेशियों द्वारा उत्पन्न अवरोधों का समर्थन किया, जिससे नेपाली समाज में भारत के प्रति संदेह और गहरा हो गया।

नेपाल 31 जुलाई 1950 की संधि में संशोधन चाहता है। यह संधि भारत के परामर्श के बिना किसी तीसरे देश के साथ सुरक्षा सम्बन्ध स्थापित करने तथा हथियार खरीदने से नेपाल को निषिद्ध करती है। अब यह बात नेपालियों को रास नहीं आती है।

नेपाल में चीन की परियोजनाओं का समय से पूरा होना, भारतीय परियोजनाओं में देरी उनके अविश्वास को और गहरा करती है कि भारत हमारे विकास में दिलचस्पी नहीं ले रहा है।

**सुझाव :** अध्ययन क्षेत्र में समग्रता से विश्लेषण करने के बाद निम्नलिखित बातें भारत को भविष्य में अपनी योजना में शामिल करने का प्रयास करना चाहिए :-

1. शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाई जाय।
2. नैतिक शिक्षा को बढ़ावा दिया जाय।
3. राष्ट्रीय भावना के विकास पर जोर दिया जाय।
4. राष्ट्र विरोधी तत्वों से सख्ती से निपटा जाय।
5. नेपाल पड़ोसी और मित्र है, इसलिए इसकी हर सम्भव सहयोग और मदद की जाय।

**निष्कर्ष :** नेवर हुड फास्ट पॉलिसी के रूप में गुजराल सिद्धान्त का पालन करते हुए भारत को पड़ोसी देश की लोकप्रिय आकांक्षाओं के प्रति संवेदनशीलता के साथ सजग रहना चाहिए।

#### सन्दर्भ-सूची

1. डॉ० वी०पी० राव, डॉ० नरेन्द्र शर्मा, विश्व का क्षेत्रीय भूगोल, पेज-125
  2. डॉ० मो० हारून, मानव भूगोल, पेज नं० 161 से 164 तक
  3. डॉ० रामप्रकाश शर्मा, मिथिला का इतिहास
  4. डॉ० बालचन्द्र शर्मा, नेपाल।
  5. ई० पत्रिका इण्डिया, राइटर्स नेटवर्क इण्डिया स्टोरी, द हिन्दू में लेख
- स्रोत - 2011 की जनगणना के आंकड़े से।

\*\*\*\*\*

## तहसील जखनियाँ जनपद गाजीपुर में सामाजिक आर्थिक क्रिया-कलापों के भूवैज्ञानिक संगठन में सेवा केन्द्रों का योगदान एवं प्रतीक अध्ययन

डॉ. हंसराज यादव\*

**सेवा केन्द्रों का निर्धारण**—किसी क्षेत्र में सेवा केन्द्र वह अधिवास होता है जो अपने चतुर्दिक विस्तृत क्षेत्र में उपभेक्ता को सेवाएँ प्रदान करने तथा उत्पादक वितरण को अपनी ओर आकृष्ट करने में सचेष्ट रहता है (जेफरसन 1931, पृ0सं0 453)<sup>1</sup>। इस प्रकार सेवा केन्द्र का तात्पर्य ऐसे केन्द्र से है जो अपने जो अपने अनेक कार्यों द्वारा एक सीमित क्षेत्र को सेवाएँ प्रदान करता है। अध्ययन के क्षेत्र में केन्द्रों का निर्धारण, एव पारस्परिक सम्बन्ध तथा महत्व के आधार पर किया गया है। ग्रामीण अधिवास केन्द्र अपने समीपवर्ती गावों की सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु कुछ निश्चित कार्य सम्पन्न करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न स्तर के कार्यों के वितरण में प्राप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। अतः विभिन्न कार्य हेतु समान अंक निर्धारित किया जा सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण सेवा केन्द्रों की केन्द्रीयता के स्तर का निर्धारण क्षेत्र के विद्यमान 19 कार्यों जो 6 समूहों में बाटे गये हैं के आधार पर किया गया है जो (तालिका संख्या 1) से स्पष्ट है।

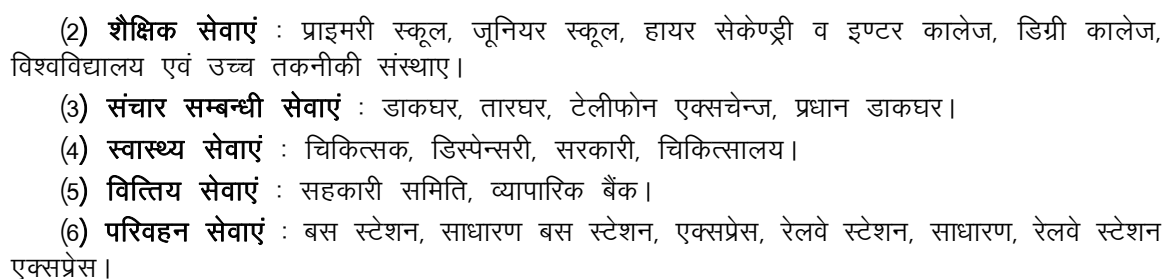
सेवा केन्द्रों के निर्धारण हेतु क्षेत्र के व्यक्तिगत सर्वेक्षण के आधार पर प्राप्त आँकड़े एवं जनसंख्या (2001) के आकड़े प्रयोग में लाये गये हैं। इस प्रकार प्रत्येक ग्राम की जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य में विद्यमान सुविधाओं को दृष्टिगत रखते हुए सेवा केन्द्रों के निर्धारण में निम्न तथ्यों को आधार माना गया है:—

- (1) गाँव की जनसंख्या 1000 से अधिक हो ।
- (2) विद्यमान 6 कार्य समूहों में से कम से कम 3 कार्य समूहों की सुविधा उस गाँव में उपलब्ध हो।
- (3) ग्राम में विद्यमान विभिन्न संस्थागत सुविधाओं के निर्धारित अंक का योग 8 से अधिक हो।
- (4) उस गाँव द्वारा निकटवर्ती गाँवों को सामाजिक एवं आर्थिक सुविधाएँ प्रदत्त हो। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र के 577 गाँवों में से 25 गाँवों को सेवा केन्द्रों की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है (मानचित्र सं0 1)।

**सेवा केन्द्रों का पदानुक्रम**—ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में पिछड़े एव अविकसित क्षेत्रों के लिए सेवा केन्द्र ही उपयोगी होते हैं। इन्हीं के माध्यम से केन्द्र स्थलों तथा आसन्नवर्ती क्षेत्रों के विकास में गतिशीलता का प्रवेश होता है। क्षेत्र के विकास हेतु बनाये गये केन्द्रस्थलों के पदानुक्रमिक स्तर अत्यन्त महत्वपूर्ण माध्यम होते हैं। गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो0 जगदीश सिंह (1979, पृ0सं0 453)<sup>2</sup> ने अपने एक महत्वपूर्ण प्रकाशित अध्ययन में गोरखपुर के केन्द्रीय स्थलों के पदानुक्रम में कार्यों की सापेक्षिक महत्त्व को ध्यान में रखकर निर्धारित किया और उसे मापने के लिए विभिन्न प्रकार्यों के अनुसार उनका भारांक प्रदान किया शोधकर्ता ने भी उक्त विधि को आधार मानते हुए जखनियाँ तहसील का पदानुक्रम ज्ञात किया है। पदानुक्रम मापने के लिए 6 प्रमुख कार्यों एवं 19 उपकार्यों का उपयोग किया है। ये 6 केन्द्रीय प्रकार से अधोलिखित हैं :—

- (1) प्रशासनिक सेवाएँ : तहसील, विकास खण्ड, पुलिस स्टेशन।

\* सहायक अध्यापक- भूगोल विभाग, मारकण्डेय पी0जी0 कालेज, तारापुर, चन्दौली



**Shodh Sandarsh-VIII ♦ Vol.-XXVI ♦ March-2020 ♦ 330**

तालिका संख्या 6:1  
तहसील जखनियौ  
केन्द्रीय सेवाएं एवं सेवा समूह

क्र० सं०	सेवा केन्द्रों का नाम	प्रशासनिक सेवाएं			शैक्षणिक सेवाएं				संचार सेवाएं			वित्तीय सेवाएं		स्वास्थ्य सेवाएं			परिवहन सेवाएं				योग
		सीत	विहारी खण्ड	पुलिया टोशन	प्राइमरी	जुहोरा	हाउस / इकोन	डिग्री वाल्ड	डाक	तार घर	टेलीफोन	सहो समिति	बैंक	चिकित्सा	डिस्पेंसरी	राजकीय	सहोरा स्टाय	एक्सप्रेस स्टाय	रेलवे स्टो	रेलवे ए.एसो	
1	जखनिया	2	1	1	6	12	12	4		2	2	1	3	8	8	18	1			2	83
2	सादात		1	1	5	8	12	12	1		2	1	3	4	6	9	1			2	68
3	दुल्लहपुर			1	4	8	6	8		2	2	1	3	8	4	3		1		2	51
4	मानिहारी		1		1	6	6	4	1				1		1		9	1			31
5	जलाबाद					3	4	6	8	1			1	1	2		3	1			30
6	मलिकपुरा					2	4	6	4	1			1	1	2	2	3	1			27
7	शादिबाद				1	4	4	3		1		2	1	2	2	4	6	1			27
8	सिखडी				1	4	4	3		1		1	1	2	2	3	1				27
9	भुडकुडा			1	2	4	3	4	1			1	1	2	2		1				22
10	हसराजपुर			1	1	4	3		1		2	1	1	2	2		1				19
11	धर्मागतपुर				1	2	3		1			1		1		6	1				16
12	रामपुर बलभद्र				1	4	3		1			1	1	2			1				14
13	बुजुर्गा				1	2	3		1			1	1	2	2		1				14
14	अलिपुर मदरा				1	4	3		1			1	1	2			1				14
15	हथियाराम				1	2		4				1		2		3					13
16	नायकडीह				1	2	3		1			1	2	1			1				13
17	सलेपुर बघई				1	2	3	4	1			1		1			1				13
18	हुरमुजपुर			1	2	2	3					1	1	2					1		13
19	मुडियारी				1	2	3	4				1		1							12
20	पटुमपुर					2	2	3		1		1		2			1				12
21	ओडराई				1	2	3		1			1		2		1	1				12
22	रायपुर				1	2			1			1	1	2		3	1				12
23	तिरछी				1	4	3		1			1		1							10
24	गुरेनी				1	2	3		1			1		1			1				10
25	देवा				1	2	3					1		1		1					09

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण

प्रस्तुत अध्ययन में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो० डॉ० जगदीश सिंह के विभाजन के अनुसार इनके कोटि क्रम का निर्धारण किया गया है।

तलिका संख्या 2  
तहसील जखनियॉ सेवा केन्द्रों का पदानुक्रम

क्रम संख्या	सेवा केन्द्रों की श्रेणी	कार्यात्मक सूचकांक समूह	सेवा केन्द्रों की संख्या
1	प्रथम श्रेणी	75 से अधिक	1
2	द्वितीय श्रेणी	50-75	2
3	तृतीय श्रेणी	25-50	5
4	चतुर्थ श्रेणी	25 से कम	17
	अध्ययन क्षेत्र		25

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण

**प्रथम श्रेणी के पदानुक्रम वाले सेवा केन्द्र**—इसे वृद्धि ध्रुव कहते हैं। जहाँ पर कई प्रकार का संकेन्द्रण होता है। मुख्यालय स्थित है जिसका सेवा भारांक 836 है यहाँ लगभग सभी प्रकार की सेवाएँ पायी जाती है। इस केन्द्र पर उच्च शिक्षा के साथ चिकित्सा परिवहन संचार विपणन व बैंकिंग सुविधा भी उपलब्ध है।

**द्वितीय श्रेणी के पदानुक्रम वाले सेवा केन्द्र**—इस केन्द्र के अन्तर्गत 45 से 75 सेवा भारांक वाले बस्तिओं को सम्मिलित किया गया है जिसमें सादात (68 महत्व प्रदानांक), दुल्लहपुर (51 महत्व प्रदानांक) जिसमें डिग्री कालेज तथा स्नातकोत्तर महाविद्यालय एवं रेलवे स्टेशन जहाँ एक्सप्रेस ट्रेन भी रुकती हैं तथा चिकित्सा तथा बैंकिंग सुविधाएँ उपलब्ध है।

**तृतीय श्रेणी के पदानुक्रम वाले सेवा केन्द्र**—इस श्रेणी के अन्तर्गत 25 से 45 सेवा भारांक वाले सेवा केन्द्र आते हैं जिसमें मनिहारी (31 महत्व प्रदानांक), जलालाबाद (30 महत्व प्रदानांक), मलिकपुर (27 महत्व प्रदानांक) शादियाबाद (27 महत्व प्रदानांक), सिखड़ी (27 महत्व प्रदानांक), हैं जिनमें महाविद्यालय, पुलिस स्टेशन, तारघर, बैंकिंग सुविधाएँ तथा प्राथमिक केन्द्र जैसी सेवाएँ उपलब्ध हैं।

**चतुर्थ श्रेणी के पदानुक्रम वाले सेवा केन्द्र**—इस श्रेणी के अन्तर्गत सत्रह (17) सेवा केन्द्र आते हैं इन सेवा केन्द्रों में न्यूनतम 6 से 10 प्रकार की केन्द्रीय सेवाएँ पायी जाती है जिसमें भुड़कुड़ा सबसे बड़ा सेवा केन्द्र है। जिसका सेवा भारांक (22) है जब कि सर्वाधिक छोटे स्तर के सेवा केन्द्र में देवा है जिसका भारांक (9) है इस स्तर के सेवा केन्द्रों में केवल आवश्यक क्रिया-कलाप ही केन्द्रित है। इसके अन्तर्गत भुड़कुड़ा (22), हंसराजपुर (19), धर्मागतपुर (19), रामपुर बलभद्र (14), बुजुर्गा (14), अलीपुर मदरा (14), हथियाराम (13), मुड़ियारी (12), पदुमपुर (12), ओड़राई (12), तिरछी (10), और देवा (9 महत्व प्रदानांक) है।

**केन्द्र स्थलों के सेवा प्रदेश**—सेवा केन्द्रों के सेवा क्षेत्र को पूरक क्षेत्र, पोषक क्षेत्र, पृष्ठ प्रदेश, प्रभाव क्षेत्र आदि कई नामों से व्यवहृत किया जाता है इसे पातक अथवा ध्रुवित क्षेत्र भी कहा जाता है। यह केन्द्र स्थल के चतुर्दिक स्थित वह क्षेत्र होता है जो सेवा केन्द्र की विभिन्न सेवाओं द्वारा लाभान्वित होता है तथा जो सेवा केन्द्रों को विभिन्न संसाधनों की आपूर्ति करता है। यह एक विषमांगी क्षेत्र हो सकता है जिसमें नगरों, कस्बों एवं गाँवों की स्थिति पायी जाती है। यह अभिकेन्द्री और अपकेन्द्री उभय बलों से प्रभावित होता है इसमें प्रथम द्वारा संग्रहीत तथा द्वितीय द्वारा वितरक सेवाओं को पोषण मिलता है। इस प्रकार केन्द्र स्थल क्षेत्रीय वस्तुओं के संग्रह एवं केन्द्रीय वस्तुओं के वितरण का कार्य करता है। जहाँ यह अपने अस्तित्व हेतु प्रभाव क्षेत्र के संसाधनों पर निर्भर रहता है वहीं सेवा क्षेत्र के निवासी अपनी बहुत सी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सेवाओं हेतु सेवा केन्द्र पर आश्रित रहते हैं। इस प्रकार एक सेवा केन्द्र अपने पृष्ठ प्रदेश से कुछ लेता है और बदले में उसे कुछ देता है। इस आदान-प्रदान की क्रिया पर ही सेवा केन्द्र और उसके सेवा क्षेत्र की समृद्धि एवं प्रत्याशंसा निर्भर करती है।

इस सेवा क्षेत्र के परिसीमन हेतु कई गुणात्मक और परिणात्मक विधियों का उपयोग किया गया है। क्रिस्टालर एवं लॉग ने सेवा केन्द्रों के सौपानिक सम्बन्ध पर आधारित आगमनिक उपागम का प्रयोग किया है स्मेल्ल्स (1944), डिकिन्सन (1964) प्रभृति ने निगमनिक प्रक्रमों द्वारा इस सीमा क्षेत्र के निर्धारण का प्रयास किया जबकि ब्रसी (1953) एवं (1956) ने एतदर्थ केन्द्रीयता के ग्रामीण उपादान का प्रयोग किया है हाल में (बेरी 1967, पृ० सं० 40) ने रीले (1931) के स्टोक केन्द्राकर्षण नियम एवं विच्छेद बिन्दु समीकरण का प्रयोग कर इस कार्य को आसान बना दिया है। उनके द्वारा प्रयुक्त सूत्र का विवरण निम्नवत है—

$$LS = 1 \sqrt{\frac{AC}{BC}}$$

जहाँ—

- $L$  : केन्द्र के सेवा क्षेत्रा का से विस्तार  
 $D$  दो और सेवा केन्द्रों के मध्य दूरी  
 $AC$  केन्द्र का केन्द्रीयता गणन  
 $BC$  केन्द्र का केन्द्रीयता गणन

उपरोक्त सूत्र का प्रयोग करते हुए जखनियों तहसील के 25 सेवा केन्द्रों के सेवा क्षेत्रों को (मानचित्र संख्या 1:1) पें प्रदर्शित किया गया है। जहाँ प्रथम स्तरीय सेवा केन्द्र तहसील जखनियों का सेवा क्षेत्र समुचे अध्ययन क्षेत्र में फैला हुआ है वही दुल्लहपुर का प्रभाव क्षेत्र बेसो नदी के उत्तर तथा सादात का प्रभाव क्षेत्र मँगई नदी के दक्षिण विस्तृत है। मँगई और बेसो के बीच के क्षेत्र संगम स्थल या संक्रमण क्षेत्र कहे जाते हैं। जहाँ दोनो केन्द्र स्थलों के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। न्याय पंचायत गुरैनी, सुरहुरपुर, सिखड़ी, नियाब, सरौली, सरायगोकुल, यमुफपुर, मनहारी सेवा केन्द्र सेवित क्षेत्र के अर्न्तगत आते हैं यहाँ प्लाक स्तर की सेवाएँ उपलब्ध हैं। अध्ययन क्षेत्र के अन्य समस्त सेवा केन्द्रों पर आश्रित हैं।

**प्रस्तावित सेवा केन्द्र**—क्षेत्रीय विकास में केन्द्र स्थलों या सेवा केन्द्रों की महत्ता को देखते हुए स्केन वाच प्रदेश में Royal Commission on Agriculture and Rural life (सशकछवाँ रायल कमीशन, 1957)<sup>4</sup> ने क्षेत्र के समन्वित विकास हेतु सेवा केन्द्रों के पुनर्गठन पर बल दिया या किसी क्षेत्र के सम्यक विकास हेतु आवश्यकता इस बात की है कि उस क्षेत्र के सक्रिय अधिवासों का उनके सेवा कार्य के आधार पर एक पदानुक्रम संगठन तैयार करके उनमें आवश्यक कार्य—कलापो एवं प्रतिष्ठानों की स्थापना की जाय जिससे वे अपने क्षेत्र का वांछित सेवाएँ व सुविधाएँ प्रदान कर सकें। चूँकि किसी क्षेत्र का प्रादेशिक स्तर तक विकास केन्द्रों की संज्ञा दी गयी और उन्हें विभिन्न स्तर के विकास केन्द्र स्थलों के माध्यम से होता है। अतः इन्हे विकास केन्द्रों की संज्ञा दी गयी, साथ ही विभिन्न स्तर के विकास के विकास केन्द्रों के रूप में

विकसित करने का प्रस्ताव किया गया। इस प्रकार सेवा सम्भरण क्षमता के अनुसार इनके वर्ग बनाये गये हैं—प्राथमिक सेवा बिन्दु, द्वितीयक सेवा बिन्दु, तृतीयक सेवा संगम स्थल, चतुर्थ विकास बिन्दु।

### प्रस्तावित सेवा केन्द्रों के सेवा क्षेत्रों का सीमांकन

**प्राथमिक सेवा बिन्दु**—प्रस्तावित पदानुक्रम वर्ग की लघुत्तम श्रेणी को प्रथमिक सेवा बिन्दु कहा गया है। इनमें “केन्द्र स्थल पदानुक्रम वर्ग” के विश्राम बिन्दु तथा ग्राम्य बाजार वर्ग के केन्द्र आते हैं। क्योंकि इनके द्वारा चतुर्विध क्षेत्र को सेवा सम्भरण करने की क्षमता अल्प है। इनके चयन के छोटे स्तर के केन्द्र स्थलों के साथ ही कुछ सेवाएँ जैसे जू० हा० स्कूल, उपडाकघर, चिकित्सक आदि पूर्व से ही विद्यमान हैं तथा वे कच्ची या पक्की सड़को किनारे अवस्थित हैं। सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र इस स्तर के प्राथमिक सेवा बिन्दुओं की संख्या 23 है। जिसमें अध्ययन हेतु चुने गये 17 केन्द्र स्थल भी सम्मिलित हैं जिनमें रेवरिया, बुढानपुर, कुडिला, रामसिंहपुर, दौलतनगर, मुडियारी, हुरमुजपुर, सलेमपुर, बघाई, नायकडीह, हथियाराम,, अलीपुर मदरा, बुजुर्गा रामपुर बलभद्र धर्मागतपुर है।



इन प्राथमिक सेवा बिन्दुओं के सेवा क्षेत्र का निर्धारण उनके चतुर्दिक 5 किमी० के व्यास में फैले हुए हैं, जहाँ दूसरे प्राथमिक सेवा केन्द्र समीप हैं, वहाँ इनके सेवा क्षेत्र 5 किमी० से कम तथा जहाँ दूरी अधिक है, वहाँ इनका व्यास 5 किमी० से अधिक भी है। अध्ययन क्षेत्र में ऐसा सेवा क्षेत्र गुरैनी है।

**द्वितीय सेवा बिन्दु**—प्राथमिक सेवा बिन्दुओं के लगभग एक चौथाई संख्या में ऐसे केन्द्रों को जो पर्याप्त मात्रा में सेवायें व सुविधायें प्रदान करते हों, जो यातायात मार्ग के किनारे अवस्थित हो को द्वितीयक सेवा केन्द्र के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया था। इनमें वे सभी केन्द्र आते हैं जो केन्द्र स्थल कहलाने हेतु सभी न्यूनतम योग्यतायें रखते हैं। अध्ययन क्षेत्र में इनकी संख्या 6 हैं जहाँ ब्लाक मुख्यालय, डिग्री कालेज, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, उपडाघर, टेलीफोन एक्चेंज इत्यादि जैसी सेवाएँ उपलब्ध हैं। द्वितीय सेवा बिन्दुओं के सेवा क्षेत्र 10 किमी० के आस-पास के क्षेत्रों में फैला है।

**सेवा संगम स्थल**—ऐसे सेवा केन्द्र स्थलों को जो उच्च स्तर की सेवायें—सुविधायें प्रदान करते हैं, तथा यातायात मार्ग संगम बिन्दु पर अवस्थित हो, को सेवा संगम स्थल माना गया है। इस वर्ग में नये विकास केन्द्रों के अतिरिक्त पदानुक्रम वर्ग के स्थानीय संगम स्थल वर्ग के केन्द्र भी आते हैं। अध्ययन क्षेत्र में इनकी संख्या 3 है जहाँ विकास खण्ड मुख्यालय, स्थानीय बाजार, डाक एवं तार घर, टेलीफोन एक्चेंज, प्राथमिक, माध्यमिक एवं डिग्री कालेज स्थित है तथा सेवा केन्द्र स्थल, स्टेट हाईवे और रेल मार्ग संगम स्थल पर स्थित है ऐसे सेवा केन्द्रों में दुल्लहपुर, जलालाबाद और मनिहारी हैं। ये सेवा केन्द्र 10—15 किमी० की परिधि में अपनी सेवायें प्रदान करती हैं।

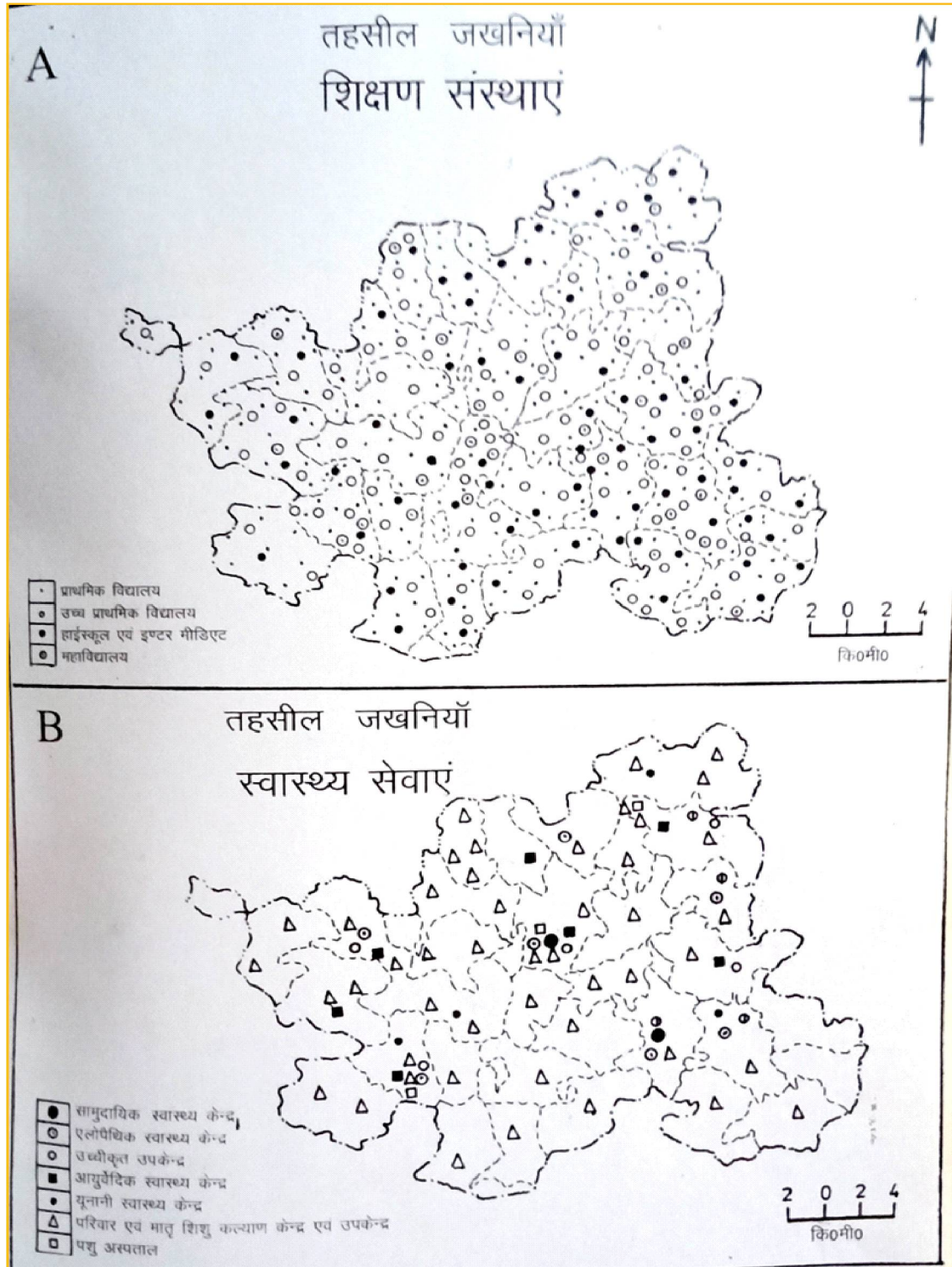
**विकास बिन्दु**—इस वर्ग में वे सेवा केन्द्र स्थल आते हैं, जो स्थानीय स्तर पर अतिशय उच्च सेवा सुविधायें प्रदान करते हैं तथा जहाँ पर रोजगार के उच्च स्तर के अवसर उपलब्ध हैं। पूरे अध्ययन क्षेत्र में जखनियों और सादात दो सेवा केन्द्र हैं जिनका सेवा क्षेत्र पूरे अध्ययन क्षेत्र में फैला है।

प्रस्तावित विकास केन्द्रों के पदानुक्रम वर्ग के सबसे लघुतम वर्ग प्राथमिक सेवा बिन्दु में प्रशासनिक स्तर पर विकास खण्ड की उपशाखा स्थापित करके वहाँ पर कृषकों के कृषि उत्पादन के क्रम—विक्रय हेतु लघु उत्पादन केन्द्र की स्थापना की जाय। द्वितीय सेवा बिन्दुओं पर ब्लाक मुख्यालय प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र हायर सेकेण्डरी स्कूल, डाकघर, बस स्टॉप तथा सड़क मार्गों का विकास किया जाय तथा सेवा संगम स्थलों पर संयुक्त चिकित्सालय, पशुचिकित्सालय तथा व्यापारिक बैंको की स्थापना की जाय। जिससे उनका विकास हो सके। विकास बिन्दुओं पर पी०जी० कालेज, टेक्नीकल कालेज, बड़ा अस्पताल, मुख्यडाकर, रोडवेज डिपो, कृषि मण्डी, व्यापारिक प्रतिष्ठानों, सिनेमा थियेटर्स की स्थापना की जाय जिससे इन विकास बिन्दुओं की पहचान हो सके तथा सेवा केन्द्रों गति मिल सके।

### शिक्षा एवं स्वास्थ्य :

**शिक्षा :** विकास रणनीति में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थाना है। अतः किसी देश के विकास के लिए पर्याप्त शिक्षा सुविधाओं का विकास किया जाना आवश्यक है (सिंह एवं सिंह, 1992, उ०भू०प०,पृ०सं० 22)<sup>५</sup>। शिक्षा व्यक्ति के सामाजिक पद भूमिका निर्धारण मनो व्यक्तित्व विकास एवं व्यक्तित्व संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय ग्रामीण समाज के सन्दर्भ में विकास कार्यक्रम में जनसहभागिता की वृद्धि तथा सामाजिक, राजनैतिक क्रियाशीलता के विस्तार में शिक्षा की निर्णायक भूमिका होती है अध्ययन क्षेत्र में सन 1925 में उच्च शिक्षण संस्थानों में बालिका विद्यालय का अभाव रहा है जिससे स्त्रियों की सहभागिता कम है। अध्ययन क्षेत्र में सर्व प्रथम 1923 में जू०हा०स्कूल मदरा तथा 1945 में श्री महन्थ राम बरन इण्टर कालेज की स्थापना हुई वर्ष 1972 में अध्ययन क्षेत्र में मलिकपूरा एवं भुड़कुड़ा डिग्री कालेजों की स्थापना हुई। वर्तमान में इनकी कुल संख्या 26 है तहसील जखनियों में मात्र 227 प्राथमिक विद्यालय 63 जू०हा०स्कूल, 95 हाईस्कूल/इण्टर कालेज स्थित है। इन संस्थानों का भू-वैचारिक विवरण असमान है। ब्लाक मुख्यालयों के इर्द गिर्द शिक्षण संस्थानों का घनत्व अधिक है। जब कि मुख्यालयों से दूर शिक्षण संस्थाएँ विरल हैं। अध्ययन क्षेत्र में 1 किमी से कम दूरी पर 140 प्राथमिक विद्यालय हैं तथा 3 से 5 किमी की दूरी पर 6 प्राथमिक विद्यालय हैं।





**तालिका संख्या 3**  
**तहसील जखनियों शिक्षण संस्थाओं का न्याय पंचायतवार विवरण वर्ष 2007**

क्र०सं०	न्याय पंचायत	प्राथमिक विद्यालय	उच्च प्राथमिक विद्यालय	हाउस्कूल/इ० का०	डिग्री कालेज
1	शहाबपुर	6	3	1	1
2	चकफातमा	6	0	3	0
3	लोदिहा	6	0	3	0
4	जलालाबाद	10	1	6	2
5	मुस्तफाबाद	10	1	6	2
6	सोनहरा	14	2	4	1
7	पदुमपुर	6	2	2	0
8	जखनियों	10	2	4	2
9	ओडासन	7	0	3	0
10	खोताबपुर	4	1	4	3
11	भुड़कुडा	9	2	4	1
12	किशुनपुरा	6	2	2	1
13	गुरैनी	6	3	2	0
14	सिखड़ी	7	5	4	2
15	मनिहारी	7	5	3	1
16	निधाव	5	3	2	0
17	सरौली	5	3	2	0
18	सरराजपुर	9	3	5	3
19	यसुफपुर	7	3	3	1
20	सुरहुरपुर	6	2	2	0
21	मसूदपुर	6	2	3	0
22	मौधिया	6	2	2	0
23	भदौरा	5	3	2	0
24	सरायगोकुल	7	2	3	1
25	पलिवार	8	2	2	0
26	रायपुर	7	1	3	1
27	चकफरीदपुर	11	2	4	1
28	लुमुजपुर	8	2	3	1
29	दौलतनगर	6	1	2	1
30	सादात	9	2	5	3
31	रेसुवापार	9	1	2	0
	अध्ययन क्षेत्र	227	63	95	26

स्रोत ब्लाक संसाधन केन्द्र एवं व्यक्तिगत सर्वेक्षण

**स्वास्थ्य सेवा केन्द्र**—स्वास्थ्य नागरिक ही किसी क्षेत्र के सर्वांगीण विकास को गति प्रदान कर सकता है। स्वास्थ्य से तात्पर्य मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होना है। विकार ग्रस्त मनुष्य सामाजिक, आर्थिक उन्नयन में अवरोधक का कार्य करता है। अध्ययन क्षेत्र में स्वास्थ्य केन्द्र अनुरूपता के अनुरूप नहीं हैं। यहाँ स्वास्थ्य सेवायें विभिन्न 3 विभिन्न स्तरों पर प्रदान की जाती हैं। निम्न स्तर पर मातृ शिशु एवं परिवार कल्याण केन्द्र हैं जिसकी अध्ययन क्षेत्र में संख्या 43 है। मध्यम स्तर पर औषधालय की सुविधा है, जहाँ आयुर्वेदिक, एलोपैथिक, होम्योपैथिक एवं यूनानी दवाएँ प्राप्त होती हैं। सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र में इनकी संख्या क्रमशः 3, 8, 5, 4 है। उच्च स्तर पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की सुविधाएँ हैं। अध्ययन क्षेत्र में इनकी संख्या 7 है तथा सर्वोच्च स्तर पर अध्ययन क्षेत्र में एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र जखनियॉ है तथा मनिहारी में एक प्रस्तावित है जो 40 शैय्याओं से युक्त है। यहाँ उच्च श्रेणी की स्वास्थ्य सुविधायें जैसे रेडियोलॉजी, पैथोलॉजी तथा पाँच विशेषज्ञ चिकित्सक नियुक्त हैं जो अध्ययन क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर रहे हैं। (तालिका संख्या 4) से स्पष्ट है।

अध्ययन क्षेत्र में जखनियॉ, दुल्लहपुर, सादात, षादियाबाद और मनिहारी 05 पशु चिकित्सालय है जो अध्ययन क्षेत्र में पशुओं का टीकाकरण, बन्ध्याकरण, गर्भाधान तथा अन्य चिकित्सा सेवायें प्रदान करता है।

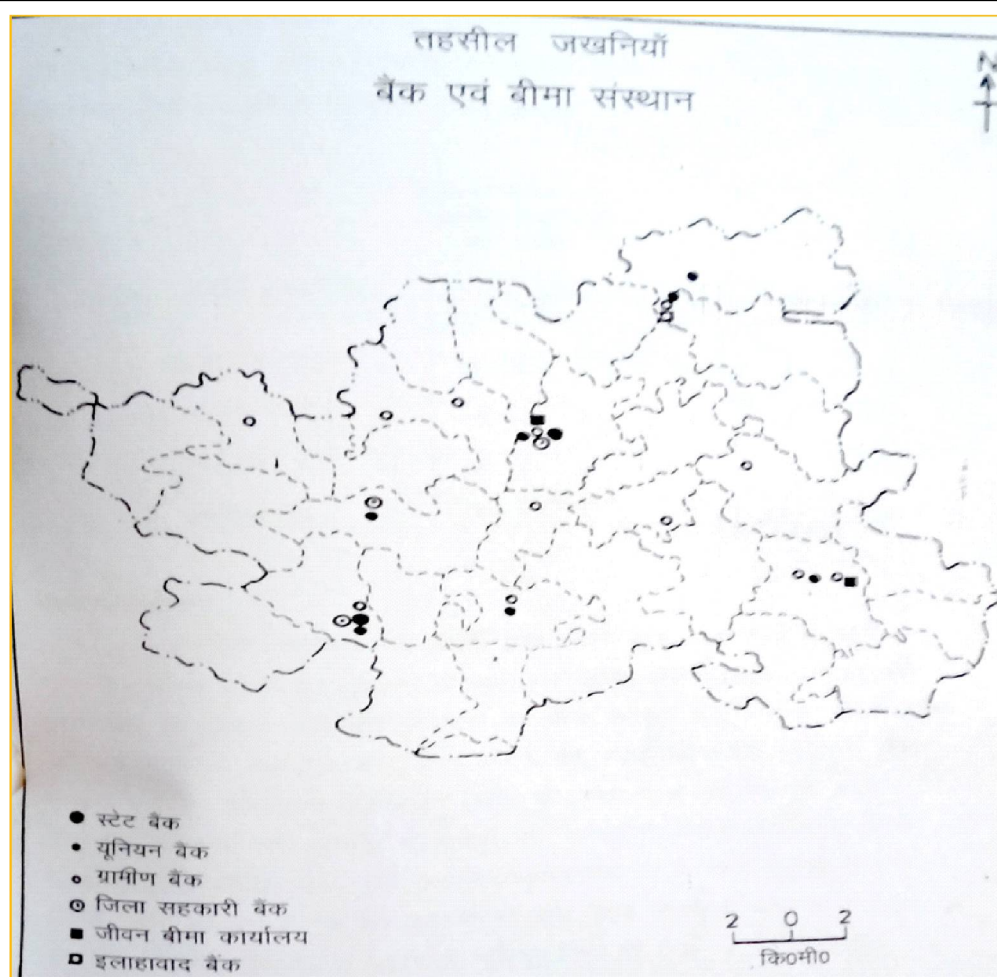
**तालिका संख्या 4**  
**तहसील-जखनिया स्वास्थ्य सेवायें**

क्र०सं०	विकास खण्ड	समुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	एलोपैथिक स्वास्थ्य केन्द्र	आयुर्वेदिक स्वास्थ्य केन्द्र	यूनानिक स्वास्थ्य केन्द्र	होम्योपैथिक स्वास्थ्य केन्द्र	उच्चकृत उपकेन्द्र	परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण केन्द्र एवं उपकेन्द्र	योग
1	जखनियॉ	1	4	2	1	3	2	21	34
2	मनिहारी	1	2	1	1	2	1	9	17
3	सादात	0	2	3	2	0	2	13	22
	योग	2	8	6	4	5	5	43	73

स्रोत—सांख्यिकीय पत्रिका गाजीपुर एवं स्वास्थ्य विभाग गाजीपुर।

#### **बैंक एवं बीमा संस्थान**

**बैंक** : वित्तीय संस्थाओं में बैंक का महत्वपूर्ण स्थान है। अध्ययन क्षेत्रा तहसील जखनियॉ में कुल बैंको की संख्या 25 है जिसमें राष्ट्रीयकृत बैंक, 1 स्टेट बैंक 11 ग्रामीण बैंक, 5 जिला सहकारी बैंक हैं। ये बैंक अध्ययन क्षेत्र में जहाँ एक ओर किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से सस्ती दर पर खेती के लिए ऋण प्रदान कर रहे हैं, वही रोजगार कार्ड पर व्यवसाय के लिए भी ऋण प्रदान कर रहे हैं। यह बैंक अल्प कालीन तथा दीर्घकालीन दोनों प्रकार के ऋण प्रदान करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में 31188 व्यक्तियों को किसान क्रेडिट कार्ड पर 2025.37 लाख ऋण दिया गया जो कुल सुविधाओं का सर्वाधिक है तथा सबसे कम ऋण मात्र 5 लाभार्थियों को मछली पालन पर कुल 2 लाख 50 हजार दिया गया है इनके अतिरिक्त बैंको द्वारा आवास, कुटीर उद्योग एवं सहायता समूह परिवहन ऋण फुटकर व्यवसाय, लघु उद्योग, ट्रैक्टर, पशुपालन, पम्पिंग सेट, शिक्षा इत्यादि पर ऋण प्रदान किये जा रहे है।



तालिका संख्या 5  
तहसील जखनियों-बैंक सेवाये

क्र० सं०	विकास खण्ड	स्टेट बैंक	यूनियन बैंक	इलाहाबाद बैंक	ग्रामीण बैंक	जिला सहकारी बैंक	योग
1	जखनियों	1	2	1	5	2	11
2	सादात	0	3	0	2	2	07
3	मनिहारी	0	2	0	4	1	07
	अध्ययन क्षेत्र	1	7	1	11	5	25

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण

जीवन बीमा संस्थान-ग्रामीण व्यक्तियों को अपनी तथा अपने द्वारा रखी गयी समानों की सुरक्षा की चिन्ता

रहती है। दुर्घटना हो जाने पर व्यक्ति को निराश्रुत न रहना पड़े, इसके लिए वह अपना तथा अपने समानों की बीमा करवाते हैं। बीमा कम्पनियों के अभिकर्ता गाँवों में घूम-घूमकर बीमा करने का कार्य सम्पादित करते हैं और दुर्घटना होने पर दावा तथा परिपक्वता अवधिके समय जमा धन उपलब्ध कराते हैं और बीमा सम्बन्धी नयी पुरानी योजनाओं की जानकारी प्रदान करते हैं इसका मुख्य कार्यालय सैदपुर तथा उप कार्यालय जखनियाँ में है इसमें पशुओं दुकानों, वाहनों, कृषि फसलों आदि का इन्श्योरेन्स कर बीमा संस्थान अध्ययन क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

**विद्युतीकरण**—अविकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों को सामाजिक, आर्थिक रूप से प्रगतिशील बनाने में विद्युत उपलब्धता का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है। अध्ययन क्षेत्र में सभी (492) 100 प्रतिशत ग्राम विद्युतीकृत है। अध्ययन क्षेत्र में 33/11 हजार किलोवाट के जखनियाँ, दुल्लहपुर, मनिहारी तथा सादात 4 विद्युत उपकेन्द्र हैं। यहाँ विद्युत आपूर्ति रिहन्दपावर तथा ओबरा विद्युत गृह से होती है जो अत्यन्त अपर्याप्त एवं अनियमित है। बहुधा विद्युत आपूर्ति ठप हो जाने से कृषि कार्य प्रभावित होता रहता है।

**विद्युत उपयोग का क्षेत्रीय स्वरूप**—अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2005-06 में विद्युत चालित निजी नलकूपों की संख्या 3460 है तथा राजकीय नलकूपों की संख्या 80 है। विद्युत विभाग जनपद गाजीपुर से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार तहसील जखनियाँ में कुल 65391 किलोवाट विजली की खपत है जिसमें से सर्वाधिक विजली कृषि पर 42805 किलावाट खर्च होती है तथा सबसे कम 163 किलोवाट सार्वजनिक प्रकाश में खर्च होती है। इसके अतिरिक्त घरेलू प्रकाश, वाणिज्यिक प्रकाश, औद्योगिक विद्युत तथा सार्वजनिक जल कल, जल मल प्रवाह में क्रमशः 15348, 1716, 4948, 409 किलोवाट विजली की खपत है। विद्युत उपयोग की उपलब्धता माँग के सापेक्ष कम है इसलिए आवश्यकता है कि अध्ययन क्षेत्र में नये पावर स्टेशन स्थापित किये जाँय तथा वैकल्पिक ऊर्जा जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, बाये गैस का भरपूर दोहन कर उपयोग की आवश्यकता है जिससे जल विद्युत की आपूर्ति में होने वाली कमी को पूरा किये जा सके।

**सेवा केन्द्रों का क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकास में योगदान**—सेवा केन्द्र जिन क्षेत्रों में नजदीक हैं वहाँ शिक्षा, व्यवसाय, विद्युतीकरण, औद्योगीकरण इत्यादि सुविधायें अधिक विकसित हैं। इसका प्रमुख कारण यातायात सुविधाओं की सुलभता एवं अनुकूल भौगोलिक वातावरण की उपलब्धता है। औद्योगीकरण के विकास के लिए सेवा केन्द्रों के निकट कच्चे माल उपलब्ध हो जाते हैं तथा तैयार माल के लिए वही विकास केन्द्र बाजार का कार्य करते हैं। सेवा केन्द्रों में उपलब्ध वित्तीय संस्थाएँ सामाजिक-आर्थिक सुविधाओं को वित्त की सुविधा प्रदान करते हैं जिससे क्षेत्र का सामाजिक-आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है तथा यहीं सुविधाओं की भी बहुलता है जिससे टीकाकरण, बन्ध्याकरण, शल्य चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक-आर्थिक विकास में सेवा केन्द्रों का महत्वपूर्ण योगदान है।

#### सन्दर्भ—सूची

1. जेफर्सन ए0 एम0 (1931), : डिस्ट्रीब्यूशन आफ वर्ल्ड फाक, ज्योग्राफिकल रिव्यू वाल्यूम, XXI, P.P. 453
2. सिंह, जे0 (1979), : सेण्ट्रल प्लेस एण्ड स्पेशल आर्गेनाइजेशन इन बैंकवर्ड इकानमी गोरखपुर रिजन। ए स्टडी इन इंटीग्रेटेड रीजनल डेवलपमेण्ट,
3. बेरी, बी0जे0एल0 (1967) : ज्योग्राफी आफ मार्केट सेण्टर एण्ड रिटेल डिस्ट्रीब्यूशन प्रंटिर्स— न्यूयार्क XXI, P.P. 40
4. ससकछवाँ रायल कमीशन (1957) आन एग्रीकल्चर एण्ड रूरल लाइफ सर्विस सेन्टर रिपोर्ट नं0 12 रिजन ससकछवाँ U.B.B.P गोरखपुर P.P.533
5. सिंह बब्बन एवं सिंह ( 1992) से सुरेश्वर अकबरपुर तहसील में सामाजिक सुविधाओं का भौगोलिक विश्लेषण एवं नियोजन उत्तर भारत भूगोल पत्रिका वाल्यूम 07 XXI, P.P. 22

\* \* \* \* \*



## सोनार बेसिन ( म.प्र. ) में भू-पर्यावरणीय समस्याएँ एवं सुझाव

डॉ. संदीप कुमार सिंह\*

भू-आकृति विज्ञान में शोध करने वाले छात्र विविध स्तरीय भूपर्यावरणीय समस्याओं से परिचित होते हैं। अधिकांश भू-पर्यावरणीय समस्याएँ तीव्र जनसंख्या वृद्धि, निर्वनीकरण, बीहड़ीकरण, औद्योगीकरण, नगरीयकरण, अनियंत्रित पशुचारण, अवैध खनन, भू-पर्यावरणीय समस्याओं की अल्पज्ञता, अशिक्षा और सांस्कृतिक विकास की अवस्थाओं से जुड़ी हुई हैं।

बीहड़ निर्माण प्रक्रिया का सम्बन्ध जलीय अपरदन द्वारा ढाल और असंगठित भू-पदार्थों के निष्कासन से है जिसमें अंगुल्याकार सरिताओं और अवनालिकाओं के माध्यम से अपरदन होता है और बंजर भूमि तथा अपरदित भू-पृष्ठ का निर्माण होता है (अग्निहोत्री 1987)। विश्व के विभिन्न प्रदेशों में भूगोलवेत्ताओं एवं वैज्ञानिकों यथा बेनेट (1928), लुट्ज (1934), मिडिलटन (1930), आयरलैण्ड एवं अन्य (1939), लाज एवं पार्सन्स (1943), गन एवं किन्जर (1949) आदि ने बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हडसन एवं जैक्सन (1959), विशाल (1960), विशनेर एवं स्मिथ (1960), हडसन (1965, 1971), कार्डोसा (1968), ब्रायन (1969, 1977), कोवाल (1970), बेडिएण्ट, हाबर एवं हीनी (1971), बुबेंजर एवं जोन्स (1971), एलवेल एवं स्टाकिंग (1973, 1976) ऐंडर्सन एवं फिनलेशन (1975) ऐंडर्सन एवं बर्ट (1978) स्टाकिंग (1978), ब्रायन (1979), ग्रिफिथ (1979), लियो (1981), जेजे एवं आगू (1982), संडवर्ग (1983), हेग (1984), हेग एवं रीडाउट (1986), इचिम एवं रेडोन (1986) मुशला (1986), थ्रैलफाल (1936) कोसान्डी, बिलार्ट एवं मक्सार्ट (1986), फाकनर (1986) आदि वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, भूगर्भ शास्त्रियों आदि ने भूतल के विविध क्षेत्रों में बीहड़ों का अध्ययन किया। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक भू-आकृति विज्ञान वेत्ताओं ने बीहड़ निर्माण की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन किया है जिनमें मेहता और पटेल (1958), शीतल (1961), सिंह एवं मिश्रा (1966), भुल्यान (1976), शर्मा (1968, 1980), अहमद (1968), वर्मा एवं पटेल (1969), सेठ तथा अन्य (1969), तेजवानी (1972), सिंह एवं कर्मानिवर (1975), गुप्ता एवं प्रजापति (1983), हैग (1984), सिंह एवं अग्निहोत्री (1987), सिंह (1988), सविन्द्र सिंह दूबे एवं सिंह (1991) तथा सविन्द्र सिंह एवं दूबे (2002), डी. पी. उपाध्याय (1980), शम्भूराम (1993), छाया मिश्रा (1996), पुष्पा मिश्रा (2007), दीपिका सिंह (2008), के कार्य महत्वपूर्ण हैं। अग्निहोत्री एवं सविन्द्र सिंह ने 1987 में पटेलरा बीहड़ प्रदेश की विशद वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत किया जो इन लोगों द्वारा समय-समय पर किये गये सघन-क्षेत्र कार्य और विभिन्न क्षेत्र से ली गयी मष्दा के परीक्षण पर आधारित था तथा जिसमें उन्होंने बताया कि जहाँ आज बीहड़ है, वहाँ पहले उपजाऊ भूमि का विस्तार था, जो पर्यावरणीय हास के कारण नष्ट हो गयी है। अध्ययन क्षेत्र में वर्तमान बीहड़ों की गलियाँ एवं अवनालिकाओं का विस्तार प्रतिवर्ष 25 सेन्टीमीटर से 1 मीटर तक हो रहा है। यदि इनका विकास अवरुद्ध न किया गया तो यह गंभीर पर्यावरणीय संकट को जन्म देगी। इन प्रदेशों में त्रुटिपूर्ण भूमि उपयोग, वन विनाश और नकारात्मक क्रियाकलापों ने प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन को क्षति पहुंचायी जिससे यहाँ भौतिक पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हुआ। अनेक भू-वैज्ञानिकों ने विभिन्न मापदण्डों के आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप के गली अपरदन से प्रभावित क्षेत्रों का वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। तेजवानी और आहूजा (1956) ने गलियों के वर्गीकरण में आकार, शीर्षवर्ती विशेषताएं, लम्बाई और चौड़ाई का प्रयोग किया जिसका बाद में भारतीय मृदा और भूमि उपयोग के सभी सर्वेक्षणों में प्रयोग किया गया। शर्मा (1968) में गलियों का वर्गीकरण चौड़ाई, गहराई और शीर्षवर्ती कगार के सहारे आकार

\* भूगोल विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)

और ढाल के आधार पर किया जबकि गुप्ता और प्रजापति (1983) के गलियों का वर्गीकरण बीहड़ निर्माण की गहनता के आधार पर किया।

अध्ययन क्षेत्र—सोनार नदी बेसिन का अक्षांशीय विस्तार  $23^{\circ}17'$  उत्तरी अक्षांश से  $24^{\circ}15'$  उत्तरी अक्षांश एवं  $78^{\circ}30'$  पूर्वी देशान्तर से  $79^{\circ}30'$  पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। सम्पूर्ण अपवाह क्षेत्र 6612 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र सोनार बेसिन केन की प्रमुख सहायक सरिता सोनार नदी है। सोनार नदी बुन्देलखण्ड भौगोलिक प्रदेश के पश्चिमी भाग में प्रवाहित होता है। यहाँ पर सामान्यतया विन्ध्यन और विजावर क्रम की शैलें पायी जाती हैं। यहाँ पर सबसे ऊपर बालुका पत्थर उसके नीचे शैल, उसके नीचे बालुका पत्थर और पुनः ग्रेनाइट और नीस शैलें पायी जाती हैं। इस प्रदेश की भूगर्भिक संरचना अभी भी अनुसंधान के लिए अवशिष्ट हैं। सामान्य दृष्ट्यावलोकन से यहां का उच्चावच वृद्धावस्था का प्रतीक होता है। यहाँ पर 7.2 प्रतिशत भू-भाग सघन वनों के अन्तर्गत है। टीक के वृक्ष यत्र-तत्र पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ढाक, सेमल, सलाई, बबूल, खैर, हिंगोरा कदोघ, करील, तेंदू, मूसेल, दूला, आदि वृक्ष एवं झाड़ियाँ पायी जाती हैं। यहाँ पर पायी जाने वाली जलवायु बंगाल की खाड़ी के मानसून और अरब सागर के मानसून से प्रभावित होती है। यहां 75 से 125 सेन्टीमीटर के मध्य वर्षा होती है। स्थलरूपों के विकास में जलवायु एवं वनस्पतियों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है।

भू-पर्यावरणीय समस्याएँ एवं सुझाव—सोनार नदी घाटी विविध भूपर्यावरणीय समस्याओं से ग्रस्त है जिनमें कुछ प्राकृतिक विपदाओं के परिणाम हैं तथा कुछ मानव की क्रियाओं का प्रतिफल है। स्वतंत्र भारत में जनसंख्या वृद्धि अत्यन्त तीव्र गति से हुई, जिसका प्रभाव भारत के पठारी भाग पर भी पड़ा। सोनार बेसिन मध्य प्रदेश के मध्यवर्ती पठारी भाग पर प्रवाहित होती है, जिसके अपवाह तंत्र के अन्तर्गत कोई बड़ा नगर नहीं है। फिर भी जल विभाजकों पर दमोह, हाटा, सागर, रहेली जैसे बड़े नगरीय केन्द्र हैं। परिणामतः नगरीकरण का प्रभाव इस पठारी बेसिन पर भू-पर्यावरणीय समस्या के रूप में पड़ा। सोनार बेसिन में भवन निर्माण सामग्री के रूप में पत्थरों को तोड़ा जाता है, जिनसे विभिन्न आकर की गिट्टी और स्टोन पाउडर तैयार किया जाता है, जो एक गंभीर समस्या है। आर. एफ. दासमैन (1976) ने कहा कि मानव दौड़ हाथ में ग्रेनेड लिए बन्दर के समान है, कोई यह नहीं जानता है कि कब वह ग्रेनेड से पिन खींच लेगा और विश्व तहस-नहस हो जाएगा। 20वीं सदी में जनसंख्या वृद्धि के कारण संसाधनों का विदोहन युद्ध स्तर पर हुआ जिसके सामूहिक परिणामस्वरूप भौतिक पर्यावरण के कुछ संघटकों में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि इसकी क्षतिपूर्ति अब स्वयं संभव नहीं है जिससे गंभीर पर्यावरणीय संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। ओजोन परत अल्पता, अम्लीय वर्षा, जल, वायु ध्वनि एवं मृदा प्रदूषण, निर्वनीकरण, मृदाक्षरण बीहड़ निर्माण जलाशयों में अवसादन तथा वर्तमान समय में विश्व के प्रत्येक कोने में विशेष रूप से विकासशील देशों में आतंकवाद एवं जातीय संघर्ष सम्बन्धी समस्याएँ आज मानव को पर्यावरण संरक्षण के लिए जागृत कर रही हैं। वर्तमान समय में विश्व में जनसंख्या विस्फोट की समस्या के कारण तीव्र औद्योगीकरण, प्रौद्योगिकीय क्रान्ति, परिवहन एवं संचार के साधनों में तीव्र वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध विदोहन, भूमि उपयोग प्रतिरूप में वृहदस्तरीय परिवर्तन तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं नगरीय क्षेत्रों का अनियंत्रित एवं अनियोजित विस्तार हो रहा है एवं नगरीय क्षेत्र तीव्र जनसंख्या जमघट के क्षेत्र होते जा रहे हैं जिससे पारिस्थितिकीय संतुलन विक्षुब्ध होता जा रहा है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण प्रबंधन एवं नियोजन पर बल दिया जा रहा है जिसका तात्पर्य विकास कार्यों के लिए पृथ्वी के नव्य एवं अनव्य संसाधनों का संभूत उपयोग करने, विभिन्न दुर्लभ एवं बहुमूल्य संसाधनों का संरक्षण, स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरण की गुणवत्ता का परीक्षण करने (सिंह एवं सिंह, 1993) से है। पर्यावरण प्रबंधन एवं नियोजन मानव एवं पर्यावरण के मध्य विकृत सम्बन्धों को सुधारने की प्रक्रिया है जिससे पर्यावरण एवं समाज दोनों की गुणवत्ता में सुधार हो सके।

भारत को प्राकृतिक पर्यावरण, उच्चावच, संसाधनों एवं जनसंख्या के आधार पर चार भागों में बांटा जा सकता है, जिसमें प्रथम उच्च धरातल, शीत जलवायु, न्यूनतम जनसंख्या वाला हिमालय क्षेत्र है जहां की आर्थिक स्थिति वनों पर आश्रित है, द्वितीय सघन जनसंख्या वाले मैदानी क्षेत्र हैं जो मुख्य रूप से कृषि पर आश्रित हैं, तृतीय खनिज संसाधनों से युक्त दकन का पठारी क्षेत्र है। इन चारों भागों की अलग-अलग पर्यावरणीय एवं सामाजिक समस्याएँ



हैं। पर्वतीय क्षेत्र में अनुपजाऊ मिट्टी एवं ढालदार क्षेत्र (जो कि सीढ़ीदार खेत बनाने के लिए अत्यधिक खर्चीला तथा पारिस्थितिक दृष्टि से हानिकारक होता है) के फलस्वरूप जनसंख्या का जमाव कम पाया जाता है, मैदानी क्षेत्र विष्व के सघनतम बसे क्षेत्रों में से है जहाँ जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो रही है, पठारी प्रदेश खनिज संसाधन युक्त हैं, अतः यहाँ वनस्पति आवरण का विनाश करके उसे कृषि योग्य एवं उत्खनन भूमि में परिवर्तित कर दिया गया है जिससे यहाँ निर्वनीकरण, मृदाक्षरण, भूस्खलन, बीहड़ीकरण, बंजर विकास आदि की समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं जिनके नियोजन एवं निराकरण की तात्कालिक आवश्यकता है। सोनार नदी प्रायद्वीपीय पठारी भाग पर प्रवाहित होने वाली केन की एक प्रमुख सहायक सरिता है, जो पठारी अपवाह तंत्र का प्रतिफल है। यह नदी दक्षिण-पूर्वी दिशा से उत्तरी पूर्वी दिशा की ओर प्रवाहित हुई, सेमरिया के 5 किलोमीटर पश्चिम में अपना जल केन नदी को समर्पित करती है।

अध्ययन प्रदेश में कमजोर मृदा, वर्षा ऋतु में तीन जल प्रवाह और जल आयतन की अधिकता के कारना अनेक अगुल्याकार सरितायें एक-दूसरे से मिलकर प्रवाहित होती हैं जिसके कारण बीहड़ प्रदेशों का निर्माण हुआ है क्योंकि ढीली मृदा में मोन्टमोरिलोनाइजेशन प्रक्रम अधिक सक्रिय होने के कारण मृदा लिबलिबी हो जाती है जो सरलता से जलीय अपरदन का शिकार हो जाती हैं। शोधार्थी ने गहन क्षेत्र सर्वेक्षण के समय रहेली गढ़कोटा, हावा आदि क्षेत्रों में मानव द्वारा किये गये निर्वनीकरण के कारण अवनालिका अपरदित क्षेत्रों का अवलोकन किया। सभ्यता के आदिकाल से अभिनवकाल तक जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी तथा मानव वानस्पतिक आवरण का विनाश करके उसे कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित करता चला गया। दामरकुआ, हेचुआ, केलवारी, इंदलपुर खटोला, मुआरखास, घाना, धिल्ला, चरगुवान, सिमराई रामपुर, बहेरिया, पटाल, बरठोरी, नपनागढ़ चौतरथाटा, हीरापुर, खुदाल, उमरिया, धावरी, झिरठोरा, विसुनपुर, बरोडा हिनाद, खरेरा, अबचन्द, खेजराबाग, पथरिया, सहावन परसोनरिया, बक्स्वाह, खटोला, गहनरास, सहजपुरी, बीलाहरी, बम्बनी, पटना किशूनपुर, जैतनुपुर, नाहरमक सलवारा, आदि स्थानों पर आधुनिक समय में बस्तियों का विकास हुआ है जिनमें से कुछ गांव, कुछ ग्राम्य बाजारों और कुछ बड़े बाजार हैं तथा दमोह जिला मुख्यालय हैं। इन स्थानों पर अधिवास निर्माण, सड़क निर्माण और कृषि क्षेत्र के विकास के लिए निर्वनीकरण अधिक हुआ है परिणामतः जंगी नेवरा, पाथर, सुखा गहरानाला, गडोरी विजमानी, सजली आदि नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में अवनालिका अपरदन के कारण बीहड़ क्षेत्रों का अधिक निर्माण हुआ है। सोनार की मुख्य धारा के तीन ओर उच्चस्थ पठारी भाग हैं जिनके मध्य में अवसादों का जमाव हुआ है और इस ढीली मृदा पर वर्षा काल में लघु अवनालिकाओं का विकास अधिक हो जाता है और विस्तृत भूभाग बीहड़ क्षेत्र में परिवर्तित हो चुका है। निर्वनीकरण के कारण जैवविविधता का भी प्रचुरमात्रा में हास हुआ है।

मानव ने भौतिक भू-दृश्यों में खान-खोदने, सड़क निर्माण कृषि कार्य के विस्तार, अधिवास निर्माण तथा वन विनाश द्वारा अपरदन में वृद्धि के कारण पर्यावरण विघटन किया है। सड़क निर्माण के कारण बहुत बड़ी मात्रा में बालुका पत्थर की पहाड़ियाँ ब्लास्ट की गयीं और मलवा सड़क के किनारे ढेर के रूप में जमा कर दिया गया। जिसके कारण उस क्षेत्र में विद्यमान वानस्पतिक और जैव विविधताएँ नष्ट हो गयीं। गढ़कोटा और रहेली सेमरिया हाटा और दमोह तथा दमोह हिनौता मार्ग पर सड़क मार्ग के चौड़ीकरण के कारण जैवविविधता पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। सड़क के किनारे जमा हुआ मलवा ढीले पदार्थों के रूप में है जो वर्षा ऋतु में मूसलाधार वृष्टि के साथ अपक्षालित होकर लघु सरिताओं में चला जाता है जिसके कारण प्राकृतिक रूप से चलने वाला अपरदन का चक्र बाधित हो जाता है। साथ ही जहां पर ब्लास्टिंग का काम हुआ और बड़ी मात्रा में चट्टान चूर्ण स्थानान्तरित हुए वहां पर धरातल भारमुक्त हो गया तथा जो अपरदन प्राकृतिक नियम से वर्षों तक चलता है, वह निर्माण के कारण कुछ महीनों में ही सम्पन्न हो गया। अध्ययन क्षेत्र के प्रमुख मार्ग दमोह-रहेली, दमोह-पथरिया, दमोह-हिनौता और ढकोटा-देवालपानी आदि हैं जिनके निर्माण के कारण अनेक भूपर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हुई हैं।

यद्यपि पर्यावरणीय प्रकोप एवं विनाश चाहे वह प्राकृतिक हों या मानव जनित, धन-जन की क्षति के संदर्भ में जीवन समुदाय के लिए सामान्य रूप से तथा मानव समुदाय के लिए मुख्य रूप से विध्वंसक तथा संकटापन्न होते हैं। मानवजनित मृदा अपरदन भी मानवजनित प्राकृतिक विपत्तियों में से एक है। वास्तव में मानव क्रियाकलापों द्वारा मिट्टियों में ठोसपन, लसलसापन, लेपन, भुरभुरापन एवं अत्यधिक उपयोग के कारण उत्पन्न क्षति एवं अवनायन ही मृदा अपरदन कहलाती है। इस प्रक्रिया के कारण मिट्टियों की परिच्छेदिका के ऊपरी स्तर से उर्वरक तत्वों का

तेजी से निष्कासन हो जाता है, मिट्टी में जैविक तत्वों की कमी हो जाती है तथा मिट्टियों के भौतिक एवं रासायनिक गुण में भारी परिवर्तन हो जाते हैं। शोधार्थी ने गहन क्षेत्र सर्वेक्षण के समय इस तथ्य का अवलोकन किया कि अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न भागों में सोयाबीन, उड़द, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि की कृषि के लिए पर्यावरणीय प्रक्रमों को बाधित किया गया है। परिणामतः इन क्षेत्रों में विद्यमान ग्रामीण कच्चे मार्गों पर वर्षा ऋतु में वाहन से चलना तो बहुत दूर की बात है पैदल चलने पर भी एक फीट पैर अवसादों में फँस जाता है। इस प्रकार अध्ययन प्रदेश बीहड़करण, सामूहिक संचालन, मृदा अपरदन, वन विनाश के साथ मानवीय समस्याओं का क्षेत्र बन गया है। अध्ययन क्षेत्र पठारी क्षेत्र होने के कारण यहाँ पर मृदा की पतली परत पायी जाती है जिसका अनियंत्रित पशुचारण निर्वनीकरण और खनन के कारण तीव्रगति से क्षरण होता है। मात्र उन्हीं स्थलों की मृदा सुरक्षित है जो चतुर्दिक् उच्च पठारी क्षेत्रों में घिरी हुई है। सोनसारा गांव सगोनी बिजोरी आदि गांवों में मृदा अपक्षालन एक गंभीर समस्या है। शोधार्थी ने गहन क्षेत्र सर्वेक्षण के समय देखा कि यहाँ पर पशु बड़ी संख्या में चराये जाते हैं, जो विभिन्न प्रकार से प्राकृतिक वनस्पतियों का विनाश करते हैं। प्रवेश के लिए प्रतिबन्धित वन्य क्षेत्रों में भी अनियंत्रित पशुचारण होता है, जिससे पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न होती हैं।

अध्ययन क्षेत्र में बीहड़ निर्माण की प्रक्रिया में वे नदियाँ अधिक कार्यरत हैं जो जलोढ़ क्षेत्रों में प्रवाहित होती हैं। अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी पूर्वी भाग में प्रवाहित होने वाली नदी (गहरा नाला) जब उच्च पठारी भाग के नीचे उतरती है तो अपने साथ लाये गये कंकड़-पत्थर, बालू और बजरी के कणों को पठार के गिरिपदीय क्षेत्रों में निक्षेपित कर देती है बाद में इस ढीले और असंगठित जमाव पर बीहड़करण की प्रक्रिया तीव्रगति से होती है जिससे 12 मीटर तक गहरी अवनालिकाएं विकसित हो गयी हैं। जब यह नदी जलोढ़ क्षेत्रों में पहुँचती है तो इसके प्रवाह क्षेत्र में मानवीय अधिवास अधिक पड़ते हैं जिसके परिणामस्वरूप इसके प्रवाह क्षेत्र में निर्वनीकरण भी बहुत अधिक हुआ है तथा अधिवासों के पास स्थित नदियों के किनारे बीहड़करण अधिक हुआ है।

अध्ययन प्रदेश के जलोढ़ क्षेत्रों में मानसूनी वर्षा काल में भू-पृष्ठीय चीका मिट्टी में शक्तिशाली जल प्रवाह के कारण ऊपरी मृदा आवरण प्रवाहित हो जाती है और गलियों तथा अंगुल्याकार सरिताओं का विकास होता है जो प्रारम्भिक अवस्था में गहरे गर्तों की भांति होती हैं। वर्षा ऋतु में शीर्षवर्ती अपरदन के कारण गलियों की गहराई बढ़ने के कारण कंकड़ पैसे दिखाई पड़ने लगते हैं और गलियों की चौड़ाई पौधों की जड़ों द्वारा अवरुद्ध हो जाती है जिसके कारण गलियों का पार्श्ववर्ती अपरदन प्रारम्भ होता है। जब यह प्रक्रिया निरन्तर जारी रहती है तो कंकड़ भी प्रवाहित होने लगते हैं तथा जलज गर्तिकाओं का निर्माण होता है जिसके कारण गली वाले क्षेत्रों में लघु परन्तु अस्थायी जल प्रपातों का निर्माण हो जाता है तथा गलियों की दीवारों के सहारे कंकड़ बजरी युक्त चीका मिट्टी की तीन सतहें बन जाती हैं।

ऐतिहासिक साक्ष्य मध्य काल से उपलब्ध हैं जिसमें यह सिद्ध होता है कि जहाँ आज बीहड़ है वहाँ पहले उपजाऊ भूमि का विस्तार था जिनका अब पर्यावरणीय अपघटन हो गया है। गहन क्षेत्र सर्वेक्षण के समय शोधार्थी ने देखा कि इन क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या ने साधन वानस्पतिक आवरण का विनाश कर दिया है जिससे इस प्रकार के बीहड़ प्रदेशों का निर्माण तीव्र हो गया है। बीहड़ क्षेत्रों के परिष्कार के लिए निम्नलिखित कार्य किये जा सकते हैं –

1. बीहड़ क्षेत्रों को कृषि एवं पशुचारण से मुक्त किया जाय तथा यहां वनारोपण किया जाय। झरबेर, नींबू, संतरा, करौंदा जैसे वृक्ष लगाये जायें जो वर्षा के कारण होने वाले अपरदन को अवरुद्ध कर सकें।
2. गलियों का विकास फुटपाथों के सहारे तीव्रता से होता है अतः बीहड़ क्षेत्रों में एक ही मार्ग से मानव प्रवाह को रोका जाये।
3. बीहड़ क्षेत्रों में वृहद गलियों के मुहानों पर चेकबंद बनाये जाएं जिससे अपरदित मृदा प्रवाहित न हो सके तथा उसका जमाव गली में ही हो जाय। इससे मृदा के गली में निक्षेप के कारण गली धीरे-धीरे अवसाद से भरने लगेगी तथा गली का अपरदन एवं विस्तार बन्द होगा।

बंजर भूमि भारतीय ग्रामीण अंचलों की प्रमुख भूपर्यावरणीय समस्या है जिसके अन्तर्गत ऐसे क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है जहां भौतिक एवं मानवीय कारणों से मृदा में तैलीयकरण हो जाता है जिससे मृदा अनुर्वर, आर्थिक क्रियाओं में बाधक और निम्न उत्पादन क्षमता वाली हो जाती है (अनिल कुमार पाण्डेय, 1979)।

1. बंजर और अकृष्य क्षेत्र
2. कृष्य बंजर

अकृष्य बंजर भूमियों के अन्तर्गत ऐसे क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है जो कि अत्यधिक दुर्गम होने के कारण अकृष्य हो जाते हैं। अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी पूर्वी और पश्चिमी भाग पर अकृष्य बंजर भूमि की प्रधानता है क्योंकि यह भाग पूर्णतः पठारी है तथा इसका पथरीला भू-भाग कृषि कार्य में बाधा डालता है। शोधार्थी ने नरसिंहगढ़ में देखा था कि लघु मोनाडनाक पहाड़ियों पर कुछ दिन कृषि की गयी, पुनः जलाभाव के कारण उन्हें छोड़ दिया गया और सम्पूर्ण पहाड़ी वनस्पतिविहीन अनुपजाऊ बंजर हो गयी। कगार के पाद प्रदेशों एवं जलोढ़ क्षेत्रों में कृषि के अधिक उत्पादन के लिए अधिकाधिक रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाता है तथा वे क्षेत्र बंजर भूमियों में परिवर्तित हो जाते हैं जिन्हें कृष्य बंजर कहते हैं।

अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी पश्चिमी भागों में कृष्य बंजर की प्रधानता है। अध्ययन क्षेत्र की विभिन्न पहाड़ियों एवं कटकों पर पथरीले एवं नग्न शैल वाले बंजरों की प्रधानता है जो निर्वनीकरण के परिणाम हैं। इन बंजर भूमियों का परिष्कार वनारोपण द्वारा किया जा सकता है जिससे मिट्टी प्रवाहित न हो सके। बीहड़ क्षेत्र भी बंजर के ज्वलंत उदाहरण हैं जो निर्वनीकरण, अनियंत्रित चराई एवं अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियों के प्रतिफल हैं।

अपक्षय की विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा चट्टानों के विघटन एवं वियोजन द्वारा उत्पन्न खण्डित शैल पदार्थों को चट्टानपूर्ण या शैल अपशिष्ट कहा जाता है। इन शैल अपशिष्टों के ढाल के सहारे सामूहिक रूप से संचलन की प्रक्रिया के अन्तर्गत सामूहिक संचलन का अध्ययन क्षेत्र में विशेष स्थान है। द्रव्यमान संचलन के अंतर्गत शैलों से पदार्थों के विलगाव एवं उनके निचले ढाल की ओर गुरुत्वबल के प्रभाव ने सामूहिक रूप से परिवहन की क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है यद्यपि ऊपरी भाग से रासायनिक पदार्थों का निम्न ढाल की ओर संचलन गुरुत्व बल एवं स्थितिज ऊर्जा के कारण प्रेरित होता है। मनुष्य की क्रियाओं द्वारा पहाड़ी ढाल के ऊपरी भाग में समस्थितिक दशा विक्षुब्ध हो जाती है तथा ढाल विभंग एवं सामूहिक संचलन प्रारम्भ हो जाता है। शोधार्थी ने गहन क्षेत्र सर्वेक्षण के समय इस तथ्य का प्रत्यक्षानुभव किया कि वहां सड़कों के पार्श्ववर्ती भागों में भौतिक और रासायनिक अपक्षय के कारण पिण्ड विखण्डन की प्रक्रिया तीव्र गति से हो रही है।

आज विकास की अंधी प्रवृत्ति पर्यावरण को असंतुलित कर रही है जिसके परिणामस्वरूप बीहड़ीकरण, बंजरीकरण, ढाल विभंग, आग लगने की घटनाएं आदि बढ़ने लगी हैं। आपदायें प्राकृतिक एवं मानवजनित होती हैं जो जन-जीवन और धन की क्षति पहुँचाने के लिए अचानक तथा तेजी से घटित होती हैं। अध्ययन क्षेत्र में प्राकृतिक एवं मानव जनित विपत्तियों के अलावा अन्य समस्याएँ भी विद्यमान हैं जो इस प्रदेश के विकास में अवरोधक का कार्य कर रही हैं। इन समस्याओं में सूखे की स्थिति, आकस्मिक बाढ़, नगरीय वृद्धि, यातायात के अल्पसाधन, आवास समस्या, दूरसंचार की समस्या, महंगाई की समस्या, कमजोर परिवहन मार्ग, वन विनाश की समस्या, अपरदन और अवनालिका विकास तथा परिवहन का अल्प विकसित तंत्र है।

अध्ययन क्षेत्र के सघन सर्वेक्षण के उपरान्त शोधार्थी ने यह अनुभव किया कि गिरिपदीय क्षेत्र में अनेक छोटे आकार की बन्धियों (जलाशयों) की आवश्यकता है। अध्ययन क्षेत्र के पहाड़ी भागों पर शुद्ध जलाभाव की समस्या है। लोगों को शुद्ध पीने का जल लेने के लिए दूर-दूर तक कठिन पहाड़ी भागों से होकर जाना पड़ता है जो यहाँ की एक ज्वलन्त समस्या है। यातायात के साधन एवं मार्ग दोनों का पहाड़ी भागों पर कम पाया जाना भी वहाँ के लोगों की एक समस्या है। शोधार्थी ने गहन क्षेत्र सर्वेक्षण के समय पाया कि गिरिपदीय भागों में स्थित कुएं वर्षा के समय बाध्य जलरिसाव के कारण गन्दे जल के स्रोत हो जाते हैं, जिन्हें पीने के लिए ग्रामीण जनसंख्या विवश है।

अध्ययन क्षेत्र में एक तरफ जहाँ टर्शियरी युग से लेकर वर्तमान युग तक कार्यरत भूगर्भिक एवं अनाच्छादनात्मक प्रक्रमों में उत्थान, अवतलन, वलन, भ्रंशन, अपरदन, विघटन, वियोजन, सामूहिक संचलन एवं निक्षेप के माध्यम से उच्चावचीय जटिलता, बीहड़ीकरण, बंजर भूमि, नग्न शैल सतह, अनुर्वर मृदा आवरण, कमजोर ढाल परिच्छेदिका ने समस्यापद पर्यावरणीय परिस्थितियों को जन्म दिया है वहीं दूसरी तरफ पहाड़ी जनसंख्या, वन विनाश, अल्प साक्षरता, जनाधिक्य, अविकसित कृषि तकनीक, औद्योगिक पिछड़ापन अल्पविकसित यातायात एवं संचार के साधनों के कारण यहाँ विविध मानवीय एवं सांस्कृतिक समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं जिनका सामूहिक परिणाम यहाँ का सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन है।

नियोजन विकास की प्रक्रिया होती है जिसके दो प्रमुख उद्देश्य हैं, जिनमें पहला समाज का सर्वांगीण विकास तथा विकास की प्राप्ति एवं दूसरा सभी प्रकार के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के उपयोग द्वारा सामाजिक-आर्थिक विषमताओं को दूर करना है। पर्यावरण नियोजन का तात्पर्य विकासीय कार्यों के लिए पृथ्वी के नव्य तथा अनव्य

संसाधनों का विविध रूपों में उपयोग करना, दुर्लभ एवं बहुमूल्य संसाधनों का संरक्षण तथा स्वस्थ जीवन के पर्यावरण की गुणवत्ता का परीक्षण करना होता है (एल.आर. सिंह एवं सविन्द्र सिंह 1983)। सामान्यतः प्रकृति पारिस्थितिकीय संतुलन तथा पारिस्थितिक स्थिरता को कायम रखने के लिए स्वतः प्रयत्नशील रहती है परन्तु आधुनिक औद्योगिक समाज ने भारी औद्योगीकरण, प्रौद्योगिकीय क्रान्ति, परिवहन साधनों में तीव्र गति से वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध एवं लोलुपतापूर्ण विदोहन, भूमि प्रयोग में भारी वृद्धि, औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं नगरीय क्षेत्रों में अनियंत्रित एवं अनियोजित विस्तार द्वारा पारिस्थितिकीय संतुलन एवं पारिस्थितिकी स्थिरता को विक्षुब्ध एवं अव्यवस्थित कर दिया है। पर्यावरण प्रबन्धन इस प्रकार मनुष्य एवं पर्यावरण के बीच सम्बन्धों को सुधारने की प्रक्रिया है ताकि पर्यावरण एवं समाज दोनों की गुणवत्ता में सुधार हो सके।

अध्ययन क्षेत्र के पहाड़ी भागों में जनसंख्या का निवास दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में है तथा आधुनिक प्रविधि एवं सामाजिक व्यवस्था से कटे हुए हैं। उन्हें आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत लाकर प्रादेशिक विकास एवं आर्थिक उन्नयन में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करने हेतु पहाड़ी प्रदेश में यातायात के साधनों का विस्तार करना, पहाड़ी प्रदेश में यातायात के साधनों का विस्तार करना, शैक्षणिक सुविधाओं एवं सेवाओं को पहाड़ी भागों में विस्तृत करना तथा सर्वत्र स्वास्थ्य सेवाओं का फैलाव करना आवश्यक है। प्रदेश के पहाड़ी एवं कटक वाले क्षेत्र में बंजर एवं बीहड़ निर्माण की ज्वलन्त समस्या है जो अविवेकपूर्ण वन विनाश, अवैज्ञानिक कृषि पद्धति एवं अव्यवस्थित पशुचारण का परिणाम है जिनके उचित प्रबन्धन की तात्कालिक आवश्यकता है।

अध्ययन क्षेत्र में प्राकृतिक प्रकोपों तथा आपदाओं के प्रबन्धन के अन्तर्गत तीन पक्षों को सम्मिलित किया जा सकता है—(1) प्रकोपों से प्रभावित क्षेत्रों के लोगों तक राहत सामग्री को तुरन्त पहुंचाना, (2) प्रकोपों के सम्भावित आगमन की भविष्यवाणी करना एवं (3) प्राकृतिक प्रकोपों एवं आपदाओं के साथ समायोजन के उपाय करना। प्राकृतिक प्रकोपों, आपदाओं एवं पर्यावरणीय दशाओं में विश्व व्यापक परिवर्तनों का मापन तथा मानीटरिंग प्रकोप एवं आपदा प्रबन्धन के अत्यधिक महत्वपूर्ण पक्ष हैं। इस कार्य के अन्तर्गत प्रकोप से प्रभावित होने वाले क्षेत्रों का विभिन्न स्तरों पर अध्ययन किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में एक ऐसे तंत्र के विकास की आवश्यकता है जो विभिन्न भूपर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन एवं विश्लेषण करके उनके कारणों का खोज करें तथा उनके निराकरण एवं परिष्कार के सक्षम उपाय प्रस्तुत कर सकें।

#### सन्दर्भ—सूची

1. Anderson, H-W- (1957) : Relating Sediment Yield to Watershed Variables, Trans. Amer. Geophys. U. Vol-38, pp- 921-4.
2. Chorley, R.J. (1962) : Geomorphology and General System Theory, U.S. Geological Survey Professional Paper 500-B.
3. Dansereau, P., (1957) : Biogeography-An Ecology Perspective, The Press Co. New York.
4. Dubey, Alok (1985) : Trans-Yamuna Region of Allahabad District : A Study in Environment Geomorphology : A Thesis submitted to the Geography Department, Allahabad, University. under the supervision of Dr. Savindra Singh.
5. Keller, E-A- (1979) : Environment Geology, Charles E. Merrill Pub. Co. and Howell Co., Columbus, Ohio.
6. Kendrew, W.G., (1949) : "Climatology", 3, Ed. 61. 'Climate'. Oxford University Press, New York, pp. 566-68.
7. Lawson, A.C. (1932) : Rainwash Erosion in Humid Region, Bull Geol. Soc- Amer Vol. 43. pp. 703-24.
8. Melton, M.A. (1957) : 'An Analysis of the Relations Among Elements of Climate. Surface Properties and Geomorphology. Office of Naval Research Project NR 389-442. Tech. Rep. 11 Dept. Geol., Columbia University, New York, pp. 102.
9. Schumm, S.A. (1975) : Episodic Erosion : A Modification Over Erosion Cycle, in Theories of Landform Development, Edited by W.L. Melhorn and R.C. Flemal, Binghamton, NY State University of New York, pp. 70&85.

10. Trewartha, G.T. (1954) : 'An Introduction to Climate', McGraw & Co. Ltd., New York, St. Martin's Press.
11. Wadia, D.N. (1957) : "Geology of India", London Macmillan & Co. Ltd., New York, St. Martin's Press.
12. Ahmad, E. (1968) : Distribution and Causes of Gully Erosion in India, 21 St. International Geographical Union Congress (New Delhi), Selected Paper, Vol. I, pp.1-3
13. Ahmad, F. (1973) : Soil Erosion in India, Asis Publishing House, Mumbai.
14. Culling, W.E.H., (1963) : Soil Creep and the Development of the Hillside Slopes, J. Geol., Vol. 71, pp. 127-161.
15. Cooke, R.U. and Doornkamp, J.C., (1974) : Geomorphology in Environmental Management, Oxford University Press' Oxford.
16. Fisher, O. (1866) : On the Disintegration of A Chalk Cliff, Geological Magazine Vol. 3, pp. 354-356.
17. Hollingworth, S.E. (1938) : The Recognition and Correlation of High&level Erosion Surfaces in Britain : A Statistical Study, Quart. Joun. Geol. Soc, London, Vol. 94, pp. 84.
18. Sharma, H.S. (1968) : Genesis of Ravines of the Lower Chambal Valley, India; 21t International Geographical Union Congress India- Abstracts of Paper, pp. 18-19.
19. Sharma, H.S. (1980) : Ravine Erosion in India, Concept Pub. Comp. New Delhi, pp. 105-190.
20. Upadhyaya, D.P. and Shambhu Ram, (1993) : Analysis of Drainage Texture in Ambikapur Region. Uttar Bharat Bhoogol Patrika, Vol. 30.
21. Upadhyaya, D.P. & Shambhu Ram, (1994) : Denudational Chronology and Erosion Surfaces in Ambikapur Region. Human Relations, Vol. 2.
22. Upadhyaya, D.P. and Ajit Prakash (2001) : Morphometric Control on Rural Settlements in Western Rewa Highland Area : A Quantitative Analysis, Uttar Bharat Bhoogol Patrika. Vol. 37, No. 1 and 2 pp. 80-89.
23. Krishnan, M.S. : The Dharwars of Chhotanagpur : Their Bearing on Some Problems of Correlation and Sedimentation. Proc. Twenty Second Ind. Sc. Cong., Proc. As. Soc. Beng, Calcutta, pp. 176-203.
24. Yadava, Sanjai 2002 : Applied Geomorphology of Southern Damoh Upland, Ph.D. Thesis (Unpublished Submitted to V.B.S. Purvanchal University, Jaunpur.)
25. Singh, Sunita (2011) : Land Resource Utilization for Agriculture in Rohtas District Bihar, National Geographical Journal of India, Vol. 57, page 81-86.
26. Chopra, narayan (2011) : Land Use and Land Cover of a Part of Sonbhadra District, U.P. : A Geographical Analysis using Remote Sensing Data, National Geographical Journal of India, Vol. 57, p. 67-74.
27. Mishra, Kavita and Kumra, V.K. (2010) : Forest Resource Management Using Remote Sensing and GIS in Chandraprabha Basin, National Geographical Journal of India, Vol. 56, p. 9-18.
28. शम्भूराम एवं सिंह, संजय प्रताप (2011) : बीरमा बेसिन में भू-पर्यावरणीय समस्याएँ एवं सुझाव मंगलम्, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका, वर्ष-2, नं०-1, पृ० 95-103.
29. Prasad Gayatri (2012) : A Geomorphological Study of Physiographic Region and Landscape of Chindwara Plateau] Indian Research Journal of Social Science, Vol. 23, p. 188-194.

\* \* \* \* \*

## जनपद प्रतापगढ़ अपवाह तंत्र का भौगोलिक अध्ययन

डॉ. उदय प्रताप सिंह\*

**अध्ययन क्षेत्र** :—जनपद प्रतापगढ़ उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में 25034' उत्तरी अक्षांश से 26011' उत्तरी अक्षांश तथा 810119' डिग्री पूर्वी देशांतर से 820 27' पूर्वी देशांतर के मध्य विस्तृत है। इस जनपद का क्षेत्रफल 3,717 वर्ग किमी० है। पूर्व से पश्चिम इसकी लम्बाई 110 किमी० एवं उत्तर से दक्षिण इसकी लम्बाई 50 किमी है। जिले के उत्तरी भाग में सई नदी प्रवाहित होती हैं अन्य नदियों में गंगा, लोनी, पीली, गोमती, बकुलाही, रखवा आते हैं। इसके अतिरिक्त यहां जल के अनेक कृत्रिम स्रोत हैं। इसके उत्तर दिशा में सुल्तानपुर पूर्व दिशा में जौनपुर दक्षिण दिशा में इलाहाबाद एवं पश्चिम दिशा में रायबरेली जनपद है। जनपद में 45.54 प्रतिशत लोग कृषि पर आश्रित हैं। जनपद में कुल 5 तहसील सदर, कुंडा, लालगंज, पट्टी, रानीगंज तथा कुल 17 विकास खंड—प्रतापगढ़, सदर, साण्डवा, चंद्रिका, कुंडा, विहार, पट्टी, आसपुर, देवसरा, मानधाता, लक्ष्मणपुर, लालगंज, बाबागंज, कालाकाकर, गौरा, शिवगढ़, सागीपुर, रामपुर, संग्रामगढ़, बाबा, बेलखरनाथ हैं।

**अपवाह तंत्र और जलाशय** : प्रतापगढ़ जनपद मुख्यरूप से गंगा सई और गोमती नदियों द्वारा अपवाहित होता है। इस जनपद की दो महत्वपूर्ण नदी गंगा और गोमती है। इन प्रमुख नदियों के अतिरिक्त इस जनपद के अन्य भू-भागों में कुछ छोटी नदियां प्रवाहित होती हैं जनपद के विभिन्न भागों में अनेक छोटे बड़े जलाशय एवं झील भी स्थित है।

**गंगा नदी** : भारत देश की ही नहीं, अपितु संसार की सबसे पवित्र नदी के रूप विश्वविख्यात गंगा नदी इस जनपद की प्रमुख नदी है। यह नदी नगाधिराज हिमवान हिमालय के बर्फीले क्षेत्र से निकल कर उत्तर काशी, हरिद्वार, बदायु, फतेहपुर कानपुर होती हुई जनपद के दक्षिणी पश्चिमी सीमा से यह 50 किमी तक प्रवाहित होती है। यह नदी जिस स्थान पर जनपद में प्रवेश करती है, कालाकांकर के मुरसापुर ग्राम में तीव्र मोड़ बनाती है। मुरसापुर में गुटुनी तक गंगा नदी मानिकपुर किले के निकट पुराने तट के सहारे प्रवाहित होती है। गुटुनी से 19 से 24 किमी० पूरब की तरफ इसकी घाटी चौड़ी हो जाती है, जबकि अन्य स्थानों पर इसकी घाटी संकरी है। इस नदी का निचला भाग झाऊ (घास) के जंगलों से युक्त है जिसमें अनेक प्रकार के जंगली जानवर नील गाय, खरगोश, भेड़िया आदि रहते हैं। इसका कुछ भाग चारागाह के रूप में तथा कुछ भाग कृषित भूभाग के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इस नदी के किनारे अपेक्षाकृत कम अपरदित है इसमें नालों की संख्या बहुत ही कम है इसके किनारे कुछ स्थान पर सीढ़ीनुमा है।

प्रतापगढ़ जनपद के अंतर्गत 'द्वार' नदी गंगा की एक मात्र सहायक नदी है। जो 'परियुली' ताल से निकलकर दक्षिण पूर्व दिशा में घूमती हुई गंगा नदी की समानान्तर प्रवाहित होती है। द्वार नदी और गंगा नदी के मध्य ऊँची जमीन स्थित है।

**सई नदी** : यह नदी हरदोई जनपद के उत्तरी भाग से निकलती हुई लखनऊ, उन्नाव और रायबरेली होती हुई प्रतापगढ़ के मध्यवर्ती भाग में अठेहा ब्लाक के मुस्तफाबाद ग्राम के निकट इस जनपद में प्रवेश करती है। रामपुर और अठेहा के मध्यवर्ती भाग में सीमा बनाती हुई यह नदी कुछ किमी० पूर्व दिशा में प्रवाहित होती है। इसके बाद यह नदी प्रतापगढ़ परगना से आगे चलकर अनेक बड़े-बड़े मोड़ बनाती हुयी प्रतापगढ़ शहर में प्रवेश करती है, जहां से यह नदी दक्षिण पूर्व दिशा में प्रतापगढ़ तहसील के सीमा पर्यन्त तक प्रवाहित रहती है। पट्टी तहसील के खम्बर ग्राम के सन्निकट प्रवेश करते समय उत्तर की तरफ मुड़ती है तथा प्राचीन राजा केकोट "वलखर" तक प्रवाहित होती है। इसके बाद यह नदी दक्षिण पूर्व में प्रवाहित होती हुई "दनवा" के निकट जौनपुर जनपद में प्रवेश करती है।



ग्रीष्म काल में यह नदी पतली छिछली और आसानी से पार उतरने योग्य हो जाती है, जबकि वर्षा काल में इस नदी में जल की मात्रा अधिक हो जाने के कारण भयानक रूप ले लेती है। नदी का प्रवाह बेग तीव्र हो जाने के कारण धन-जन की अपार हानी होती है, संपूर्ण मार्ग पर्यन्त इसका टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग तथा नदी का बलरवा कर प्रवाहित होना इस नदी की प्रमुख विशेषता है। प्रायः यह देखा गया है कि नदी की तलहटी प्रतिरोधी और कठोर चट्टान एवं कंकड़ से युक्त परतों से निर्मित है, जिससे बाध्य होकर नदी मुड़कर आपेक्षाकृत मुलायम चट्टानों को काटती छाटती है। अनेक स्थानों पर सई नदी के किनारे काफी ऊँचे और सपाट हैं। जबकि कुछ स्थानों पर किनारे कटे फटे हैं जो नालो द्वारा काट दिये गये हैं, कुछ अन्य स्थानों पर कटाव नदी के तलहटी के तरफ हुआ है।

सई नदी की कई सहायक नदियाँ भी हैं, इसमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं। इसकी एक सहायक नदी नैया है, जो रायबरेली जनपद से निकलती है और अठेहा परगना में उत्तर दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती है जो आगे चलकर सई नदी में मिल जाती है। इसके किनारे प्रायः ऊँचे हैं, जो बालू कंकड़ व छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़ों से निर्मित हैं। सई नदी के किनारे काफी कटे-फटे हुये हैं।

सई नदी की दूसरी सहायक नदी 'चमरौड़' है यह नदी अपेक्षाकृत कुछ उथली है। यह सई नदी बेलाघाट के निकट नैया नदी के संगम से 23 किमी० पूर्व दिशा में आने पर सई नदी से मिल जाती है। नैया नदी सुल्तानपुर जनपद से निकलकर पट्टी तहसील के उत्तरी पश्चिमी भाग से होती हुई प्रतापगढ़ परगना के मध्यभाग से प्रवाहित होती है। सई नदी की अन्य सहायक नदियाँ पर्यत, छोड़या, लोनी, सरकनी, बकुलाही आदि मुख्य हैं।

**गोमती नदी :** प्राचीन काल से आदि गंगा गोमती के नाम से विख्यात पवित्र गोमती नदी प्रतापगढ़ जनपद के सुदूर उत्तर पूर्वी किनारे पर जनपद की सीमा के अन्तर्गत लगभग 6 किमी० तक प्रवाहित होती है।

**जलाशय :** प्रतापगढ़ जनपद के धरातलीय अपवाह तंत्र में जलाशय का विशिष्ट स्थान है। इस जनपद में अनेक विशाल जलाशय तथा दलदल हैं। महत्वपूर्ण कृषित जिला होने के कारण जलाशयों का महत्व निरन्तर बना रहता है। जिस स्थान पर जलाशय पाया जाता है वहाँ पर स्थानीय स्तर अन्तर्देशीय प्रवाह प्रस्तुत करता है। इनमें से कुछ जलाशय गर्मियों में सूख जाते हैं क्योंकि इन जलाशयों के पानी को सिंचाई के लिये अधिकता से निकाल लिया जाता है। इस प्रकार के जलाशय पट्टी तहसील में रामपुर और बिहार परगना क्षेत्रों में पाये जाते हैं। "नोवेहरा" झील जो पट्टी तहसील में स्थित है यह जनपद की सबसे बड़ी झील है जो वर्ष भर पानी से युक्त रहती है। यहाँ पर सिरसी, रंगवली और निभान मुख्य जलाशय हैं। कुण्डा तहसील में जलाशयों की संख्या अधिक है।

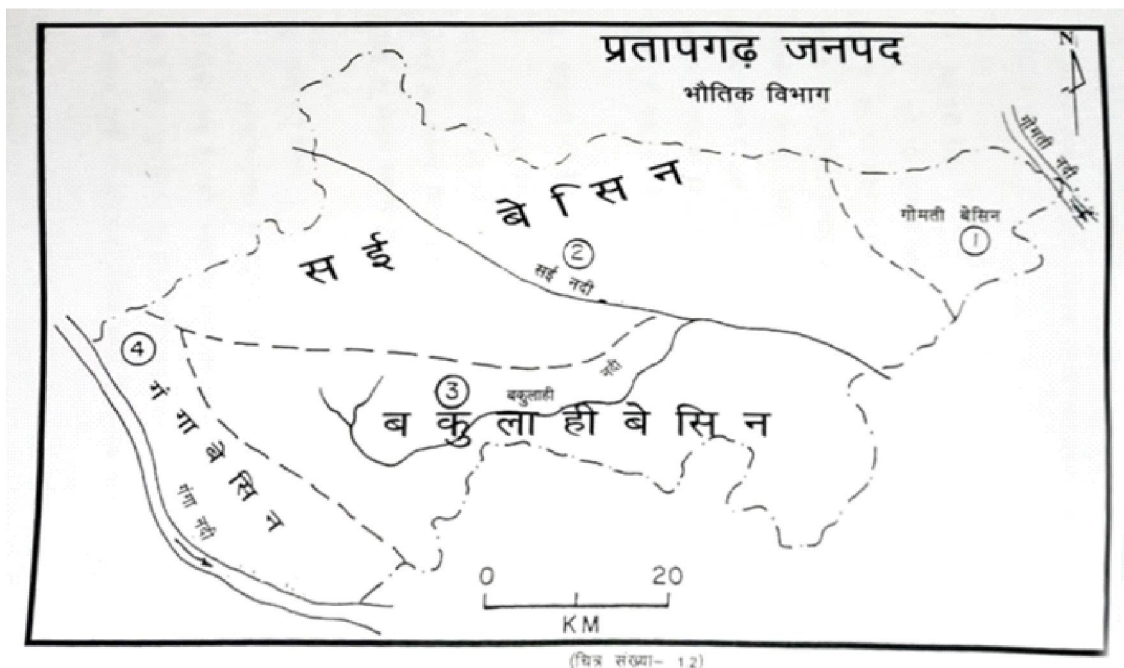
द्वार नदी और गंगा नदी के मध्य एक पट्टी के रूप में धरातलीय दृष्टि से एक निचला भाग अवस्थित है जिसे वेन्ती झील कहा जाता है जो 18 वर्ग किमी० में विस्तृत है।

**भौतिक प्रदेश :** धरातलीय विशेषता अपवाह, उच्चावच एवं मिट्टी के आधार पर अध्ययन क्षेत्र को निम्नांकित भौतिक विभागों में विभक्त किया गया है। (चित्र)

1. गोमती नदी बेसिन
2. सई नदी बेसिन
3. बकुलाही नदी बेसिन
4. गंगा नदी बेसिन

**1. गोमती नदी बेसिन :** इस नदी बेसिन का विस्तार प्रतापगढ़ जनपद के उत्तरी-पूर्वी भाग में विशेषकर आसपुर देवसरा, पट्टी और मगरौरा विकास खण्डों में है। सामान्यतः यह एक समतल एवं उपजाऊ भूक्षेत्र है। जिसका ढाल पश्चिम से पूर्व की तरफ है। इस भौतिक प्रदेश के अंतर्गत प्रतापगढ़ जनपद का लगभग 14 प्रतिशत भाग सम्मिलित है।





**2. सई नदी बेसिन :** इस नदी बेसिन के अंतर्गत प्रतापगढ़ जनपद का लगभग 50 प्रतिशत भाग आता है। इस नदी बेसिन का विस्तार उत्तरी पश्चिमी व मध्यवर्ती भूभाग में है। इसके अंतर्गत संडवा चन्द्रिका, सांगीपुर, प्रतापगढ़ सदर, रामपुर खास तथा आंशिक रूप से कालाकांकर, लक्ष्मणपुर, बाबागंज, बिहार, शिवगढ़, मगरौरा, और पट्टी विकास खण्डों के भूभाग आते हैं। यह भू भाग नालों, तालों तथा उबड़-खाबड़ भूभागी सतह के लिये जाना जाता है। इन तालों के कारक क्षेत्र का एक विस्तृत भू-भाग जलभराव की समस्या से ग्रस्त रहता है।

**3. बकुलाही नदी बेसिन :** प्रतापगढ़ जनपद का दक्षिणी पूर्वीभाग बकुलाही नदी बेसिन के नाम से जाना जाता है। इस नदी बेसिन के अंतर्गत मान्धाता विकास खण्ड का आंशिक भू-भाग तथा शिवगढ़, बिहार, बाबागंज विकासखण्ड के भू-भाग आते हैं। इस नदी बेसिन का विस्तार प्रतापगढ़ जनपद के चौथाई भू-भाग पर है।

**4. गंगा नदी बेसिन :** प्रतापगढ़ जनपद का सुदूरवर्ती दक्षिणी पश्चिमी भू-भाग गंगा नदी बेसिन के अंतर्गत आता है, यद्यपि जनपद का संपूर्ण क्षेत्र ही गंगा नदी बेसिन का ही एक अंग है लेकिन सूक्ष्म विवेचन हेतु इसका पुर्नविभाजन किया गया है। इस नदी बेसिन के अंतर्गत कुण्डा एवं कालाकांकर विकास खण्डों के भू-भाग आते हैं। संपूर्ण भू-क्षेत्र में प्राकृतिक वनस्पति का अभाव पाया जाता है क्योंकि इस भाग पर कृषि उत्पादन बहुतयता से किया जाता है यह भूभाग प्रतापगढ़ जनपद का लगभग 12% भाग अपने में समाहित किए हुए हैं।

#### सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. District Gazatiar Pratapgarh U.P.
2. Boden, Powell B.H. Land System of British India VOL. 1 1892, LONDON
3. Singh, R.L. 1974 Ancient India (Delhi : Motilal Banarasi Das) pp 29-30
4. Singh, R.L. and Kashinath Singh, Evolution of Medieval Towns in the Saryupar Plain of the Middle Ganga Vally Nat GEOGRAPHY JOURNAL OF INDIA VOL. 20 1974 pp 12 -19
5. व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित अध्ययन

\* \* \* \* \*

## कृषि एवं आनुषंगिक व्यवसाय का अध्ययन जनपद गाजीपुर ( उ.प्र. ) के विशेष संदर्भ में

डॉ. कमलेश कुमार\*

प्रागैतिहासिक काल से ही कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति का मूलाधार रही है। जो मानव की विविध आवश्यकताओं (मूलतः भोजन) की पूर्ति हेतु की जाने वाली प्राचीन व्यवसाय है। इसी व्यवसाय के साथ मानव ने अपनी सुसंगठित जीवन पद्धति की शुरुआत की थी। आज कृषि केवल जीविकोपार्जन का आधार ही नहीं है बल्कि अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। जो विभिन्न उद्योगों हेतु कच्चे माल की आपूर्ति करती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में खाद्यान्न आपूर्ति के लिए प्रयास स्वरूप हरितक्रान्ति का समावेश हुआ। खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि हुई, लेकिन यह उत्पादन बढ़ती जनसंख्या के परिवेश में कम रहा है। अध्ययन क्षेत्र गहन निर्वाहन कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत आता है, जहाँ खाद्य फसलों का उत्पादन जीवन निर्वाह के लिए किया जाता है। क्षेत्र में भौगोलिक विभिन्नताओं के कारण कृषिगत फसलों में विभिन्नताएं पायी जाती है। यहीं नहीं बल्कि यहाँ एक ही प्रकार की मिट्टी, जलवायु, एवं अन्य भौगोलिक परिस्थितियों में कई फसलों का संयोग देखने को मिलता है। यहाँ के कृषक वही सब पैदा करते हैं 'जो प्रतिदिन खाते हैं'। उत्तर प्रदेश के दक्षिणी पूर्वी अंचल में अवस्थित गाजीपुर जनपद 25019' उत्तर से 25054' उत्तरी अक्षांश तथा 83004' पूर्व से 83058' पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है। इसका पूर्वी-पश्चिमी एवं उत्तरी-दक्षिणी अधिकतम फैलाव क्रमशः 90 किमी० एवं 64 किमी० है। भौगोलिक दृष्टि से यह जनपद मध्य गंगा मैदान में स्थित निचली गंगा-घाघरा दोआब का भू-भाग है। गंगा नदी इस क्षेत्र की प्रमुख जल धारा है। धरातली दृष्टि से यह क्षेत्र समतल मैदान है जिसकी एक रूपता कहीं-कहीं नदियों, नालों एवं ताल-तलैयाँ द्वारा भंग होती है। गंगा-गोमती तथा उसकी सहायक नदियों करमनाशा, गांगी, मंगई, बेसू, छोटी सरजू, भैंसही व उदन्ती के आस-पास ऊँचे-नीचे धरातल, टीले, कगार, खड्ड भूमि एवं बीहड़ों का निर्माण हुआ है। समुद्र तल से औसत उँचाई 70 मीटर है।

अध्ययन क्षेत्र का सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल 3332.09 वर्ग किमी० है। जिसमें 2541.96 वर्ग किमी० क्षेत्रफल कृषिगत भूमि के अन्तर्गत आता है जो समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल का 76.29 प्रतिशत है। कृषिगत भूमि के सर्वाधिक, मानवोपयोग से सिद्ध हो रहा है कि यहाँ की अर्थ संरचना कृषि पर आवलम्बित है। यहाँ कृषि पर जनभार बहुत अधिक है इसका कारण आजीविका के अन्य साधनों का अभाव तथा बढ़ती हुई जनसंख्या है। इसके कारण प्रति व्यक्ति कुल भूमि उपलब्धता में निरन्तर कमी होती जा रही है। वर्ष 1981 में अध्ययन क्षेत्र में प्रति व्यक्ति कुल भूमि उपलब्धता (ग्रामीण) 0.1713 एकड़ थी जो वर्ष 2001 में घटकर 0.1097 एकड़ रह गयी है। कृषि में पशुओं का महत्व अधिक है। आज भी जबकि कृषि के विविध आधुनिक यन्त्र एवं उपकरण सुलभ हैं, कृषि कार्य में पशुओं का उपयोग किया जाता है। कृषि का परम्परावादी दृष्टिकोण से संचारित होना जर्जर अर्थतन्त्र को आमन्त्रित करता है। यहीं नहीं गंगा-गोमती एवं इनकी सहायक नदियों की घाटियों में स्थित होने के कारण बाढ़ की आशंकाएं बनी रहती है। मौसम की अनिश्चितता भी क्षेत्र की कृषि पर कुटाराघात करती है। क्षेत्र में नील गायों के आतंक के कारण खाद्य फसलों का अधिकाधिक नुकसान हो रहा है।

\* प्रवक्ता, भूगोल विभाग, आचार्य बलदेव पी.जी. कॉलेज कोपा, पतरही, जौनपुर, सम्बद्ध, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विविद्यालय, जौनपुर ( उ.प्र. )

कृषि भौतिक पर्यावरण के तत्वों एवं मानवीय क्रिया-कलाप, उसके वैज्ञानिक प्रयोग एवं कला कौशल पर विकसित होती है। जो प्रत्येक क्षण परिवर्तनशील है। अतः क्षेत्र की कृषिगत विशेषताओं यथा- फसलों उत्पादन, शस्य वर्गीकरण, शस्य सघनता इत्यादि में प्रायः अनिश्चितता पायी जाती है। अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत रबी, खरीफ एवं जायद की फसलों का उत्पादन किया जाता है। इस क्षेत्र में फसलों की विविधता अधिक पायी जाती है। एक ही खेत में एक साथ कई फसलें उगाई जाती हैं जिसे बहुफसल उत्पादन पद्धति या एकाधिक फसलोत्पादन पद्धति कहते हैं। अध्ययन क्षेत्र में शस्य वितरण में क्षेत्रीय एवं सामयिक विभेद मिलता है। कृषिगत शस्य स्वरूपों पर मिट्टी जोत का आकार, सिंचाई बाजार सुविधा, सामाजिक व्यवस्था एवं परम्पराओं का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

अध्ययन क्षेत्र में उगायी जाने वाली खरीफ की फसलें लगभग वर्षा ऋत्तिक हैं जिनमें धान, मक्का, ज्वार-बाजरा, सनई, गन्ना, अरहर, मूँग, मसूर, उर्द, तिल्ली, चारा आदि उत्पन्न की जाती हैं। जबकि रबी की फसलें कृत्रिम जलापूर्ति के साधनों पर निर्भर होती हैं। गेहूँ, जौ, चना, मटर, लाही, सरसों, मूँगफली, मसाला, आलू, सब्जियाँ, प्याज, बरसीम आदि रबी की प्रमुख फसलें हैं। जायद की फसलों में सब्जियाँ, चरी, मक्का, मूँग, खरबूजा, ककड़ी, इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है। दैनिक आवश्यकता की पूर्ति एवं बढ़ती हुई मँहगाई को ध्यान में रखते हुए क्षेत्र के ग्रामीण कृषकों द्वारा व्यावसायिक एवं मुद्रादायिनी फसलों जैसे- गन्ना, सब्जियाँ, मसाले, केला, पपीता, मूँगफली, तम्बाकू, कपास इत्यादि की खेती की जाती है।

**आनुषंगिक व्यवसाय :** अध्ययन क्षेत्र में परम्परागत जीविकोपार्जन कृषि के साथ उससे सम्बन्धित कई आनुषंगिक कृषि (व्यवसाय) भी किए जाते हैं जिसे कृषि में व्यावसायिकरण एवं विविधीकरण भी कहा जा सकता है। कृषि से सम्बन्धित आनुषंगिक व्यवसाय की प्रवृत्ति ने विविध प्रकार के लाभदायी कृषि कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया है। इससे कृषि में नयी सम्भावनाएं जगी हैं। नयी प्रौद्योगिकी, उर्वरक, सिंचाई की सुविधा, कृषि सुरक्षा के उपाय, विपणन की सुविधा, यातायात एवं संचार की सुविधा का विकास आदि ने, आनुषंगिक व्यवसाय को प्रभावित किया है। उदासीकरण एवं भूमण्डलीकरण ने भारतीय कृषि के आधुनिकीकरण के नये द्वार खोले हैं परिणाम स्वरूप दुग्धोत्पादन, मत्स्य पालन, रेशम कीट पालन, कुक्कुट पालन बागवानी, फूलों की खेती, मधुमक्खी पालन, कृषि वानिकी आदि कृषि से सम्बन्धित आनुषंगिक व्यवसाय विकसित हुए हैं। भारतीय कृषि में क्रान्तियों के रूप में कृषि का विविधीकरण किया जा रहा है। इन क्रान्तियों में श्वेत क्रान्ति दुग्ध उत्पादन से, हरितक्रान्ति अनाज उत्पादन से, नीली क्रान्ति मछली उत्पादन से तथा पीली क्रान्ति खाद्य तेल उत्पादन से सम्बन्धित है।

**(i) पशुपालन एवं दुग्धोत्पादन :** अध्ययन क्षेत्र पशुओं की बहुत सी नस्लें पायी जाती हैं। इनमें से गाय, बैल, भैंस, बकरा-बकरी, सूअर, घोड़े-टट्टू, ऊँट, गदहा आदि पशुओं को पालतू बनाया गया है। अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2003 में कुल गोजातीय पशुओं की संख्या 2,58,430, महिष जातीय पशुओं की संख्या 2,96,395 भेड़ों की संख्या 46,428, बकरा-बकरी की संख्या 2,50,094, सूअरों की संख्या 15,302 थी (तालिका संख्या 1)।

#### तालिका संख्या 1

##### गाजीपुर जनपद में पशुधनों की संख्या एवं वृद्धि

क्र.सं.	पशुधन	वर्ष		वृद्धि (1997-2004)
		1997	2004	
1.	गोजातीय (गाय-बैल)	408769	258430	- 150339
2.	महिष जातीय (भैंस-पड़वा-पड़िया)	272164	296395	+ 24231
3.	भेड़	71481	46428	- 25053
4.	बकरा-बकरी	241161	250094	+ 8933
5.	सूअर	26649	15302	- 11347
6.	घोड़े-टट्टू	1951	1674	- 277
7.	अन्य पशु	8874	151031	+ 142157
8.	कुक्कुट	455699	489597	+ 33898

स्रोत:- सांख्यिकीय पत्रिका, जनपद गाजीपुर 1997 एवं 2004. समाजार्थिकी समीक्षा, जनपद गाजीपुर 2004.

इन पशुओं का उपयोग दूध, मांस, ऊन, चमड़ा प्राप्त करने के लिए तथा भार वाहन एवं सवारी के लिए किया जाता है। गाजीपुर जनपद दुग्ध उत्पादन में पूर्वांचल में अपना प्रमुख स्थान रखता है। गाजीपुर जनपद में दुग्ध योजनाओं के महत्वपूर्ण केन्द्र सैदपुर (औड़िहार), सादात, जमानियां, कासिमाबाद, रेवतीपुर, मनिहारी, मरदह, जखनियां, देवकली इत्यादि हैं। अध्ययन क्षेत्र में दुग्ध उत्पादन का विकास श्वेत क्रान्ति का परिणाम माना जाता है। इस अभियान के कारण दुग्ध उत्पादन में आशातीत प्रगति हुई। श्वेत क्रान्ति की सफलता में ग्रामीण सहकारी संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के कारण गाजीपुर जनपद का दुग्ध उद्योग और अधिक विकसित होने एवं भारतीय बाजार में सहभागिता की और अधिक सम्भावनाएं बढ़ी हैं।

**(ii) मत्स्य पालन :** मत्स्य पालन जल कृषि का एक महत्वपूर्ण अंग है इसे नीली खेती भी कहते हैं। गाजीपुर जनपद में मत्स्य पालन की अनुकूल दशाये विद्यमान है। यहाँ गंगा, गोमती एवं अन्य सहायक नदियों, विभिन्न नहरों तथा ताल-तलैयाँ का लम्बा क्षेत्र फैला हुआ है। इन सब की उपलब्धता से गाजीपुर जनपद में मत्स्य पालन की सम्भावनाएं अधिक हैं। सरकार ने मत्स्य पालन की सम्भावनाओं को साकार बनाने के लिए मत्स्य विकास योजनाएं बनाई हैं। इसके अन्तर्गत मत्स्य पालकों को प्रशिक्षण एवं आर्थिक सहायता दी जाती है। विचौलियों से बचने के लिए मत्स्य विपणन की व्यवस्था की गयी है।

**(iii) रेशम कीट पालन :** रेशम का उत्पादन करने के लिए रेशम कीट का पालन किया जाता है। रेशम के कीड़े शहतूत, महुआ, बेर, साल इत्यादि की पत्तियों पर पाले जाते हैं। अध्ययन क्षेत्र में रेशम का उत्पादन किया जाता है। यहाँ पर मलवरी कच्चे रेशम का अधिक उत्पादन किया जाता है। गाजीपुर जनपद के लगभग सभी विकासखण्डों के कुछ विशेष गाँवों में सरकार द्वारा ग्राम पंचायतों से भूमि लेकर रेशम के कीट पाले जाते हैं। वर्तमान समय में यह बहुत आकर्षक व्यवसाय बन गया है। सरकार इस व्यवसाय के विकास के लिए प्रयत्नशील है। केन्द्रीय सिल्क बोर्ड किसानों को इस व्यवसाय का प्रशिक्षण एवं वित्तीय सहायता उपलब्ध करा रहा है।

**(iv) कुक्कुट पालन :** इसके अन्तर्गत मुर्गी-चूजे, बत्तक इत्यादि पाले जाते हैं, इनसे मांस अण्डे एवं पंख प्राप्त किए जाते हैं। कुक्कुट पालन से कृषि के साथ अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। गाजीपुर जनपद के लगभग सभी विकास खण्डों में कुक्कुट पालन किया जाता है। जनपद के प्रायः सभी बाजारों एवं नगरों के आस-पास कुक्कुट फार्म पाये जाते हैं। सांख्यिकीय पत्रिका जनपद गाजीपुर के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1997 में सम्पूर्ण जनपद में 455,699 मुर्गियां थी जो 2003 में बढ़कर 4,89,597 हो गयी। इस प्रकार पिछले 6 वर्षों में कुल 33,898 मुर्गियों की वृद्धि हुई। इससे यह ज्ञात होता है कि जनपद में कुक्कुट उद्योग प्रगति की अवस्था में है।

**(iv) बागवानी :** अध्ययन क्षेत्र में बागवानी कार्यक्रम को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। बागवानी के अन्तर्गत फलों की खेती को स्थान दिया जाता है। इसमें आम, अमरुद, केला, पपीता, बेर, नीबू, कटहल, सन्तरा, अंगूर आदि फल उल्लेखनीय हैं। अध्ययन क्षेत्र में कुल फलों के उत्पादन अधिकांश आम, केला, पपीता आदि से सम्बन्धित है। गंगा नदी के आस-पास के सभी विकासखण्डों में इन फलों की वृक्षों की अधिकता है।

**(v) फूलों की खेती :** गाजीपुर जनपद में फूलों का उपयोग प्राचीन काल से हो रहा है। यहाँ विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों, सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों में फूलों का उपयोग होता है। पहले इसका उत्पादन स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जाता था लेकिन वर्तमान समय में वाराणसी महानगर में इसकी मांग है अतः अब क्षेत्र में व्यावसायिक दृष्टि से इसकी खेती हो रही है। गाजीपुर जनपद में फूलों की खेती की बहुत अच्छी सम्भावनाएं हैं। गेंदा, गुलाब, गुलदाउदी, चमेली इत्यादि यहाँ के प्रमुख फूल हैं। गाजीपुर जनपद में अफीम की भी कृषि की जाती है जिससे सरकार विभिन्न प्रकार की दवाईयां बनाती है।

**(vi) मधुमक्खी पालन :** यह कृषि का एक पूरक व्यवसाय है। यह किसान का आय बढ़ाने एवं रोजगार सृजित करने वाला व्यवसाय है। गाजीपुर जनपद में इस व्यवसाय के विकास की अच्छी सम्भावनाएं हैं। गाजीपुर में अधिकांश मधु का उत्पादन खादी ग्रामोद्योग करता है।

**(vii) कृषि वानिकी :** किसानों के लिए वानिकी महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम से बंजर एवं बेकार भूमि को उत्पादक बनाया जा सकता है। ईंधन एवं इमारती लकड़ी प्राप्त की जा सकती है। यह कार्यक्रम रोजगार बढ़ाने में भी सहायक है।

कृषि वानिकी कार्यक्रम पर्यावरण सुधार में बड़ा सहायक है। यह वनों में हो रहे निरन्तर ह्रास का पूरक भी है इसके अन्तर्गत वृक्षों को दूर-दूर लगाकर अथवा मेड़ों पर लगाकर कृषि भी की जा सकती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सागौन, पापुलर एवं यूकेलिप्टस आदि वृक्ष अधिक लगाये गये हैं।

अध्ययन क्षेत्र कृषि प्रधान समतल मैदानी क्षेत्र है। इस क्षेत्र की आर्थिक व्यवस्था कृषि एवं सम्बन्धित व्यवसायों से प्रभावित है। ऋतुओं की परिवर्तनशीलता ने पशुपालन, दुग्धोत्पादन, मत्स्य पालन, रेशम कीट पालन, कुक्कुट पालन, बागवानी, फूलों की खेती, मधुमक्खी कृषि वानिकी आदि को स्पष्ट रूप से प्रभावित करता है।

#### सन्दर्भ-सूची

1. जिला जनगणना हस्त-पुस्तिका, गाजीपुर : 1971, 1981, 1991 एवं 2001 द्वारा संगणित.
2. लेखपाल का मिलान खसरा, फार्म प-4, 2005-06.
3. राम, वासुदेव 1996 : 'गाजीपुर जनपद में सामाजिक-आर्थिक विकास एवं अवस्थापनात्मक नियोजन'; शोध प्रबन्ध (अप्रकाशित), पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, पृ. 50
4. सांख्यिकी पत्रिका, जनपद गाजीपुर, 1986, 1994 एवं 2004 अर्थ एवं संख्या प्रभाग, राज्य नियोजन संस्थान, (उ०प्र०).
5. समाजार्थिकी समीक्षा, जनपद गाजीपुर 2005 : अर्थ एवं संख्या प्रयाग, राज्य नियोजन संस्थान, उत्तर प्रदेश.
6. सिंह अशोक कुमार, 1986 : जनपद गाजीपुर में भूमि संसाधन एवं जनसंख्या : एक भौगोलिक अध्ययन, शोध प्रबन्ध बी. एच. यू., पृ. 1-20.
7. District Gazetteer, District Ghazipur (1982)
8. Ghazipur, A : Gazetteer by H.R. Nerell I.C.S.
9. Singh, Rakesh Kumar; 1988 : A Geographical Study of Rural Area Development a Cases Study of Ghazipur District, Ph.D. Thesis (Unpublished) B.H.U. p. 1-32.
10. Singh, Shakuntala; 1991 : Spatial Organization of Infrastructural Framework and Rural Development Case Study of District Ghazipur; Ph.D. Thesis (Unpublished) B.H.U.

\* \* \* \* \*

## अकबरपुर नगर में जनसंख्या वृद्धि का एक भौगोलिक अध्ययन

संतोष कुमार सिंह\* डॉ. (श्रीमती) पुष्पा सिंह\*\*

अकबरपुर कस्बे का भौगोलिक स्वरूप जनपद अम्बेडकरनगर के मुख्यालय के रूप में तमसा तट पर घाघरा के दक्षिण में स्थापित है। यह क्षेत्र शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु के अन्तर्गत आता है। यहाँ के गर्म वातावरण के प्रभाव के कारण बच्चों में जन्मदर की प्रायः अधिकता देखी जाती है। कम आयु वर्ग के युवक एवं युवतियाँ सृष्टि-संचालन-सूत्र के निर्माण में सक्षम होते हैं। अल्पायु से बच्चों को जन्म देने के कारण परिपक्व अवस्था तक इनमें सन्तानोत्पत्ति की शक्ति होती है, जिससे जन्मदर में वृद्धि का होना स्वाभाविक है। अकबरपुर में बढ़ती जनसंख्या के प्राथमिक कारक के रूप में पहचाने जाने वाले जन्म दर की प्रवृत्ति को उच्च रूप में देखा जा सकता है, जिससे यहाँ की जनसंख्या में वृद्धि का होना स्वाभाविक है और इसी बढ़ती जनसंख्या का प्रभाव है कि यहाँ औसत दर्ज में प्रतिवर्ग किमी० लोगो की आबादी निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसी बढ़ती जनसंख्या व अधिवासीय संघनता के कारण व्यापक स्तर पर पर्यावरण का दोहन किया जा रहा है, जिसके चलते तमाम प्रकार की मानव जनित समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। एक ओर व्यक्ति मानवीय संसाधन में वृद्धि की दुहाई दे रहा है, तो दूसरी ओर भौतिक संसाधनों के दोहन की प्रवृत्ति में बढ़ने की वजह से निरन्तर हो रहे प्रकृति क्षरण व जैविकीय विनाश तथा भौमिकीय अपरदन जैसी तमाम विनाशकारी घटनाएं पैदा हो रही हैं, जिससे ये प्रभावित सामान्य नागरिक आम जीवन व्यतीत करने का सहज अवसर नहीं पाता, दूसरे तमाम प्रकार के वैयक्तिक, सामाजिक व प्राकृतिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आज इस क्षेत्र की जनसंख्या धीरे-धीरे बढ़ती हुई महानगरीय परिवेशानुसार विस्फोटक रूप अधिग्रहीत करता जा रहा है। यदि निकट भविष्य में इस बढ़ती जनसंख्या पर रोक लगाये जाने के लिए कोई साम्बन्धिक कदम नहीं उठाया गया, तो निश्चित रूप से मानवीय संस्कृति की विनाशकारी लीला स्वयं ही उत्पन्न होगी तथा जनसामान्य उससे आक्षादित समस्याओं को झेलने के लिए खुद को लाचार पायेगा। ऐसे में जन जीवन को बचाये रखना आसान न होगा।

**अध्यय क्षेत्र**—अकबरपुर उत्तर प्रदेश के नवसृजित जनपद अम्बेडकरनगर के मुख्यालय के रूप में स्थित है। उक्त जनपद का सृजन उत्तर प्रदेश शासन द्वारा 29 सितम्बर 1995 को किया गया। यह नगर 26.4310 उत्तरी अक्षांश एवं 82.5400 पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। यह नगर मध्यवर्ती गंगा मैदान के मध्य में स्थित है। इसके उत्तर में इत्तिफातगंज, टाण्डा, पूरब में बसखारी, जलालपुर, दक्षिण में दोस्तपुर, पहितीपुर एवं पश्चिम में गोशाईगंज नगर स्थित है। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 15 वर्ग किमी० है। यह नगर गंगा एवं घाघरा के समतल मैदान भाग में स्थित है। इसका ढाल पश्चिम से पूरब की ओर है। इसका सम्पूर्ण भाग समतल मैदानी, उपजाऊ एवं सुकृषित है। इस भूभाग का जमाव निक्षेपण से हुआ है। संरचना एवं उच्चवाच का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। किसी भी क्षेत्र की भूगर्भिक संरचना वहाँ के धरातलीय उच्चावच, मृदा निर्माण के प्रकार, अद्योभौमिक जल संसाधन की निर्धारक होती है तथा अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय क्रिया कलापों, अर्थव्यवस्था तथा जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व की नियन्त्रक होती है। भूगर्भिक संरचना की दृष्टि से अकबरपुर भारत के विशाल सिन्धु-गंगा मैदान में स्थित है, जहाँ की भूगर्भिक संरचना अत्यन्त मुलायम एवं नवीन है। वाड़िया एवं ओडन के अनुसार 'प्रायद्वीपीय एवं बाहरी प्रायद्वीप के बीच में ये मैदान भूमि की पपड़ी को सूचित करते हैं, जो प्लीस्टोसीन तथा आधुनिक काल

\* शोध छात्र, भूगोल विभाग, राजा हरपाल सिंह पी.जी. कॉलेज, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ.प्र.)

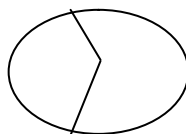
\*\* प्राचार्या, लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुगल सराय चन्दौली, पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष भूगोल विभाग, राजा हरपाल सिंह पी.जी. कॉलेज, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ.प्र.)



में बने हुए हैं' अध्ययन क्षेत्र का यह मैदान दक्षिणी क्षेत्र में प्रायद्वीपीय भारत के उत्तर में स्थित हिमालय से अलग करता है। भूगर्भविद् एडवर्ड स्वेस ने बताया है कि हिमालय के निर्माण के समय उसके तथा पठार के मध्य एक गर्त का निर्माण हुआ था। इस गर्त का नामकरण विशाल खड्ड दिया है।

यह खड्ड एक विशेष अभिनति के रूप में था, जिसकी तली असमतल होने के कारण एक समभिनति (विस्तृत अभिनति के अन्तर्गत छोटी-छोटी अपनति का होना) के रूप में थी। इस विशाल मैदान की उत्पत्ति उससे मानी जाती है, किन्तु यह सदैव मत वैभिन्न्य तथा वाद-विवाद का विषय रही है। 2001 की जनगणना के अनुसार नगर की कुल जनसंख्या 3,12,049 है, जिसमें पुरुषों की संख्या 1,58,779 एवं महिलाओं की जनसंख्या 1,53,270 है। इस प्रकार कुल जनसंख्या में पुरुषों का प्रतिशत 52 एवं महिलाओं का प्रतिशत 48 है।

जनसंख्या प्रतिशत



पुरुष-52 प्रतिशत

महिला-48 प्रतिशत

सन् 1971 में अम्बेडकरनगर की जनसंख्या बढ़कर 10,30,823 हो गयी थी। इस प्रकार सन् 1961-70 दशकों के मध्य यहाँ की जनसंख्या में +20.78 प्रतिशत की वृद्धि अंकित की गयी है, जो प्रदेश (19.78%) से अधिक और देश से (24.80%) से कम रही है। सन् 1961-71 के दशक में जनपद में तीव्र जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण आर्थिक, स्वास्थ्य एवं शिक्षण सुविधाओं के क्षेत्र में विकास, हरित एवं श्वेत क्रान्ति, उत्तम बीजों एवं रासायनिक खादों का प्रयोग, सिंचित सुविधाओं का विकास, कृषि अर्थव्यवस्था में सुधार तथा उत्पादन ने वृद्धि में तीव्र जनसंख्या को प्रोत्साहित किया है।

1981 में अम्बेडकरनगर की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़कर 12,71,828 हो गयी है। इस प्रकार इस दशक में 23.39 प्रतिशत वृद्धि अंकित की गयी है। जो प्रदेश (25.59%) और देश (24.66%) से कम रही है। इस दशक में तीव्र जनसंख्या वृद्धि का कारण कृषि औद्योगिक व आर्थिक विकास, स्वास्थ्य सेवाओं के प्रसार के फलस्वरूप जन्मदर की तुलना में मृत्यु दर पर नियंत्रण में तीव्र जनसंख्या वृद्धि की प्रोत्साहित किया है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि से अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक समस्याओं के परिणामस्वरूप उच्च आश्रित अनुपात बेरोजगारी, कम आयु, निम्न जीवन स्तर व सामाजिक प्रदूषण को जन्म दिया है।

सन् 1991 में अम्बेडकरनगर की जनसंख्या 16,04,091 थी। वर्ष 1981-91 के मध्य +3,32,163 व्यक्तियों की वृद्धि हुई। इस दशक में वृद्धि अंकित की गयी है, जो कि इस दशक में उ०प्र० में (25.48%) एवं देश में 23.87 प्रतिशत की वृद्धि से अधिक है।

सन् 2001 में जनपद अम्बेडकरनगर की जनसंख्या बढ़कर 20,26,876 व्यक्ति हो गयी है। सन् 1991-2001 के दशक में यहाँ की निरपेक्ष जनसंख्या वृद्धि 4,22,785 तथा प्रतिशत वृद्धि 26.36 प्रतिशत रही है, जबकि इस समय प्रदेश में 25.48 प्रतिशत तथा देश में 21.64 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस जनपद में वर्तमान समय में प्रति दशक 4,22,785 प्रति वर्ष 42,279 प्रति माह 3,523 प्रति दिन 117 तथा प्रति घण्टे 4.89 व्यक्तियों की वृद्धि हो रही है, जो जनसंख्या वृद्धि की भयावह स्थिति का सूचक है। अध्ययन क्षेत्र की वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर +2.33 प्रतिशत है। अगर यही वृद्धि दर बनी रही तो यहाँ की जनसंख्या सन् 2011 में 25.46 लाख तथा सन् 2021 में 32.50 लाख हो जायेगी। क्षेत्र में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। अतः आवश्यकता इस बात की है कि यहाँ पर तीव्र जनसंख्या वृद्धि को परिवार नियोजन या परिवार कार्यक्रम के माध्यम से नियंत्रित किया जाये।

अध्ययन क्षेत्र की वर्तमान जनसंख्या 20.27 लाख से बढ़कर वर्ष 2021 में 31.92 लाख हो जाने का अनुमान है जिसमें 29.04 लाख ग्रामीण एवं 2.90 लाख नगरीय जनसंख्या होगी। जनपद को विकास खण्डों में सबसे अधिक जनसंख्या अकबरपुर विकास खण्ड का 5.23 लाख, टाण्डा 5.03 लाख, जलालपुर 4.25 लाख, रामनगर 3.48 लाख, जहाँगीरगंज 3.27 लाख, बसखारी 2.67 लाख, भियांव 2.53 लाख जनसंख्या होने का अनुभव है। परिणामस्वरूप जनपद की भूमि पर जनसंख्या का दबाव तेजी से बढ़ेगा।

किसी एक इकाई क्षेत्रफल पर निवास करने वाली जनसंख्या का घनत्व घातक होता है। जनसंख्या सीमित संसाधनों के उपयोग के साथ उसका दोहन भी करती है। संसाधनों की उपलब्धता एवं उनके उपयोग के आधार

पर प्रति व्यक्ति आय और उसके जीवन स्तर का पता चलता है। किसी भी क्षेत्र विशेष की आर्थिक, समाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति का प्रारूप निर्धारित करने के लिए उस क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या की सघनता का ज्ञान अति आवश्यक है। क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या और उसके क्षेत्रफल के पारस्परिक अनुपात के द्वारा जनसंख्या घनत्व ज्ञात होता है। इस प्रकार किसी भी क्षेत्र के क्षेत्रफल और जनसंख्या के अनुपात को ही सामान्यतः जनसंख्या घनत्व कहा जाता है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार जनपद अम्बेडकरनगर का जनसंख्या घनत्व 862 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है। जबकि उ०प्र० एवं देश में क्रमशः 689 तथा 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है।

अध्ययन क्षेत्र का सम्पूर्ण भूभाग सामान्यतः समतल है। नदी तटीय क्षेत्रों में कटाव के कारण के कारण तथा नालों के फलस्वरूप असमतल भूभाग दिखाई देता है। इसकी औसत ऊँचाई समुद्र तल से 133 मी० है। नगर के पूर्वी भाग में टोन्स व मुझई के निर्गमन स्थल पर स्थानीय ऊँचाई लगभग 108 मी० है। सम्पूर्ण क्षेत्र का औसत ढाल नदियों के सामान्य बहाव दिशा के समान हो उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर पाया जाता है। सामान्यतः यत्र-तत्र परिदृश्य प्राचीन अधिवासों के अवशेष टीलों के रूप में पाये जाते हैं।

जलवायु मानव जीवन को प्रत्यक्ष दोनों रूपों से प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण कारक है। जलवायुविक दशाओं के आधार पर विशेष वातावरणिक स्वरूप का निर्धारण होता है। भूमि उपयोग के प्रकार और उसकी गहनता तथा फसलोत्पादन पर जलवायुविक तथ्यों को स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अध्यक्ष क्षेत्र कर्क रेखा के उत्तर में स्थित होने के कारण वर्ष के किसी भी माह में सूर्य लम्बवत् नहीं होता है। इस दृष्टि से यह नगर शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में स्थित है, लेकिन कर्क रेखा के निकट होने के कारण यहाँ उष्ण कटिबन्धीय जलवायु मिलती है। यह क्षेत्र मध्यवर्ती गंगा मैदान में स्थित होने के कारण यहाँ ग्रीष्म ऋतु में लू एवं शीत ऋतु में कम्पन भरी शीतलहर होती है।

वर्ष ऋतु ग्रीष्म काल के तत्काल बाद 15 जून से प्रारम्भ होकर अक्टूबर तक रहती है। यहाँ बंगाल की खाड़ी से आने वाली मानसूनी हवा जून के तीसरे सप्ताह में पहुँचती हैं जिससे यहाँ पर अधिक वर्षा जून के तीसरे सप्ताह से प्रारम्भ होती है। इस ऋतु को दक्षिणी-पश्चिमी मानसून काल कहा जाता है। ऋतु के प्रारम्भ होती ही सापेक्षिक आर्द्रता भी बढ़ने लगती है और मई माह में तापमान 48°C तक चला जाता है। मध्य जून से तापमान अचानक गिरने लगता है और उत्तर एवं उत्तरी पश्चिमी हवाएँ के स्थान पर पूरब एवं दक्षिणी पूर्वी हवाएँ चलने लगती हैं। साधारण रूप से इस मौसम में वर्ष की लगभग 90 प्रतिशत वर्षा होती है। इस मौसम में नगर का अधिकतम तापमान एवं न्यूनतम तापमान क्रमशः 38°C एवं 20.0°C रहता है। वर्ष 2008 में औसत वर्षा 103.5 मिमी० रही।

शीत ऋतु वर्षा समाप्ति के बाद अक्टूबर से फरवरी तक रहती है। शीत ऋतु ठण्डी होती है। नवम्बर माह के बाद तापमान तेजी घटने लगता है और जनवरी माह का अधिकतम तापमान : 23.4°C एवं न्यूनतम तापमान 9°C रहता है। शीतलहरी तथा भूमध्य सागरीय चक्रवातों के प्रवेश से यहाँ का तापमान हिमांक तक चला जाता है और ठण्डी हवाएँ चलने से पाला पड़ने लगता है। इस मौसम में ठण्डी एवं तेज हवाओं के साथ चक्रवाती वर्षा भी होती है, जो रबी की फसल के लिए उपयोग होती है। कुहरा एवं पाला पड़ना इस मौसम की सामान्य बात है। पाला रबी की फसल के लिए हानिकारक होती है। इससे आलू में झुलसा रोग का प्रकोप तेजी से फैलता है। अतः आलू की फसल प्रभावित हो जाती है। दिसम्बर व जनवरी में सापेक्षिक आर्द्रता लगभग 81 प्रतिशत पायी जाती है।

**उद्देश्य :-**अध्ययन क्षेत्र में रहने वाले लोगों का मुख्य उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि को कम करना है। अकबरपुर नगर में स्वाभाविक रूप से बच्चों की जन्मदर बढ़ती जा रही है, किन्तु स्वास्थ्य केन्द्रों की अधिकाधिक व्यवस्था के कारण नन्हें-मुन्नें बच्चे, युवक, प्रौढ़ व वृद्धागण किसी ऐसी से ग्रसित होकर मारे नहीं जा रहे हैं, जो अल्पावधि में अधिक से अधिक जनहानि का कारण बने। अपितु उल्टे ही सबको जीने के लिए मिला बराबर का अवसर लोकतंत्रात्मक मर्यादा के अनुरूप सांस्कृतिक उन्नति में सहयोगी भूमिका निभा रहे हैं। इस प्रकार अकबरपुर नगर में जनसंख्या में वृद्धि व मृत्यु दर कमी की वजह से वर्तमान परिवेश में इस क्षेत्र की जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है और लोग बड़ी मात्रा में तमाम भीषण समस्याओं का शिकार होते जा रहे हैं। यह सब कुछ बढ़ती बचाये रखना है तो जन्मदर तथा मद बत जनसंख्या और बिगड़ते पर्यावरण के कारण बना हुआ है। सम्प्रति यदि देश को मृत्यु की दर में धीरे-धीरे कमी आती जा रही है और लोग बड़ी ही मात्रा में तमाम भीषण समस्याओं का शिकार होते जा रहे हैं। यह सब कुछ बढ़ती जनसंख्या और बिगड़ते पर्यावरण के कारण बना हुआ है।

अकबरपुर कस्बे का भौगोलिक स्वरूप जनपद अम्बेडकरनगर के मुख्यालय के रूप में तमसां तट पर घाघरा के दक्षिण में स्थापित है। यह क्षेत्र शीतोष्ण रिबन्धीय जलवायु के अन्तर्गत आता है। यहाँ के गर्म वातावरण के प्रभाव के कारण बच्चों में जन्मदर की प्रायः अधिकता देखी जाती है। कम आयु वर्ग के युवा एवं युवतियाँ सृष्टि संचालन व सूत्र के निर्माण में सक्षम होते हैं। अल्प आयु से ये बच्चों को जन्म देने के कारण परिषक्वता अवस्था तक इनकी संतानों की वृद्धि करने में शक्ति होती है। जिससे जन्मदर में वृद्धि का होना स्वाभाविक है। अकबरपुर में बढ़ती जनसंख्या के प्राथमिक कारण के रूप में पहचाने जाने वाले जन्मदार की प्रवृत्ति को उच्च रूप में देखा जा सकता है जिससे यहाँ की जनसंख्या में वृद्धि का होना स्वाभाविक है और इसकी बढ़ती जनसंख्या का प्रभाव है कि यहाँ औसत दजे के प्रति वर्ग किमी लोगों की आबादी निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसी बढ़ती जनसंख्या व अधिवासीय सघनता के कारण व्यापक स्तर पर पर्यावरण का दोहन किया जा रहा है। जिसके चलते तमाप प्रकार के मानव जनित समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। एक ओर व्यक्ति मानवीय संसाधनों में वृद्धि की दुहाई देता है तो दूसरी ओर भौतिक संसाधनों के दोहन की प्रवृत्ति के बढ़ने की वजह से निरन्तर हो रहे प्रकृति क्षरण व जैविकोय विनाश तथा भौमिकीय अपरदन जैसी तमाम विनाशकारी घटनाएँ पैदा हो रही हैं जिससे प्रभावित सामान्य नागरिक आम जीवन व्यतीत करने का सहज अवसर नहीं प्राप्त दूसरे तमाम प्रकार के वैयक्तिक, सामाजिक व प्राकृतिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आज इस क्षेत्र की जनसंख्या धीरे-धीरे बढ़ती हुई महानगरी परिवेशानुसार विस्फोटक रूप अधिग्रहित करता जा रहा है। यदि निकट भविष्य में इस बढ़ती जनसंख्या पर रोक लगाये जाने के लिए कोई सामविधिक कदम नहीं उठाया गया तो तिश्चय रूप से मानवीय संस्कृति की विनाशकारी लीला स्वयं ही उत्पन्न होगी तथा जनसामान्य उससे आच्छादित समस्याओं को झेलने के लिए खुद को लाचार पायेगा। ऐसे में जन जीवन को बचाये रखना आसान न होगा।

जनपद अम्बेडकरनगर क्षेत्रफल की दृष्टि से 30<sup>प्र0</sup> में 57<sup>वें</sup> तथा जनसंख्या की दृष्टि से 43<sup>वें</sup> स्थान पर है। इस जनपद में प्रदेश की कुल जनसंख्या का 1.22 प्रतिशत लोग निवास करते हैं। जबकि इसका कुल क्षेत्रफल प्रदेश का मात्र 0.98 प्रतिशत है। (वर्ष 2001) जनपद में अधिक जनसंख्या होने का प्रमुख कारण जनपद के भू-वैन्यासिक स्वरूप का मानव बसाव हेतु उपयुक्त होना है। 'जनसंख्या का भू-वैन्यासिक वितरण क्षेत्र की सामान्य विनाश्यता एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इसकी घटनाओं के द्वारा नियंत्रित होता है। 'जनपद की जनसंख्या वृद्धि तथा वितरण एवं घनत्व को प्रभावित करने वाले निम्नकारक हैं। जनपद की अर्थ व्यवस्था और जनसंख्या के आकार में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जनसंख्या वृद्धि की दर की तुलना में आर्थिक विकास की दर अधिक ऊँची न होने पर जनपद आर्थिक दृष्टि से दुर्बल हो जाता है स्व० श्रीमती इन्दिरा गाँधी जी ने कहा है कि—“जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ते हुए नियोजित विकास करना बहुत कुछ ऐसी भूमि पर मकान खड़ा करने के समान है जिसे बाढ़ का पानी बराबर बहा ले जाता है”।

**औद्योगिककरण :-**अकबरपुर का औद्योगिक प्रतिरूप बहुत ही विलक्षण अवस्था में देखने को मिलता है। यहाँ सामान्य रूप से दृष्टि डालने पर कहां मध्यम आकार के व छोटे रूप में व्यापक स्तर पर कारखाने दिखाई नहीं पड़ते। किन्तु परोक्ष रूप में यहाँ अधिकाधिक प्रवास करते जा रहे हैं। नगर प्रवासियों की संख्या अधिकाधिक है। वे प्रवासीगण यहाँ विविध प्रकार के रोजगार को अन्जाम दे रहे हैं। आस-पास के क्षेत्र में मत्स्य पालन, मवेशी पालन, कुक्कुट पालन एवं सुआ पालन के साथ-साथ व्यावसायिक कृषि में लगे हुए हैं। औषधीय कृषि भी इस समय इस नगर के नागरिकों की आर्थिक उन्नति का कारक बन पड़ा है, जिससे सफेद मूसली, हल्दी, अदरक, जैसी फसलों का उत्पादन सम्मिलित है। मशरूम उत्पादन में यह क्षेत्र धीरे-धीरे कदम बढ़ा रहा है जो यहाँ के कृषकों को अपेक्षा से अधिक आय अर्जित करने में सहयोग दे सकेगा। आस-पास के ग्रामीण इलाकों में ईट उद्योग भी बढ़ता जा रहा है। मिट्टी से बनी ईट के व्यावसायिक प्रतिरूप के सग-सग सीमेंट, रेत और ककरोट से बनी ईटों के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है आज इन ईटों को बाजार में अच्छी दर पर अधिक से अधिक खरीदा-बेचा जा रहा है। इनके प्रयोग में नुकसान की सम्भावनाएं कम रहती है कम से कम क्षतिग्रस्त हुआ करते हैं शायद इसी लिए इन ईटों की महत्ता बाजार में दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह उद्योग भी अकबरपुर के आस-पास के क्षेत्रों में धीरे-धीरे अपना पाँव पसार रहा है। यदि ऐसे ही व्यावसायीकरण होता रहा, तो यहाँ के नागरिक आर्थिक उन्नति में अपनी प्रतिभागिता दर्ज कराने में अपनी भूमिका का निर्वाह कराते हैं, तो अवश्य निकट

भविष्य में यह नगर मात्र अम्बेडकरनगर जनपद मुख्यालय का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण देश का एक औद्योगिक सिरमीर के रूप में स्थापित हो लब्ध प्रतिष्ठित हो सकेगा।

यह क्षेत्र जनपद मुख्यालय का मुख्यालय है। यहाँ पर रघुराजी एगो इण्डस्ट्रीयल कार्रपोरेशन लिमिटेड उद्योग के अतिरिक्त पारवलूम, फर्नीचर, साबुन, टाली, इन्जीनियरिंग, बिस्कुट खादी-ग्रामोद्योग, बीडी, आलू शीत गृह, वस्त्रों की रंगाई एवं कढ़ाई, रेडीमेड वस्त्रों का निर्माण, दुग्ध व्यवसाय आदि उद्योग स्थित है इस क्षेत्र में राम जानकी राइस मिल नवतरिया, मदीना राइस, मिल सिझौली, साकेत फूड प्रोडक्ट, प्रेस, टाली एवं मुर्गी पालन आदि उद्योग स्थित है यह क्षेत्र रेल यातायात मार्ग से जुड़ा है इस औद्योगिक क्षेत्र में रेडीमेड वस्त्रों का निर्माण कपड़ों की रंगाई व कढ़ाई, कृषि यंत्रों का निर्माण, साबुन, बिस्कुट, आलू शीतगृह, मिट्टी का बर्तन, ट्राली एवं मूर्ति निर्माण आदि उद्योग स्थित है इस औद्योगिक क्षेत्र में रेल यातायात की सुविधा नहीं है यहाँ केवल सड़क यातायात की सुविधा उपलब्ध है।

इस प्रकार से मानवीय प्रवास की अनुकूल स्थितियों के कारण अकबरपुर की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, जो यहाँ के लिए भयावह स्थित पैदा करती है यदि इसी प्रकार से यहाँ की जनसंख्या बढ़ती गयी तथा लोगों के द्वारा प्रकृति का दोहन जारी रहा तो निकट भविष्य में ही यहाँ अनेक ऐसी समस्याएँ उत्पन्न हो जायेगी, जिनसे मानव जाति का भारी नुकसान हो सकेगा।

#### संदर्भ-सूची

1. Clarks, J.I., Population Geography and the Developing Countries, Pergamon, 1971, N.Y.
2. Thomason, W.S. & T. Levis David (1965), Population Problems. Tata Mc Graw Hill, New Delhi,
3. Upadhyay, D.N. (1982), Spatial Pattern of Population in Sarayuper Plain.
4. Trewartha, G.T. (1969), A Decade of Population. World Patners. Hohn Willev and Sons, New York.
5. Rao, Gopal (1981), A Decade of Population Research in India N.C.E.R.T.
6. D.K. Mishra, Dist- Jaunpur U.P. Population : A Geographical Study.
7. Dr. LR. Singh, Fundamentals of Human Geography, Sharda Pustak Bhawan, Allahabad.
8. डॉ० एस.डी. मौर्य, जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
9. डॉ० एस.डी. मौर्य, अधिवास भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. डॉ० के.सी. मलैया एवं डॉ० रमा शर्मा, जनसंख्या शिक्षा विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
11. समाजार्थिक समीक्षा, जनपद अम्बेडकरनगर 2001-2002 कार्यालय अर्थ एवं संख्याधिकारी अर्थ एवं संख्या प्रभाग राज्य नियोजन संस्थान उत्तर प्रदेश।
12. संख्यिकीय पत्रिका, जनपद, अम्बेडकरनगर 2007, कार्यालय अर्थ एवं संख्याधिकारी अर्थ एवं संख्या प्रभाग राज्य नियोजन संस्था उत्तर प्रदेश।

\* \* \* \* \*

## मानव जीवन और पर्यावरण

डॉ. आर. के. तिवारी\*

**शोध सार**—आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अपने उद्भव समय से ही मनुष्य ने आंख खोलते ही प्रकृति को देखा है और उसकी सुन्दरता से अभिभूत हुआ है। जैसे-जैसे वह अपने विकास काल में आया उसने उस सुन्दर प्रकृति को सहेजकर रखा। बड़े ही मेहनत और लगन से सुन्दर प्रकृति को सहेजा और आगे चलकर उसी से अपना रहन-सहन भी बेहतर किया। समय बदला मनुष्य ने बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त की फैक्ट्रियाँ, कारखाने खोले, ऊँचे-ऊँचे भवन बनाये, हमारी यह जो प्रकृति है जल, थल, वायु, अग्नि और आकाश। इन्हीं तत्वों से हमारा शरीर भी बना हुआ है। यानी मनुष्य का जीवन समाप्त होते ही इन्हीं तत्वों में विलीन। स्वाभाविक है कलकारखानों की, बड़ी फैक्ट्रियों की और ऊँची-ऊँची इमारतों में आलीषान सोफा आदि, एयर कंडीशनर आदि लगाये। इनका अत्यधिक उपयोग होने पर बाहर का तापमान बढ़ा, ग्लोवर वार्मिंग बढ़ी। सीमेन्ट फैक्ट्रियों से निकले धूँ का रासायनिक तत्व नदियों-तालाबों में छोड़ा, धूँ से निकली विषैली गैस हमारी शुद्ध वायु को प्रदूषित करने लगी। इसी तरह यातायात के साधन बढ़े और उनका प्रदूषण हमारे स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालने वाला बना। होना यह चाहिए था कि हम एक पेड़ काटे तो दस पेड़ लगायें आफिसो के एयरकंडीशनरों से निकलने वाला तापमान नष्ट करने की प्रवृद्धि का निर्माण करते और जो रासायनिक तत्व जलायशों में विशेष रूप धारण करते हैं उन्हें भी नष्ट करने के साधन निर्मित करते लेकिन ऐसा नहीं हुआ। फलतः हम आज सब प्रकृति पर्यावरण में चारों तरफ छाये हुए प्रदूषण धूँ को झेल नहीं पा रहे हैं। फलतः अनेक तरह की बीमारियाँ मानव के सामने हैं।

हम सभी मानव कभी शिक्षा के माध्यम से कभी नारों के माध्यम से पर्यावरण को शुद्ध करने की बातें तो करते हैं लेकिन हर तरह का कचड़ा फेंकते जमीन पर, जल पर या प्रदूषित धूँ के रूप में हवा में।

**अध्ययन का क्षेत्र**—रीवा परिक्षेत्र

**उद्देश्य**—मानव जीवन और पर्यावरण में स्वस्थ वातावरण निर्मित करना।

**शोध विधि तंत्र**—सम्बन्धित क्षेत्र की शुद्धता के लिए उत्तरदायी साधनों को खोजना, जलाशयों में विषैले मिश्रणों को जाने से रोकना। निकले हुए कचड़े को जमीन में फैलने से रोकना साथ ही उपयुक्त जगहों पर पेड़-पौधों को लगाना आदि-आदि।

**परिचय**—पर्यावरण भूगोल की शाखा के अन्तर्गत प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र के विभिन्न विशेषताओं, कार्यों, पारस्परिक निर्भरता एवं परिणामों के प्रबंधन का अध्ययन होता है। इस अध्ययन में पर्यावरणीय भूमण्डलीय समस्याएँ, प्रदूषण आदि को मानव एवं पर्यावरण के मध्य सम्बन्धों का भी अध्ययन करते हैं। पर्यावरण भूगोल में विभिन्न भौतिक, रासायनिक एवं जैविक प्रक्रियाओं द्वारा पारिस्थितिक तंत्र का भी अध्ययन करते हैं। स्थल, जल तथा वायु के सम्मिलन से निर्मित पृथ्वी के चारों ओर व्याप्त मोटी परत जो सभी प्रकार के जीवों, वनस्पतियों, मानवों का पोषण करती है इसे जीवमंडल कहा गया है। जीवनदायिनी जीव मण्डल में बिना किसी रक्षक साधन के सभी जीवन रूप सम्भव होते हैं। पर्यावरणीय प्रक्रमों पर मानव के क्रिया-कलापों के प्रभावों का अध्ययन पर्यावरण भूगोल का महत्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि पर्यावरणीय समस्याओं का निर्धारण यहीं होता है। पर्यावरण भूगोल का अन्य विज्ञानों के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। मानव पर्यावरण के बीच बदलते-बिगड़ते संबंधों का मूल कारण मानव की प्रौद्योगिकी ही है क्योंकि इसी ने प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान औद्योगिक समय तक मानव पर्यावरण सम्बन्धों में आमूलचूल परिवर्तन किया है। पर्यावरण एवं जीवित जीवों में पारस्परिक सम्बन्ध होता है। पर्यावरण जीवधारियों

\* प्रभारी प्राचार्य, पं. रामकिशोर शुक्ल स्मृति, शासकीय कला एवं वाणिज्य, महाविद्यालय व्यौहारी, शहडोल (म.प्र.)

को तथा जीवधारी पर्यावरण को प्रभावित एवं परिवर्तित करते हैं। यही कारण है कि प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र मजबूत होता जाता है। मनुष्य सभी जीवधारियों में सर्वाधिक बुद्धिमान और सशक्त प्राणी है। वह इन सबके परिवर्तन और अस्तित्व में हस्तक्षेप भी कर सकता है। इधर कुछ वर्षों से मानव संख्या में हुए बढोत्तरी होने के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक दबाव पड़ा है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण, फेलते औद्योगिकीकरण एवं बढ़ते नगरीयकरण की मांगों की आपूर्ति में प्राकृतिक संसाधनों का अतिलोलुप एवं निर्मम दोहन हुआ है जिससे मानव जीवन में विकार भी उत्पन्न हुए हैं। निश्चित रूप से हमारे सामने प्रदूषण और पारिस्थितिक संकट बढ़ा है। पर्यावरण भूगोल का मूलभूत उद्देश्य मनुष्य और पर्यावरण के बीच सहजीवता पर जोर देना है। ताकि इन दोनों के मध्य सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो सकें जो मानव समाज के लिए कल्याणकारी है। अन्यथा अत्यधिक दोहन की स्थिति में भावी पीढ़ी को संसाधनों की बड़ी भारी कमी होती जायेगी।

पर्यावरण अर्थात् आस-पास या पास-पड़ोस मानव, जन्तु या पौधों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाली बाह्य दशाएँ, कार्य प्रणाली तथा जीवन यापन की दशाएँ। निश्चित रूप से जिसके द्वारा मनुष्य घिरा हुआ है, पर्यावरण है। पर्यावरण की प्रकृति से तुलना की जाती है। जो जीवमंडल में जीवों को आधार प्रस्तुत करते हैं। आश्रय देते हैं तथा उनके विकास एवं संवर्धन में आवश्यक दशाएँ देकर प्रभावित भी करते हैं। पर्यावरण कहा गया है। पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है इसकी संकल्पना भौतिक एवं जैविक है। पर्यावरण एवं समाज एक दूसरे से निर्भर रूप में जुड़े हुए हैं। समय के साथ मनुष्य के बुद्धि कौशल में विकास की भूमिका बढ़ी है इसीलिए मनुष्य आधुनिक सामाजिक संरचनाओं में प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र दक्षता के साथ दोहन करने में लग गया है। परिणामतः प्राकृतिक पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ना शुरू हो गया है। एक तरफ पर्यावरण ने आदि से अभी तक मानव संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में अत्यधिक योगदान दिया है। दूसरी तरफ मानव ने इनका गलत दोहन कर प्राकृतिक पर्यावरण को विनाशक रूप में लाने का भी उद्यम किया है। फलतः पर्यावरणीय समस्या के निदान में भी इसी मानव को आगे आना होगा। इसके निदान में उपयोगिता निर्णय आवश्यक है। चाहे जनसंख्या हो, चाहे कृषि या वन या मृदा हो। हमें सभी में संवेदनशील और सचेत होना पड़ेगा। समपोषणीय विकास के आधार पर हम संसाधनों के विवेकपूर्ण दोहन और अनुकूलतम उपभोग द्वारा आम जनता की जीवन दशाओं को सुधार सकते हैं। साथ ही पर्यावरण को बिना क्षति पहुँचाये संसाधनों की आपूर्ति वर्तमान कर सकते हैं।

भूगोल के केन्द्र में मनुष्य और पर्यावरण का केन्द्रीय विषय है। मनुष्य एवं गृहीय पृथ्वी के भौतिक तथा जैविक तत्वों से मनुष्य के पर्यावरण की रचना है। इसीलिए मनुष्य प्रकृति पर निर्भर होकर अपने लिए बेहतर पर्यावरण और पर्यावरण अपने लिए बेहतर मनुष्य का अधिकाधिक लाभ दे सकें। पृथ्वी ने मनुष्य को बनाया इसीलिए मानव पर्यावरण के आश्रित हुआ। मनुष्य की प्राकृतिक पर्यावरण के साथ दोहरी भूमिका होती है। वह भौतिक पर्यावरण के जैविक संघटक का एक घटक है तो दूसरी ओर वह पर्यावरण का भी महत्वपूर्ण कारक है अर्थात् मनुष्य भौतिक पर्यावरण से अन्य जीवों के समान संसाधन प्राप्त करता है तथा पर्यावरणीय संसाधनों में अपना योगदान भी करता है। हम कह सकते हैं कि वह बदली हुई भूमिका में जो मनुष्य प्रकृति का अंग था वह आगे चलकर उसका स्वामी बनने की कोशिश में लग गया। यही कारण है कि इन दोनों के बीच परस्परता के संबंध चकना चूर होने लगे। ऐसी स्थिति में भूगोल की भूमिका बढ़ जाती है। जीव मंडल एक तंत्र है और उसका पारिस्थितिक तंत्र निश्चित कारकों द्वारा निर्मित है। पर्यावरण की सुरक्षा हमारा परम कर्तव्य है। यदि हम इसके महत्वपूर्ण स्वरूपों पर दक्षता के साथ कार्य नहीं करेंगे तो प्रदूषण के रूप में खतरनाक स्थितियाँ निर्मित हो मनुष्य के अस्तित्व को नष्ट कर सकती हैं। जैसे—वायुप्रदूषण, बाढ़ प्रदूषण, अनावृष्टि, जंगलों का समाप्त होना, धरती का असंतुलन होना आदि अन्य जीवों को तो खतरा है ही मनुष्य को सर्वाधिक खतरा है।

**निष्कर्ष**—प्रकृति और पर्यावरण की समस्या आज वैश्विक स्तर पर बढ़ती जा रही है क्योंकि भौतिक और मानसिक दोनों ही स्तरों पर व्याप्त प्रदूषण ने पर्यावरण को प्रभावित किया है। प्रकृति और मानव द्वारा तकनीकी विकास के बीच तालमेल बनाकर संयमित जीवन पद्धति के साथ भौगोलिक कारकों की भी मंगलश्री में वृद्धि हो यही पर्यावरण का मूल चिंतन है। ध्वनि, जल, वायु, भूमि, अम्ल वर्षा, जनसंख्या वृद्धि, वृक्ष दोहन, नर एवं पशु बलि प्रथा, बाढ़ एवं डूब में विस्थापन की समस्या साथ ही पश्चिमीकरण का प्रभाव आधुनिकीकरण का दौर, शीत युद्ध की स्थिति, धार्मिक उन्माद, मशीनीकरण की यांत्रिकता से उपजे अवसाद, बदलती जीवन शैली और खान-पान



आदि में कदाचार, सांस्कृतिक प्रदूषण आदि हमारे पर्यावरण को तहस-नहस कर रहे हैं जिससे हमारा भौगोलिक क्षेत्र अवसाद ग्रस्त हो रहा है। मानव द्वारा एवं मनुष्य द्वारा निर्मित विज्ञान एवं तकनीकी के अनुचित प्रयोग से हमारे पर्यावरण को विश्वव्यापी समस्याएँ मिली हैं।

#### संदर्भ-सूची

1. पर्यावरण और हम, राजीव गर्ग, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1989
2. पर्यावरण और हम, सुजाता विष्ट, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम 1989
3. पर्यावरण और संस्कृति का संकट, डॉ. गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1992
4. जनसंख्या प्रदूषण एवं पर्यावरण, मनीष श्रीवास्तव, जीवन ज्योति प्रकाशन, दिल्ली, 2002
5. जनसंख्या विस्फोट और पर्यावरण, हरिश्चन्द्र व्यास, सत् साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1993
6. पर्यावरण की पुकार, वेद प्रकाश दुबे, मगध प्रकाशन, दिल्ली 1990
7. पर्यावरण भूगोल, एस. सिंह, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1991
8. रीवा दर्शन, डॉ. अखिलेश शुक्ला, पुखराज प्रकाशन रीवा 2003

\* \* \* \* \*

## श्रावस्ती जनपद ( उ.प्र. ) में जनसंख्या वृद्धि एवं उसका समाजार्थिक प्रभाव

विभा पाण्डेय\* डॉ. श्रवण कुमार शुक्ल\*\*

**सारांश :** जनसंख्या किसी क्षेत्र विशेष के समाजार्थिक विकास का आधार होती है। जनसंख्या वृद्धि किसी क्षेत्र के जनसांख्यिकी गतिशीलता का केन्द्र बिन्दु है। अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ रही है। फलतः जनसंख्या-संसाधन अन्तर्सम्बन्ध बिगड़ता जा रहा है। बढ़ती जनसंख्या के भरण पोषण हेतु भूमि संसाधन पर दबाव बढ़ता जा रहा है इससे जोत का आकार छोटा होता जा रहा है। अधिक उपज लेने की प्रत्याशा में कृषित भूमि का अविवेकपूर्ण दोहन किया जा रहा है। जिससे उसकी उपज सामर्थ्य कम होती जा रही है। अतः जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण करना आवश्यक हो गया है।

**कुंजी शब्द—** वृद्धि, प्रक्षेपण, प्रत्याशा, वेचिरागी, नगरीकरण।

**प्रस्तावना :** जनसंख्या में अभिवृद्धि के फलस्वरूप उसमें आगे परिवर्तन की प्रवृत्ति को जनसंख्या वृद्धि की संज्ञा दी जाती है। जनसंख्या वृद्धि से किसी क्षेत्र की आर्थिक प्रगति, सामाजिक उत्थान, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एवं राजनैतिक आदर्श की जानकारी प्राप्त होती है। इससे जनसंख्या का आकार ही नहीं वरन् उसकी संरचना भी प्रभावित होती है। जनसंख्या की अन्य विशेषतायें भी जनसंख्या वृद्धि से सम्बन्धित होती हैं। सामान्यतया जनसंख्या में वृद्धि होना एक जैविक प्रक्रिया है। लेकिन कहीं यह वृद्धि मन्द गति से होती है, तो कहीं पर तेज गति से होती है। जनसंख्या वृद्धि किसी क्षेत्र की जनसांख्यिकी गतिशीलता का केन्द्र बिन्दु है। यह जनसंख्या का वह तत्व है जिससे जनसंख्या के अन्य सभी तत्व गहन रूप से सम्बन्धित हैं और इसी तत्व से ही अन्य लक्षणों का अर्थ और महत्व है। इस लिए किसी क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि को समझना ही उस क्षेत्र की सम्पूर्ण जनसंख्या संरचना को समझने की कुंजी है।<sup>1</sup> विभिन्न ऐतिहासिक घटनायें अध्ययन क्षेत्र के जनसंख्या की वृद्धि हेतु उत्तरदायी रही हैं। युद्ध, अराजकता एवं महामारी काल में जनसंख्या के विकास में बाधा आती है जबकि शान्त सुव्यवस्थित, जलप्लावन रहित काल में जनसंख्या का अबाध गति से विकास होता है। यहां पर समय-समय पर बाहर से आने वाली जातियों यथा हूण, कुषाण, शक, ईसाई, मुसलमान आदि का जनसंख्या के विकास में अप्रतिम योगदान है।<sup>2</sup> किसी क्षेत्र की जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि मृत्यु दर से जन्मदर अधिक होने से तथा स्थानान्तरण द्वारा जनवृद्धि से बढ़ती है तथा कम होने पर घटती है। जनसंख्या वृद्धि से संसाधनों पर बढ़ते दबाव के कारण विश्व के अनेक देश तमाम भीषण समस्याओं से ग्रस्त हो रहे हैं जिससे विश्व शान्ति खतरे में दिखाई देती है ऐसी स्थिति में जनसंख्या के अध्ययन में उसकी वृद्धि, वृद्धि के कारण तथा उत्पन्न समस्याओं का निराकरण सम्बन्धी अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। इसी तथ्य को दृष्टिगत करके अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति एवं इसके प्रभाव का आकलन तथा विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

**अध्ययन क्षेत्र :** अध्ययन क्षेत्र श्रावस्ती जनपद भारत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित एक प्रमुख पर्यटन स्थल है। यह उ०प्र० के देवीपाटन मण्डल में स्थित है। इसका अक्षांशीय विस्तार 27°30' उत्तरी अक्षांश से 28°24' उत्तरी अक्षांश तथा देशान्तर्रीय विस्तार 81°06' पूर्व से 82°09' पूर्वी देशान्तर के मध्य अवस्थित है। राप्ती नदी इसे दो भागों में अलग करती है। इसके उत्तरी सीमा पर नेपाल राज्य, पश्चिमी सीमा पर बहराइच जनपद, पूर्व में

\* शोध छात्रा, भूगोल विभाग

\*\* अति. प्रोफेसर, भूगोल विभाग, आ.न.दे. किसान पी.जी. कॉलेज, बभनान, गोण्डा ( उ.प्र. )

बलरामपुर जनपद तथा दक्षिण में गोण्डा एवं बहराइच जनपद अवस्थित हैं। इसका क्षेत्रफल 1948.20 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 1114615(2011) है। श्रावस्ती जनपद की प्रशासनिक व्यवस्था कुल 5 विकासखण्डों, 3 तहसीलों तथा 551 ग्रामों में विभक्त है जिसमें 32 ग्राम बेचिरागी हैं। जनसंख्या घनत्व 602 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0 है।

**उद्देश्य :** प्रस्तुत शोध प्रपत्र का निम्नलिखित उद्देश्य है—

1. अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति का विश्लेषण करना।
2. जनसंख्या वृद्धि के भावी आकलन हेतु जनसंख्या प्रक्षेपण ज्ञात करना।
3. जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव को स्पष्ट करना।
4. जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम हेतु सुझाव प्रस्तुत करना

**शोध प्रविधि :** प्रस्तुत शोध अध्ययन में वर्ष 2001 से 2011 तक की जनसंख्या को लेकर दशकीय वृद्धि का विश्लेषण किया गया है। जनसंख्या सम्बन्धी अध्ययन में द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। ये आंकड़े जिला सांख्यिकीय पत्रिका, जिला जनगणना हस्त पुस्तिका और सी0डी0 से प्राप्त किया गया है। जनसंख्या प्रक्षेपण का आकलन गणितीय समीकरण द्वारा किया गया है। जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव के मूल्यांकन हेतु आंकड़ों एवं सूचनाओं के साथ-साथ निरीक्षण एवं सर्वेक्षण का सहारा भी लिया गया है।

**जनसंख्या वृद्धि :** अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति की सबसे बड़ी विशेषता दशकीय वृद्धि दर, पुरुष, स्त्री वृद्धि दर एवं ग्रामीण नगरीय वृद्धि दर में अन्तर का होना है। अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि का अध्ययन वर्ष 1951 के पश्चात के आंकड़ों के आधार पर किया गया है। इसके पूर्ण का संक्षिप्त विवरण जनपद बहराइच के आंकड़ों के आधार पर है। सामान्य रूप से वर्ष 1901 से 1921 तक लगभग स्थिर जनसंख्या, वर्ष 1921 से 1941 तक मन्द वृद्धि, वर्ष 1941 से 1971 तक तीव्र वृद्धि एवं वर्ष 1971 से अब तक बहुत तीव्र वृद्धि मिलती है। वर्ष 1901 से 1921 तक स्थिर जनसंख्या होने का प्रमुख कारण महामारी एवं अकाल आदि से मृत्यु की अधिकता रही है। वर्ष 1921 के पश्चात जनसंख्या बढ़ी है। वर्ष 1951 से 1961 की अवधि में जनसंख्या की प्रतिशत वृद्धि 9.89 थी। इस दशक में पुरुष (7.78 प्रतिशत) की अपेक्षा स्त्रियों (9.89 प्रतिशत)की वृद्धि दर अधिक थी। वर्ष 1961-1971 के मध्य क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि दर बढ़कर 10.84 प्रतिशत हो गयी। इस अवधि में पुरुष तथा स्त्रियों का वृद्धिदर समान (10.85 प्रतिशत) था। वर्ष 1971 के पश्चात जनसंख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। 1971-81 के दशक में 22.28 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो पूर्व के दशक से काफी अधिक है। इस अवधि में स्त्रियों (19.87 प्रतिशत)की तुलना में पुरुषों की वृद्धि अधिक (24.64 प्रतिशत) हुई। वर्ष 1981-1991 के दशक में 23.73 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जिसमें महिलाओं की तुलना में पुरुषों की वृद्धि दर कम है। 1991-2001 के दशक में 27.21 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी जिसमें ग्रामीण वृद्धि दर 27.36 प्रतिशत तथा नगरीय वृद्धिदर 25.67 प्रतिशत था। इस दशक में पुरुषों (30.35 प्रतिशत) की तुलना में स्त्रियों (35.11 प्रतिशत) की वृद्धिदर अधिक थी। 2001-2011 के मध्य 30.53 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी जिसमें ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि 31.13 प्रतिशत तथा नगरीय जनसंख्या वृद्धि 15.87 प्रतिशत रही है। वर्ष 1991 से 2011 तक में महिला शिशुओं की अधिक वृद्धि का कारण शैक्षणिक विकास तथा सामाजिक जागरूकता रही है। सारणी 1 में वर्ष 1951 से 2011 तक की जनसंख्या वृद्धि का दिग्दर्शन कराया गया है। सारणी एवं चित्र के अवलोकन से स्पष्ट है कि वर्ष 1951-2011 के मध्य 206.03 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो अप्रत्याशित है इस बेतहाशा वृद्धि का कारण जनपद में वृहद पैमाने पर विकास जन्य क्रियाकलापों के क्रियान्वयन का होना है। आजादी के बाद खाद्य आपूर्ति एवं चिकित्सा सुविधाओं में सुधरी दशाओं के कारण मृत्युदर में काफी कमी आयी, जबकि शिक्षा एवं परिवार नियोजन के प्रति जागरूकता की कमी के कारण जन्मदर में कोई विशेष कमी नहीं आयी। फलतः जनसंख्या वृद्धि एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है।

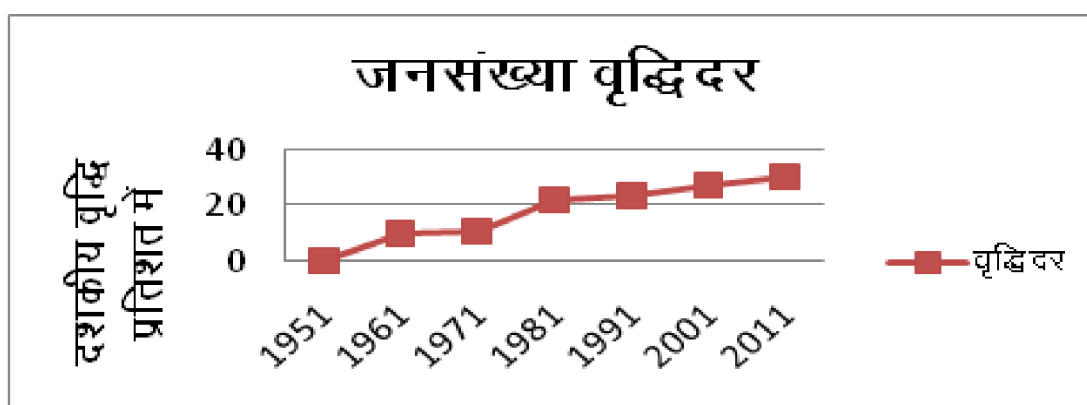
**जनसंख्या प्रक्षेपण :** जनसंख्या सम्बन्धी अध्ययन में प्रक्षेपण का विशेष महत्व होता है, क्योंकि शिक्षा, स्वास्थ्य और जनकल्याण सम्बन्धी कई प्रकार की बनाते समय हमें न केवल जनसंख्या के वर्तमान आकार और स्वरूप को ध्यान में रखना होता है, बल्कि भविष्य में जनसंख्या के आकार और स्वरूप को ध्यान में रखा जाता है अन्यथा योजनायें असार्थक और दिशा ही न हो सकती हैं। इसके द्वारा संसाधन पर बढ़ते दबाव का अनुमान लगाया जा सकता है। जनसंख्या प्रक्षेपण हेतु निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया गया है—

$$P_n = P_0(1+r/100)^t$$

जहाँ,  $P_n$  = प्रक्षेपित जनसंख्या,  $P_0$  = आधार वर्ष (2011) की जनसंख्या,  $r$  = जनसंख्या वृद्धि दर (प्रतिशत में), तथा  $t$  = समय।

उपर्युक्त सूत्र के अनुसार वर्तमान वृद्धि दर 30.53 प्रतिशत के आधार पर अध्ययन क्षेत्र की वर्ष 2021 की जनसंख्या 1497266, वर्ष 2031 में 2006336, वर्ष 2041 में 2688490 तथा वर्ष 2051 में 3602576 हो जायेगी। स्पष्ट है कि तीव्रगतिक जनवृद्धि का प्रभाव अध्ययन क्षेत्र के संसाधनों पर पड़ेगा, जो घातक है।

सारणी-1 श्रावस्ती जनपद में जनसंख्या वृद्धि							
जनसंख्या	वर्ष						
	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011
कुल जनसंख्या	365107	401234	444754	543835	672429	855985	1117361
पुरुष	189855	208641	231272	288232	353650	460998	593897
स्त्री	175252	192593	213482	255603	292337	394987	523464
ग्रामीण	0	0	0	522745	645887	822629	1078712
नगरीय	0	0	0	21090	26542	33356	38649
कुल अन्तर	0	36127	43520	99081	128594	183556	261376
पुरुष अन्तर	0	14786	22631	56980	65418	107348	132899
स्त्री अन्तर	0	17341	20889	42421	36734	102650	128477
ग्रामीण अन्तर	0	0	0	0	123142	176742	256083
नगरीय अन्तर	0	0	0	0	5452	6814	5293
कुल अन्तर प्रतिशत में	0	9.89	10.84	22.28	23.73	27.21	30.53
पुरुष अन्तर प्रतिशत में	0	7.78	10.85	24.64	22.7	30.35	28.83
स्त्री अन्तर प्रतिशत में	0	9.89	10.85	19.87	14.37	35.11	32.53
ग्रामीण अन्तर प्रतिशत में	0	0	0	0	23.56	27.36	31.13
नगरीय अन्तर प्रतिशत में	0	0	0	0	25.85	25.67	15.87



श्रावस्ती जनपद में जनसंख्या वृद्धि (1951-2011)

**जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव :** एच० एस० सिंह<sup>३</sup> ने मानव एवं संसाधन के संतुलित अन्तर्सम्बन्ध को ही आर्थिक और सामाजिक उन्नति का कारण माना है। अध्ययन क्षेत्र की बढ़ती हुई जनसंख्या ने मानव-संसाधन अन्तर्सम्बन्ध को बिगाड़ दिया है जिससे अनेक समस्याएँ पैदा हुई हैं। जब जनसंख्या शून्य-शून्य: बढ़ती है तो एक मजबूत जनशक्ति पैदा होती है जो क्षेत्रीय विकास का मार्ग प्रशस्त करती है किन्तु जब जनसंख्या विस्फोटक गति से बढ़ती है तो वह क्षेत्र पर भार बन जाती है। साथ ही गरीबी और अभाव की समस्या पैदा हो जाती है।<sup>४</sup> अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या के निरन्तर बढ़ते रहने से प्रतिव्यक्ति कृषित भूमि कम होती जा रही है। वर्ष 1981, 1919 तथा 2001 में प्रति व्यक्ति कृषित भूमि क्रमशः 0.247 हे०, 0.157 हे०, तथा 0.151 हे० थी जो वर्ष 2011 में घटकर 0.118 हे० हो गयी है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि एवं उत्तराधिकार कानून के कारण खेतों का आकार छोटा होता जा रहा है। अध्ययन क्षेत्र में अधिकांश जोत (79.31 प्रतिशत) सीमान्त आकार (01 हे० से कम) की है तथा क्षेत्रफल 44.66 प्रतिशत है। मध्यम जोताकार 1.00 हे० से 10.0 हे० के मध्य 20.67 प्रतिशत है जबकि 0.02 प्रतिशत संख्या अधिक जोताकार (10.0 हे० से अधिक ) के मध्य है।

अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या ने बेरोजगारी को बढ़ावा दिया है। वर्ष 2001 में कुल कर्मकरों का प्रतिशत 36.38 प्रतिशत था जो वर्ष 2011 में घटकर 36.11 प्रतिशत हो गया है। बढ़ती बेरोजगारी क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या है जो सामाजिक विघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करती है तथा कालान्तर में समाज के साथ-साथ व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के लिए खतरा है।<sup>५</sup> क्षेत्र में लोगों के भरण-पोषण का साधन कृषि ही है किन्तु अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि की तुलना में कृषि उत्पादन वृद्धि दर कम है। अधिक उत्पादन लेने की चाहत में कृषि उत्पादकता स्थिर हो गयी है। लाख प्रयत्न के बावजूद भी उत्पादन नहीं बढ़ रहा है। यहाँ सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं एवं सुविधाओं का विकास एवं विस्तार तो हुआ है किन्तु जनसंख्या वृद्धि की तुलना में इनकी स्थिति संतोषजनक नहीं है। क्षेत्र की अधिकांश जनता बुनियादी सुविधाओं से वंचित है। अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या के कारण ईंधन, भवन निर्माण सामग्री, कृषि विस्तार तथा औद्योगिक उत्पादन हेतु वनों, बाग-बगीचों का बेरहमी से कटाव, आदि से भूमि उपयोग प्रतिरूप प्रभावित हुआ है। पक्का मकान बनाने हेतु बढ़ती ईंटों की मांग ने भूमि को ऊबड़-खाबड़ बनाया है साथ ही पर्यावरण प्रदूषण को भी बढ़ावा दिया है। बढ़ता नगरीकरण एवं बाजारीकरण ने वृहद पैमाने पर प्रदूषण को जन्म दिया है।

**सुझाव :** अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रण करना अत्यावश्यक है। इसके लिए परिवार नियोजन को एक आन्दोलन का रूप देना होगा। परिवार नियोजन एवं मातृ शिशु कल्याण केन्द्रों की सीपना न्यायपंचायत स्तर पर की जानी चाहिए क्योंकि ग्राम्य स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं की पर्याप्त कमी है। एतदर्थ, बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देना होगा। सम्प्रति ग्रामीण महिलाओं का शिक्षा स्तर ऊँचा उठाना, जन्म दर को कम करना, महिलाओं को द्वितीयक एवं तृतीयक कार्यों में संलग्न करना, पारिवारिक आय को बढ़ाकर जीवन स्तर को उन्नत करना तथा विवाह की आयु में वृद्धि करना आदि आवश्यक है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चान्दना, आर० सी० (1995) : जनसंख्या भूगोल कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, पृ. 85
2. पाण्डेय, जे० एन० (1991) : रिसोर्स यूज एण्ड कन्जर्वेशन इन सरयूपार प्लेन, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृ. 21
3. सिंह, एच० एस० (1993) : सुलतानपुर जनपद : भूमि संसाधन एवं जनसंख्या संतुलन का एक भौगोलिक विश्लेषण, अ० शो० प्रबन्ध, अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद, पृ. 205
4. कुमार, सन्तोष एवं आर० सी० पटेल (2009) : करछना तहसील में जनसंख्या वृद्धि का स्थानिक वितरण, भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, बस्ती, अंक-16, संख्या -2, पृ. 10
5. सिंह, धनन्जय (2003) : सामाजिक पर्यावरण पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव : पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक प्रतीक अध्ययन, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर, अंक 39 संख्या 1 एवं 2, पृ. 69

\*\*\*\*\*

## गाँधीवादी दर्शन और वैश्वीकरण की संकल्पना

डॉ. मधुसूदन सिंह\*

**सारांश :** प्रस्तुत शोध-पत्र गांधीवादी दर्शन और वैश्वीकरण की संकल्पना पर केन्द्रित है। वैश्वीकरण ग्लोबल विलेज की अवधारणा के साथ आया है। इस दौर में यह धारणा मजबूत हुई है कि सारी दुनिया एक गाँव के समान है जिसका साझा दुःख-सुख, साझा लाभ-हानि और साझी संस्कृति होगी। संस्कृति और विकास का विमर्श प्रारम्भ से चलता आया है। परम्परा और आधुनिकता का संघर्ष भी हमेशा से होता आया है। इन्हीं सबके बीच मानवता अग्रसर रही है लेकिन वैश्वीकरण के इस युग में आज यह प्रश्न उठता है कि क्या विश्व की सांस्कृतिक समरूपता वैश्विक उत्थान का परिचायक है या मानवीय ह्रास का। विकास के लिए एक रूपता आवश्यक है कि विविधता। गाँधीवादी दर्शन के मूल्यों और आदर्शों के आधार पर वैश्वीकरण की संकल्पना को स्थापित करने का यह प्रयास है। गाँधी के चिन्तन में भारतीय मूल्यों के अन्तर्गत पवित्रता, नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का आधार प्रमुख था। वैश्वीकरण और गाँधीवादी दर्शन के अन्तिम निहितार्थ से मानव विकास की सम्भावनाओं को बल मिलता है या नहीं। इन प्रश्नों के अतिरिक्त संस्कृतिगत समरूपता या विविधता का प्रश्न भी प्रासंगिक मालूम पड़ता है। वैश्वीकरण विकास और गाँधीवादी दर्शन के विश्लेषण को यह शोध-पत्र प्रस्तुत करता है।

**शब्द कुंज:-** वैश्वीकरण, संस्कृति, सम्यता, नैतिक मूल्य, विचार मूल्य, जीवन शैली, गाँधीवादी दर्शन, सांस्कृतिक संकट, आधुनिकीकरण, पूँजीवादी व्यवस्था, आध्यात्मिकता।

**प्रस्तावना-**भूमण्डलीकरण विश्व ग्राम की संकल्पना से जुड़ा है। सामान्य तौर पर भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण का अर्थ सम्पूर्ण विश्व और समस्त मानवता के बीच आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक अदान-प्रदान है। यानी :

भूमण्डलीकरण शब्द संस्कृति के आदान-प्रदान, दूर-दराज के लोगों के आपसी संबंधों में प्रगाढ़ता और आर्थिक गतिविधि बढ़ाने के लिए वैश्विक व्यापारिक संबंधों को संदर्भित करता है। लेकिन प्रसिद्ध दार्शनिक ज्यों बोदिल्ला भूमण्डलीकरण और वैश्वीकरण में अंतर करते हैं। उनके अनुसार वैश्वीकरण का ताल्लुक जहाँ मानवाधिकार, स्वतंत्रता, संस्कृति और लोकतंत्र से है, वहीं भूमण्डलीकरण प्रौद्योगिकी, बाजार, पर्यटन और सूचना के ताल्लुक रखता है। यदि इन अर्थों में देखें तो भूमण्डलीकरण का संबंध 'विनिमय' से जबकि वैश्वीकरण का संबंध 'विचार मूल्य' से जुड़ता है। भूमण्डलीकरण का प्रभाव-परिणाम सकारात्मक और नकारात्मक दोनों है। संस्कृति की सुन्दरता उसकी विविधता में है न कि एकरूपता में इसलिए भारत सांस्कृतिक समन्वय का उत्तम उदाहरण है। भूमण्डलीकरण स्वागत और समर्थन हमें वहीं तक करना होगा जहाँ तक वह विचार, सूचना, विज्ञान के क्षेत्र में हो। क्षमा, करुणा, दया, अहिंसा, संवेदना, नैतिकता, मैत्री और शांति के पक्ष में हो।

**विषय-वस्तु :-** दरअसल भूमण्डलीकरण के इस दौर में सिर्फ एक ही संस्कृति विकसित हो रही है, और वह है- 'बाजार की संस्कृति'। व्यापार का पुराना नियम था-मांग के अनुसार पूर्ति। वैश्विक बाजारवाद ने यह नियम एकदम बदल दिया है। अब पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली अपना उत्पादन इस नजरिये से करती है कि किस चीज को बनाकर अधिकतम मुनाफा बटोरा जा सकता है। फिर वह उद्योगपति अपने प्रोडक्ट की मांग पैदा करता है। उस मांग को बार-बार ऐसा बताया जाता है जैसे उससे बेहतर और कुछ होगा ही नहीं। हलवाई द्वारा बनाई गयी परम्परागत मिठाइयाँ हमारी संस्कृति व पर्व-त्योहारों का अटूट हिस्सा रही हैं किन्तु भूमण्डलीकरण के इस दौर में लोग अब परम्परागत मिठाइयाँ नहीं बल्कि कैडबरी की चॉकलेट उपहारस्वरूप देते हैं। यह अनायास नहीं है

\* पूर्व आस्ट्रेट प्रोफेसर, डॉ. राम मनोहर लोहिया पी.जी.कॉ. नौतनवा, महाराजगंज, (उ.प्र.)



बल्कि इसके पीछे प्रचार तंत्र का भारी बल समाहित होता है। जब-जब दीपावली या कोई पर्व-त्योहार आता है तो टीवी पर एकाएक नकली खोये वाली इतनी खबरें दिखाई जाती है कि लोग परम्परागत मिठाइयों को लेने की बजाय कैडबरी की चॉकलेट खरीद लेते हैं। और जब भी हम ये डिब्बाबंद चॉकलेट खरीदते हैं तब कहीं-न-कहीं अपने लोगों के पेशे को मार कर हम दूर देश में बैठी किसी विदेशी कंपनी को मुनाफा दे रहे होते हैं। यानी हमारे पर्व-त्योहार, पहनावा, खान-पान, रहन-सहन तक को बदलने में भूमंडलीकरण महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

यद्यपि संस्कृति और विकास का विमर्श हमेशा से चलता आया है। परम्परा और आधुनिकता का संघर्ष हमेशा से होता आया है और इन्हीं सब के बीच मानवता अग्रसर रही है। लेकिन ग्लोबलाइजेशन के युग में आज यह प्रश्न इस अर्थ में समीचीन है कि क्या विश्व की सांस्कृतिक समरूपता वैश्विक उत्थान का परिचायक है या मानवीय ह्रास का? विकास हेतु एकरूपता जरूरी है या विविधता? तथा भूमंडलीकरण द्वारा प्रायोजित सहमति का यह उद्योग विश्व कल्याण हेतु है या अमेरिकी कल्याण हेतु? हालांकि ये प्रश्न विशेष उत्तर की मांग करते हैं, तथापि यह जरूर कहा जा सकता है कि यह मान लेना एक भूल है कि वैश्वीकरण के सांस्कृतिक प्रभाव सिर्फ नकारात्मक ही होते हैं। संस्कृति कोई जड़ वस्तु नहीं बल्कि यह चलायमान होती है। मौका मिलने पर यह चौतरफा संवाद करती है। हर संस्कृति हर समय बाहरी प्रभावों को स्वीकार करती रहती है। कुछ बाहरी प्रभाव नकारात्मक होते हैं क्योंकि इससे हमारी पसंदों में कमी आती है। कभी-कभी बाहरी प्रभावों से हमारी पसंद-नापसंद का दायरा बढ़ता है तो कभी इनसे परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों को छोड़े बिना संस्कृति का परिष्कार होता है।

भारत एक प्राचीन सभ्यता है। ज्ञानोदय के मूल्यों एवं लोकतांत्रिक संस्थाओं पर आधारित भारत एक ऐसा आधुनिक राष्ट्र राज्य है जो 21वीं सदी की एक उभरती हुई शक्ति बनकर पनप रहा है। कालान्तर में भारत को परिभाषित करने की दृष्टि में खासी भिन्नता रही है। आध्यात्मिक रहस्यदर्पियों के लिए 'भारत एक सनातन यात्रा' है। बौद्धिक अन्वेषकों के लिए भारत 'अनेकता में एक का विचार है।' पश्चिमी चश्मे से देखने वालों के लिए भारत कभी 'एक घायल सभ्यता रहा तो कभी 'विश्व की सबसे बड़ी क्रियाशील अराजकता'। बहरहाल कभी 'सोने की चिड़िया' कभी 'सांप और सपेरो' का देश कहलाने वाला भारत विश्व का सबसे तेजी से प्रगति करता मुक्त बाजार वाला लोकतंत्र परिभाषित किया जाने लगा है। भारत की सांस्कृतिक समरसता, लोकतांत्रिक सातत्य एवं तर्कशील जीवन्तता में आर्थिक समृद्धि का नया अध्याय जुड़ गया है। इस नयी पहचान ने भारत का एक नया व्यक्तित्व गढ़ा है। इसके फलस्वरूप भारत आज का एक राष्ट्र नहीं अपितु एक आशा, अवसर, आकांक्षा और विश्वास का बौद्धिक प्रतीक बनकर उभरा है। इस प्रकार निर्विवाद रूप से भारत विश्व आकाश में एक निरन्तर दमकता सितारा है। परन्तु सफल भारत की सुनहरी पटकथा का एक चिन्ताजनक पहलू भी है— वैश्वीकृत भारत संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। फलतः जीवन मूल्यों, आदर्शों, संस्कारों एवं सरोकारों में आ रहे तेजी से बदलाव की अनदेखी नहीं की जा सकती। भारत में अमीर और गरीब, शहर और गांव, सेवा क्षेत्र और कृषि क्षेत्र, राष्ट्रीय विकास एवं क्षेत्रीय विकास आर्थिक विकास और मानव विकास के मध्य असमानता का ग्राफ तेजी से बढ़ता जा रहा है। वैश्वीकरण के प्रभाव से भारत में राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक संकट गहराता जा रहा है। हम क्या खायेंगे आज यह भी हम नहीं बल्कि बाजार तय कर रहा है। ऐसे ही 21 वीं सदी में भूमण्डलीकरण ने भारत को एक नये सांस्कृतिक दौराहे पर खड़ा कर दिया है। उपभोक्तावाद और बाजारवाद एक नई जीवन शैली बन गयी है और यहां तक कि नारी का वस्तुकरण भी हो रहा है। सत्ता का सुख भोग रहे अभिजनवादी राजनीतिज्ञ जनता के प्रति खतरनाक रूप से असंवेदनशील होते जा रहे हैं।

वैश्वीकरण ने प्राचीन एवं परम्परागत भारतीय समाज की बुनियादी आस्था को झकझोर कर रख दिया है। भारत के व्यक्ति, परिवार, समाज और संस्कृति के समक्ष पुनर्परिभाषा का संकट उत्पन्न हुआ है। विकास के इस नये स्वरूप ने भारत में समाज और संस्कृति के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। इन परिवर्तनों में कभी भविष्य के 'खतरे की आहट' सुनाई देती है तो कभी इसमें एक नये भविष्य को गढ़ने का सुखद एहसास परिलक्षित होता है। बहरहाल तेजी से हो रहे सभी सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों का विश्लेषण तथा भारत में विकास को गांधीवादी विकास के दर्शन के आधार पर देखना प्रासंगिक होगा। इस तरह भारत के विकास में वैश्वीकरण का प्रभाव और गांधीवादी विकास के दर्शन का अध्ययन आवश्यक है। गांधीवाद कोरा राजनीतिक सिद्धांत नहीं है। वह एक संदेश भी है, वह एक जीवन दर्शन है। यदि सभ्यता के सर्वनाश को रोकना है तो गांधीवादी दर्शन की ओर ध्यान देना होगा।

गांधीजी का मुख्य सरोकार मनुष्य के नैतिक जीवन से था। राजनीति को उन्होंने नैतिकता के साधन के रूप में देखा और अपनाया। गांधी जी भारत की उन्नति के लिए उसे पश्चिमी सभ्यता के सांचे में ढालना नहीं चाहते

थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि पश्चिमी सभ्यता मनुष्य को उपभोक्तावाद का रास्ता दिखा कर नैतिक पतन की ओर ले जायेगी। नैतिक उत्थान का रास्ता आत्मसंयम और त्याग भावना की मांग करता है। गांधी जी पश्चिमी सभ्यता और आधुनिक सभ्यता को समवर्ती मानते हुए उसकी विस्तृत समीक्षा की है।

गांधी जी के अनुसार आधुनिक सभ्यता के अन्तर्गत चेतन की तुलना में जड़ को, प्राकृतिक जीवन की तुलना में यांत्रिक जीवन को और नैतिकता की तुलना में राजनीति एवं अर्थशास्त्र को ऊंचा स्थान दिया जाता है। गांधी इस प्रवृत्ति को रोकना चाहते थे। फिर भी गांधी के दृष्टि में आधुनिक सभ्यता के कुछ तथ्य अवश्य सराहनीय हैं।

गांधी जी विकास की ऐसी किसी भी अवधारण के विरुद्ध थे जिसका लक्ष्य भौतिक इच्छाओं को बढ़ाना और उनकी पूर्ति के उपाय ढूँढना हो। वे मनुष्य के चरित्र को इतना उन्नत करना चाहते थे कि वह भौतिक इच्छाओं का दमन करके अपने मन को वश में कर लें। गांधी ने तर्क दिया कि पश्चिम में जब लोग जनसाधारण की दशा सुधारने की बात करते हैं। तो उनका लक्ष्य उसके भौतिक जीवन स्तर को उन्नत करना होता है परन्तु मनुष्य का सच्चा जीवन स्तर उसकी अंतरात्मा से निर्धारित होता है बाह्य परिस्थितियों में कोई भी परिवर्तन करके इसे उन्नत नहीं किया जा सकता। आज के भौतिकवादी समाज और भूमण्डलीकरण के दौर में बाह्य जीवन और भौतिक जीवन को समृद्ध बनाना अधिक देखा जाता है। मनुष्य की भौतिक इच्छाओं को उत्तेजित करने और उनकी पूर्ति का साधन जुटाने से हम केवल उसे नैतिक पतन की ओर ले जायेंगे।

गांधीवादी दर्शन के अनुसार मनुष्य को भौतिक वस्तुओं का उतना ही उपभोग करना चाहिए जितना उसके शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अनिवार्य हो। भौतिक इच्छाएं कभी भी शांत नहीं होती। उनकी तृप्ति का प्रयत्न करने से वे और भी उत्तेजित होती हैं। विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों की ओर जाने से संकल्पशक्ति नष्ट होती है। इच्छाओं को संयत रखने से दो उद्देश्यों की सिद्धि होती है—प्रथम सामाजिक न्याय को बल मिलता है तथा दूसरा मनुष्य का अपना नैतिक चरित्र उन्नत होता है।

गांधी जी ने शरीराश्रम के सिद्धांत के अंतर्गत यह शिक्षा दी है कि प्रत्येक मनुष्य को उपयुक्त शारीरिक श्रम करके अपने उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में योग देना चाहिए। इससे समाज में श्रम की गरिमा बढ़ेगी। गांधी ने प्रौद्योगिकी प्रधान उद्योगों के मुकाबले श्रमप्रधान उद्योगों को वरीयता दी। उन्होंने 'पुंज उत्पादन' के बजाय 'जनपुंज द्वारा उत्पादन' की प्रणाली को उचित ठहराया। विशेष रूप से कुटीर उद्योगों के विकास का समर्थन किया। गांधी जी का मत था कि स्वतंत्रता और विकास उस समय तक दिखावा और छल होगी जब तब लोग भूखे नंगे रहेंगे तथा असहनीय पीड़ा सहते रहेंगे। ग्राम स्वराज्य व शोषणविहीन समाज की रचना गांधी के आर्थिक दर्शन का प्रमुख आधार थी। गांधी जी ने पूंजीवादी व्यवस्था के उत्पादन, वितरण, लाभ, संचय तथा एकाधिकारी प्रवृत्ति के विरोधी थे। वस्तुतः उन्होंने आर्थिक समस्याओं का समाधान भी गैर-आर्थिक साधनों द्वारा नैतिकतापूर्ण तरीकों से करना चाहा। वह एक ऐसी समाज व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे जिसमें न केवल व्यक्ति का पुनर्निर्माण हो बल्कि ऐसी व्यवस्था नैतिक मूल्यों पर आधारित हो तथा जिसमें मानवीय मूल्यों की प्रधानता हो।

भूमंडलीकरण रूपी दैत्य का सामना करने के लिए आज गांधी का "स्वदेशी" का विचार ही सर्वाधिक उपयुक्त और प्रासंगिक है। गांधी की मान्यता थी कि लोगों को अपने देश में ही बनी वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए ताकि यहाँ की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हो। इसका सांकेतिक अर्थ यह भी था कि लोग अपनी संस्कृति और स्वाधीनता के साथ लगाव अनुभव करें ताकि वे यूरोपीय विचारों और संस्थाओं का अंधानुकरण न करने लगे। उनका यह पक्का विश्वास था कि किसी भी देश का विकास उसकी अपनी संस्कृति और मूल्य पम्परा के अनुरूप ही हो सकता है, दूसरी संस्कृतियों की नकल से नहीं। यही कारण था कि वे विकास और आधुनिकता की पश्चिमी अवधारणा से सहमत नहीं थे। उनका मानना था कि प्रत्येक देश का अपना विकास मार्ग और अपनी आधुनिकता होगी।

विकास की पश्चिमी संकल्पना के अंतर्गत उन्नत समाज के कुछ लक्षणों की पहचान कर ली जाती है, और फिर यह मान्यता रखी जाती है कि समाज अपने निम्नतर रूपों से उच्चतर रूपों की ओर अग्रसर होता है। इसमें यह संकेत भी निहित है कि हमें समाज के उच्चतर रूपों को ही अपना लक्ष्य बनाकर चलना चाहिए। अतः विकास का अभिप्राय भौतिक प्रगति की दिशा में अग्रसर होना है और इस प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा गया।

विकास और आधुनिकीकरण को समवर्ती घोषित करने के बाद विकसित या आधुनिक समाज के इन लक्षणों पर विशेष बल दिया जाता है : शहरीकरण का उन्नत स्तर, साक्षरता का विस्तार, प्रति व्यक्ति आय का उच्च स्तर,

अर्थव्यवस्था में वाणिज्य-व्यापार और औद्योगीकरण का ऊंचा स्तर, जन संपर्क के साधनों का विस्तृत और सर्वव्यापक जाल आदि। जाहिर है, ये सारे लक्षण पश्चिमी जगत के उन्नत देशों के लक्षण हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि विकास और आधुनिकीकरण वस्तुतः दूसरे अन्य देशों के पश्चिमीकरण के पर्याय हैं। इस विचार में यह संदेश भी छिपा है कि दूसरे देशों को अपने विकास के लिए पश्चिमी देशों के अनुरूप संरचनाएं विकसित करनी होंगी अन्यथा वे पिछड़े रह जाएंगे।

**निष्कर्ष**—इस प्रकार हम देखते हैं कि विकास को पहले आधुनिकीकरण से और फिर आधुनिकीकरण को पश्चिमीकरण से जोड़ दिया गया। यहां आकर यह विचार श्रृंखला पूरी होती है और विकास को सीधे-सीधे पश्चिमीकरण का पर्याय मान लिया जाता है। यह दृष्टिकोण मूलतः विकास की पूंजीवादी धारणा के साथ जुड़ा है लेकिन दिलचस्प तो यह है कि पूंजीवाद का विकल्प देने का दावा करने वाली मार्क्सवादी सैद्धांतिकी में भी विकास की इसी अवधारणा को स्वीकार किया गया। केवल और केवल गांधी ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने न सिर्फ इस अवधारणा को खारिज किया बल्कि आचरण से भी सही मायने में दुनिया को एक वैकल्पिक रास्ता दिखाया।

गांधी के चिंतन में भारतीय मूल्यों के अंतर्गत पवित्रता, नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का आधार प्रमुख था। उन्होंने सामाजिक आर्थिक राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन एवं विकास हेतु हिंसात्मक तरीकों एवं साधनों की अपेक्षा अहिंसात्मक साधनों तथा मूल्यों को ही औचित्यपूर्ण माना जबकि आज राजनीतिक संघर्ष और विरोध को गैर-राजनीतिक साधनों द्वारा प्रयोजनशील बनाना संभव नहीं।

गांधी जी ने विकास का जो मार्ग दिखाया वह मनुष्य को स्वभाव और चरित्र को नये सांचे में ढालने पर बल देता है समाज के सदस्यों का चरित्र उन्नत होने पर सम्पूर्ण समाज नये रूप में ढल जायेगा और आज के भौतिकवादी समाज और वैश्वीकरण की अपेक्षा एक नैतिक मूल्यवान समाज की स्थापना होगी। गांधीवादी विकास का जो रास्ता था वह भारत की संस्कृति और मूल्य परम्परा के अनुरूप था परन्तु देश को प्रौद्योगिकी प्रधान और तनाव भरे विश्व में अपना उपयुक्त स्थान प्राप्त करने के लिए इससे भिन्न रास्ता चुनना पड़ा। कुछ भी हो गांधी जी ने मनुष्य को उपभोग के नियमन और इच्छाओं के नियंत्रण का जो संदेश दिया वह आज के युग में मानवता के भविष्य की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण दर्शन बन चुका है।

आज 21 वीं सदी का मूल संघर्ष एकरूपता और विविधता, सार्वभौमिकता और स्थानीयता तथा केन्द्रीयता और विकेंद्रीयता के बीच है। जहाँ तक वैचारिकी का सवाल है, दुर्भाग्य से एकरूपता, सार्वभौमिकता एवं केन्द्रीयता के मूल्यों के साथ पूंजीवाद और मार्क्सवाद दोनों एक साथ खड़े हैं। ऐसे में कारगर विकल्प गांधी का ही बचता है।

#### संदर्भ-ग्रंथ

1. Madhu Limay-Manu, Gandhi, Ambedkar and other essay- (New Delhi Ghyan Publishing House 1995)
2. Mehta V.R. – Foundation of Indian Political Thought (Manohar Publishers New Delhi 1992)
3. गाबा, ओमप्रकाश – राजनीतिक विचारक विश्वकोश (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली)
4. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली – गांधी जी का धर्म एवं राजनीति।
5. वर्मा, वी. पी – आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2005 पृ. 395, 397
6. सिंह, रामजी – गांधी दर्शन मीमांसा (बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना 1973)
7. धवन, गोपीनाथ— सर्वोदय तत्व दर्शन
8. रोमा, रोला— महात्मा गांधी (लंदन – 1924)
9. गांधी, एम.के. —आत्मकथा (नवजीवन, प्रकाशन, अहमदाबाद, 1987)
10. कुमार, जैनेन्द्र – सर्वोदय अर्थशास्त्र
11. देसाई, महादेव – महात्मागांधी का समाजवादी दर्शन
12. प्रभु, आर.के.—मेरे सपनों का भारत (नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद 1960)
13. अमित कुमार—भूमण्डलीकरण और भारत (सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014)
14. शर्मा, बी.एम, रामकृष्ण दत्त, सविता—भारतीय राजनीतिक विचारक

\* \* \* \* \*

## चैतन्य तथा उनके शिष्यों का अचिन्ता भेदाभेदवाद

डॉ. दल सिंगार सिंह\*

**सारांश :** स्वयं चैतन्य ने कोई दार्शनिक ग्रन्थ नहीं लिखा है। उनके दार्शनिक विचारों को जानने के लिए उनकी जीवनी के लेखकों पर निर्भर रहना पड़ता है। ये जीवनी लेखक स्वतंत्र विचारक नहीं, बल्कि उनके भक्त और शिष्य थे। अतः स्वाभाविक रूप से उनकी रचनाओं में चैतन्य के प्रति भक्तिभाव प्राप्त होता है तथा आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

महाप्रभु चैतन्य निम्बार्क और बल्लभ के उत्तराधिकारी वैष्णव सुधारकों में अन्तिम थे, वस्तुतः वे बल्लभ के अवर समकालीन थे। इनका जन्म सन् 1485 ई० में बंगाल में हुआ था। बसन्त ऋतु के पूर्णिमा के दिन (फाल्गुन मास में), जब चन्द्रग्रहण था तब इनका जन्म हुआ था। इनका विवाह हुआ था, पिता की मृत्यु के पश्चात्, दीक्षोपरान्त, संसार को त्यागने का निश्चय किया, किन्तु कुछ काल अवधि-पश्चात्, माता की अनुमति से इन्होंने सन्यास ग्रहण किया। चैतन्य का देहावसान वर्ष 1533 ई० में हुआ। चैतन्य के धार्मिक जीवन में भक्ति के ऐसे अनन्य शारीरिक विकृतिजन्य लक्षण अभिव्यक्त होते हैं जिनकी कदाचित् किसी भी अन्य ज्ञात संत के जीवन में कोई समानता नहीं पाई जाती। सम्भवतः उनकी निकटतम समानता संत फ्रांसिस ऑफ असिसी के जीवन में पाई जा सकती है। लेकिन चैतन्य का भावना प्रवाह अधिक आत्म-केन्द्रित और प्रगाढ़ प्रतीत होते हैं। अपने धार्मिक जीवन के प्रारम्भ में वे न केवल 'कीर्तन' नामक एक विचित्र प्रकार के आत्मोन्मत्त गीत नृत्य में निमग्न रहते थे, बल्कि वे पुराणों में कथित कृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओं का प्रायः अनुकरण भी किया करते थे। लेकिन अपने सन्यास जीवन की परिपक्वता के साथ-साथ उनका उन्माद और कृष्ण के प्रति उनका प्रेम इतना अभिवृद्धि हो गया कि उनमें लगभग पागलपन एवं मिर्गी के लक्षण विकसित हो गये। उनके रोम-रन्ध्रों से रक्त चूने लगता, उनके दाँत किटकिटाने लगते, उनका शरीर एक क्षण में ही संकुचित हो जाता और आगामी क्षण में फूलता हुआ प्रतीत होता। वे अपना मुख फर्स पर रगड़ लिया करते और रोने लगते तथा रात्रि में उन्हें नींद नहीं आती थी। एक बार वे समुद्र में कूद पड़े, कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी हड्डियों के जोड़ विस्थापित हो गये हैं, आदि। उनके गीता का एकमात्र आशय यह था, कि उनका हृदय प्रभु श्रीकृष्ण से पीड़ित और विदीर्ण हो रहा है। चैतन्य ने लगभग कुछ नहीं लिखा, उनके उपदेश अल्प थे, परिसंवादों में उनके भाग लेने का भी कोई प्रामाणिक अभिलेख नहीं उपलब्ध है। उन्होंने बहुत ही कम उपदेश दिए। उनके सम्प्रदाय के सदस्यों में जीद्रगोस्वामी और बलदेव विद्याभूषण हो सम्भवतः ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने एक प्रकार के दर्शन का निरूपण करने का प्रयास किया है।

महाप्रभु श्री चैतन्य का दर्शन अचिन्त्य भेदाभेदवाद के नाम से विख्यात है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसे माध्वमत के साथ जोड़ा जाता है। साधारण रूप से मध्य के द्वैतवाद का ही अनुसरण करने के कारण इसे माध्व गौडेश्वर वेदान्त भी कहा जाता है, लेकिन माध्वमत से कई महत्वपूर्ण भेद होने के कारण इसे माध्वगौडीय सम्प्रदाय के स्थान पर केवल गौडीय सम्प्रदाय कहना उचित है। इसे बंग वैष्णव सम्प्रदाय भी कहा जाता है। दार्शनिक सम्प्रदाय के रूप में अचिन्त्य भेदाभेदवाद की प्रतिष्ठा में उनके अनुयायियों श्रीरूप गोस्वामी, श्री जीवगोस्वामी के उज्ज्वल नीलमणि और भक्ति रसामृत सिन्धु नामक प्रख्यात ग्रन्थों पर श्री जीवगोस्वामी की टीकाएँ हैं। श्री जीवगोस्वामी का भागवत पर षट्सन्दर्भ नामक ग्रन्थ, जो उन्हीं की सर्वसंवादिनी टीका से विभूषित है—इस सम्प्रदाय का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। महाप्रभु श्री चैतन्य का मूल नाम विश्वभर मिश्र था, बाद में कृष्ण चैतन्य कहलाये। उनके भक्तों ने उनको कृष्ण का अवतार कहा है। उनको गौरांग या गौरचन्द्र भी कहा जाता है। चैतन्य के बड़े भाई नित्यानन्द थे। इनके सम्प्रदाय में चैतन्य को कृष्ण तथा नित्यानन्द को बलराम माना जाता है। नामादास

\* अध्यक्ष दर्शनशास्त्र विभाग, तिलकधारी पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, जौनपुर

ने लिखा है कि चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द ने दसवीं भक्ति का प्रचार दसों दिशाओं में किया। नवधाभक्ति के अतिरिक्त इन्होंने दसवीं नाम प्रेम की भक्ति बतलाई है।

चैतन्य एक सुधारक भी थे। उन्होंने युद्ध प्रेम धर्म का प्रचार किया और भक्ति में पूजा-पद्धति तथा कर्मकाण्ड को व्यर्थ बताया। हरि के नाम कीर्तन का उन्होंने बड़ा प्रचार किया। वर्णाश्रम व्यवस्था की आलोचना की और मानव-बन्धुत्व की शिक्षा दी। अपने मत में उन्होंने शूद्रों तथा मुसलमानों को भी दीक्षित किया। ऐसा कहा जाता है कि वाराणसी में उनका शास्त्रार्थ अद्वैतवादी प्रकाशानन्द से हुआ था जिसमें उन्होंने प्रकाशानन्द को पराजित किया था। लेकिन चैतन्य ने श्रीधर स्वामी की भागवत पर जो अद्वैतवादी टीका है, उसको स्वीकार किया था। अतः उनका अद्वैतवाद से विद्वेष नहीं था। प्रकाशानन्द के एक जीववाद से उनका मतभेद है लेकिन अद्वैतवाद के अन्य प्रकारों से उनका मतभेद नहीं है। उन्होंने स्वयं एक प्रकार के अद्वैतवाद का ही प्रचार किया है।

उनकी कोई रचना तो उपलब्ध नहीं है किन्तु सम्भवतः उन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा, बल्कि उनके भक्तों ने दशमूल श्लोक को चैतन्यकृत माना है, फिर संस्कृत, बंगाली, असमिया तथा उड़ीसा में उनके कई जीवन चरित्र लिखे गये हैं। वृन्दावन दास का चैतन्यभागवत, कृष्णादास कविराज का चैतन्य चरितामृत, कवि कर्णपूर का चैतन्य कोदय नाटक आदि में उनके जीवन-चरित्र का वर्णन है। चैतन्य के दो मुख्य शिष्यों रूपगोस्वामी और सनातनगोस्वामी, जो दोनों सगे भाई थे, में रूपगोस्वामी कवि तथा नाटककार थे। दर्शन में उनके ग्रन्थ हैं—

लघुभागवतामृत, हरिभक्ति विलास तथा भागवत् के दशम स्कन्ध पर वैष्णवतोषिणी टीका नामक ग्रन्थ। रूप और सनातन के बाद इस मत में जीवगोस्वामी का नाम आता है। इन्होंने भागवत पर क्रम सन्दर्भ नामक टीका तथा भक्ति रसामृत-सिन्धु पर दुर्गसंगमनी नामक टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त इन्होंने षट् सन्दर्भ या भागवत् सन्दर्भ नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखा जिसमें तब सन्दर्भ-भागवत सन्दर्भ, परमात्म सन्दर्भ, कृष्ण-सन्दर्भ, 'भक्ति सन्दर्भ और प्रीति सन्दर्भ' नामक छः सन्दर्भ खण्ड भी हैं। इस पर जीवगोस्वामी ने ही सर्वसंवादिनी नामक टीका लिखी है। सर्वसंवादिनी सहित षट् सन्दर्भ ही चैतन्य वेदान्त में सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वोत्तम ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है। नामादास ने लिखा है कि इन्होंने सभी सद्ग्रन्थों को हस्तामलक किया था और ये रूपी संशयों को दूर करने में समर्थ थे। नामादास ने इनको रूप और सनातन के जल से भरा सरोवर कटार है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जीवगोस्वामी ही चैतन्य मत के सबसे महान दार्शनिक हुए हैं।<sup>1</sup>

जीवगोस्वामी के बाद चैतन्यमत में विश्वनाथ चक्रवर्ती (17वीं शदी) हुए जिन्होंने भागवत पर सारार्थदर्शिनी टीका लिखी है। बलदेव विद्या भूषण (18वीं शदी) ने ब्रह्म रस पर चैतन्यमतानुसारी गोविन्द भाष्य लिखा। तब से चैतन्यमत को भी वेदान्त की एक शाखा माना जाने लगा। सिद्धान्त रत्न, प्रमेय रत्नावली, गीताभूषण (टीका), आदि विद्याभूषण के अन्य ग्रन्थ हैं। इन्होंने रूप गोस्वामी तथा जीवगोस्वामी के ग्रन्थों पर भी टीकाएँ लिखी हैं। स्पष्ट होता है कि चैतन्य मत भी भागवत पुराण को ब्रह्म रूप की अपेक्षा अधिकतम महत्त्व देता है। यह कहना नहीं होगा कि जिसके तब रहित प्रेम को भागवत में प्रतिपादित किया गया था उसका उद्भव निम्बार्क के माधुर्य-भाव में हुआ, उसी का विकास बल्लभ के पुष्टिमार्ग में हुआ और उसी को पराकाष्ठा चैतन्य सम्प्रदाय में हुई।<sup>2</sup>

अचिन्त्य भेदाभेदवाद का निखार बलदेव के गोविन्द भाष्य में पाया जाता है। इस मत में भी अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के समान शंका के मायावाद का दर्शन कर जगत् की वास्तविक सत्ता को माना गया है। उपासना पर विशेष महत्त्व देने के कारण सगुण ब्रह्म का प्रमुख तथा निर्गुण ब्रह्म का गौण स्थान है। चित् और अचित् इन दो शक्तियों से युक्त ब्रह्म कारण अवस्था में सूक्ष्मशक्ति वाला तथा कार्य अवस्था में स्थूल शक्तिवाला कहलाता है। कार्यकारण के सम्बन्ध में यह मत रामानुज के सिद्धान्त के निकट है। चित् तथा अचित्—ये दोनों शक्तियाँ स्वरूपतः ब्रह्म से अभिन्न होते हुए भी स्थूल अवस्था में उससे भिन्न हैं। यह भेद तथा अभेद ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति से ही सम्भव है, इस कारण से यह भेद तथा अभेद अचिन्त्य है। मध्य सम्मत विशेष पदार्थ की मान्यता के कारण ही अभेद की स्थिति में भी भेद सम्भव हो पाता है। चित्-अचित् शक्तियों का परिणाम होने पर भी शक्तिमान ब्रह्म स्वरूपतः अपरिणमित बना रहता है। उसकी परिणमित शक्ति विशेष निमित्त कारण है तथा चिदचित् शक्ति के योग से वह उपादान कारण बन जाता है। इस प्रकार ब्रह्म अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। अपनी सूक्ष्म शक्ति की स्थिति में कारण तथा अपनी स्थूल शक्ति की स्थिति में वह कार्य है। इस कारण से इस मत में कार्य-कारण अनन्यत्व वाद मान्य है। उपास्य ब्रह्म एवं उसकी शक्ति को लक्ष्मी-नारायण के ऐश्वर्य के स्थान पर राधाकृष्ण के माधुर्य रूप

तथा उसी के अनुरूप ज्ञानरूपा पराभक्ति के स्थान पर प्रेमरूपा भक्ति की स्वीकृति इस मत की प्रमुख विशेषता है। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च या प्रथम शक्ति के रूप में स्वरूप शक्ति, अन्तरंग शक्ति, विष्णु शक्ति या चित् शक्ति है। द्वितीय शक्ति के रूप में जीव शक्ति, तटस्थ शक्ति या क्षेत्रज्ञ शक्ति है तथा तृतीय शक्ति के रूप में प्रकृति तथा अविद्या जिसे संयुक्त रूप में माया या बहिरंग शक्ति भी कहते हैं— है। इस प्रकार तीन शक्तियों की मान्यता भी इस मत की प्रमुख विशेषता है।

इस प्रकार परम तत्त्व ईश्वर की शक्ति अचिन्त्य है और अकल्पनीय है, जीव तथा जगत् ईश्वर की शक्ति है और ईश्वर शक्तिमान है। चैतन्य के अनुसार शक्ति और शक्तिमान का सम्बन्ध भेदाभेद है लेकिन यह भेदाभेद तर्क या बुद्धि के द्वारा नहीं समझाया जा सकता। शक्ति का शक्तिमान से, जीव—जगत् को ईश्वर (ब्रह्म) से भिन्न नहीं माना जा सकता क्योंकि शक्ति का शक्तिमान (द्रव्य) से भिन्न अस्तित्व नहीं है। शक्ति और शक्तिमान को, जीव—जगत् एवं ईश्वर (ब्रह्म) को अभेद (ऐक्य) भी नहीं माना जा सकता क्योंकि यदि उनमें एक रूपता होती तो कोई गति, कोई परिणाम अथवा कोई परिवर्तन नहीं हो सकता था। इस प्रकार ब्रह्म में स्थित शक्तियों के अस्तित्व को तर्क के द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता, लेकिन कार्यान्वयानुपपत्ति रूप अर्थापत्ति के द्वारा उनका ज्ञान होता है।<sup>19</sup> अतः जीव—जगत् का ब्रह्म से पूर्णतः अभेद नहीं है और न भेद ही है, बल्कि उनमें भेद में अभेद रूप विलक्षण सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध तर्क से अचिन्त्य है।

जीवगोस्वामी का कहना है कि परब्रह्म परमात्मा का उनकी शक्तियों से अभेद रूप में चिन्तन नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह पृथक् प्रतीत होता है और भेद रूप में भी चिन्तन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अभिन्न प्रतीत होता है। इस प्रकार परमात्मा और उनकी शक्तियों में भेद तथा अभेद दोनों सिद्ध होते हैं और ये दोनों ही अचिन्त्य शक्ति के कारण अचिन्त्य हैं।<sup>14</sup>

#### अचिन्त्य भेदाभेदवाद सिद्धान्त (सामान्यतया चैतन्य चरितामृत से)

चूँकि महाप्रभु चैतन्य लिखित कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर हम उनके दार्शनिक सिद्धान्त की समीक्षा करें। अतः उनके दार्शनिक सिद्धान्त के यत्किंचित्—बीज उनके चरित ग्रन्थों में ही देखे जा सकते हैं जो उनके अनुयायियों द्वारा लिखे गये हैं। यहाँ पर इन चरित ग्रन्थों के आधार पर ही चैतन्य के दार्शनिक सिद्धान्त का निरूपण किया जाएगा। अचिन्त्य भेदाभेदवाद के अन्तर्गत यह माना गया है कि भगवान् की शक्ति अचिन्त्य है। अतः भगवान् और जगत् में भेद है या अभेद—

यह भी अचिन्त्य ही है। इसीलिए इस सिद्धान्त का नाम अचिन्त्य भेदाभेदवाद पड़ा है।<sup>15</sup> भेदाभेद के अचिन्त्य होने के कारण चैतन्य सम्प्रदाय के अनुरूप जगत् आचार्य शंकर के वेदान्त की तरह मिथ्या न होकर सत्य है। प्रलय काल में भी जगत् भगवान् के साथ उसी प्रकार सूक्ष्म रूप में स्थित रहता है जिस प्रकार की रात्रि में पक्षी वन में लीन हो जाता है।<sup>16</sup>

चैतन्य के अनुसार परम ब्रह्म विष्णु ही परमतत्त्व हैं। वही ईश्वर है और सत्, चित् एवं आनन्द रूप हैं। उनके अनुसार श्रीकृष्ण ही परमब्रह्म है। वासुदेव, विष्णु, नारायण और शिव कृष्ण के ही रूप हैं और ब्रह्म परमात्मा एवं भगवान् हैं। जब कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति उद्भूत होती है तब उन्हें ब्रह्म कहते हैं और जब उनमें शक्ति कुछ तिरोहित रहती है और कुछ प्रकट रहती है तब उन्हें परमात्मा कहते हैं। शक्तियाँ विशेषण हैं और वह ब्रह्म विशेष्य है। समस्त शक्तियों से विशिष्ट शक्तियाँ विशेषण हैं और वह ब्रह्म विशेष्य है। समस्त शक्तियों से विशिष्ट होने के कारण ही उन्हें भगवान् कहते हैं।<sup>17</sup> वस्तुतः भगवान्, परमात्मा और ब्रह्म तीनों एक ही तत्व की विभिन्न विशेषताओं को व्यक्त करने वाले अलग—अलग तत्व के रूप में प्रयुक्त हैं, वस्तुतः तीनों एक हैं, केवल दृष्टिभेद से भिन्न प्रतीत होते हैं। चैतन्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत ब्रह्म ही निर्गुण न मानकर पूर्णतया सगुण माना गया है क्योंकि उसमें सत्, चित्, आनन्द, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्त्व आदि गुण विद्यमान हैं इसीलिए उसे गुणात्मा कहा गया है और निर्गुण इसलिए कहा जाता है कि वह प्रकृति के गुणों से रहित है।<sup>18</sup> ब्रह्म की असीम शक्तियाँ हैं, इसी शक्ति के कारण वह स्वगत्, सजातीय, और विजातीय भेदों में रहित है और वही जगत् के विकास, स्थिति एवं लय का आधार है और इसे ब्रह्माण्ड का उपादान एवं निमित्त कारण है।<sup>19</sup> अपनी उच्चतर (पक्ष) शक्ति के कारण वह इस विश्व का निमित्त कारण है।<sup>20</sup> और अपनी अन्य शक्तियों के द्वारा वह उपादान कारण है, वह अन्य शक्तियाँ हैं जिसका नाम अपरा शक्ति तथा अविद्याशक्ति है। इस प्रकार उसकी तीन शक्तियाँ हैं अर्थात् भगवान् की शक्ति के प्रमुख तीन रूप हैं—विष्णुशक्ति, क्षेत्रज्ञ शक्ति और अविद्याशक्ति<sup>21</sup> इसी को परा, अपरा और अविद्या शक्ति भी कहा गया है। पराशक्ति के कारण



ही विश्व का निमित्त कारण और उसकी अपरा (जीव) और अविद्या (माया) शक्ति विश्व का उपादान कारण है। इन्हीं तीन शक्तियों का क्रमशः स्वरूपशक्ति, तटस्थशक्ति तथा माया शक्ति भी कहा गया है। उसकी पहली शक्ति अर्थात् पराशक्ति अपरिवर्तनीय है। सत्, चित् एवं आनन्द शक्तियों पराशक्ति या विष्णुशक्ति के अन्तर्गत है। यह श्रेष्ठ शक्ति है। यह ब्रह्म की स्वाभाविक शक्ति है। यही उसकी स्वरूप शक्ति, अन्तरंग शक्ति, विष्णु शक्ति है। चैतन्य के अनुसार कृष्ण ही परमशक्ति हैं। वे चतुर्व्यूह के माध्यम से ज्ञान, चित, प्रेम और लीला को प्रकट करते हैं। सत्, चित् एवं आनन्द रूप होने के कारण ब्रह्म की स्वरूप शक्ति तीन रूपों—हलादिनी संधिनी एवं संवित्—में अभिव्यक्त होती है। संधिनी के द्वारा वह स्वयं के तथा दूसरों के अस्तित्व को धारण करने में समर्थ होती है और समस्त, देश, काल और द्रव्यों में व्याप्त रहता है। 'सत्' रूप में अभिव्यक्त इस शक्ति का नाम संधिनी है। संवित् शक्ति के द्वारा ईश्वर स्वयं को जानता है और दूसरों को ज्ञान प्रदान करता है। 'चित्' रूप में अभिव्यक्त इस शक्ति की संज्ञा संवित है। हलादिनी शक्ति ही ब्रह्म की मुख्य शक्ति है। यह आनन्द एवं प्रेम की शक्ति है। इस शक्ति के द्वारा वह स्वयं आनन्द का उपयोग करता है और दूसरों को करवाता है। 'आनन्द' रूप में अभिव्यक्त यह शक्ति हलादिनी कहलाती है। अतः भगवान् की यह स्वरूप शक्ति सिद्धिरूपा है।<sup>12</sup> क्षेत्रज्ञ या जीव शक्ति जिससे भगवान् अणु परमाणु जीवों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं, यही उनकी तटस्थ शक्ति है। माया शक्ति या अविद्या शक्ति या बहिरंगशक्ति वह है जिससे भगवान् जड़ जगत् के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। इसके दो रूप हैं—जीव माया और गुण माया।

चैतन्य दर्शन का ब्रह्म प्राकृत गुणों से रहित होते हुए भी अप्राकृत विशेषताओं से विशिष्ट है। गीता के अन्तर्गत माया के द्वारा ईश्वर के निमन्तत्त्व की विचारणा मिलती है। मायाशक्ति से सम्पन्न, चैतन्य दर्शन का ईश्वर की जीवों का नियन्ता है। ईश्वर अपनी अचिन्त्य शक्तियों के द्वारा जगत् की सृष्टि करता है। ईश्वर द्वारा सृष्टा जगत् यद्यपि मिथ्या नहीं है, लेकिन 'यदुत्पादि विनाशित' के अनुसार विनाशशील अवश्य है। यही शांकर-वेदान्त और चैतन्य दर्शन के जगत् सम्बन्धी दृष्टिकोण का भेद है। शांकर वेदान्त का जगत् परमात्मा की अविद्याशक्ति से उत्पन्न होने के कारण मिथ्या है।

ब्रह्म की तटस्थ शक्ति से जीव आविर्भूत होता है, वह नित्य और अणु रूप है, वह प्रकृति सिगुण से सम्बद्ध है। माया की शक्ति के द्वारा वह संसार के बन्धनों से जकड़ जाती है, जो उन्हें अपने वास्तविक स्वरूप की भुला देती है। भगवान् की कृपा में वह आत्म बोध को प्राप्त करती है। नित्यमुक्त और वह दो प्रचार के जीव हैं। ईश्वर की मायाशक्ति का ही परिणाम यह जगत् है। ईश्वर ही इस जगत् का उपादान और निमित्त कारण है। अतः यह जगत् ब्रह्म से भिन्न नहीं है क्योंकि उससे स्वतंत्र उसका अस्तित्व नहीं है और ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न भी नहीं, क्योंकि उससे स्वतंत्र उसका अस्तित्व नहीं है और ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न भी नहीं, क्योंकि शक्ति (जगत्) और शक्तिमान् (ब्रह्म) में तादात्म्य नहीं हो सकता। चैतन्य मत में जगत् एक यथार्थ सृष्टि है। वस्तुतः वैष्णव सम्प्रदाय की दृष्टि जगत् के सदसत् के विवेचन में नहीं रही है। उनकी दृष्टि परमात्मा की परम शक्ति में निहित रही है।<sup>13</sup>

चैतन्य सम्प्रदाय के भक्ति सम्बन्धी सिद्धान्त का संकेत चैतन्य और रामानन्द के संवादों में मिलता है। रामानन्द के कथनानुसार वर्णाश्रम व्यवस्थागत कर्मों के करने पर भगवान् की भक्ति की प्राप्ति होती है।<sup>14</sup> लेकिन भक्ति रसामृत से अन्धकार का कथन है कि उत्तमा भक्ति समस्त अभिलाषाओं से शून्य तथा ज्ञान कर्माणि से अनावृत्त है। इस प्रकार आनुकूल्य के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का अनुसेवन ही भक्ति है ("आनुकूल्येन कृष्णानु सेवनं भक्ति रूतमा।"—1/1/11)। चैतन्य रामानन्द के उक्त मत से सहमत नहीं थे कि वर्णाश्रम व्यवस्था गत कर्मों के विना ज्ञान से भक्ति की उपलब्धि होती है। चैतन्य की उक्त असहमति देखकर रामानन्द, भक्ति की एक और उच्चतर स्थिति मानते हैं। वह यह है कि भक्त ईश्वर-प्राप्ति का अनुष्ठान करते हुए समस्त कामनाओं का त्याग कर देता है। इसके बाद भक्ति की वह स्थिति आती है। जिसके अनुसार भक्त भगवत्प्रेम के द्वारा समस्त कर्मविधान का त्याग कर देता है। इसके पश्चात् भक्ति की वह ज्ञानगर्भित स्थिति आती है जिसमें भक्त को भगवान् के माहात्म्य एवं स्वभाव का ज्ञान भक्ति का बाधक न होकर साधक ही है।<sup>15</sup>

चैतन्य के अनुसार ईश्वर की मायाशक्ति से मुक्त होना मोक्ष है। ईश्वर की मायाशक्ति का परिणाम ही जगत् है। वह जीव ईश्वर की प्रपत्ति अथवा भक्ति से माया के बन्धनों को काट देता है तब उसे अपने स्वरूप जो कि परमात्मा को भूल जाता है, का ज्ञान होता है। माया शक्ति से मुक्त हो जाने पर वह ईश्वर की तटस्थ शक्ति का अंश नहीं रहता बल्कि वह स्वरूप शक्ति का अंश बन जाता है। मोक्ष प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन चैतन्य के अनुसार,



जीव गोस्वामी विशेषज्ञों के सिद्धान्त के स्थान पर, जिसका समर्थन रामानुज ने किया है, अपने शक्ति विषयक सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं लेकिन यदि ईश्वर एक ऐसे गुण को धारण नहीं कर सकता है जो स्वरूप में उसकी सत्ता के विरुद्ध है। यद्यपि इस सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले कुछ विद्वान लेखक अपने को मध्य का अनुयायी कहते हैं किन्तु वस्तुतः विचार में वे रामानुज के अधिक निकट हैं क्योंकि वे तादात्म्य पर बल देते हैं, मेले ही वे भेदों को स्वीकार करते हैं। उक्त भेदों का कारण के उन शक्तियों को बताते हैं जिनका सम्बन्ध किसी अचिन्त्य रूप में ईश्वर के साथ है। जीवगोस्वामी अपनी सर्वसंवादिनी ने यह स्वीकार करते हैं कि हम ईश्वर तथा उसकी शक्तियों को न तो तादात्म्य और न उससे भिन्न ही मान सकते हैं।

दक्षिण भारत के वैष्णव मत ने वृंदावन की लीला के गुण कीर्तन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था, यद्यपि कुछ आलवारों ने गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। लेकिन उत्तर भारत में स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न थी। निम्बार्क के मत में राधा जो प्रियतमा उपपत्नी के रूप में हैं, गोपियों में केवल मुख्य ही न होकर कृष्ण की अनादिकाल से पत्नी हैं। गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव, विद्यापति, उमापति तथा चण्डीदास (14वीं शदी) बंगाल तथा बिहार में राधाकृष्ण सम्प्रदाय के बढ़ते हुए प्रभाव का दिग्दर्शन कराते हैं, जिसका श्रेय शाक्त दर्शन की विचार धारा तथा व्यावहारिक प्रचलन को है।

इस प्रकार के वातावरण प्रशिक्षण पाकर वैष्णव मत के महान प्रचारक महाप्रभु चैतन्य विष्णुपुराण, हरिवंश, भागवत् और ब्रह्मवैवर्त पुराण में दिये गये कृष्ण विषयक वर्णन से बहुत आकृष्ट हुए थे और उन्होंने अपने व्यक्तित्व तथा आचरण से वैष्णव मत को एक नया ही रूप दे डाला। उनका उदार दृष्टिकोण, लोक-तन्त्रात्मक सतानुभूति के कार्यों ने उनके अनुयायियों की संख्या में बहुत वृद्धि किया यद्यपि कट्टर पन्थियों में उनकी चौंका देने वाली कार्य प्रणाली से बहुत बेचैनी फैली। बिना रोक-टोक के इस्लाम धर्म से आने वालों को भी उन्होंने गले लगाया था, यहाँ तक कि उनका सबसे पहले शिष्यों में एक मुसलमान फकीर भी रहा जिसने हरिदास के नाम से चैतन्य के वैष्णव सम्प्रदाय में बड़ी ख्याति तथा आदर पाया।

ज्ञान के सिद्धान्त विषयक प्रश्न पर ऐसा कुछ नहीं जो इस सम्प्रदाय का अपना विशेषत्व रखता हो। ज्ञान के साधनों के विषय में जो परम्परागत विवरण है, जिसमें वैदिक प्रामाण्य भी सम्मिलित है, वही इस चेतना की एक अवस्था है जो आगे चलकर निश्चयात्मक ज्ञान में परिणत हो जाती है। असम्बद्ध तात्कालिक अनुभव निश्चयात्मक बोध के पूर्व आता है। पहला निर्विकल्प बोध है। निश्चयात्मक (सविकल्प) बोध-मूलरूप में इनके अन्दर विद्यमान रहता है। यह एक तथ्य है कि निश्चयात्मक ज्ञान में बुद्धिगम्य होता है। परिणाम यह निकला कि निर्विकल्प ज्ञान चेतनता का एक तथ्य है और अन्तर्दृष्टि ज्ञान भी, जिसमें सम्बन्ध अनुपस्थित रहते हैं, इसी प्रकार का है। जीवगोस्वामी ऐसे सर्वव्यापी को नहीं मानते, जिसमें सब भेद सम्मिलित हों। (भागवत् संदर्भ)। हमें पहले सर्वव्यापी का उसके अपने रूप में ज्ञान होता है और उसके पश्चात् सोपाधिक सर्वव्यापी का ज्ञान होता है। ब्रह्म का अन्तर्दृष्टि द्वारा प्राप्त ज्ञान, जो शुद्ध और साधारण है, जीवगोस्वामी की दृष्टि में चेतना का एक सन्देहरहित तथ्य है, यद्यपि इसका अतीन्द्रिय होना आवश्यक है।

**अचिन्त्य भेदाभेद-सिद्धान्त (सामान्य मत निरूपण)**-सम्बन्ध में कुछ प्रमुख महत्त्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं-

(1) इस सम्प्रदाय के अनुसार केवल वेद ही ज्ञान के प्रामाणिक स्रोत हैं। अन्य प्रमाणों की वैधता केवल उसकी अंश तक है जिस अंश तक वे वेदों के अनुकूल है। पुराणों ने वेदों की व्याख्या की है। बल्लभ के समान ही चैतन्य भी इस मत के हैं कि केवल भागवत् पुराण ही उपनिषदों और ब्रह्मसूत्र पर प्रामाणिक व्याख्या है। भागवत् के पश्चात् चैतन्य चरितामृत (श्रीचैतन्य की जीवनी) ही इस सम्प्रदाय के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

(2) अचिन्त्य भेदाभेद वाद पाँच तत्त्वों, यथा-ब्रह्म या भगवान् श्रीकृष्ण, प्रकृति या जड़ जगत्, जीवात्मा, काल और कर्म- में विश्वास करता है। बल्लभ के पुष्टिमार्ग के समान चैतन्य भी इस मत के हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्म के अन्य अवतारों में से एक अवतार नहीं हैं, बल्कि वे स्वयं ब्रह्म हैं। यद्यपि ब्रह्म एक और अविभाज्य है, फिर भी भक्तों के उसे प्राप्त कर सकने के विशेष रूप के अनुसार उसके तीन, यथा-ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् या भगवत्-पक्ष हैं। इन तीनों में से परमतत्त्व की सर्वोच्च और सर्वाधिक पूर्ण अभिव्यक्ति भगवान् या भगवत् है। उसमें स्वरूप शक्ति तथा रसत्व सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति पाते हैं। परम तत्त्व के ब्रह्म पक्ष में स्वरूप शक्ति और रसत्व बहुत कम अभिव्यक्ति पाते हैं। इसी कारण ब्रह्म को कभी-कभी निर्गुण भी कहा जाता है। परमात्मा परमतत्त्व का

अन्तर्वर्ती पक्ष है। उसमें स्वरूप शक्ति और रसत्व ब्रह्म से अधिक अभिव्यक्त होती है। भगवत् और ब्रह्म में अन्तर केवल दृष्टिकोण के भेद के कारण है।

(3) ब्रह्म सत् (शुद्ध सत्ता) चित् (शुद्ध चैतन्य) और आनन्द (शुद्ध आनन्द) है। उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं। जिनमें से स्वरूप शक्ति, मायाशक्ति, और जीव शक्ति प्रमुख हैं। ईश्वर की इन तीन शक्तियों में स्वरूपशक्ति अन्य दो शक्तियों से श्रेष्ठ है क्योंकि वह ब्रह्म की स्वाभाविक शक्ति है। शेष दो शक्तियों में जीवशक्ति माया शक्ति से श्रेष्ठ क्योंकि वह चेतन है जबकि माया शक्ति अचेतन है।

(4) स्वरूप शक्ति अन्त रंग शक्ति है। यह शक्ति ईश्वर की वह शक्ति है जो भगवत् के पूर्ण आत्म स्वरूप का निर्माण कर रही है। उसके विभिन्न पक्ष हैं। विष्णु पुराण के आधार पर उसका विभाजन संधिनी, सम्बित् तथा हलादिनी में होता है। ये ईश्वर के क्रमशः सत्चित् और आनन्द पक्ष की अनुरूपी हैं।

(5) मायाशक्ति ब्रह्म की बहिरंग शक्ति है। यह अचेतन है और इस विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश का कारण है। उसके भी दो पक्ष हैं— जीव माया और गुण माया (उपादान माया)। यह विभाजन दो प्रकार के कारणों — निमित्त कारण और उपादान कारण — पर आधारित है। ब्रह्म अपनी निमित्त माया और उपादान माया की शक्तियों से स्वयं ही स्वयं में से इस जगत् को निर्माण करता है।

(6) जीव शक्ति तटस्थ शक्ति या सीमान्त शक्ति है। इय ईश्वर की जीव शक्ति का ही परिणाम है कि सभी जीवधारी ईश्वर में से उसी प्रकार प्रकट होते हैं जैसे अग्नि-स्फुलिंग अग्नि में से प्रकट होती हैं। जीव ईश्वर की शक्ति के केन्द्र हैं। लॉइबनिट्स के अनुसार भी प्रत्येक चित्-बिन्दु शक्ति का एक केन्द्र है। जब यह कहा जाता है कि जीव ईश्वर की शक्ति है तो उसका भाव यह होता है कि जीव के माध्यम हैं जिनसे ईश्वर स्वयं को अभिव्यक्त करता है। वे ईश्वर की शक्ति और उसके अंग होने के कारण उसके नित्य सेवक हैं।

(7) चैतन्य के अनुसार जीव के दो वर्ग हैं—नित्यमुक्त जीव और बद्ध जीव। प्रथम प्रकार के जीव अर्थात् नित्य मुक्त जीव भगवान् श्रीकृष्ण के नित्य साक्षी हैं। वे ईश्वर की प्रेमपूर्वक सेवा करते हैं और उससे उत्पन्न आनन्द का उपयोग करते हैं लेकिन द्वितीय प्रकार के जीव अर्थात् बद्ध जीव वे हैं जो ईश्वर को भूल गये हैं जिससे वे बन्धन में हैं। इनमें से कुछ ऐसे हैं जिन्हें भगवत् के प्रति स्वाभाविक प्रेम है जबकि अन्य ऐसे हैं जिनमें यह प्रेम अवरुद्ध है। यह अवरोध उचित आध्यात्मिक शिक्षा से दूर हो सकत है।

(8) परमतत्त्व सगुण है। वह सभी द्विव्य गुणों का आश्रय है। वह निर्गुण केवल इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि वह सांसारिक गुणों से रहित है। 'नेति-नेति' का अर्थ केवल यही होता है कि वह केवल जड़ या अजड़ नहीं है। वह जड़ और अजड़ की सीमाओं से ऊपर है। जीवगोस्वामी निर्गुण ब्रह्म की आलोचना करते हुए कहते हैं कि—निर्गुण (निर्विशेष) ब्रह्म का न तो प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है, और न वह अनुमान का विषय हो सकता है। श्रुति भी उसका समर्थन नहीं करती है। चैतन्य चरितामृत के लेखक भी यह सिद्ध करते हैं कि निर्विशेष ब्रह्म के अस्तित्व को सिद्ध करने का हर प्रयत्न उसके सविशेष स्वरूप को ही सिद्ध करता है।

(9) जगत् ईश्वर की मायाशक्ति की परिणाम होने के कारण, और स्वयं ईश्वर उसका, निमित्त तथा उपादान कारण होने के कारण, सत्य है। वह उस अर्थ में मिथ्या नहीं है जिस अर्थ में शंकर उसे मिथ्या कहते हैं। जगत् को पुराणों में कभी-कभी मिथ्या कहा गया है लेकिन उनका आशय केवल यह बतलाता है कि वह अनित्य है, इसलिए साधक को सांसारिक वस्तुओं से अनासक्त रहना चाहिए। इस प्रकार के कथन तात्त्विक रूप से सत्य नहीं हैं, वे केवल उपाय के रूप में ही सत्य हैं।

(10) चैतन्य और उनके शिष्य आचार्य शंकर के जीव और ब्रह्म के ऐक्य के सिद्धान्त की आलोचना करते हैं। यदि जीव और ब्रह्म का ऐक्य सत्य हो तो वह अद्वैत या तो ब्रह्म से भिन्न होना चाहिए या अभिन्न होना चाहिए। यदि वह भिन्न है— तो ब्रह्म से अलग यह एक वस्तु और होगी और इस प्रकार शंकर का अद्वैत द्वैत बनकर रह जाता है। यदि वह ब्रह्म से अभिन्न है तो अद्वैत वेदान्त एक ऐसी वस्तु को स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है जो श्रुति द्वारा पहले ही स्थापित हो चुकी है। उसी वस्तु को पुनः स्थापित करने का क्या उपभोग है? केवल यही नहीं, ऐसे अनेक श्रुति वचन उपलब्ध हैं जो जीव और जगत् का ब्रह्म से भेद और अभेद दोनों बतलाते हैं। अतः निम्बार्क के समान चैतन्य और उनके शिष्य भी स्वीकार करते हैं कि जीव और जगत् का ब्रह्मा से भेदान्वित अभेद सम्बन्ध है। लेकिन चैतन्य और उनके शिष्यों की यह विशेषता है कि वे यह प्रतिपादित करते हैं कि जीव और ब्रह्म

के इस भेदान्वित अभेद सम्बन्ध को हम तर्क या बुद्धि से नहीं समझ सकते। यह तर्क या चिन्तन के लिए अगम्य है। इसी कारण उनका दर्शन अचिन्त्य भेदाभेद वाद कहलाता है।

(11) जीव ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म उसका सार है। यह जगत् भी ब्रह्म की मायाशक्ति से उत्पन्न है। इस प्रकार जीव और जगत् दोनों ही ब्रह्म की शक्ति हैं और ब्रह्म शक्तिमान है। चैतन्य का कहना है कि शक्तिमान और शक्ति का सम्बन्ध भेदाभेद का है। यह भेदाभेद ऐसा है जो तर्क की किसी भी कोटि से समझाया नहीं जा सकता।

जीव और जगत् (शक्तियों को) ब्रह्म (शक्तिमान या द्रव्य से) भिन्न नहीं माना जा सकता, क्योंकि उससे स्वतंत्र उन दोनों की सत्ता नहीं है, नहीं उन दोनों का ब्रह्म से शुद्ध ऐक्य माना जा सकता है, क्योंकि यदि शक्ति और शक्तिमान में शुद्ध ऐक्य हो तो कोई परिवर्तन, कोई गति, कोई परिणाम नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त ब्रह्म के गुणों जैसे—उसकी कृपा, को तब भी अनुभव किया जा सकता है जबकि उसको प्राप्त नहीं किया गया है। अतः जीव और जगत् का ब्रह्म से पूर्णतः अभेद नहीं है। जीव और जगत् का ब्रह्म से विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध है—भेदान्वित अभेद का—एक ही समय में भिन्नता और अभिन्नता का, भिन्नता में अभिन्नता का। यह भिन्नता में अभिन्नता का सम्बन्ध तर्क से परे है। वह अचिन्त्य है। प्रो० राधागोविन्द नाथ लिखते हैं — “अचिन्त्य से उनका अर्थ पूर्णतः भेद और पूर्णतः अभेद की कोटियों द्वारा न समझा जा सकने योग्य है.....जैसाकि अग्नि और ताप का आपसी सम्बन्ध है।<sup>20</sup> यह तर्कातीत सम्बन्ध है जो बुद्धि द्वारा नहीं समझा जा सकता बल्कि जिसका आत्मा द्वारा आन्तः प्रज्ञ सत्य के रूप में अनुभव ही किया जा सकता है।

(12) मानव बन्धन का कारण क्या है? अचिन्त्य भेदाभेदवादियों के अनुसार जीव के बन्धन का मूल कारण यह है कि जीव ईश्वर को भूल गया है और उसने ईश्वर की ओर से मुख मोड़ लिया है। उसका यह बन्धन तभी दूर हो सकता है जब जीव ईश्वर को स्मरण करता है और अपना मुख्य ईश्वर की ओर मोड़ देता है।<sup>21</sup> जीव का मोक्ष केवल तभी हो सकता है—जब वह ईश्वर को देखता है।<sup>22</sup> लेकिन यह (मोक्षदायक) ईश्वर को देखना उस देखने से भिन्न है जब ईश्वर अवतार के रूप में प्रकट होता है और सभी लोग उसे देखते हैं। ऐसा साधारण देखना मोक्षदायक नहीं है। यह ईश्वर को इस जगत् को स्वामी, शासक और नियन्ता के रूप में देखना है। यह ईश्वर को उसकी शक्तियों सहित देखना है। अर्थात् यह कहे कि यह जगत् और जीवात्माओं को ईश्वर की शक्ति के बिन्दु के रूप में देखना है। यह ब्रह्म के जीव और जगत् में वास्तविक सम्बन्ध का ज्ञान है। ऐसा जीव जिसने ब्रह्म—ज्ञान प्राप्त कर लिया है, मोक्ष प्राप्त करने के योग्य है। उसके मोक्षा में विलम्ब केवल तभी तक है जब तक कि उसके प्रारब्ध कर्मों का भोग समाप्त हो जाने पर उसकी आत्मा इस शरीर का परित्याग कर देती है और देवयान मार्ग से ब्रह्म लोक को पहुँचती है। ब्रह्मज्ञानी की आत्मा का शरीर—त्याग और देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक तक पहुँचना चैतन्य के दर्शन में भी उसी प्रकार है जैसाकि रामानुज के दर्शन में है। उसी प्रकार क्रम—मुक्ति के विभिन्न सोपान—सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य, और सामुज्य भी चैतन्य के दर्शन में उसी प्रकार है जैसे कि हम रामानुज के मत में देखते हैं। इस सम्पूर्ण विवरण में कोई नवीन ज्ञान नहीं है। चैतन्य के मोक्ष—सिद्धान्त की केवल एक विशेषता है कि वह यहकि उनके मतानुसार मोक्ष का अर्थ केवल ईश्वर की माया शक्ति है से मुक्ति है। मुक्त हो जाने पर जीव ईश्वर की जीवशक्ति का अंश नहीं रहता है। वह भगवत् की स्वरूपशक्ति का अंश बन जाता है और स्वर्ग में उसके दास (अनुत्तर) के रूप में रहता है।

(13) चैतन्य ने एक क्रमबद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय, जो प्राचीन परम्पराओं के प्रति निष्ठावान् रह सके, अथवा जहाँ आवश्यक हो, उनका खण्डन कर सकें, का निर्माण करने की बहुत कम चिन्ता की है। भारतीय दर्शन के अन्य सभी सम्प्रदायों के विपरीत वे पाँच पुरुषार्थों को स्वीकार करते हैं, वे पाँच पुरुषार्थ हैं (1) अर्थ (2) काम (3) धर्म (4) मोक्ष एवं (5) प्रीति या प्रेम—भक्ति। उनके मत से सर्वोच्च पुरुषार्थ प्रेम है। “प्रेम” भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति ऐसा अगाध प्रेम है जो सभी सांसारिक पदार्थों को भुला देता है। ईश्वर के प्रति ऐसा अगाध प्रेम, चैतन्य के अनुसार, स्वयं के मोक्ष से भी श्रेष्ठ है। चैतन्य कहते हैं कि मोक्ष के सर्वोच्च सोपान सामुज्य भक्ति में जीव ईश्वर के साथ ऐक्य लाभ कर लेता है और इस प्रकार अपनी वैयक्तिकता को, और उसी के साथ भक्ति के आनन्द को भी खो देता है। इस प्रकार की मुक्ति एक सच्चे भक्त की मनोवृत्ति के प्रतिकूल है। भक्ति का अपना एक विशेष आनन्द है। इस आनन्द को भक्त किसी भी कीमत पर, स्वयं के मोक्ष की भी कीमत पर, नहीं छोड़ना चाहता। अतः सामुज्य मुक्ति ईश्वर—भक्ति की विरोधी है। चैतन्य का एक शिष्य कहता है, “सामुज्य” शब्द से ही भक्त को घृणा और भय होता



है उसकी अपेक्षा वह नरक पसन्द करता है। 'मुक्ति' शब्द के उच्चारण मात्र से ही भक्त के मन में घृणा और भय उत्पन्न होता है। 'भक्ति' शब्द के उच्चारण से ही भक्त का मन आनन्द से भर जाता है।<sup>23</sup>

(14) अपने मोक्ष की अपेक्षा भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति केवल चैतन्य, के लिए ही नहीं, बल्कि सभी वैष्णव वेदान्तियों के लिए श्रेष्ठ है। उन सबके लिए वह मानव-जीवन का परमपुरुषार्थ है। लेकिन अन्य वैष्णव वेदान्ती इस सत्य को साहसपूर्वक और स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं करते। अकेले चैतन्य ही है जो इस तथ्य को साहसपूर्वक और स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं और मूल्यों के महत्ता-क्रम में प्रीति को मुक्ति से उच्च स्थान देते हैं। उनके अतिरिक्त, किसी वैष्णव आचार्य ने यह कहने का साहस नहीं किया कि स्वयं के मोक्ष की अपेक्षा भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति श्रेष्ठ है। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। ऐसा कहना औपनिषदिक दर्शन की भावना का विरोधी होता है। अन्य वैष्णव वेदान्ती अपने सिद्धान्तों और औपनिषदिक सिद्धान्तों में यह कह कर सामंजस्य स्थापित करते हैं कि सामुज्य मुक्ति में भी जीव अपनी वैयक्तिकता को कायम रखता है और ईश्वर की भक्ति करता रहता है। लेकिन यह तर्कसंगत नहीं लगता। सामुज्य का अर्थ ही ईश्वर से ऐक्य है, जिसमें जीव की वैयक्तिकता समाप्त हो जाती है। सामुज्य मुक्ति और ईश्वर की भक्ति आपस में विरोधी है। जीव या तो सामुज्य मुक्ति ही प्राप्त कर ले, या ईश्वर की भक्ति ही कर ले। दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते। अतः अन्य वैष्णव वेदान्तियों का दोनों को स्वीकार करना तर्क संगत नहीं लगता है। चैतन्य का स्पष्ट और साहसपूर्ण कथन ही अधिक तर्क संगत है।

(15) चैतन्य का साहसपूर्वक और स्पष्ट रूप से पाँच मूल्यों को स्वीकार करने और प्रीति को मुक्ति से श्रेष्ठ मानने का कारण भी स्पष्ट है। अन्य वैष्णव वेदान्ती दार्शनिक और भक्त दोनों के प्रति निष्ठावान् बने रहना चाहते हैं। दो में से किसी एक का खुले रूप से चुनाव कर अन्य का तिरस्कार करने का साहस उनमें नहीं है। उनका हृदय कहता है कि ईश्वर की भक्ति ही जीवन का परम पुरुषार्थ है। लेकिन उसके पूर्ण औपनिषदिक ऋषियों ने स्वयं के मोक्ष को सर्वोच्च मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। अतः उन्होंने यह कहकर अपने सिद्धान्त और श्रुति में सामंजस्य स्थापित किया कि सामुज्य मुक्ति में भी वैयक्तिकता, और परिणामस्वरूप भक्ति, शेषक रहती है। वे कहते हैं जिस प्रकार जल बिना थल के नहीं रह सकता, उसी प्रकार मुक्ति भी बिना भक्ति के नहीं रह सकती। लेकिन महाप्रभु चैतन्य को हृदय (भक्ति) और बुद्धि (दर्शन) में समन्वय स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे केवल भक्ति से ही सन्तुष्ट हैं। उन्होंने दार्शनिक बनने की, अर्थात् क्रमबद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय निर्माण करने की और औपनिषदिक परम्परा के प्रति निष्ठावान् बने रहने की, कोई चेष्टा नहीं की है। उन्हें केवल अपने भक्ति के दर्शन के प्रति ही निष्ठावान् रहना है, और ऐसा करने में यदि किसी परम्परा का विरोध हो गया तो ऐसे विरोध को दूर करने की उन्होंने (चैतन्य ने) कोई चेष्टा नहीं की। इसी कारण से वे यह साहसपूर्वक स्पष्ट रूप से कह सके कि स्वयं की मुक्ति से श्रेष्ठ ईश्वर की माधुर्य भक्ति है। इस प्रकार अन्य वैष्णव वेदान्तियों के दर्शन में जो विसंगति है, व सकारण और स्वाभाविक है। चैतन्य के ही शिष्यों में गोविन्द भाष्य के लेखक बलदेव विद्याभूषण ने क्रमबद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय का निर्माण करने का प्रयास किया।<sup>24</sup> वे अन्य वैष्णव वेदान्तियों के समान परम्परा के प्रति निष्ठावान् रहे। इस कारण उनके मोक्ष और भक्ति सम्बन्धी विचार रामानुज था अन्य किसी अन्य वैष्णव वेदान्ती के विचारों से भिन्न नहीं है। बलदेव विद्याभूषण कहते हैं कि सामुज्य में भी मुक्त आत्मा ईश्वर की भक्ति करती है, लेकिन अब वह ईश्वर की भक्ति किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं करती, जैसाकि वह पहले करती थी। अब वह ईश्वर की भक्ति केवल इसलिए करती है कि ईश्वर का सौन्दर्य और उसका अपना स्वभाव उसे ऐसा करने के लिए बाध्य करते हैं। इसको विद्याभूषण उदाहरण से समझाते हैं और कहते हैं कि किसी पित्त के रोगी का पित्त शक्कर खाने से ठीक हो जाने पर भी वह शक्कर खाता रहता है, वह इसलिए नहीं कि उसे अब भी कोई बीमारी है बल्कि वह केवल इसलिए कि शक्कर का स्वाद उसे अच्छा लगता है। इसी प्रकार मुक्त आत्मा किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए ईश्वर की भक्ति नहीं करती, जैसाकि वह पहले करती थी, बल्कि ईश्वर का सौन्दर्य ही उसे अब भी ऐसा करने के लिए बाध्य करता है।<sup>25</sup> ईश्वर की भक्ति से उत्पन्न आनन्द इतना अगाध है कि वह उसे निरन्तर भक्ति करते रहने के लिए बाध्य करता है। यह प्रीति अथवा प्रेम भक्ति की अवस्था है। इस अवस्था को प्राप्त करना वैष्णव वेदान्तियों के अनुसार मानव-जीवन का परम लक्ष्य है।

(16) चूँकि चैतन्य को क्रमबद्ध एवं सुसंगत दार्शनिक सम्प्रदाय बनाने की चिन्ता नहीं थी, अतः उन्हें मोक्ष और शरीर की उपस्थिति में वह विरोध भी नहीं दिखायी देता जो रामानुज को दिखलाई पड़ता है। अतः वे जीव-मुक्ति



को उस दृढ़ता से अस्वीकार नहीं करते जिसे दृढ़ता से रामानुज उसे अस्वीकार कर देते हैं। लेकिन वे उसका दृढ़तापूर्वक समर्थन भी नहीं करते हैं, जैसे कि आचार्य शंकर करते हैं। जीवगोस्वामी प्रीति के सन्दर्भ में कहते हैं कि मोक्ष जीवन रहते भी (उत्क्रमण दशा) प्राप्त हो सकता है।<sup>26</sup>

(17) मोक्ष-प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में विचार अचिन्त्य भेदाभेदवादियों का यह है कि भक्ति के संयोग के बगैर कोई भी साधन स्वतंत्र रूप से मोक्ष नहीं दे सकता। कर्म, योग और ज्ञान—केवल तभी मोक्ष दिला सकते हैं जब उनके साथ भक्ति भी उपस्थित है। यद्यपि चैतन्य और उनके शिष्यों द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के अन्य साधनों का भी मूल्य स्वीकार किया गया है, फिर भी वे इस बात पर जोर देते हैं कि मोक्ष प्राप्त करने का भक्ति ही सुरक्षित और अपने आप में पूर्ण साधन है। उनका कहना है कि भक्ति मार्ग पर चलने में अन्य मार्गों से एक विशेष लाभ है। साधक जब लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग पर होता है तब भी भक्ति उसे सुख प्रदान करती है। और लक्ष्य प्राप्त करने पर तो सुख मिलता ही है। अतः अन्य सभी की अपेक्षा भक्ति ही श्रेष्ठ साधन है। चैतन्य कहते हैं कि विद्या और केवल विद्या ही मोक्ष प्राप्त करने का साधन है। मोक्ष न तो अकेले कार्य से, और न कर्म दशा न विद्या के समुच्चय से ही प्राप्त किया जा सकता है। विद्या का अर्थ स्पष्ट करते हुए चैतन्य कहते हैं कि 'विद्या' शब्द का जब सामान्य अर्थ में प्रयोग किया जाता है तो उससे ज्ञान और भक्ति दोनों का बोध होता है, लेकिन जब विद्या का सीमित अर्थ में प्रयोग किया जाता है तो उसका अर्थ केवल 'भक्ति' ही होता है। उनका मत है कि वास्तव में विद्या ऐसी भक्ति है जो ईश्वर के अपरोक्ष ज्ञान के परिणामस्वरूप उसके प्रति उत्पन्न होती है। अतः यह भक्ति साधारण भक्ति नहीं है। ऐसी भक्ति में ईश्वर का अपरोक्ष ज्ञान भी निहित है।<sup>27</sup>

(18) अचिन्त्य भेदाभेदवाद के अनुसार प्रीति या ईश्वर के प्रति प्रेम मोक्ष का सार और मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है। उसे प्राप्त करने का भक्ति के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है। इस सम्प्रदाय में भक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में इतनी सूक्ष्मता से और विस्तारपूर्वक विचार हुआ है कि उसका पूर्ण विवरण दे पाना यहाँ विषय ग्रन्थ आदि की सीमा के कारण सम्भव नहीं है। यहाँ केवल इस मत में भक्ति के स्वरूप की रूपरेखा ही दिया जा सकता है। चैतन्य चरितामृत के अनुसार भक्ति के विकास के पाँच सोपान आरोही क्रम में ..... शान्त, दास्य, सरण्य, वात्सल्य और माधुर्य ..... हैं। प्रारम्भिक सोपान भक्ति के विकास का 'शान्त' सोपान है। भक्त भगवान् श्रीकृष्ण पर शान्तिपूर्वक चित्त को केन्द्रित करना चाहता है। 'दास्य' सोपान पर भक्त ईश्वर का नित्य दास है—यह अनुभव करता है। उसी भावना से वह ईश्वर की प्रार्थना करता है जिस भावना से दास अपने स्वामी से प्रार्थना करता है। 'सत्य' सोपान पर भक्त स्वयं को ईश्वर का अन्तरंग अनुभव करता है। वह ईश्वर से उसी प्रकार प्रेम करता है जैसे कोई मनुष्य अपने मित्र से प्रेम करता है। 'वात्सल्य' सोपान पर 'संख्य' सोपान की अन्तरंगता और अधिक घनी हो जाती है। भक्त उसी प्रकार ईश्वर को प्यार करने लगता है जैसे माँ अपने बेटे से प्यार करती है। लेकिन भक्ति के विकास का प्रथम सोपान 'माधुर्य' सर्वोच्च सोपान है। इस पर भक्त और भगवान् का सम्बन्ध प्रेमी का, और उसके प्रेमी के सम्बन्ध के समान मधुर हो जाता है। इस क्रम में बाद का हर सोपान अपने पूर्ववर्ती सोपान का सार अपने में समाये रहता है।

(19) रूप गोस्वामी कहते हैं कि सच्ची भक्ति स्वयं को भगवान् श्रीकृष्ण के साथ केवल उसी के सन्तोष के लिए, स्वयं के लाभ की किसी अपेक्षा के बिना अथवा दार्शनिक ज्ञान प्राप्ति की इच्छा के बिना, अथवा सांसारिक वस्तुओं के प्रति वैराग्य की भावना से प्रभावित हुए बिना, आसक्त कर देने में निहित है। ("अन्याभिलाषिताशून्यम् ज्ञान—कर्मादयः अनावृत्तम्। आनुकूलान् कृष्णानुसेवनम् भक्तिरुत्तमा।।" —भक्ति— रसामृत सिन्धु 1/1/19। यह ईश्वर की सेवा केवल उसी के लिए करना है। इसमें न अपना लाभ प्राप्त करने की इच्छा है, न ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने की, और न संसार से विरक्त हो जाने के परिणामस्वरूप भक्ति उत्पन्न हुई है। अपने ग्रन्थ भक्ति रसामृत सिन्धु में वे भक्ति को दो वर्गों में बाँटते हैं—(1) सामान्य भक्ति और (2) उत्तम भक्ति। सामान्य भक्ति वह साधारण भक्ति है जो संसार के लोग अपने स्वार्थी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए करते हैं। उत्तम भक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति ऐसी लग्न है जो अन्य सभी इच्छाओं से मुक्ति तथा ज्ञान और सांसारिक अभिलाषाओं से स्वतंत्र है। उसके तीन रूप हैं—(1) साधना भक्ति, (2) भाव भक्ति और (3) प्रेम भक्ति। साधना भक्ति आन्तरिक भावना से नहीं बल्कि इन्द्रियों से प्राप्त की जाती है। साधना भक्ति के भी दो प्रकार हैं—(1) वैधी, और (2) रागात्मिका। वैधी भक्ति तब जब साधक ईश्वर की भक्ति इसलिए करता है कि शास्त्रों में वैसा करने के लिए कहा गया है। रागात्मिका भक्ति में भक्त ईश्वर की भक्ति इसलिए नहीं करता कि शास्त्रों में वैसा करने का विधान है, बल्कि वह इस लिए करता

है कि ब्रज के लोगों की बालकृष्ण या गोपालकृष्ण के प्रति भावना से उसे मधुर ईर्ष्या होती है। जब भक्ति एक ऐसे सोपान पर पहुँच जाती है कि उसकी उत्पत्ति न तो शास्त्रों की विधि के कारण होती है और न ही व्यक्तिगत प्रेरकों के कारण होता है, जैसेकि साधना भक्ति में होता है, बल्कि प्रेम की आन्तरिक भावना से वह स्वतः स्फुरित होती है, तो ऐसी भक्ति को भाव-भक्ति कहते हैं। जब भाव-भक्ति और घनी हो जाती है और ऐसे ऊँचे सोपान पर पहुँच जाती है कि ईश्वर के प्रति प्रेम का भाव स्थायी भाव का रूप धारण कर लेता है तो ऐसी भक्ति को प्रेम-भक्ति अथवा प्रीति-भक्ति कहते हैं। सभी वैष्णव वेदान्तियों के अनुसार इस प्रकार की भक्ति की प्राप्ति करना मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। यही परम युग है।<sup>28</sup>

**एक समीक्षा :** यह दिखलाई पड़ता है कि उनका चैतन्य के मोक्ष-सिद्धान्त पर यदि दृष्टि डाले तो सर्वप्रथम दार्शनिक समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण एक भक्त का दृष्टिकोण है। उनका स्पष्ट मत है कि प्रीति या ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति स्वयं के मोक्ष से भी श्रेष्ठ है। यही मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। चैतन्य का यह मत औपनिषदिक परम्परा का विरोधी है। उपनिषद् कहते हैं कि चार पुरुषार्थ अथवा चार मूल्य हैं जिन्हें मानव को इस जीवन में प्राप्त करना है। इनमें मोक्ष उच्चतम मूल्य है। उसे प्राप्त करने के विभिन्न मार्ग हैं, जिनमें भक्ति मार्ग सर्वाधिक सरल और सुरक्षित है। लेकिन चैतन्य और उनके मतावलम्बी साधन को साध्य समझ लेते हैं। यह एक कूल है। इसका कारण भी स्पष्ट है वह भक्ति के स्वरूप में ही निहित है। ईश्वर के प्रति भक्ति इतनी आनन्ददायिनी है कि भक्त उसे किसी भी कीमत अथवा मूल्य पर छोड़ना नहीं चाहता। वह इस मत की कल्पना नहीं कर सकता कि भक्ति के आनन्द से भी श्रेष्ठ और कोई आनन्द इसके प्रतिविम्ब मात्र हैं। डॉ० नलिनी कान्त ब्रह्म-भक्ति मार्ग के गुण-दोषों की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि “भक्ति मार्ग में यह आशंका बनी रहती है कि भक्ति परम तत्त्व ब्रह्म की सर्वोच्च अभिव्यक्ति से कम किसी वस्तु से सन्तुष्ट हो जाये, क्योंकि वह हमेशा ही परम तत्त्व से आने वाले आनन्द का अनुभव करता है, यद्यपि यह आनन्द उपाधियों या आवरणों के माध्यम से ही प्राप्त होता है।”<sup>29</sup> ऐसा हमें लगता है कि सामान्य रूप से सभी वैष्णव वेदान्तियों, और विशेष रूप से चैतन्य के दर्शन में यह आशंका सत्य सिद्ध हुई है। भक्ति मोक्ष प्राप्त करने का अत्यन्त ही सरल पूर्णरूप से विश्वसनीय और सुरक्षित साधन है, परन्तु अन्ततः वह साधन ही है, साध्य नहीं है। यदि वैष्णव वेदान्ती उसे साध्य और जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य समझते हैं तो यह तर्क और श्रुति विरोधी होने के कारण अस्वीकार्य है।<sup>30</sup>

जहाँ तक भक्ति का सम्बन्ध है, वैष्णव वेदान्तियों में महाप्रभु चैतन्य के सर्वाधिक निकट आचार्य बल्लभ हैं। ये दोनों ही सन्त दार्शनिक भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति को मोक्ष से श्रेष्ठ मानते हैं। इन दोनों का ही मत है कि भक्त को ईश्वर की भक्ति स्त्री-भाव से करना चाहिए। ईश्वर को वैसे ही प्रेम करना चाहिए जैसे माँ अपने बेटे से (वात्सल्य भाव) या प्रेमिका अपने प्रेमी से (माधुर्य भाव) प्रेम करती है। बल्लभ वात्सल्य भाव से की गई भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं, जबकि चैतन्य माधुर्य भक्ति को ही भक्ति का श्रेष्ठतम रूप कहते हैं। इसके अतिरिक्त, दोनों में मुख्य अन्तर भी यह है कि बल्लभ भक्ति के विधिपक्ष या वाह्यपक्ष को (ईश्वर की “सेवा” के रूप में) एक क्रमबद्ध रूप प्रदान करते हैं, जबकि चैतन्य मुख्य रूप से भक्ति के भावपक्ष या आन्तरिक पक्ष का विकास करते हैं। रामानुज के समान चैतन्य भी मानव-बन्धन की कोई तर्क संगत व्याख्या प्रस्तुत करने में असमर्थ रहते हैं। वे भी यह विश्वास करते हैं कि मानव-बन्धन वस्तुतः सत्य है। गोविन्दभाष्य में मोक्ष सम्बन्धी सब विवरण प्रायः वैसा ही है जैसाकि रामानुज के श्रीभाष्य में है। निम्बार्क और चैतन्य दोनों के ही दर्शन भेदाभेद दर्शन हैं। इन दोनों में अन्तर कई लेकिन मुख्य अन्तर यह है कि निम्बार्क इस भेदाभेद की स्वाभाविकता पर अधिक जोर देते हैं और चैतन्य इस बात पर अधिक जोर देते हैं कि इस मताभेद को समझ सकने में मानव-बुद्धि असमर्थ है। उसका अनुभव केवल अन्तःप्रज्ञ अनुभव से ही किया जा सकता है।<sup>31</sup>

### चैतन्य-अनुयायी जीवगोस्वामी का दार्शनिक सिद्धान्त

**ब्रह्म, भगवान् या परमात्मा**—जीवगोस्वामी कहते हैं कि मूलतः तो ब्रह्म, भगवान् और परमात्मा में भेद नहीं है। लेकिन एक मूल सत्य ब्रह्म का प्रतिपादन होने के कारण और उसके अनुरूप उपासक-पुरुष के अनुभव के कारण.....ब्रह्म, भगवान् अथवा परमात्मा..... शिष्यों का व्यवहार होता है।<sup>32</sup> जब पूर्ण सत्य रूप ब्रह्म और उसकी शक्तियों का भेद नहीं दिखाई पड़ता, तब उसे ब्रह्म कहते हैं। लेकिन जब यह मूल सत्ता अर्थात् ब्रह्म अपनी मूल एवं स्वरूप स्थित शक्ति के द्वारा विभिन्न शक्तियों का आधार बन जाती है और भक्त को विविधि शक्तियों से मण्डित

दिखाई पड़ती है, तब उसे भगवान् कहते हैं। जीवगोस्वामी के मतानुसार आनन्द विशेष, समस्त शक्तियाँ विशेषण, *vīś hōku~fof K'V g*<sup>33</sup> यही भगवान् जब जीवों तथा उनकी क्रियाओं का नियन्ता होता है तब परमात्मा कहलाता है। जीवगोस्वामी के अनुसार भगवान् ब्रह्म, अद्वैत वेदान्त दर्शन के समान, शुद्धचित् एवं विषय, माया अथवा अज्ञान का आश्रम नहीं है, बल्कि उसका भाषा से अचिन्त्य सम्बन्ध है। अद्वैत वेदान्त और जीवगोस्वामी, दोनों के अनुसार परमात्मा स्वयं जगत् का निमित्त कारण एवं अपनी शक्तियों के कारण उपादान कारण है।<sup>34</sup> परमात्मा ही संकर्षण या महाविष्णु (समस्त जीवों एवं प्रकृति का स्वामी), प्रद्युम्न (समष्टि जीवान्तर्यामी) एवं प्रत्येक जीवके अन्तर्यामी रूप को स्वयं धारण करता है।

**भगवान की शक्तियाँ**—भगवान् की मूल शक्ति अचिन्त्य है। दुर्घट घटकता की सामर्थ्य होने के कारण ही भगवान् की शक्ति को अचिन्त्य कहा गया है (“दुर्घटघटक त्वंहयचिन्त्यत्वम्”)। अचिन्त्य शक्ति भगवान् की स्वाभाविक शक्ति है। मुख्य रूप से भगवान् की शक्ति के तीन भेद मिलते हैं—(1) अन्तरंग स्वरूप शक्ति, (2) तटस्थ शक्ति और (3) बहिरंग माया शक्ति। अन्तरंग स्वरूपशक्ति भगवान् की स्वाभाविक शक्ति है।<sup>35</sup> भगवान् की द्वितीय शक्ति का प्रतिनिधित्व जीव करते हैं। शुद्ध जीव तटस्थ शक्ति के प्रतीक हैं। जगत् भगवान् की बहिरंग माया शक्ति के ही निकास का फल है। जीवगोस्वामी के अनुसार इन तीन शक्तियों का एक निधान परमात्मा ही है। यही भगवान् का दुर्घटघटक अचिन्त्य शक्ति है। बहिरंग माया शक्ति का प्रभाव जीवों पर ही हो सकता है, भगवान् पर नहीं। अद्वैत वेदान्त का भी ईश्वर मायावी होते हुए भी माया से अस्पृष्ट रहता है। जीवगोस्वामी के मतानुसार माया के दो भेद हैं—(1) गुणमाया और (2) आत्म माया। गुणमाया जगत् के समस्त भौतिक तत्त्वों की मूलभूता है। आत्ममाया ईश्वर की इच्छा—रूपिणी शक्ति है। जब माया शब्द का प्रयोग आत्ममाया या ईश्वर की माया के अर्थ में होता है तो उसके तीन अर्थ होते हैं। आत्ममाया के यह तीन अर्थ स्वरूपशक्ति, ज्ञानक्रिया शक्ति और चित् शक्ति—विलास है।<sup>36</sup> जीवमाया के ही भू, श्री, और दुर्गा—ये तीन रूप मिलते हैं। उनमें भू शक्ति सृष्टिकर्तृ, श्रीशक्ति रक्षककर्तृ, और दुर्गाशक्ति संहारकर्तृ है।

**जीव** : जीव स्वभावतः शुद्ध होने के कारण माया का विषय नहीं है। लेकिन माया द्वारा उत्पन्न अन्तःकरण की वृत्तियों का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। और उनसे प्रभावित भी होता है। जीव स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के साथ अपने सम्बन्ध को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करता है, इसीलिए इसे क्षेत्रज्ञ भी कहा गया। इसकी (जीव की) सत्ता अणु—रूप है, अनन्त है, और ईश्वर के ये अंश हैं। इसके अलावा यह सत्त्व, रज तथा हम गुण से युक्त हैं। इसके विपरीत ब्रह्म त्रिगुणातीत है।

**जगत्** : जीवगोस्वामी जगत् का मिथ्यात्व रज्जु में सर्प के भान के समान नहीं स्वीकार करते। अद्वैतवेदान्तियों की ओर आक्षेप करते हैं कि रज्जुसर्प के समान जगत् मिथ्या नहीं है, बल्कि घटादि के समान यह नश्वर है (“ततोविर्वर्तववादिना मिव रज्जुसर्पवन्न मिथ्यात्वं किन्तु घटवन्नश्वर त्वमेव तस्य”)।<sup>37</sup> किन्तु मिथ्या न मानने पर भी जीवगोस्वामी जगत् को सत्य भी नहीं मानते हैं। सत्य के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि— ‘सत्य वही हो सकता है जो त्रिकालाबाधित है। सत्यत्व केवल परमात्मा या उसकी शक्ति में ही देखा जा सकता है।<sup>38</sup> उनके विचार में जगत् ब्रह्म का विषय होकर परिणाम है। परमात्मा अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा जगत् की दृष्टि करता है।<sup>39</sup> इस प्रकार जीवगोस्वामी कार्यकारणवाद की दृष्टि से परिणामवाद और सत्कार्यवाद के समर्थक हैं।

**परमात्म साक्षात्कार** : जीवगोस्वामी के मत के अनुसार परमात्मा के साक्षात्कार के दो रूप हैं—(1) ब्रह्म साक्षात्कार और (2) ईश्वर या परमात्मा का साक्षात्कार। विभिन्न रूपों सहित परमात्मा का साक्षात्कार उच्च कोटि का साक्षात्कार कहलाता है।<sup>40</sup> परमात्मा के साक्षात्कार की स्थिति में भक्त परमात्मा के विभिन्न रूपों तथा उसकी अनन्त शक्तियों का साक्षात्कार करता है। परमात्मा के साक्षात्कार की स्थिति में अपने आनन्द स्वरूप का अनुभव करता है और आनन्द स्वरूपवान् परमात्मा के साथ ऐक्य का अनुभव करते हुए अद्वैत स्थिति को प्राप्त होता है। आनन्द की अनुभूति के द्वारा भक्त के सभी क्लेश विनष्ट हो जाते हैं। मुक्त पुरुष के लिए भौतिक जगत् का लोप नहीं हो जाता। मुक्त पुरुष का यही वैशिष्ट्य है कि वह जगत् को ईश्वर का ही अंश समझता है। उसके लिए जगत् के सभी सम्बन्ध और आकर्षण मिथ्या प्रतीत होते हैं। जहाँ तक मुक्त पुरुष के कर्मफल भोग की बात है वह केवल प्रारब्ध कर्मों के फल को ही भोग करते हैं, लेकिन इन प्रारब्ध कर्मों के फल के भोग में ही न उसकी इच्छा होती है और न वह उससे बद्ध ही होता है। परमात्मा के साक्षात्कार की स्थिति में माया का अविद्या कार्य समाप्त

हो जाता है। इस प्रकार माया की पूर्ण निवृत्ति ही मोक्ष की पूर्णता की स्थिति है।

और भी मुक्ति की स्थिति है। जीवगोस्वामी ने सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य और सामुज्य रूप से मुक्ति के पाँच भेद और माने हैं। लेकिन जीवगोस्वामी कहते हैं कि सच्चा परमात्मा की मुक्ति के रूप से ही सन्तुष्ट रहता है, उसे उपर्युक्त मुक्तियों की अपेक्षा नहीं।<sup>41</sup>

**भक्ति :** भक्त का भगवान् में पूर्णरूप से लीन हो जाने का नाम ही भक्ति है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार मुमुक्षु को ज्ञान-वैराग्य आदि अभ्यास की अपेक्षा होती है, लेकिन भक्त को ज्ञान और वैराग्य के अभ्यास की आवश्यकता नहीं है।<sup>42</sup> भक्ति का एक दूसरा रूप भी है जिसके अनुरूप ज्ञान के द्वारा भक्त का चित्त सांसारिक विषयों से हटकर परमात्मा में लीन होता है। इनमें भक्ति का प्रथम रूप ही प्रशस्त है। दोनों प्रकार की भक्ति का उद्देश्य भगवान् को प्रसन्न करना ही है। अतः कुल मिलाकर भक्ति अहेतुकी भी कही जाती है। क्योंकि सच्चे भक्त का कोई उद्देश्य विशेष नहीं रहता है। जीवगोस्वामी ने भक्ति को ही मुक्ति का रूप दिया है।

जीवगोस्वामी कहते हैं कि भक्ति के द्वारा ही परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार सम्भव है। (षट्सन्दर्भ, 454)। भक्त को सभी कर्तव्यादि कर्मों तथा वैराग्यादि के पोषक कर्मों का भी त्याग कर देना चाहिए। इसके अलावा, भक्त को प्रत्येक कर्म भगवान् को अर्पण बुद्धि से करना चाहिए। इस प्रकार भक्त्यनुष्ठान को जीवगोस्वामी ने कर्मानुष्ठान की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा है। जीवगोस्वामी तो भक्ति को जीवन्मुक्ति से भी श्रेष्ठ कहते हैं। वे कहते हैं कि जीवन्मुक्त पुरुष पुनः बन्धन में पड़ सकते हैं, लेकिन भक्त का पतन नहीं होता। भक्ति-अनुष्ठान में तो सदैव आनन्द ही की स्थिति देखी जाती है।

जीवगोस्वामी कहते हैं कि वैसे तो एकमात्र भगवत्-नाम ही जीव के घोरातिघोर पापों के विनाश में समर्थ है, किन्तु यदि किसी में कौटिल्य, अश्रद्धा और इस प्रकार की पुस्तकों में अनुराग है जो भगवत्-भक्ति में बाधक है, तो उसमें भगवान् के प्रति भक्ति नहीं उत्पन्न हो सकती।<sup>43</sup> यदि किसी व्यक्ति के पूर्वकृत पाप नहीं हैं तो उसे एक बार भगवान् का नाम संकीर्तन करना ही पर्याप्त है। यदि वह एक बार नाम संकीर्तन करने के पश्चात् फिर-घोर पाप नहीं करता तो उसे एक बार का ही नाम संकीर्तन पर्याप्त है।<sup>44</sup> मृत्युकाल के समय तो यदि कोई एक बार ही भगवान् का नाम ले लेता है तो उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वह भगवान् के साथ अत्यन्त निकट सामीप्य को प्राप्त करता है।<sup>45</sup>

जीवगोस्वामी ने भक्ति की नौ विशेषताएँ बतलायी हैं, वे हैं—श्रवण, कीर्तन, विष्णु स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, साख्य और आत्मनिवेदन।<sup>46</sup>

प्रयोजनीय लक्ष्य की दृष्टि से भक्ति के तीन भेद हैं—(1) सकाम (2) कैवल्यकाम और (3) भक्तिमात्र काम। सकाम भक्ति के अनुरूप अनुराग साधारण अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए भगवान् की भक्ति करता है। कैवल्यकाम भक्ति का अनुयायी भक्त जीव तथा परमात्मा के ऐक्य रूप कैवल्य के उद्देश्य से भक्ति करता है। इस भक्ति में भक्त ज्ञान एवं योग का आश्रय भी लेता है। भक्तिमात्र काया भक्ति के अनुसार भक्त के समस्त ज्ञान एवं कर्मों का उद्देश्य एक मात्र भगवान् की भक्ति ही है, अन्य कोई लौकिक या अलौकिक कामना नहीं, यही भक्ति का प्रशस्त रूप है। भक्ति परम्परा के अन्तर्गत शरणागति का भाव प्रमुख भाव है। इस भाव के अनुसार मनुष्य सब ओर से निराश होकर एकमात्र भगवान् की ही शरण ग्रहण करता है। जीवगोस्वामी ने वैष्णवतन्त्र के आधार पर शरणागति का लक्षण बतलाया है। शरणागति के प्रमुख तत्त्व ..... भगवान् के अनुकूल संकल्पना, भगवान् के प्रतिकूल विषयों का त्याग भगवान् के रक्षकत्व में पूर्ण विश्वास, अपनी रक्षा के लिए भगवान् को वरण करना, आत्मनिक्षेप तथा कार्यण्य बतलाये हैं। (षट्सन्दर्भ, 593)। शरणागति के समस्त तत्त्वों में भगवान् में आत्मरक्षा का विश्वास करना सबसे सुन्दर तत्त्व है। अन्य तत्त्व किसी न किसी प्रकार से उसी से सम्बद्ध हैं।

जीवगोस्वामी ने भक्तों की तीन प्रमुख रूप से कोटियाँ बतलायी हैं। (1) प्रथम कोटि के भक्त समस्त जीवों में ईश्वर के ही दर्शन करते हैं, जगत् के जीवों को अपने और ईश्वर के ही अंश के रूप में मानते हैं, अपनी आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, इसीलिए सांसारिक जीव इनके अंश कहे गये हैं। ऐसे जीव उत्तम कोटि के भक्त कहे गये हैं। (2) द्वितीय कोटि के भक्त ईश्वर के प्रति प्रेम, भगवान् के अधीन भक्तों के प्रति मैत्री, अबोधों के प्रति दया और शत्रुओं के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं (षट्सन्दर्भ 562)। ये भक्त मध्यम कोटिक भक्त हैं। और (3) तीसरे कोटि के भक्त श्रद्धापूर्वक भगवान् की ही पूजा करते हैं, लेकिन भगवान् के भक्तों और अन्य पुरुषों

के सम्बन्ध में उनमें किसी विशेष भाव का उदय नहीं देखा जाता (षट् सन्दर्भ)। ये अधमकोटिक भक्त हैं। उत्तम भक्ति का लक्षण, जीवगोस्वामी ने, यह भी बतलाया है कि जिसके चित्त में सकामकर्मों का भाव नहीं उत्पन्न होता तथा ये सदा भगवान् में ही अनुरक्त रहते हैं। जीवगोस्वामी एक अन्य प्रकार से भी लक्षण, उत्तम कोटिक भक्त का, बतलाते हैं कि उनमें अपने-पराये का भेद नहीं है, वे समस्त जीवों के मित्र तथा शान्त हैं। इसके अतिरिक्त उनके हृदय को भगवान् वरण कर लेते हैं और तदनुसार वे अर्थात् उनका हृदय भगवान् के चरण कमलों में प्रेम करता है। (षट् सन्दर्भ, 565)।

**अद्वैत वेदान्त मत तथा जीवगोस्वामी-दार्शनिक मत :** वैष्णव भक्ति ही जीवगोस्वामी के दार्शनिक मत का प्रमुख आधार है। इसके बावजूद अद्वैत वेदान्तमत से उनका साम्य और वैषम्य दोनों दिखलाई पड़ता है। दोनों के ब्रह्म और उसके साक्षात्कार सम्बन्धी मत में पर्याप्त साम्य है।

जीव गोस्वामी के मत के अनुसार, “भक्त विभिन्न गुणों तथा शक्तियों से रहित ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। जब भक्त अपने शुद्ध चित् स्वरूप का साक्षात्कार करता है तो उसे ब्रह्म के शुद्ध चित् स्वरूप का साक्षात्कार भी हो जाता है।”<sup>47</sup> यह विषय अद्वैत वेदान्त में भी इसी रूप में दिखलाई पड़ता है। अर्थात् जब जीव को आत्मस्वरूप का ज्ञात हो जाता है तो उसे ब्रह्म तत्त्व का साक्षात्कार स्वयं हो जाता है। अद्वैत दर्शन में आत्मबोध का नाम ही ब्रह्म साक्षात्कार या परमात्मा साक्षात्कार है। अविद्या के कारण जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है। परन्तु जब अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है। जव को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। अद्वैत दर्शन में अज्ञान नाथ को ही मोक्ष कहा गया है।<sup>48</sup> यही स्वरूपज्ञान की स्थिति है।

दोनों के मतों में विषमता भी दिखलाई पड़ती है। जहाँ अद्वैत वेदान्तानुगत सिद्धान्त के अनुसार जीव को, स्वरूप बोध के लिए तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के अनुशील की उपादेयता कही गई है, वहाँ जीव गोस्वामी मत के अनुसार निरन्त भक्ति या भगवत्कृपा के द्वारा ही ब्रह्म-साक्षात्कार सम्भव है। भगवत्कृपा भी भक्ति का ही फल है।

अद्वैत वेदान्त मत में मायावाद का सिद्धान्त उनका प्रमुख विचार है। जिसके अनुसार माया ब्रह्म की शक्ति है। माया को त्रिगुणात्मिका (“अव्यक्तनाम्नी परमेश्वर शक्ति रनाद्य विद्या त्रिगुणात्मिका या”-विवेक चूडामणि श्लोक 110) और जड़ भी कहा गया है। उसी तरह जीवगोस्वामी के मत के अनुसार भी माया परमात्मा की शक्ति है। (“माया शब्देन शक्तिमालमपि-मन्यते”-षट् सन्दर्भ, 73)। इसके साथ ही जीवगोस्वामी अद्वैतवेदान्त मत की ही तरह माया को त्रिगुणात्मिका भी मानते हैं। यह त्रिगुणात्मिका माया जड़ भी है।<sup>49</sup> इस प्रकार का माया का शक्तित्व, जडत्व और त्रिगुणतत्त्व अद्वैत वेदान्त और जीवगोस्वामी, दोनों के विचारधारा में समान है। जीव गोस्वामी और अद्वैत-वेदान्त, दोनों इस विषय में भी साम्य रखते हैं कि अविद्या ही जीव में द्वैत बुद्धि की जननी है। इसके अतिरिक्त दोनों विचार पद्धतियों में यह भी साम्य है कि जिस प्रकार अद्वैत वेदान्त में मायावी ईश्वर स्वयं माया से अस्पृष्ट रहता है अर्थात् स्पृष्ट नहीं होता (ब्रह्म रूल, शा0 मा0 2/1/9), उसी प्रकार जीव गोस्वामी के मत के अनुसार भी, भगवान् पर माया अपना प्रभाव डालने में अक्षय है।<sup>50</sup> आचार्य शंकर इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक स्वयं प्रसारित माया से त्रिकाल में भी स्पष्ट नहीं होता, उसी प्रकार परमात्मा भी संसार माया से स्पृष्ट नहीं है (ब्र0सू0शा0मा0, 2/1/9)।

परमात्मा के क्षेत्र तत्त्व का भी विचार भी दोनों मतों में द्रष्टव्य है कि अद्वैत वेदान्त में निर्विशिष्ट चित् स्वरूप ईश्वर क्षेत्रज्ञ है और जीवगोस्वामी के दर्शन पद्धति में क्षेत्रज्ञ अन्तर्यामी परमात्मा है। (षट् सन्दर्भ पृ. 210)। अद्वैत वेदान्त मत की ही तरह जीवगोस्वामी मत में भी परमात्मा जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण दोनों हैं। अद्वैत वेदान्त मतानुसार माया के कारण ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है और जीवगोस्वामी के मतानुसार अनन्य शक्तियों के द्वारा परमेश्वर जगत् का उपादान कारण है। दोनों दर्शन पद्धतियों के अनुसार मुक्त पुरुष के लिए भौतिक जगत् का विनाश न होकर केवल जगत् के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई मिथ्यादृष्टि का ही विनाश होता है।

दोनों दर्शन पद्धतियों में जगन्मिथ्यायत्त्व सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी साम्य और वैषम्य देखने को मिलता है। सिकालाबाधित वस्तु को ही सत्य कहने के कारण जीवगोस्वामी मतानुसार केवल परमात्मा या उसकी शक्ति ही सत्य है (षट् सन्दर्भ, 250)। लेकिन अद्वैत वेदान्त मत में परमात्मा को तो त्रिकालाबाधित सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है, न कि उसकी शक्ति माया को भी। जीवगोस्वामी को रज्जु में सर्प के समान जगत् का मिथ्या होना मान्य नहीं (षट्सन्दर्भ, 255)। जीवगोस्वामी मतानुसार जगत् क्षणभंगुर होने के कारण मिथ्या कहा जा सकता है।



उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट दिखलाई पड़ता है कि जीवगोस्वामी के आध्यात्मिक विचार पर अद्वैत वेदान्त मत का प्रभाव है।

**चैतन्य-अनुयायी बलदेव विद्याभूषण का दार्शनिक सिद्धान्त**—जीवगोस्वामी और बलदेव विद्याभूषण के सिद्धान्तों में थोड़ा-बहुत अन्तर देखने को मिलता है।

**ईश्वर**—इनके मत से भगवान् का स्वरूप शुद्ध चित् और आनन्द है। यह दोनों ही भगवान् के विग्रह रूप कहे जा सकते हैं। शुद्धचित् और आनन्द स्वभाववान् भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा अनेक स्थलों पर दिखलाई देता है। भगवान् विभिन्न भक्तों के रूप में ग्रहण करता हुआ भी दिखलाई पड़ता है। भगवान् का नाना रूपों में प्रकट होना किसी वासना या कामना का फल न होने के कारण उसकी लीला मात्र है।<sup>51</sup> अद्वैत वेदान्तदर्शन में भी इसी रूप में यह विचार देखने को मिलता है। वहाँ भी आप्तकाम ईश्वर के विषय में किसी कामना का मूल सम्भव न होने के कारण, लीला से ही, ईश्वर के द्वारा जगत् की सृष्टि सिद्ध की गई है।<sup>52</sup>

बलदेव विद्याभूषण के अनुसार एक ही भगवान् ध्याता भक्तों तथा कार्यभेद के कारण अनेक रूप ग्रहण करने पर भी स्वरूपतः भेद सम्पन्न न होकर ऐक्य सम्पन्न ही है ("ध्यातृभेदात् कार्यभेदात् अनेकतया—प्रतीतोऽपि हरिः स्वरूपैक्यम् रूपस्मिन्न मुच्यते"—गो० भा० 3/2/12, एवं इसकी टीका)। अतः बलदेव विद्याभूषण का मत भेदाभेद—सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनके अनुसार भगवान् के स्वरूप में कोई भेद नहीं देखा जा सकता है। भगवान् की स्थिति की तुलना ऐसे अभिनेता से हो सकती है जो रंगमंच पर अनेक रूपों में प्रकट होता है, लेकिन जिसके मूल स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं देखा जाता।

बलदेव के अनुसार जीव भगवान् के ही अंश हैं, अणु हैं तथा भगवान् पर आश्रित हैं।

**'विशेष' का सिद्धान्त**—बलदेव विद्याभूषण ने भगवान् और उनके अनेक रूपों के आधार पर उत्पन्न हुई भेदाभेद शंका का निवारण 'विशेष' नामक सिद्धान्त के आधार पर किया है। इस 'विशेष' सिद्धान्त का सूत्र रूप तो आचार्य मध्व द्वारा ही उद्घाटित हुआ था, लेकिन बलदेव विद्याभूषण ने इस सिद्धान्त का पूर्णतया विकास किया। इसीलिए बलदेव विद्याभूषण के सम्प्रदाय को मध्वगौडीय सम्प्रदाय भी कहा जाता है।

इस 'विशेष' सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर तथा उसके गुणों या ईश्वर के स्वभाव तथा उसके शरीर में भेद न होने पर भी भेद की सत्ता सिद्ध की जाती है। 'विशेष' के ही आधार पर भगवान् के स्वरूप भूत चित् तथा आनन्द भगवान् के विशेषण या शरीर कहलाते हैं। बलदेव विद्याभूषण का 'विशेष' भेद का प्रतिनिधि है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार भेद न होने पर भी भेद की प्रतीति होती है। वे 'विशेष' के महत्त्व को बताते हुए कहते हैं कि इस सिद्धान्त (विशेष) को स्वीकार किये बिना गुणी या गुण का विचार स्पष्ट नहीं हो सकता।<sup>53</sup> जीवगोस्वामी ने केवल शक्ति के आधार पर उक्त समस्या का समाधान प्रस्तुत करने की चेष्टा की भी, लेकिन बलदेव ने अचिन्त्यशक्ति के अतिरिक्त 'विशेष' नामक सिद्धान्त का विकास किया। अतः बलदेव विद्याभूषण का 'विशेष' सिद्धान्त उनकी विशेष देन है।

**शक्तियाँ** : भगवान् की तीन मुख्य विधियाँ हैं। ये शक्तियाँ (1) पराशक्ति या विष्णु शक्ति, (2) क्षेत्रज्ञ शक्ति, और (3) अविद्या शक्ति हैं। पराशक्ति के अन्तर्गत ब्रह्म स्वरूप और अपरिवर्तनीय है। क्षेत्रज्ञ शक्ति तथा अविद्या शक्ति के परिणाम जीव तथा जगत् हैं। अतः बलदेव विद्याभूषण के अनुसार ब्रह्म जगत् का निमित्त एवं अपादान कारण दोनों है। (गो०भा० 2/1/14)।

भक्ति भगवदनुरक्ति है इसके अलावा भक्ति के सम्बन्ध में दो बातें और भी बतलाई गई हैं : (1) भक्ति ज्ञान विशेष का ही नाम है ("भक्तिरपि ज्ञान विशेषो भक्ति"—सिद्धान्तरत्न टीका, पृ. 29)। इसी भक्ति के द्वारा जीव जागतिक विषयों से अपना मन हटाकर ईश्वर की ओर लगाता है। (2) दूसरी बात (तथ्य) यह है कि सिद्धान्त रत्न की टीका में भक्ति के स्वरूप का निरूपण शक्ति के रूप में किया गया है। इस प्रकार भक्ति भगवान् को वश में करने की शक्ति है ("भगवत् वशीकार हेतु भूताशक्तिः"—पृ. 35 पर)। परमात्मा का पूर्ण साक्षात्कार अथवा उसका दर्शन भक्त को साध्य भक्ति के द्वारा ही प्राप्त होता है, न कि साधन भक्ति के द्वारा ही प्राप्त होता है, न कि साधन भक्ति के द्वारा। साधनभक्ति के अन्तर्गत जहाँ भक्ति के सत्संग आदि विभिन्न साधनों का उल्लेख प्राप्त होता है, वहाँ साध्यभक्ति के अन्तर्गत साध्य—भगवान् के प्रति आत्म समर्पण का भाव ही मुख्य है।



## सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. प्रो० संगमलाल पाण्डेय, भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, पृ. 294
2. वही, पृ. 294
3. "लोकेहिसर्वेषां भावानां मणिमन्त्रादीनां शक्तयः अचिन्त्यज्ञानगोचराः, अचिन्त्य तर्कासहंयज्ज्ञानं कार्यान्वयानुपपत्ति प्रमाणं तस्य गोचराः सन्ति।" (षट् सन्दर्भ, पृ. 63, 64) द्रष्टव्य-डॉ. पारस नाथ द्विवेदी 'भारतीय दर्शन', पृ. 4।।
4. "स्वरूपादि भिन्नत्वेन चिन्तयि तुम शक्यत्वात् भेदः, भिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाद भेदश्च प्रतीयते इति शक्तिशक्तिर्मतोर्भेदाभेदाङ्गीकृतौ। तौ चअचिन्त्यौ। स्वमते अचिन्त्यभेदाभेदावेव अचिन्त्य शक्तित्वात्।" (जीवग्रोस्वामी, सर्वसंवादिनी)।
5. वही (जीवग्रोस्वामी, सर्वसंवादिनी)।
6. "आत्मावाइद' मित्यादौ वन लीनविहंगवत्। सत्त्वं विश्वस्य मन्तण्यमित्युक्तं वेदवेदिभिः।" (प्रमेय रत्नावली 3/2)
7. "आनन्दभास्तं विशेष्यं समस्ताः शक्तयः विभेषणानि विभिष्टो भगवान्।" (षट् सन्दर्भ, पृ. 50)।
8. श्रीमद्भागवत् 10/14/17, भारतीय दर्शन भाग दो (हिन्दी अनुसार), पृ. 762, (डॉ. राधाकृष्णन)
9. गोविन्दभाष्य (बलदेव), 1/4/24
10. इसे श्री के समान बताया गया है (बलदेव 3/3, 40 और 42)
11. "विष्णुःशक्तिः पराप्रोक्ता क्षेसज्ञाख्या तथापरा। अविद्याकर्म सज्ञाना तृतीयाशक्तिरिष्यते।" (विष्णुपुराण 6/7/161)।
12. "हलादिनी संधिनी संवित् त्वथ्येका सर्वसश्रये। हलादतापरकरी मिश्रा त्वमि नो गुणवर्जित।" (विष्णु पुराण)।
13. "..... कृष्णपादाब्जाभोदमन्तरा जगत् सत्यम सत्यं वा कोऽपंतस्निन दुराग्रहः।"
14. द्रष्टव्य, चैतन्य चरितामृत मध्यलीला, अष्टम अध्याय, संवाद।
15. दासगुप्ता, इण्डियन फिलासाफी V अंक IV, पृ. 392
16. "सच्चिदानन्दैकर से भक्ति योगे तिष्ठति (गोपालतायनी)"। देखे, बलदेव 3/312
17. बलदेव 1/1,17
18. चैतन्य चरितामृत, मध्य लीला, 29
19. दासगुप्ता, इण्डियन फिलासाफी, अंक IV, पृ. 392
20. हरिटेज, पृ. 381
21. गो० भा०, 1/1 भूमिका
22. गो० भा०, 2/3/49
23. चैतन्य चरितामृत 2/6, (द्रष्टव्य एम. टी. कनेडी, चैतन्य मूभमेन्ट, पृ. 98)
24. डॉ. अशोक कुमार लाड, भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन, पृ. 245-247
25. वही, पृ. 247 (गोविन्द भाराक, 4/1/12)
26. वही, पृ. 247
27. वही, पृ. 248
28. वही, पृ. 249-250
29. वही, पृ. 250
30. वही, पृ. 250
31. वही, पृ. 251

32. जीवगोस्वामी, षट्सन्दर्भ, पृ. 50
33. "आनन्दमालं विशेष्यम्, शक्तयः विशेषणानि, विशिष्टो भगवान्"—षट्सन्दर्भ, पृ. 50
34. वही, पृ. 250
35. वही, पृ. 65
36. वही, पृ. 73, 74
37. वही, पृ. 255
38. वही, पृ. 255
39. वही, पृ. 260
40. वही, पृ. 691
41. षट् सन्दर्भ, 691
42. वही, 691, "भजताम् ज्ञान वैराग्याभ्यासेन प्रयोजनं नास्ति" ।
43. षट् सन्दर्भ, 532—534
44. वही, पृ. 536
45. वही, पृ. 536
46. वही, पृ. 541
47. दासगुप्ता, इण्डियन फिलासाफी, IV पृ. 397
48. सिद्धान्त लेश संग्रह, पृ. 126
49. दासगुप्ता, इण्डियन फिलासाफी, IV पृ. 400
50. वही, पृ. 400
51. गोविन्द भाष्य 3/2/11
52. वही, 3/2/11
53. गोविन्द भाष्य 2/1/13

\* \* \* \* \*

## कृषि विविधीकरण

हरिशंकर यादव\*

**उद्देश्य :** इस लेख का अध्ययन करने के बाद आप सभी—

- कृषि विविधीकरण का अर्थ बता सकेंगे।
- कृषि विविधीकरण की परिभाषा जान सकेंगे।
- कृषि विविधीकरण के लाभ उपयोगिता एवं प्रक्रिया से परिचित होंगे।
- कृषि विविधीकरण के तकनीकों एवं प्रगतिक का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

**प्रस्तावना :** मानव सभ्यता के विकास में कृषि एक प्रमुख विकास था, जो विभिन्न सभ्यताओं के उदय का कारण बना। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम पालतू पशुओं को पाला गया एवं फसलों को उगाया गया। जिससे अतिरिक्त खाद्य पदार्थों का उत्पादन हुआ इसने घनी आवादी एवं स्तरोक्त समाज के विकास को सम्भव बनाया। समय के साथ कृषि में अनेक विविधताओं (पशुपालन—बकरी, गाय, भैस, सुअर, भेड़, मुर्गीपालन एवं फसलों, खाद्यान्न रेशा, ईंधन, कच्चा माल तथा जड़ी बूटी या दवाओं का उत्पादन) का समावेश हुआ।<sup>1</sup> परन्तु औद्योगिकरण के शुरुआत के पश्चात कृषि का महत्व लगातार कम होता गया और वर्ष 2003 ई० में इतिहास में पहली बार सेवा क्षेत्र ने कृषि को पछाड़ दिया, क्योंकि इसने दुनिया में अधिकतम लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया।<sup>2</sup> आज कृषि उत्पादन सकल विश्व उत्पाद का 5 प्रतिशत से भी कम हिस्सा प्रदान करता है।<sup>3</sup> जबकि 50 प्रतिशत से अधिक विश्व जनसंख्या जीविका हेतु कृषि पर निर्भर है। कृषि में लगी हुई अधिकांस जनसंख्या निर्धनता तथा अनेक समस्याओं से ग्रसित है। जिससे निराकरण पाने का एकमात्र उपाय कृषि विविधीकरण ही है।

**कृषि विविधीकरण का परिचय :** कृषि विविधीकरण शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Diverses शब्द से हुआ है जिसका अर्थ अलग-अलग और मुखर है। इसका तात्पर्य उत्पादन के प्रकारों में विस्तार है। कृषि विविधीकरण का अर्थ परम्परागत कृषि उत्पादों के साथ अनेक नये उत्पादों को कृषि में शामिल करना है। सरल शब्दों में कृषि विविधीकरण कृषि निवेश या कृषि कार्य के लाभ या जोखिम को वितरित करना है। पुरानी कहावत “अपने सभी अण्डे एक टोकरी में न रखें” इसका सटीक उदाहरण है।

आज विश्व और विशेषकर अपने देश में कृषि व्यवसाय बहुत लाभ का कार्य नहीं रह गया है और यह जीवनयापन का साधन मात्र होकर रह गया है। इसका कारण उत्पादकता में अनिश्चितता के साथ उत्पादन के मूल्य का संकट या जोखिम है। ऐसे में कृषक के लिए आवश्यक है कि वह कृषि में परम्परागत शस्य उत्पादों के साथ नये अपेक्षाकृत अधिक लाभ देने वाले उत्पादों को ऊपजाना शुरू करे। इस क्रिया में नये उत्पादों को अपनाने की क्रिया ही कृषि विविधीकरण कहा जाता है।<sup>4</sup> कृषि लाभ के जोखिम को घटाने या कम करने के लिए कृषि फसलों एवं सह क्रियाओं में विस्तार करना ही कृषि विविधीकरण है। कृषि में उत्पाद के विकल्पों को बढ़ाने को ही कृषि विविधीकरण कहा जा सकता है। इसमें लाभ हेतु बुद्धिमानी और उदारता के साथ नये विकल्प एवं तकनीकों को अपनाया जाता है। जिससे कृषि हानि के स्थान पर एक लाभ का कार्य या व्यवसाय बन जाता है।

**परिभाषा :** बालसन महोदय के अनुसार “विभिन्नीकरण के साथ नवीनीकरण ही कृषि विविधीकरण है।”

**मार्शल महोदय के अनुसार** —“इष्टतम उपयोग और नवीनीकरण क्षमता दोनों आवश्यकताओं के बीच का रास्ता कृषि का विविधीकरण है।”

\* हरिहरपुर, लखनऊ

लारेन्स महोदय के अनुसार “कृषि विविधकरण कार्य का अभिप्राय कम उत्पादकता की फसलों और फार्म कार्यों के स्थान पर अपेक्षाकृत उच्च मूल्य की फसलों और अन्य फार्म उत्पादों में संसाधन अन्तरित करना है।”

**कृषि विविधकरण के प्रकार :** कृषि विविधकरण कार्य दो प्रकारों में रखा जा सकता है—

**उर्ध्व या खड़ा विविधीकरण :** यह कृषि उत्पाद में औद्योगिक कार्य की मात्रा एवं अवस्था को स्पष्ट करती है। औषधीय कृषि, फलोद्यान या अन्य व्यावसायिक या कच्चा माल हेतु की गयी कृषि उर्ध्व कृषि विविधीकरण के अन्तर्गत आते हैं। इसमें कृषक उद्योग एवं व्यापार से जुड़े होते हैं।

**क्षैतिज या समस्तरीयविविधीकरण :** यह कृषि के मौजूदा पद्धति में और अधिक फसलों को शामिल करने पर बल देती है। गेहूं, चावल, मक्का इत्यादि परम्परागत फसलों के साथ दलहन (चना, मटर, तूर) पशुचारा, तिलहन (सरसों, सोयाबीन, मूंगफली) इत्यादि के उत्पादन को कृषि में अपनाकर कृषक की आय बढ़ाया जा सकता है साथ

**कृषि विविधकरण की परिकल्पनाएं :** कृषि विविधीकरण के सम्बन्ध में विद्वानों ने कई परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया है। विद्वानों का एक वर्ग कृषि में निवेश एवं लाभ बढ़ाने को ही कृषि विविधीकरण मानता है। वहीं दूसरा वर्ग कृषि के विस्तार को विविधीकरण मानता है तो तीसरा वर्ग कृषि के बहुमुखी विकास को कृषि विविधीकरण मानने के पक्ष में है। इस तरह हम देखते हैं कि कृषि विविधीकरण के लिए निम्नलिखित शोध परिकल्पनाएं हैं —

1. शस्य प्रकारों में वृद्धि ही कृषि विविधीकरण है।
2. कृषि उत्पादों में विविधता का समावेश ही कृषि विविधीकरण है।
3. कृषक आय (लाभ) बढ़ाने हेतु कृषि का बहुमुखी विस्तार ही कृषि विविधीकरण है।

**कृषि विविधीकरण के लाभ एवं उपयोगिता :** औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात से ही कृषि लगातार घाटे एवं जीवन निर्वाहक कार्य के रूप में देखी जाने लगी थी तथा तुलनात्मक रूप से घाटे के कार्य के रूप में कृषि कार्य प्रसिद्ध हो गया और कृषि प्रोत्साहन हेतु विश्व के विभिन्न सरकारों द्वारा इस पर सहायता का प्रावधान किया गया है। परन्तु सहायता कब तक? इस प्रश्न के उत्तर हेतु कृषि को लाभ का व्यवसाय बनाना आवश्यक हो गया है और कृषि को लाभ का व्यवसाय कैसे बनाया जाय? इसका एक मात्र उत्तर कृषि विविधीकरण ही है। कृषि विविधीकरण के लाभ निम्नांकित हो सकते हैं—

1. किसान विविधीकरण को अपनाकर जोखिम कम कर सकते हैं। क्योंकि एक साथ कई फसलें होने पर एक वर्ष में सभी उत्पाद (फसलों) के विफल होने की सम्भावना कम होती है।
2. विविधीकरण से शस्य उत्पादन के अलावा अन्य क्रियाओं के उत्पाद (मांस, दूध, ऊन या ईंधन इत्यादि) आय के अतिरिक्त स्रोत प्रदान करते हैं।
3. विविधीकरण अपनाने से अलग-अलग फसलें होने से मृदा उर्वरता में वृद्धि होती है।
4. कृषि विविधीकरण के कारण फसलों का हेर फेर होने से खरपतवारों का पोषण एवं फैलाव स्वतः कम हो जाता है।
5. कृषि विविधीकरण के कारण शस्य रोग एवं कीट-पतंगों में कमी आ जाती है। जिससे कीट नाशक का कम उपयोग करना पड़ता है।
6. कृषि विविधीकरण से रोजगार के अवसर में वृद्धि होती है। क्योंकि भिन्न-भिन्न फसल उगाने से पूरे वर्ष भर श्रमिकों की आवश्यकता बनी रहती है।
7. कृषि विविधीकरण से किसान अपनी आय बढ़ाने हेतु कम कीमत वाली फसलों के स्थान पर अधिक मूल्यवान फसलों का उत्पादन कर सकते हैं।
8. कृषि विविधीकरण में किसान लाभ कमाने हेतु बाजार के मांग के अनुसार कृषि उत्पाद दे सकते हैं।
9. विविधीकरण द्वारा टिकाऊ कृषि विकास सम्भव है।
10. कृषि विविधीकरण को अपनाकर कृषक द्वारा उपलब्ध संसाधनों का उपयुक्त उपयोग किया जा सकता है।

11. कृषि विविधीकरण से किसान की आय आवधिक न होकर नियमित हो जाती है क्योंकि फसल एवं पशु उत्पाद पूरे वर्ष भर प्राप्त होते रहते हैं।

12. कृषि विविधीकरण से कृषक एवं समाज को अलग-अलग किस्म के खाद्यान्न उपभोग हेतु प्राप्त होते हैं।

13. विविधीकरण से सम्पूर्ण उत्पादन में वृद्धि होती है। जिससे परिवार एवं समाज की पोषण सुरक्षा में वृद्धि होती है।

14. कृषि विविधीकरण से अपेक्षाकृत अधिक आय प्राप्त होने से गरीबी उन्मूलन में सहायता मिलती है।

15. कृषि विविधीकरण से जैव कृषि को बढ़ावा मिलता है। जिससे पर्यावरण में स्वतः सुधार होता है।<sup>6</sup>

**कृषि विविधीकरण की प्रक्रिया :** कृषि विविधीकरण वर्तमान कृषि व्यवस्था में सुधार की प्रक्रिया है साथ ही यह कृषि में एक व्यापक विस्तार की प्रक्रिया है आज की कृषि में विविधीकरण की निम्नांकित प्रक्रियाएँ हो सकती हैं—

1. शस्य स्वरूपों में विविधता लाकर।

2. कृषि के साथ संबद्ध कार्यों को अपनाकर जैसे—पशुपालन, मुर्गीपालन, मत्स्यपालन आदि।

3. अन्नोपादन के साथ फलोत्पादन या सब्जी उत्पादन।

4. परंपरागत कृषि के साथ आधुनिक कृषि (ट्रक फार्मिंग, व्यवसायिक कृषि)।

5. अपनी आवश्यकतापूर्ति के साथ बाजारोन्मुख कृषि (Ondimand)।

**कृषि विविधीकरण की तकनीकें :** कृषक न्यून उत्पादकता, भूख तथा गरीबी में सीधा सम्बन्ध हैं। अतः किसान के लाभ हेतु कृषि विविधीकरण की निम्नांकित तकनीकें अपनायी जा सकती हैं—

**प्रमाणिक खेती :** प्रमाणिक खेती या दूसरे शब्दों में नाप तौलकर कृषि कार्य करना होगा। मृदा जाँच, आवश्यक खाद, पानी, एवं बीज के सहयोग से इस तकनीक का प्रयोग करने की आवश्यकता है।

**अनुपयोगी भूमिका कृषि हेतु विकास :** अनुपयोगी व बेकार भूमियों का सुधार कर के सम्भावित सीमा तक कृषि के अन्तर्गत लायी जा सकती है।

**जल प्रबन्धन :** कृषि क्षेत्र एवं शस्य माँग के अनुरूप सिंचाई तरीकों को अपनाया जा सकता है।<sup>7</sup>

**वाटर शेड विकास :** इससे वर्षा की प्रत्येक बूँद को संरक्षित करने के साथ जल स्रोतों में वृद्धि, मृदाक्षरण में कमी के साथ सूखे से बचने में सहायता मिलती है।

**रेन वाटर हार्बेस्टिंग :** वर्षा जल को एकत्र करके कृषक अपने उपयोग में लेते हैं।

**उन्नत संकर बीजों का प्रयोग :** अपने देश में आज भी केवल 30 से 40 प्रतिशत बुआई में उन्नत बीज का उपयोग है। कृषि विविधीकरण अपनाने पर स्वतः उन्नत बीजों का प्रयोग बढ़ जायेगा।

**शस्य संघनता :** विविधीकरण के फलस्वरूप वर्षभर कृषि व सम्बन्धित कार्य होंगे। जिससे शस्य संघनता में वृद्धि होगी।

**जैव कृषि :** जैविक कृषि पद्धति में रासायनिक उत्पादों (उर्वरक, कीटनाशी)के प्रयोग को हतोत्साहित करके हरी खाद, कार्बनिक खाद, जैव उर्वरक, फसल चक्र, के उपयोग से उत्पादन बढ़ाने का प्रयास किया जाता है।

**सहकारिता या सामूहिक कृषि :** हरित क्रान्ति हेतु सहकारी कृषि पद्धति प्रयोग किया गया था। परन्तु सरकारों की उदासीनता या भ्रष्टाचार के कारण आज सहकारी संस्थाएँ मृत प्रायः हैं। इनको पुनर्जीवित एवं पुनर्गठित करके कृषि विविधीकरण को बढ़ावा दिया जा सकता है।

**सरकारी सहायता :** कृषि में नवाचारों हेतु शासन द्वारा सहायता करके कृषि विविधीकरण को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

**कृषि विपणन तंत्र में सुधार :** कृषक को उत्पादन का वास्तविक लाभ तभी मिलता है जब सुनिश्चित विपणन व्यवस्था हो, विचौलियों की भूमिका कम से कम हो। एम0एस0पी0 से कम दाम पर उत्पादन की खरीद व बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

**कृषि अधोसंरचना का विकास :** कृषि विविधीकरण हेतु कृषि के मूलभूत तत्वों तकनीक, बीज, कृषि यंत्र, जैव उर्वरक, परिवहन, भण्डारण को एक कड़ी के रूप में विकसित किया जा सकता है।<sup>8</sup>

**कृषि विविधीकरण के मार्ग की समस्याएं :** वर्तमान समय में कृषकों के शिक्षित एवं जागरूक होने के साथही कृषि विविधीकरण के प्रति रुझान बढ़ रहा है। परन्तु इसके मार्ग में अनेक बाधाएं देखी जा सकती हैं<sup>9</sup>—

1. पूंजी एवं निवेश की कमी।
2. भू-जोतो का विखण्डन।
3. उन्नत बीजों एवं पादपों की अनुपलब्धता।
4. सिंचाई का अपर्याप्त विकास।
5. आधारभूत संरचनाओं की कमी।
6. तकनीक एवं शोध की कमी व अप्रसार।
7. कृषकों में शिक्षा एवं जागरूकता की कमी।
8. वैश्विक तापन के साथ शस्य रोगों एवं कीटों का बढ़ता प्रसार।
9. कृषि सम्बद्ध व्यवसायों हेतु घटिया तकनीक व जानकारी।
10. कृषि आधारित उद्योगों का अपर्याप्त विकास।
11. गत वर्षों में अन्धाधुन्ध रासायनिक उर्वरक एवं पेस्टाइड्स का उपयोग।
12. किसानों का भाग्यवादी होना।
13. कृषि संसाधनों का गतवर्षों में अवैज्ञानिक तरीकों से दोहन।
14. कृषकों में नवाचारों के प्रति भय एवं नकारात्मक विचारों का होना।<sup>10</sup>

**भारत में कृषि विविधीकरण :** प्राचीन समय से ही भारतीय संस्कृति के समान कृषि भी विविधता से सम्पन्न रही है। परन्तु आधुनिक विकास एवं वैश्वीकरण के समक्ष भारतीय कृषि में प्राप्त विविधताएं सूक्ष्म होती गयीं। हरित क्रान्ति के बाद श्वेत क्रान्ति, नीली क्रान्ति, पीली क्रान्ति से होते हुए इन्द्रधनुषी क्रान्ति भारत में कृषि विविधीकरण के प्रसार करने के ही प्रयास हैं। कृषि विश्वविद्यालयों, शोध केन्द्रों, कृषि रक्षा ईकाईयों ने कृषि विविधीकरण हेतु काफी प्रयास किया लेकिन खाद्यान्न एवं दुग्ध उत्पादन के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में आंशिक सफलता ही प्राप्त हो सकी है।<sup>11</sup>

**कृषि विविधीकरण हेतु सुझाव :** वर्तमान समय में कृषि विविधीकरण के बिना आर्थिक सम्बृद्धि असम्भव है। क्योंकि कृषि विविधीकरण कृषि विकास की आधुनिक रणनीति है। भविष्य में कृषि जोतें छोटी होगी और इन्हें सम्बृद्ध बनाने हेतु कृषि को विविधीकरण के तरफ अग्रसर करना होगा। जिसके लिए निम्नांकित उपाय किये जा सकते हैं—

1. बहुफसली खेती पर बल दिया जाय।
2. फार्मिंग सिस्टम एप्रोच फसल-पशुपालन -मत्स्य-मधुमक्खी पालन को बढ़ावा दिया जाय।
3. सूखा प्रतिरोधी फसल एवं प्रजातियों का प्रसार किया जाए।
4. अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवाली फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहित किया जाए।
5. कृषि जलवायु क्षेत्रों के अनुसार कृषि मॉडलों का विकास किया जाना चाहिए।

**6. I puki kshdh(I.T.) जैव प्रौद्योगिकी (B.T.) रिमोटसेंसिंग जैसी नयी तकनीकों का कृषि विकास हेतु प्रयोग किया जाय।**

7. संकर बीज उन्नत बीज तथा बी0टी0 बीजों के प्रसार को बढ़ावा दिया जाए।
8. कृषि ऋणों को सरल एवं सुलभ बनाया जाय।
9. कृषि नवाचारों एवं तकनीक को हर खेत तक पहुंचाने के प्रयास किये जाय।
10. कृषि सम्बद्ध क्रियाओं पशुपालन, कुक्कुटपालन, डेयरी, मत्स्य उत्पादन हेतु सरकारी सहायता बढ़ायी जाय।
11. कृषि हेतु अधोसंरचना का विकास किया जाय।
12. कृषि उत्पाद विपणन तन्त्र में सुधार किया जाय।<sup>12</sup>



**सारांश :** कृषि विविधीकरण वर्तमान कृषि को उसकी समस्याओं से निवारण प्रदान करने की एक प्रक्रिया है। कृषक एवं कृषि को संकट से बचाने का तरिका है। आज कृषि में अन्तर्निहित दुर्बलताओं को दूर करने, खाद्य/पोषण सुरक्षा, आय वृद्धि, गरीबी उन्मुलन, रोजगार बढ़ाने, जैव कृषि विकास तथा पर्यावरण सुरक्षा व सुधार का एक मात्र उपाय कृषि विविधीकरण को व्यापक रूप में अपनाना है।

**सन्दर्भ-ग्रन्थ**

1. मार्केट वॉच-2017 पृ. 01
2. अन्तर्राष्ट्रीय संगठन महत्वपूर्ण संकेतक, 2008 पृ. 11-12
3. [www. localgov/library/publications/geos](http://www.localgov/library/publications/geos), page 22
4. Colinson : A History of Froming Systam Cabi, press page 9
5. Marsel : A History of World Agriculture, Newyork, page 1-8
6. [www.egyankosh.ac.in.unit8](http://www.egyankosh.ac.in.unit8), page 23-36
7. Book final swara. cdr>chapter 8. page 68-75
8. [hpagrisnet.gov.in/Pimary sector/workplan 2012-2017](http://hpagrisnet.gov.in/Pimary sector/workplan 2012-2017)
9. डा. बी०एन०सिंह : कृषि भूगोल प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद, पृ. 232-277
10. P.K. Joshi Ashok Gulati : Agricultural Diversifications & Smallholders in South Asia. New Delhi Page 11-28
11. Anil Kumar Thakur & K.B. Padmadeo : Grouth & Diversification of Agriculture , Deep New Delhi page 21-24
12. Hi. M. wikibooks org. page 19

\* \* \* \* \*

## आँवला औद्यानिकी का प्रतापगढ़ के ग्रामीण आर्थिक विकास में योगदान

डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय\*

भारत के देशज शुष्क फलों में आँवले का अतिशय महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन भारतीय साहित्य<sup>1</sup> में इसे इसके आयुर्वेदिक औषधीय एवं पोषणीय तत्वों की प्रचुरता की दृष्टि में महत्ता के कारण 'शुष्क फलों का राजा' तथा 'अमृत फल' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। चरक एवं शुश्रुत संहिताओं में आँवले का च्यवन ऋषि द्वारा निर्मित आमलकी प्राश में चिर तारुण्य प्रदायक संघटक के रूप में व्याख्यायित किया गया है।<sup>2</sup> विटामिन 'सी' की प्रचुरता इसे धूप में सुखाने अथवा उबालने पर बिल्कुल नष्ट नहीं होने देती। यह इतना उपयोगी फल है।<sup>3</sup> विविध भाषाओं में इसके विविध नाम मिलते हैं यथा—संस्कृत में आमलक, धात्रीफल, पंचरसा तथा तृष्णा फल, हिन्दी में आमला, आँवला, आँवरा, आवड़ा मराठी में आँवल, आँवलकारी, आँवली, गुजराती में आमलान्, झाड़आँमलो, बाँग्ला में आँमला आमरो, आम्बोलटा, अरबी में अम्लज, अमलज तथा फारसी में आम्लजये, आम्लाह आमाल्या आदि।

जनपद प्रतापगढ़ को विश्व विश्रुत बनाने एवं यहाँ की अभिशप्ता, उसरीली मिट्टी को अपनी पैदावार से वरदायिनी स्वरूप प्रदान करने वाला, उसरीली भूमि में उगाये जाने वाले औषधीय फसलों में प्रमुख, विदेशी मुद्रा का स्रोत तथा देश-विदेश में अपनी गुणवत्ता के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध 'अमृत फल' आँवला यहाँ के जन-जीवन की अर्थव्यवस्था एवं ग्रामीण आर्थिक विकास में क्रान्तिकारी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। जपपद प्रतापगढ़ न केवल आँवला उत्पादन में देश-प्रदेश में अग्रणी स्थान रखता है, प्रत्युत देश-विदेश में आँवले के प्रसार हेतु उच्च गुणवत्ता युक्त कलमी पौधों की आपूर्ति एवं मूल्य संवर्द्धन हेतु प्रसंस्करण उद्योगों द्वारा प्रसंस्कृत उत्पाद तैयार कर विपणन कर रहा है। आँवले का उपयोग आयुर्वेदिक औषधियों—त्रिफला, च्यवनप्राश, हर्बल सिरप, डायबिटिक चूर्ण, घाव धोने हेतु एण्टिसेप्टिक, साँप-बिच्छू के दंश का उपशामक, पीलिया, मधुमेह अस्थमा, रक्ताल्पता, ब्रोंकाइटिस, कमोत्तेजक, मूत्रवर्द्धक दवा, मृदु विरेचक, मन्दाग्नि, रक्तस्राविक पित्तनाशक आदि दवाएँ,<sup>4</sup> प्रसंस्कृत उत्पादों—आँवला पल्प, मुरब्बा, चटनी, स्क्वाश, कैण्डी, टॉफी, अचार, कलौंजी, लड्डू, बर्फी तथा सौन्दर्य प्रसाधनों—तेल, शैम्पू व हेयर हार्ड आदि बनाने में किया जा रहा है।<sup>5</sup>

आँवले के पौधों के अच्छे विकास हेतु हल्की क्षारीय मिट्टी की आवश्यकता होती है। अतः प्रतापगढ़ जनपद की भूमि क्षारीय होने के कारण सर्वोत्तम किस्म के आँवले की उपज हेतु सर्वाधिक उपर्युक्त है।<sup>6</sup> यहाँ की भूमि की क्षारीयता 7.5—0.5 पीएच मान है, साथ ही आँवला कठोर प्रकृति एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने वाला वृक्ष होता है। अतः इसके रोपण से ऊसर/बंजर भूमि का सदुपयोग किया जा सकता है। इस दृष्टि से भी जनपद में खेती हेतु आयोग्य भूमि में ऊसर भूमि का क्षेत्रफल सर्वाधिक होने के कारण आँवले की बागवानी कर उसरीली भूमि के सदुपयोग द्वारा जनपद के आर्थिक विकास में नए अध्याय जोड़े जा सकते हैं। आँवले का पौधा चार वर्ष में फसल (उपज) देने योग्य हो जाता है। इस बीच खेत से अन्य फसलें भी ली जा सकती हैं। जनपद के कुण्डा एवं काला कौंकर विकास खण्डों में लोग आम एवं आँवले की संयुक्त बागवानी कर रहे हैं। इससे उनकी प्रचन्न

\* एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, स.ब.पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर

बेरोजगारी दूर करने में मदद मिल रही है। जनपद के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 362406 हेक्टेयर में से कृषि योग्य क्षेत्रफल 222053 हेक्टेयर है। इसमें वर्तमान में 19525 हेक्टेयर भूमि में आँवले की बागों का आच्छादन है। इनमें 82737 मी० टन फलों का प्रतिवर्ष उत्पादन हो रहा है, जो विश्व में एक कीर्तिमान है। उद्यान मिशन योजना, अम्बेडकर विशेष रोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, सामाजिक वानिकी योजना आदि के द्वारा प्रतिवर्ष आँवले के पौधारोपण को प्रोत्साहित किया जा रहा है। वर्ष 2005-2006 में उद्यान मिशन योजनान्तर्गत जनपद के आठ विकास खण्डों में 300 हेक्टेयर भूमि पर आँवले के पौधे रोपण की मंजूरी शासन द्वारा प्रदान की गई है।<sup>17</sup>

कृषि वैज्ञानिकों द्वारा यद्यपि वर्तमान में आँवले की अनेक प्रजातियों का विकास कर लिया गया है और आँवला कृषक मनचाही प्रजाति की उपज भी ले रहे हैं तथा नई-नई प्रजातियों के आँवलों की चमक और आकार भी बढ़ गया है, किन्तु पौष्टिकता तो इसकी मूल प्रजाति चकड़या (चकला) में है, जो लोकप्रिय होने के साथ-साथ कीमत एवं फल देने वाली है। यह अलग बात है कि नई प्रजातियों के फल से बनने वाले उत्पाद साफ-सुथरे एवं स्वादिष्ट होते हैं। जनपद की आँवला प्रजातियों में बनारसी, चकला, फ्रांसिस, नरेन्द्र 7, नरेन्द्र 10 सहित कृष्ण, कंचन एवं लक्ष्मी 52 प्रचलित है। इनमें से बनारसी और चकला कुदरती फल माने जाते हैं और इसका आकार नई प्रजातियों की अपेक्षा छोटा होता है। इस प्रजाति के फल भले ही मझोले आकार के होते हैं, किन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से यह आज भी श्रेष्ठ माने जाते हैं। फ्रांसिस भी देशी प्रजाति है, जिसके फल बनारसी एवं चकला से थोड़े बड़े होते हैं, किन्तु इसके कुछ फल भीतर से काले पड़ जाते हैं। इसका सर्वाधिक उपयोग अमृतसर (पंजाब) में मुरब्बा बनाने में हो रहा है। नरेन्द्र प्रजातियों के फल आकार में बड़े एवं चमकदार होने के साथ-साथ रसीले एवं कम रेशे वाले होते हैं। आधुनिकतम प्रजाति लक्ष्मी 52 के फल चार से साढ़े पाँच सेमी० व्यास के होते हैं। इसके फल उबालने एवं गोदाई करते समय टूटने लगते हैं। नरेन्द्र एवं लक्ष्मी 52 प्रजाति के आँवले के पेड़ों की डालियों के फल आने पर वजन के कारण टूटने की आशंका बनी रहती है।

जनपद में आँवले का उत्पादन 1934 ई० में गौरा विकास खण्ड के पटहटिया कलाँ गाँव से प्रारम्भ हुआ, जो आज जनपद के 17 विकास खण्डों में फैल गया है। (देखें, सारणी-1)। प्रारम्भिक वर्षों में यहाँ के आँवले के ग्राहक कानपुर, कोलकाता, मुम्बई, अमृतसर, दिल्ली, हाथरस, हैदराबाद, पटना एवं राजस्थान आदि थे। 1971-72 ई० में 130 हेक्टेयर में उत्पादित लगभग 4000 कुन्तल आँवला निर्यात किया जाता था, जिसका मूल्य 2 लाख हुआ करता था। आज खाड़ी देशों को भी होने लगा है। और प्रति वर्ष 10-15 करोड़ रुपये का कारोबार हो रहा है।<sup>18</sup> आज भारत विश्व में आँवला उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अनुमानतः 20 हजार क्षेत्रफल में 0.2 मिलियन टन आँवला उत्पादित हो रहा है। इसका 95 प्रतिशत उत्पादन अकेले उत्तर-प्रदेश से होता है, जिसमें देश को आँवले की 75 प्रतिशत उपज वर्तमान में अकेले प्रतापगढ़ देता है।

आँवला उद्योग से ग्रामीण बेरोजगारी पर नियन्त्रण की अपार सम्भावनाओं की बात अनायास ही नहीं कही जा रही है। उच्च गुणवत्ता युक्त कलमी पौध उत्पादित कर जनपद, प्रदेश तथा अन्य राज्यों को पौध उपलब्ध कराने हेतु दो राजकीय पौधशालाएँ एवं निजी क्षेत्र में 54 पंजीकृत पौधशालाएँ कार्यरत हैं, जिससे प्रतिवर्ष लगभग 1650540 पौध आपूर्ति की जा रही है। इस कार्य में कुशल एवं अकुशल कर्मचारों की आवश्यकता होती है।<sup>19</sup>

आँवले का प्रयोग अधिकाधिक प्रसंस्कृत, उत्पादों द्वारा किया जाता है, जिससे आँवला उत्पादक मूल्य संवर्द्धित होता है। प्रसंस्करण उत्पाद तैयार करने एवं एतद्विषयक प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु जनपद में 2 राजकीय फल संरक्षण इकाई एवं निजी क्षेत्र में पंजीकृत FPO लाइसेंस प्राप्त 22 इकाईयाँ तथा छोटे-छोटे समूह स्तर पर अन्य लगभग 100 इकाईयाँ कार्यरत है। (देखें सारणी 2,3) मशीनीकरण के युग में भी आँवला उद्योग में अब तक विकसित मशीनें शत-प्रतिशत नाकाम रही हैं। ऐसे में उद्यमियों को 'मैन पावर' पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यहाँ लघु एवं कुटीर उद्योग चलाने वालों ने मशीनों का प्रयोग करने के उपरान्त अनुभव किया है कि जैसा उत्पादन वह मैन पावर से कर लेते हैं, वैसा मशीनों से नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए आँवले की गोदाई एवं छँटाई, जिसे मशीन नहीं

## जनपद-प्रतापगढ़ में औवला औद्योगिकी का आच्छादन एवं उत्पादन

क्र० सं०	विकासखण्ड का नाम	वर्ष 2015-16		वर्ष 2016-17		वर्ष 2017-18		वर्ष 2018-19		वर्ष 2019-2020	
		क्षेत्रफल हे० में	उत्पादन मै० टन में	क्षेत्रफल हे० में	उत्पादन मै० टन में	क्षेत्रफल हे० में	उत्पादन मै० टन में	क्षेत्रफल हे० में	उत्पादन मै० टन में	क्षेत्रफल हे० में	उत्पादन मै० टन में
1	सदर	3098	11538	3149	10436	3149	20626	3252	20116	3287	20986
2	मान्धाता	296	1023	315	912	315	2047	365	1945	398	1988
3	सण्डवा चन्द्रिका	2030	6199	2050	6129	2050	13325	2150	13017	2160	13694
4	पट्टी	1571	5745	1551	4248	1551	10341	1631	10232	1646	10992
5	मंगरौरा	1387	5076	1397	5002	1397	9082	1397	9070	1435	9939
6	आसपुर देवसरा	634	2320	644	2308	644	4186	664	4176	668	4439
7	शिवगढ़	488	1486	494	1285	494	3524	504	3201	524	3727
8	बाबा बेलखरनाथ धाम	374	1288	378	1271	378	2487	388	2447	398	2789
9	गौरा	513	1877	523	1806	523	3377	538	3389	544	3646
10	रामपुर (लालगंज)	138	405	138	402	138	875	148	887	148	904
11	रामपुर संग्रामगढ़	52	208	57	201	57	320	57	360	59	405
12	लक्ष्मणपुर	66	249	70	241	70	435	70	452	70	474
13	सागीपुर	1046	1352	1049	1883	1049	6818	1159	6813	1182	7309
14	कुण्डा	85	311	87	301	87	565	87	564	99	617
15	कालाकांकर	21	47	24	30	24	150	24	155	26	207
16	बिहार	49	119	50	102	50	325	50	325	55	398
17	बाबागंज	19	23	20	21	20	130	20	130	25	176
	योग	11866	40130	12036	36087	12036	78448	12439	77279	12734	82737

## जनपद-प्रतापगढ़ में पौधशाला

क्र०सं०	राजकीय पौधशालायें		पंजीकृत पौधशालायें		योग	
	संख्या	पौध उत्पादन	संख्या	पौध उत्पादन	संख्या	पौध उत्पादन
1.	2	24500	54	1626	56	1640540

1. राजकीय पौधशाला मुख्यालय
2. राजकीय पौधशाला एवं प्रक्षेत्र नरायनपुर

## खाद्य प्रसंस्करण केन्द्र

राजकीय प्रसंस्करण केन्द्र	निजी क्षेत्रों में (एफ०पी०ओ०) लाइसेंस प्राप्त	योग
2	22	24

कर सकती है। इसे तो मानव ही कर सकता है। इसके अतिरिक्त गोदाई को जो काम महिला लेबर कर देती है, वह मशीन नहीं कर पाती। मशीन से गोदाई किए गए आँवले और मानव-श्रम से किए गए गोदाई के आँवले के उत्पादन में काफी फर्क होता है। प्रसंस्करण के दौरान प्रतिपल मानव की जरूरत होती है, चाहे वह धुलाई हो अथवा अन्य कोई कार्य।

आँकड़ों की दृष्टि से आँवले के प्रसंस्कृत उत्पादन में संलग्न इण्डिका, पुष्पांजलि, माया, सोनावी, सत्कार आदि इकाइयों में कम से कम 50-60 श्रमिक काम करते हैं। इस प्रकार इन छोटे उद्योगों ने 1/1/2- 2 हजार लोगों को रोजगार दे रखा है। आँवला उद्योग में विभिन्न प्रकार के कार्यों में लगे लगभग 10-15 हजार लोगों का पेट पल रहा है।<sup>10</sup> इसके बाद परोक्ष रूप से जो लोग इससे अपनी आजीविका चलाते हैं, वो अलग है। पुरुष जहाँ इकाइयों में जाकर काम करते हैं, वहीं महिलाएँ घर बैठे आँवले की गोदाई करके 30-40 रुपये प्रतिदिन कमा देती हैं। एक आँकड़े के अनुसार हावड़ा, अमृतसर, लुधियाना, हाथरस आदि को प्रतापगढ़ से आँवला भेजने में रेलवे की सीजन के दौरान कुण्डा हरनामगंज स्टेशन से मात्र ऊँचाहार एक्सप्रेस में लोडिंग करने पर लगभग एक लाख मासिक एवं प्रतापगढ़ तथा चिलबिला जंक्शन से पंजाब मेल में लोडिंग करने पर 60-70 हजार रुपये प्रतिदिन आय मालभाड़े के रूप में जोती है। इसके साथ ही 40 ट्रक आँवला प्रतिदिन ट्रकों से बाहर भेजा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर एक ताजा अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार भारतीय प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की माँग विदेशों में बढ़ने से आँवले के प्रसंस्कृत उत्पादों की भी माँग बढ़ने की सम्भावना व्यक्त की गयी है।<sup>11</sup>

यदि जनपद के आँवला उत्पादकों को उत्पादन चयन, उद्योग लगाने में उपलब्ध वित्तीय एवं तकनीकी सहायता, उत्पादन प्रक्रिया, प्रसंस्कृत उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार, उत्पादकता कार्यशैली, पूँजी एवं बाजार सर्वेक्षण आदि की अत्याधुनिक जानकारी उपलब्ध कराई जाये, तो आँवला उत्पादकों के साथ-साथ जनपद की आर्थिक स्थिति बदली जा सकती है। इन जानकारीयों के अभाव में उत्पादक सिर्फ अपना माल बेचना चाहता है, जिसमें आँवला खरीद की हत्था पद्धति, घटतौली और बिचौलिए जोंक की तरह चिपक कर उसे चूस रहे हैं। यदि जनपद में एक बड़ा पल्पिंग प्लांट लग जाए तो सारा उत्पादन यहीं खप जाये और उत्पादक कृषकों को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उद्योग शून्य प्रतापगढ़ जनपद में कुदरत की देन आँवला ऐसा वरदान है, जिसके प्रसंस्करण उद्योगों द्वारा सर्वाधिक रोजगार का सृजन हो रहा है। यदि इसके उत्पादों पर आधारित उद्योगों की स्थापना पर थोड़ा-सा प्रयास किया जाय, तो ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या एवं आर्थिक विकास को सुधारा जा सकता है।

1. राजकीय खाद्य प्रसंस्करण एवं प्रशिक्षण केन्द्र, प्रतापगढ़।
2. राजकीय खाद्य प्रसंस्करण एवं प्रशिक्षण केन्द्र, कुण्डा, प्रतापगढ़।

**संदर्भ-सूची**

1. सोनी सुरेश, भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा, पृ. 117  
बघेल, हरवीर सिंह, वेदों का सार-आयुर्वेद पृ. 72-73  
द्विवेदी, कपिल देव, वेदों आयुर्वेद, पृ. 235-277
2. चरक संहिता (सूत्र स्थान 1-36-37), सुबुत संहिता, 34, 12-13
3. रिपोर्ट यू0पी0 स्टेट हार्टीकल्चर को ऑपरेटिव मार्केटिंग फेडरेशन, लखनऊ।
4. वही,
5. यू0पी0 डिस्ट्रिक्ट गजेटियर प्रतापगढ़, पृ. 12
6. रिपोर्ट, यू0पीव स्टे डार्टी कल्चर को ऑपरेटिव मार्केटिंग फेडरेशन, लखनऊ।
7. रिपोर्ट जिला सूचना कार्यालय प्रतापगढ़
8. रिपोर्ट, यू0पी0. स्टेट डार्टी कल्चर को ऑपरेटिव मार्केटिंग फेडरेशन।
9. यू0पी0 डिस्ट्रिक्ट गजेटियर प्रतापगढ़, पृ. 109, 148
10. रिपोर्ट यू0पी0 स्टेट डार्टी कल्चर को आपरेटिव मार्केटिंग फेडरेशन, लखनऊ।
11. रिपोर्ट उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग प्रतापगढ़।

\* \* \* \* \*



## कोविड-19 के दौर में आत्मनिर्भर भारत अभियान : अवसर, चुनौतियाँ, रणनीति

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह\*

**सारांश :-** किसी देश के लिए आत्मनिर्भर होना प्रचुर उत्पादन के आत्मनिर्भर पारिस्थितिकी तंत्र से लैस होना है जिसमें सभी के लिए रोजगार और विकास के अवसर मौजूद हों। आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक है ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करना, खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने और व्यवसायिक फसलों पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता पर बल और संरक्षण दिया जा रहा है। प्राथमिक क्षेत्र के उद्योगों को प्रोत्साहित करने और संरक्षण देने की बात की जा रही है। मजदूरों की वापसी को देखते हुए उत्तर प्रदेश की सरकार ने माइग्रेट कमीशन का गठन किया है और उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए कौशल विकास के कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। आत्मनिर्भरता की प्राप्ति के लिए राजनीतिक एवं प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के साथ आर्थिक विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाने की आवश्यकता है। उद्योगों की उत्पादन क्षमता को बढ़ावा देने और आयातों पर रोक लगाये बिना स्वदेशी निर्माण एवं उपयोग को बढ़ावा देना है।

**मुख्य बिन्दु –** कोविड-19, आत्मनिर्भर भारत, भारतीय अर्थव्यवस्था।

**प्रस्तावना –** वैश्विक महामारी के इस दौर में भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने राष्ट्र को इस भीषण संकट से उबारने और अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने के उद्देश्य से आर्थिक आत्मनिर्भरता का मंत्र दिया है। वसुधैव कुटुम्बकम् यानि सारा संसार एक परिवार है, के अपने मूल लोकाचार के साथ भारत इस संकट की घड़ी में समस्त विश्व के साथ खड़ा है। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के निर्देशन में जिन आर्थिक नीतियों को अपनाया गया उससे राष्ट्र की आर्थिक आत्मनिर्भरता बहुत बढ़ गई थी। किन्तु कोविड-19 की इस महामारी ने दुनिया के लगभग 200 देशों में लॉकडाउन के कारण आंतरिक और विदेशी व्यापार लगभग बन्द हो गया जिसका परिणाम यह हुआ कि वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति बहुत बुरी तरह से प्रभावित हुई। दवाइयाँ, चिकित्सकीय उपकरण, और अन्य जरूरी सामान के लिए एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से अपेक्षित सहयोग नहीं प्राप्त कर सका।

**विषय विस्तार –** यूरोपीय देशों में सबसे पहले कोरोना से पीड़ित देश इटली की यह शिकायत रही कि यूरोपिय संघ के देशों ने संकट के समय में किसी प्रकार की मदद नहीं की और यूरोप के देशों का इस प्रकार से क्षमा मांगना वैश्विकरण की समसामयिक वास्तविकता को बताता है। आत्मनिर्भर भारत के पाँच स्तम्भ— अर्थव्यवस्था, अवसंरचना, व्यवस्था, जनसांख्यिकी और माँग का उद्देश्य समाज के सभी क्षेत्रों और वर्गों पर समान रूप से विहंगम दृष्टि डालना है। अर्थशास्त्र में 'ट्रिकल डाउन' सिद्धान्त के मुताबिक अगर जी.डी.पी. में बढ़ोत्तरी होती है तो जरूरी नहीं है कि सभी लोगों की आय उसी हिसाब से बढ़ेगी। उदाहरण के तौर पर कई देशों और क्षेत्रों में सामान्य (बिना कौशल वाले) मजदूरों की आय स्थित हो गई है। जबकि क्षेत्र (देश) में जीडीपी में बढ़ोत्तरी का सिलसिला जारी है। आर्थिक विकास का यह असमान ढाँचा आत्मनिर्भर भारत के लिये बिल्कुल उपयुक्त नहीं है। आत्मनिर्भरता का लक्ष्य सिर्फ वैसी आर्थिक नीतियों के जरिये हासिल किया जा सकता है, जिसमें विकास के अलावा आर्थिक असमानता को भी कम किया जा सके। समानता और विकास को एक दूसरे की कीमत पर हासिल

\* प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक ( सा.वि. ) डी.ए.वी. इण्टर कॉलेज, प्रयागराज

करना ठीक नहीं होगा। समानता और विकास को एक दूसरे का पूरक होना चाहिए इसके लिए हमें अपनी आर्थिक रणनीति में बड़े बदलाव करने होंगे, ताकि आत्मनिर्भर भारत का लक्ष्य हासिल किया जा सके।

महात्मा गाँधी आधुनिक इतिहास में आत्मनिर्भरता के विचार के शुरुवाती प्रस्तावकों में से एक थे, जिन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिये स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए विकास का सुस्पष्ट और वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया। उनके अनुसार 'कोई व्यक्ति, कोई गाँव, कोई देश केवल आत्मनिर्भर बनकर ही स्वतंत्र हो सकता है। वर्तमान में भारत 130 करोड़ की विशाल जनसंख्या व विशाल भू-भाग वाला राजनीतिक रूप से एकीकृत एक संघ राज्य है, जिसमें क्षेत्रीय विविधताओं को 28 प्रांतीय सरकारों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है ऐसे में दुनिया के अन्य राष्ट्रों के समान भारत ने भी आर्थिक अन्तर्निर्भरता की ओर कदम बढ़ाया जिसका सुपरिणाम आर्थिक समृद्धि के रूप में दिखाई दिया। भारत आज दुनिया की 5वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश है। वर्तमान कोरोना महामारी जैसी परिस्थिति ने भारत को एक बार फिर से आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने के लिये प्रेरित किया है।

भारत की आत्मनिर्भरता आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमिति नहीं है बल्कि भारत एक ऐसी उभरती हुई शक्ति बनेगा जो दुनियाभर की आर्थिक समृद्धि में भी योगदान करेगा। इस दृष्टि से भारतीय आत्मनिर्भरता के कई आयाम हैं जिन पर ध्यान रखते हुए कुछ महत्वपूर्ण रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं।

खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता के साथ ही कृषि आय बढ़ाने और व्यवसायिक फसलों की खेती की ओर ध्यान केन्द्रित करने की भी आवश्यकता है। यह हम जानते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है औद्योगिक क्षेत्र और सेवा क्षेत्र में तीव्र विकास के बावजूद भी 53% जनसंख्या कृषि पर आश्रित है किंतु राष्ट्रीय आय में कृषि का कुल योगदान मात्र 13% का है। कोविड संकट को दृष्टिगत रखते हुए भारत अपनी कृषि भूमि का उपयोग हर्बल उत्पादन के लिये भी कर सकता है जिसे संगठित रूप प्रदान करते हुए आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के माध्यम से भारतवासियों में रोगप्रतिरोधक क्षमता के विकास के साथ ही साथ विश्व के अन्य राष्ट्रों को स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध करा सकता है। स्वस्थ राष्ट्र के निवासीयों से युक्त राष्ट्र ही आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का विकास कर विश्व का नेतृत्व करने में सक्षम हो सकता है। आज विश्व के तमाम देश चीन के प्रति दुराग्रह का भाव रखते हुए चीनी सामानों का बहिष्कार कर रहे हैं। इसका लाभ भारत को हो सकता है हाल ही में अमेरिका की एप्पल कम्पनी अपना 20% कारोबार चीन से समेटकर भारत में लगाने की घोषणा कर चुका है भारत के आर्थिक बदलाव के लिये कृषि महत्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने से खाद्य सुरक्षा और भुगतान संतुलन (खाद्यान्नों के आयात में कमी और निर्यात में बढ़ोत्तरी) की स्थिति बेहतर होगी। साथ ही खाद्य प्रसंस्करण को बढ़ावा मिलेगा, कृषि आधारित उद्योगों के लिए गुंजाइश बढ़ेगी और खेती से जुड़ी अन्य सेवाओं की माँग बढ़ेगी। इस तरह रोजगार के अवसर बढ़ने के साथ-साथ आय में भी बढ़ोत्तरी होगी। कृषि से जुड़ी सामग्री का निर्यात बढ़ाने की काफी संभावनायें हैं। इसके लिये ऊँचे मूल्य वाली फसलों की पहचान करनी होगी, जिसकी माँग भारत के बाहर भी है। इसके अलावा कृषि की व्यवस्था को तकनीकी तौर पर भी काफी उन्नत बनाया जा सकता है और इससे जुड़े कौशल का उपयोग दूसरे क्षेत्रों में किया जा सकता है।

भारत की कुल जनसंख्या 130 करोड़ है जिसमें लगभग 40 करोड़ जनसंख्या श्रमिकों की है। जो मुख्यतया कृषि, उद्योग, व्यवसाय व सेवाक्षेत्र में कार्यरत हैं। कोरोना महामारी के इस संकट के दौर में लाखों की संख्या में ये मजदूर शहरों से गाँवों की ओर पलायन करते देखे गये उनकी बेरोजगारी और भूखमरी की स्थिति ने यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि इन श्रमिकों में आत्मनिर्भरता का विकास किये बिना आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना करना बेमानी होगी। श्रमिकों को आत्मनिर्भरता के साथ कुशल बनाने में उनकी क्षमता, रहन सहन का स्तर व कार्य क्षमताओं का इस प्रकार से विकास किया जाना आवश्यक है कि आकस्मिक संकटों को झेलने में भी वो समक्ष हो सके। इसके लिए उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए विश्व बैंक के सहयोग से सरकार कौशल विकास कार्यक्रमों के द्वारा प्रशिक्षित कर रही है।

भारत विश्व की पाँचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था होने के पश्चात भी प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से बहुत पीछे है। भारत में (2017) प्रति व्यक्ति आय 94 हजार रुपये प्रतिवर्ष है इस दृष्टि से दुनिया के 188 देशों की सूची में भारत का 138 वाँ स्थान है। वर्ष 2020 की जनवरी माह में भारत की मासिक प्रतिव्यक्ति आय में 68% की वृद्धि

की बात की गई है। किन्तु अप्रैल 2020 की अन्तराष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत के असंगठित क्षेत्र के 40 करोड़ मजदूर बेरोजगार हो सकते हैं। इससे प्रतिव्यक्ति आय में और गिरावट का अनुमान है। प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि से व्यक्ति की क्रय क्षमता बढ़ती है और बाजार में पूँजी का प्रवाह बना रहता है जो आर्थिक आत्मनिर्भरता हेतु अत्यन्त आवश्यक है। सरकार द्वारा दिया गया 20 लाख करोड़ का पैकेज पूँजी के प्रवाह को बनाये रखने में सहायक होगा।

कोविड संकट ने भारत में तकनीकी विकास हेतु प्रतिभाओं को रोके रखने की परिस्थितियाँ उत्पन्न की है। अमेरिका में कोविड संकट का बुरा असर होने के कारण वहाँ भारतीय प्रतिभाये जाने से बचेगी, अमेरिका अपनी तकनीकी आवश्यकताओं को पेट्रोकेमिकल आटोमोबाइल, इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी व बैंकिंग के क्षेत्र में चीन व भारत से आउटसोर्सिंग कर 58% लागत को बचाता है। ऐसी स्थिति में भारत प्रतिभाशाली युवाओं का चयन कर उनके विकास और प्रशिक्षण का अवसर अपने देश में ही उपलब्ध करा सकता है। इसके लिये यह तकनीकी रूप से उन्नत देशों से सहयोग भी ले सकता है। क्योंकि आत्मनिर्भरता दुनियाँ के अन्य देशों से अलग-थलग रहकर प्राप्त नहीं की जा सकती। तकनीकी विकास भारत को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारत के आर्थिक विकास में मजबूती लायेगा साथ ही व्यवस्था में पारदर्शिता लाकर कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन में भी सहायक सिद्ध होगा।

प्राथमिक उद्योग जैसे वस्त्र, जूट, चीनी, सीमेंट, पेपर, व स्टील उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार है। अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाने के लिए इन उद्योगों को और मजबूत करना होगा। स्टील के उत्पादन में भारत दुनियाँ के 10 सर्वाधिक उत्पादक देशों में से एक है फिर भी वह स्टील का बड़ी मात्रा में आयात करता है। निर्यात से होने वाले लाभ का 33% वस्त्र उद्योग से आता है। सीमेंट और चीनी उत्पादन में भी यह दुनियाँ के अन्य देशों में उत्कृष्ट स्थान रखता है। अतः इन क्षेत्रों में भारत को पूर्ण आत्मनिर्भर बनाने के साथ ही इनके निर्यात को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों को भी प्रोत्साहित करने और संरक्षण देने की आवश्यकता है।

आत्मनिर्भरता की प्राप्ति के लिए राजनीतिक एवं प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के साथ भारत को आर्थिक विकेन्द्रीकरण की नीति भी अपनानी चाहिए। कुछ गाँवों और जिलों को मिलाकर स्वायत्त आर्थिक समूहों का विकास किया जा सकता है जो अपने क्षेत्र के मानवीय संसाधनों की संभावनाओं को तलाश कर स्थानीय स्तर पर स्वदेशी उद्योगों का विकास करेंगे। भारत में 6.5 लाख गाँवों व 770 जिले में ऐसी आर्थिक इकाइयों का निर्माण असंभव नहीं है। गुजरात और तमिलनाडु में इसका उदाहरण देखा जा सकता है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 40 लाख मजदूरों की वापसी को देखते हुए गठित 'माइग्रेट कमीशन' आर्थिक आत्मनिर्भरता में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है जो मजदूरों को कौशल विकास प्रशिक्षण देकर उन्हें अपने गृह जनपद व प्रदेश में काम दिलाने हेतु संकल्पित है। 'एक जिला एक उत्पाद' विषयक परियोजना उत्तर प्रदेश सरकार की आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है।

आत्मनिर्भरता हेतु अपनाई गई रणनीतियाँ तभी प्रभावी होगी जब भारत वैचारिक रूप से भी आत्मनिर्भर होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी औपनिवेशिक मानसिकता के अन्तर्गत पश्चिमी देशों के आर्थिक एवं राजनीतिक मॉडल को श्रेष्ठ समझा गया, लेकिन अब समय आ गया है कि अपनी मानसिक दासता का त्याग करके अपने देश की सांस्कृतिक मूल्यों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर आर्थिक मॉडल का सृजन किया जाय और पूरी दुनियाँ के समक्ष रखा जाय। आत्मनिर्भर शब्द का इस्तेमाल आत्मनिर्भरता और सम्पूर्ण आत्मनिर्भरता दोनों के लिए ही किया जाता है इसका मकसद आयातों पर रोक लगाये बिना स्वदेशी निर्माण क्षमता को विकसित करना है। दूसरी तरफ सम्पूर्ण आत्मनिर्भरता अव्यवहारिक, अन्तर्मुखी और नकारात्मक है। यह तुलनात्मक लाभ के रिकार्डों के सिद्धान्त के खिलाफ है इस सिद्धान्त के अनुसार अन्तराष्ट्रीय व्यापार विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में देशों की तुलनात्मक लाभ में अंतर का परिणाम है। इसलिये किसी सम्पूर्ण आत्मनिर्भर देश को भी व्यापार करना चाहिए। निर्यात सवर्द्धन की प्रभावशाली रणनीति मजबूत और प्रतिस्पर्धी स्वदेशी निर्माण पर निर्भर करती है। निर्माण प्रतिस्पर्धी तब होता है जब वह विश्व के सर्वश्रेष्ठ निर्माताओं से होड़ करने के साथ ही स्वदेश में आयातों और खास तौर पर हमारे साक्षीदारों से प्रशुल्क मुक्त आयात के सामने टिक सके। एडम स्मिथ ने 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' में कहाँ है कि

वणिकवाद का महान लक्ष्य स्वदेशी खपत के लिये विदेशी सामान का आयात यथा संभव घटाना और स्वदेशी उद्योग के उत्पादों का निर्यात ज्यादा से ज्यादा बढ़ाना है। उनका यह सिद्धान्त खासतौर से बड़े स्वदेशी बाजार वाले देशों के लिए अब भी प्रासंगिक है, आयात पर निर्भरता घटाना और निर्यात संवर्द्धन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

आत्मनिर्भर बनने के लिए हमें ढेरों चुनौतियों से पार पाना होगा। भारत के विभिन्न आयामों के मध्य चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। कुछ चुनौतियाँ स्वतंत्रता के बाद से चली आ रही हैं तो कुछ नव उदारवादी युग की ही देन हैं। सबसे पहली चुनौती तो निवेश की ही है। भारत में छोटे और मझोले उद्यमियों के पास अक्सर निवेश के लिए पूँजी ही नहीं होती। ऐसे में या तो उनके कारोबार नाकाम हो जाते हैं या वे शार्ट कट अपनाते हैं और यह शार्टकट अक्सर चीन तक पहुँचता है। भारत अभी भी 130 करोड़ की विशाल जनसंख्या को अपनी ताकत नहीं बना सका है। जबकि इसमें संभावनायें बहुत हैं। आधी से अधिक जनसंख्या 25 वर्ष से कम उम्र की है और 65% लोग 35 वर्ष से कम उम्र के युवा हैं। औसत जीवन आयु 69.7 वर्ष तक पहुँच गयी है किन्तु इस जनसंख्या में बेरोजगारी दर तेजी से बढ़ रही है, बेरोजगार युवा आज भटक रहे हैं जो अपराध और आतंकवाद की ओर बढ़ रहे हैं इन्हें उचित दिशा देना और आत्मनिर्भर भारत का संबल बनाना आज भारत के सम्मुख एक बड़ी चुनौती है।

भारत आज भी आर्थिक, शैक्षिक, भाषाई, सांस्कृतिक, प्रौद्योगिकी, राजनीतिक एवं संचार जगत में एक ऐसी विभाजन रेखा से बटी हुई है जिन्हें आत्मनिर्भरता की दिशा में जोड़ना एक बड़ी चुनौती है। इन विभाजनों के कारण एक राष्ट्र राज्य में अनेक राष्ट्र दिखाई देते हैं। एक अध्ययन द्वारा विकसित 'गिनी इंडेक्स आफ इंडिया' जो भारत में आय की असमानता का मापक है द्वारा दिये गये आंकड़े बताते हैं कि देश की 58% आय पर 1% धनी लोगों का अधिकार है और देश की 80.7% सम्पत्ति 10% धनी लोगों के हाथों में है। भारत में पूँजीपतियों की संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है। 2013 में भारत में कुल 9 अरबपति थे वहीं 2020 में उनकी संख्या बढ़कर 119 हो गई है तकनीकी उन्नयन के साथ स्वावलम्बी समाज की स्थापना भारत का लक्ष्य है। इस दृष्टि से कृत्रिम मेधा भारतीयों के लिए आत्मनिर्भरता के अवसर लेकर आई है। सूचना तकनीक में प्रशिक्षित युवाओं के लिए स्वयं उद्यमिता के नए द्वार खोलती है। नीति आयोग ने कृषि, स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम मेधा के प्रयोग की संभावना पर शोध हेतु जिस राष्ट्रीय योजना का निर्माण किया है, उसका उद्देश्य इन क्षेत्रों में मानवीय संसाधनों की कमी को पूरा कर इन्हें अधिक उत्पादक गुणवत्तायुक्त बनाना है।

अतः इस प्रकार से कहाँ जा सकता है कोविड-19 महामारी के बाद उत्पन्न स्थिति को देखते हुए माननीय प्रधानमंत्री ने आत्मनिर्भर भारत का जो मंत्र दिया उससे भारत में निर्यात विनिर्माण, तकनीक एवं संचार के क्षेत्रों में भारत के लिए एक अवसर के रूप में है। इसलिए आत्मनिर्भर भारत के लिए हम रणनीतियों का सहारा लेकर बेहतर भारत बनाने में चुनौतियों को अवसर में बदल सकते हैं। महामारी का यह संकट हो सकता है भविष्य के लिए एक अच्छा अवसर प्रदान करे।

### संदर्भ-सूची

1. योजना जुलाई 2020, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
2. भारत 2020, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
3. कुरुक्षेत्र जुलाई 2020, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
4. श्री नरेन्द्र मोदी, राष्ट्र के नाम संदेश आज तक, 12 मई 2020।
5. लाल, एस0एन0 भारतीय अर्थव्यवस्था, सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, शिवम पब्लिशर्स
6. इंडिया टुडे डॉट इन, 5 अगस्त 2019

\* \* \* \* \*

## कृषि आधारित उद्योगों की समस्याएँ एवं सुझाव

हीरलाल सिंह\*

**सारांश :** जब हम भारत के गाँवों के विकास की बात करते हैं, तो जाहिर तौर पर हमारा अर्थ गाँवों के ढाँचागत, आर्थिक और सामाजिक विकास से होता है। यह तभी सम्भव है, जब हम अपने जननी अर्थात् कृषि और कृषि आधारित उद्योगों को एक नया पहचान देंगे। कृषि प्रधान राष्ट्रों में कृषि आधारित उद्योगों का विकास एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन चुका है। सन्तुलित आर्थिक विकास और आधुनिकीकरण ने कृषि आधारित उद्योगों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। हलांकि इन उद्योगों से सम्बन्धित बहुत सी समस्याएँ हैं, जिनका समाधान करना आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही इनके तीव्र विकास पर विशेष बल दिया गया है। यह महसूस किया गया है कि ये उद्योग गरीबी और बेरोजगारी दूर करने एवं असमानताओं को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। योजना आयोग ने भी विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में इनके विकास की संस्तुति की है।

**प्रस्तावना :** भारत एक कृषि प्रधान देश है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ की 83.31 करोड़ जनसंख्या गाँवों में निवास करती है तथा कुल जनसंख्या का लगभग 52 प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर है। साथ ही अर्थव्यवस्था जनाधिक्य, कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते भार, छिपी हुई बेरोजगारी, व्यापक निरक्षरता, भूमि अपखण्डन एवं विखण्डन, गरीबों की भयावह स्थिति, अप्रयुक्त प्राकृतिक संसाधन, मानव शक्ति का कुसमायोजन, निम्न उत्पादकता, प्रति व्यक्ति निम्न आय, औद्योगीकरण की धीमी गति, आर्थिक कुचक्रों का जोर तथा अप्रयुक्त सामाजिक वातावरण व मनोवृत्ति के अभाव जैसी समस्याओं से ग्रसित है। उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध अनेक आधारभूत समस्याओं के निराकरण हेतु कृषि आधारित उद्योगों का विकास न केवल वांछनीय है, अपितु एक अपरिहार्य दशा है।

भूतकाल के साक्ष्य जिसमें ढाका की मलमल, बनारस व चन्देरी की साड़ियाँ आदि भारत के अतीत के ऐतिहासिक एवं औद्योगिक गौरव का वर्णन करते हैं। वर्तमान परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में भी भारतीय अर्थव्यवस्था में इन उद्योगों का महत्वपूर्ण योगदान है। स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने जोर देकर कहा था कि "हमारे सामने आज दिल्ली, मुम्बई तथा कोलकाता जैसे महानगरों के विकास का मुद्दा नहीं है, बल्कि हमें ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना है, जिससे गाँवों से शहरों की ओर होने वाले पलायन को रोका जा सके।" इस कार्य में कृषि आधारित उद्योगों का योगदान महत्वपूर्ण होगा। गाँवों में रोजगार के अवसर बढ़ाने व लोगों की आय बढ़ाने की दृष्टि से ये उद्योग प्रमुख हैं। योजना आयोग की रिपोर्ट में भी कहा गया है कि— "कृषि आधारित उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं, जिनकी कभी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।"

पर सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि कृषि आधारित उद्योगों को किस प्रकार परिभाषित किया जाये। संकुचित दृष्टि से हम कह सकते हैं कि कृषि उपज को कच्चे माल के रूप में प्रयोग करके व्यापारिक स्तर पर वस्तु के निर्माण करने वाले उद्योग कृषि आधारित उद्योग कहलाते हैं। यूनाइटेड नेशन्स इन्डस्ट्रियल डेवलपमेंट ऑर्गेनाइजेशन (UNIDO) ने भी इसी ढंग से कृषि को परिभाषित किया है। अर्थात् वे उद्योग कृषि आधारित उद्योगों की श्रेणी में आते हैं, जो कृषि उपज को कच्चे माल के रूप में उपयोग कर व्यापारिक स्तर पर वस्तुओं का निर्माण करते हैं। विस्तृत अर्थ में वे उद्योग कृषि आधारित उद्योग कहलाते हैं, जिनपर कृषि निर्भर है और वे कृषि पर निर्भर हैं।

**कृषि आधारित उद्योगों के प्रकार :-** उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कृषि आधारित उद्योगों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, श्री गणेश राय पी.जी. कॉलेज, डोभी, जौनपुर, उ.प्र.

1. कृषि आधारित उद्योग,
2. कृषि सहायक उद्योग,
3. कृषि से सम्बन्धित उद्योग,
4. कृषि सेवा उद्योग।

**1. कृषि आधारित उद्योग :-**कृषि उद्योग की यह प्रथम श्रेणी है। इन उद्योगों को देखने से स्पष्ट होता है कि ये उद्योग पूर्ण रूप से कृषि पर आधारित होते हैं। यदि इन उद्योगों को कृषि का आधार प्रदान न हो तो ये उद्योग नष्ट हो जायेंगे। कहने का अर्थ यह है कि ये उद्योग कृषि से कच्चा माल प्राप्त करते हैं, जैसे, आटा मिल, दाल मिल, तेल मिल, फल सब्जी प्रशोधन उद्योग, शक्कर उद्योग, मषाला उद्योग, तम्बाकू एवं प्राकृतिक सुगंधित उत्पाद, प्राकृतिक गोंद, जूट उत्पादन, पेपर एवं पुट्टा मिल, सर्जरी के लिए प्रयुक्त रुई पट्टियाँ, प्राकृतिक रबर एवं उत्पाद उद्योग इत्यादि। इस श्रेणी के उद्योग पूर्ण रूप से कृषि पर निर्भर होते हैं। ये उद्योग कृषि से ही कच्चा माल प्राप्त करते हैं। ये उद्योग कृषि के उत्पादन पर निर्भर होते हैं और कृषि उत्पादन कम या ज्यादा होने पर ये उद्योग प्रभावित होते हैं।

**2. कृषि सहायक उद्योग :-**ये उद्योग अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर रहते हैं। ये उद्योग ऐसी सामग्री का निर्माण करते हैं, जिनकी कृषि को आवश्यकता पड़ती है और जिनका कृषि में प्रयोग किया जाता है, जैसे, कृषि उपकरण निर्माण, सिंचाई के उपकरण निर्माण के उद्योग इत्यादि। हम यह तो नहीं कह सकते कि इन उद्योगों के बिना कृषि का कार्य नहीं चल सकता, किन्तु कृषि सहायक उद्योगों द्वारा निर्मित उपकरण के प्रयोग से न केवल कृषि के उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि कृषि अपनी उन्नति की ओर अग्रसर होती है।

**3. कृषि सम्बन्धित उद्योग :-**कृषि उद्योगों की यह तृतीय श्रेणी है। इस श्रेणी के अन्तर्गत उन समस्त उद्योगों का समावेश किया जाता है, जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से किसी ना किसी तरह से सम्बन्ध रखते हैं जैसे, रेशम के कीड़े पालन उद्योग, पशुओं का खाद्य पदार्थ निर्माण उद्योग, कोल्ड स्टोरेज, वेयर हाउस इत्यादि।

**4. कृषि सेवा क्षेत्र :-**कृषि सेवा क्षेत्र में तात्पर्य ऐसे उद्योगों से है, जो कि उत्तम कृषि के सेवा संगठन के रूप में कार्य करते हैं। इसके अन्तर्गत भूमि विकास, जल प्रबन्ध, भूमि स्रोत, अनाज की थ्रेसिंग, ट्र्यूबवेल, ड्रीलिंग, कृषि कल पूर्जा की मरम्मत, फसल सुरक्षा सेवा आदि उद्योग आते हैं।

**कृषि आधारित उद्योगों की समस्याएं :-**कृषि आधारित उद्योगों के विकास हेतु सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं फिर भी ये उद्योग कुछ आधारभूत समस्याओं से ग्रसित हैं, जिनके कारण वांछित प्रगति नहीं कर पा रहे हैं। कृषि आधारित उद्योगों की कुछ प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं—

1. कृषि आधारित उद्योगों के समक्ष विद्यमान सबसे पहली समस्या कच्चे माल की है, जो उन्हें उचित समय एवं उचित मूल्य पर नहीं मिल पाता है। इस समस्या के कई पहलू हैं जैसे— इन उद्योगों द्वारा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में कच्चा माल खरीदा जाता है। जिसके लिए उन्हें अधिक कीमत चुकानी पड़ती है। स्थानीय व्यापारियों द्वारा इन उद्योगों को घटिया माल उपलब्ध कराया जाता है। अच्छे किस्म का माल निर्यात करने के साथ ही आयातित कच्चा माल आयातित नहीं किया जाता है। परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर उत्पादन व्यय बढ़ जाता है, वहीं दूसरी ओर निम्न कीस्म का माल निर्यात होता है।

2. इन उद्योगों के विकास में दूसरी प्रमुख समस्या वित्त की कमी है। इन उद्योगों के लाभ कम तथा अस्थिर होते हैं, अतः ये लाभों के द्वारा पूंजी विस्तार नहीं कर पाते हैं। इसके साथ ही चूंकि इनके पास स्थायी परिसम्पत्तियां कम होती हैं। इसलिए ऋण प्राप्त करने के लिए प्रतिभूति का अभाव रहता है। व्यापारिक बैंक भी इन्हें असुरक्षित ऋण प्रदान करने से डरते हैं। परिणामस्वरूप उद्यमियों को बनिये, महाजन, सेठ इत्यादि से ऊँची ब्याज दर पर ऋण लेकर उद्योगों को संचालित करना पड़ता है।

3. इन उद्योगों की एक समस्या यह है कि इनमें उत्पादन की तकनीक बहुत पुरानी है। परिणामस्वरूप इनके द्वारा उत्पादित वस्तु लागत ऊँची तथा किस्म निम्न श्रेणी की होती है। यद्यपि वर्तमान में वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप उत्पादन तकनीक, उपकरणों आदि में अत्यधिक उन्नति हुई है, परन्तु अभी तक इस वैज्ञानिक उन्नति का प्रभाव हमारे देश में कृषि आधारित उद्योगों पर नहीं पड़ा है। यहां के उद्यमी पुरानी उत्पादन तकनीक एवं उपकरणों से ही काम चला रहे हैं।



4. कृषि आधारित उद्योगों की विपणन से सम्बन्धित समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है। समय के साथ लोगों की रुचियों में परिवर्तन, विज्ञापन एवं प्रचार के सीमित साधन, वृहद उद्योगों की अत्याधुनिक मशीनों से निर्मित वस्तुओं से प्रतियोगिता इत्यादि के कारण इन उद्योगों को अपने उत्पादन बेचने में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

5. इन उद्योगों की एक समस्या यह है कि इन्हें बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता करनी पड़ती है और उसमें यह अपने आपको प्रायः असमर्थ पाते हैं। बड़े पैमाने के उद्योगों में वस्तुएं आधुनिक विधियों द्वारा निर्मित की जाती हैं। इन्हें अनेक प्रकार की बचत एवं लाभ प्राप्त होते हैं और कुछ सरकारी संरक्षण भी प्राप्त होते हैं। परिणाम स्वरूप इनके द्वारा उत्पादित वस्तु की किस्म श्रेष्ठ व लागत कम होती है। साथ ही ये उद्योग अपनी वस्तु की बिक्री हेतु इतना अधिक विज्ञापन करते हैं कि उपभोक्ताओं के दिमाग में इनकी वस्तु की श्रेष्ठता की बात घर कर जाती है। इस प्रकार कृषि आधारित उद्योगों के लिए इसकी प्रतियोगिता में टिक पान सम्भव नहीं होता है।

6. कृषि आधारित उद्योगों द्वारा जिन वस्तुओं का निर्माण किया जाता है, उनमें एकरूपता का अभाव होता है। प्रमाणिकता के अभाव में वस्तुओं की उचित कीमत निश्चित न होने से उनकी संगठित रूप से बिक्री नहीं हो पाती। एकरूपता की कमी के कारण उपभोक्ताओं को भी कठिनाई होती है और उद्यमी भी वस्तुओं के गुण में सुधार नहीं कर पाते हैं।

7. कृषि आधारित उद्योगों को अपने व्यवसाय से सम्बन्धित उचित सूचना समय पर नहीं मिल पाती है। साथ ही इन्हें परामर्श देने वाली संस्थाओं की भी कमी है। परिणामस्वरूप में उद्योग उन्नति नहीं कर पाते हैं।

8. भारत में श्रम एवं उत्पादन पर लगाए गए कुछ कानून ऐसे हैं, जो कि कृषि आधारित उद्योगों पर वृहद उद्योगों के समान ही भार डालते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि आधारित उद्योगों को अनेक प्रकार के स्थानीय करों का भी सामना करना पड़ता है, जिससे इनकी लागत बढ़ जाती है, जिसका विक्री पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। करों के सम्बन्ध में भी सम्पूर्ण देश में एक नीति का पालन नहीं किया जाता है।

9. कृषि आधारित उद्योगों के सामने एक महत्वपूर्ण एवं गम्भीर समस्या रूग्णता की है। मार्च 2004 के अन्त में 3.1 लाख कृषि आधारित औद्योगिक इकाईयां रूग्णता की शिकार थी। इनमें सर्वाधिक इकाईयां बिहार में एवं दूसरे स्थान पर उत्तर प्रदेश है।

10. सरकार ने कृषि आधारित उद्योगों के विकास हेतु जो संस्थाएं स्थापित की हैं, उनका रवैया पूर्णतः नौकरशाही का है। नवीन उद्यमियों को कोई भी कार्य करवाने के लिए इन संस्थाओं के अनेक चक्कर काटने पड़ते हैं, फिर भी उनका कार्य ईमानदारी के साथ नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप नवीन उद्यमी परेशान होकर उद्योग स्थापित करने का विचार त्याग देते हैं।

11. हमारे देश में स्थापित अधिकांश कृषि आधारित उद्योगों के स्वामियों (प्रबंधकों) को प्रबन्ध एवं संगठन का सामान्य ज्ञान भी नहीं है। वे न तो अपने कार्य की समुचित योजना तैयार करते हैं और न ही उत्पाद लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं। ऐसे में इन उद्योगों की सफलता की आशा करना व्यर्थ है।

12. उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त कृषि आधारित उद्योगों को अन्य अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उद्योगों के मध्य आपसी संगठन का अभाव, परिवहन साधनों की कमी, निर्यात की उपेक्षा, अनुसंधान की कमी इत्यादि अनेक ऐसी समस्याएं हैं, जो इनके कुशल संचालन एवं विकास में बाधक है।

**कृषि आधारित उद्योगों की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव :-** यद्यपि देश की केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारें कृषि आधारित उद्योगों की समस्याओं की ओर उचित ध्यान दे रही हैं, लेकिन भावी विकास की दृष्टि से इन उद्योगों के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं –

1. कृषि आधारित उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति हेतु विशेष प्रयास किए जाने चाहिए। हालांकि सरकार ने इन उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति की व्यवस्था की है; किन्तु यह व्यवस्था प्रभावी नहीं बन पाई है। अतः सर्वप्रथम इस व्यवस्था को प्रभावी बनाया जाना चाहिए। साथ ही एक बफर स्टॉक तैयार करना चाहिए, जिससे कच्चा माल समय पर उपलब्ध हो सके। आयात की सुविधाओं में भी वृद्धि की जानी चाहिए।

2. इस प्रकार के उद्योगों को बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋणों के लिए जमानत तथा गारंटी की जरूरत पड़ती है। परिणामस्वरूप बहुत कम उद्योग इन ऋणों का लाभ उठा पाते हैं। अतः इन बैंकों को कृषि आधारित उद्योगों

की सम्भावित साख शक्ति के अनुसार ऋण देना चाहिए। इसके साथ ही अन्य संस्थाओं को भी अधिक उदार शर्तों पर इन उद्योगों को ऋण प्रदान करना चाहिए।

3. भविष्य में कृषि आधारित उद्योगों की उत्पादन तकनीक में सुधार के लिए उचित ध्यान दिया जाना चाहिए, तभी ये उद्योग वृहद् उद्योगों की प्रतियोगिता का सामना करते हुए उपभोक्ताओं को अच्छी किस्म की वस्तुएं प्रदान कर सकेंगे। इस दृष्टि से सरकार को यह व्यवस्था करनी चाहिए कि प्रत्येक कृषि आधारित उद्योग इकाई अपनी वार्षिक आय का 10 प्रतिशत एक विशेष कोष में हस्तान्तरित करे और इसका उपयोग आधुनिकीकरण कार्यक्रम में करें। साथ ही यह कोष कर मुक्त होना चाहिए।

4. चूंकि कृषि आधारित उद्योग व्यक्तिगत रूप से कार्य करते हैं, जिसके कारण इन्हें उत्पादन, विपणन, वित्त इत्यादि अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः यदि देश में औद्योगिक सहकारी समितियों की स्थापना हो जाए तो इनमें से अनेक समस्याएं स्वतः समाप्त हो जायेंगी।

5. जहां तक सम्भव हो सके, विशाल एवं कृषि आधारित उद्योगों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए कागज उद्योग में लुग्दी बनाने का कार्य कृषि आधारित उद्योग क्षेत्र को तथा कागज बनाने का अधिकार विशाल उद्योग क्षेत्र को सौंपा जाना चाहिए।

6. कृषि आधारित उद्योगों की उत्पादकता बढ़ाने और वस्तुओं की किस्म में सुधार करने की दृष्टि से समय-समय पर अनुसंधान कार्यक्रमों की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

7. कृषि आधारित उद्योगों की वस्तुओं की मांग में वृद्धि करने के लिए यह आवश्यक है कि ये नवीनतम डिजाइन तथा उच्च किस्म की वस्तुएं बनाये। इस हेतु सरकार वस्तुओं के लिए विभिन्न कोटि व श्रेणी का निर्धारण कर सकती है तथा उन पर 'सील' लगाने की व्यवस्था की जा सकती है। बशर्ते की 'सील' केवल उच्च किस्म की वस्तु पर ही लगायी जाए।

8. कृषि आधारित उद्योग— प्रदर्शनियों का अधिकाधिक आयोजन किया जाना चाहिए। इन प्रदर्शनियों को केवल बड़े नगरों तक ही सीमित न रखकर देश के विभिन्न भागों में लगाया जाना चाहिए, जिससे उपभोक्ता इन उद्योगों के उत्पादनों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकें।

9. कृषि आधारित उद्योगों के विकास के लिए यह आवश्यक है कि इन उद्योगों से सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए उचित शिक्षण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि वे आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का सहजता से प्रयोग कर सकें। इस हेतु गांवों एवं कस्बों में प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिए।

10. इन उद्योगों के समक्ष एक महत्वपूर्ण समस्या विपणन की आती है। इस दिशा में सहकारी विपणन को अपनाने में सुधार लाया जा सकता है। इसके साथ ही सरकार को विपणन संगठन भी बनाना चाहिए जो कि कृषि आधारित उद्योगों की वस्तुओं की बिक्री में मदद करे। देश के विभिन्न भागों में प्रदर्शनियों का आयोजन भी इस दिशा में उल्लेखनीय है।

11. कृषि आधारित उद्योगों के लिए पर्याप्त मात्रा में सलाहकार फर्मों की व्यवस्था की जानी चाहिए, जो इन उद्योगों की स्थापना करने, विकास करने और इनमें लगी मशीनों इत्यादि के सम्बन्ध में अपना परामर्श दे सकें।

12. देश में तीव्र तथा सही दिशा में औद्योगीकरण हेतु यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम कृषि आधारित उद्योगों को विकास के लिए चुना जाए। इसके अन्तर्गत ऐसे उद्योगों पर सबसे पहले ध्यान देना होगा, जिनमें विकास की अधिक सम्भावनाएं हैं, जो सक्षम ढंग से उत्पादन कर सकते हैं तथा बड़े उद्योगों के साथ जिनका समन्वय किया जा सकता है।

**निष्कर्ष :-** उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि कृषि आधारित उद्योगों का भारत जैसे देश के लिए जहाँ की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है, का आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। हालांकि इन उद्योगों से सम्बन्धित बहुत सी समस्याएं हैं, जिनका समाधान किया जाना आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सरकार ने स्वतंत्रता के बाद से ही इनके तीव्र विकास हेतु विशेष बल दिया है। यह महसूस किया है कि ये उद्योग गरीबी एवं बेरोजगारी दूर करने एवं असमानताओं को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। देश की प्रथम औद्योगिक नीति 1948 में भी कृषि आधारित उद्योगों के महत्व पर प्रकाश डाला गया था। वर्तमान में भी इन उद्योगों की उन्नति एवं विकास हेतु सरकार विभिन्न प्रकार के

राजकोषीय, मौद्रिक तथा प्रशासनिक प्रयास कर रही है, जिससे की आने वाले समय में ये उद्योग अर्थव्यवस्था में अपना उचित स्थान ग्रहण कर देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम होंगे।

#### संदर्भ-सूची

1. Chand : Need for development of Agro Industrial Economy, Khadi Gramodyog, vol. XIX No, I, Oct. 1972, P.22.
2. Industrial India, 1979, P.05.
3. Prasad, B. : Co-operative Finance and Agro Industrial development in India Capital Publishing House, Delhi, 1998, P.26.
4. D.R. Gadgil, The Industrial Evolution of India, P.148.
- दत्त एवं सुन्दरम; भारतीय अर्थव्यवस्था, 2018, रामनगर, नई दिल्ली।
- एम०आर० कुलकर्णी, औद्योगिक विकास, नेशनल बुक ऑफ इण्डिया, पृ. 1-24.
- एन० सन्याल आदि, भारतीय चीनी उद्योग समस्याएँ और मुद्दे, योजना, अप्रैल 2008.

\* \* \* \* \*

## जनजातीय समाज में रोजगार की अवधारणा का अध्ययन

सपना सिंह\*

समान्यतया विकास के सम्बन्ध में लोक अवधारणा है कि वह ढाँचागत सुविधाओं के निर्माण तक सीमित है। किन्तु विकास शब्द मात्र बुनियादी ढाँचा के निर्माण करने मात्र तक सीमित नहीं है। यह शब्द सर्वांगिण विकास, संतुलित विकास जैसा विस्तार लिए हुए है। इसमें शिक्षा, रोजगार, आवागमन के संसाधन, संचार के साधनों का विकास होते हुए भी नगरीकरण का भाव नहीं होना चाहिए। यहाँ संसार के अन्य भागों से संबंध बढ़ाने पर भी संस्कृति का ह्रास न होने पाए या अपसंस्कृति का आगमन न हो यह ध्यान रखना आवश्यक है। पर्यावरण की रक्षा, वनों की रक्षा की चिन्ता करते समय भाव यह होना चाहिए कि वन और उनमें रहने वाली जनजातियाँ एक दूसरे के पूरक हैं। इन सभी भावों में तालमेल बनाते हुए जनजातियों को दरिद्रता और आभाओं के दुष्कर से निकालना, उनकी संस्कृति का संरक्षण करते हुए शेष संसार से सम्बन्ध बनाना, सभी सुविधाओं तक पहुँच बनाने पर भी पर्यावरण क्षरण न होने पाए तभी सही विकास मान्यता पा सकता है।

जनजातियों की सर्वाधिक हानि औपनिवेशिक काल में हुई। इनका अत्यधिक शोषण हुआ जो परिपाटी बनकर अभी तक प्रभावी है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के नाम पर जनजातियों को वनों से दूर किया गया तथा सस्ते मजदूर बनाकर शोषण आरम्भ किया गया। व्यवस्थापकों ने न केवल जनजातियों का शोषण किया बल्कि प्राकृतिक संसाधनों का भी शोषण किया जिनके फलस्वरूप पर्यावरणीय असंतुलन सामने आया। वन संरक्षण, पर्यावरण रक्षा के नाम पर विभिन्न कानून बनाकर इन जनजातियों को अपनी संस्कृति तथा मूल से दूर किया गया। जबकि ये जनजातियाँ पारिस्थितिकीय तन्त्र की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये प्रकृति से इतना ही लेते हैं जिससे पारिस्थितिकीय तन्त्र का ह्रास न हो, जितना प्राकृतिक रूप से संवर्धित होता है। ये उतना ही प्राप्त करते हैं जिससे उसका संरक्षण होता रहता है। सच्चे अर्थों में यही प्राकृतिक संसाधनों का दोहन है अन्यथा तो अन्य समुदाय प्रकृति का शोषण कर रहे हैं। ब्रिटिश शासन के पूर्व जनजातियाँ प्राकृतिक संसाधनों के ऊपर स्वामित्व एवं प्रबंधन के निर्बाध अधिकारों का उपभोग करती थी। औपनिवेशिक शासन के अधीन अधिकाधिक जनजातियाँ क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया। उपनिवेश स्थापित करने वाले देशों ने अपना स्वार्थ पूर्ण करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों को अपने कब्जे में ले लिया और फिर उन संसाधनों का शोषण किया और इस काम में यही जनजातियाँ जो उक्त संसाधनों के मूल स्वामी थे उनका प्रयोग सस्ते श्रमिकों, बंधुआ मजदूरों के रूप में किया। भारत में औद्योगिकरण का आरम्भ तथा खनिजों की खोज ने जनजातीय क्षेत्रों को बाहरी जगत के लिए खोल दिया। जनजातीय नियंत्रण का स्थान राजकीय नियंत्रण द्वारा ले लिया गया। जबकि इससे पूर्व जनजातियों का अन्य समुदायों से संबंध गहरा नहीं था किन्तु खराब भी नहीं था। जैसे वन्य उत्पादों के विपणन हेतु वे नगर अथवा ग्रामों में जाना और वहाँ से वस्त्र या अन्य ऐसी आवश्यक सामग्रियाँ क्रय करना या प्राप्त करना जो वन में नहीं प्राप्त हो सकती थी, इस प्रकार के क्रियाकलापों द्वारा संबंध बने हुए थे। यदा-कदा जनजातियों को राजकीय सेवा में मजदूरों के रूप में या अन्य प्रकार के मजदूरों के रूप में काम करने के भी उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। परन्तु इस प्रकार के संबंधों से उनके अधिकारों को बाधा नहीं पहुँचाई गई। इस प्रकार से औपनिवेशिक काल में लगाये गये कानूनों के कारण जनजातियों की कभी न समाप्त होने वाली विपन्नता का कालक्रम आरम्भ हुआ। स्वतंत्रा के पश्चात् विकास प्रक्रिया के साधनों के रूप में भूमि एवं वनों पर दबाव बढ़ता गया। इसका परिणाम भूमि पर से स्वामित्व अधिकारों की समाप्ति के रूप में सामने आया। संरक्षित वनों एवं राष्ट्रीय उद्यान की अवधारणाओं ने जनजातियों में अपनी सांस्कृतिक जड़ों

\* शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा

से कटने का भाव उत्पन्न किया और वे अपनी आजीविका के सुरक्षित साधनों से वंचित होते गए। हमारा संविधान कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर बल देता है किन्तु इस विरोधाभास का हल निकालने का उपाय न विचारा गया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ सरकारी अधिकारियों ने इन्हें बलपूर्वक वन क्षेत्रों से निकाला है। कई बार या संघर्ष न्यायालय के समक्ष भी लाया गया जहाँ निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें कोई अनुतोष प्राप्त हुआ हो। इसके कारण ये भूस्वामी, महाजन, ठेकेदार तथा अधिकारी जैसे शोषणकर्ता वर्गों के चंगुल में या ऋणग्रस्तता के भंवर में फँसते गए।<sup>1</sup> ऐसी स्थिति में अत्यावश्यक है कि सरकार इस पर न्याय दे कि कानून की आड़ लेकर शोषक वर्ग इनका शोषण न करने पाये तथा विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से वे अभावों के दुष्चक्र से निकलने में सफल हों।

2011 की जनगणना के अनुसार जनजातियों की जनसंख्या का 60 प्रतिशत भाग निरक्षर है।<sup>2</sup> जनजातीय अंधविश्वास व पूर्वाग्रह, अत्यधिक निर्धनता सामान्य जीवनोपयोगी वस्तुओं का अत्यधिक अभाव, शिक्षकों का अभाव, शिक्षा हेतु अन्य सुविधाओं का अभाव आदि ऐसे कारण हैं जो जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा के विस्तार को बाधित करते हैं। शिक्षा के प्रसार के द्वारा जनजातियों को विकास प्रक्रिया में वास्तविक भागीदार बनाया जा सकता है। शिक्षा द्वारा ही इन्हें अकुशल श्रमिकों के स्तर से निकाला जा सकता है। शिक्षा से न केवल उन्हें कुशल कारीगर बनाया जा सकता है अपितु प्रबंधन और प्रशासनिक सेवाओं में अथवा अकादमिक सेवाओं में भी भागीदार बनाया जा सकता है। संविधान में जनजातियों को आरक्षण की व्यवस्था अवश्य की गई है परन्तु उनका सही लाभ उन्हें नहीं प्राप्त हो सका है जिसके कारणों को समाप्त करना अत्यावश्यक है। शिक्षा ही उनको छोटी परिधि से निकालकर विश्व परिधि में सम्मिलित कर सकती है। आज भी ऐसी घटनाएँ दिखाई देती हैं जिसमें घर से दूर जाने पर अक्सर टगे जाते हैं या न्यून पारिश्रमिक पर श्रम करते पाये जाते हैं। शिक्षा से ही इन्हें शेष विश्व से जोड़ा जा सकता है तभी वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना आकार ले पाएगी। शिक्षा से ही जागरूकता आ सकती है या अच्छे-बुरे का बोध सकता है। वैश्वीकरण के इस युग में अत्यावश्यक है कि कोई अपसंस्कृति इनके बीच न आने पाए इसका ज्ञान शिक्षा से ही संभव है। अपने बीच व्याप्त अंधविश्वास और कुप्रथाओं को त्यागते समय विदेशी दुष्प्रभावों में न पड़ जाएँ और अपनी मूल संस्कृति को न भूल जाएँ, अपने संस्कार न छोड़ दें, तभी विकास की सही अवधारणा पुष्ट होगी।

स्वतन्त्रता के पश्चात् विकास प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु भारी उद्योगों एवं अर्थव्यवस्था के केन्द्रीय क्षेत्र (core sector) का विकास रहा है। परिणामस्वरूप विशाल इस्पात संयंत्र, ऊर्जा परियोजनाएँ तथा बड़े बाँध निर्माण हुये, जिन्हें अधिकतर जनजातीय निवास वाले क्षेत्रों में स्थापित किया गया। इन क्षेत्रों में खनन संबंधी गतिविधियाँ भी तीव्र होती गयी। इन परियोजनाओं के स्थापना एवं संचालन हेतु सरकार द्वारा जनजातीय क्षेत्रों की भूमि का विशाल पैमाने पर अधिग्रहण किया गया जिससे जनजातीय लोगों के विस्थापन की समस्याएँ पैदा हुई। छोटानागपुर, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश के जनजातीय संकेंद्रण वाले क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित हुए। सरकार द्वारा प्रदान की गई नकद क्षतिपूर्ति की राशि व्यर्थ के कार्यों में अपव्यय हो गयी। ब्रिटिश उपनिवेशकाल में बना अधिग्रहण कानून, भूअर्जन अधिनियम 1895 में क्षतिपूर्ति के प्रावधान पुनर्वास के लिए अपर्याप्त थे। औद्योगिकीकरण के कारण विस्थापित जनजातियों को बसाने के समुचित प्रयासों के अभाव में ये जनजातियाँ या तो निकट की मलिन बस्तियों में रहने लगी या अकुशल श्रमिकों के रूप में अन्यत्र प्रवास कर गई। नगरीय क्षेत्रों में इन्हें जटिल मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है क्योंकि ये यांत्रिक जीवन शैली तथा नगरीय जीवन मूल्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में समर्थ नहीं हो पाती जिस कारण अनेक सामाजिक समस्याएँ भी जन्म लेती हैं। वर्तमान में जनजातियों को चाहे वे जनजातीय क्षेत्रों में ही निवास कर रहे हों अथवा अन्यत्र, आर्थिक पिछड़ेपन एवं असुरक्षित आजीविका के साधनों के कारण कई स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जनजातीय क्षेत्रों में मलेरिया, क्षय रोग, पीलिया, हैजा तथा अतिसार जैसी बीमारियाँ व्याप्त रहती हैं। जनजातीय लोग आज भी लौह तत्व की कमी, रक्तल्पता, उच्च शिशु मृत्यु दर तथा निम्न जीवन प्रत्याशा, कुपोषण आदि समस्याओं से ग्रस्त हैं चाहे वे जनजातीय क्षेत्रों में हो या पलायन करके किसी नगर की मलिन बस्ती में निवास कर रहे हों। अतः शिक्षा एवं जागरूकता कार्यक्रम के साथ आजीविका के साधनों तथा रोजगार उपलब्ध कराना अपरिहार्य है अन्यथा समस्या का निवारण असंभव है।

प्रकृति एवं पर्यावरण क्षय, विशेषतः वनों के सिकुड़ने व संसाधनों की घटती मात्रा के कारण सर्वाधिक हानि जनजातीय स्त्रियों की हुई है। उनकी स्थिति पर गंभीर प्रभाव पड़े हैं। खनन व उद्योग हेतु जनजातीय क्षेत्रों का

खुलना तथा उनका व्यवसायीकरण होना जनजातियों के स्त्री-पुरुषों को बाजार अर्थव्यवस्था के हथकंडों का शिकार बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। इससे उपभोक्तावाद तथा महिलाओं को उपभोग की वस्तु समझने की अवधारणा को मजबूती मिली है। अतः यह बहुत आवश्यक है कि इन्हें स्वावलम्बी बनाया जाए तथा ऐसे रोजगार के लिए प्रेरित किया जाए तथा सुविधा उपलब्ध कराई जाए जिससे वे अपने जीवन मूल्यों को संरक्षित करते हुए भी अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकें।

जनजातियों की परम्परागत संस्थाओं एवं कानूनों का आधुनिक संस्थाओं के साथ टकराव होने से जनजातियों में पहचान के संकट की आशंका पैदा हुई है। जनजातिय भाषाओं व उपभाषाओं की विलुप्ति भी एक विचार का विषय है, क्योंकि यह सुनिश्चित क्षेत्रों में जनजातीय पहचान के क्षरण का संकेत है। विकास का अर्थ कदापि मनुष्य की तीन न्यूनतम अनिवार्य आवश्यकताओं तक सीमित नहीं है अपितु सर्वांगीण विकास की आवश्यकता पूर्ण होना ही यहाँ प्रासंगिक अर्थात् शोध का उद्देश्य है।

इस प्रकार की नीतियाँ तैयार हों कि वनों का संवर्धन और जनजातियों का संरक्षण दोनों एक-दूसरे के लिए पूरक सिद्ध हों। इन कार्यों में शासन के विभिन्न विभाग सामंजस्य बनाकर महती भूमिका निभा सकते हैं। पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, जनजातीय कार्य मंत्रालय, राज्यों के वन विभाग, वन निगम, समाज कल्याण विभाग, ग्राम्य विकास अभियन्त्रण इत्यादि महत्वपूर्ण विभाग हैं। अन्य विभाग जो ढांचागत क्षेत्रों के निर्माण से जुड़ी है जैसे— विद्युत, लोक निर्माण उनमें भी सामंजस्य की आवश्यकता है। निर्माण से जुड़ी योजनाएँ जिनकी स्थापना अधिकांशतः जनजातीय क्षेत्रों में हुई है। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक था कि विस्थापन कम से कम हो या उनके पुनर्वास की भी योजनाएँ साथ में बने।

जनजातियों की अर्थव्यवस्था उन्नत समाज की अर्थव्यवस्था से भिन्न है। जनजातियों में परिवार का आर्थिक स्वरूप सामूहिक स्वरूप के साथ इतना अधिक घुलमिल जाता है कि इन दोनों को पृथक् करना कठिन होता है। परिवार के सदस्यों को भूख से बचाने और उनकी रक्षा करने का उत्तरदायित्व प्रायः समुदाय का होता है। फलस्वरूप आर्थिक जीवन के इस स्वरूप पर परिवार तथा समुदाय को एक-दूसरे से अधिकाधिक सहयोग करना पड़ता है। आर्थिक व्यवस्था सामाजिक जीवन की वह इकाई है जिसके आसपास सारा जीवन ही खप जाता है। आधुनिक काल में अन्य समाज की तरह जनजातीय समाज में भी बिखराव का भाव उत्पन्न हुआ है और पुरानी परंपराओं तथा संस्थाओं को हानि हुई है। विभिन्न जनजातियाँ रोजगार के लिए अपने समुदाय से कट कर पलायन की ओर प्रवृत्त हुई हैं।

**जनजातीय क्षेत्रों में आय सृजन के स्रोत एवं साधन :** आर्थिक जीवन मानव की भौतिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित है। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित क्रियाएँ आर्थिक जीवन का एक अंग है। किसी भी भारतीय जनजाति की अर्थव्यवस्था को किसी भी स्थिति में भी एक विशेष वर्ग के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। यह वास्तविकता है कि एक जनजाति के लोग जीविकोपार्जन के लिए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक साधनों का उपयोग करते हैं। वे जंगल में उत्पन्न विभिन्न वस्तुओं के संग्रह को कृषि या स्थानान्तर कृषि के साथ समावेशित करते हैं अर्थात् केवल खाद्य संग्रह के साथ-साथ कृषि, लोगों की जटिल अर्थव्यवस्था की अपना प्राथमिकता है और यह उनके वर्गीकरण को विशेषीकृत करता है।

डी0एन0 मजूमदार<sup>3</sup> ने भारतीय जनजातियों का उनके जीवन और पेशे अर्थात् आय सृजन के स्रोत एवं साधन के आधार पर निम्नांकित वर्गीकरण किया है— 1. शिकार एवं संग्रह की अवस्था 2. स्थानान्तर या झूम कृषि, लकड़ी काटना, सामग्री उत्पादन, कत्था आदि 3. व्यवस्थित कृषक, जो मुर्गी तथा जानवर रखते हैं, बुनाई तथा कातना जानते हैं तथा टीले पर कृषि करना जानते हैं। मजूमदार ने मदन के साथ दूसरा वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

1. खाद्य संग्रह वर्ग
2. कृषि वर्ग
3. खोदकर स्थानान्तर कृषि वर्ग
4. दस्तकारी वर्ग
5. चरागाही वर्ग
6. औद्योगिक श्रमिक वर्ग।



दुबे ने भारतीय जनजातीय आर्थिक प्रणाली को पहले दो भागों में विभक्त किया है— 1. महत्त्वपूर्ण एवं 2. अर्द्ध महत्त्वपूर्ण और अन्त में आर्थिक व्यवस्था के निम्नांकित प्रकार प्रस्तुत किये हैं—

#### जनजातीय आर्थिक प्रणाली

क्रम संख्या		आर्थिक व्यवस्था
1.	महत्त्वपूर्ण	(क) भोजन संग्रह की अवस्था (ख) अव्यवस्थित प्राथमिक कृषि का अवस्था (ग) व्यवस्थित प्राथमिक कृषि की अवस्था
2.	अर्द्ध महत्त्वपूर्ण	(घ) पशुचारी (ङ) निर्दिष्ट काश्तकारी एवं उद्योग से जीविकोपार्जन करने वाली जनजातियाँ (च) वे जनजातियाँ, जिनके आय का मुख्य स्रोत अपराध है।

अटल ने इन जनजातियों की अर्थव्यवस्था को चार भागों में बांटा है यथा —

1. भोजन संग्रह, 2. खाद्य संग्रह के साथ स्थानान्तर खेती, 3. व्यापार 4. खानाबदोश जीवन तथा पशुचारण अवस्था।

जे०एच० हटन के अनुसार भारतीय जनजातियों में तीन प्रकार की आर्थिक व्यवस्थाएँ हैं—

1. वन से खाद्य सामग्री एकत्र करने वाली जनजातियाँ, 2. पशुचारण अवस्था वाली जनजातियाँ, 3. कृषि, शिकार, मछली एवं उद्योग पर अश्रित जनजातियाँ।

हटन के वर्गीकरण के पश्चात् समय-समय पर होने वाले सेमिनारों में सात प्रकार संशोधित वर्गीकरण प्रस्तुत किये गये जो इस प्रकार हैं—

1. पहाड़ पर खेती करने वाले, 2. वन में शिकार करने वाले, 3. समतल कृषक, 4. सरल कारीगर, 5. पशुचारी 6. कृषि एवं गैर कृषि श्रमिक और 7. अस्पतालों, कार्यालयों, कारखानों आदि में काम करता हुआ कुशल और सफेद पोश नौकरी करने वाला वर्ग।

इस प्रकार प्रत्येक जनजाति में रोजगार की अलग-अलग अवधारणा है। प्रत्येक की अपनी जीवन पद्धति है। अपना वातावरण और परिस्थितियाँ हैं, जो उन्हें विभिन्न अर्थ व्यवस्था में रखे हुए हैं। एक प्रकार की अर्थव्यवस्था किसी भी जनजाति द्वारा नहीं अपनायी गई। अतः उनके आजीविका के रोजगार के सम्बन्ध में अलग धारणाएँ हैं। उनका वर्णन इस प्रकार हैं—

**वन में शिकार करने वाला वर्ग :** वन में शिकार करने वाली जनजातियों की आजीविका के तीन प्रमुख साधन हैं—

1. खाद्य संग्रह
2. शिकार
3. मछली मारना

ये जनजातियाँ मध्यप्रदेश के विभिन्न भागों में निवास करती हैं। मध्यप्रदेश में शहडोल जिले में जनजातियों का बाहुल्य है और एक तरह से इसे जनजातीय जिला घोषित कर दिया है। संख्या के हिसाब से जंगल में शिकार करने वाली जनजातियों की संख्या बहुत अधिक है। इन जनजातियों की अवस्था एवं जीवन सरल और सादगीपूर्ण है। ये लोग समूहों में झोपड़ी बनाकर रहते हैं। ये आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र होना चाहते हैं।

**आजीविका के साधन 'वन' :** इन जनजातियों की आजीविका का मुख्य साधन जंगल हैं। वे जंगल में उत्पन्न होने वाले विभिन्न पदार्थों का संग्रह, शिकार एवं मछली मारते हैं। जंगल से प्राप्त होने वाले पदार्थ ऋतुओं के अनुसार बदलते रहते हैं। ये लोग कुछ निश्चित जंगली क्षेत्रों में इच्छित भोजन की सामग्री में इधर-उधर भ्रमण करते हैं। उनका व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन शिकार, जड़ संग्रह, फल, कसेली, फूल, पत्ते, कन्द, रेशा-रस्सी बनाने के लिए कच्चा माल, बांस, मधु, मोम आदि की प्राप्ति के लिए व्यवस्थित किया जाता है। जहरीली जड़ें भी जल प्रपात के पानी में धोकर उबाली जाती हैं और उन्हें खाने योग्य बनाया जाता है।

**उपकरण और औजार :** आजीविका के लिए शिकार करने वाली जनजातियाँ स्थानीय उपकरणों यथा लोहे के सिरो युक्त खोदने वाली लकड़ियाँ, लोहे की जंगली धुरिया, मिट्टी अथवा काठ के बर्तन, बांस की टोकरियाँ एवं छड़ी का उपयोग भोजन संग्रह में करते हैं। शिकार के लिए कुत्तों का भी उपयोग करते हैं। मछली पकड़ने के लिए उनके पास रस्सी के फन्दे, बांस की कांटेदार बर्छी, भाले एवं छड़ियाँ रहती हैं। हाथ से शिकार करना आसान है। शिकार में उपयोग आने वाले उपकरण स्वनिर्मित होते हैं। इन्हें साप्ताहिक बाजार अथवा पड़ोसी जनजातियों से भी लिया जाता है।

**कार्य विधि :** जंगली उत्पादों को प्राप्त करने के लिए जनजातियाँ सामूहिक रूप से कार्य करती हैं। प्रातःकालीन भोजन अथवा कलेवा करने के पश्चात् वे स्त्री-पुरुष दिन का कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। महिलाएँ जड़ों को खोदने में माहिर होती हैं। जंगली फलों और पत्तियों का भी संग्रह करती हैं। जनजातियों द्वारा प्रायः मधु संग्रह का कार्य किया जाता है। संग्रह के पूर्व ऊँचे वृक्षों अथवा ऊँची चट्टानों पर मधुमक्खियों का छत्ता खोजा जाता है। यह कार्य मार्च और मई महीने में किया जाता है। मधु संग्रह एक आदमी द्वारा किया जाता है और कुछ व्यक्ति उसकी सुरक्षा के लिए नीचे खड़े रहते हैं।

**निष्कर्ष :** अभी हमने अनुसूचित जनजाति के पारम्परिक आजीविका के साधनों का वर्णन किया। किन्तु आधुनिक युग में कुछ साधन तो पुराने हैं, किन्तु कुछ नये साधनों का भी समावेश हो गया है। कृषि कार्य में उन्नत औजारों का प्रयोग होने लगा है। इसी प्रकार अन्य साधनों का भी विकास हुआ है।

**1. कृषि :** कृषि इनका परम्परागत व्यवसाय है। कुछ अपनी भूमि के स्वामी हैं जो स्वयं के लिए कृषि करते हैं वहीं कुछ कृषक श्रमिकों के रूप में गाँव के या क्षेत्र के सम्पन्न कृषकों के यहाँ कार्य करते हैं। यहाँ पारिश्रमिक के रूप में नकद राशि या अनाज मिल जाता है। किसी परिस्थिती में पूर्व में लिए गए ऋण को चुकाने के लिए भी खेतीहर मजदूर के रूप में कार्य करते रहते हैं जो बन्धुआ मजदूर सदृश है। श्रमकार्य दैनिक न होकर ऋत्विह होने के कारण स्थिरता का अभाव पाया जाता है।

**2. श्रमकार्य (मजदूरी) :** ये गैर कृषि श्रमिक के रूप में गाँव अथवा आस-पास के क्षेत्र में सड़क, भवन, पुलिया निर्माण, वन निगम के कार्य जैसे तेन्दू पत्ता संग्रहण, जड़ी-बूटी संग्रहण, इत्यादि कार्य करते हैं। इन कार्यों में स्त्री व बच्चे भी भाग लेते हैं। कई बार अपने मूल निवास स्थान से दूर भी जाकर मजदूरी किया करते हैं।

**3. वन्य सामग्री संग्रहण :** वनों से प्राप्त सामग्री में महुआ फूल प्रमुख है। ये महुए की शराब बनाते हैं तथा विक्रय करते हैं। इसके अलावा ये लकड़ी, लाख, तेन्दूपत्ता, जड़ी-बूटी, शहद, गोंद इत्यादि इकट्ठा कर बाजार या गाँव में बेचते हैं। बाँस से वस्तुएँ बनाकर बेचने का भी कार्य करते हैं। किन्तु इन सबसे पर्याप्त अर्जन नहीं हो पाता। अधिक से अधिक तेल, नमक, गुड या वस्त्र इत्यादि ही अर्जित धन से ले पाते हैं।

**4. शासकीय सेवाएँ :** संविधान के अनुसार अनुसूचित जनजाति को शासकीय सेवाओं में आरक्षण प्राप्त है जिसके कारण कुछ पदों पर इनकी पहुँच हुई है किन्तु आज भी आरक्षण का वास्तविक लाभ जो संविधान निर्माताओं की कल्पना में था नहीं मिल सका है। शासक के पास ऐसे कार्यक्रमों का अभाव है जिससे वे शासकीय सेवाओं के योग्य बन सकें।

**5. लघु व्यवसाय :** जैसे लकड़ी बेचना, टोकरी, सूप, चटाई, पंखा बनाना, वन्य सामग्री एवं प्रतिबंधित सामग्रियों का विक्रय, पशुपालन इत्यादि।

जनजातीय क्षेत्रों में उपर्युक्त परम्परागत रोजगार के साधनों का विकास तो करना ही होगा साथ में नई सेवाओं का सृजन भी करना होगा।

1. कृषि सुधार योजनाओं द्वारा कृषकों की उपज तथा आय वृद्धि की जा सकती है। फलस्वरूप उत्पादन निर्यात जैसी सेवाओं से रोजगार वृद्धि हो सकती है जो गैर कृषक व्यक्तियों द्वारा कार्यान्वित की जा सकती है। रोजगार में वृद्धि निश्चित ही सेवा के नए क्षेत्रों में वृद्धि करती है जो कुछ नए रोजगार उत्पन्न करती है।

2. गैर कृषि श्रम में भी सुधार की आवश्यकता है। न्यूनतम पारिश्रमिक के अतिरिक्त जनजातीय क्षेत्रों में हुए स्थापना कार्यों में स्थाई सेवाओं में भी भागीदार बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए सरकार को आरक्षण के साथ कौशल विकास तथा शिक्षा पर भी ध्यान देना होगा।

3. **वन्य सामग्री संग्रहण** : आज भी वन विभाग तथा वन निगम जैसी शासकीय संस्थाओं के बावजूद जनजातियों को विशेष लाभ नहीं प्राप्त हो सका है। अतः विभिन्न कार्ययोजनाओं द्वारा संतुलन साधते हुए कार्यक्रमों का संचालन हो। बिना पारिस्थितिकीय संतुलन को हानि पहुँचाए अधिक से अधिक उपयोग हो तथा इसका लाभ जनजातियों को मिल सके।

4. शासकीय सेवाओं में जनजातियों की संख्या बढ़ाने हेतु आवश्यक है कि वे अधिक से अधिक संख्या में शिक्षित तथा योग्य बने। यह क्षेत्र ऐसे हैं जो जनजातियों की उन्नति के वास्तविक मापदण्ड है। जनजातीय क्षेत्रों में शासकीय सेवाएँ यथा शिक्षा, विनिर्माण, उद्योग इत्यादि में भागीदारी सुनिश्चित हो। कुछ लोगों की आय वृद्धि शेष लोगों के सामने सेवा क्षेत्र के नए अवसर उत्पन्न करती है और इस प्रकार से स्वरोजगार में वृद्धि होती है।

यहाँ जो लघु व्यवसाय का वर्णन किया है उसका सर्वाधिक महत्व है। उक्त लघु व्यवसायों को एक व्यवस्थित स्वरूप देना अत्यावश्यक है। महत्वपूर्ण कार्य जैसे टोकरी, चटाई, पंखा, लकड़ी के फर्नीचर इत्यादि निर्माण कार्यों को योजनाएँ बना कर व्यवस्थित व्यवसाय का रूप दिया जा सकता है। इन उत्पादित सामग्रियों का जनजातीय क्षेत्रों से अन्य क्षेत्रों को निर्यात किया जा सकता है।

इसी प्रकार पशुपालन का व्यवसाय भी व्यवस्थित हो। अभी भी जनजातीय क्षेत्रों का इस कार्य हेतु सही उपयोग नहीं हो सका है। भारत विश्व में सर्वाधिक दुग्ध उत्पादन करता है किन्तु वह भी देश की आवश्यकताओं की पूर्ति योग्य नहीं है। अनेक स्थानों को चारागाह के रूप में विकसित किया जा सकता है तथा कृषि क्षेत्रों द्वारा भी चारा उत्पादन किया जा सकता है। बंजर भूमि को भी इस कार्य हेतु विकसित किया जा सकता है और पशुपालन और दुग्ध उत्पादन एक उद्योग या विस्तृत और वृहद व्यवसाय के रूप में निर्मित किया जा सकता है। इसके लिए दुग्ध तथा दुग्ध पदार्थों को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने का तन्त्र खड़ा करना होगा। यह सहकारिता द्वारा संभव है अथवा पूंजी निवेश द्वारा भी किया जा सकता है। जहाँ इससे एक बड़ी संख्या में रोजगार उत्पन्न होंगे, वहीं लोगों की आय में वृद्धि भी होगी। एक अति महत्वपूर्ण विषय यह है कि जहाँ प्रत्यक्ष रूप से कुछ लोगों को रोजगार दिला सकता है, वहीं परोक्ष रोजगार भी प्राप्त हो सकते हैं।

#### संदर्भ-सूची

1. निरगुणे, वसन्त, मध्यप्रदेश का जनजातीय जगत, मध्यप्रदेश संदेश (मासिक), जनसम्पर्क संचालनालय, भोपाल, अगस्त 2010
2. शहडोल, जिला सांख्यिकीय विभाग, रिपोर्ट 2015 (सेन्सस 2011 पर आधारित)
3. मजूमदार, डॉ. डी.एन., रेसेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, 1990, पृ. 53
4. दुबे, श्यामाचरण, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1960, पृ. 23

\* \* \* \* \*

## नारी सशक्तिकरण का हल कौशल पर बल

ज्योति कुमारी\*

रोजगार युवा सशक्तीकरण की बुनियादी जरूरत है, जबकी भारत में खासकर युवाओं की बढ़ती बेरोजगारी चिंतित करने वाली है। वर्ष 2001 से 2011 के बीच भारत की 15 से 24 वर्ष की उम्र के युवाओं की आबादी दुगुनी हुई, लेकिन बेरोजगारी दर बढ़कर 17.6 प्रतिशत पहुंची। वर्ष 2001 में जहां 3.35 करोड़ युवा बेरोजगार थे, वहीं 2011 में यह तादाद 4.69 करोड़ पहुंच गई। भारत की बेरोजगारी दर, यूरोप को छोड़कर दुनिया में सबसे ज्यादा है। हमारे देश में 35.5 प्रतिशत युवा स्नातक बेरोजगारी हैं। हर साल पैदा होन वाले चार लाख इंजीनियरिंग डिग्रीधारकों में से दो लाख बेरोजगार रह जाते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर ऋणात्मक हो गई है। दिसंबर, 2015 के जारी आंकड़ों के अनुसार, कुल भारतीय बेरोजगारों में 25 प्रतिशत 20 से 24 वर्ष उम्र के हैं। 25 से 29 वर्ष उम्र के बेरोजगार 17 प्रतिशत हैं। इस तरह 20 साल से ज्यादा आयु वाले 14.30 करोड़ युवा आज नौकरी की तलाश में हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, उक्त आंकड़ों में आधी संख्या महिलाओं की है। बेरोजगारी में 10वीं-12वीं पास युवाओं की संख्या 2.70 करोड़ है, जबकि तकनीकी शिक्षा हासिल करने वाले 16 प्रतिशत युवा, बेरोजगारों की कतार में शामिल हैं। ग्रामीण युवाओं की बड़ी संख्या असमंजस की स्थिति में है कि किधर जाएं।

पर इस से इतर युवा भारत की एक आधुनिक तस्वीर यह भी है कि आज का भारतीय युवा जानकारियों का अनुपम भण्डार है। अपने विचार को व्यवहार में उतारने के लिए सिर्फ पांच घंटे सोकर काम करने वाले शहरी नौजवानों की खेप की खेप भारत में है। इसी नाते आज भारतीय युवा मानव संसाधन और प्रवासी युवा उद्यमियों की दुनिया भर में साख है। तकनीक में भारतीय युवाओं के हस्तक्षेप ने दुनिया के बीच भारतीयों की स्वीकार्यता बढ़ा दी है। आंकड़ा है कि वर्ष 2020 तक दुनिया के हर 10 स्नातक में से चार भारत और चीन में होंगे। देश के शिक्षा बोर्डों में ज्यादा प्रतिशत पाने वालों की सूची में लड़कियां, अब लड़कों से पीछे नहीं हैं। उड़ीसा के सुदूर गांव की आदिवासी लड़की भी अब महानगर में अकेली रहकर पढ़ने का हौसला जुटा रही है। दिल्ली की झोपड़पट्टी में रहकर बमुश्किल रोटी का इंतजाम कर सकने वाली बेवा मां के नन्हें बेटे के मात्र 25 साल की उम्र में जापान की कंपनी का महाप्रबंधक बनने को अब कोई अजूबा नहीं कहता। भारत की जनसंख्या दर घटी है। दहेज हत्या में कमी आई है। हमारे गांवों के खेतिहर मजदूर अब खेत मालिक की शर्तों पर काम करने को मजबूर नहीं है। बंधुआ मजदूरी का दाग मिट रहा है। ये सकारात्मक बदलाव है।

भारत में लगभग आधी आबादी नारी का है। किसी भी देश के समग्र विकास के लिए देश के समग्र जनसंख्या (कार्य योग्य जनसंख्या) का आर्थिक रूप आत्मनिर्भर होना आवश्यक है, पर भारत में नारी का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता का प्रतिशत बहुत कम है यानि महिलाओं का आर्थिक क्षेत्र में भागीदारी कम है जिसे हम इस तालिका से समझ सकते हैं—

\* शोध छात्रा, विश्वविद्यालय ग्रामीण अर्थशास्त्र एवं सहकारिता विभाग, तिलकामाझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

**तालिका-1**  
**भारत में कुल कामगार (जनगणना. 2011)**

जनसंख्या/ कामगार	संख्या		पुरुष	महिला
1	2	3	4	
जनसंख्या	कुल	1210569573	623121843	587447730
कामगार		481743311	331865930	149877381
कामगार का प्रतिशत		39.79	<b>53.26</b>	<b>25.51</b>
जनसंख्या	ग्रामीण	833463448	427632643	405830805
कामगार		348597535	226763068	121834467
कामगार का प्रतिशत		41.83	<b>53.03</b>	<b>30.02</b>
जनसंख्या	शहरी	377106125	195489200	181616925
कामगार		133145776	105102862	28042914
कामगार का प्रतिशत		35.31	<b>53.76</b>	<b>15.44</b>

अगर हम बिहार के कामगारों के प्रतिशत पर ध्यान देते हैं तो कुल जनसंख्या में कामगारों का प्रतिशत 19.10 है, वहीं ग्रामीण जनसंख्या का 20.20 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या का 10.4 प्रतिशत कामगार है।

अब कार्ययोग्य जनसंख्या और कार्यशील जनसंख्या पर ध्यान देना भी आवश्यक है। जिसे हम इस तालिका द्वारा समझ सकते हैं—

**तालिका-2**  
**कार्ययोग्य (जनगणना.2011)**

जनसंख्या	संख्या		पुरुष	महिला
1	2	3	4	
जनसंख्या	कुल	1210569573	623121843	587447730
18 से 62 उम्र वर्ग की जनसंख्या (कार्ययोग्य जनसंख्या)		647209372	330193190	317016182
प्रतिशत		53.46	<b>52.99</b>	<b>53.46</b>
कार्यशील जनसंख्या		481743311	331865930	149877381
प्रतिशत		39.79	<b>53.26</b>	<b>25.51</b>

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि पुरुषों में आर्थिक आत्मनिर्भरता या उपार्जन अधिक है। पुरुषों में कार्ययोग्य जनसंख्या जहाँ 52.99 प्रतिशत है पर कार्यशील जनसंख्या 53.26 प्रतिशत है जो यह दर्शाता है कि पुरुषों में 18 वर्ष से कम और 62 वर्ष से अधिक उम्र वाले लोग भी आर्थिक उपार्जन में लगे हुए हैं। वहीं अगर हम आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं आर्थिक उत्पादकता में महिलाओं की भागीदारी पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं जहाँ 53.46 प्रतिशत कार्ययोग्य जनसंख्या है, वहीं कार्यशील जनसंख्या केवल 25.51, जो यह दर्शाता है आधे से भी कम कार्ययोग्य महिलाएँ आर्थिक उपार्जन में लगे हैं। इस असमान तो दूर किये बिना न तो महिलाएँ सशक्त होगी न ही देश का समुचित विकास हो पाएगा।

युवा सशक्तीकरण के शासकीय प्रयास भी रंग ला रहे हैं। सरकारों को रोजगार, निवेश, उद्यम, ग्रामोद्योग, लघु सूक्ष्म उद्योग, ग्रामीण विकास, कृषि, खेल, शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी नीति व व्यवस्थाओं को युवाओं के लिए और

अधिक खोलना होगा। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने प्रशिक्षित युवाओं की वैश्विक जरूरत को देखते हुए मुद्रा बैंक, कौशल विकास मिशन, डिजीटल इंडिया, रूरल डिजीटल मिशन आदि के जरिए दूरदर्शी आगाज किया है। 1500 नई आई. टी. आई .5,000 कौशल विकास केन्द्र, 1120 करोड़ की परिव्यय से 14 लाख युवाओं को प्रशिक्षण –इस आगाज को युवा वर्ग द्वारा सकारात्मक अंदाज में लेते हुए और गति देने की जरूरत है, लेकिन शहरी रोजगार में निरंतर आती कमी को भी ध्यान में रखना होगा। भारत की युवा आबादी में एक बड़ा प्रतिशत किशोरियां हैं। उनकी अपनी विशेष जरूरतें चुनौतियां और आकांक्षाएँ हैं। उनके अनुकूल शासकीय निवेश व प्रशासनिक नीयत आवश्यक है।

ऐसे सरकार इस दिशा में प्रयासरत है। अपनी कार्यशील जनसंख्या का गुणवत्तापूर्ण उपयोग करने के उद्देश्य से संग्रह सरकार ने वर्ष 2009 में राष्ट्रीय कौशल विकास नीति जारी की थी, इस नीति के अनुसार वर्ष 2022 तक बड़ी संख्या में गुणवत्तापरक संस्थाओं का सृजन करके उनके जरिए 15 करोड़ लोगों को प्रशिक्षित करके कुशल कामगार बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। शेष 35 करोड़ लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए केन्द्र सरकार के 18 विभागों द्वारा उपाय शुरू किए जाने थे। अब आंशिक बदलाव के साथ देश की युवा शक्ति को वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए कौशल एवं योग्यता उपलब्ध कराने हेतु राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन की शुरुआत तथा नई कौशल एवं उद्यमिता नीति की घोषणा प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 15 जुलाई 2015 को की। जननांकीकीय लाभांश के संदर्भ में कौशल विकास के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कौशल विकास एवं उद्यमिता विभाग का प्रोन्नयन कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय के रूप में 9 नवम्बर 2014 में किया गया था। इस मंत्रालय की पहल पर नेशनल मिशन फॉर स्किल डवलपमेंट (एमएमएसडी) की शुरुआत की गई है। देश में दक्ष एवं कुशल श्रमशक्ति की कमी को देखते हुए प्रधानमंत्री ने 15 जुलाई 2015 को पहले विश्व युवा कौशल दिवस के अवसर पर इस मिशन का उद्घाटन किया। इसके तहत वर्ष 2022 तक 40 करोड़ युवाओं को प्रशिक्षित करने हेतु क्षमताओं का सृजन किये जाने का लक्ष्य रखा गया।

कौशल विकास योजना-कौशल को प्रमाण और पुरस्कार द्वारा भारतीय युवाओं को परिणाम केन्द्रित कौशल प्रशिक्षण और उसके परिणामस्वरूप उन्हें रोजगार के लायक बनाया जा रहा है, एनएसडीसी द्वारा क्रियान्वित इस योजना के द्वारा 24 लाख लोगों को प्रशिक्षण दिया जाना है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय कौशल विकास निगम की स्थापना एक सोसायटी के रूप में 6 जून 2013 को की गई। यह देश में कौशल एवं शिक्षा के क्षेत्र में सार्वजनिक-निजी भागीदारी का पहला उदाहरण है, जिसमें निजी क्षेत्र का हिस्सा 51 प्रतिशत तथा शेष 49 प्रतिशत का नियंत्रण भारत सरकार के अधीन है। अनुदान और प्रोत्साहन प्रदान करने, अहम भूमिका निर्वहन करने वाला यह निगम 21 उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों और असंगठित क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित कर रहा है।

**कौशल विकास योजना से महिलाओं का विकास :** कौशल विकास योजना का लक्ष्य महिलाओं की उन्नति, विकास और सशक्तीकरण सुनिश्चित करना है। इसका उद्देश्य महिलाओं के विकास के लिए सकारात्मक, आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों के माध्यम से ऐसा अनुकूल माहौल तैयार करना है जिससे महिलाएँ अपनी क्षमता को साकार कर सकें और शिक्षा रोजगार समान पारिश्रमिक एवं सामाजिक सुरक्षा का लाभ उठा सकें। महिलाओं में कौशल विकास को बढ़ावा देने के लिए प्रशिक्षण कार्य क्रम केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा चलाए जा रहे हैं। सरकार ने कई विभागों और संस्थाओं को प्रशिक्षण कार्यक्रम से जोड़ा है यह विभाग महिलाओं में कौशल विकास के प्रशिक्षण के साथ उन्हें रोजगार प्रदान करेगा। इस कार्यक्रम के तहत महिलाओं को बैंकिंग कोर्स, सिलाई-कटाई, कम्प्यूटर प्रशिक्षण, नर्सिंग, व्यूटिपार्लर, मशरूम उत्पादन, हस्तशिल्प आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है इस कार्यक्रम के तहत रुचि के अनुसार काम का प्रशिक्षण दिया जाता है सरकार इन योजनाओं का प्रचार-प्रसार भी तेजी से कर रही है ताकि अपनी बहु-बेटियों को तकनीकी प्रशिक्षण देकर उन्हें सशक्त किया जा सकें और आत्मनिर्भर बनाया जा सकें। इस योजना की अब तक की उपलब्धियों को इन सारणीयों द्वारा देखा जा सकता है-



## तालिका-3

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत प्राप्त लघु अवधि प्रशिक्षण एवं रोजगार

विवरण	पंजीयन	प्रशिक्षण रत	प्रशिक्षित	मूल्यांकित	उत्तीर्ण	प्रमाण पत्र निर्गत	नौकरी मिला
भारत	786464	1750	784714	668007	607503	605015	0
बिहार	42724	0	42724	38188	34060	33911	0
पटना	4790	0	4790	4072	3619	3619	0

## तालिका-3(बी)

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत प्रशिक्षण संस्थान एवं इससे जुड़ी संस्था

विवरण	ट्रेनिंग सेन्टर	ट्रेनिंग पार्टनर	जॉब रॉल
भारत	4838	110	222
बिहार	202	25	45
पटना	434	126	110

## तालिका-4

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत प्राप्त दीर्घ अवधि प्रशिक्षण एवं रोजगार

विवरण	पंजीयन	प्रशिक्षण रत	प्रशिक्षित	मूल्यांकित	उत्तीर्ण	प्रमाण पत्र प्राप्त	नौकरी प्राप्त
भारत	2286614	30700	2255914	2059473	1827345	1791012	839836
बिहार	155847	1245	154602	140373	120766	117971	32350
पटना	12322	86	12236	11188	9975	9813	3227

## तालिका-4(बी)

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत प्रशिक्षण संस्थान एवं इससे जुड़ी संस्था

विवरण	ट्रेनिंग सेन्टर	ट्रेनिंग पार्टनर	जॉब रॉल
भारत	7717	2193	231
बिहार	434	126	110
पटना	23	11	23

## तालिका-5

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत प्राप्त दीर्घ अवधि प्रशिक्षण एवं रोजगार

विवरण	पंजीयन	प्रशिक्षण स्तर	प्रशिक्षित	मूल्यांकित	उत्तीर्ण	प्रमाण पत्र प्राप्त	नौकरी प्राप्त
भारत	3124040	38126	3085914	2756085	2456962	2423453	848871
बिहार	122141	1126	111015	101378	85976	83330	32350
पटना	17112	86	17026	15260	13594	13432	3227

## तालिका-5(बी)

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत प्रशिक्षण संस्थान एवं इससे जुड़ी संस्था

विवरण	ट्रेनिंग सेन्टर	ट्रेनिंग पार्टनर	जॉब रोल
भारत	8461	2249	330
बिहार	240	106	88
पटना	50	32	46

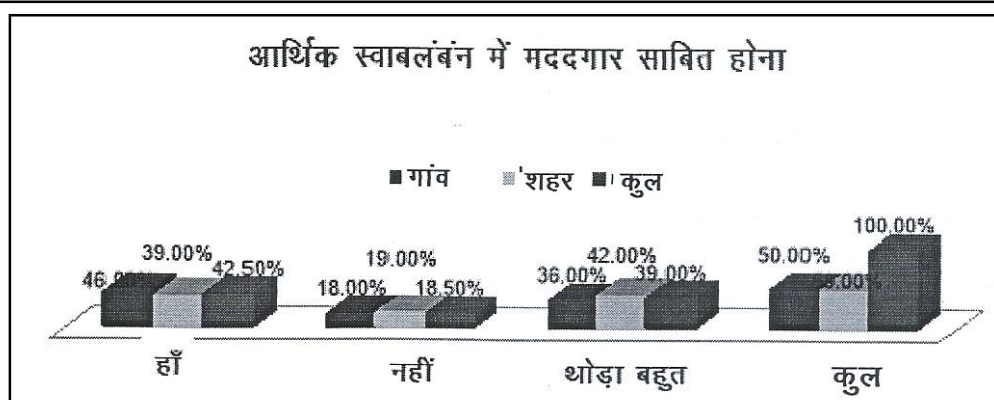
इन आकड़ों से यह पता चलता है। यह योजना अपने लक्ष्य की ओर तो बढ़ रही है। पर गति संतोष जनक नहीं है।

कौशल विकास योजना से संबंधित अपने शोध कार्य के लिए बिहार के पटना जिले दो ब्लॉक पटना सदर और फुलवारी शरीफ के शहरी एवं ग्रामीण इलाकों के 200 प्रशिक्षित महिलाओं से लिए गए साक्षात्कार से प्राप्त परिणामों के संख्यात्मक विश्लेषण के आधार पर प्राप्त आकड़ें निम्नलिखित हैं—

## तालिका-6

निवास स्थान एवं इस योजना का उत्तरदाताओं के आर्थिक स्वावलंबन में मददगार साबित होना

निवास	आर्थिक स्वावलंबन में मददगार साबित होना			कुल
	हाँ	नहीं	थोड़ा बहुत	
गाँव	46 (46.00%)	18 (18.00%)	36 (36.00%)	100.00 (50.00%)
शहर	39 (39.00%)	19 (19.00%)	42 (42.00%)	100.00 (50.00%)
कुल	85 (42.50%)	37 (18.50%)	78 (39.00%)	200 (100.00%)



यहाँ 46.60 प्रतिशत गाँव में तथा 39 प्रतिशत शहर में रहने वाले लोग मानते हैं कि यह योजना आर्थिक स्वावलंबन में मददगार हो रहा है वहीं 36 प्रतिशत में रहने वाले और 42 प्रतिशत शहर में रहने वाले लोग इस योजना को आंशिक रूप से सफल मानते हैं।

#### तालिका- 7

शिक्षा का स्तर एवं योजना के प्रति उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति

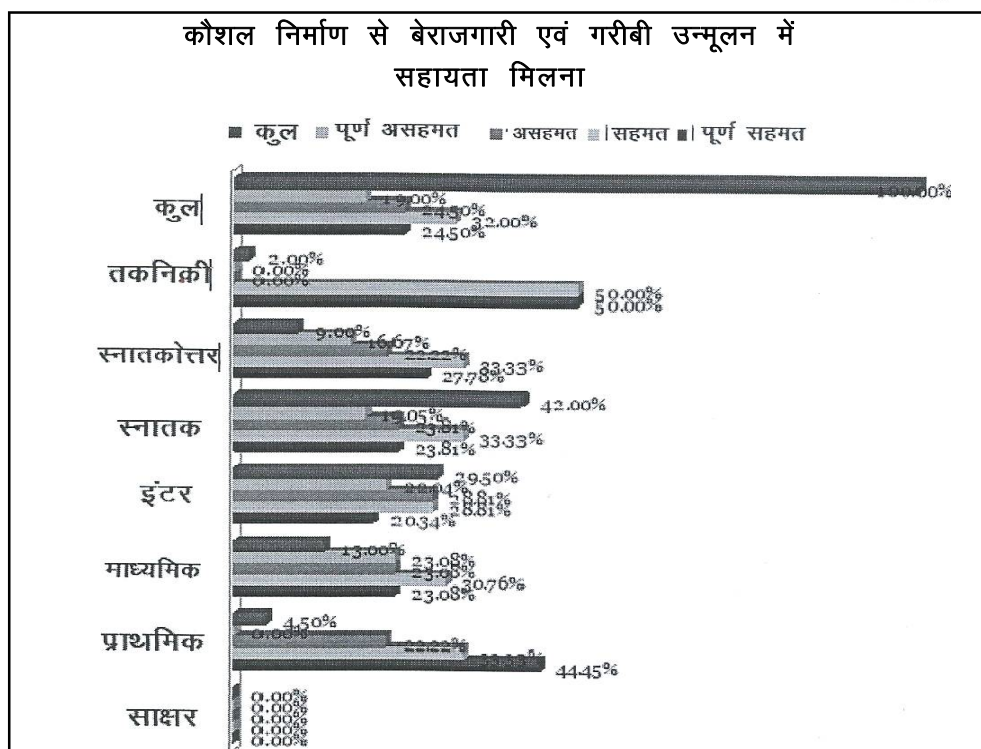
शिक्षा का स्तर	योजना के प्रति उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति					कुल
	बहुत ही सकारात्मक	सकारात्मक	नकारात्मक	बहुत ही नकारात्मक	कोई उत्तर नहीं	
साक्षर	0 (0.00%)	0 (0.00%)	0 (0.00%)	0 (0.00%)	0 (0.00%)	0 (0.00%)
प्रथमिक	3 (33.34%)	2 (22.22%)	1 (11.11%)	1 (11.11%)	2 (22.22%)	9 (4.50%)
माध्यमिक	12 (46.16%)	4 (15.38%)	4 (15.38%)	3 (11.54%)	3 (11.54%)	26 (13.00%)
इंटर	30 (50.85%)	18 (30.51%)	6 (10.17%)	3 (5.08%)	2 (3.39%)	59 (29.50%)
स्नातक	22 (26.19%)	25 (29.76%)	12 (14.28%)	6 (7.14%)	19 (22.63%)	84 (42.00%)
स्नातकोत्तर	4 (22.22%)	6 (33.33%)	2 (11.12%)	1 (5.55%)	5 (27.78%)	18 (9.00%)
तकनीकी	1 (25.00%)	2 (5.00%)	1 (25.00%)	0 (0.00%)	0 (0.00%)	4 (2.00%)
कुल	72 (36.00%)	57 (28.50%)	26 (13.00%)	14 (7.00%)	31 (15.5%)	200 (1000.00%)

कुल लोग में 30.00 प्रतिशत लोग का इस योजना के प्रति दृष्टिकोण बहुत ही सकारात्मक था, और 28.50 प्रतिशत लोगों का सकारात्मक। कुल मिलाकर 64.50 प्रतिशत लोग इस योजना को अच्छा मानते हैं। वहीं 13.00 प्रतिशत लोगों के विचार इस योजना के प्रति नकारात्मक और 7.00 लोगों का बहुत ही नकारात्मक था और 15.50 प्रतिशत ने कोई उत्तर नहीं दिया।

## तालिका-8

शिक्षा एवं महिलाओं के कौशल निर्माण से बेरोजगारी एवं गरीबी उन्मूलन में सहायता मिलना

शिक्षा	कौशल निर्माण से बेरोजगारी एवं गरीबी उन्मूलन में सहायता मिलना				कुल
	पूर्ण सहमत	सहमत	असहमत	पूर्ण असहमत	
साक्षर	0 (0.00%)	0 (0.00%)	0 (0.00%)	0 (0.00%)	0 (0.00%)
प्राथमिक	4 (44.45%)	3 (33.33%)	2 (22.22%)	0 (0.00%)	9 (4.50%)
माध्यमिक	6 (23.08%)	8 (30.76%)	6 (23.08%)	6 (23.08%)	26 (13.00%)
इंटर	12 (20.34%)	17 (28.81%)	17 (28.81%)	13 (22.04%)	59 (29.50%)
स्नातक	20 (23.81%)	28 (33.33%)	20 (23.81%)	16 (19.05%)	84 (42.00%)
स्नातकोत्तर	5 (27.78%)	6 (33.33%)	4 (22.22%)	3 (16.67%)	18 (9.00%)
तकनीकी..	2 (50.00%)	2 (50.00%)	0 (0.00%)	0 (0.00%)	4 (2.00%)
कुल	49 (24.5%)	64 (32.00%)	49 (24.5%)	38 (19.00%)	200 (100.00%)



24.50 प्रतिशत महिलाएँ इस बात से पूर्ण सहमत हैं कि कौशल विकास से महिलाओं में बेरोजगारी कम हुई है एवं महिलाओं के आय में वृद्धि हुई है वहीं 32.00 प्रतिशत इस बात से सहमत नजर आए। वहीं 24.50 प्रतिशत इस तथ्य से असहमत एवं 19.00 प्रतिशत पूर्ण असहमति जताई। इस प्रकार कुल 56.50 प्रतिशत इस बात से सहमत एवं 43.50 प्रतिशत इस बात से असहमत दिखें।

कुल मिलाकर देखा जाए तो कौशल विकास से रोजगार के अवसर एवं स्वरोजगार दोनों बढ़ रहा है। पर यह रोजगार के माँग के अनुरूप नहीं हैं। रोजगार के इस गति से यदि अगर हम इस क्षेत्र में बढ़ेंगे तो कभी भी लक्ष्य के समीप नहीं पहुँच पाएँगे। अगर इस योजना द्वारा मुहैया कराये जाने वाले रोजगार के अवसर को तेजी से बढ़ाया नहीं गया तो बेरोजगारी की समस्या हमारे लिये ज्यों का त्यों बना रहेगा।

**निष्कर्ष—** कौशल विकास कार्यक्रमों में प्रदान किए जाने वाले कौशलों का निर्धारण वर्तमान आवश्यकताओं के साथ-साथ भविष्य में संभावनाओं को ध्यान में रखकर भी किया जाना चाहिए। ऐसा नहीं हो कि युवा किसी विशेष कौशल को सीखकर निकले, उसके बाद परिस्थितियों, तकनीक, नवाचार आदि के कारण सिखाए गए कौशल की उपयोगिता खत्म हो जाए। इसलिए प्रशिक्षण कार्यक्रम की डिजाइन पर नीति निर्धारकों का गहन चिंतन आवश्यक है। साथ ही अधिक से अधिक लोगों तक ये लाभ पहुँचाने और उचित गति प्रदान करने की आवश्यकता है। साथ ही यह महसूस किया गया कि महिलाओं के लिए कौशल विकास के विशेष प्रशिक्षण के साथ साथ सभी प्रशिक्षण में महिलाओं का स्थान सुरक्षित हो। इन योजनाओं के प्रति प्रशिक्षु के बीच सकारात्मक दृष्टिकोण है। पर इसमें विभिन्न स्तर पर सुधार की आवश्यकता है। यह देखा गया कि प्रशिक्षण देने वाली संस्थाएँ अपनी उपलब्धियों का गलत आकड़ा देकर अपनी प्रशिक्षण देने की अवधि का विस्तार ले लेते हैं। इनके द्वारा दिया जाने वाले आकड़े वास्तविकता से दूर होता है। अतः प्रशिक्षण देने वाली संस्था का चयन एवं उसके अवधि विस्तार के लिए जाँच एवं सत्यापन की प्रक्रिया सही होनी चाहिए। नहीं तो यह योजना भी आकड़ों के खेल में उलझ कर रह जाएगा और लोगों को इसका सही लाभ नहीं मिल पाएँगा।

**सुझाव :** कौशल विकास कार्यक्रम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उपलब्ध प्रशिक्षण विकल्पों से संबंधित समस्त जानकारी का व्यापक प्रचार-प्रसार हो। ग्रामीण-स्तर पर स्थानीय जनप्रतिनिधि सभाएँ बुलाकर "कौशल विकास कार्यक्रम के बारे में युवाओं को प्रेरित कर सकते हैं। गांवों के विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं सरकारी स्तर पर चल रहे रोजगार केन्द्रों द्वारा इस ओर कार्य किया जा सकता है। ये समय-समय पर कौशल विकास कार्यक्रमों की प्रकृति, उपलब्धता पंजीयन प्रक्रिया, क्षमता आदि संबंधित जानकारी उपलब्ध कराएँगे। रोजगार केन्द्र एक निर्देशन एवं परामर्श केन्द्र के रूप में भी विद्यार्थियों को अपनी अभिक्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम या कोर्स का चुनाव करने में उपयोगी हो सकते हैं। इसके लिए विशेषज्ञों की सेवाएं अंशकालीन -स्तर पर ली जा सकती है।

निजी भागीदारी प्रबंधन, संचालन तक सीमित न होकर प्रशिक्षण प्रदान करने की प्रक्रिया में भी अपनी विशेषज्ञता उपलब्ध कराएँ। सधन प्रशिक्षण को रोजगार प्राप्ति से जोड़ने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्लेसमेंट की प्रक्रिया से प्रशिक्षकों, संस्थाओं को भी जोड़ा जा सकता है। इसके लिए प्लेसमेंट बढ़ने पर प्रोत्साहन के मानदण्ड निर्धारित कर सकते हैं। संस्थाएं प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन रजिस्टर में आंकड़ें दर्ज करने तक सीमित न रखे इसके लिए संस्था का समयबद्ध मूल्यांकन, प्रमाणीकरण भी आवश्यक है एक बार किसी संस्था को वित्तीय स्वीकृति मिल जाती है, उसके बाद भी निर्धारित मानकों पर सतत मूल्यांकन होना चाहिए। गुणवत्तापूर्ण कौशल द्वारा रोजगार प्राप्ति बढ़ाने वाले प्रशिक्षकों, संस्थाओं को भी आर्थिक प्रोत्साहन मिलना चाहिए। प्रशिक्षुओं से कौशल विकास कार्यक्रमों, संस्थाओं के बारे में फीडबैक लिया जा सकता है। प्रशिक्षण प्रदान करने से पूर्ण प्रशिक्षण आवश्यकताओं का मूल्यांकन होना एवं प्रशिक्षण समाप्त के पश्चात् सीखे गए कौशल का मूल्यांकन एवं पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।

#### संदर्भ—सूची

1. जनगणना रिपोर्ट 2011
2. प्रधान मंत्री कौशल योजना वार्षिक रिपोर्ट 2017-18
3. प्राथमिक सर्वेक्षण (पटना जिला) रिपोर्ट 2018
4. योजना अक्टूबर 2015
5. ऑफिस ऑफ द रजिस्ट्रार जनरल रिपोर्ट

\* \* \* \* \*

## Employment Problems in India and Our Strategies

*Dr. Nikita Kumari\**

India's biggest economic asset is its biggest challenge: crores of youth. Two-thirds of India's 1.2 billion people are under 35 years of age. "India faces a serious challenge of finding jobs for a growing population over the next 35 years; Its economy can absorb less than half of new entrants into the labor market between 1991 and 2018.

Relaxation in working age is prescribed for large scale work in India. Between 2010 and 2030, the World Bank estimates that the population aged 15-59 will increase to over 200 million in India, while it is expected to decrease in many developed countries and China as well.

Growth of the working-age population, we obtain an estimate of the growth of the potential workforce. This is found to be 10.3 (that is 16.2-5.9) million a year for India between 2004-05 and 2011-12.

Since the 2000s, with the steady increase in the number of women and people enrolled in educational institutions, especially in rural areas, with the increasing demand for education, workers joining the labor force in rural India will also have high expectations from their jobs.

Promoting the development of 'lifelong learning systems': work content is dynamically changing in many industries with new technologies and new forms of enterprises. It is very difficult to estimate the number of jobs of any kind available in the future. It is also difficult to improve formal education quickly (which is a challenge for all countries).

Even large-scale skilling systems put skilled unemployed people at risk to produce large numbers of skilled individuals. (Such gaps are emerging in India).

The entire government's vision is necessary to create jobs: jobs cannot be left in the economy by the government. Jobs will emerge from the participation of many drivers in the economy - growth of enterprises, life-long learning systems and social security, as well as the quality of physical infrastructure and ease of doing business.

**INTRODUCTION & BACKGROUND :** India's biggest economic asset is its biggest challenge: crores of youth. Two-thirds of India's 1.2 billion people are under 35 years of age. This is double the total population of America. Unlike Japan, China and Europe, which have a working-age population peak, India is projected to become the world's largest. But the world's second most populous country is struggling to tap this demographic dividend. According to a report released by the United Nations Development Program (UNDP) on 27 April 2016, India will face employment problems in the future and there will be a shortage of jobs in the country in the next 35 years.

\* *Gandhian Thought, TMBU*



As suggested by UNDP, countries such as India with large income areas, large agricultural areas, and high rural populations for urban migration should focus on specific industries to generate more employment, especially in the manufacturing sector. The report states, 'The manufacturing base in India is still small, contributing only 15 pcs of GDP "India will face a serious challenge of finding employment for a growing population in the next 35 years; Its economy can absorb less than half of new entrants into the labor market between 1991 and 2013. Between 1991 and 2013, the working age increased in size to 300 million and among these people the Indian economy only employed 140 million. According to estimates, by 2050, around 280 million people will enter the job market in India.

According to statistics from the Ministry of Labor, about 1 million people enter the workforce every month in India, while others opt for further study. The population at a working age is scheduled to expand widely in India. Between 2010 and 2030, the World Bank estimates that the population in the age group of 15–57 will exceed 200 million in India, while it is expected to decrease in many developed countries and China. This is a huge opportunity and challenge for India. On the one hand, India can account for an additional share in the global labor supply in the coming years. India's young workers can produce more, consume more goods and bring the country to the status of economic superpower.

On the other hand, policy makers in India will find it difficult to generate employment for those entering the labor market. There are three aspects of the job challenge facing India. The first work is due to the increase in the age population. Given the rate at which demographic structures are changing, the largest additions to the youth population are coming from some of the poorest regions, including those in the northern and eastern belts, including Uttar Pradesh and Bihar.

Second, India is seeing a clear shift of its workforce away from agriculture. This shift would be due both to a "push" from low value-added agriculture and a "pull" of new opportunities in other sectors.

Third, since the 2000s, there has been a steady increase in the number of women and those enrolled in educational institutions, especially in rural areas. With the increasing demand for education, workers joining the labor force in rural India will also have very high expectations from their jobs.

Given such challenges, what is India's record about job creation? We have some evidence in this regard from the Employment and Unemployment Survey conducted by the National Sample Survey Organization (NSSO) and the Census of India. He suggests that between 2008-05 and 2011-12, the population in the age group 15-54 grew at a rate of 14.2 million per year. During the same period, the population of students aged 15 years or older grew at a rate of 5.9 million a year. Students do not become part of the workforce. Therefore, if we subtract the growth of students from the growth of the working-age population, we obtain an estimate of the growth of the potential workforce. It is found to be 10.3 (i.e. 16.25.9 million) per year for India between 2004-05 and 2011-12.

However, during the same period, the number of employees engaged in agriculture and allied activities declined at a rate of 4.4 million per year. Suppose workers moved away from agriculture demanded employment in industry and services. If so, the number of potential employees in industry and services in India grew at a rate of 14.7 (ie 10.3 + 4.4) million per year between 2004-05 and 2011-12. At the same time, the actual rate of employment in industry and services during the above period was only 6.5 million per year - or less than half the expected rate.

The mismatch between the supply of potential workers and the demand for them has been particularly high in the case of women. Given the relative absence of job opportunities, women, especially the urban educated, have been discouraged from entering the labor market. In 2012, the labor force to

population ratio (15 years and over) in terms of women was only 29% in India, compared to 64% in China. The quality of new jobs created in the country has not been high. During the late 2000s almost all new non-agricultural employment was added to India, an area characterized by relatively low wages and poor working conditions. The manufacturing sector, which has transformed labor markets the most in East Asia and China - has contributed modestly to job creation in India in recent times.

The employment problem in the country is also a reason behind the government's "Make in India" campaign, which aims to attract foreign investment in the manufacturing sector and India can reap the demographic dividend if the campaign succeeds. The government has realized the issue and the problem can be resolved if the government tries to create more manufacturing employment through programs like these. According to the report, China and India contributed 1 billion and 860 million workers in the Asia-Pacific region in 2015 with 62 billion workers respectively. India's challenge to provide wage employment is complex due to its large informal sector. While the informal economy employs large numbers of low-paid workers, it gives rise to many problems, including insufficient security for workers.

Increasing pay disparities in India, Indonesia, the Philippines, and Vietnam are the result of wide pay gaps between people with higher education and those with lower levels of schooling. "Without intervention, today's inequalities in education will become tomorrow's disparities in the distribution of wealth and widespread opportunities for human development," the report states.

Promoting the development of strong clusters and networks of small groups: There is a brief pattern of small and micro enterprises in India. Small and micro enterprises are desirable because they generate more employment per unit of capital, they enable citizens to generate employment for themselves and earn income with less state expenditure, and their development is widespread in all sectors and in many areas. May make development more inclusive. Small and micro enterprises can overcome limitations in developing their capabilities in accessing the market, acquiring resources, and organizing them into effective groups (geographic and virtual) and engaging on technology enabled platforms.

The quality of enterprise groups and cooperative associations in India is much weaker than in other countries, where small enterprises have provided the backbone of their rapid industrial development. Digital technology platforms and communication networks are becoming more accelerators for the empowerment of small and micro enterprises. In addition to easy terms for doing business, government policies should promote the formation of strong groups and networks. In many cases, large firm networks can have strong catalytic nodes.

Promoting the development of 'life-long learning systems': With new technologies and new forms of enterprises work content is dynamically changing in many industries. It is very difficult to estimate the number of jobs of any kind available in the future. It is also difficult to improve formal education quickly (which is a challenge for all countries). Even large-scale skilling systems put skilled unemployed people at risk to produce large numbers of skilled individuals. (Such gaps are emerging in India).

The formal education system should be supplemented with affordable and accessible, timely, modules for learning. Such modules can be developed and offered by private enterprises. Government support should be directed towards enterprises that dynamically offer their abilities to learn and present to skilled people, which results in continued employment, which pays for the number of skilled people Don't. can do. Develop a better social security system: In order to remain competitive in a dynamic environment, enterprises need the flexibility to adjust their workforce. They should be given flexibility so that they can develop in the long run and generate more employment. On the other hand, it is the

responsibility of the government to ensure the social and economic welfare of the citizens, and the inadequacy of stable jobs is already causing many problems.

These two requirements — flexibility for enterprises and an adequate safety net for citizens — can be met with better social security systems. Design of systems should also facilitate citizens to learn new skills so that they remain employable while changing jobs..

Promote the rapid use of technology as enabler: Digital technologies can provide greater access to small enterprises and also increase their productivity. They can enable the formation of platforms for enterprises, including large ones; They can facilitate the development and delivery of just-in-time, which are 'essential for learning; They can enable micro enterprises to access formal financial systems; And they can also enable better social security services delivery.

The entire government's vision is necessary to create jobs: jobs cannot be left in the economy by the government. Jobs will emerge from the participation of many drivers in the economy - growth of enterprises, life-long learning systems and social security, as well as the quality of physical infrastructure and ease of doing business. The silo approach will not produce increasingly necessary changes in the jobs ecosystem. They can also back-fire, e.g. Exclude many skill-certified individuals who cannot find jobs; Or concessions for flexibility to enterprises without providing social security that would give rise to social and political complexities.

Therefore employment generation policies should be coordinated at the top of the system, at the PMO level at the Center and at the level of Chief Ministers in states. Job creation should be a major goal, if not set, to create jobs at all levels to improve ecosystems in cities, in rural districts, in states and in the country with many tools. The quality of governance must be tested at all levels of the system - at the center, in the states, in the towns, and in the districts - with the potential to generate more employment in its jurisdiction.

Since job creation is the first priority for the country, job creation should be a key metric in performance score cards for governments at all levels. Governments at all levels must manage system improvements to enable the development of more enterprises, jobs and livelihoods. Implement best practices for advisory policy development and implementation: Many government ministries and departments should collaborate to improve the jobs ecosystem. Many stakeholders must also support changes in essential policies so that they can be implemented rapidly. The pace of employment now rests on improving and implementing the policies required for rapid creation of jobs in India. Content between stakeholders disrupts policymaking, and confusion among agencies delays their implementation.

Promoting the development of strong clusters and networks of small groups: There is a brief pattern of small and micro enterprises in India. Small and micro enterprises are desirable because they generate more employment per unit of capital, they enable citizens to generate employment for themselves and earn income with less state expenditure, and their development is widespread in all sectors and in many areas May make development more inclusive. .Small and micro enterprises can overcome limitations in developing their capabilities in accessing the market, acquiring resources, and organizing them into effective geographic and virtual groups and engaging on technology enabled platforms.

The quality of enterprise clusters and cooperative associations in India is much weaker than in other countries, where small enterprises have provided the backbone of their rapid industrial development. Digital technology platforms and communication networks are becoming more accelerating for the empowerment of small and micro enterprises. In addition to easy terms for doing business, government policies should promote the formation of strong groups and networks. In many cases, large firm

networks can have strong catalytic nodes Promoting the development of 'life-long learning systems': With new technologies and new forms of enterprises work content is dynamically changing in many industries. It is very difficult to estimate the number of jobs of any kind available in the future. It is also difficult to improve formal education quickly, this is a challenge for all countries.

Even large-scale skilling systems put skilled unemployed people at risk to produce large numbers of skilled individuals. Such gaps are emerging in India. The formal education system should be supplemented with inexpensive and accessible, modules are required to learn things on time. Such modules can be developed and offered by private enterprises. Government support should be directed towards enterprises that dynamically offer their abilities to learn and offer skills that result in continued employment, rather than to pay for numbers of skilled people who cannot be produced. Can. Develop a better social security system: In order to remain competitive in a dynamic environment, enterprises need the flexibility to adjust their workforce. They should be given flexibility so that they can develop in the long run and generate more employment. On the other hand, it is the responsibility of the government to ensure the social and economic welfare of the citizens and the inadequacy of stable jobs is causing social problems..

These two requirements — flexibility for enterprises and an adequate safety net for citizens can be met with better social security systems. The design of systems should also facilitate citizens to learn new skills so that they remain employable while changing jobs. Promote the rapid use of technology as enabler: Digital technologies can provide greater access to small enterprises and also increase their productivity. They can enable the formation of platforms for enterprises, including large ones; They can facilitate the development and delivery of just-in-time, which are 'essential for learning; They can enable micro enterprises to access formal financial systems; And they can also enable better social security services delivery.

For example, the 1.8 billion skills initiative was designed to leave high-school in the military of 10 million electricians, welders, retailers, electronics repairers and others. But only few candidates have got the job. Mr. Modi fired the minister in charge of the program, and his government is creating a new regulatory body to oversee the quality of training Massive low-skilled population of India. But his "Make in India" was not carried forward. Although his government has made some changes to simplify the tax code and reduce red tape, making it cumbersome for businesses to obtain various approvals, industrialization continues with demands for poor infrastructure and labor laws Manufacturing makes up just 17% of India's economic output, and most of it comes from small businesses and not sophisticated, export-oriented operations that can employ large numbers of youth..

As a result, India is losing to competitors. Global orders for low-cost clothing and shoes are moving from China to Bangladesh and Vietnam, the Indian government's economic survey warned in 2017, "The window of opportunity is narrow Modi's government is moving to a new approach: training candidates for jobs in their districts does not require migration. In non-industrial areas, this may mean positioning in automobile showrooms, mobile-phone stores and fast-food restaurants. Trainee. Establishment of small businesses like beauty salons is also being encouraged. But it remains to be seen whether any of this will be enough to change India's employment picture.

One in four people live below the poverty line in rural India. Since the introduction of the scheme in 2006, it has changed the nature of the rural labor market. This gave rural families the opportunity to earn a minimum income by obtaining a job card under this scheme. There are 12 crore job cards like

today. While the poor have used it to get out of poverty, the poor have used it as a way to increase their income by working in the age of thin people. MGNREGA creates livelihood opportunities for our fellow citizens and sets minimum wage limits for low income people, even in cities. But with such a high allocation for the scheme, a valid question is whether the government is getting a bang for its buck. The plan forces the government to offer work, but does not measure the productivity or sustainability of the work done so far. One of the complaints is about the slow pace of work. While there is no incentive for workers to move out for the same amount of time required to achieve wage rates, there is no incentive to complete work on time.

There are also administrative glitches. Panchayat committees are unable to meet for months - resulting in delayed acceptance of work. In 2015-16, with 10 days of work, only 10 percent of the 4.8 crore families were fully benefited. An even bigger question is whether sustainable rural jobs can be created by leaving rural households or allocating the neglected animal husbandry sector? More than 1.4 crore loans given under Mudra scheme ranged from Rs 50,000 to Rs 5 lakh (Kishor category) and more than Rs 19.6 lakh loans were more than Rs 5 lakh. This means that 'big loans' were only 1.45 per cent of the total loans given under the scheme. However, the Finance Department did not specify the number of persons availing a maximum of 10 lakh loans under the scheme. In addition, no data regarding total funds and loan repayments were revealed.

Investment in 'Make in India' is to facilitate, promote innovation, build the best in classroom infrastructure, make it easier to do business and enhance skill development. The total foreign direct investment (FDI) inflows between April 2014 and March 2017 (US \$ 180.99 billion) - 33% of cumulative FDI in India since April 2000. In 2015-16, FDI inflows crossed the \$ 50 billion mark in a financial year, for the first time. In 2016-17, FDI inflows stood at a record US \$ 60 billion, the highest record for the financial year to date. According to IMF World Economic Outlook (April 2017) and UN World Economic Situation Prospects 2017, India is the fastest growing major economy in the world, and is projected to remain so in 2017 and 2018. FDI policy and procedure have been simplified and liberalized. The major sectors opened for FDI include defense manufacturing, food processing, telecommunications, agriculture, pharmaceuticals, civil aviation, space, private security agencies, railways, insurance and pension and medical equipment.

Steps taken to improve ease of doing business include simplification and rationalization of existing regulations. As a result of measures taken to improve the country's investment climate, India has easily jumped 30 places from the World Bank to 100th rank in the Business Rankings according to the World Bank Group's Doing Business 2018: Improvements to create jobs report. It is inspired by reforms in the areas of starting a business, obtaining construction permits, obtaining loans, protecting minority investors, paying taxes, trading at borders, enforcing contracts and resolving insolvency.

**CONCLUSION :** Two-thirds of India's 1.2 billion people are under 35 years of age. "India faces a serious challenge of finding jobs for a growing population over the next 35 years; Its economy can absorb less than half of new entrants into the labor market between 1991 and 2018. As suggested by the UNDP, countries with high-income populations such as India, large agricultural areas and high rural to urban migration, should focus on specific industries to generate more employment, especially in the manufacturing sector. "In India, the manufacturing base is still small, contributing to employment of only 15pc of GDP and 11pc".

Between 1991 and 2013, the working age increased in size to 300 million and among these people the Indian economy only employed 140 million. According to estimates, by 2050, around 280 million people will enter the job market in India. The entire government's vision is necessary to create jobs: jobs cannot be left in the economy by the government. Jobs will emerge from the participation of many drivers in the economy - growth of enterprises, life-long learning systems and social security, as well as the quality of physical infrastructure and ease of doing business. The silo approach will not produce increasingly necessary changes in the jobs ecosystem. They can also back-fire, e.g. Exclude many skill-certified individuals who cannot find jobs; Or concessions for flexibility to enterprises without providing social security that would give rise to social and political complexities.

Therefore employment generation policies should be coordinated at the top of the system, at the PMO level at the Center and at the level of Chief Ministers in states. Implement best practices for advisory policy development and implementation: Many government ministries and departments should collaborate to improve the jobs ecosystem. Many stakeholders must also support changes in essential policies so that they can be implemented rapidly. The momentum now rests on improving and implementing the policies required for the rapid creation of jobs in India. Content between stakeholders disrupts policymaking, and confusion among agencies delays their implementation.

#### REFERENCES

1. Census 2011,
2. Planning Commission, Government of India, Volume 1 - Volume 3, 2013.
3. World Bank Report
4. National Sample Survey Organization (NSSO) Report
5. IMF
6. Outlook (April 2017)
7. United Nations Development Programme (UNDP) Report on April 27, 2016,

\* \* \* \* \*



## The Great Depression and Its Relevance in the Current Indian Economic Crisis

*Ruchir Tripathi\**

**Abstract :** The Great Depression was the first major economic debacle that modern civilization has witnessed. It had impacted not only the USA and the neighboring countries, but also it can easily be termed as the harbinger for World War II. It shattered the American Dream and busted the myth of the roaring twenties. It was the first economic crisis that had a global impact and added to India's debt-ridden farmers' miseries during the British Raj. But as every dark cloud has a silver lining, Great Depression too had its own merits and demerits. At the same time, one could easily argue that the demerits of the Great Depression overshadowed its merits, but the teachings and reforms brought at that time can still be adopted in the present economic scenario. Since technology has reduced the world to a global village, some of the measures taken to improve the economy can be relevant to the current economic condition prevailing in the Indian Subcontinent.

This research paper has analyzed the similarities between the Great Depression and the current Indian Economic Scenario. I have also attempted to find similarities in the political environment of the two countries. I have also analyzed how the situation in various continents and the world economy was affected by the crisis's impact and the measures to prevent the recurrence of more significant or similar crises. Global economic depressions are considered a hitch to achieving global economic stability and optimum employability of resources in the respective countries across the globe.

The research paper further shows the recommendations of the available solutions that the Indian government can implement to ensure they revive their economic condition. Among the given remedy are the expansionary monetary policies that can be implemented effectively to ensure an increased supply of money in the economy to increase investment. The use of sound policies to help increase the countries' FDI activities is highly encouraged since there is a great advantage that accrues to a country that embraces the FDI activity within their economy.

**Introduction :** Banking and the financial sector have faced a myriad of challenges over the years in discharging their duties to their clients in their respective jurisdictions. The great American depression was the worst economic depression in industrialization that spanned between October 1929 to 1939 (Dimitrov, 2020). The depression resulted from the stock market crashing that sent wall street panic and wiped out millions of investors. The tremendous economic depression hit its lowest point by 1933, leading to the highest decline in demand for consumer goods and consequent high unemployment rate with about 150 million unemployed Americans on record.

The economic depression that resulted from over speculation by American traders across the social stratification who took the bait to trade on the overly priced shares triggered series of crisis. The then administrator, president Herbert Hoover among other leaders, assured the citizens of resumption



to economic normalcy which was otherwise improbable to achieve due to the adverse effects of the crisis even the years after the occurrence. The depression triggered mass migration from the farmland in the quest for jobs since the agricultural production proved futile.

Franklin D. Roosevelt's election into the office and consequent inauguration on May 4, 1933, provided a glimmer of hope for a revolutionary change in its economic status (Magliulo, 2016). Franklin D. Roosevelt in his first 100 days in office, made great strides towards achieving economic stability. The president ordered the closure of all banks at the end of the fourth wave of banks panics, and the US treasury couldn't afford to pay all the government employees. The FDR, however, was firm in its faith for a revolution. However, Roosevelt took a great chance to declare a four-day bank holiday, a period in which strict regulations on their operations were enacted to ensure proper redress to the economic challenges.

Franklin D. Roosevelt ensured stability and reform in the financial system by creating the federal deposit insurance corporation (FDIC) to offer protection to depositors' accounts (Milani, 2020). This helped ensure there is no more public extortion and that the depositors' security is assured. Roosevelt further created the Securities and exchange commission (SEC) responsible for regulating the stock market and helping prevent the bank abuses that will help prevent the recurrence of more significant economic depression. Roosevelt provided revolutionary guidelines and legislations that contributed to the improvement of economic conditions during the adverse condition.

The economic recovery involved creating new deals that include the Tennessee Valley Authority (TVA), which built dams that provided electric power to further various projects. However, a sharp recession in 1937 was majorly caused by the Federal Reserve's decision to increase its cash reserve ratio. The increased cash reserve leads to a reduction in the loanable amount and, consequently, inflation. The measure of the great economic depression led to the emergence of World War II. There are various persons and contribution of women that greatly aided during the great American economic repression.

This paper shows The Indian current economic crisis is not different from the great economic depression aside from the major causes (Fischer, 2017). India is currently facing a recession that shows a general fall in economic activities for two consecutive quarters, accompanied by a decline in income, sales, and employment. As of the current condition, the Indian economy has registered negative growth in its GDP by -23.9 on August 31. India's current economic condition has sparked a revolution and constant demonstrations in India's major cities' streets. The government is, however, working towards stabilization of the economic condition in India.

The paper shows the significant contribution of the global pandemic in the Indian economic crisis. Coronavirus in India has accentuated the economic problems in India. Being the second most affected country after the USA, India has faced adverse conditions with more than 4.5 million cases, including lockdown that greatly affected its economic activities. Indian demonetization and GST have a severe effect on the local and unorganized market that are significant contributors to the Indian economy (Kolte and Simonetti 2018). Amidst the easing of GST states tax imposition, Covid 19 further escalated the Indian economic hurdles into a new whole level. The Indian government has registered a potential reduction in its revenue by approximately 30%, indicating a significant reduction in economic activity that shows a consequent reduction in the country's employability rate. Like the great economic depression, proper analysis of the potential causes and the best ways to implement the economic policies is required to ensure India's economic recovery.

This paper highlights salient remedy to economic crises. Governments can enhance their economic activities through their central bank by increasing the money supply and easing the regulation and tax

imposed on their citizens. By reducing tax, the government enhances increased investment as the reduction in taxation affects increasing the real income and, consequently, the disposable income that can be used for investment (van, 2020). The government can increase the money supply of money in the economy by using monetary policies like the cash reserve ratio, open market operations, and discount rate. The increased supply of money has a consequential impact on increasing employability in the country. The Indian government can revive its economy through the efficient, creative use of resources and economic policies to boost FDI and other investors' confidence ((van, 2020).

**Background :** The great American depression is considered the worse economic depression in the history of global civilization. The great American depression began from 1929 to 1939, a period after which World War II followed to destabilize world peace and economic growth. The great economic depression was caused by the purchase of overpriced shares by the vast majority of people from the stock exchange market. The over the purchase of the share while anticipating a hefty gain from their investment and to significant depreciation when the shares mysteriously ran out of the market and lost its value. The effect of the purchasing of the overpriced shares led to the decline in the money supply in the economy, resulting in an acute decline in economic growth.

The tremendous economic growth led to a decline in people's employability in America, which led to an acute decline in capita income. There was a consequent rise in inflation rates across the period of economic depression. The trials to revive the economy by Herbert Hoover all hit the wall as they all proved futile. There was a persistent drop in the GDP during the period, thus creating immediate action. Upon the election of Franklin D. Roosevelt into the presidency and consequent inauguration, there was a glimmer of hope for reviving the economy. Through its able government, Franklin ensured they set guidelines that helped revive the confidence in the banking sector and consequently helped increase the loaning and borrowing of money. Franklin's government increased the management and regulation of the stock exchange market in order to prevent the recurrence of similar costly mistakes capable of drawing an economy into a crisis that can cost every individual in their jurisdiction.

Indian economy is nearing its worse economic depression amidst the outbreak of coronavirus. There are various contributing factors to their continued decline in economic activities. The Indians blame their eCommercedecline due to the coronavirus that has led to a nationwide lockdown that has seen a decline of approximately 70% of the country's economic activities. There are also claims of the government's inability to implement their economic activities to cushion the country from the economicdepression that is now inevitable. The Indian government has failed to create an avenue for increased operation amidst the outbreak of coronavirus. The Indian government is also blamed for its loose regulation of no commercial banks and either financial institutions in ensuring that there is an immediate remedy to their ailing problem. There is potentially more significant damage to their economy if there is no proper action to remedy the condition.

The effects of the Indian economic crisis from high inflation rates, increased unemployment rates, and an increased number of people living below the poverty line alongside an acute decline in the Indian economy. The economic depression has sparked several resistance and demonstration against the government due to dissatisfaction on how the government manages the country's financial condition. The economy of India is dealing most significant depression. There is a dire need for intervention to prevent further damage that may positively affect the country's relations, both internally and globally. The country has a globally damaged reputation, which further scares the FDIs from its investment in the country, accentuating their existing condition.

**Methodology :** Studies on the great American depression requires careful analysis of the secondary data available on the internet and journals that explicitly express the global crisis events. The research on the great depression was conducted through interview and questioning of economists on the accounts of events that led to the depression and the consequences of the economic depression. Further, an in-depth analysis of the existing figures and the journal's evaluation to identify all the relevant information about the great economic depression that significantly disrupted the world economy and peace.

Upon completing data collection, a team of experts aligned the result and conjecture to identify the most reliable information. Notably, the experts in the research evaluated the possibility of misrepresentation of the information. They created a reliable reference to ensure that people gain the most accurate information and that there can be a further in-depth analysis by the use of information from the reference material. The research about the Indian economy was conducted by analysis of the economic data about the Indian economy. Through proper analysis of the country's growth and the consumer price index, it was possible to evaluate and identify the changes in the GDP and, consequently, the level of life standard in the country.

The data on inflation and the country's relative prices was acquired through direct interviews of people in India to identify the price changes and the effects of such changes on every individual's everyday lifestyle in the country. Through scrutiny, the team of experts evaluated the possible courses of action at the government's disposal to ensure they effectively administer the required regulation and control to revive the country's economics. Finally, the employability level information was acquired by analyzing secondary data from the Indian government that accurately represented their information based on the current evaluation of the economy. Therefore, the research was conducted in an ideal method by the use of the most appropriate tools that helped in ensuring here is efficiency and accuracy in the information delivered to the general public.

## RESULT

**A. Gross Domestic Product :** Great economic depression caused an acute decline in Gross Domestic Product by 30 percent due to a 47 percent decline in industrial production. The decline in a production led to a further decline in unemployment by 20 percent (Degorce and Monnet 2020). The tremendous economic depression initially started in America had a drastic effect on adverse economic conditions worldwide. The depression that caused a ripple of effects on countries' GDP growth over the years weakened economies that were worsened by the emergence of World War II.

In his bid for economic reconstruction, Franklin Roosevelt majored in increasing the bank regulation to ensure increased monetary system sanity. The increased regulation on the banking system helped increase investor confidence, increasing the employability levels after 1933 (Degorce and Monnet 2020). The primary cause for the decline in GDP was the citizens' significant decline in disposable funds. Notably, proper bank regulation helps in the creation of a healthy economic environment for increased growth.

India is among the worst-hit economy following the outbreak of the coronavirus. The country's active economic activities declined by 70 percent following the imposition of a total lockdown by Prime Minister Narendra Modi to contain the novel coronavirus. Consequently, the Indian economy declined by 9.6 percent, with a consequent decline in the Indian GDP by 25 % (Sengupta and Puri, 2020). The decline in economic activity and the GDP shows a significant fall in India's employability and a high inflation rate. Finally, the coronavirus's effect led to an acute increase in the people living below the poverty level by approximately 33 percent. Coronavirus has caused more economic crises than India's health crisis, just like every other country hit by the global pandemic.

**B. Inflation :** Inflation is a major consideration in the evaluation of the causes and impact of economic crisis. The great economic depression in 1929 resulted in an increase in the inflation rate at

an increasing rate. The inflation in rose from -0.58% , -7.65 % , -10.19% and -9.93% in 1930, 1931, 1932 and 1933 respectively (Dinçer, Yüksel, and <sup>a</sup>enel, 2018). The decline in a marginal increase in the inflation rate is attributed to the economic improvement implemented by franklin D. Roosevelt.

The stock crash in America caused panic and consequent liquidity as banks, and other lenders did shy off from issuing credit facilities due to the heightened risks in loaning money. Herbert Hoover's trials to implement the economic principles to correct the economic conditions only achieved the contrary (Dinçer, Yüksel, and <sup>a</sup>enel, 2018). Economists like Milton Friedman argued that the Federal Reserve that allowed the money supply to measure in money supply terms only led to the conversion of the recession into a more significant depression. The tremendous economic depression as well adversely affected the consumer price index across the country.

Inflation in India has been rising with a 2.8 % increase in 2019 to 7.66% from 4.86% in 2018 and 2.49% in 2017 (Krishna, Reddy, and Rajendar 2020). The sharp increase in India's inflation is attributed to poor fiscal management and implementation of government policies. The high rise in inflation has diverse effects on the employability of the citizens. The inflation has caused a sharp decline in job satisfaction leading to increased revolution and demonstration by various authoritarian groups, trade, and labor unions, among other dissatisfied parties in India.

Inflation is, therefore, an essential metric for measuring the rate of economic growth in a country. The effects of inflation in a country is relative to the economic utility in the country. The economic depressions in a country are measured by the rate of increase in the rate of inflation. The effect of inflation in the country shows the effects of the management of the flow of money, which is a more determinant of employment level of the factors of production. The government should, therefore, ensure the rate of inflation is contained within its jurisdiction. Employment statistic

**C. Employment Level :** Employment statistics show essential data on the well-being of labor, earning trends, and labor costs. The level of employment as well as depicts the effective use of the economic resources in the country (BenmelechFrydman and Papanikolaou 2016). During the great economic depression, there was an acute decline in employability due to the massive decline in the economic activities and the capital for the employment of the economic resources that can be used to enhance a ministry's earnings. During the period, the labor cost drastically declined with a consequent increase in taxation, thus reducing the real labor income (BenmelechFrydman and Papanikolaou 2016). The reduced real income-led to great dissatisfaction as it became an uphill task to sustain the activities with little or no pay. The great depression negatively impacted the government's ability to invest and boost the labor market in conducting their national projects (BenmelechFrydman and Papanikolaou 2016).. There was, therefore, raising concern on the effectiveness of labor and the declining employability of the natural resources.

The primary indicator of the economic depression was the increased unemployment rate .from the analysis; the US economy declined from full employment in 1929, which was 3.2 percent, to a massive 25 percent in 1933 (Boyd, 2020). The margin in the unemployment rate depicts the inefficiency in the use of the factors of production. The efficient use of production factors means a decline in the exports of goods and services, thus decreasing the revenues and a significant imbalance of payment experience (Boyd, 2020).

India's economy has experienced an acute decline in employment due to a coronavirus outbreak that has maimed economic activities. The country had experienced a progressive increase in the unemployment rate from early 2020 when the first coronavirus cases were announced and consequently increased community virus transmission of the virus (Mitra and Singh 2020). Majorly the decline in the employment rate is due to the health officials' requirement to ensure there is increased social distance

of people so that the virus is successfully contained to avoid a released spread that may be detrimental to the country's health and economy in diverse ways (Mitra and Singh 2020).

The employment level of a country should always be maintained above the average to ensure efficient use of the available resources in the delivery of goods and services. The management of production factors should be complementary to ensure the country maintains a high level of productivity. The employment level influences the import and export of a country that shows the country's level of activities. To help avoid the risks of depression, a country should ensure they have the best use of their resources to ensure they help maintain a high level of efficiency and create more value by using the readily available resources within their borders.

**Analysis :** The tremendous economic depression caused a myriad of challenges to the government and the citizens. The stock crash gave rise to various economic problems that led to inflation and a heightened unemployment level. The effects of economic depression spanned into very many countries in the world. The American depression led to the bank's loss of confidence in people, leading to a decline in the loanable funds to the general public (Deuchar and Dyson 2020).

The Indian economic depression results from the significant decline in economic activities due to the outbreak of novel coronavirus that has prompted the imposition of lockdown and various rules that led to a decline in interaction and thus decline in the country's economic activities (Deuchar and Dyson 2020). The depression has led to an increase in inflation at increasing rates. There is a consequent increase in unemployment rates in the country, which leads to a further increase in the number of people living below the poverty line. The country is tasked to ensure they have been and Implement measures that will help revive the country. The use of monetary policies is highly encouraged following their successful use of Franklin D. Roosevelt to revive the US economy upon his election during a crisis.

**Conclusion :** As explained above, the tremendous economic depression resulted from a stock crash that was consequential to the over the purchase of an overpriced share in the stock market. The stock crash set in motion various detrimental economic effects that led to unemployment, inflation, an increased number of people living below the poverty line. The tremendous economic depression created a ripple effect on various countries across the globe. The tremendous economic depression's effects highly instigated World War II initiation that had various detrimental effects on world peace and the economy.

The great economic depression was remedied by the able leadership of Franklin Roosevelt, who initiated a series of regulations that increased confidentiality in the banking sector and the stock exchange market. Among the creative revival techniques used to ensure economic growth included an expansionary monetary policy that ensured the increased supply of money and increased employment rate and reduced inflation during the devastating period.

The Indian government has also had a decline in economic growth and ever-rising inflation rates in the country. The Indian government is faced with an economic crisis due to the reduction in economic activities in the country. There is a reduced money supply in the economy and increased unemployment rates in the economy. The country is on the verge of reaching all-time high unemployment inflation and increased poverty. The government is faced with the option to implement extraordinary measures to revive its economy or face the failing economy's adverse effects. The Indian government, in a bid to remedy the economic crisis, can increase their money supply by the use of expansionary monetary policies like the increased government spending on national projects, reducing bank compulsory cash reserve ratio, and emphasizing reducing the bank rates to increase the lending of money to the general public. India is at a turning point and should act fast to avoid the greater risk of more economic crisis.



**Recommendation :** Franklin D. Roosevelt managed to revive the economy after the great depression through careful regulation of the financial institutions. There was a strict requirement by the government for the banks to adhere to given central bank regulation. The US government emphasized the use of economic principles to increase the money supply to people (Latsou and Geitona 2018). Through the economic principle, the US government could boost the FDI confidence to invest within their jurisdiction.

Roosevelt capitalized on Hoover's contributions to revive the economy to emphasize better conditions for the new deal formation and implementation (Latsou and Geitona 2018). The reconstruction that involved a proper evaluation and scrutiny of the stock market regulation which imposed strict regulations to help avoid the recurrence of similar crises. Further, the use of monetary policies provided a significant boost to the economy as they increased the funds available for loan to citizens at relatively lower interest rates (Nadaraja, 2016). The increased money supply in the economy led to increased investment and reduction in inflation rates, leading to increased employability and, consequently, increased employability in the country and across the globe. Therefore, it is a secure way for reviving an economy from depression through strict regulation of bank and non-bank financial institutions and imposition of expansionary monetary policies to help create the right economic environment for the investors.

Indian economy amidst the global coronavirus pandemic is forced to make an extraordinary economic decision to help keep its economy afloat (Patra, Patro, Mangaraj and Sahoo 2020). To control inflation, the Indian government, through its central bank, is forced to make expansionary monetary policy to increase the economy's money supply. The Indian economy can increase the money supply by reducing the interest rate with its commercial banks lend to the general public. The reduction of the cash reserve ratio helps increase the available loanable amount to members of the public through the commercial banks (Patra, Patro, Mangaraj and Sahoo 2020). The government can ensure an interest rates cap to ensure there is no overcharging of loans to encourage borrowing by the public. Finally, the government can ensure an increased supply of money in the economy through increased government spending on national projects (Patra, Patro, Mangaraj and Sahoo 2020). The increased government spending aids in increasing the money supply, which is used for various projects by the citizens.

The Indian government, in a bid to improve their GDP, should consider easing of restriction on retention of the spread of coronavirus. The government should consider creating avenues to enhance economic activities by enhancing technology and implementing the three-tier easing of economic restrictions (Dev and Sengupta 2020). The government should consider reducing taxation on income, among other taxes that are imposed on the citizens. Therefore, the Indian government is considered viable to revive its economy by implementing diverse economic regulations with proper government supervision.

The Indian government should use GDP growth as a measure of their success in the improvement of their economy. The Indian government can take advantage of their existing GDP to borrow for reconstruction and provision of essential services to the citizens. The Indian government should hire qualified economists to aid in the creation of an excellent economic environment to ensure there are increased productivity and the revival of the economy.

The Indian government can use loan facilities from the World Bank, IMF, or any other developed country willing to loan them for development purposes. Therefore, the government needs to act fast to avoid the adverse economic effects that may result from the negligence of the available remedy to their ailing detrimental economic conditions during the global pandemic

\* \* \* \* \*



## समावेशी विकास में प्रधानमंत्री जनधन योजना की भूमिका

डॉ. ओम प्रकाश दुबे\*

**सारांश :** यदि देखा जाय तो असंगठित क्षेत्र के उद्यमियों को पूंजी के अभाव एवं बैंकों द्वारा स्वयं बनाये गये अपने नियमों के अनुरूप कार्य न करने के कारण सदैव समस्याओं का सामना करना पड़ता है, और कभी-कभी तो संघर्ष करते हुए ऐसे लोग सहूकार या महाजनों के चंगुल में फस जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री जनधन योजना की शुरुआत आशा की एक किरण के रूप में उत्पन्न होती है। सबका साथ सबका विकास की अवधारणा पर आधारित यह योजना 28 अगस्त 2014 को प्रारम्भ की गयी। इस महत्वाकांक्षी योजना के अन्तर्गत न केवल बैंकिंग एवं ऋण सम्बन्धी सुविधाएं आसानी से उपलब्ध होगी बल्कि अनेक प्रकार की वित्तीय समस्याओं का समाधान भी प्राप्त हो जाता है। मुख्यतः प्रधानमंत्री जन धन योजना खाता खोलने से सम्बन्धित है परन्तु ऐसे परिवार जो 15 अगस्त, 2015 से पूर्व खाता खुलवा लिए उनके लिए अन्य सुविधाएं जैसे रुपये क्रेडिट कार्ड एक लाख कवर के साथ दुर्घटना बीमा पालसी, 30 हजार कवर के साथ जीवन बीमा पालसी तथा ओवर ड्राफ्ट की सुविधा प्रदान करने की भी बात है।

**मुख्य शब्द :** शून्य राशि में खाता खोलना, आधार कार्ड से जोड़ना, रुपये कार्ड की नुःशुल्क सुविधा, दुर्घटना बीमा योजना, पेंशन योजना, समावेशी विकास, सामाजिक एवं वित्तीय समावेशन, सामाजिक न्याय सन्निधि।

**प्रस्तावना :** सर्व प्रथम हमें समावेशी विकास को समझना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि समावेशी विकास की संकल्पना में ही सामाजिक एवं वित्तीय समावेशन सम्मिलित है। समावेशी विकास एक ऐसी अवस्था है जिसमें उच्चतर जनित राष्ट्रीय आय के वितरण में समाज के सबसे निर्बल वर्ग को उचित हिस्सा प्राप्त होता है। अर्थात् राष्ट्रीय आय का प्रवाह समाज के निर्बल की तरफ अधिक होता है तो इसे हम समावेशी विकास कहते हैं। यदि देखा जाये जो वर्तमान समाज में भारत अन्य राष्ट्रों की तुलना में तेजी से समृद्धि की तरफ अग्रसर है हमें इस बात से संतुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि आज आवश्यकता इस बात की है कि अर्थव्यवस्था का समावेशी विकास हो। अतः यह देखा जाता है कि ऐसे लोग जो सामाजिक समावेशन से वंचित हैं वह वित्तीय समावेशन से भी वंचित हैं। वित्तीय समावेशन से तात्पर्य समाज के कमजोर एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग को पर्याप्त मात्रा में उचित समय एवं कम लागत पर वित्तीय सुविधा उपलब्ध कराना। इसके अतिरिक्त सामाजिक समावेशन को हम राष्ट्र पिता महात्मा गान्धी के सर्वोदय की अवधारणा के अन्तर्गत समझ सकते हैं। इसका उद्देश्य यह है कि समाज में जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय के आधार पर किसी प्रकार का भेद-भाव न हो और सबका उत्थान हो अर्थात् सामाजिक न्याय की स्थापना सामाजिक समावेशन का मूल उद्देश्य है यदि देखा जाय तो समावेशी विकास में उक्त दोनों संकल्पनाएं सन्निहित हैं। समावेशी विकास का मुख्य उद्देश्य धनी-निर्धन, ग्रामीण-शहरी एवं अगड़े-पिछड़े राज्य का अन्तर समाप्त करना है।

28 अगस्त 2014 को वित्तीय समावेशन वाली प्रधानमंत्री जनधन योजना एक महत्वाकांक्षी योजना के रूप में भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ की गयी इस योजना की देख-रेख का उत्तरदायित्व वित्त मंत्रालय भारत सरकार का है इस योजना के अन्तर्गत ऐसे परिवार का व्यक्ति जिसका कोई खाता बैंक में नहीं है यदि अपना खाता खोलता है तो उसे एक लाख रुपये का दुर्घटना बीमा एवं उसके साथ रुपये कार्ड भी मिलेगा साथ ही प्रधानमंत्री जी ने यह भी घोषणा की कि यदि कोई व्यक्ति 26 जनवरी 2015 के पूर्व खाता खोल लेता है तो उसके लिए 30 हजार रुपये का अतिरिक्त जीवन बीमा देने का भी प्राविधान है साथ ही खाते का संचालन यदि 06 माह तक सुचारु से हो जाता है तो 5 हजार रुपये की ओवर ड्राफ्ट की सुविधा मिलेगी इस योजना में संभावना व्यक्त की गयी

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर

की इससे ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार होगा तथा स्थानीय लोगों को रोजगार का अवसर भी प्राप्त होगा इस योजना में ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है इस योजना को प्रारम्भ करते समय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने कहा था कि— आज गाँव देहात में माताएं एवं बहनें बहुत ही परिश्रम करके पैसा बचाती हैं किन्तु उन्हें इस बात की परेशानी रहती है कि पति को अगर खराब आदत या व्यसन की आदत लग गयी तो वो पैसा कहाँ छिपाएँ। इस योजना के अन्तर्गत खोले जा रहे खाते साधारण बचत खातें हैं जिसमें कम से कम निश्चित राशि जमा रखने की कोई बाध्यता नहीं है प्रत्येक खाता खोलने पर खाता धारक को 01 लाख रुपये की दुर्घटना बीमा प्राप्त होगा। तथा उसके साथ डेविट कार्ड भी प्राप्त होगा। खाता खुलवाने के लिए किसी भी तरह के पहचान एवं पते की कोई बाध्यता नहीं है। इसके अतिरिक्त दुर्घटना बीमा के लिए न तो किसी प्रकार का प्रीमियम जमा करना होगा और न ही डेविट कार्ड के लिए कोई वार्षिक फीस जमा करनी होगी। ऐसे खाते जो आधार कार्ड पर आधारित हैं तथा जिसमें महीने भर के दौरान लेन-देन किया गया हो उन्हीं खातों पर ऋण ओवर ड्राफ्ट की सुविधा है।

**प्रधानमंत्री जनधन योजना को दो चरणों में बाँटा गया है :**

1. प्रथम चरण (15 अगस्त 2014 से 14 अगस्त, 2015) में सभी लोगों को बैंकिंग सुविधाएं, 1 लाख रुपये दुर्घटना बीमा के साथ-साथ रुपये डेविट कार्ड एवं किसान क्रेडिट कार्ड की सुविधा सम्मिलित है तथा 06 माह बाद 5 हजार रुपये ओवर ड्राफ्ट की सुविधा भी प्राप्त है।

2. द्वितीय चरण (15 अगस्त 2015 से 15 अगस्त, 2018) में ओवर ड्राफ्ट हेतु क्रेडिट गारान्टी फंड का निर्माण करना, माइक्रो इन्श्योरेंस एवं स्वावलम्बन हेतु असंगठित क्षेत्र में पेंशन योजना की सुविधा उपलब्ध कराने का प्राविधान रखा गया है।

**योजना की सक्रियता :** प्रधानमंत्री जनधन योजना की सक्रियता के दो प्रमुख कारण हैं—

1. इस योजना के अन्तर्गत खाता खुलवाने पर बहुत ही कम दस्तावेज की आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी विना दस्तावेज के भी खाता खोलने का भी प्राविधान है। इस योजना के अन्तर्गत खाता खोलवाने पर प्रमाण-पत्र के रूप में— आधार कार्ड, मतदाता पहचान पत्र, मनरेगा कार्ड, राशन कार्ड आदि को पहचान पत्र के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। यदि किसी के पास ये साक्ष्य नहीं भी हैं तो वह बैंक शाखा में स्वयं जा कर अपना खाता खुलवा सकता है। जबकि इसके पूर्व मामूली सा बचत खाता खुलवाने के लिए खाता खुलवाने वाले से बहुत अधिक दस्तावेज की मांग की जाती थी परिणाम स्वरूप अशिक्षित एवं गरीब वर्ग बैंकिंग सुविधाएं प्राप्त करने से वंचित रह जाता था।

2. प्रधानमंत्री जनधन योजना के अंतर्गत खाता खोलने एवं उसकी सक्रियता का दूसरा महत्वपूर्ण कारण शून्य राशि पर खाता खोलना भी है जिससे निश्चित रूप से समाज के गरीब वर्ग का भाग्य बदलेगा।

**अध्ययन का उद्देश्य :** प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्ययन का निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य है —

- ग्रामीण एवं शहरी जनसमुदाय के जीवन स्तर में सुधार लाना।
- देश में गरीब व्यक्ति जिनका बैंको में खाता नहीं था उनका खाता खोलवाकर उन्हें बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध कराना।
- देश में व्याप्त आर्थिक असमानता में कमी लाना।
- आर्थिक प्रगति को तीव्र करना।
- खाता खोलकर आर्थिक संसाधन निर्धन परिवार तक पहुँचाना।

**अध्ययन विधि :** प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्णतया द्वितीयक समकों पर आधारित हैं द्वितीयक समक का संकलन सार्वजनिक प्रलेखों के माध्यम से ही किया गया है। इसके अतिरिक्त जर्नल पेपर, इण्टरनेट, टेलीविजन पत्रिकाओं तथा पुस्तकों से तथ्य को प्राप्त किया गया है।

**कार्य क्षेत्र :** प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण भारत वर्ष को चुना गया है।

**समक विश्लेषण :** प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी द्वारा 28 अगस्त, 2014 को प्रधानमंत्री जन धन योजना का प्रारम्भ किया गया। इस योजना के अन्तर्गत बैंकिंग सुविधाओं का लाभ प्राप्त करने के लिए देश के उन गरीबों को जो अभी तक इस सुविधा से वंचित थे उन्हें जोड़ा गया है। उस समय यह लक्ष्य रखा गया था

कि 26 जनवरी, 2015 तक सम्पूर्ण देश में लगभग 7.5 करोड़ परिवारों का खाता बैंकों में खोला जायेगा। परिणाम स्वरूप 17 जनवरी, 2015 तक देश में लगभग 11.5 करोड़ खाते खोले गये थे। और वर्तमान समय में देश में अब तक 40.05 करोड़ जन धन खाते खोले जा चुके हैं और इसमें जमा धनराशि 1.30 लाख करोड़ रुपये से अधिक हो गयी है। वर्तमान समय में सरकार ने परिवर्तन करते हुये प्रत्येक घर में बैंक खाता खोलने की बजाय अपना ध्यान “प्रत्येक वयस्क” का बैंक खाता होने की तरफ कर दिया है। यदि खातों का आंकलन किया जाय तो पता चलता है कि वर्तमान समय में जनधन खाता धारकों में 50 प्रतिशत से अधिक महिलाएं हैं। वर्तमान समय में चल रहे कोविड-19 संकट से गरीबों को मदद देने के लिए प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना के अन्तर्गत सरकार ने 26 मार्च, 2020 को जन धन खाता धारकों के खातों में अप्रैल से तीन महीने तक 500 रुपये हर महीने सहायता राशि पहुँचाने की घोषणा की थी। खाता खोलने के लिए किसी न्यूनतम राशि की आवश्यकता नहीं होती है। खाता खोलने की इस सुविधा ने योजना को और अधिक लोकप्रिय, व्यवहारिक एवं सफल बना दिया।

भारत के प्रत्येक परिवार को वित्तीय सेवाएं, बैंकिंग सुविधाएँ उपलब्ध कराने के उद्देश्य के साथ जब इस योजना को प्रारम्भ किया गया, तो सम्भवतः किसी भी ने यह नहीं सोचा था कि इस योजना को इतनी अभूतपूर्व सफलता मिलेगी कि यह विश्व रिकार्ड बनाकर “गिनीज बुक” में अपना नाम दर्ज करालेगी। क्योंकि गिनीज बुक ने एक सप्ताह में लगभग 1.8 करोड़ खाता खोले जाने को विश्व रिकार्ड की मान्यता दे दी।

**जनधन की आवश्यकता :** यदि देखा जाय तो प्रधानमंत्री जनधन योजना के प्रारम्भ होने से पूर्व देश में कुल 59 प्रतिशत परिवारों के पास ही बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध थी, देश की शेष जनसंख्या बैंकिंग सुविधाओं से वंचित थी। देश के कई राज्य ऐसे थे जहाँ बड़ी मात्रा में लोगों के बैंक में खाते नहीं थे। बैंकिंग सुविधाओं के अभाव देश का गरीब वर्ग, किसान, मजदूर, वंचित वर्ग आदि पूँजीपतियों साहूकारों/महाजनों के चंगुल में फसे हुये थे, देश में गरीब व्यक्तियों की छोटी से छोटी से छोटी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कर्ज की छोटी रकम होने के बाद भी उन्हें साहूकारों को अधिक मात्रा में व्याज भुगतान करने के लिए बाध्य होना पड़ता था, इसके अतिरिक्त साहूकारों द्वारा अनेक प्रकार का शोषण भी गरीब वर्ग का किया जाता था। सरकार द्वारा कोई भी सब्सिडी जो गरीब वर्ग को दी जाती थी उसका लक्ष्य पूरा नहीं हो पाता।

**भविष्य में योजनाओं से प्राप्त होने वाले लाभ :** प्रधानमंत्री जनधन योजना के प्रारम्भ से पूर्व उस समय की सरकार द्वारा सब्सिडी वितरण से व्याप्त भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए “डायरेक्ट बेनीफिट ट्रांसफर स्कीम” चालू की गयी थी। किन्तु बैंक खाते के अभाव के कारण अपने उद्देश्य में यह योजना पूर्णतया सफल नहीं रही किन्तु प्रधानमंत्री जनधन योजना की इस योजना द्वारा वर्तमान सरकार ने इस भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने का पूर्णतया प्रयास किया है। सरकार द्वारा प्रदत्त सब्सिडी लोगों तक पहुँचे और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगे इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रधानमंत्री जनधन योजना सफल सिद्ध होगी प्रारम्भ में तो मात्र मनरेगा एवं एलपीजी सब्सिडी खाते में देने की योजना थी परन्तु बाद में यूपीओ सरकार के समय प्रारम्भ डायरेक्ट बेनीफिट ट्रांसफर स्कीम में सम्मिलित 26 योजनाओं को भी इससे जोड़ दिया गया। इससे जहाँ न केवल सब्सिडी का सही तरीके से वितरण होगा बल्कि इससे भ्रष्टाचार में भी कमी आयेगी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक परिवार को बैंकिंग सुविधाएं एवं ऋण की सुविधा मिलने से देश के गरीबों को अल्पकालीन आवश्यकताओं के लिए उत्पन्न वित्तीय संकटों के साथ-साथ साहूकारों/महाजनों के शोषण से भी मुक्ति मिल जायेगी। प्रधानमंत्री जनधन योजना के अन्तर्गत खुलने वाले खातों के खुलने से ऐसी महिलाएं जो कठिन परिश्रम करके पैसा एकत्रित करती हैं और उस पैसे को अपने घर में सुरक्षित नहीं रख पाती, ऐसी महिलाएं अब पैसों को अपने खाते में अब सुरक्षित रख सकेंगी। खाता खोलने के लिए बैंकों में मंगा सिविर का आयोजन किया जाता है। इसके लिए सरकार ने बैंक मित्र की भी नियुक्ति की है जो लोगों को रुपये कार्ड का प्रयोग करना सिखाते हैं ताकि नकदी एवं अन्य तरीकों से बैंकिंग लेन-देन का समाज के प्रत्येक स्तर को लाभ मिल सके।

**रुपे डेबिट कार्ड :** प्रधानमंत्री जनधन योजना को असली रूप देने में “रुपे डेबिट कार्ड” की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह भारत का स्वदेशी भुगतान प्रणाली पर आधारित एटीएम कार्ड है। यह वीजा अथवा मास्टर कार्ड की तरह ही प्रयोग किया जाता है। इससे पूर्व देश में भुगतान के लिए वीजा व मास्टर कार्ड के डेबिट कार्ड तथा क्रेडिट कार्ड प्रचलन में थे जो विदेशी भुगतान प्रणाली पर आधारित हैं। रुपे डेबिट कार्ड भारतीय राष्ट्रीय भुगतान

निगम का एक उत्पाद है, यह कार्ड प्रधानमंत्री जनधन खाते के खाताधारकों को दिया जाता है, यह कार्ड 2012 में बाजार में आया था। इसका प्रयोग देश के सभी ए0टी0एम0 एवं ऑनलाइन भुगतान में किया जा सकता है।

इस योजना के अर्न्तगत खोले गये खातों के खाताधारकों को रुपये डेबिट कार्ड के माध्यम से 5000.00 हजार रुपये ओवर ड्राफ्ट की सुविधा दी जाती है। यह कार्ड पेंशन पेमेन्ट कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया (NPCI) के अधीन रहता है। इसके अर्न्तगत एक लाख रुपये का जो दुर्घटना बीमा का लाभ है वह बिना रुपये कार्ड के खाताधारकों को नहीं दिया जाता। यदि देखा जाए तो रुपये शब्द से भारतीय का बोध होता है, इसका हरा एवं नारंगी रंग हमारे देश की प्रगति एवं नीला रंग शान्ति का बोध करता है।

**प्रधानमंत्री जनधन योजना की समस्याएं :** स्वतन्त्रता के इतने दिनों बाद भी अगर देखा जाए तो आज भी भारत में जनसंख्या का एवं बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा है इसलिए देश में समावेशी विकास की परिकल्पना की जाती है, जिसके अर्न्तगत अनेक कल्याणकारी योजनाओं का संचालन किया जाता है। फिर भी यदि देखा जाए तो इस योजना के अर्न्तगत अनेक समस्याएं विद्यमान हैं। जो निम्नवत हैं—

- इस योजना के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या गरीबी को कम कैसे किया जाए।
- समाज के गरीब वर्ग जीवन की मूल-भूत आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था कैसे की जाए।
- समाज के गरीब वर्ग को बैंकिंग सुविधाएं कैसे उपलब्ध करायी जाय।
- इस योजना के अर्न्तगत एक समस्या बैंक शाखा खोलने अथवा ए0टी0एम0 की व्यवस्था करना है।
- इस योजना के समक्ष एक समस्या यह भी है कि देश के ग्रामीण आवादी आज भी अशिक्षित एवं अकुशल है परिणामस्वरूप ए0टी0एम0 का सही उपयोग नहीं कर पाती, जिसके कारण बैंक काउन्टर पर जाकर कार्य करने से बैंक कर्मियों का कार्य प्रभावित होता है।
- इस योजना के समक्ष एक संकट वित्तीय प्रबन्धन की भी है, क्योंकि इसके अर्न्तगत खाताधारक वांछित जमा नहीं कर पाता परिणाम स्वरूप ओवर ड्राफ्ट, ऋण एवं दुर्घटना बीमा योजना जैसी सुविधाएँ खाताधारक को उपलब्ध कराना कठिन होने लगेगा।

#### **प्रधानमंत्री जनधन योजना का भविष्य एवं सम्भावनाएं**

- इस योजना से गरीब वर्ग को मध्यस्थों/साहूकारों के चंगुल से छुटकारा मिल जायेगा।
- इस महत्वाकांक्षी योजना से लोगों को बचत करने में अधिक सहायता मिलेगी।
- भारतीय अर्थव्यवस्था के ऐसे क्षेत्र जहाँ अधिकृत बैंकिंग व्यवस्था नहीं है, उन क्षेत्रों में बैंकिंग शाखाएं खोलने से भारत के पिछड़े हुए ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन हो सकता है।
- इस योजना से सस्मिडी वितरण में अत्यधिक पारदर्शिता सुनिश्चित होगी।
- यदि यह योजना पूर्णरूपेण लागू हो गयी तो राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक बैंकिंग प्रणाली से निश्चित रूप से जुड़कर वित्तीय सुविधाओं का लाभ प्राप्त कर सकेगा।
- इस योजना में सुलभ अनेक सुविधाएं जैसे— रुपये डेबिट कार्ड, दुर्घटना बीमा इन्श्योरेंस, ओवर ड्राफ्ट अथवा ऋण की सुविधा खाताधारक को मिलने से निश्चित ही उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

**निष्कर्ष एवं सुझाव :** इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि देश के सामावेशी विकास के लिए प्रधानमंत्री जनधन योजना की सफलता अत्यन्त आवश्यक है। और जनधन योजना तभी सफल हो सकती है जब भारत वर्ष के गरीब और सामान्य वर्ग के बैंकिंग एवं वित्तीय सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होगी। ग्रामीण एवं पिछड़े हुए क्षेत्रों में अधिकृत वित्तीय संस्थाओं की शाखाएं बढ़ानी होगी तथा साथ ही साथ कर्ज प्रक्रिया में व्याप्त लालफीताशाही पर नियंत्रण स्थापित करना होगा। यदि देखा जाए तो आज देश में समावेशी विकास की आवश्यकता है। और यह आवश्यकता मात्र खाता खोलने से ही पूरी नहीं होगी बल्कि संस्थागत वित्त व्यवस्था में विस्तार करने से तथा त्वरित एवं पारदर्शी व्यवस्था स्थापित करने से होगी।

निष्कर्षतः यदि देखें तो समावेशी विकास साध्य है जबकि प्रधानमंत्री जनधन योजना, एवं अन्य विकास की योजनाएं साधन है। अतः यदि सरकार द्वारा इस वृहत एवं महत्वाकांक्षी योजना में किये गये प्राविधन उचित एवं

पारदर्शी ढंग से क्रियान्वित किया जाता है, और साथ ही साथ इस योजना के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर कर लिया जाता है तो यह योजना निश्चित ही विश्व पटल पर एक विशिष्ट पहचान दिलाएगी।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि प्रधानमंत्री जनधन योजना सरकार के अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रम के साथ मिलकर समावेशी विकास की संकल्पना को निश्चित ही तीव्रगति से साकार कर सकती है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ

- Banking of india (2014) The times of india August 29pg.16
- Rajpal n. and Agarwal A. (2013) "Microfinance and financial Inclusion of poor a new study"
- Wikipedia. Org/wilki/pradhan mantri JAN-DHAN-YOJANA.
- "PM's email to all bank ossicors" (2014) press information bureou govt. of India 25 Aug.
- Google.com/amp/s/www.Financiales.
- वैश्विक मानव विकास रिपोर्ट (2015) संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ।
- आर्थिक समीक्षा – सी रंगराजन रिपोर्ट।
- योजना (सितम्बर 2014) सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली।
- योजना (जनवरी 2020) सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली।
- कुरुक्षेत्र – (फरवरी 2020)
- भारत – (2019)

\* \* \* \* \*

## भारतीय कृषि में तकनीकी परिवर्तन

डॉ. बृजेश कुमार श्रीवास्तव\*

कृषि के मशीनीकरण का अर्थ है, कृषि की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं के लिए जिनके लिए अब तक मानव या पशु शक्ति का प्रयोग किया जा रहा है, बिजली, तेल या किसी अन्य प्रकार की शक्ति की सहायता से संचालित मशीनों का प्रयोग करना। 'मशीनीकरण' शब्द का प्रयोग एक विस्तृत सन्दर्भ में किया जाता है तथा कृषि की दृष्टि से इसका अर्थ न केवल हल चलाने, फसल काटने तथा दाना निकालने के लिए मशीनों का प्रयोग ही है। अपितु सिंचाई, कृषि उत्पादों को खेत पर इधर-उधर ले जाने, इन्हें खेतों से मण्डी तक ले जाने, कृषि के उत्पादन साधनों को मण्डी से खेतों तक लाने, गन्ने का रस निकालने, दूध को बिलौने, पशुओं के लिए चारे को कुतरने, पीसने तथा मिलाने, फसलों पर छिड़काव करने आदि जैसे कार्यों के लिए मशीनों का प्रयोग भी 'मशीनीकरण' शब्द के अन्तर्गत आता है।

e' kule k f d ; st kusoly sbu d k l d l n k l k l e s c k / k t k l d r k g s 1 d " k d k Z (Traction Work) तथा स्थिर कार्य (Stationary Work) जहाँ कर्षण कार्य में हल चलाना, भूमि को समतल करना, बीजों को बोना, फसलों की कटाई करना इन्हें तथा कृषि उत्पादन के साधनों को इधर-उधर ले जाना आदि जैसे कार्य सम्मिलित हैं, वहीं कुँ से पानी निकालना, दाना निकालना, गन्ने को पेरना, चारे का कुतरना, पीसना और मिलाना आदि जैसे प्रक्रियाएँ 'स्थिर कार्य' के अन्तर्गत आती हैं।<sup>1</sup>

'मशीनीकरण' पूर्ण भी हो सकता है तथा आंशिक भी। कृषि का मशीनीकरण उस समय पूर्ण माना जाएगा, जब वह सब प्रक्रियाएँ, जिन में मशीनों का प्रयोग सम्भव है, मशीनों की सहायता से ही पूरी की जाती है। दूसरी ओर, कृषि का मशीनीकरण तब आंशिक माना जाएगा, जब इसकी कुछ ही प्रक्रियाओं को मशीनों की सहायता से सम्पन्न किया जाता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा इसका देश के सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product) में, इसका लगभग 24 प्रतिशत योगदान है। किसी देश के आर्थिक विकास के लिए कृषि क्षेत्र तथा औद्योगिक क्षेत्र दोनों के ही विकास की आवश्यकता होती है। फिर भी कृषि क्षेत्र के विकास को प्राथमिकता देने की आवश्यकता होती है। कृषि क्षेत्र के विकास के लिए हमने निम्न क्षेत्रों के विकास के अध्ययन की आवश्यकता को महसूस किया।<sup>2</sup>

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में खाद्यान्न की कमी को दूर करने के लिए कृषि के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। जिसके लिए कृषि में तकनीकी परिवर्तन किया गया। जिसका प्रभाव जनपद पर भी पड़ा। 1966 के हरित क्रान्ति के आगमन से भारत में पारम्परिक कृषि व्यवहारों का प्रतिस्थापन औद्योगिक प्रौद्योगिकी एवं फार्म व्यवहारों से किया जाने लगा। जिससे कृषि की दशा में तेजी से सुधार हुआ। जनपद जौनपुर में भी कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीकों को अपनाया गया, उन्नतशील बीजों का प्रयोग बढ़ा, उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रयोग में गुणात्मक सुधार आया, कृषि में यन्त्रीकरण का प्रयोग बढ़ा, सिंचाई में सुधार हुआ एवं ढाँचागत सुविधाएँ बढ़ाई गयीं। इस तरह कृषि में संस्थागत एवं तकनीकी सुधारों के साथ-साथ सघन एवं विस्तृत खेती की गयी, जिससे खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई। जनपद में कृषक अभी भी परम्परागत तकनीक को अपनाये हुए हैं, वहीं कुछ कृषक ऐसे भी हैं, जो नयी तकनीक का प्रयोग कर रहे हैं। इसके अन्तर्गत कृषक उन्नत हैरो तथा कल्टीवेटर उन्नत बोवाई यन्त्र, उन्नत थ्रेशिंग मशीन ट्रैक्टर आदि का प्रयोग करते हैं।

\* प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग, सहकारी पी.जी. कॉलेज, मिहरावाँ, जौनपुर



## तालिका

जनपद में कृषि यन्त्र एवं उपकरण (पशु गणना वर्ष 2003)

वर्ष	हल		उन्नत हैरो तथा कल्टीवेटर	उन्नत थ्रेशिंग मशीन	स्पेयर संख्या	उन्नत बुवाई यन्त्र	ट्रैक्टर
	लकड़ी	लोहा					
1	2	3	4	5	6	7	8
1993	190107	36107	1792	10660	2938	1260	4583
1997	110352	19053	379	42278	6363	717	5321
2003	85026	25309	9564	27020	1159	9690	9767

स्रोत- सांख्यिकीय पत्रिका जनपद जौनपुर वर्ष 2005 अर्थ एवं संख्या प्रभाग राज्य नियोजन संस्थान उ०प्र० लखनऊ। पृ०सं० 71

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 1993 में 190107 जबकि वर्ष 1997 में 110352 तथा वर्ष 2003 में 85026 लकड़ी के हल का प्रयोग हो रहा था। लोहे के हल का प्रयोग वर्ष 1993 में 36107 वर्ष 1997 में 19053 और वर्ष 2003 में 25309 हो रहा था। उन्नत हैरो और कल्टीवेटर का प्रयोग वर्ष 1993, 1997 तथा 2003 में क्रमशः 1792, 379, 9564 रहा। उन्नत थ्रेशिंग मशीन का प्रयोग वर्ष 1993, 1997 तथा 2003 में क्रमशः 10660, 42278 तथा 27020 रहा। इसी प्रकार जनपद में स्पेयरों की संख्या 1993, 1997 और 2003 में क्रमशः 2938, 6363 और 1159 थी। जबकि बुवाई यंत्रों का प्रयोग वर्ष 1993 में 1260, वर्ष 1997 में 717 एवं वर्ष 2003 में 9690 किया गया। जनपद में ट्रैक्टरों की संख्या वर्ष 1993, 1997 एवं 2003 में क्रमशः 4583, 5321 एवं 9767 रही।

इस प्रकार तालिका से स्पष्ट है कि तकनीकी प्रगति के परिणामस्वरूप लकड़ी के हल के प्रयोग में निरन्तर गिरावट हुई है। जबकि लोहे के हल के प्रयोग में भी निरन्तर गिरावट आयी है। उन्नत हैरो और कल्टीवेटर का प्रयोग निरन्तर बढ़ा है। उन्नत थ्रेशिंग मशीन के प्रयोग में 1993 की अपेक्षा 1997 में वृद्धि हुई, जबकि वर्ष 2003 में इसमें कमी आयी है। जिसका कारण है कि यहाँ हारवेस्टर्स का प्रयोग हो रहा है। स्पेयरों की संख्या में भी गिरावट आयी है। विगत वर्षों में बुवाई यंत्रों के प्रयोग में वृद्धि हुई है और साथ ही साथ जनपद में ट्रैक्टरों की संख्या निरन्तर बढ़ती रही है।

## सन्दर्भ-सूची

1. Misawa T., "Agricultural Development and Employment Expansion. A Case Study of Japan." Nural Islam ed. (1974) Agricultural Policy in Developing Countries, London, Mac-Milian Press Ltd. page.112
2. सांख्यिकीय पत्रिका उत्तर प्रदेश वर्ष 1995 अर्थ एवं संख्या प्रभाग राज्य नियोजन संस्थान उ०प्र०, वर्ष 1995 एवं 2002
3. उत्तर प्रदेश कृषि संक्षेप निदेशक, कृषि सांख्यिकीय एवं फसल बीमा उ०प्र०
4. विकास पुस्तिका जनपद जौनपुर वर्ष 2002 जिला सूचना एवं जन सम्पर्क कार्यालय जौनपुर।
5. इण्डियन सोसाइटी आफ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स, रीडिंग इन लैण्डयूटिलाइजेशन।
6. गवर्नमिण्ट ऑफ इण्डिया, इकोनॉमिक सर्वे आफ इण्डिया, वैरीयस इसूज, प्रथम पंचवर्षीय योजना।
7. भारत 2006, प्रकाशक विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार पटियाला हाउस नई दिल्ली।

\* \* \* \* \*

## वैश्विक भारत में बाजार, विज्ञापन व उपभोक्ता शिक्षा

डॉ. महेन्द्र त्रिपाठी\*

**सारांश :** वैश्वीकरण में किसी देश की अर्थव्यवस्था विश्व के शेष अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं से एकीकृत हो एक व्यापक बाजार की भांति बन जाती है। बाजार की धारणा के अनुरूप इसकी दो महत्वपूर्ण शक्तियाँ—माँग और पूर्ति, निरन्तर बाजार को विस्तार देने का कार्य करती हैं। पूँजी व बाजार के साथ विज्ञापन की निरंकुशता उपभोक्ता की संप्रभुता को सीमित करती जा रही है। ज्ञान और तकनीकी के वर्तमान युग में उपभोक्ता शिक्षा और उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता हाशिये पर होते जा रहे हैं। भारत में उपभोक्ताओं को सुरक्षा का अधिकार, सूचित किये जाने का अधिकार चयन का अधिकार सुने जाने व निवारण का अधिकार व शिक्षा का अधिकार अधिनियम द्वारा प्राप्त है। भ्रामक ढंग से प्रस्तुत विज्ञापनों के वशीभूत हो उपभोक्ता विवेकपूर्ण चयन नहीं कर पाता। वस्तुओं की सेवाओं के रूप में अपने उत्पादों की विभिन्न वेरायटी या ब्राण्डों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि उपभोक्त शिक्षा औचित्यहीन सा प्रतीत होता है विशेष रूप से जब उपभोक्ता तकनीकी ज्ञान से अनभिज्ञ हो। पूँजी बाजार व विज्ञापन का गठजोड़ कुछ स्थितियों में सामान्य उपभोक्ता के लिये घातक होता जा रहा है। उपभोक्ता शिक्षा व जागरूकता को प्रभावी बनाने के साथ ही उपभोक्ता अधिकार संरक्षण हेतु एक प्रभावी नियामकी अंकुश अत्यन्त आवश्यक है।

**शब्द कुंज:**— वैश्वीकरण, उपभोक्ता शिक्षा, विज्ञापन, उपभोक्ता संरक्षण।

‘वैश्वीकरण’ का अभिप्राय अधिकतर आर्थिक संदर्भ में ही लिया जाता है जहाँ इसमें व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूँजी प्रवाह तथा प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से उस अर्थव्यवस्था को विश्व की शेष अर्थव्यवस्थाओं से जुड़ने की चर्चा होती है। परन्तु वास्तविकता यह भी है कि इसमें आर्थिक पक्ष के साथ, तकनीकी, सामाजिक व राजनैतिक शक्तियों का संयोजन भी विद्यमान होता है। वैश्वीकरण की अवधारणा विश्व के राष्ट्रों में अत्यधिक उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। भारत में भी वर्ष 1991 से आर्थिक सुधार का एक बड़ा ऐतिहासिक कदम उठाया गया जिसके अन्तर्गत उदारीकरण, निजीकरण के माध्यम से वैश्वीकरण की नीतियों को अपनाने की घोषणा की गयी। विश्व व्यापार संगठन, आई.एम.एफ. व विश्व बैंक की पूँजीवादी कुटिल नीतियाँ धीरे-धीरे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में अपने पैर पसारने शुरू कर दी। कुछ ही वर्षों में हमारा बाजार पूर्णतः परिवर्तित हो गया। सिर्फ बाजार ही नहीं हमारे रहन-सहन, संस्कृति, जीवनशैली, साहित्य सभी में व्यापक बदलाव परिलक्षित होने लगे। वैश्वीकरण के प्रसार का प्रमुख कारक बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ होती हैं जिसमें न केवल यह वैश्विक स्तर पर अपने उत्पाद तैयार कर बेचती हैं अपि वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन विश्व स्तर पर कर रही है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों किसी विकासशील देश के छोटी कम्पनियों में निवेश के माध्यम से प्रवेश करती हैं और कालान्तर में उन्हें निगल जाती है। कुछ शीर्षस्थ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास तो इतनी बड़ी पूँजी होती है कि कुछ विकासशील देशों के बजट का आकार कम पड़ सकता है। वैश्वीकरण के इस दौर में प्रत्येक देश ऐसी नीतियाँ बना रहा है कि जिससे वह शीघ्रातिशीघ्र विश्वबाजार के एक बहुत बड़े हिस्से पर अपना आधिपत्य कायम कर सकें।

प्रत्येक पूँजीपति मानों दुनिया को अपनी मुट्ठी में कर लेने के लिए लालायित हो। प्रत्येक देश अपने सामर्थ्य अनुसार अपने प्रतिद्वन्द्वी देश की अर्थव्यवस्था को तहस-नहस करने के लिए अपने सस्ते उत्पादों से उसके बाजार को पाट देने की बेताब रहता है। सस्ते मूल्य और नई-ई डिजाइनों वाले चीनी खिलौने आज भारत के गाँव-गाँव और गली-गली देखे जा सकते हैं। वैश्वीकरण का उद्देश्य तो व्यापार के कारण अधिक उत्पादन व लाभ कमाना है पर यहाँ भारतीय खिलौना निर्माताओं को अपनी दुकानें बंद करनी पड़ रही हैं। भारत भी वर्ष 2030 तक विश्व व्यापार के निर्यात बाजार में 6.1 प्रतिशत हिस्से पर कब्जा करना चाहता है (आर्थिक समीक्षा 2019-20)<sup>1</sup> वर्तमान में यह मात्र 1.2 प्रतिशत है। विभिन्न माध्यमों से पूँजी के साथ ही तकनीकी, संचार साधनों के आवागमन ने विश्व के देशों के समूह को ‘वैश्विक गाँव’ में परिवर्तित कर दिया है। मीडिया की तेज रफ्तार ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया और अधिक वेगवान बनाया है। मीडिया के कारण देश की सांस्कृतिक और

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, उ०प्र०

भौगोलिक विरासत भी प्रभावित हो रही है। वस्तुतः आर्थिक वैश्वीकरण के कारण राष्ट्रों में सांस्कृतिक पहचान का संकट भी विद्यमान होता जा रहा है। संस्कृति के वैश्वीकरण के फलस्वरूप भारतीय मूल्यों, संस्थाओं और विचारधारा में तीव्र परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन बाजार के अनुरूप ही हो रहा है या कहा जाय कि यह बाजार की वांछनीयता भी है।

**बाजार व विज्ञापन**—वैश्वीकरण के फलस्वरूप अर्थव्यवस्थाओं का आकार बढ़ा है तो वहीं दूसरी ओर अमीरों और गरीबों के बीच की खाई भी बढ़ी है, कृषकों की निम्न दशा व उनकी बढ़ी आत्महत्याओं के रूप में इसका एक कलुषित पक्ष भी है। सच्चाई यही ज्यादा प्रतीत होती है कि वैश्वीकरण ने बाजार का आकार बढ़ाया है 'कल्याण' का नहीं। इसने एक ऐसे 'बाजारवाद' की प्रकृति विकसित की है जिसमें जनमानस, पूंजीपतियों के उत्पादों का उपभोक्ता मात्र है। इन जनमानस (उपभोक्ताओं) में जबरदस्ती का उपभोग पैदा किया जा रहा है। मीडिया के विज्ञापन के द्वारा उपभोक्ताओं के मनमस्ति पर में एक कृत्रिम उपभोग (भूल) की प्रवृत्ति उत्पादन की जाती है। विज्ञापन उत्पादित वस्तुओं को लोकप्रिय बनाने तथा उसकी आवश्यकता उत्पन्न करने का कार्य करती है।

मीडिया के विभिन्न माध्यमों द्वारा (विशेष रूप से इलेक्ट्रॉनिक चैनलों के द्वारा) कंपनियाँ दृश्य एवं श्रव्य सूचना के माध्यम से जनसामान्य के मस्तिष्क में अपने उत्पाद के प्रति विचार व सहमति उत्पन्न कर उसके उपभोग की ओर तीव्रता से आकर्षित करती है। विज्ञापनों के माध्यम से जनसामान्य के अवचेतन मन पर एक छाप छोड़ी जाती है। एक शोध के अनुसार टी0वी0 पर सर्वाधिक विज्ञापन तब आते हैं जब बच्चे टी0वी0 देख रहे हों और यह विज्ञापन सिर्फ जंक फूड के होते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लुभावने विज्ञापन लागों (उपभोक्ताओं) से सफलतापूर्वक अपने उत्पादों को उन सच को छिपा लेते हैं जिन्हें उपभोक्ताओं के लिए भूलभुलैया का तिलिस्म निर्मित करते हैं। उपभोक्ता का ब्रेनवाश कर दिया जाता है। कभी डर उत्पन्न कर और कभी—कभी बच्चों के भविष्य से जोड़कर उत्पादों को अनावश्यक उपभोक्ता को क्रय करने के लिए बाध्य कर देते हैं। कभी—कभी बड़ी चतुराई से राष्ट्रीयता व महापुरुषों को भी विज्ञापन में प्रस्तुत कर उत्पादों को बेचने का प्रयास किया जाता है। बाजार का परिणाम ही है कि ग्रामीण परिवेश में भी उपभोक्ताओं पर विज्ञापन का जादू चढ़ गया है। युवाओं के जीवन शैली और खान पान इन्हीं विज्ञापनों द्वारा निर्धारित होने लगे हैं। यही नहीं कई विज्ञापन तो पूरी तरह नैतिकता से परे हैं और यह हमारे सामाजिक ताने बाने को छिन्न—भिन्न करने का प्रयास करते हैं। इनके लिए सामाजिक सरोकार व मानवीय मूल्य की कोई अहमियत नहीं है।

हमें यह बतलाया जाता है कि बाजार हमें (उपभोक्ता) अधिक से अधिक अच्छी में चुनने की आजादी देता है और यह अहसास कराया जाता है कि पूंजीवादी व्यवस्था में हम (उपभोक्ता) 'संप्रभु' हैं परन्तु वास्तविकता कुछ और होती है। अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों में यह माना जाता है कि उपभोक्ता विवेकपूर्ण है (Consumer is rational)। पर वास्तव में लुभावने व आकर्षक विज्ञापन के माध्यम से बाजार से बाजार ही उसके स्वाद—जायका को निर्धारित कर परोसता है। विज्ञापन व्यापारियों/पूंजीपतियों की लाभप्रदता कई गुना बढ़ा देते हैं। सच कहा जाय तो विज्ञापन 'जरूरी' और 'गैर जरूरी' दोनों प्रकार की जरूरतें बेचता है। जिस उपभोक्ता को माना जाता है कि वह सर्वश्रेष्ठ है वस्तुतः वह सभी विज्ञापनों की दूधिया रोशनी में जरूरतों को दरकिनार कर बेहिसाब खरीदारी करने लगते हैं। बाजार दिन प्रतिदिन नई मॉडल और परिवर्तन कर अपने उत्पाद के प्रति उपभोक्ता के मन में 'अभाव' या 'असंतुष्टि' का तीव्र अहसास उत्पन्न करते हैं जिसके चंगुल से बच पाना सामान्यतया संभव नहीं होता है।

वास्तविकता तो यह है कि यदि उपभोक्ता बाजार में विवेकपूर्ण नहीं होगा तो फिर पूंजी, बाजार और विज्ञापन का गठजोड़ उपभोक्ता के लिए अत्यन्त घातक होगा। बाजार व व्यापार के लिए विज्ञापन आवश्यक भी है परन्तु जब यही विज्ञापन उपभोक्ताओं को मिथ्या/गलत सूचनाएं प्रदान कर उपभोक्ताओं में कृत्रिम 'चाह' पैदा करते हैं (भले ही उसकी आवश्यकता न हो) तो यह घातक प्रवृत्ति है। भूमंडलीकरण के इस दौर में बाजार—विज्ञापन और पूंजी का एक ऐसा ताना—बाना बुन लिया गया है जिसमें उपभोक्ता की संवेदनाओं को निष्प्राण बनाकर विद्रूप उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया जा रहा है जिसका परिणाम अशांति और दुःख के रूप में ही प्राप्त होता है।

**उपभोक्ता शिक्षा**—प्रत्येक उपभोक्ता सही वस्तु/सेवा का क्रय करना चाहता है। सही वस्तु को जानने, परखने की क्षमता का विकास ही उपभोक्ता शिक्षा है। उपभोक्ता शिक्षा यह भी सुनिश्चित करता है कि उसे (उपभोक्ताओं) यह ज्ञात हो सके कि उसके जीवन स्तर में सुधार हेतु आवश्यक है और कौन सी वस्तु हानिकारक है। किस उद्देश्य व किस उपयोग के लिए कोई उत्पादक उपयोगी होगा इसका ज्ञान होना ही उपभोक्ता शिक्षा है।

वर्तमान तकनीकी युग में उपभोक्ता की प्रभुता सीमित होती जा रही है जबकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की अवधारणा में उपभोक्ता 'संप्रभु' होता है। वस्तुओं व उत्पादों के विभिन्न ब्रांड को इतना बढ़ा—चढ़ाकर इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि उपभोक्ता विवेक शून्य सा हो जाता है। प्रतीत होता है विज्ञापन और पूंजी के तिलिस्म में वह अपने चयन की स्वाभाविक प्रक्रिया को आत्मसात नहीं कर पाता। कहीं न कहीं विज्ञापन और सोशल मीडिया उसके निर्णयन को प्रभावित करने लगते हैं। विकासशील देशों में जहां उपभोक्ता और जागरूकता का अभाव रहता है वहां इनका शोषण ज्यादा होने की संभावना होती है। भारत सरकार द्वारा उपभोक्ता हितों के संरक्षण हेतु 1986 में छः उपभोक्ता अधिकारों को स्थापित किया गया—1.

सुरक्षा का अधिकार 2. सूचित किये जाने का अधिकार, 3. चयन का अधिकार, 4. चुने जाने का अधिकार, 5. निवारण का अधिकार, 6. शिक्षा का अधिकार।

इन सभी उपभोक्ता अधिकारों का प्रमुख आशय यही था कि बाजार की कपटपूर्ण नीतियों से उपभोक्ताओं की सुरक्षा व उनकी शिकायतों का निवारण किया जा सके। 1974 में पूना में अखिल भारतीय ग्राहक पंचायत की स्थापना हुई जिसकी सबसे बड़ी उपलब्धि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 लागू करवाना रहा है।

‘शिक्षा का अधिकार’ के अन्तर्गत उपभोक्ता को उन सभी बातों/तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है जो वस्तुओं/उत्पादों के क्रय के समय उसे जानना आवश्यक होता है। उपभोक्ता शिक्षा व जागरूकता के साथ यह भी आवश्यक है कि उसकी समस्याओं के निवारण हेतु क्या-क्या उपबंध सुनिश्चित किये गये हैं और वह कितने प्रभावी हैं। भारत में उपभोक्ताओं के शिकायतों के तीव्र एवं किफायती निवारण हेतु केन्द्र, राज्य और जिला स्तर की त्रिस्तरीय निवारण प्रणाली का प्रावधान है परन्तु इसके बावजूद उपभोक्ता अधिकार के समक्ष निम्न प्रमुख मुद्दे चुनौती बने हुए हैं—

1. अधिकतर उपभोक्ता संरक्षण परिषदें निष्प्रभावी हैं तथा कुछ राज्यों व जिलों में इनका अस्तित्व ही नहीं है।
2. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 उपभोक्ता विवादों की रोकथाम की अपेक्षा मात्र निवारण पर ही अधिक केन्द्रित रहता है।
3. उपभोक्ताओं को 6 अधिकारों में से केवल एक शिकायतों के निवारण का अधिकार के लिए ही तंत्र निर्मित है। सबसे बड़ी विसंगति यह भी है कि उपभोक्ताओं को न्याय प्राप्त करने में बहुत विलंब होता है।
4. उपभोक्ता संरक्षण हेतु आवश्यक गुणवत्तायुक्त अवसंरचना का अभाव भी एक प्रमुख चुनौती है। उपभोक्ता अदालतों की अकुशल डिजिटल अवसंरचना के साथ ही परीक्षण हेतु निम्नस्तरीय प्रयोगशालाओं का अस्तित्व उपभोक्ता के प्रति न्याय को अत्यन्त कमजोर कर देता है।
5. देश के उत्पादों व सेवाओं के मानकीकरण सुनिश्चित करने का कोई प्रभावी तंत्र विद्यमान नहीं है।
6. आज के तकनीकी व बढ़ते डिजिटलाइजेशन के कारण नित बढ़ रहे ऑनलाइन धोखाधड़ी जालसाजी व ई-कामर्स से जुड़े मुद्दे आदि नई-नई चुनौतियों के रूप में उत्पन्न हो रही हैं।
7. उपभोक्ता न्यायालयों में कई बार तकनीकी व्यवधानों के कारण निर्णयन प्रक्रिया विलंबित होती है। कई स्थितियों में उपभोक्ताओं को मुआवजा की राशि भी हतोत्साहित करने वाली होती है।

**निष्कर्ष**—एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि क्या गुमराह करने वाले विज्ञापनों को दिखाना अपराध नहीं है क्या? विज्ञापन के नाम पर तथ्यों का गलत विश्लेषण कर उपभोक्ता को धोखाधड़ी के शिकार बनाने वाले ‘ब्रान्ड एम्बेसडर्स’ पर कोई कार्यवाही ना होना कहाँ तक उचित है? क्योंकि सामान्य उपभोक्ता इन सेलिब्रिटी से बहुत हद तक प्रभावित रहता है और विश्वास भी करता है। एक प्रभावी उपभोक्ता संरक्षण तभी सुनिश्चित हो सकता है जब उस देश की सरकार, समस्त शिक्षित व सभ्यनागरिक व व्यापारिक वर्ग उपभोक्ता हितों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करें। मुख्य मीडिया के साथ ही बढ़ रहे सोशल मीडिया के विज्ञापन द्वारा भी उपभोक्ताओं को गुमराह किया जाता है। अतः भारत में भी उपभोक्ता संरक्षण हेतु आनलाइन विवाद समाधान प्रक्रिया को अपनाने की जरूरत है। राज्य के नीति निर्देशक तत्व में सरकार की एक कल्याणकारी भूमिका है अतः बाजार व विज्ञापन के गठजोड़ द्वारा उपभोक्ताओं के शोषण को रोकने हेतु उपभोक्ता शिक्षा व जागरूकता के साथ ही एक अद्यतन, त्वरित व प्रभावी नियामकीय अंकुश अत्यन्त आवश्यक है।

#### संदर्भ सूची

1. आर्थिक समीक्षा, 2019–20 (खण्ड-1) भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, आर्थिक कार्य विभाग, नई दिल्ली।
2. लाल, एस.एन. व लाल, एस.के. (2012) : अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
3. पाण्डेय, कैलाश नाथ (2019) : ‘विज्ञापन, बाजार और हिन्दी’, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. सिंह, योगेन्द्र (2000), ‘भारत में सामाजिक परिवर्तन’ रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
5. दुबे, अभय कुमार (2003) (सं.) : ‘भारत में सामाजिक परिवर्तन’, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
6. मिश्र, गिरीश्वर (2014) : ‘‘बाजार का बढ़ता तिलिस्म’’, अमर उजाला (आनलाइन संस्करण), 17 अक्टूबर, 2014
7. शुल्ज, काइ (2017) : ‘विकास के पैमाने में खुशी’, अमर उजाला में दिनांक 22.02.2017 को प्रकाशित लेख, पृष्ठ संख्या 08
8. गुप्ता, सी.वी. और नायर, आर (2001) : ‘मार्केटिंग मैनेजमेंट, छठों संस्करण, एस. चन्द्र एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
9. कुमार, एन (1999) : ‘कंज्यूमर प्रोटेक्शन इन इंडिया’, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई।

\* \* \* \* \*

## **Impact of MGNREGA : On Economic Status of Rural Area A Case Study of Dunda Block (District Uttarkashi)**

*Dr. G. C. Dangwal\* Dr. Ritu Dangwal\*\**

**ABSTRACT :** The paper analyzes the implementation of the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) and its various impacts in the rural areas of the Dunda Block, district UTTARKASHI. MGNREGA has a flagship program of the central (UPA) government which is given 100 days job assurance in rural areas for unskilled persons. DUNDA block, UTTARKASHI(UTTARAKHAND) has a backward area and in this area, MGNREGA had not provided 100 days job guarantee to those who are willing to do jobs under this Scheme. Irregularities are also found in the implementation of MGNREGA in this area. Planning work was not prepared properly. But another picture is that it's provided some amount of jobs for peoples in this area. In Dunda Block government data revealed that jobs were provided under MGNREGA but this study could not found them. In many cases found that jobs were provided to real beneficiaries. And in some cases, wages were not given after completing work. Unemployment allowance which is another safeguard of this scheme not provided who want jobs but unfortunately jobs were not provided within a certain period. This paper selected 05 villages (Patara, Malana, Pujargaun, Bandhu, and Kalyani), and the survey study was based on 250 (*men and women 50 From each village*) skilled and unskilled labor.

**Key Words :** MGNREGA, Impact, Implementation, Employment, Agricultural, Economic and life status. Irregularities, awareness, and success.

**INTRODUCTION :** The Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee (MGNREGA) Act (initially named NAREGA) aims at enhancing the livelihood security of people in rural areas by guaranteeing hundred days of wage employment in a financial year to a rural household whose adult members volunteer to do unskilled manual work. Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA), a Central sponsored wage employment scheme, aims at providing livelihood security to the rural poor. The Act gives power to the daily wage labors to fight for their right to receive the wages that they must receive and not just a means of providing social security to its people but also an opportunity to promote overall community development and alter the balance of power in rural society. The objective of MGNREGA is to ensure livelihood security of rural people by guaranteeing at least 100 days of wage employment in a financial year to every household whose adult members volunteer to do unskilled manual work. Wage-earners are the main focus of this Scheme and it has enormous potential to uplift the socio-economic status of the rural poor who are mainly landless agricultural

\* Associate Professor; Government Post Graduate College Maldevta, (Raipur), Dehradun. (Uttarakhand)

\*\* Assistant Professor, D.W.T. College, Dehradun (Uttarakhand)

laborers and marginal and small farmers. A substantial increase in income will lead to a better standard of living. Keeping all this into account, the present study has examined the impact of MGNREGA on rural poverty reduction and improving the socio-economic conditions of the rural poor. The study has also attempted to throw some light on the constraints being faced by the beneficiaries in the study area.

This scheme has given statutory status to the program and has the following salient provisions: -

➡ Providing a good life standard for the poor or villagers' people.

Guaranteed 100 days of employment to a rural household whose adult members are willing to work or Volunteer to do unskilled manual labor

Job is to be provided within a radius of 5 km of the registered household. Special provisions are mandated at worksites to look after children under the age of six years and women engaged under the Act.

There is a provision of payment of compensation if the registered household is not provided employment or job within days of requesting for a job after issuance of Job card and registration. This provision is conspicuous for its role in maintaining the sustainability of livelihood in rural areas.

Guaranteed 100 days of employment to a rural household whose adult members are willing to work or Volunteer to do unskilled manual labor.

**REVIEW OF LITERATURE :** Whereas an Indian village economy is largely dependent on agriculture where one person or few persons own the land and other villagers work as laborers in their lands. Looking from the above context the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) becomes an interesting subject to study because it is not only giving employment to the rural poor but also creating sustainable and durable assets in the village. The Act gives power to the daily wage laborers to fight for their right to receive the wages that they must receive and not just a means of providing social security to its people but also an opportunity to promote overall village development and later the balance of power in rural society. The economic development of a country depends on the proper utilization of both human and non-human resources. India, at the time of its independence, as mentioned above, had a low level of economic and technological development, low per capita income, slow pace of development of economic and social institutions, and outdated methods of production techniques. The government's objective then was to attain and accelerate the economic development of the country. Hence, the Planning Commission of India was established in March 1950 after the resolution of government to endorse rapid rise in the standard of living of the people through systematic utilization of the resources of the country, increasing production, and offering opportunities to all for employment in the service of the community.

In 1972-73 Employment Guarantee Scheme (EGS) was first announced in Maharashtra. It is the first Indian state to have an employment generating scheme based on a right to livelihood approach. In 1980 the food for work program was restructured and renamed as National Rural Employment Programme (NREP). It was based on 50% of the central funding. In the 6th plan, this programme was reviewed and continued. In the 7th plan, an aspect of social forestry was introduced in NREP. Rural Landless Employment Guarantee Programme (RLEGP) was introduced in 1983 to supplement the NREP. It was a 100% centrally sponsored scheme. Under this programme preferences were given to landless laborers, women, scheduled castes, and scheduled tribes, who were found to be largely kept outside of the previous programs.



The Rural Employment Guarantee Scheme will be implemented by the State Government, with funding from the Central Government. According to Section 13 of the Act, the “principal authorities” for planning and implementation of the Scheme are the Panchayats at the District, Intermediate, and village levels. However, the division of responsibilities between different authorities will be maintained. The basic unit of implementation is Block. In each Block, a “Programme Officer” will be in charge. The Programme Officer is supposed to be an officer of the rank no less than the Block Development Officer (BDO), paid by the Central Government, and with the implementation of REGS as his or her sole responsibility. The Programme Officer is accountable to the “Intermediate Panchayat” as well as to the District Coordinator

The MGNREGA was implemented in 88 villages of Dunda Block, in government records but the research studies found some difference between the government records and research survey. In this study, five villages of Dunda Blocks are selected randomly for the survey including 250 Skilled and unskilled labor of which 30 from each village.

On this Scheme (MGNREGA) extensive researches had been conducted so in this paper we are using a three-dimension review of literature which is Wages, Employment, and agriculture.

**Wage:** -MGNREGA has a demand-driven Scheme so under this scheme part of funds 60% expended on wages but due to irregularities in some cases work has been completed but wages have not been given to beneficiaries. Payments of wages through the bank are another safe Guard of this scheme but due to corruption and irregularities wage has been not received by beneficiaries.

**Employment :** -Employment and unemployment allowance have an important part of MGNREGA scheme, this scheme has given an assurance to rural people 100 days employment on nearer at home but unfortunately, works were not provided within 15 days, its provision under NREGA Act to Provide unemployment allowance on this study works have been done in Dunda Block region apart of Uttarkashi District which is a backward area of Uttarakhand in some villages no single person beneficial under MGNREGA but MGNREGA official data saying employment was given to peoples And some serious irregularities also found under MGNREGA in Dunda Block, Gram Pradhan which is the important part of the implementation of this scheme did not know about MGNREGA scheme. Social audit one of the major safeguard of this scheme purely failed in implementation in some cases due to heavy corruption involvement should not implement properly. Unemployment allowance is another important safeguard but it is a block matter so in other blocks of Uttarkashi, especially in the Dunda Block region.

**Agriculture :** NREGA has had a positive impact on agriculture in the district through improved access to irrigation. Before the NREGA, sources for irrigation were very few only one crop was sown in Rabi. Post NREGA, with the construction of canals and irrigation water tank facilities, has shown a marked improvement. Several households have even diversified into vegetables. The benefits of the village canals and irrigation tank could not be measured but the people were upbeat about the possibility of storing more water than before when the rains arrive this year.

Despite the dry conditions, the water table did not fall dramatically due to the benefits of water conservation done by MGNREGA. Here, the role of the watersheds constructed under the MGNREGA Development Programme is highly significant in raising and maintaining the groundwater levels. Under NREGA with most canals and irrigation water tanks having been constructed on private and panchayat

land; also, maintenance of old structures has been carried out NREGA. This has increased the income for these households and the problems of drinking water for the animal and farming scarcity have become less.

Respondents also report an increase in the area after the work done under NREGA. Around 55% of the respondents together report an increase in crops production level. There has been a change in the cropping pattern as well with several respondents reporting about increasing productivity of crops. Crops like (Pulse, Rajama, Masoor (Arhar) Urad, etc.), rice, wheat, Kodo, Makka's, and different types of vegetable production has also been increased irrigation water availability.

These are the kind of impacts that the NREGA (*when it is not implementing properly*) has the potential to spread across the country and such examples though few can surely increase if the focus of the act remains firmly entrenched in water conservation. Also, this is the kind of livelihood security and the generation of sustainable employment that the act sought to provide in the first place.

**Availability of Water :** This study also found the impact of NREGA on the availability of water brings forth very significant results. Where very few works have been undertaken under NREGA, and some of the respondents attributed NREGA works increased water availability; the respondents agreed that NREGA had led to increased water availability. But here it's the problem of regular water availability. The changes discussed in agriculture are in themselves a testament to the good work carried out in the district as well as the development potential of the act.

**Migration :** These five villages of Dunda Block witness large-scale migration during the summer session or we can say tourist season from April to September or October. The laborers come back during October and November in the villages. With NREGA works concentrated throughout the year, these people now have the option to stay within the village instead of migrating outside looking for work. This study did not find so many changes in the migration; however, a lot of people feel 100 days per family is not enough. If each member in a family of 5 works under NREGA, then they can only work for 20 days in a year which is not sufficient to pass through the entire lean season. So, they have to migrate the rest of the year approx. five months. Even the women accompany them in the migration when the work is suitable. Around 20-30% of women accompany their husbands in migration. The average duration of migration for those over the past two years was 140 days. This implies that they migrate out of the village for over 40% of the year. However, we do not have data for the migration before the launch of the NREGA and hence cannot compare the reduction brought about because of it. This is a massive reduction though the figures might not be represented as the rates of migration in other parts of the district might vary. This is a huge success for the NREGA and a significant step in the direction of attaining the short-term objective of food and livelihood security within the village throughout the year.

However, despite the large availability of work in migration has not ceased completely. We could observe two probable explanations for this. One is the fact that educated individuals do not want to work under NREGA and would rather migrate in search of better opportunities. Further, the stipulated 100 days per household is hardly enough for a family of reasonable size to pass through the entire lean season when there is no work for months. Even these 100 days are rarely provided. Within the Uttarkashi district, the provision of work at an average of 41 days per person. This could be a reflection of the

much higher demand for workers in these villages of dunda block due to the absence of alternative means of livelihood.

### METHODOLOGY

**THE STUDY AREA :** The study has been conducted in the five villages (*Patara, Malana, Pujargaun, bandhu, and Kalyani*) of Dunda Block of Uttarkashi District. This is the largest block of Uttarkashi district as per area as well as population, the block is also having a great cultural background and brave history. This study randomly takes ten (05) villages for the survey and 250 people among 50 people from each village of the block.

**PRIMARY TOOLS OF DATA COLLECTION :** Observation and interviews are the methods of collecting data. Through this method, this study observed and interviewed event or realities which exist in the field. This study observed and interviewed that what the house is made up of, whether it is a pakka house or Kacha house, availability of facilities in the villages, laborers' daily working hours, patterns of communication between farmers, and daily wage.

**SECONDARY DATA :** The secondary data was collected mainly through published works in the form of books, articles, and internet resources. This study used secondary data to understand the literature review concerning the topic chosen for the research study. Through this secondary data, he could scrutinize and extract that information from this data which was significant for the research study. From these published works, this study was able to theoretically understand the research study he is engaged with, and he could be able to draw on the concepts which were relevant for his study.

**Sampling and Sample Size :** Convenience sampling was used in this study. Within the district, this study selected five villages (*Patara, Malana, Pujargaun, Bandhu, and Kalyani*) of Dunda Block.

While interviewing farmers and the laborers of the village the researcher used convenience sampling for determining people for the interview. The sample size for the research was (250) 50 from each village.

**Limitations of the Study :** The researcher encountered the following limitations in his study: The study undertaken by the researcher focuses on particular villages of Dunda Block of District Uttarkashi. It may not be applicable in other parts of the country.

However, certain characteristics of MGNREGA implemented village in Madhya Pradesh may be the same and that can be generalized across the country.

The researcher could not interact much with the government officials due to time constraints, therefore the decision-making people's views regarding MGNREGA cannot be included in the research. The researcher had even less little time to gather all the primary data. Consequently, a range of issues had been left out from the research

### LABOUR BUDGET PART-I

State : UTTARAKHAND

District : UTTAR KASHI (Table 1)

S No.	Blocks	No of HH expected to demand employment	No of person-days expected to be generated	Expenditure likely to be incurred
1	Bhatwari	1578	206222	488.06
2	Chinyalisaur	2885	271271	565.28
3	Dunda	3242	305759	723.63

<b>4</b>	<b><u>Mori</u></b>	<b>1595</b>	<b>147617</b>	<b>349.36</b>
<b>5</b>	<b>Naugaon</b>	<b>6899</b>	<b>239385</b>	<b>565.68</b>
<b>6</b>	<b><u>PUROLA</u></b>	<b>1280</b>	<b>120697</b>	<b>285.65</b>
<b>Total</b>		<b>17479</b>	<b>1290951</b>	<b>2977.66</b>

**LABOUR BUDGET PART-I**

Selectevie Five Villages.

**District : UTTAR KASHI****Block : -Dunda (Table 2)**

S No.	Villages	No of HH expected to demand employment	No of persondays expected to be generated	Expenditure likely to be incurred
<b>1.</b>	<b>Kalyani</b>	<b>38</b>	<b>3620</b>	<b>8.567</b>
<b>2.</b>	<b><u>Pujar</u></b>	<b>17</b>	<b>1641</b>	<b>3.883</b>
<b>3.</b>	<b><u>Jineth</u></b>	<b>18</b>	<b>1710</b>	<b>4.045</b>
<b>4.</b>	<b><u>Patara</u></b>	<b>52</b>	<b>4872</b>	<b>11.53</b>
<b>5.</b>	<b>Malna</b>	<b>17</b>	<b>1641</b>	<b>3.884</b>
<b>6.</b>	<b>Total</b>			

**District: UTTAR KASHI****Block: -DundaVillage: -Patara(Table 3)**

S No.	Months	No of HH expected to demand employment	No of person-days expected to be generated	Expenditure likely to be incurred
<b>1</b>	<b>April</b>	<b>6</b>	<b>148</b>	<b>0.35</b>
<b>2</b>	<b>May</b>	<b>9</b>	<b>376</b>	<b>0.889</b>
<b>3</b>	<b>June</b>	<b>11</b>	<b>541</b>	<b>1.287</b>
<b>4</b>	<b>July</b>	<b>23</b>	<b>772</b>	<b>3.202</b>
<b>5</b>	<b>August</b>	<b>29</b>	<b>1353</b>	<b>4.558</b>
<b>6</b>	<b>September</b>	<b>34</b>	<b>1926</b>	<b>4.948</b>

7	October	38	2091	5.911
8	November	42	2498	7.897
9	December	45	3337	9.377
10	January	48	3969	9.976
11	February	50	4511	10.676
12	March	52	4872	11.53

**LABOUR BUDGET PART-I****District: UTTAR KASHI****Block: -DundaVillage: -Malana(Table 4)**

S No.	Months	No of HH expected to demand employment	No of person-days expected to be generated	Expenditure likely to be incurred
1	April	2	50	0.118
2	May	3	127	0.3
3	June	4	182	0.437
4	July	8	260	0.615
5	August	10	456	1.079
6	September	12	649	1.535
7	October	13	704	1.666
8	November	14	842	1.992
9	December	15	1124	2.66
10	January	16	1334	3.157
11	February	17	1519	3.594
12	March	17	1641	3.884

**LABOUR BUDGET PART-I****District: UTTAR KASHI      Block: -Dunda Village: -Kalyani (Table 5)**

S No.	Months	No of HH expected to demand employment	No of person-days expected to be generated	Expenditure likely to be incurred
1	April	4	110	0.256
2	May	7	279	0.66
3	June	8	402	0.951
4	July	17	574	1.358
5	August	22	1006	2.38
6	September	26	1431	3.386
7	October	29	1554	3.676
8	November	31	1865	4.392
9	December	33	2479	5.866
10	January	36	2943	6.966
11	February	37	3352	7.933
12	March	38	3620	8.567

**LABOUR BUDGET PART-I****District: UTTAR KASHI      Block: -Dunda Village: -Pujargaun (Table 6)**

S No.	Months	No of HH expected to demand employment	No of person days expected to be generated	Expenditure likely to be incurred
1	April	2	50	0.118
2	May	3	127	0.3
3	June	3	182	0.43
4	July	7	260	0.615
5	August	9	456	1.079
6	September	12	649	1.535
7	October	13	704	1.666
8	November	14	842	1.992
9	December	15	1124	2.66
10	January	16	1334	3.157
11	February	16	1519	3.594
12	March	17	1641	3.883



**LABOUR BUDGET PART-I****District: UTTAR KASHI    Block: -Dunda Village: -Baandu (Table 7)**

S No.	Months	No of HH expected to demand employment	No of person-days expected to be generated	Expenditure likely to be incurred
1	April	2	52	0.123
2	May	3	132	0.312
3	June	4	190	0.449
4	July	8	271	0.641
5	August	10	475	1.124
6	September	12	675	1.597
7	October	13	733	1.737
8	November	15	876	2.073
9	December	16	1171	2.771
10	January	17	1389	3.287
11	February	18	1582	3.744
12	March	18	1709	4.045

*From Source of - Govt. of India Ministry of Rural Development Department of Rural Development the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (30-Sep-2013)*

**Study Analysis/ Result**

The study is limited to a few villages of Dunda Block of Uttarkashi district and the findings of this study cannot be generalized in a larger context as the sample size for this study was very small.

**Awareness About MGNAREGA (250) Male and Female from Five Villages. (Table8)**

Sr. NO.	Provisions	Aware	Unaware
01	Time period of payment of labor	22%	78%
02	Minimum amount of payment	92%	08%
03	Distance of workplaces	67%	33%
04	Facilities at work place	09%	91%
05	Quota of women labor	07%	93%
06	Un-employment allowance	68%	32%
07	Complaint against any irregularities	02%	98%

**Impact of MGNREGA On Livelihoods (Result from Questioners) (Table 9)**

Sr. NO.	Provisions	Agree	Disagree
01	Is MGNREGA helps to Preventing hunger	95%	05%
02	Increasing saving amount	56%	44%
03	Health	54%	46%
04	Promote schooling	54%	46%
05	Liabilities payment	30%	70%
06	Increase life style/ standard	66%	36%
07	Communication and entertainment facilities	78%	22%
08	Getting employment time to time through NEREGA	00	100
09	Satisfy with 100 days job guarantee or is it enough to survive family	12%	88%
10	MGNREGA have lot of corruption or fully corrupted	87%	13%

**BPL Surveys report of government data. According to 2002**

Sr. NO.	Block	Total number of famely	Total number of BPL Faimily	SC	ST	OBC	Minorities	General	Total
1.	<u>Bhatwari</u>	10374	3388	506	130	8	0	2744	3388
2.	<b>Dunda</b>	<b>13890</b>	<b>5851</b>	<b>1447</b>	<b>73</b>	<b>7</b>	<b>0</b>	<b>4324</b>	<b>5851</b>
3.	Chinyalisaur	10183	3676	1250	0	27	8	2388	3676
4.	Mori	7356	5360	1846	69	97	129	3219	5360
5.	<u>Naugaon</u>	12713	7813	2785	16	139	2	4871	7813
6.	<u>PUROLA</u>	6009	2400	1164	47	127	1	1061	2400
7.	<b>Total</b>	<b>60525</b>	<b>28485</b>	<b>8998</b>	<b>335</b>	<b>405</b>	<b>140</b>	<b>18607</b>	<b>28485</b>

(Retrieve from- <http://uttarkashi.nic.in/pages/display/62-d.r.d.a.>) Total number of villages 427

**Discussion :** Several poverty alleviation schemes have been put in a rural part of India since independence MGNREGA one of them but important thing is that it's provided 100 days legal jobs guarantee in a rural part of India for who is willing to do unskilled manual work under this scheme. MGNREGA implemented in District Uttarkashi many irregularities were founded in implementation of this scheme systems roll has not been prepared properly. Unawareness about this scheme another bigger issue under this Scheme because many rural peoples who are necessary want to do jobs nearer to living place was not aware of this scheme. After getting a job card peoples did not know its importance. There is a major problem found in the study. Government reports on this scheme show jobs were provided for rural peoples who want to jobs but this study has found many irregularities shown oppose to picture.

This study found serious irregularities in implementation. Peoples who are working in this scheme are only getting 10 - 250 days of employment as well as those who want to do a job still, they are not getting employment under this scheme. Government reports on MGNREGA show that employment as provided those who are demanded in this scheme but this study was not found so much.

**Conclusion :** The paper attempts to gauge the prospective impacts of the actin providing sustained relief to communities by looking at the kind of works being undertaken at the village level under the act along with its associated like wages. Just to reassert our strategy and the lens through which we look at NREGA, we strive to answer the question “Why monitor the impacts of NREGA on rural assets?”

From a socio-economic standard point, MGNREGA can play a key role in improving the socio-economic status of the rural peoples based on 100 days or more than 100 days of employment if? It was implemented properly.

From an environmental standpoint, rural employment programs can play a key role in improving the rural natural resource base and increasing overall rural production. Environmental regeneration demands heavy labor inputs — whether it is reforestation, construction of water harvesting structures, or soil conservation. But since the economic returns are not immediately apparent, impoverished people are likely to neglect these tasks. Rural employment programs can help villagers solve this problem because they can mobilize impoverished labor to regenerate the environment.

In this scenario, employment schemes such as the NREGA can play a key role since the bulk of unemployment (nearly 80%) is in rural India. In economic terms, this would be an investment in building up rural natural capital, which will result in the creation of water harvesting structures to irrigate farmlands and increase crop production and well-stocked forests and grasslands to support dairy development and a variety of artisanal crafts. The rural environment’s sustainable, employment-supporting capacity can thus go up substantially.

### References

1. Surendra Singh Research Scholar,(2013) Department of Economics, BabasahebBhim Rao AmbedkarUniversity, Lucknow, INTERNATIONAL JOURNAL OF MANAGEMENT AND DEVELOPMENT STUDIES
2. [http://nrega.nic.in/Netnrega/writereaddata/state\\_out/lab\\_budget\\_1\\_S\\_35\\_local\\_2013-2014.html](http://nrega.nic.in/Netnrega/writereaddata/state_out/lab_budget_1_S_35_local_2013-2014.html)
3. <http://uttarkashi.nic.in/pages/display/62-d.r.d.a>.
4. [http://nrega.nic.in/netnrega/homestcity.aspx?state\\_code=35&state\\_name=UTTRANCHAL](http://nrega.nic.in/netnrega/homestcity.aspx?state_code=35&state_name=UTTRANCHAL)
5. <http://www.investopedia.com/terms/e/economicgrowth.asp#axzz28V8XSDBh>
6. [http://en.wikipedia.org/wiki/Economic\\_growth](http://en.wikipedia.org/wiki/Economic_growth)
7. <http://www.uktrakhand govt.ac.in>
8. [www.euttaranchal.com/tourism](http://www.euttaranchal.com/tourism)
9. <http://azimpremjifoundation.org/field-update/bal-choupal-uttarkashi-march-2012>

\* \* \* \* \*

## बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक के ऋण वितरण का अध्ययन करना

ब्रजनन्दन गुप्ता\* डॉ. अभिलाष कुमार श्रीवास्तव\*\*

**सारांश :** यह शोध-पत्र वित्तीय वर्ष 2011-12 से लेकर 2015-16 तक बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक की ऋण वितरण और ऋण याजनाओं का अध्ययन करता है। ग्रामीण गरीबों को फसल उत्पादन और अन्य कृषि से सम्बन्धित उद्देश्यों के लिए ऋण की सुविधा प्रदान करने के मूल उद्देश्य के रूप में बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक स्थापित किया गया था। बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक द्वारा ऋण देने और अन्य वित्तीय सुविधाओं के सम्बन्ध में सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों और स्वरोजगारियों की समस्या समाप्त हो गयी है जो ग्रामीण बैंक की स्थापना के समय थी। अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक की ऋण वितरण की प्रगति संतोषजनक है। इस शोध पत्र में द्वितीयक समंक का प्रयोग किया गया है।

**प्रमुख शब्द :** बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक, ऋण योजना, ऋण का वितरण, ग्रामीण किसान।

**परिचय :** क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भारत जैसे देश के समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जहाँ पर बहुत अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है। ग्रामीण क्षेत्र के लोग वित्त के अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर थे जैसे स्थानीय साहूकार, जमींदार आदि। साहूकार अनेक समस्याएं उत्पन्न करते थे जैसे ब्याज की उच्च दर के हिसाब से रुपये वापस लेना, उन पर जबरदस्ती का व्यवहार करना और उनकी फसल को कम मूल्य पर बेचने के लिए मजबूर करते थे। ग्रामीण लोग मानसून पर निर्भर रहने के कारण फसलों के अनियमित उत्पादन के कारण जोखिम का सामना करते थे। इस प्रकार की समस्याएं ग्रामीण विकास में बाधा उत्पन्न करती थीं। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए ग्रामीण और कृषि क्षेत्र के विकास के लिए पर्याप्त संस्थागत ऋण सुनिश्चित करने के उद्देश्य से 2 अक्टूबर, 1975 को राष्ट्रपति अध्यादेश के तहत पांच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किये गये। इन बैंकों का मुख्य उद्देश्य छोटे और सीमांत किसानों, कृषि मजदूरों, ग्रामीण कारीगरों और छोटे उद्यमियों को ऋण एवं अन्य वित्तीय सुविधाएं प्रदान करना है ताकि कृषि, व्यापार, उद्योग और ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य रचनात्मक गतिविधियों का विकास किया जा सके। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की पूंजी में 50 प्रतिशत का हिस्सा भारत सरकार का, 35 प्रतिशत हिस्सा प्रायोजक बैंक का और 15 प्रतिशत हिस्सा सम्बन्धित राज्य सरकार का है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम 1976 के अनुसार प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की अधिकृत पूंजी 5 करोड़ रुपये है और निर्गमित पूंजी अधिकतम 1 करोड़ रुपये है।

भारत का सबसे बड़ा प्रदेश उत्तर प्रदेश है जिसमें 7 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम 1976 23 A की उपधारा 1 के तहत बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक स्थापित किया गया है जिसका मुख्यालय रायबरेली में है। यह 14 जिलों में फैला हुआ है। भारत में बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण कृषकों को साहूकारों से मुक्त करना है और ग्रामीण बुनियादी ढांचे के विकास में मदद करना है। ग्रामीण और अर्द्ध ग्रामीण क्षेत्र के प्रत्येक निवासी को ऋण की सुविधाएं प्रदान करना है। बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक द्वारा विभिन्न प्रकार के ऋण प्रदान किये जाते हैं जैसे ट्रैक्टर व कृषि मशीनरी हेतु ऋण, बागवानी ऋण, व्यापार ऋण, आवास ऋण, व्यक्तिगत ऋण एवं शिक्षा ऋण आदि।

इस शोध पत्र में बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक द्वारा विभिन्न प्रकार से दी गयी ऋण योजनाओं को शामिल किया जाता है। इस शोध पत्र को सात वर्गों में विभाजित किया जाता है।

\* शोधार्थी, वाणिज्य विभाग, अतर्रा पी.जी. कॉलेज, अतर्रा, बाँदा, उ.प्र.

\*\* एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, अतर्रा पी.जी. कॉलेज, अतर्रा, बाँदा, उ.प्र.

**साहित्य समीक्षा :** बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक का अध्ययन करने के लिए इसके सुधारों को तीन चरणों में विभाजित किया गया है—

i gy k pj . k 2000–2004

दूसरा चरण 2004–2010

तीसरा चरण 2010–2016

लेकिन ये चरण सभी शोधकर्ता के लिए अनिवार्य नहीं हैं। बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक पर साहित्य सीमित है। बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक में प्रभावशीलता और दक्षता आवश्यक है और समय-समय पर कई विद्वानों ने इसका पता लगाया है। भारत में बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक की प्रभावशीलता का अध्ययन उनके मूल्यांकन में किया गया है। उनकी समंक विश्लेषण अवधि वित्तीय वर्ष 2011–12 से 2015–2016 है। भारत में बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक की समग्र स्थिति काफी उत्साहजनक नहीं है। ग्रामीण बैंकों की दक्षता पर इसी तरह का एक और अध्ययन साथे मिलिंद द्वारा किया गया था। उन्होंने बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक की दक्षता का अध्ययन 2011 से लेकर 2016 तक किया। बैंक की क्षमता ब्याज आय और गैर ब्याज आय पर निर्भर करती है। अध्ययन में पाया गया है कि पुनर्गठन के बाद ग्रामीण बैंकों की दक्षता में काफी सुधार हुआ है और सकारात्मक परिणाम सामने आये हैं।

महाजन, विजय और रमोला, भारतीय गुप्ता ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष निकाला है कि ग्रामीण वित्तीय संस्थानों को उन बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है जो उनके नियंत्रण से परे हैं और ग्रामीण गरीबों की वित्तीय सेवाओं में सुधार के लिए व्यावहारिक और टिकाऊ दृष्टिकोण विकसित करने के किसी भी प्रयास को विनियामक मुद्दे के अलावा माइक्रो-नीति की एक पूरी श्रृंखला को सम्बोधित करने की आवश्यकता होगी जिसमें प्रतिनियुक्ति, स्वामित्व और शासन शामिल है। गहन जानकारी प्राप्त करने के लिए सभी बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक को लाभ कमाने वाली शाखाओं और हानि वाली शाखाओं सभी को अलग-अलग किया जाता है। घाटेवाली शाखाओं को फायदे में लाने के लिए प्रायोजक बैंक को ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारतीय रिजर्व बैंक और प्रायोजक बैंक घाटे वाली शाखाओं को मुनाफे में लाने के लिए प्रयास कर रही है। वाणिज्यिक और उनसे सम्बन्धित बैंकों के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा महत्वपूर्ण कदम उठाया है और सन् 2004 में बैंकों की वित्तीय स्थिति देखने के लिए एक मानव संसाधन आयोग बनाया था और आयोग की सिफारिशों को पॉलिसी की मध्यावधि समीक्षा में शामिल किया गया है। रिपोर्ट में, भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकों को 'नो फ्रिल्स' बैंकिंग खाता उपलब्ध कराने के लिए अधिक से अधिक वित्तीय समावेशन प्राप्त करने के दृष्टिकोण से प्रेरित किया।

डॉ० जे० वेंकटेश और एम० एस० आरलवाण्याकुमारी (2017) ने बताया कि एम. एस. एम. ई. क्षेत्र के समग्र विकास और विकास के लिए शुरु की जा रही योजनाओं में बहुत अधिक बाधाएं हैं जैसे—उद्यमियों में वित्तीय अशिक्षा, जानकारी की कमी, वित्तीय पहुँच की कमी, प्रदेश स्तर की नीतियाँ, बुनियादी ढाँचे की कमी, उच्च लागत और प्रौद्योगिकी अवरोध आदि। बजट भाषण 2015-16 में वित्त मंत्री श्री अरुण जेटली के अनुसार, लगभग 5.77 करोड़ लघु व्यवसाय इकाइयाँ और सूक्ष्म इकाइयाँ हैं, प्रमुख रूप से एक मात्र स्वामित्व, जो छोटे विनिर्माण व्यापार या सेवा व्यवसायों में शामिल है। 62 प्रतिशत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के पास है। इन कमजोर वर्गों और निम्न आय समूहों के लिए वित्तीय सेवाओं और साख को आसानी से अपनाना मुश्किल है। भारत सरकारने प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के रूप में सूक्ष्म उद्यम खंड को धन देने के लिए कुछ प्रमुख योजना शुरु की।

**उद्देश्य :** बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक की ऋण वितरण योजना के बारे में जानने के लिए।

**अनुसंधान पद्धति :** यह एक वर्णनात्मक षोध है। इसमें द्वितीयक समंक का प्रयोग किया गया है। इसमें सामग्री विश्लेषण का उपयोग किया गया है। सामग्री विश्लेषण में बैंक की वेबसाइट, जर्नल, समाचार पत्र, पत्रिकाएं और बैंक के प्रतिवेदन आदि शामिल हैं।

**डेटा विश्लेषण :** बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों, स्वरोजगारियों एवं ग्रामीण दस्तकारों को आसान एवं आकर्षक ऋण प्रदान करता है जैसे—

- किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से ऋण प्रदान करना,
- ट्रैक्टर एवं कृषि मशीनरी हेतु ऋण प्रदान करना,

- पशुपालन एवं डेयरी ऋण प्रदान करना
- मत्स्य पालन के लिए ऋण प्रदान करना,
- बोरिंग एवं पम्पसेट के लिए ऋण प्रदान करना,
- किसान खाद योजना के तहत ऋण प्रदान करना,
- बागवानी ऋण देना,
- स्वरोजगार क्रेडिट कार्ड पर ऋण प्रदान करना
- हस्तशिल्प/दस्तकार क्रेडिट कार्ड पर ऋण प्रदान करना
- व्यापार ऋण प्रदान करना
- स्वरोजगारियों व पेशेवर व्यवसायियों हेतु ऋण प्रदान करना,
- हथकरघा बुनकर समूहों को ऋण प्रदान करना,
- स्टॉक के विरुद्ध ऋण प्रदान करना,
- स्वयं सहायता समूह के माध्यम से ऋण प्रदान करना,
- सोलर लाइट सिस्टम की स्थापना हेतु ऋण देना,
- आवास ऋण देना,
- व्यक्तिगत ऋण प्रदान करना,
- शिक्षा ऋण प्रदान करना,
- राष्ट्रीय बचत पत्र/किसान विकास पत्र/जीवन बीमा पॉलिसी के विरुद्ध ऋण प्रदान करना,
- प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के तहत ऋण प्रदान करना,
- कामधेनु, मिनी कामधेनु, माइक्रो कामधेनु योजना के तहत ऋण प्रदान करना,
- सम्पत्ति ऋण योजना के तहत ऋण देना।

बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक ने वित्तीय वर्ष 2014-15 में 3,389.22 करोड़ रुपये का फसली ऋण प्रदान किया। वित्तीय वर्ष 2015-16 में 4,455.71 करोड़ रुपये का फसली ऋण प्रदान किया।

कमजोर वर्ग को वित्तीय वर्ष 2014-15 में 3,95.51 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया, वित्तीय वर्ष 2015-16 में 3,680.55 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया।

महिलाओं को वित्तीय वर्ष 2014-15 में 609.71 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया, वित्तीय वर्ष 2015-16 में 709.87 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया।

बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक ने विभिन्न ऋण योजनाओं के माध्यम से ऋण प्रदान किया है—

अध्ययन की सुविधा के लिए वित्तीय वर्ष 2011-12 से लेकर वित्तीय वर्ष 2015-16 तक ऋण वितरण को सारणी के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

**बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक द्वारा ऋण का वितरण  
(धनराशि करोड़ में)**

क्रमांक	वित्तीय वर्ष	धनराशि	कमी/वृद्धि	कमी/वृद्धि प्रतिशत में
1.	2011-12	2083.83	0	0
2.	2012-13	2496.91	413.08	19.82
3.	2013-14	2981.66	897.83	43.09
4.	2014-15	3671.28	1587.45	76.18
5.	2015-16	4551.81	2467.98	118.43



बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक द्वारा अधिकतर ग्रामीण लोगों को ही ऋण प्रदान किया जाता है इसमें बैंक द्वारा फसली ऋण प्रदान किया जाता है, सूक्ष्म एवं लघु उद्योग के लिए ऋण प्रदान किया जाता है, किसान विकास पत्र एवं राष्ट्रीय बचत पत्र के विरुद्ध बैंक द्वारा ऋण प्रदान किया जाता है, बैंक द्वारा महिलाओं को भी ऋण प्रदान किया जाता है, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत भी ऋण प्रदान किया जाता है, खेत-किसानी से सम्बन्धित कोई मशीन खरीदने के लिए भी ऋण प्रदान किया जाता है। बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक द्वारा प्रत्येक वर्ष ऋण प्रदान किया जाता है लेकिन यहाँ पर सिर्फ हमारे पास पांच वर्षों का ही आंकड़ा है। उसी के आधार पर हम बैंक की ऋण की स्थिति का अध्ययन करेंगे। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से वित्तीय वर्ष 2011-12 को आधार वर्ष माना है। उसी के आधार पर वर्ष 2012-13 में रुपये 413.08 करोड़ की वृद्धि हुई है, वर्ष 2013-14 में रुपये 897.83 करोड़ की वृद्धि हुई, वर्ष 2014-15 में रुपये 1,587.45 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई है, वर्ष 2015-16 में रुपये 2,467.98 करोड़ की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार प्रतिशत में अध्ययन करने के लिए 2011-12 को आधार वर्ष माना है। वित्तीय वर्ष 2012-13 में 19.82 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वित्तीय वर्ष 2013-14 में 43.09 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वित्तीय वर्ष 2014-15 में 76.18 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वित्तीय वर्ष 2015-16 में 118.43 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

**सुझाव एवं निष्कर्ष**—उपरोक्त डेटा विश्लेषण के माध्यम से ज्ञात होता है कि बैंक ने प्रत्येक वित्तीय वर्ष में अपने ग्रामीण किसानों, खेतिहर मजदूरों और स्वरोजगारियों को ऋण प्रदान किया है जरूरत के समय उन्हें फसली ऋण भी दिया है। दिन-प्रतिदिन बढ़ती प्रौद्योगिकी के कारण किसानों को ट्रैक्टर और थ्रेसर खरीदने के लिए ऋण प्रदान किया जाना चाहिए। खाद एवं बीज के लिए किसानों को ऋण प्रदान किया जाना चाहिए।

#### सन्दर्भ—सूची

1. खानखोजे, दिलीप और साथे, मिलिंद (2008) : ग्रामीण बैंक की दक्षता : अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अनुसंधान, खंड 1, नंबर 2।
2. शुक्ल, डॉ० एम०एस० एवं सहाय, डॉ. शिवपूजन (2013) : व्यावसायिक सांख्यिकी, आगरा : साहित्य भवन पब्लिकेशन्स
3. दिलीप कुमार झा और दुर्गा शंकर सारंगी, (2011) : “नईपीढ़ी के बैंकों का प्रदर्शन : एक तुलनात्मक अध्ययन”, वाणिज्य और प्रबन्धन में अनुसंधान की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका।
4. नाबार्ड का वार्षिक प्रतिवेदन
5. भारतीय रिजर्व बैंक की रिपोर्ट
6. बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक का वार्षिक प्रतिवेदन
7. [www.barodaupgraminbank.com](http://www.barodaupgraminbank.com)

\* \* \* \* \*

## Effect of Business Ethics in Marketing and on Marketing Mix

*Dr. Sunita Sinha\**

**Abstract :** Ethics is a science of morality. It speaks of what is “good” or “bad” but much more “what is right” or “what is wrong”. Thus, what is right is always good; however, what is bad is not necessarily wrong. The value system of good and bad and right and wrong is the base for smooth and satisfactory working of community. It means that the business community is allowed to make profits but not at the cost of others. Today we hear, anti-social and immoral practices such as corruption, frauds, injustices, cunning, dishonesty and so on. **Unethical Practices of Business**

Let us take few living examples to have clear understanding of business ethics :

In this dynamic world of business, corruption is rampant and is practised with invisible art of cunning. It is unfortunate that a business house supports and justifies such corrupt practices that it is a worldwide. A certain percentage is fixed of the amount involved in getting the work done, may it be a contract, a job or a loan. Among Asian Countries, Hong Kong, South Korea, India, Pakistan have a rank.

There are cases of misuse of powers granted in the field of commercial activity. For example, the Duty Exemption Entitlement Certificate Scheme which provides concessions to exports by way of duty free imports, is reported to have resulted in frauds.

**Introduction :** In the medieval period, the Roman Catholic Church clearly defined canon law that prescribed what was legitimate in certain fields in the business world. Canon means a standard or measure; hence Canon law is the ideal standard for measuring one's behaviour. For example, there were doctrines relating to just wages and prices. A doctor must not increase the price of medicines for a dying patient, thus taking advantage of his serious predicament, an employer must not pay a worker less than a living wage.

In the Indo-Christian tradition, as interest in business ethics was apparent long before the scholastic theologians came on the scene.

The law of Moses prevented reapers from harvesting all their crops, they were obliged to leave some at the edge of fields for the poor. Servants were entitled to their Sabbath rest day.

There was to be an amnesty period every fifth years in which all debts were cancelled. The religious traditions have been equally concerned with prescribing manners in which business affairs ought to be conducted. **Islam** prohibits lending money on interest. Share risk and possible profit into the borrower. Although **Buddha** is not normally associated affairs such as business transactions. In other words, one should not;

- (i) earn one's living by deception.
- (ii) involve in misappropriation of goods or money.
- (iii) involve in employment which takes life of human or animal.
- (iv) involve in the business of drugs.

**Need and Importance of Business Ethics for Marketing :** Business generally faces choice between ethical and non-ethical actions. For example, whether an enterprise should employ some of

government official to get favour from the official. Should a company entertain a potential customer lavishly so that he feels obliged to purchase from the company? Every businessman will make choice in these situations depending upon his moral stance. In general, however, ethical behaviour is becoming increasingly significant in business due to the following reasons.

**Review :** Ethics covers virtually all aspects of our life. Hence, the scope of ethics is very wide. Since ethics is the normative science of conduct, i.e., its function is to judge the moral worth of conduct with reference to a norm. It is the task of ethics to determine the nature of right, good, duty and value. Ethics is closely related to many other sciences. **Politics**, the science of government, formulates laws to regulate the conduct of men in the state. It formulates laws to ensure public good and welfare of the people. It should be noted that authority of ethics is higher than that of politics. Political laws must be subordinate to moral laws. According to **Machiaveli**, "Politics does not come under the preview of ethics as in politics the will of the sovereign is law and he is not bound to obey moral principles."

**Hobbes** thinks that ethics is a branch of policies. But this view cannot be accepted because political laws are enforced by state but moral laws are self-imposed and internal. However, the law of ethics must be applicable to every political law, act and decision. It is not so, politics will work against the welfare of people. Political laws force men to behave in a particular way.

**Economics** too must be closely related to ethics. Economics is no longer considered as science of wealth but of welfare which is not a fact but an ideal. The concept of welfare is a broad one and economics tries to ensure only one type of welfare, is material welfare. Many economists consider economics to be a positive science and think that the task of economics is to discover the laws that govern production and distribution of wealth.

It is quite clear that we cannot do away with ethics in our economic activities. Trade, commerce, industry are based on the profit motive. This motive by itself is not bad. No business organisation can be run successfully if it is continuously suffering losses. Accepting profit motive in all our business and commercial activities, we shall have to be very careful about the means adopted by us for making profit. The moral value of a conduct is determined not merely by motive but also by the means adopted to realise our end.

All our activities, social, economic and political are based on weak foundations, i.e., the rules, regulations, policies and principles framed by human being. To get rid of phenomenon like corruption and dishonesty, we will have to change entire human nature. There is no other way out of problems of hunger, pollution, threat of nuclear war, etc., that the humanity is facing today!

**The Case Study of FICCI :** Federation of India Chamber of Commerce and Industry (FICCI) holds the view that business enterprises are not islands in themselves and that their utility as agents of economic growth depends on the extent that they are part of the mainstream of national life. FICCI has, therefore, consistently sought to anticipate the urges of the community as a whole and worked towards freedom from political domination or economic wants. This is harmony with the endeavours of Government to improve the quality of service to the people and speedy removal of poverty.

The problems of governments and development have been massive. Excessive power in the hands of persons in authority at any level, an elaborate system of controls and regulations, high rates of taxation and easy opportunities led to gradual erosion in ethical values in all sections of society. In the process, the ultimate objective of production and distribution to subserve the interests of common citizen, was lost sight of. FICCI urges all to adhere to the path of justice and fair play. FICCI would make a special appeal. *It is incumbent on business to accept and pursue self-regulation which will create conditions that would facilitate relaxation of controls and regulations, leading ultimately to the establishment of a market economy.*

In this context, FICCI feels that it would be appropriate if every business enterprise constantly keeps in mind as to how much its activity can contribute to greater public good. Towards this end, the FICCI calls upon the business community in the country not to adopt restrictive trade practices and to

do everything in their power to support the objective of spreading entrepreneurship, safeguarding the interest of consumers and promoting balanced development.

FICCI has been making efforts over the year towards this end. It had affirmed its belief in self-regulation first in 1963 and then in 1972 and created consciousness on the part of business to adopt and follow specified guidelines. To carry this objective further, FICCI recommends the following norms for adoption by the business community :

- To ensure quality of articles manufactured, processed or sold and adhere to standards specified.
- Not to manufacture, store or sell adulterated goods.
- To maintain accuracy in weights and measures of goods offered for sale.
- To support free distribution of goods and avert creation of artificial scarcity.
- Not to deal knowingly in smuggled or spurious products.
- To avoid publishing misleading advertisements.
- To ensure that warranty of a product or service is based on adequate / data or test.
- To conform to specified standards or accepted norms for ensuring safety of products.
- To provide effective after-sales service for consumer durables.
- To encourage setting-up of Consumer Affairs Cells in industrial houses and Chambers of Commerce and Industries and Trade Associations to attend to consumer complaints and get proper feedback.

The FICCI has set-up a Consumer Business Council to continuously oversee (the implementation of these norms.

**Marketing Social Responsibility :** Under the new concept of marketing, customer satisfaction and customer interest must be duly ensured in formulating marketing mix. Consumers and consumerism have the following expectations from business organization :

1. Goods and services offered in the market must meet the needs, tastes and purchasing power of common consumers.
2. Fair prices should be charged from the consumers. This is the primary demand of consumers.
3. Fair quality of goods should be ensured for the consumers.
4. Fair trade practices should be adopted by the business.
5. Branding, packaging and labelling must offer adequate and reliable information and guidance to consumers. They should not deceive or mislead consumers.
6. Warranties and guarantees, after sales service must be meaningful and win consumer confidence "customer is always right and your money back if not satisfied" should be integral part of selling policies.
7. Business should not prevent or distort competition. However, it is essential to prevent evils of monopoly and exploitation of public by a monopolist.
8. Healthy competition should be ensured because it offers fair price and greater consumer satisfaction.
9. Self regulation by business can ensure truthful advertising and sales promotion.
10. Uninterrupted supply of goods and services should be there in the market.
11. Those products and services should be provided which not only satisfy consumer wants but that, at the sometimes, are consistent with new social values such as ecological compatibility and consumer safety. In other words, it must be socially desirable.

**Consumerism :** Consumerism is the strongest social and organised movement of citizens and the government agencies to strengthen the rights of consumers. Consumerism or consumer movement is critical in the following areas specifically:

- (i) Misleading and fraudulent advertising.
- (ii) Planned product obsolescence.
- (iii) Dangerous and poorly made products.

- (iv) Acute product differentiation through branding.
- (v) Unwillingness of manufacturers to stand behind the product.
- (vi) The poor pay more.

Consumer movement poses a challenge for business a challenge to become more consumer-oriented and a challenge to do better. However, the society must restructure consumer protection and consumer education cannot be free. The cost of socially desirable consumerism will have to be balanced against the benefits. In the long run, what is good for society is good for business.

**Marketing Social Responsibility :** There has been a deep socio-economic interaction between the segments of the society and management or the organization which is very clear from the following figure :

**Consumer Protection :** It is the ethical responsibility of business to provide protection, from exploitation, to consumers. Such exploitation may be in following forms :

- (i) Adulteration of food items such as vegetable oil, ghee, turmeric powder, spices etc.
- (ii) Poor quality of goods and services.
- (iii) Use of fractional weights and measures.
- (iv) Misleading advertisement, *i.e.*, false claims through advertisement.
- (v) Overcharging of goods and services.

The implication of above practices is that consumer is cheated by businessman. He does not get value for money. Hence, consumerism or consumer movements were started in mid sixties in advanced countries. Now it has spread to other countries too. Consumerism is an attempt to eliminate unfair trade practices such as spurious products, unsafe products, adulteration, deceptive practice black marketing, short weights and measurements, false and misleading advertisements etc.

**Need of Consumer-Protection :** Consumer protection is essential for a healthy economy. Consumers are demanding—Safety of products, full and accurate information about products, a choice and voice (redress). Marketing has become increasingly impersonal. Consumer choice is influenced by mass advertising using highly developed art of persuasion. The consumer typically cannot know whether product meet minimum standard of safety, quality and efficacy. Hence, consumer needs protection.

Consumer needs protection when his **rights** are adversely affected. Therefore, in India, Consumer Protection Act was passed in 1986 to grant certain rights to consumers and provide for remedies if their rights are infringed by business. Following rights of consumers have been stated by the Act.

(i) It is the right of consumer to be protected against goods which are hazardous to health or life. It is the right to safety.

(ii) The consumer has right to be informed about quality, quantity, purity, standard and price of goods he intends to purchase.

(iii) The consumer has right to choose products from a variety of products at competitive price.

(iv) The consumer has right to register dissatisfaction from a product and get his complaint heard. This is the most important right.

(v) The consumer has right to secure ecological balance and pollution free environment.

**Ethical Consideration :** The business must be guided by the social ethics and norms. It is the moral responsibility of a business to protect and advance the interests of consumers. This could be done by the business in following manner :

1. By producing right quality goods.
2. By offering goods and services at fair prices and reasonable prices at right time in right quantity.
3. By providing accurate and adequate information about the product.
4. By maintaining regular supply of products to harass black-marketing.
5. By providing adequate after sale service.
6. By providing opportunity to consumers for redressal of grievances.

7. By maintaining ecological balance and pollution free environment.
8. By educating the consumers.
9. By abiding the Laws, Acts, regulations issued by Government,

Thus, the business, as a part of society, must ensure consumer protection. The businessmen should have social, ethical and moral considerations for the benefit of consumers. They should provide consumer satisfaction in ethical way.

**Conclusion :** One must know that morality or ethics and market faces cannot go hand to hand. Each executive faces very difficult ethical situation. Thus, marketer is to act as marketer and not as salesman. That is mere sales or quick sales are treated as unethical. In case they go by rules, they are unwanted and inefficient as their acts are guided by moral tension. That is why managers need a set of principles that will really help them in figuring out moral/ethical importance a each situation and decide how far they can go in good conscience.

In case we are talking of principles of moral responsibility, there can be two possible philosophies that guide actions :

1. One philosophy strongly advocates that ethical issues are to be decided by the free market forces and legal framework provided by the government of the nation. If our managers are to go by thus philosophy, they are not responsible for making moral judgement. The decisions are to be based on what the accepted system allows.

2. The another philosophy is that instead of making it a philosophy is more refined and enlightened suggesting that a company is to have a social conscience. That is the companies and company managers are to apply high standards of morality and ethics while making company decisions irrespective of “the system allows”.

To put in other words, each company and the manager is expected to work out a philosophy of socially responsible and ethically accountable behaviour. Following **steps can be taken** for having ethical and social situation.

(1) **Let Moral Concern be an Integral Part of Orgnizational Goal :** Concern for moral or ethical values may be an integral part, of the organizational goal alongwith the economic objectives of product maximisation. The employees can then take right decision with and on fair play confidently.

(2) **Let Corporate Ethical Stance be Reflected in Job Description :** The company’s ethical stance may be reflected in the job description of each and every employee and included in the performance appraisal as well as to facilitate accountability.

(3) **Let There be Codes of Ethical Behaviour:** The moral perceptions are shared by industrial attitudes. The process of skill formation which ignores normative values is useless. Hence, there should be some codes of ethical behaviour in the organization.

(4) **Let there be a Carefully Designed Code of Conduct and Its Enforcement:** The best way of designing and enforcing ethical responsibility is to be institutionalize it through company constitution. A model code of conduct needs rich experience. Special workshops, seminars are held from time to time to update value system in the organization. The ethical wrap has been accepted to such an extent that this has emerged a special breed of “ethics specialists”.

#### References :

1. Armstrong, David managing by storying around, New York, 1992, PP. 135-137
2. Arnald Kristen, Team Barics : Practical strategies for team success quebec q pe press, 2000
3. Belanger, Peter “How to lose gracefully, tele professional, January 1995, P 52
4. Byrean of Buiness practice leadership and the law 1995, P 27

\* \* \* \* \*



## Technology Efficiency of Khadi and Village, Industries, and Employment Generation : A Case Study

*Dr. Birendra Kumar Yadav\**

**Abstract :** *The impact of employment generation could well be assessed on the light of a report on district Cottage industries in Bhagalpur through Physical Progressive Year (1987-88) in which reveals that the total number of entrepreneurs in those objectives were 1526. Maximum entrepreneurs were in Gur-Khandsari industries, i.e. 562, it employed 1730 person fully or partially, but employment generation was only 3 per unit, whereas the lime & stone industries employed 527 persons fully or partially in its 8 entrepreneurs so the employment generation was 65.8 per unit. So the lime & stone industry is highly employment generative. The lowest in the table was stone making leather industry, which had 193 entrepreneurs and its employment generation per unit was only 0.9 to give employment to 179 persons.*

*The comparative study of target and achievement of 4 consecutive years has been doing here. In 1985-86, the pottery industries showed half from the target and reversibly in 1987-88, it rose approximately double from 9 to 17. The position of Gur Khandsari Industries also showed better achievement than the target was only 8 as against 13 as per target in the Year 1985-86. The fiber industry had doubled in the year 1987-88. Among all the years, 1985-86 could not reach the target except 3 or 4 only.*

*In Bhagalpur district, employment per rupee of investment through KVIC (fully and partially employed) was .0004 approximately. The loan used in employment generation per employee in village and khadi industry was Rs. 2,323. The loan of Rs.5/- generated 21 employment, which is highest of all whereas the maximum loan used in khadi Industries, is Rs.2974, which generated 0003 employment in large-scale employment. The highest among all the cottage pratch industry which used Rs.8840 almost to generate an employment upto the extent of .0001 only, which is lowest of all in Bhagalpur district.*

**Key Word :** Technology, Khadi, shari, Agriculture, Development

The nature and characters of rural unemployment, either in India or in Bihar, is commonly known. As most of the employment in rural areas is agricultural employment, it has its own characteristics and features. Agricultural employment or unemployment is seasonal in character. Practically all the people dependent on agriculture get absorbed in busy agriculture season only and remain unemployed during the slack season. Due to this character rural unemployment, it is difficult to talk about it in the sense of developing countries, where rural unemployment is continuous for the whole year and for a long period. Those who are employed in agricultural sector are not able to find full time employment in it. Even during the busy season, there may be a considerable degree of under employment or disguised unemployment for persons considered as gainfully employed. The real problem in underdeveloped

\* Deptt. of Commerce, S.D.M.Y Degree College, Dhoraiya, Banka, T.M.B.U., Bhagalpur



countries, and particularly in rural areas, is one of under-employment of seasonal nature. Again in developed countries one is regarded as unemployed when he is seeking job, but not finding any job. In under developed countries, like ours, due to ignorance of social factors many people may be available for work but they do not come in labour market, as they are not seeking any job. In this situation unemployment and underemployment in the under developed nations has to be measured in terms of total mandays available and total mandays utilized. This provides us with the dimension and magnitude of the problem. Reliable data on the extent of rural unemployment in Bihar is not available. Some information is, however, available from the report of the Bihar unemployment committee 1960, the population Census of 1961 and the National Sample surveys. According to the Report of Bihar Unemployment Committee, in the years 1954, 8.7 percent of the populations aged between 16-60 years were unemployed in Bihar. The 1961 census, however, has given a different picture. According to it, out of a total of 19 million workers in Bihar, only 74 thousand were unemployed. It appears to be an underestimate because the information collected was not objective and perhaps suffered from respondent's bias. Even the Census Superintendent of Bihar (1961) commented that the total number of persons appeared to be surprisingly low. The problem of rural unemployment in Bihar, thus, cannot and should not be minimized. As mentioned earlier, more serious is the problem of under-employment. Information regarding underemployment is again available from the Report of the Bihar unemployment Committee 1960. On the basis of two adult labour units required for the cultivation of a subsistence farm, the Committee estimated that a force of 66 lakhs farm workers was sufficient as against 110 lakh farm workers actually working on them. Thus, 44 lakh workers actually engaged in cultivation, were redundant and this was the magnitude and extent of under-employment in rural Bihar. The dependence on agriculture, since then, has been continuously increasing in Bihar. According to 1971 census, 82 percent of the working force is occupied in agriculture as against 69 percent for India as a whole. Of this, 43 percent constituted cultivators and 38 percent agricultural workers. In view of the limited supply of land and in the absence of intensive farming and multiple cropping, the number of surplus-hand on farm appears to be increasing. Thus, the problem of rural unemployment and underemployment in Bihar is, rather serious, and effective steps are needed to solve this problem.

It can be said that economic development in our country cannot reach the take-off stage until the vicious circle of poverty is broken by creating avenues of employment in rural sector which accounts for 50% of our population. Khadi and village industries alone, with their intermediate technology, with emphasis on viability, can fulfil the social objective of creating employment to millions of rural people and at the same time, fulfilling the economic objective of producing saleable goods of daily necessity on a decentralized basis. Only khadi and village industries can effectively assist in economic development without terms.

We need to go much beyond the plans which have been evolved so far, and are being currently implemented before we can hope to reach the scale, and design of development, which will make it possible for the country, as a whole, and more specially for densely populated states and regions to combat mass poverty and the conditions that go with poverty in a decisive enough manner.

Now that the problem of poverty is beginning to move into the centre of the planning process, as well as, the political process, it will become easier to appreciate that programmes which mainly offer relief and temporary assistance, useful as they are, can only be a half-way house. They are, by no means, adequate answers. Therefore, the time has come for Governments, political parties, planners, administrators, scholars, scientists and social workers to make a fresh and studied assessment of the deeper and long-range policy implications of mass poverty, specially in the light of the structural and institutional changes needed and the requirements of intensive development of agriculture, industry

and services at the regional and area level. These are the necessary means for evolving, over a period of years, and economic system in which the organized and the unorganized sectors can grow together as interrelated and inter-dependent parts of a unified, integrated national economy.

The impact of employment generation could well be assessed on the light of a report on district Cottage industries in Bhagalpur through Physical Progressive Year (1987-88) in which reveals that the total number of entrepreneurs in those objectives were 1526. Maximum entrepreneurs were in Gur-Khandsari industries, i.e. 562, it employed 1730 person fully or partially, but employment generation was only 3 per unit, whereas the lime & stone industries employed 527 persons fully or partially in its 8 entrepreneurs so the employment generation was 65.8 per unit. So the lime & stone industry is highly employment generative. The lowest in the table was stone making leather industry, which had 193 entrepreneurs and its employment generation per unit was only 0.9 to give employment to 179 persons.

Village oil industry gave employment to 1046 persons in its 166 entrepreneurs, it provided employment to 6 persons (approx.)

The highest employment generation is 658 per unit as in to employ 123 persons, i.e. in Khadi industries, but the Gur-Khandsari industry gave maximum employment (1736) however the per unit employment generation is only 3. The leather industry employed only 179 persons, so the per unit employment was 0.9 i.e. lowest of all.

As regarding the production and sale of physical progressive year 1987-88, the highest production was. 2,43,81,000 and sale Rs.2, 69,89,840 and next were Gur and Khandsari. It seems that oil and Gur Khandsari play an important role as cash crop of Bhagalpur district. The minimum production was of Cane-Bamboo to the the time of Rs.28900 & the minimum sales of fiber industries were Rs. 35500/- . The Khadi industry showed a tremendous loss to give selling of Rs.2525 727, whereas it produced a stock of Rs. 2539953/-

The comparative study of target and achievement of 4 consecutive years has been doing here. In 1985-86, the pottery industries showed half from the target and reversibly in 1987-88, it rose approximately double from 9 to 17. The position of Gur Khandsari Industries also showed better achievement than the target was only 8 as against 13 as per target in the Year 1985-86. The fiber industry had doubled in the year 1987-88. Among all the years, 1985-86 could not reach the target except 3 or 4 only.

In Bhagalpur district, employment per rupee of investment through KVIC (fully and partially employed) was .0004 approximately. The loan used in employment generation per employee in village and khadi industry was Rs. 2,323. The loan of Rs.5/- generated 21 employment, which is highest of all whereas the maximum loan used in khadi Industries, is Rs.2974, which generated 0003 employment in large-scale employment. The highest among all the cottage pratch industry which used Rs.8840 almost to generate an employment upto the extent of .0001 only, which is lowest of all in Bhagalpur district.

The Indian rural society is characterised by widespread unemployment, under employment and disguised unemployment with variations in the levels of development in different regions, which a lot of progress has been achieved in many directions to rejuvenate rural life. Yet, there is clear manifestation of apathy on the part of the rural folks. The consequence is that there is only marginal involvement of people belonging to various sects in the activities, which pertain to the nation-building programmes on various fronts. The rural people has tremendous vitality which needs to be explored and exposed to the forward looking approaches, motivation and a clear vision perspective for the wider good and welfare of the nation.

Employment per rupee of Investment through khadi and village Industries  
(Av. of partially and fully employed)

Sl. No.	Village & Oil Industries	Loan used & employ generation	
1.	Village & oil Indus.	2383	.0004
2.	Grain processing Ind.	346	.003
3.	Gur Khandari Ind.	226	.004
4.	Grain processing Ind.	438	.002
5.	Carpentry/Blacksmith	489	.002
6.	Palm-Gur Inds.	187	.005
7.	Shermaking (Leather) Ind.	1828	.0005
8.	Fibre. Ind.	172	.006
9.	Cane-Bamboo Ind.	35	.029
10.	Beekeeping Ind.	5	.21
11.	Tari-Bati Ind.	1646	.0006
12.	Khadi Industries	2974	.0003
13.	Lime STONE Ind.	879	.001
14.	Gum-Katha Ind.	69	.014
15.	Unedible oil/soap Ind.	619	.0017
16.	Handmade paper Ind.	52	.019
17.	Cottage-Match Box Ind.	8840	.0001

Amounts of loan used in employment generate on per employee (average) particularly and fully employed.

### Suggested Measures

Several problems, such as marketing problems, lack of finance, poor recovery due to being defaulter, lack of testing facilities, imbalanced growth of villages, shortage of raw materials and improper project planning can be highlighted here as main constraints in the path of development. Besides, lights on unfavorable impact of modernization on traditional industry also be quoted and can be concluded that the development of a suitable modern technology, in the small industry, can generate a large-scale employment potential. It is this sector which, in collaboration with other development programs, can pull the country out from the abyss of unemployment. For this purpose, a rational policy of modernization of the small industry has to be evolved and the mere adoption of western technology is not likely to succeed in the present environment of the country.

To ensure sound development of KVIC in Bihar, co-operative and co-ordinate efforts of the government and non-government agencies are imperative.

Keeping in the view, the large-scale unemployment of rural people and problems encountered there in, their human resources development is inevitable, so that their potentialities and capabilities may be fully utilized for national development.

Therefore, it is highly essential in the interest of the country, as a whole, that the appropriate steps should be taken for the human resource development of rural people.

**REFERENCE**

1. Agrawal, N.N., Indian Economy
2. Ahuja, B.N., Small Scale Industries in India.
3. Andrews, F.C., Mahatma Gandhi's Ideas, Asia publishing House 1949.
4. Ghanshyam, H.R.Chaturvedi, Gandhian Approach to Rural Development.
5. Gabndhi, M.K., Kahdi, Why & How?
6. Planning Commission Govt. of India, Vepa, R.K., Appropriate Technology for Decentralized Economy.
7. Government of Bihar, A Report on Techno-Economic Survey of Bhagalpur, District, Rural Industries Project, Bhagalpur.
8. Journals, Kurukeheta.

\* \* \* \* \*

## Vision New India : Strategies and Prospects

*Dr. Yadvendra Pratap Singh\**

**Abstract:** *The aim will be to deliver all government services at the state, district, and gram panchayat level digitally by 2022-23, thereby eliminating the digital divide. 3 The section on inclusion deals with the urgent task of investing in the capabilities of all of India's citizens. The three themes in this section revolve around the various dimensions of health, education and mainstreaming of traditionally marginalized sections of the population.*

**1. Introduction :** On August 15, 2022, independent India will turn 75. In the lifespan of nations, India is still young. The best is surely yet to come. India's youthful and aspirational population deserves a rapid transformation of the economy, which can deliver double-digit growth, jobs and prosperity to all. A strong foundation has been laid in the last four years. While there is every room for confidence, there is none for complacency. A surge of energy, untiring effort and an unshakeable resolve on the part of the government, private sector and every individual citizen can achieve this transformation in the next five years.

Seventy years ago, similar energy, effort and resolve from all Indians freed the country from colonial rule within five years of the launch of the Quit India movement in 1942. Then, like now, foundations had been laid but a committed acceleration of effort was necessary. The Prime Minister's call for Sankalp Se Siddhi is a clarion call for a radical transformation for a New India by 2022-23.

An annual rate of growth of 9 per cent Introduction Strategy for New India @ 75 2 by 2022-23 is essential for generating sufficient jobs and achieving prosperity for all. Four key steps, among others have been spelled out for achieving this GDP growth rate. These are:

**a.** Increase the investment rate as measured by gross fixed capital formation (GFCF) from present 29 per cent to 36 per cent of GDP by 2022. About half of this increase must come from public investment which is slated to increase from 4 per cent to 7 per cent of GDP. Government savings have to move into positive territory.

**b.** Successfully implementing the Ayushman Bharat programme including the establishment of 150,000 health and wellness centres across the country, and rolling out the Pradhan Mantri Jan Arogya Abhiyaan.

**c.** Upgrading the quality of the school education system and skills, creation of a new innovation ecosystem at the ground level by establishing at least 10,000 Atal Tinkering Labs by 2020.

**d.** As already done in rural areas, affordable housing in urban areas will be given a huge push to improve workers' living conditions and ensure equity while providing a strong impetus to economic

\* Assistant Professor Subhash Chandra Bose Institute Of Higher Education IIM Road Mubarakpur Lucknow

growth. To achieve the goals of New India in 2022-23, it is important for the private sector, civil society and even individuals to draw up their own strategies to complement and supplement the steps the government intends to take. With the available tools of 21st century technology, it should be possible to truly create a mass movement for development.

## 2. Literature Review

- a. The investment rate should be raised from 29 per cent to 36 per cent of GDP which has been achieved in the past, by 2022-23.
- b. Complete codification of central labour laws into four codes by 2019 and also increase female labour force participation to at least 30 per cent by 2022-23.
- c. India should aim to spend at least 2 per cent of gross domestic product (GDP) on R&D with equal contributions from the public and private sector.
- d. Promote in a planned manner the adoption of the latest technology advancements, referred to as 'Industry 4.0', that will have a defining role in shaping the manufacturing sector in 2022.
- e. Modernize agricultural technology, increase productivity, efficiency and generate income and employment through a paradigm shift that ensures food security while maximizing value addition in agriculture.
- f. Create a policy environment that enables income security for farmers, whilst maintaining India's food security and encourage the participation of the private sector in agricultural development to transition from agriculture to robust agri-business systems.

**3. Limitation of Above Studies :** The share of manufacturing in India's GDP is low relative to the average in low and middle-income countries. It has not increased in any significant measure in the quarter century after economic liberalization began in 1991. Within manufacturing, growth has often been highest in sectors that are relatively capital intensive, such as automobiles and pharmaceuticals. This stems from India's inability to capitalize fully on its inherent labour and skill cost advantages to develop large-scale labour intensive manufacturing. Complex land and labour laws have also played a notable part in this outcome. There is a need to increase the pace of generating good quality jobs to cater to the growing workforce, their rising aspirations and to absorb out-migration of labour from agriculture.

To capitalize on its demographic dividend, India must create well-paying, high productivity jobs. Of India's total workforce of about 52 crore, agriculture employed nearly 49 per cent while contributing only 15 per cent of the GVA. Comprehensive modernization of agriculture and allied sectors are needed urgently. In contrast, only about 29 per cent of China's workforce was employed in agriculture and services accounted for 13.7 and 37.5 per cent of employment while making up for 23 per cent and 62 per cent of GVA, respectively. Recognizing the crucial role of technology and innovation in economic development, India's policy makers have taken several initiatives to promote science, technology and innovation. Various schemes have been launched to attract, nurture and retain young researchers and women scientists in the field of scientific research. Some important achievements in the field of science and technology

India is the fifth largest manufacturer in the world with a gross value added (GVA) of INR 21,531.47 billion in 2017-18 (2nd advance estimate for 2017-18 at 2011-12 prices). The sector registered a compound annual growth rate (CAGR) of around 7.7 per cent between 2012-13 and 2017-18. The government has taken several initiatives to promote manufacturing. Among these are the Make in India Action Plan aimed at increasing the manufacturing sector's contribution to 25 per cent of GDP by



2020,2 the Start-up India initiative to promote entrepreneurship and nurture innovation, and the Micro Units Development and Refinance Agency (MUDRA) and Stand-up India to facilitate access to credit. It has also undertaken massive recapitalisation of public sector banks<sup>3</sup> to ease availability of credit to micro, small and medium enterprises (MSMEs). Besides, it has undertaken major infrastructure projects, such as the setting up of industrial corridors, to boost manufacturing. The existing yield levels of a majority of crops remains much lower than the world average. The predominant causes are low irrigation, use of low quality seeds, low adoption of improved technology, and knowledge deficit about improved agricultural practices. Close to 53 per cent of cropped area is water stressed. Rainwater management practices and services are resource starved. This limits a farmer's capacity to undertake multiple cropping and leads to inefficient utilization of land resources. Inefficient extension delivery systems have led to the presence of large yield gaps as well. Yield gaps exist at two levels in India. First, there is a gap between best scientific practices and best field practices. The second gap exists between best field practices and the average farmer. There exist significant yield gaps both amongst and within states. Yield gaps have been found to exist in even highly productive states such as Punjab. Closing these gaps provides an opportunity to enhance productivity and incomes significantly. This further implies that states with low productivity (or large yield gaps) have significant potential for catch-up growth in their productivity levels

**4. The Battle Continues and Its Impact :** India's tax-GDP ratio of around 17 per cent is half the average of OECD countries (35 per cent) and is low even when compared to other emerging economies like Brazil (34 per cent), South Africa (27 per cent) and China (22 per cent). To enhance public investment, India should aim to increase its tax-GDP ratio to at least 22 per cent of GDP by 2022- 23. Demonetization and GST will contribute positively to this critical effort. In addition, efforts need to be made to rationalize direct taxes for both corporate tax and personal income tax. Simultaneously, there is a need to ease the tax compliance burden and eliminate direct interface between taxpayers and tax officials using technology. The government should continue to exit central public sector enterprises (CPSEs) that are not strategic in nature. Inefficient CPSEs surviving on government support distort entire sectors as they operate without any real budget constraints. The government's exit will attract private investment and contribute to the exchequer, enabling higher public investment. For larger CPSEs, the goal should be to create widely held companies by offloading stake to the public to create entities where no single promoter has control. This will both improve management efficiency and allow government to monetize its holdings with substantial contribution to public finances. The Labour Market Information System (LMIS) is important for identifying skill shortages, training needs and employment created. The LMIS should be made functional urgently. ensure the wider use of apprenticeship programmes by all enterprises. This may require an enhancement of the stipend amount paid by the government for sharing the costs of apprenticeships with employers. Low R&D expenditure, especially from the private sector, is a key challenge facing the innovation ecosystem in India. The latest R&D Statistics<sup>2</sup> released by the National Science and Technology Management Information System (NSTMIS) of the Department of Science and Technology (DST) show that while R&D expenditure in India tripled in the period from 2004-05 to 2014-15, its size as a percentage of GDP remained at 0.7 per cent. This is very low compared to the 2 per cent and 1.2 per cent spent by China (for 2015) and Brazil (for 2014) respectively. Three Countries like Israel spend as much as 4.3 per cent of their GDP on R&D.

Furthermore, while the share of the private sector in R&D investment in most technologically advanced countries is as high as 65 per cent to 75 per cent, it is only about 30 per cent in India and The government can play a crucial role in creating domestic manufacturing capabilities by leveraging proposed public procurement and projects. Mega public projects such as Sagarmala, Bharatmala, industrial corridors, and the Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY) can stimulate domestic manufacturing activities provided the projects are suitably structured and demand is aggregated strategically. This should be the responsibility to award factory permissions and compliances for India to become the world's workshop, we should encourage further FDI in manufacturing, particularly when it is supported with buybacks and export orders. India has not caught up to the rest of the world in terms of technology, which has led to the dominance of inefficient production practices, such as flood irrigation, at the farm level. Renewed focus on on-ground absorption of technology, market intelligence, skills and extension and modernising trade and commerce in agriculture are needed to modernise agriculture in India. Both production and marketing suffer due to the absence of adequate capital. Low scale is a serious constraint on the adoption of improved practices and in the input and output market.

#### **5. Finding :**

a. The government has targeted a gradual lowering of the government debt-to-GDP ratio. It will help reduce the relatively high interest cost burden on the government budget, bring the size of India's government debt closer to that of other emerging market economies, and improve the availability of credit for the private sector in the financial markets. The Labour Market Information System (LMIS) is important for identifying skill shortages, training needs and employment created. The LMIS should be made functional urgently.

b. Ensure the wider use of apprenticeship programmes by all enterprises. This may require an enhancement of the stipend amount paid by the government for sharing the costs of apprenticeships with employers.

c. An empowered body is needed to steer holistically the management of science in the country. Its scope will include science education and scientific research as well as coordinating and guiding various science initiatives. The proposed body will help in pursuing interministerial, inter-disciplinary research besides breaking silos among various scientific departments/agencies.

d. The government can play a crucial role in creating domestic manufacturing capabilities by leveraging proposed public procurement and projects. Mega public projects such as Sagarmala, Bharatmala, industrial corridors, and the Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY) can stimulate domestic manufacturing activities provided the projects are suitably structured and demand is aggregated strategically. This should be the responsibility to award factory permissions and compliances.

e. Increase adoption of hybrid and improve the Dynamic seed development plans are required. These may be based on crop wise area (each season separately), seed rate per hectare used, desired/targeted seed replacement rate and crop wise seed requirement. Crop wise requirement should be worked out based on historical trends, introduction of new varieties and replacement of poor yielding varieties. States should aim to increase the seed replacement rate (SRR) to 33 per cent for self-pollinated crops and 50 per cent for cross-pollinated crops in alternative years.

**6. Conclusion :** A large part of jobs would hopefully be generated in labour-intensive manufacturing sectors, construction and services. In addition, the employability of labour needs to be enhanced by improving health, education and skilling outcomes and a massive expansion of the apprenticeship

scheme. India is now the third largest country in terms of the number of start-ups. This number is expected to rise exponentially in the coming years. The government has set up the Atal Innovation Mission (AIM) to transform radically the innovation, entrepreneurship and start-up ecosystem of the country and There has been no export driven industrial growth. Domestic demand alone may not be adequate for sustained, high value manufacturing, Integrate the Blue Revolution scheme with MGNREGA. Ponds created through MGNREGA should be used to promote aquaculture and can be used to create potential clusters Rootstock technology has shown the capacity to double production and be resilient to climate stress. Measures should be taken to standardize and promote usage of rootstocks to produce fruits. Employing multiple ovulation and embryo transfer technologies, these farms can significantly enhance milk productivity through the supply of cattle with enhanced milk potential to farmers. Installing of bulk milk chillers and facilities for high value conversion of milk are needed to promote dairy in states. The private sector should be incentivized to create a value chain for HVCs and dairy products at the village level. Establish fish co-operative organisations and run village level schemes in coordination with panchayats to disseminate best practices and research.

### References

1. 2017 OECD Economic Survey of India; NSSO.
2. Sectoral Contribution to GVA calculated using data from MOSPI's Second Advance Estimates. Industry consists of manufacturing, mining and quarrying and electricity, gas, water supply & other utility services. The services sector consists of trade, hotels, transport, communication and services related to broadcasting; construction; financial, real estate and professional services; and public administration, defence and other services.
3. OECD India Policy Brief, Education and Skills. Accessed May 15, 2018. <https://www.oecd.org/policy-briefs/India-Improving-Quality-of-Education-and-Skills-Development.pdf>
4. India Skill Report 2018.
5. Published by World Intellectual Property Organization jointly with Cornell University and INSEAD.
6. Ministry of Statistics and Programme Implementation data Accessed April 30, 2018.
7. Make in India website. Accessed April 30, 2018. <http://www.makeinindia.com/about>.
8. Source: RBI.
9. <http://www.indiabudget.gov.in/ub2018-19/bs/bs.pdf>. Accessed April 27, 2018.
10. Chand, Ramesh (2017), Doubling Farmers' Income: Rationale, Strategy, Prospects & Action Plan, NITI Aayog Policy Paper, NITI Aayog. New Delhi.
11. Committee on Doubling Farmers' Income, Ministry of Agriculture and Farmers Welfare (2018). Vol. II: Status of Farmers' Income: Strategies for Accelerated Growth, Doubling Farmers' Income. New Delhi.
12. Chand, Ramesh (2017), Doubling Farmers' Income: Rationale, Strategy, Prospects & Action Plan, NITI Aayog Policy Paper, NITI Aayog. New Delhi.
13. Committee on Doubling Farmers' Income, Ministry of Agriculture and Farmers Welfare (2017). Vol. XI: Empowering the Farmers through Extension. New Delhi.
14. Chand, Ramesh (2017), Doubling Farmers' Income: Rationale, Strategy, Prospects & Action Plan, NITI Aayog Policy Paper, NITI Aayog. New Delhi.

\* \* \* \* \*

## Consumers' Attitude Towards Organised and Unorganised Readymade Garment in Rewa City

*Harshit Pratap Singh\* Prof. Dr. Anjali Srivastava\*\**

**Abstract :** Readymade garments industry is growing in india at a steady pace. It contributes 2.3% to the gdp and 7% of the country's manufacturing production. It contributes 13% of the exports earnings of the country. Indian textiles trade is the second largest employer in the country and provides employment to 45 million people. This industry is getting organized at a fast pace with the entry of many branded stores in tier ii and tier iii cities and towns. The choice of apparels represents the personality and attitude of the consumers. At this juncture, a study on consumers' attitude towards organized and unorganized readymade garment is apt to examine the characteristic of the hidden variable that facilitates the expansion of this sector. Therefore, an empirical study based on consumer survey has been planned and conducted. It is concluded that brand, comfort and fashion are most important factors which affect the consumers' attitude.

**Key words :** *Brand awareness, readymade garments, consumer attitude, organized and unorganized.*

**Introduction :** The textile industry in india is multi-faced with business prospects in raw material, semi finished and finished products. Many national and international players have entered indian retail industry in general and readymade garments industry in particular. The indian economy has been witnessing a huge amendment for the last one decade attributable to the assorted dynamics of the business. Ministry of textile has proposed many textile parks in 2015 in order to increase india's share in global textile trade. The indian merchandising trade is moving towards the section of organized merchandising from the section of unorganized merchandising. Over the past few years, the retail sales in asian country square measure hovering around 33-35 per cent of value as compared to around twenty per cent within the america. Keeping with a survey conducted by business practice technopak advisors, the country's retail market is anticipated to the touch 620 billion euros by 2021 at a combined annual rate of growth (cagr) of quite twenty five per cent. Robust underlying economic process, population enlargement, the increasing wealth of people and also the fast construction of organized retail infrastructure square measure key factors behind the forecast.

At an equivalent time the competition is additionally growing among the trade attributable to the massive variety of players coming into the markets each from national and international levels. These changes within the business atmosphere directly influence the mode perspective of the folks.

The changes within the perspective of shoppers successively have impact on the trade directly or indirectly. To arrange a triple-crown business strategy, it's pretty much necessary to know the factual dynamical patterns of the buyer perspective. The attire and consumer goods trade being positioned initially place and additionally the defrayment on attire and clothing among the shoppers have increased, it's vital role to review the dynamical perspective of shoppers. The aim of this study is to explore the attitude of consumers towards fashion, brand, colour, comfort, uniqueness and climate suitability.

### Literature Review

**Lakshminarayana. K and Dr. Sreenivas (2017)** conducted a study to understand the pattern of shopping and buying behaviour towards branded apparels in Bangalore town. The study reveals that there's plenty of scope for brand new entrants in this field, the makers and marketers of branded wears ought to focus on creating new shopper instead of holding recent one. Most of the time consumers visit the retail outlets of branded wears with the aim of searching or browsing. Advertisements, promotional schemes, colours, design etc are the different factors that influence the shopper to buy. Among the varied promotional schemes and promotional measures discounts, buy2 get1 free schemes have most influence on buyers. **Sandeep Kumar, Prasanna Kumar & Srinivasa Narayana (2016)** conducted a study to understand the consumer perception, behavior and life vogue towards the attire brands. To assess the importance of various factors in complete retention from the study, it's recommended that the attire corporations ought to focus additional on client retention. This may be achieved by keeping the costs affordable, maintaining quality, asserting loyal programs in special periods, providing good client services, advertising additionally on internet, newspapers, social-media and tele-media.

**Objectives :** The major objective this research is to study the effect of factors responsible in deciding the purchase of readymade garments from organized and unorganized retail stores.

**Research Methodology :** This study tries to research the factors touching shopper perspective towards organized and unorganized clothes retailers, a structured questionnaire was designed for organized and unorganized shops, the customers were asked regarding the criteria's that they take into account while buying readymade garments. The questionnaire is divided into two main sections where section one is for knowing attitudes of the respondents towards unorganized readymade garments, frequency of visits for shopping, time of purchase etc. And the second section is for knowing attitude of the respondents towards organized readymade garments industry.

A sample of 200 respondents has been taken for the consumer survey, who were above 18 years of age. Responses were taken from consumers from different organized and unorganized readymade garment outlets; Vishal Mega Mart, Bazaar India, V-Mart, v2 Mart & City Life In Rewa City. Questionnaire contains mostly close ended questions which are dichotomous, multiple choices or scaled to facilitate consumers in giving response. Required validity and reliability of scale is ensured.

The demographic profile of sample respondents is given in table 3.1.

**Table 3.1: Demographic profile of sample respondents**

Demography		No. Of respondents
Gender	Male	123
	Female	77
<b>Total</b>		<b>200</b>
Age group	Less than 20 yrs	111
	20-30 yrs	46
	30-40 yrs	21
	40-50 yrs	22
	Above 50 yrs	00
	<b>Total</b>	<b>200</b>
Marital status	Single	64
	Married	136
<b>Total</b>		<b>200</b>
Educational qualification	Higher secondary	09
	Graduate	103
	Post graduate	45
	Above	43
	<b>Total</b>	<b>200</b>
Occupation	Professional	34
	Services	55
	Business	38
	Entrepreneurs	30
	Home makers	26
	Others	17
<b>Total</b>		<b>200</b>
Work place	Public sector	59
	Private sector	141
<b>Total</b>		<b>200</b>
Monthly family income	Less than 20000 inr	66
	21000-40000 inr	52
	41000-60000 inr	45
	61000-80000 inr	20
	81000-100000 inr	16
	Above 100000 inr	01
<b>Total</b>		<b>200</b>

**Analysis & Interpretation :** Factors which are responsible in deciding the purchase of readymade garments are fashion, uniqueness, brand, colour, comfort and climate suitability.

Variables	N/%	Very high	High	Neutral	Low	Very low	Total	Mean	Std. Dev.
Fashion	N	38	61	31	42	28	200	2.775	1.33163
	%	19	30.5	15.5	21	14	100		
Uniqueness	N	34	69	39	37	21	200	2.71	1.24646
	%	17	34.5	19.5	18.5	10.5	100		
Brand	N	38	71	33	32	26	200	2.6850	1.30549
	%	19	35.5	16.5	16	13	100		
Colour	N	42	62	32	27	37	200	2.7750	1.40865
	%	21	31	16	13.5	18.5	100		
Comfort	N	44	58	34	25	39	200	2.7850	1.42793
	%	22	29	17	12.5	19.5	100		
Climate suitability	N	36	66	36	28	34	200	2.7900	1.35465
	%	18	33	18	14	17	100		

As per the above table it is found that 99 (49.5%) respondents agreed that fashion is one of the factors responsible for the purchase of readymade garments, whereas 103 (68%) respondents agreed to the uniqueness of the respective garment is another much appreciated factor for the purchase of readymade garments. According to 109 (54.5%) of respondents brand is quite responsible for the purchase of the readymade garments. As per 104 (52%) respondents, they look for color whenever they choose to purchase clothing from any organized retail store. 102(51%) respondents comfort regarding the garments as well as place of purchasing is also crucial for them to purchase clothing from any organized retail store. 102(51%) respondents once again indicated suitability of the climate as an influencing factor for purchasing the readymade garments from organized retail stores.

**Findings & Conclusion :** It is found that the issues like fashion, uniqueness, comfort, brand, colour and climate suitability are vital factors that have an effect on their shopping behavior. The factors that are ascertained in the study can be utilized by the marketers & retailers in developing their promotional methods to attract more and more consumers towards their brands and retail outlets in the era of rising and stiff competition when many multinational players have entered the market of garment industry in india which is full of potential.

This analysis can facilitate the unorganized retailers to enhance their market share and to increase the market potential of the readymade garments industry. The results of this study may aid the foreign & domestic investors in grabbing the business opportunities by giving them a deeper insight regarding client preferences in each tier i & tier ii cities in India. Marketers, through this study would be ready to determine varied parameters and their impact on consumers' attitude so that they can plan their products and services accordingly.

#### REFERENCES

1. Prasad, C. J. B., And Ansari, a. R., "Loyalty Programs And Customer Loyalty In Apparel Retailing: An Empirical Analysis", Scour Vol. 2, No. 2: Pp. 47-58, (2008).
2. "Retail 2020: Retrospect, Reinvent, Rewrite". Boston Consulting Group And Retailers Association Of India's Report, (2015).
3. Lakshminarayana. K And Dr. Sreenivas "Store And Store Format Loyalty Measures Based On Budget Allocation", Journal Of Business Research, Vol. 61, No. 9: Pp. 1015-1025, (2017).
4. Kumar Sandeep , Kumar Prasanna, Narayana Srinivasa "An Analysis On Consumers Intention Of Buying Private Label Brands Within Food And Grocery Sector - a Study In Chennai Region", Vol. 2, No. 6: Pp. 22-36, (2016).

\* \* \* \* \*



## **Socio-Economic Profile of Entrepreneurs : a Cross Sectional Study of Situational Factors Affecting Entrepreneurial Choice**

**Dr. G. C. Dangwal\***    **Dr. Ritu Dangwal\*\***

**Abstract :** *Entrepreneur plays a vital role in the process of economic development. In real sense, he is the engine of development. Every underdeveloped society which is attempting to start the process of economic development to find out the solution of its burning questions of poverty and unemployment, should first try to develop entrepreneurial abilities among the people. If the availability of entrepreneurs is ensured, they may take care of rest of the process of economic development and the development will become a natural way of life.*

**Keyword:** Poverty, Unemployment, Entrepreneurship, Economic Development.

**Introduction :** The economic development is identified as a process of growth in national income with qualitative changes in life of the people. It is a multidimensional phenomenon which includes not only increase in monetary income of people but also improvement in standard of living, education, public health, consumption level, greater leisure and all the other social and economic factors that make for content and happy life. The development of an economy depends on its society alone. A society can be assisted by external efforts to find its way leading to development, but development can never be imposed on any society. Before the process of development start the people should be ready to accept it. Therefore the process of development requires a mental revaluation as its precondition. However, the social attitude, values and practices do not change over night. This change is initiated by a few people, the people who discover new idea, practices and technology or adopt them as available elsewhere, the people who establish, new organization, including industrial establishment, that generate income and economic opportunities along with new product. These people are the agents of development and called entrepreneurs. Schumpeter (1934) gave them prime role in his model of economic development.

The experience of development in many economies of the world suggested that as an economy moves in the path of economic growth, the relative share of agriculture decreases both in terms of share in national income as well as in employment generation. Industrial and service sector take dominant position in the economy. In India in 1999 about 63% of the working population was engaged in agriculture and its contribution to national income was 26% only. In Asia, Africa and middle east countries, from one third to more than four-fifth of the population earn their livelihood from agriculture and in most Latin American countries from two-third to three-fourth of population are involved in agriculture. On the other hand, proportion of population engaged in agriculture in developed countries is much lower than the proportion of population engaged in agriculture in underdeveloped countries. Therefore; when an underdeveloped economy, heavily relying on agriculture, wants to move forward in the path of economic development based on industrialization, it needs to convert, promote, create, organize and

\* Associate Professor, Government Post Graduate College Maldevta, (Raipur), Dehradun. (Uttarakhand)

\*\* Assistant Professor, D.W.T. College, Dehradun (Uttarakhand)

run industrial establishments, for which it needs the people who perform all these tasks, called entrepreneurs.

Therefore, an entrepreneur is the pioneer of all economic activities. In the production process, entrepreneurs' need different resources such as capital, raw material, technology, human resources etc. own by different people in the society. The entrepreneurs purchase their resources at the certain price from their respective owners. After the production the products are sold at the uncertain prices. In this way entrepreneurs pay a certain cost for an uncertain return and therefore make the production process possible through bearing the risk and uncertainties associated with it. On the one hand an entrepreneur bears the risk and uncertainty and gets the profit as a reward. According to knight (1921) profit is a reward for bearing uncertainly. Profit is main motivational factor for an entrepreneur. Profit inspires an entrepreneur for pursuing all the entrepreneurial activities. Inspired by the profit motive an entrepreneur always search for the opportunities which may provide him more and more profit as a reward. But in a competitive and efficient economy an entrepreneur cannot get handsome profit if he continues to work in traditional production activities. If he wants to earn more profit, he will have to go for some innovation. This innovation can be done in many forms such as discovering new product, new market, new technology, new sources of input and new form of economic organization. Schumpeter's (1934) shows that an entrepreneur is an innovator himself who promotes innovational activities by patronizing new idea, living styles and social values. Therefore he is also called the "Leader of Change".

**Entrepreneurial Profile of Garhwal Economy :** The major entrepreneurial activities in the region are manufacturing, possessing and repairing. The main entrepreneurs are manufacturers of food stuffs, beverages and wooden products. There are about 59,000 non-agricultural units in the region from which about 41,000 were own account entrepreneurs. Apart from it hand loom, basket making, hemp cloth, wool, honey collection, leather work, wooden utensils, rope making, earthenware, brass and copper, handicrafts and oil crushing are the traditional entrepreneurship, identified in the region where people are actively involved.

**Objective of the Study :** The objectives of the present study are as follow :

1. To analysis the socio-economic profile of entrepreneurs.
2. To identify various sub-groups of entrepreneurs such as entrepreneurial successors, first generation entrepreneurs etc.
3. To identify various demographic characteristics (such as family background, education, business exposure etc.) of entrepreneurs and non-entrepreneurs.

**Research Design and Methodology :** The study begins with an exploratory survey to feel the aspirations, expectations and feelings of people about their present occupation and to understand the situation under which they were motivated or compelled to choose their occupation. For this purpose detailed unstructured interview of thirty entrepreneurs and twenty five non- entrepreneurs were taken. While selecting the sample for this purpose attempts were made to give sufficient representation to first generation entrepreneurs (an entrepreneur

having no entrepreneurial family background) and non-entrepreneurs from entrepreneur's family background. Therefore, this study involved a deliberate sampling rather than random sampling. Out of total thirty entrepreneurs, fifteen were first generation entrepreneurs, while out of total twenty five non-entrepreneurs eight were from entrepreneurial family background.

The analysis of the information provided by the respondents during the interview suggests that mostly a person choose an entrepreneurial career if he has an exposure to entrepreneurial activities either within his family or elsewhere. Many respondents told that they started their own business after

working for a few years in private business concerns as employee or after getting experience in a business of their relatives or friends. These were also a few cases where a person established his own business when he could not get a suitable job (employment) after all the attempts. These findings were used as a base to prepare final survey tool for the further study.

The study based on a sample size of 242 out of them 144 are entrepreneurs and 98 are non-entrepreneurs. They were selected from different geographical areas (upper Himalaya, middle Himalaya, and lower Himalaya) and locations (Rural, Semi urban and Urban). In each geographical area two major towns were randomly selected.

### Socio-economic Profile of Entrepreneurs and Non-entrepreneurs

One of the objectives of this study is to make a comparison between demographic and socio-economic profile of the entrepreneurs and non-entrepreneurs and to analyse the impact of these variables on entrepreneurial choice. Therefore, the data have been collected regarding demographic and socio-economic profile of entrepreneurs and non-entrepreneurs, how did they make their career choice? What was the role of their family, society and institutions in their career choice? Etc. The observations of this study are as follow:

#### Gender:

Women play a vital role in the economy of Garhwal region but their role is mainly limited to that of a play-back singer rather than that of an actress on the screen. Although they are the back-bone of all the types of economic activities whether agricultural or non-agricultural, but they are seldom the owner of the economic organizations. Table 1 shows that out of 242 entrepreneurs and non-entrepreneurs selected for the study, only 13 (5%) are women. Moreover their representation is much lower (1.4%) among entrepreneurs in comparison to among non-entrepreneurs (11.2%) and the difference is statistically significant. This analysis suggests that a woman in this society is more likely to become non-entrepreneurs than an entrepreneur.

**TABLE 1**

**Gender-wise Distribution of Entrepreneurs and Non-entrepreneurs**

Ent. /Non-Ent.	Gender		Total
	Male	Female	
Ent.	142 (98.6)	02 (1.4)	144
Non- Ent.	87 (88.8)	11 (11.2)	98
Total	229	13	242

Pearson's Chi Square Value = 12, 35

Note- Figure in the bracket shows the percentage

#### Age:

Table 2(A & B) shows the age profile of entrepreneurs and non-entrepreneurs. Majority of entrepreneurs (62%) represents the age group of below 30 while among non-entrepreneur's majority of respondents (60%) represents the age group of above 30. This shows a change in the occupation pattern in this society. A few years back the people were more inclined towards non-entrepreneurs activities because of both the low level of entrepreneur's awareness and easy availability of jobs (particularly in public sectors). But with increasing exposure to other societies and entrepreneurial values together with contraction in job opportunities this trend is changing and more and more people are choosing entrepreneurship as their carrier.

**TABLE 2**  
**Distribution of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs to their Age-Group**  
**(A)**

Ent/Non-Ent.	Age-Groups						
	Below 25	25-30	30-35	35-40	Above 40		Total
Ent.	33(23)	56(39)	24(17)	23 (16)	08	08 (05)	144
Non-Ent.	13(13)	26(27)	24(24)	23 (23)	12	12 (12)	98
<b>Total</b>	<b>46</b>	<b>82</b>	<b>48</b>	<b>46</b>	<b>20</b>	<b>20</b>	<b>242</b>

**(B)**

Ent./Non- Ent	Age Group			
	Below 30	Above 30		Total
Ent.	89 (62)	55 (38)		144
Non-Ent.	39 (40)	59 (60)		98
Total	128	114		242

**Summary of the Table**

*Pearson's Chi Square Value* = 12.66

Note- Figure in the bracket shows the percentage.

**Education:**

Education is the tool of change. If we have to convert a non-entrepreneurial society into entrepreneurial one, the education may play vital role in this regards. Entrepreneurial values and vocational education are increasingly getting place in educational curriculum. Table 3 evaluates the effect of education an entrepreneurial choice. The effect is not very clear up to graduation level. But at Post-graduation level this trend is quite reverse. The proportion of entrepreneurs having post graduation degree is lower than non-entrepreneurs having post-graduate degree. This table shows the education above graduation level has a negative impact on entrepreneurial choice.

**TABLE 3**  
**Distribution of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs according to their Education**

Ent. /	Education						
Non-Ent.	Primary	Secondary	Higher Secondary	Inter- mediate	Graduation	Post- Graduation	Total
Ent.	-	12 (8)	02 (1)	39 (27)	57 (40)	34 (24)	144
Non-Ent.	-	05 (5)	04 (4)	29 (30)	20 (20)	40 (41)	98
Total	Nil	17	06	68	77	74	242

*Pearson's Chi Square Value* = 12.20

Note- Figure in the bracket shows the percentage.

Table 4 shows the distribution of entrepreneurs and non-entrepreneurs according to their technical education. Among the entrepreneurs only (10%) respondents have technical education, while among non-entrepreneurs (35%) have technical education. This shows that the technical education is negatively affecting entrepreneurial career choice which is in contrast to the common belief that technical education promotes the entrepreneurship.

**TABLE 4**  
**Distribution of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs according to their Technical Education**

Ent. /Non-Ent.	Technical Education		
	Yes	No	Total
Ent.	15 (10)	129 (90)	144
Non-Ent.	34 (35)	64 (65)	98
<b>Total</b>	<b>49</b>	<b>193</b>	<b>242</b>

*Pearson's Chi Square value = 20.78*

Note- Figure in the bracket shows the percentage.

**Religion and Caste :** Table 5 shows the religion-wise distribution of entrepreneurs and non-entrepreneurs.

However, it is difficult to take any inference on the basis of this table as the entrepreneur of non-Hindus in the sample is quite low.

**TABLE 5**  
**Religion - wise Distribution of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs**

Ent. /Non-Ent.	Religion		
	Hindu	Non-Hindu	Total
Ent.	136	08	144
Non-Ent.	98	-	98
<b>Total</b>	<b>234</b>	<b>08</b>	<b>242</b>

*Pearson's Chi Square value = 0.55*

Table 6 shows caste-wise distribution of entrepreneurs and non-entrepreneurs, Punjabi, (both Sikh and Hindus) being distinct social group, this religion has been shown separately others are mainly represented by non-Hindus population. The table clearly shows that the higher caste (Brahmins and Rajput) have dominant place in Job market, both as entrepreneurs and non-entrepreneurs. However among them, Brahmins have relatively higher representations in non-entrepreneurs population (particularly in government jobs) and Rajput have higher representation among entrepreneurs, Scheduled Caste and Scheduled Tribe have a little representation among both the entrepreneurs and non-entrepreneurs as they are mainly involved in agriculture and traditional craft in rural areas. Punjabis have played dominant role in the business, particularly in urban centers. Their representation among entrepreneurs is much higher than among non- entrepreneurs.

TABLE 6

## Caste -wise Distribution of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs

Ent. /Non-Ent.	Caste Scheduled						Total
	Brahmins	Rajput	Scheduled	Scheduled	Punjabi	Others	
			Caste	Tribe			
Ent.	51 (35)	56 (39)	10 (7)	03 (2)	13 (9)	11 (8)	144
Non-Ent.	53 (54)	38 (39)	05 (5)	Nil	01 (1)	01 (1)	98
<b>Total</b>	<b>104</b>	<b>94</b>	<b>15</b>	<b>03</b>	<b>14</b>	<b>12</b>	<b>242</b>

**Note: Figure in the bracket shows the percentage.**

**Family Background and Father's Occupation :** Family background and father's occupation are important from two different points of view. First, an entrepreneurial family background gives a person an exposure to entrepreneurial culture and also develops entrepreneurial values within him. It increases the probability for a person with such background, to choose an entrepreneurial career. Secondly, an entrepreneurial family background gives a person well established entrepreneurial network in succession which increases the chance of success for such a person as an entrepreneur. Table 7 shows the family background entrepreneurial and non-entrepreneurial respondents among 144 entrepreneurs, about 72(50%) are from entrepreneurial background and rest 72(50%) are from non-entrepreneurs background. On the other hand out of 98 non-entrepreneurs only 29(30%) are from entrepreneurial family background and rest 69(70%) are from non-entrepreneurial background. This clearly shows that a person with entrepreneurial background has higher probability to become an entrepreneurs than a person with non-entrepreneurial background. This difference is statistically significant with Chi-Square Value of 9.988.

TABLE 7

## Distribution of Family Background of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs

Ent. /Non-Ent.	Respondent Category		
	Ent.	Non- Ent.	Total
Ent.	72 (50)	29 (30)	101
Non-Ent.	72 (50)	64 (70)	141
<b>Total</b>	<b>144</b>	<b>98</b>	<b>242</b>

Pearson's Chi-Square Value = 9.988

Note- Figure in the bracket shows the percentage.

Table 8 shows the difference of entrepreneurs and non-entrepreneurs according to their father's occupation. The father's occupation of entrepreneurs is almost equally distributed among entrepreneurship, service and agriculture. But among non-entrepreneurs the father's occupation of 53% respondents was service. This shows that if father's occupation is entrepreneurial in nature the

chance of his son or daughter to become an entrepreneur is higher. On the other hand, if father's occupation is non-entrepreneurial in nature the chance of his son or daughter to become entrepreneurs is lower.

**TABLE 8**  
**Distribution of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs**  
**According to their Father's Occupation**

Occupation	Entrepreneurs/Non-Entrepreneurs		
	Ent.	Non- Ent.	Total
Entrepreneurs	51 (35)	13 (13)	64
Services	46 (32)	52 (53)	98
Agriculture	47 (33)	33 (34)	80
Total	144	98	242

*Person's Chi-Square Value = 17.260, P = 0.000*

Note- Figure in the bracket shows the percentage

Table 9 shows the distribution of the nature of business according to family background of entrepreneurs. The percentage of the respondents with entrepreneurial family background is relatively higher in trading activities. While the proportion of entrepreneurial background is relatively higher in service activities.

**TABLE 9**  
**Nature of Business of Entrepreneurs and their Family Background**

Nature of Business	Family Background		
	Ent.	Non-Ent.	Total
Manufacturing	12 (17)	12 (17)	24
Trading	44 (61)	38 (53)	82
Service	16 (22)	22 (31)	38
Total	72	72	144

*Pearson's Chi-Square Value = 11.413, P = 0.010*

Note- Figure in the bracket shows the percentage.

#### **Family Income at Decision Point:**

Table 10 shows the distribution of family income of entrepreneurs and non-entrepreneurs

At the time, when they took their career decision. The table shows a relatively higher concentration of entrepreneurs at higher level of the income. The mean family income of entrepreneurs was Rs. 6.16 thousand while the mean family income of non-entrepreneurs was Rs. 4.36 thousand. The higher level of family income supports a person and decision to become an entrepreneur as it helps him in arrangement of capital and also makes him ready to face the risk.



**TABLE 10**  
**Distribution of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs according to their Monthly Family Income at Decision Point**

Ent. /Non-Ent.	Family Income (Rs. in Thousand)						
	Below 4	4-8	8-12	12-16	Above 16	Mean	S.D.
Ent.	74 (51)	37 (26)	08 (6)	14 (10)	11 (8)	6.16	7.24
Non-Ent.	53 (54)	30 (31)	12 (6)	01 (1)	02 (2)	4.36	4.26

*t - Value* = 2.205

Note- Figure in the bracket shows the percentage.

**Present Level of Income:**

Table 11 shows the distribution of present level of family income entrepreneurs and non-entrepreneurs.

**TABLE 11**  
**Distribution of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs according to their Monthly Family Income at Present.**

Ent. / Non-Ent.	Family Income (Rs. in Thousand)						
	Below 4	4-8	8-12	12-16	Above 16	Mean	S.D.
Ent.	26 (18)	53 (37)	24 (17)	11 (8)	30 (20)	11.00	11.02
Non-Ent.	15 (15)	41 (42)	22 (23)	14 (14)	06(6)	08.25	5.41

*t - Value* = 2.280

Note- Figure in the bracket shows the percentage.

Table 12 shows the level of their own income. It is clear from both the table that the level of income of entrepreneurs is significantly higher than that of non-entrepreneurs.

**TABLE 12**  
**Distribution of Monthly Income of Entrepreneurs and Non-Entrepreneurs**

Ent. /Non-Ent.	Income (Rs. in Thousand)						
	Below 4	4-8	8-12	12-16	Above 16	Mean	S.D.
Ent.	72 (50)	46 (32)	09 (6)	07 (5)	10 (7)	5.47	4.67
Non-Ent.	43 (44)	47 (48)	04 (4)	04 (4)	Nil	4.73	2.92

*t -value* = 1.385

Note- Figure in the bracket shows the percentage.

**Conclusion :** On the basis of analysis, it can be concluded that exposure to business operation and values are the best way to promote entrepreneurship. Conventionally such exposure is received within the family; therefore, the people with entrepreneurial family background have higher chance to opt for all. Entrepreneurial career. Moreover one such people make the entrepreneurial choice at early stage of life. The entrepreneurs who take their career decision independently and at early stage of their life have better chance of success and higher satisfaction. A satisfied and successful entrepreneur is a source of entrepreneurial diffusion, as he tends to suggest his friends, relatives and children to opt entrepreneurial career.

---

## REFERENCES

1. Drucker, P.F. (1985), *"Innovation and Entrepreneurship: Practice and Principles"*, London: Heinemann.
2. Khanka, S. S. (1990), *"Entrepreneurship in Small Scale Industries"*, New Delhi: Himalaya Publishing House.
3. Knight, F. (1921), *"Risk Uncertainty and Profit"*, Boston: Houghton Mifflin.
4. Rostow, W.W. (1964), *"The Economics of Take-off into Sustained Growth"*, London: Macmillan.
5. Schumpeter, J.A. (1934), *"The Theory of Economic Development"*, Cambridge.

\* \* \* \* \*

## कोरोना वायरस महामारी का वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं पर प्रभाव

डॉ. उपमा त्रिपाठी\*

**Abstract :** The covid-19 Pandemic has spread with alarming Speed infecting millions and bringing economic activity to near- stand still as countries imposed tight restrictions on movement to halt the spread of the virus. As the health and human toll grows, the economic damage is already evident and represents the largest economic shock the world has experienced in decades. The June 2020 Global economic Prospects describes both the immediate and near-term outlook for the impact of the Pandemic and the long-term damage it has dealt to Prospects growth. The baseline forecast envisions a 5.2 Percent contraction in Global GDP in 2020, using market exchange rate weights- the deepest global recession in decades, despite the extraordinary efforts of Governments to counter the downturn with fiscal and monetary Policy Support.

The Crisis highlights the need for Urgent action to Cashion the Pandemic's health and economic consequences, Protect Vulnerable Population, and set the stage for a lasting recovery. For emerging market and developing countries, many of which face daunting vulnerabilities, it is critical to strengthen Public health systems, address the Challenges Posed by informality, and implement reforms that will Support Strong and Sustainable growth once the health Crisis abates. my Focus is global economy because the world has been experiencing this most difficult economic situation all countries need to work together with cooperation and coordination to Protect the human beings as well as limit the economic damages. For instance, the lockdown has restricted Various businesses Such as travelling to contain the Virus Consequently this business is coming to an abrupt halt Globally.

**Keyword :-** Economy, Globalization, Coordination Government, lockdown, Countries.

### कोरोना वायरस के कारण भारत में पैदा हुई आर्थिक चुनौतियाँ

कोरोना वायरस ने न केवल भारत की बल्कि दुनिया की अर्थव्यवस्था की हालात खराब कर रखी है, विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक कोरोना वायरस के कारण भारत की इकोनॉमी पर बड़ा असर पड़ने वाला है कोरोना के कारण भारत की आर्थिक वृद्धि दर में भारी गिरावट आएगी।

वर्ल्ड बैंक के अनुमान के मुताबिक वित्तीय वर्ष 2019-20 में भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर घटकर मात्र 5 % रह जाएगी, तो वहीं 2020-21 में तुलनात्मक आधार पर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में भारी गिरावट आएगी जो घटकर मात्र 2.8 रह जाएगी रिपोर्ट में कहा गया है कि यह महामारी ऐसे वक्त में आई है, जबकि वित्तीय क्षेत्र पर दबाव के कारण पहले से ही भारती इकोनॉमी सुस्ती की मार झेल रही थी कोरोना वायरस के कारण इस पर और दबाव बढ़ा है।

दर असल कोरोना वायरस के कारण देशभर में लॉकडाउन है, सभी फैक्ट्री, ऑफिस, मॉल्स, व्यवसाय आदि सब बंद है घरेलू आपूर्ति और मांग प्रभावित होने के चलते आर्थिक वृद्धि दर प्रभावित हुई है, वहीं जोखिम बढ़ने

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य, सी.बी. गुप्ता, बी.बी.एस. महाविद्यालय, लखनऊ

से घरेलू निवेश में सुधार में भी देशी होने की संभावना दिख रही है, ऐसे में अर्थव्यवस्था मुश्किल दौर में पहुंच सकती है। रिपोर्ट में सरकार को वित्तीय और मौद्रिक नीति के समर्थन की जरूरत पर जोर देने की सलाह दी गई है, चुनौती से निपटने के लिए भारत को इस महामारी को फैलने से रोकने के लिए जल्द से जल्द ज्यादा प्रभावी कदम उठाना होगा, साथ ही स्थानीय स्तर पर अस्थायी रोजगार सृजन कार्यक्रमों पर भी ध्यान देना होगा। विश्व बैंक ने आगाह किया है, कि इस महामारी की वजह से भारत ही नहीं बल्कि समूचा दक्षिण एशिया गरीबी उन्मूलन से मिले फायदे को गंवा सकता है, इंटरनेशनल लेबर ऑर्गनाइजेशन ने कहा था, कि कोरोना वायरस सिर्फ एक वैश्विक स्वास्थ्य संकट नहीं रहा, बल्कि लेबर मार्केट और आर्थिक संकट भी बन गया है, जो लोगों को बड़े पैमाने पर प्रभावित करेगा।

दुनिया भर में बचत और राजस्व के रूप में जमा खरबों डॉलर स्वाहा हो चुका है। वैश्विक जीडीपी में रोज कमी दर्ज की जा रही है, लाखों लोग अपना रोजगार खो चुके हैं, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने बताया है, कि 90 देश उससे मदद मांग रहे हैं। आईएसओ के अनुसार कोरोना वायरस की वजह से दुनियाभर में ढाई करोड़ नौकरियाँ खतरे में हैं। COVID-19 के कारण चीन से होने वाले आयात के प्रभावित होने से स्थानीय और बाहरी आपूर्ति श्रृंखला के संदर्भ में चिंताएँ बढ़ी हैं। सरकार द्वारा COVID-19 के प्रसार को रोकने के लिए लॉकडाउन और सोशल डिस्टेंसिंग जैसे प्रयासों से औद्योगिक उत्पादन प्रभावित हुआ है। लॉकडाउन के कारण बेरोजगारी बढ़ी है, जिससे सार्वजनिक खर्च में भारी कटौती हुई है। लॉकडाउन के कारण कच्चे माल की उपलब्धता, उत्पादन और तैयार उत्पादों के वितरण की श्रृंखला प्रभावित हुई है, जिसे पुनः शुरू करने में कुछ समय लग सकता है, उदाहरण के लिये उत्पादन स्थगित होने के कारण मजदूरों का पलायन बढ़ा है, ऐसे में कंपनियों के लिये पुनः कुशल मजदूरों की नियुक्ति कर पूरी क्षमता के साथ उत्पादन शुरू करना एक बड़ी चुनौती होगी, जिसका प्रभाव अर्थव्यवस्था की धीमी प्रगति के रूप में देखा जा सकता है। खनन और उत्पादन जैसे अन्य प्राथमिक या द्वितीयक क्षेत्रों में गिरावट का प्रभाव सेवा क्षेत्र कंपनियों पर भी पड़ा है, जो सेक्टर इस बुरे दौर से सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे, वहीं पर नौकरियों को भी सबसे ज्यादा खतरा होगा। एविएशन सेक्टर में 50 प्रतिशत वेतन कम करने की खबर तो पहले ही आ चुकी है, रेस्टोरेंट्स बंद हैं, लोग घूमने नहीं निकल रहे हैं, नया सामान नहीं खरीद रहे हैं, लेकिन कंपनियों को किराया, वेतन और अन्य खर्चों का भुगतान तो करना ही है, ये नुकसान झेल रही कंपनियाँ ज्यादा समय तक भार सहन नहीं कर पायेंगी और इसका सीधा असर नौकरियों पर पड़ेगा, हालांकि सरकार ने कंपनियों से कर्मचारियों को नौकरी से ना निकालने की अपील है, लेकिन इसका बहुत ज्यादा असर नहीं होगा। विश्व बैंक के मुख्य अर्थशास्त्री हैंस टिमर ने कहा कि भारत का परिदृश्य अच्छा नहीं है, टिमर ने कहा कि यदि भारत में लॉकडाउन अधिक समय तक जारी रहता है, तो यहां आर्थिक परिणाम विश्व बैंक के अनुमान से अधिक बुरे हो सकते हैं, उन्होंने कहा कि इस चुनौती से निपटने के लिए भारत को सबसे पहले इस महामारी को और फैलने से रोकना होगा और साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा, कि सभी को भोजन मिल सके। लॉकडाउन का सबसे ज्यादा असर अनौपचारिक क्षेत्र पर पड़ेगा और हमारी अर्थव्यवस्था का 50 प्रतिशत जीडीपी अनौपचारिक क्षेत्र से ही आता है, ये क्षेत्र लॉकडाउन के दौरान काम नहीं कर सकते हैं, वो कच्चा माल नहीं खरीद सकते, बनाया हुआ माल बाजार में नहीं बेच सकते तो उनकी कमाई बंद ही हो जाएगी।

भारत को भी चाहिए, कि आर्थिकी के लिए भारत में भी प्रतिभाशाली अर्थशास्त्रियों की एक कमेटी का गठन किया जाए, जिसमें प्रोफेशनल हों और वह भारतीय चुनौतियों के अनुसार देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए चरणबद्ध तरीके से नीतिगत समाधान सरकार के सामने रखे।

अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्था आईएमएफ ने एक टास्क फोर्स का गठन किया है, इस टास्क फोर्स का उद्देश्य है, कि बिगड़ती हुयी अर्थव्यवस्था को कैसे पटरी पर लाया जाए, इस टास्कफोर्स में आरबीआई के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन् पहले भी आईएमएफ के साथ रह चुके हैं। और वे एक काबिल अर्थ विशेषज्ञ हैं। भारत को भी चाहिए कि आर्थिकी को संभालने के लिए भारत में भी प्रतिभाशाली अर्थशास्त्रियों की एक कमेटी का गठन किया जाए जिसमें प्रोफेशनल हों और वे भारतीय चुनौतियों के अनुसार देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए चरणबद्ध तरीके से नीतिगत समाधान सरकार के सामने रखें। पिछले साल के ही आर्थिकी सूचकांक को देखें तो ऑटोमोबाइल सेक्टर, रियल स्टेट, लघु उद्योग समेत तमाम असंगठित क्षेत्रों में सुस्ती छाई हुई है।

बैंक एनपीए की समस्या से अब तक निपट रहे हैं, हालांकि सरकार निवेश के जरिए नियमों में राहत और आर्थिक मदद देकर अर्थव्यवस्था को रफ्तार देने की कोशिश कर रही थी पर बहुत अधिक सफलता सरकार को नहीं मिली है, इस बीच कोरोना वायरस के कारण पैदा हुए हालात ने जैसे अर्थव्यवस्था का चक्का जाम कर दिया है, न तो कहीं उत्पादन है और न मांग, लोग घरों में हैं और कल कारखानों तथा दुकानों पर ताले लगे हुए हैं। यह स्थिति अभी 3 मई तक तो रहेगी ही, कोरोना से लड़ाई अब दोहरी है, ज्यादातर देश सेहत और अर्थव्यवस्था दोनों का विनाश सीमित करने में जुटे हैं। भारत में संक्रमण रोकने की कवायद जोर पकड़ रही है, लेकिन आर्थिक राहत में भारत पिछड़ गया है।

अमेरिका को मंदी से बचाने के लिए डोनाल्ड ट्रंप, अपनी संसद दो ट्रिलियन डॉलर के पैकेज पर मना रहे हैं, अमेरिकियों को एक मुश्त 3,000 डॉलर (करीब 2.25 लाख रुपए) दिए जाने का प्रस्ताव है। केंद्रीय बैंक (फेडरल रिजर्व) ब्याज दरें शून्य करते हुए बाजार में सस्ती पूंजी (4 ट्रिलियन डॉलर तक छोड़ने की तैयारी) का पाइप खोल दिया है।

भारत में भविष्य निधि (पीएफ) का संग्रह करीब 11 लाख करोड़ रुपये का है, इससे एडवांस लेने की छूट और छोटी कंपनियों में नियोक्ताओं के अंशदान को तीन माह के लिए टालने इस निधि का भरपूर इस्तेमाल होगा सरकार के मुकाबले रिजर्व बैंक ने ज्यादा हिम्मत दिखाई है।

ब्रिटेन की सरकार रियायती टैक्स, कारोबारियों को सस्ता कर्ज, तरह-तरह के अनुदान सहित 400 अरब डॉलर का पैकेज लाई है, जो देश के जीडीपी के 1.5 फीसद के बराबर है, बैंक ऑफ इंग्लैंड ब्याज दरें घटाकर बाजार में पूंजी झोंक रहा है, कोरोना से बुरी तरह तबाह इटली की सरकार ने 28 अरब डॉलर का पैकेज घोषित किया है, जिसमें विमान सेवा एलिटालिया का राष्ट्रीयकरण शामिल है, इमैनुअल मैक्रॉन के फ्रांस का कोरोना राहत पैकेज करीब 50 अरब डॉलर (जीडीपी का 2 फीसद) का है। स्पेन का 220 अरब डॉलर, स्वीडन का 30 अरब डॉलर, ऑस्ट्रेलिया का 66 अरब डॉलर और न्यूजीलैंड का पैकेज 12 अरब डॉलर (जीडीपी का 4 फीसद) का है, सिंगापुर अपनी 56 लाख की आबादी के लिए 60 अरब डॉलर का पैकेज लाया है। रिकार्ड घाटे, राजस्व में कमी के कारण भारत का राहत पैकेज इसके जीडीपी की तुलना में केवल 0.8 फीसदी है, जबकि अन्य देश अपने जीडीपी का 4 से 11 % के बराबर पैकेज लाए हैं, भारत सरकार का करीब 1.7 लाख करोड़ रुपये का पैकेज कोरोना प्रभावितों को सांकेतिक मदद पर केंद्रित है, जिसमें सस्ता अनाज प्रमुख है जिसके लिए पर्याप्त भंडार है रबी की खरीद से नया अनाज आ जाएगा, किसान सहायता निधि और अन्य नकद भुगतान स्कीमों की किश्तें जल्दी जारी होंगी, इसके लिए बजट में आवंटन हो चुका है। उज्ज्वला के तहत मुफ्त एलजीपी सिलेंडर के लिए तेल कंपनियों को सब्सिडी भुगतान रोका जाएगा छोटी कंपनियों में नियोक्ताओं के अंशदान को तीन माह के टालने के लिए इस निधि का भरपूर इस्तेमाल होगा सरकार के मुकाबले रिजर्व बैंक ने ज्यादा हिम्मत दिखाई है सभी बैंकों से सभी कर्जों (हाउसिंग, कार, क्रेडिट सहित) पर तीन माह तक किश्तों का भुगतान टालने को कहा है। ब्याज दरों में अभूतपूर्व कमी की है और वित्तीय तंत्र में करीब 3.74 लाख करोड़ की पूंजी बढ़ाई है ताकि कर्ज की कमी न रहे अन्य देशों की तरह भारत सरकार कोरोना के मारे मजदूरों, छोटे कारोबारियों, नौकरियां गंवाने वालों को सरकार कोई नई सीधी मदद नहीं दे सकी है भविष्यनिधि 1 से मिल रही रियायतों के लाभ केवल 15-16 फीसदी प्रतिष्ठानों को मिलेंगे।

हमारे देश में छोटे-छोटे कारखाने और लघु उद्योगों की बहुत संख्या है, उन्हें नगदी की समस्या हो जाएगी क्योंकि उनकी कमाई नहीं होगी, ये लोग बैंक के पास भी नहीं जा पाते हैं इसलिए उंचे ब्याज पर कर्ज ले लेते हैं और फिर कर्जजाल में फंस जाते हैं।

अनौपचारिक क्षेत्रों में फेरी वाले, विक्रेता, कलाकार, लघु उद्योग और सीमापार व्यापार शामिल हैं, इस वर्ग से सरकार के पास टैक्स नहीं आता, लॉकडाउन और कोरोना वायरस के इस पूरे दौर में सबसे ज्यादा असर एविएशन, पर्यटन, होटल सेक्टर पर पड़ने वाला है, यह स्थिति सरकार के लिए चुनौतीपूर्ण है, अचानक ही उसके सामने एक विशाल समस्या आ खड़ी हुई है। 2008 के दौर में कुछ कंपनियों को आर्थिक मदद देकर संभाला गया लेकिन, आज अगर सरकार ऋण दे तो उसे सभी को देना पड़ेगा हर सेक्टर में उत्पादन और खरीदारी प्रभावित हुई है, कोरोना वायरस का असर पूरी दुनिया पर पड़ा है। चीन और अमेरिका जैसे बड़े देश और मजबूत

अर्थव्यवस्थाएं इसके सामने लाचार हो गए हैं, इससे भारत में विदेशी निवेश के जरिए अर्थव्यवस्था सुदृढ़ करने की कोशिशों को भी धक्का पहुँचेगा, विदेशी कंपनियों के पास भी पैसा नहीं होगा तो वह निवेश में रुचि नहीं दिखाएंगी, हालांकि जानकारों का कहना है, कि अर्थव्यवस्था पर इन स्थितियों का कितना गहरा असर पड़ेगा, ये दो बातों पर निर्भर करेगा, एक तो ये कि आने वाले वक्त में कोरोना वायरस की समस्या भारत में कितनी गंभीर होती है और दूसरा कि कब तक इस पर काबू पाया जाता है।

संयुक्तराष्ट्र की कान्फ्रेंस ऑन ट्रेड एंड डेवेलपमेंट (UNCTAD) ने खबर दी है, कि कोरोना वायरस से प्रभावित दुनिया की 15 सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक भारत भी है।

चीन में उत्पादन में आई कमी का असर भारत से व्यापार पर भी पड़ा है और इससे भारत की अर्थव्यवस्था को करीब 34.8 करोड़ डॉलर तक का नुकसान उठाना पड़ सकता है। यूरोप के आर्थिक सहयोग और विकास संगठन यानि आईसीडी ने भी 2020-21 में भारत की अर्थव्यवस्था के विकास की गति का पूर्वानुमान 1.1 प्रतिशत घटा दिया है।

**पर्यटन उद्योग :** कोरोना वायरस के प्रकोप के चलते, जब से आने-जाने में पाबंदियां लगी हैं, एहतियात के लिए दिशा-निर्देश और एडवाइजरी जारी की गई है, तब से अश्विनी कक्कड़ का फोन बजना बंद नहीं हुआ है। उन्हें लगातार कॉरपोरेट ग्राहकों और व्यक्तिगत कस्टमर के फोन आ रहे हैं, फोन करने वाले या तो अपना सफर रद्द करना चाहते हैं, या फिर आगे के लिए स्थगित करना चाहते हैं।

अश्विनी कक्कड़ पिछले तीस बरस से पर्यटन के कारोबार में हैं, वो कहते हैं कि उन्होंने कभी भी अपने कारोबार में इतना बुरा वक्त नहीं देखा, वो बताते हैं, मैंने अपनी जिंदगी में इससे बड़ी मेडिकल इमरजेंसी अब तक नहीं देखी इसके आगे सार्स (SARS) मार्स (MARS) और स्वाइन फ्लू का संकट कुछ भी नहीं है, जितना बुरा असर कोरोना वायरस का हुआ है, उतना किसी बीमारी के प्रकोप से नहीं हुआ बाहर जाने वाले कम से कम 20 प्रतिशत दूर या कैंसिल कर दिए गए हैं या फिर आगे के लिए टाल दिए गए हैं। आने वाले तीन महीनों में 30 फीसद कॉरपोरेट यात्राओं पर इसका प्रभाव पड़ना तय है, इनमें से अधिकतर या तो अपनी यात्राएं रद्द कर देंगे, या अभी स्थगित कर देंगे इसके बाद हमें और भी कोशिशें करनी पड़ेंगी।

अश्विनी कक्कड़ ने ये भी कहा, भारत आने वाले पर्यटकों की यात्राओं का अनुमान लगाना भी बहुत मुश्किल है क्योंकि सरकार हर रोज नई नीति की घोषणा कर रही है और हमें पता नहीं है कि आगे किन और देशों के नागरिकों के भारत आने पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

एहतियात के तौर पर सरकार ने कोरिया और इटली से आने वाले लोगों को कहा है कि वा अपनी यहां कि आधिकारिक लैब से इस बात का प्रमाण पत्र लेकर आए कि वो कोरोना वायरस से संक्रमित नहीं हैं।

स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा जारी एक प्रेस रिलीज के अनुसार इटली, ईरान, दक्षिण कोरिया और जापान के नागरिकों को जो भी वीजा और ई-वीजा 3 मार्च 2020 या उससे पहले जारी किए गए हैं और जिन्होंने अभी भारत में प्रवेश नहीं किया है, वो सभी वीजा तत्काल प्रभाव से निलंबित किए जाते हैं, सरकार ने नागरिकों को ये भी सलाह दी है कि वो चीन, इटली, ईरान, रिपब्लिक ऑफ कोरिया, जापान, फ्रांस, स्पेन और जर्मनी की यात्रा तब तक न करें, जब तक ये बहुत जरूरी न हो।

सरकार नियमित रूप से यात्रा से जुड़े दिशा-निर्देश अपडेट कर रही है, इससे सफर पर निकलने वालों के बीच अनिश्चितता का माहौल है अश्विनी कक्कड़ ने बताया, होटलों के कमरों की ऑक्यूपेंसी में 20 से 90 प्रतिशत तक कि गिरावट आ गई है दुनियाभर में बहुत से अंतर्राष्ट्रीय आयोजन रद्द किए जा रहे हैं, सबसे बुरा असर तो डेस्टिनेशन वेडिंग पर पड़ा है।

हाल ही में शादी करने वाली अधिकारी अनु गुप्ता, लंबे हनीमून पर थाईलैंड जाने की योजना बना रही थीं लेकिन वायरस के प्रकोप के चलते उन्हें अपनी योजना रद्द करनी पड़ी।

अनु कहती हैं, मेरी ये पहली विदेश यात्रा होती हमने सभी टिकट बुक कर लिए थे होटल में बुकिंग कर ली थी घूमने जाने का प्लान बना लिया था लेकिन अब हम नहीं जा सकते और मुझे तो ये भी नहीं पता कि हमारा पैसा वापस भी आएगा या नहीं।

ट्रैवेल ऐंड टूरिज्म काउंसिल और ऑक्सफोर्ड इकोनॉमिक्स, विश्व पर्यटन उद्योग पर कोरोना वायरस के प्रभाव का अध्ययन कर रहे हैं; उनके शुरुआती आकलन इशारा करते हैं कि कोरोना वायरस की महामारी से दुनिया के पर्यटन उद्योग को करीब 22 अरब डॉलर का नुकसान होगा।

**निष्कर्ष व सुझाव**—वैश्विक महामारी कोरोना वायरस अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ रही है, विश्व बैंक ने अनुमान जाहिर किया है कि वैश्विक महामारी के कारण चीन तथा अन्य पूर्वी एशिया प्रशांत देशों में अर्थव्यवस्था की रफ्तार बहुत धीमी रहने वाली है, जिससे लाखों लोग गरीबी की ओर चले जायेंगे।

कोविड-19 संकट से आर्थिक नुकसान झेल रहे विकासशील देशों में रहने वाली दुनिया की दो तिहाई आबादी वाले इन देशों के लिए संयुक्त राष्ट्र ने 2.5 ट्रिलियन डॉलर के बचाव पैकेज की माँग कर रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई. एम. एफ.) ने कहा था कि कोरोना वायरस महामारी के कारण विनाशकारी प्रभाव सामने आये हैं और स्पष्ट रूप से दुनिया मंदी में प्रवेश कर गयी है, हालांकि आई. एम. एफ. ने अगले साल सुधार का अनुमान जताया है। कोरोना वायरस महामारी से मरने वालों की संख्या 35000 हो गयी है, जबकि विश्व स्तर पर पुष्ट मामलों की संख्या 750000 से ऊपर है। बैंकों का अनुमान है कि 1.1 करोड़ से अधिक संख्या में लोग गरीबी के दायरे में आ जायेंगे, यह अनुमान पहले के उस अनुमान के विपरीत है, जिसमें कहा गया था कि इस वर्ष विकास दर पर्याप्त रहेगी और 3.5 करोड़ लोग गरीबी रेखा से ऊपर उठ जायेंगे तथा दुनिया मंदी के दौर में पहुँच गयी है, अतः 2021 में अर्थव्यवस्था तभी मंदी से उबर सकती है, जब अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय हर जगह वायरस को फैलने से रोक पायेगा अतः 2021 में सुधार का अनुमान जताया जा रहा है।

#### संदर्भ—सूची

1. www. Jagronjosh.com
2. www. economicstimes.com
3. [www. nytimes .com](http://www.nytimes.com)
4. www. washintonpost.com
5. [http://en.wikipedia.org/wiki/Socio - economic- Impact of the corona virus - Pandemic](http://en.wikipedia.org/wiki/Socio-economic_Impact_of_the_coronavirus_Pandemic)
6. www. cnn.com
7. www. cbc.ca

\* \* \* \* \*



## Workers Participation in Management

*Richa Rajshree\**

**1. INTRODUCTION :** For Socio-Economic development of any country, the growth of industrialization is necessary and this can only be done by so called Industrial democracy. Industrial democracy refers to an arrangement which involves workers making decisions, sharing responsibility and authority in the workplace.

The idea of the involvement of staff in management is based on the Management Human Relations methodology that created a new set of principles for labour and management. This new methodology is also referred as Participation Management.

In an Organizational Structure practising Classical Management, employees do not participate in the decision making process. Employees receive, interpret and carry out orders after the decisions are made by administrators.

In contrast, Participatory management is a shift in the management paradigm from a top-down approach to a more self-facilitated and self-sustained approach. Employees are given the freedom and responsibility, accompanied by all the necessary tools needed to delegate decision making, authority and evaluations of existing and foreseeable/unforeseeable problems.

**2. ORIGIN AND GROWTH OF WORKERS PARTICIPATION MANAGEMENT IN INDIA :** Workers participation management (WPM) in India was introduced by Mahatma Gandhi in 1920 who emphasized that equal importance and status should be provided to each worker, with dignity of work and mutual exchange of interest between labour and management. He emphasized more on this concept in 1937 and his idea of joint consultation first adopted by cotton textile industry.

The main importance was given to workers participation management in India only after independence. In this direction, the first step was taken with the formation of industrial dispute act, 1947 who recommended for setting up of work committee with the purpose of settlement and prevention of industrial disputes. After this, workers participation management was advocated by industrial policy resolution 1948, according to which all matters of industrial production should be concern with labour. In 1950, the joint management councils were established with the purpose to increase the labour participation in management and two-tier participation were also introduce in July 1975 called as shop council at shop level and joint council at plant level.

On the basis of experience and after reviewed of old schemes related to workers participation, the government of India formulated a new scheme for workers participation in 1983, which was applicable to all central public sector enterprise and decided that workers would be allowed to participation at the shop level, plant level and the boarded level to discuss the issues related with personnel welfare, plant operations, financial matters etc. and a tri-partite committee was constituted by the ministry of labour to review the

working of scheme and also to suggest collective measures. But it failed to make much progress due to lack of consensus on the mode of representation and tendency of workers to discuss extraneous matters.

To remedy the situation a management bill of workers participation was introduced by Janta Dal government in parliament on 30th May, 1990 for legalizing the provision of workers participation in management in Indian industries. But the bills never become an act due to sudden collapse of government.

**3. PARTICIPATION MANAGEMENT & OUR CONSTITUTION :** Article 43A of the Constitution of India deals with 'Participation of workers in management of industries' and it falls under Part IV - Directive Principles of State Policy. This article was inserted by the Constitution (Forty-second Amendment) Act, 1976, s. 9 (w.e.f. 3-1-1977).

**According to the article:-**The State shall take steps, by suitable legislation or in any other way, to secure the participation of workers in the management of undertakings, establishments or other organisations engaged in any industry.

**4. OBJECTIVES OF WORKERS PARTICIPATION IN MANAGEMENT :** While there are so many variables regulating employee engagement expectations, some general goals are:

1. To prevent workers from exploitation by the management or by the owners of the organisation.
2. To have democracy in the organization.
3. To have proper development of the working class.
4. To resolve conflicts and differences between management and employees in a democratic manner.
5. To create in employees a sense of participation in industry.
6. To encourage suggestions from employees.
7. To improve the working and living conditions of employees.
8. To promote better understanding between labours and management on the various issues of the organisations.
9. To give employees a better understanding of their role in the working of the industry.
10. To give the employees an opportunity for self-expression leading to *industrial peace*, good relations and increased co-operation and evaluations which sustains diverse participation in managing expectations and actions with a collective understanding of goals and outcomes.

**4. FORMS OF WORKERS PARTICIPATION IN MANAGEMENT :** At industrial level, there are various forms of workers participation in management which are used by industries for organizational development and also for the welfare of workers or employees in the organization and these varies from industry to industry.

**These are :**

**4.1 Work Committee :** The first form of workers participation was seen in the work committee(WC) under Industrial Dispute Act, 1947 section-3 which stated that central and state government have the right to declare the formation of works committees in industrial establishment that employ 100 or more workers would have equal number of representative from labour and management. There would be chairperson, vice-chairperson, secretary and joint secretary for every committee. If the chairperson was a representative of the workers, then the vice chairperson would be from the management side; similarly, if the secretary was from the management side, the joint secretary would be from the workers side.

The main purpose of this committee is to provide measures for securing and preserving amity and good relations between the employer and the employees and also deals with matters of day to day functioning which concerned with conditions of work such as ventilation, lighting, drinking water, dining rooms, canteens, medical and health services, educational and recreational activities etc. During 1947, a few work committees were setup in some railway companies and also in the printing presses of the government. Presently these committees are functioning actively in some organizations like Tata Iron and Steel Company, Indian Aluminum works at Belur and Hindustan lever. In all these, the managements have evolved joint committees independently of the statutory requirements.

**4.2 Joint Management Council (JMC):** In India, Joint management council (JMC) are constitute in 1958 at the plant level by the unions and the state, consist equal number of representatives of the employers and employees, not exceeding 12 at the plant level. The plant should employ at least 500 workers. At that time, the council was established in Hindustan machine tools, TISCO and Delhi cloth and General Mills Co. Ltd. also accepted and elected representative on the board of its director. Joint management council discusses various matters relating to the working of the industry. This council is entrusted with the responsibility of administering welfare measures, supervision of safety and health schemes, scheduling of working hours, Reward for suggestions etc.

Over the year, there has been a good growth in number of units adopted by joint management council in public sector like Bharat Heavy Electrical Limited to whom it provided an appropriate forum for effective communication and management.

**4.3 Shop Council :** Government of India on the 30th of October 1975 announced a new scheme in workers participation in management called as shop council in which every industrial establishment employing 500 or more workmen. Shop council represents each department or a shop in a unit. Each shop council consists of an equal number of representatives from both employer and employees. The employer s representatives will be nominated by the management and must consist of persons with in the establishment and the workers representatives will be from among the workers of the department or shop concerned. The total number of employees may not exceed 12. The scheme was introduced in manufacturing and mining units which includes the public sector undertaking like Steel Authority of India Ltd. (SAIL), the Rourkela Steel Plant, Bharat Heavy Electricals Ltd. (BHEL), cement Corporation of India, Mineral Exploration Corporation, Hindustan Photo film Manufacturing Company, Bharat Gold Mines, Oil India and The National Textile Corporation etc.

Presently, this scheme running in many public enterprises but according to labour ministry it is working quit smoothly only in the coal fields.

**4.4 Joint Council :** The joint council is constituted for the whole units of an industry, employing 500 or more workers only such person who are actually engaged in the unit shall be the member of joint council. A joint council shall meet at least once in a quarter. The chief executive of the unit shall be the chairperson of joint council will be nominated by the worker members of council. The decision of the joint council shall be based on the consensus and not on the basis of voting. These councils are found in manufacturing and mining units. Apart from this it also covers commercial and service organizations such as hotels, restaurants, hospitals, air, sea, railway and road transport services, trust organizations, state electricity boards, State warehousing corporation, tourist organizations etc.

**4.5 Suggestion Schemes:** Participation of workers can take place through suggestion schemes which help to encourage workers interest in the functioning of an enterprise. In suggestion scheme, a

suggestion box is installed and only worker can write his suggestions and drop them in the boxes which are scrutinized by the suggestion committee (constituted by equal representation from the management and workers). The committee screens various suggestions, received from the workers. Good suggestions are accepted for implementation and suitable awards are given to the concerned workers. Suggestion schemes encourage workers interest in the functioning of an enterprise.

**5. LEVELS OF PARTICIPATION :** Workers' participation is possible at all levels of management; the only difference is that of degree and nature of application. For instance, it may be vigorous at lower level and faint at top level. Broadly speaking there is following five levels of participation:

1. Information participation: It ensures that employees are able to receive information and express their views pertaining to the matters of general economic importance.

2. Consultative participation: Here works are consulted on the matters of employee welfare such as work, safety and health. However, final decision always rests at the option of management and employees' views are only of advisory nature.

3. Associative participation: It is extension of consultative participation as management here is under moral obligation to accept and implement the unanimous decisions of employees.

4. Administrative participation: It ensure greater share of works in discharge of managerial functions. Here, decision already taken by the management come to employees, preferably with alternatives for administration and employees have to select the best from those for implementation.

5. Decisive participation: Highest level of participation where decisions are jointly taken on the matters relation to production, welfare etc. is called decisive participation.

**6. CONCLUSION :** Participatory management leads to increased productivity, motivation, job satisfaction and quality enhancement, however, it may also slow down the process of decision making and act as a potential security threat by providing access to valuable information to fellow employees. But overall, the result is a more effective management framework and a more productive environment.

#### References

1. Bhagoliwal Dr. T.N., "Economics of Industrials", SBPD Publishing House, Agra, 2009, Page No. 315.
2. Gupta Dr. C.B., "Human Resource Management", Sultan Chand and Sons, New Delhi, 2009, Page No. 28.4 - 28.6.
3. Mamoriya Dr. C.B., "Dynamic of Industrial Relation", Himalaya Publication House, Mumbai, 2008 Page No. 596-598.
4. Ibid, Page No. 609-611.
5. Sinha P.R.N., "Industrial Relation Trade Union and Labour Legislation", Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., Delhi, 2009.
6. Rao P. Subba, "Human Resource Management", Himalaya Publishing House, Mumbai, 2010, Page No. 381-383.
7. Rao V.S.P., "Human Resource Management", Excel Books, New Delhi, 2005, Page No. 550-553.
8. Gupta P.K., "Labour Economics", Vrinda Publication (P) Ltd., Delhi, 2012, Page No. 247-248.

\* \* \* \* \*

## Respondent's Hedonic Attitude Towards Online Shopping of Fashion Products

*Dimple Tilwani\**

**Abstract :** *When consumer choice is specially based on usefulness of the product, it is called as utilitarian aspect, and when it is just based on fun then it is known as hedonic attribute or aspect of consumer. Hedonic goods are consumed for luxury purposes, which are desirable objects that allow the consumer to feel pleasure, fun, and enjoyment from buying the product. This study is based on consumers' hedonic attributes while purchasing the apparels through online shopping websites. A sample of 400 respondents was analyzed using questionnaire as a data collection method and data gathered has been analyzed using ANOVA and T-test wherever found suitable.*

*The findings indicates that location is the determining factor for the purchase of fashion products through online shopping websites. Other factors were also crucial like, age and gender which have been further explored in the study.*

**Keywords:** *Hedonic, online shopping, fashion products, consumer preferences.*

**Introduction :** People have diverse preferences towards goods and services. This preference depends on two aspects: one is rational and another is irrational. Rational aspect is known as utilitarian aspect or attribute while irrational aspect is known as hedonic aspect. When consumer choice is specially based on usefulness of the product, it is called as utilitarian aspect, and when it is just based on fun then it is known as hedonic attribute or aspect of consumer. Hedonic goods are consumed for luxury purposes, which are desirable objects that allow the consumer to feel pleasure, fun, and enjoyment from buying the product. The hedonic attribute of any product is also considered a factor in deciding behaviour in line with previous suggestions in the literature (Peloza, White and Shang 2013). Irrational consumers seeking hedonic brand benefits also perceive brand price as an important factor in brand choice (Lee, 2009). How product type affects sustainable behaviour is not immediately clear. This is the difference from Utilitarian goods, which are purchased for their practical uses and are based on the consumer's needs.

Consumers cannot form their preferences among brands using logical attributes only. They look for brands that build experiences; that intrigue them sensorially, emotionally and creatively. But now the move to experiential marketing broadens the brand's position from a package of attributes to experiences. Technological developments have helped enhance correlations between brand characteristics and product commoditisation. This study aims to study the respondent's hedonic attitude

*\* Research Scholar, Department of Business Administration, Awadhesh Pratap Singh University, Rewa (Madhya Pradesh)*

towards online shopping of fashion products with respect to various demographic variables of the respondents. Hence, the study can be called as cross sectional as well.

**Literature Review :** Consumers can choose to pay more and buy a sustainable alternative when buying a hedonic product to offset guilt (Strahilevitz 1999) or regulate behaviour (Werthenbroch 1998). A sustainable hedonic commodity may not offer the anticipated degree of enjoyment or indulgence as a traditional alternative. In such situations, as discussed later, fitting the benefits of a utilitarian product with those related to sustainability will lead to greater buying intentions (Torelli, Monga and Kaikati 2012). Petruzzellis (2010) verified that rational consumers who focus on tangible brand attributes assign greater importance to price than irrational consumers, price remains an important positive or negative cue in consumer behaviour (Lichtenstein, Ridgway, & Netemeyer, 1993).

Irrational customers seeking hedonic brand benefits often see brand price as a key factor in brand choice (Lee, 2009). Rational consumers focused on observable brand attributes assign greater importance to price than unreasonable consumers; price remains a significant positive or negative predictor of consumer behaviour (Lichtenstein, Ridgway, & Netemeyer, 1993).

Research tools & techniques:

**Data collection :** The most valuable resource which a researcher or a business can have is data about its area of interest. In this study, questionnaire method of collecting the data has been utilized. Secondary sources of data used in this study were various journals, websites, already published theses and the e-resources like, Shodhganga. In the questionnaire, some of the questions were there which were based on Likert scale.

**Sampling :** The educated youths, elderly men and women were provided the questionnaire who were generally the users of online shopping websites. The feedback form was carefully designed to fulfill the requirements of the research.

#### **Tools of data analysis and data Representation**

Anova testing, t- test were also applied wherever they are required. Data analysis was used to make this study valuable with expected outcomes. Spss-20.0 was used for data analysis. Collected data was processed and analyzed. Data processing includes editing, coding, classification and tabulation of processed data. After processing of data pie charts, column charts and graphs are used for data representation. Statistical technique like simple average and percentage were used for data analysis and hypothesis testing.

Reliability analysis: **Cronbach's alpha is a measure of internal consistency, that is, how closely related a set of items are as a group. Here, the value test of reliability .568 suggested is appropriate on the basis of which hedonic attributes can be tested and analyzed further.**

**Table 1 : Showing Reliability Statistics**

<b>Reliability Statistics</b>	
Cronbach's Alpha	N of Items
.568	5



**Demographic Profile of the Respondents :** It is observed from the following table that there are 15.8% men's respondents and 49% women respondents. The variable 'gender' was included in the study based on the assumption that on the basis of gender people have different buying behaviour towards online shopping. There are 21% respondents in the age group 20-25 years and in the age group 25-30 years, 23% respondents were there. Then, in the next age group 30-35 years there were 19% respondents and the next age group 35-40 years comprised of 20.8% respondents. Last age group was 40-45 years and 15% respondents were there in this age group. It is seen that there are 5 groups of occupation for example, students, business class, government employees, self employed and homemakers. Homemakers were also included in this study by keeping in mind, that they will have more tendency to buy the online fashion products. It is seen that there were 23.8 percentage students, 22.3 percent business class people, 15.3% government employees, 10.5% self employed people and 27.3% homemakers. It is observed from the table depicting the various income groups, that there are four groups of income. first income group comprised of 25,000 to 50,000 rupees, second income group comprised income ranging from 50,000 to 75,000, third income group comprised of income ranging from 75,000 to 1,00,000 rupees and the last income group was above 1,00,000 rupees. It is seen that there are hundred respondents in each of the income group and 25% respondents from each income group were included in the study. There were 5 cities included in this study. The cities like, Indore, Bhopal, Gwalior, Jabalpur and Rewa and from each location, there were proposed to be 100 respondents by keeping in mind their income levels, but, most of the questionnaires were incomplete in some respect. Alongwith it, some of the respondents were unengaged in responding to the questionnaire. It can be said that 20% respondents from each of the five locations were included in this study.

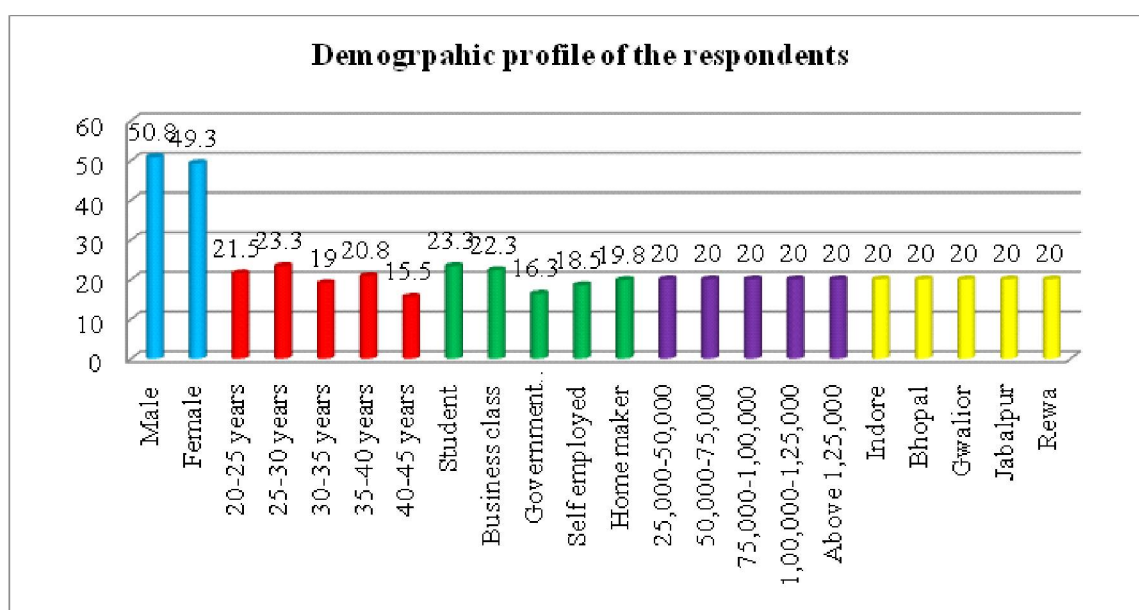
**Table 2 : Showing Demographic Profile of the Respondents**

Demographic variables	Categories	Frequency	Percent
<b>Gender</b>	Male	203	50.8
	Female	197	49.3
<b>Age</b>	20-25 years	86	21.5
	25-30 years	93	23.3
	30-35 years	76	19
	35-40 years	83	20.8
	40-45 years	62	15.5
<b>Occupation</b>	Student	93	23.3
	Business class	89	22.3
	Government Employed	65	16.3
	Self employed	74	18.5
	Home maker	79	19.8



Income (per month)	25,000-50,000	80	20
	50,000-75,000	80	20
	75,000-1,00,000	80	20
	1,00,000-1,25,000	80	20
	Above 1,25,000	80	20
Location	Indore	80	20
	Bhopal	80	20
	Gwalior	80	20
	Jabalpur	80	20
	Rewa	80	20

Graph 1 : Showing Demographic Profile of the Respondents



### Hypothesis Testing :

**Hypothesis 1 : There is no significant difference in the respondent's hedonic attitude towards online shopping of fashion products with respect to age of the respondents.** From the following table it is observed that the highest mean value is obtained for the age group 30-35 years 3.2053 and its std. dev. is equal to .78924. In the age group 40-45 years also, the mean value obtained is fine which is equal to 3.0613. The numbers of respondents are unequal in every age group. Hence, it can't be said that the mean value here, can be indicator of appropriateness of the samples. The low value of std. dev. indicates the appropriateness of the sample. But, then also the age group 20-25 years has the mean value 2.9023 and its std. dev. is equal to .75131. Hence, this can be supposed as most appropriate sample.

**Table 3 : Showing the Descriptive Statistics for Hedonic Attitude of the Respondents**

Descriptives			
	Hedonic Attitude		
	N	Mean	Std. Deviation
20-25 years	86	2.9023	0.75131
25-30 years	93	3	0.92219
30-35 years	76	3.2053	0.78924
35-40 years	83	2.9952	0.80968
40-45 years	62	3.0613	0.90578
Total	400	3.0265	0.83878

The value of anova testing .227 is higher than the 0.05, which indicates the acceptance of the null hypothesis that there is no significant difference in the respondent's attitude towards customer's hedonic attributes regarding online shopping of fashion products with respect to age of the respondents. The f-value from anova come out as 1.419 for degree of freedom  $v_1=4$  and  $v_2=395$  which is slightly less than the table value 2.21, indicates the acceptance of null hypothesis. Hence, it can be said that people belonging to diverse age groups have similar opinions regarding customer attributes.

**Table 4 : Showing the Results of ANOVA Testing Regarding Hedonic Attitude of the Respondents with Respect to Age**

ANOVA					
	Hedonic Attitude				
	Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	3.977	4	0.994	1.419	0.227
Within Groups	276.743	395	0.701		
Total	280.719	399			

**Hypothesis 2 : There is no significant difference in the respondent's hedonic attitude towards online shopping of fashion products with respect to gender of the respondents.** The customers' hedonic attributes are tested against gender also. It can be seen from the following table that there are 203 males and 197 females. The mean value of responses of males regarding customer attributes is 3.0010 and std. dev. is .77677. The mean value of responses of females comes out as 3.0528 and std. dev is .89946 which is higher than that of males. Hence, it can be said that responses of males are more consistent.

**Table 5 : Showing the Group Statistics Regarding Hedonic Attitude of the Respondents with Respect to Gender**

Group Statistics				
	Gender	N	Mean	Std. Deviation
Hedonic attitude	Male	203	3.001	0.77677
	Female	197	3.0528	0.89946

The results of t-test indicate that its significant value comes out as .538 which is slightly higher than 0.05. It indicates the acceptance of null hypothesis that there is no significant difference in the respondent's attitude towards customer's hedonic attributes regarding online shopping of fashion products with respect to gender of the respondents. The value of t is also equal to -.617 for degree of freedom 398 when equal variances are assumed and it is less than the table value 1.960 which indicates that the null hypothesis is accepted. Therefore, it can be said that men and women have similar hedonic buying attributes regarding online shopping of fashion products.

**Table 6: Showing the Results of Independent Sample t Test Regarding Hedonic Attitude of the Respondents with Respect to Gender**

Independent Samples Test								
t-test for Equality of Means								
	t	df	Sig. (2-tailed)	Mean Difference	Std. Error Difference	95% Confidence Interval of the Difference		
						Lower	Upper	
Hedonic attitude	Equal variances assumed	-0.617	398	0.538	-0.0518	0.08395	-0.2169	0.11324
	Equal variances not assumed	-0.616	386.126	0.538	-0.0518	0.08414	-0.2172	0.11362

**Hypothesis 3 : There is no significant difference in the respondent's hedonic attitude towards online shopping of fashion products with respect to income of the respondents.** Following table shows the mean values of the responses of various groups, among which the highest mean value is obtained for the income group 'Above 1,25,000' which is equal to 3.1000. It has value of std. dev. as .83469. Each group of income has 80 respondents but there is deviation in the responses. Therefore,

it is important here to consider the value of std. deviation. The lowest std. deviation (.75674) is found in the income group '75000-100000'. Hence, it can be considered as most appropriate group.

**Table 7: Showing the Descriptive Statistics Regarding Hedonic Attitude of the Respondents with Respect to Income**

Descriptives			
Hedonic attitude			
	N	Mean	Std. Deviation
25,000-50,000	80	2.965	0.87657
50,000-75,000	80	3.045	0.81503
75,000-1,00,000	80	3.1225	0.75674
1,00,000-1,25,000	80	2.9	0.90344
Above 1,25,000	80	3.1	0.83469
Total	400	3.0265	0.83878

The results of anova testing given below indicate the significant value .414 to be higher than 0.05. The calculated f-value is .988 for  $v_1=4$  and  $v_2=395$ , which is less than the table value 2.60. Both ways the null hypothesis is accepted and, it can be said that significant difference is not there in the opinions of the respondents towards customer attributes even if they belong to different income groups.

**Table 8: Showing the Results of ANOVA Testing Regarding Hedonic Attitude of the Respondents with Respect to Income**

ANOVA					
Hedonic attitude					
	Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	2.780	4	.695	.988	.414
Within Groups	277.940	395	.704		
Total	280.719	399			

**Hypothesis 4 : There is no significant difference in the respondent's hedonic attitude towards regarding online shopping of fashion products with respect to occupation of the respondents.** Hedonic attributes were checked on the basis of occupation from the table once again and it is evident that there are equal number of respondents from all the five categories. The higher

value of mean is found for home makers which is equal to 3.1671 and its value of std. dev. .89353 is also low as compared to other occupation categories, hence, this sample is appropriate for the study. The mean values also revolve around 3 and it indicates that the responses are positive regarding website attributes. But, if the low value of std. dev. indicates the consistency of the responses then it can be said that the sample of students is most consistent.

**Table 9: Showing the Descriptive Statistics for Respondent's Hedonic Attitude with Respect to Occupation**

Descriptives			
Hedonic attitude			
	N	Mean	Std. Deviation
Student	93	3.0172	0.73642
Business class	89	2.8472	0.84586
Government Employed	65	3.1446	0.7742
Selfemployed	74	3	0.92039
Home maker	79	3.1671	0.89353
Total	400	3.0265	0.83878

The significant value which is obtained after carrying out Anova testing come out as equal to .104 which is higher than 0.05. It indicates the acceptance of null hypothesis. The value of F is equal to 1.933 for  $v_1=4$  and  $v_2=395$  which is lower than the table value 2.37. This also indicates the acceptance of null hypothesis.

**Table 10 : Showing the Results of ANOVA Testing Regarding Hedonic Attitude of the Respondents with Respect to Occupation**

ANOVA					
Hedonic attitude					
	Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	5.39	4	1.347	1.933	0.104
Within Groups	275.329	395	0.697		
Total	280.719	399			

**Hypothesis 5 : There is no significant difference in the respondent's hedonic attitude towards online shopping of fashion products with respect to location of the respondents.** The highest mean value for the responses of people regarding hedonic attitude towards customer's attributes regarding online shopping is found for the people from Bhopal 3.3175 with std. dev. .75419. There have been 80 respondents from all five locations and they have mean values centred around 3. Hence, responses are mostly positive but the most appropriate responses are from Bhopal.

**Table 11: Showing the Descriptive Statistics for Respondent's Hedonic Attitude with Respect to Location**

Descriptives			
Hedonic attitude			
	N	Mean	Std. Deviation
Indore	80	2.88	0.79019
Bhopal	80	3.3175	0.75419
Gwalior	80	3.18	0.92263
Jabalpur	80	2.8225	0.77099
Rewa	80	2.9325	0.85563
Total	400	3.0265	0.83878

The significant value of ANOVA testing is equal to .000 which is lower than 0.05. It indicates the rejection of null hypothesis. Even the f-value is equal to 5.344, for  $v_1=4$  and  $v_2=395$  which is higher than the table value 2.37. It also indicates the rejection of null hypothesis that there is no significant difference in the respondent's attitude towards product's attributes regarding online shopping of fashion products with respect to location of the respondents.

**Table 12 : Showing the Results of ANOVA Testing Regarding Hedonic Attitude of the Respondents with Respect to Location**

ANOVA					
Hedonic attitude					
	Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	14.413	4	3.603	5.344	.000
Within Groups	266.307	395	.674		
Total	280.719	399			

**Findings and Discussion :** Whenever one makes purchase of the product on an impulse without giving much thought to the decision to buy, it is known as hedonic attitude. Overall, 38.2% respondents were agreeing that they make their purchase hedonically. 32.8% respondents were agreeing that they purchase the fashion products without lot of thinking. 41% respondents were respondents were indicating that online shopping prompts them to buy the things which are not required sometimes. 43.2% respondents were supporting the view that they immediately purchase the fashion product if they like it. Large number of respondents were supporting the view. 51.1% respondents were supporting the view that attractiveness of any online shopping website makes people purchase the apparels online. however they resist for the urge to buy the fashion products that are liked at any online store. On the basis of age, it was found that no significant difference existed in the respondents attitude towards hedonic attributes regarding online shopping on fashion products based on their age. Similarly, based

on gender, income and location respondents' opinion did not differ much. But on the basis of occupation, difference was noticed in respondents' opinion.

**Conclusion :** Any online shopping website display lets people purchase the apparels online. And they fight the temptation to purchase the trendy items that every online store may have. People tend to buy the products through online shopping websites because of many factors like convenience, availability of variety, comfort, easy return process and many more. Sometimes they log into a shopping websites but do not make any purchase and many other times they purchase the things which may be absolutely unusable but such purchases gives them satisfaction and pleasure as well. Here from the outcomes of this study it can be concluded that hedonic attributes are important while purchasing fashion products from online shopping websites. Demographic variables are equally important for the purchase of garments through online shopping and from the findings it can be concluded that location of the respondents matters a lot while considering hedonic attributes of the consumers.

**Suggestions :** The study herein confirms that the extent to which a consumer perceives a product to have hedonic attributes and provides further evidence that not all sustainable products are evaluated equally, some are purchased for fun as well. the study suggests the importance of hedonic experiences among the consumers, hence it is suggested that marketers should formulate the strategies that may describe the brand preferences based on hedonic attributes. While doing so various consumer characteristics apart from demographic variables, should also be explored.

#### References:

1. Wertenbroch, Klaus (1998), "Consumption Self-Control by Rationing Purchase Quantities of Virtue and Vice," *Marketing Science*, 17 (4), 317-337.
2. Strahilevitz, Michal (1999), "The Effects of Product Type and Donation Magnitude on Willingness to Pay More for a Charity-Linked Brand," *Journal of Consumer Psychology*, 8 (3), 215-241.
3. Torelli, Carlos J., Alokparna BasuMonga and Andrew M. Kaikati (2012), "Doing Poorly by Doing Good: Corporate Social Responsibility and Brand Concepts," *Journal of Consumer Research*, 38 (5), 948-963.
4. Petruzzellis, L. (2010). Mobile phone choice: Technology versus marketing. The brand effect in the Italian market. *European Journal of Marketing*, 44(5), 610-634.
5. Lichtenstein, D. R., Ridgway, N., & Netemeyer, R. G. (1993). Price perceptions and consumer shopping behavior: A field study. *Journal of Marketing Research*, 30(2), 234-245.
6. Lee, R. (2009). Social capital and business and management: Setting a research agenda. *International Journal of Management Reviews*, 11(3), 247-273.
7. Chitturi, R., Raghunathan, R., & Mahajan, V. (2008). Delight by design: The role of hedonic versus utilitarian benefits. *Journal of Marketing*, 72, 48-63.

\* \* \* \* \*



## Key Elements of Total Quality Management

*Saurabh Kumar Soni\* Prof. Dr. Anjali Srivastava\*\* and Dr. Nidhi Singh Parihar\*\*\**

**Abstract :** Total quality management (TQM) is a structured approach to overall organizational management. The focus of the process is to improve the quality of an organization's outputs, including goods and services, through continual improvement of internal practices. TQM practices including quality management, process management, employee empowerment and teamwork, customer satisfaction management, quality goal setting and measurement, supplier's cooperation and quality tools training have positive effects on customer satisfaction and that the adoption of TQM principles is an effective means by which companies can gain competitive advantage. The implementation of the TQM practices has helped companies to improve their image, employee's satisfaction and quality awareness. TQM has been coined to describe a philosophy that makes quality the driving force behind leadership, design, planning, and improvement initiatives. The eight key elements of TQM are: Ethics, Integrity, Trust, Training, Teamwork, Leadership, Communication and Recognition. It can be concluded that these eight elements are key in ensuring the success of TQM in an organization. The key elements of TQM are discussed at length in the full paper.

**Key words :** Total Quality Management (TQM), Organizational Management, Elements of TQM

**Introduction :** Concept of Total Quality Management Total quality management (TQM) consists of organization-wide efforts to install and make permanent climate where employees continuously improve their ability to provide on demand products and services that customers will find of particular value. "Total" emphasizes that departments in addition to production (for example sales and marketing, accounting and finance, engineering and design) are obligated to improve their operations; "management" emphasizes that executives are obligated to actively manage quality through funding, training, staffing and goal setting. While there is no widely agreed-upon approach, TQM efforts typically draw heavily on the previously developed tools and techniques of quality control. TQM enjoyed widespread attention during the late 1980s and early 1990s before being overshadowed by ISO 9000, Lean manufacturing, and Six Sigma.

Total quality management (TQM) is a structured approach to overall organizational management. The focus of the process is to improve the quality of an organization's outputs, including goods and services, through continual improvement of internal practices. The standards set as part of the TQM approach can reflect both internal priorities and any industry standards currently in place.

Industry standards can be defined at multiple levels and may include adherence to various laws and regulations governing the operation of the particular business. Industry standards can also include the production of items to an understood norm, even if the norm is not backed by official regulations.

\* *Research Scholar, Department of Business Administration, A.P.S. University, Rewa (M.P.)*

\*\* *Professor and Head, Department of Psychology, A.P.S. University, Rewa (M.P.)*

\*\*\* *Visiting Faculty, Department of Psychology, A.P.S. University, Rewa (M.P.)*

A core definition of total quality management (TQM) describes a management approach to long-term success through customer satisfaction. In a TQM effort, all members of an organization participate in improving processes, products, services, and the culture in which they work.

According to Christos and Evangelos (2010), the main quality management factors are: quality practices of the top management, employee involvement, customer focus, process and data quality management and the use of quality tools and techniques. In other words, the company's top management supported by its employees, places customer at the center of the system and while using quality tools it manages processes and data based on quality. The result of this form of management is the company's quality improvement, customer satisfaction, its market consolidation and domination and the protection of natural and social environment.

In order to face the challenges, many organizations, including thermal power plants in Kenya, have implemented QMS. According to Bell, McBride and Wilson (1994), when QMS is properly implemented out of a strategic decision rather than from reaction to changing competitive circumstances, the benefits are, access to markets, organized form of communication, more precise specification means, greater control of suppliers, increased efficiency, less remedial work and scrap, and excellent feedback to customer problems. Other benefits also include; more rapid correction of inadequate production methods, meeting target delivery dates, improvement in the standard of workmanship, and improvement of the reputation of the organization.

TQM is a philosophy aiming at continuous improvement and involvement of the whole organization starting from the top of the hierarchy and ending at the bottom level of employees (Kafifi, 2006). Yang (2006) found that TQM practices including quality management, process management, employee empowerment and teamwork, customer satisfaction management, quality goal setting and measurement, supplier's cooperation and quality tools training have positive effects on customer satisfaction and that the adoption of TQM principles is an effective means by which companies can gain competitive advantage. The implementation of the TQM practices has helped companies to improve their image, employee's satisfaction and quality awareness.

Many companies are facing significant challenges to survive and grow. There is limited empirical evidence available about the effect of alternative TQM practices on different business performance measures (Sadikoglu and Zehir, 2010).

A consensual definition of TQM is problematic as scaled by (Idris and Zairi, 2006). Baird et al. (2011) have TQM described TQM as an integrative organisational-wide philosophy that aims to continuously improve the quality of products, services and processes to meet customer expectations. Talib et al. (2011) described TQM as a total system approach which works across all functions and departments. The involvements of all employees are unified in TQM and the goal is to consistently meet or exceed customer requirements.

There are many different types of TQM practices identified in the current literature including those which are focused around factors such as: senior management support and leadership (Talib and Rahman, 2010; Khamalah and Lingaraj, 2007); customer focus, satisfaction and orientation (Mahapatra and Khan, 2006); employee support, engagement and involvement (Lakhali et al., 2006; Samat et al., 2006); training and education (Ueno, 2008); and continuous improvement (Fotopoulos and Psomas, 2009).

A distinction has been made between TQM which divides practices into "hard" and "soft". "Hard" practices are those which are considered to be most pertinent to production and operations management.

In this statistical techniques or performance standards are used to assess quality. “Soft” practices are those which have a more qualitative focus incorporating elements such as leadership, employee involvement and team work (Yunis et al., 2013). Khan and Naeem (2018), who examined the impact of soft quality practices on hard quality practices. The soft quality practices can lead to improved innovation. The organizational performance is affected by this.

TQM concept has evolved resulting in the development of a range of models and techniques such as Six Sigma, Kanban, Total Productive Maintenance, Lean, Just-in-time, and Productivity Improvement. (Dhongade et al., 2013; Shafiq et al., 2017). Nowadays, they are all used in a range of different settings and industries.

The TQM approach introduced and started in early 1920s from the “production quality control ideas”. In mid 1980s total quality management (TQM) concept was developed in Japan and can be evidenced in the work of the Juran (1989,) Deming (1986), Ishikawa (1985) Feigenbaum (1983) and Crosby (1979) (Hackman and Wageman, 1995). In TQM system, implementation of performance measurement depends on the TQM principles such as leadership, quality planning training, supplier and process management, continuous improvement and learning. (Claver et al., 2003).

New comprehension of TQM is six sigma, and according to (Jung Lang Chang, 2008) both TQM and six sigma emphasize on evaluation system of quality index and taking correct action to reduce the defect rate of system.

According to (Therese, 2007) TQM practices are helpful in improving organizational performance and for the TQM to work well, a culture supportive of TQM practice is crucial. TQM is a management philosophy that combines all organizational functions for the satisfaction of customers’ needs and organizational objectives (Hashmi, 2000 and 2004).

Total quality management (TQM) theories were of Walter Shewhart and Edwards Deming. In the first part of the previous century, Shewhart (1980) introduced a probabilistic model for managerial processes to statistically control production. The model was further developed by Deming (1986) who introduced the concept of “quality of cycles” which could help management to identify real solutions to work-related problems. This “Deming method” was firstly used in 1950 in Japan in factory production, where quality control programs were used by the managers to better intervene in operational processes. Kaori Ishikawa, one of Deming’s disciples, applied the TQM concept in the economy of Japan, which involved all the company’s employees, independent of the position held. The author designed one of the TQM tools, known as the “Ishikawa diagram”, which is a concept of “quality control cycles”, formed by employees who voluntarily identified and found real solutions to the problems faced by the company.

In 1951, Armand Feigenbaum further developed Deming’s TQM model by generating a link between the supplier and the customer, which emphasized the implication of the employees in obtaining high-performance results to satisfy the needs of the final customers Juran (1999) published the Quality Control Handbook volume in 1951. Represents the ‘ABC’ of quality control and it is considered a landmark for the definition of the three basic pillars of the TQM, also known as the “Quality Trilogy”. In that handbook the three basic directions refer to procedure, control, and quality improvement. Procedure is the identification of the objectives and the framework of the activity in order to refine the quality. Control is to apply the TQM techniques. Quality improvement focuses on the correction and removal of defects. As opposed to Deming, who emphasized the importance of the role of employees in achieving quality, Juran points out the role of management’s influence on staff and conducted his research by evaluating the tools used, focusing on how to present the products or services offered,

their compliance with quality standards, availability in stock, comfort offered, and safety in use. Thus, the concept of total quality in the Juran approach embodies the vision of the final consumer. Its management methods are concentrated on evaluation, compliance, and remediation.

The TQM concept was introduced by Mercadona in 1993, who opened a renowned supermarket, with loyal customers, by offering them high quality products at minimum prices. The TQM model was applied and, hence, Mercadona avoided negative financial results and eventually bankruptcy during the economic crises in 2008. Also of relevance is the study of Khanam et al. (2014), which shows the importance of applying TQM and IT resources for the satisfaction of consumers in the information technology and renewable energy industries.

The success of quality management is based on several quality models. Much of perspective and popular literature on TQM subscribes that TQM is “universal” in its application ability. This appears on many levels at the institutional, national and certification schemes. The formal evaluation models of quality management are developed, such as the Malcolm Baldrige National Quality Award model in USA, the European foundation for Quality Management (EFQM) model in Europe and Deming Application Prize model in Japan. These models have a number of common elements (Juan and Vincente 2004). That proposed TQM models can serve as a prototype for implementing quality improvement programs in manufacturing and service-sector settings.

Deming principles at the basis of the TQM are revealed in the ISO quality standards, introduced by the ISO and the International Electro technical Commission (IEC), respectively. In Romania, based on the ISO accreditation, domestic enterprises are perceived on the market by the quality of the products and services offered, which associates them with the top companies in European Union (EU).

Total Quality Management is a combined effort of both top level management as well as employees of an organization to formulate effective strategies and policies to deliver high quality products which not only meet but also exceed customer satisfaction.

Total Quality Management enables employees to focus on quality than quantity and strive hard to excel in whatever they do. According to total quality management, customer feedbacks and expectations are most essential when it comes to formulating and implementing new strategies to deliver superior products than competitors and eventually yield higher revenues and profits for the organization.

Credits for the process of total quality management go to many philosophers and their teachings. Drucker, Juran, Deming, Ishikawa, Crosby, Feigenbaum and many other individuals who have in due course of time studied organizational management have contributed effectively to the process of total quality management.

Key Elements of TQM House TQM has been coined to describe a philosophy that makes quality the driving force behind leadership, design, planning, and improvement initiatives. For this, TQM requires the help of those eight key elements. These elements can be divided into four groups according to their function. The groups are:

- I. Foundation** – It includes: Ethics, Integrity and Trust.
- II. Building Bricks** – It includes: Training, Teamwork and Leadership.
- III. Binding Mortar** – It includes: Communication.
- IV. Roof** – It includes: Recognition.

**I. Foundation-** TQM is built on a foundation of ethics, integrity and trust. It fosters openness, fairness and sincerity and allows involvement by everyone.

This is the key to unlocking the ultimate potential of TQM. These three elements move together, however, each element offers something different to the TQM concept.

**1. Ethics** – Ethics is the discipline concerned with good and bad in any situation. It is a two-faceted subject represented by organizational and individual ethics. Organizational ethics establish a business code of ethics that outlines guidelines that all employees are to adhere to in the performance of their work. Individual ethics include personal rights or wrongs.

**2. Integrity** – Integrity implies honesty, morals, values, fairness, and adherence to the facts and sincerity. The characteristic is what customers (internal or external) expect and deserve to receive. People see the opposite of integrity as duplicity. TQM will not work in an atmosphere of duplicity.

**3. Trust** – Trust is a by-product of integrity and ethical conduct. Without trust, the framework of TQM cannot be built. Trust fosters full participation of all members. It allows empowerment that encourages pride ownership and it encourages commitment. It allows decision making at appropriate levels in the organization, fosters individual risk-taking for continuous improvement and helps to ensure that measurements focus on improvement of process and are not used to contend people. Trust is essential to ensure customer satisfaction. So, trust builds the cooperative environment essential for TQM.

**II. Bricks-** Basing on the strong foundation of trust, ethics and integrity, bricks are placed to reach the roof of recognition. It includes:

**4. Training** – Training is very important for employees to be highly productive. Supervisors are solely responsible for implementing TQM within their departments, and teaching their employees the philosophies of TQM. Training that employees require are interpersonal skills, the ability to function within teams, problem solving, decision making, job management performance analysis and improvement, business economics and technical skills. During the creation and formation of TQM, employees are trained so that they can become effective employees for the company.

**5. Teamwork** – To become successful in business, teamwork is also a key element of TQM. With the use of teams, the business will receive quicker and better solutions to problems. Teams also provide more permanent improvements in processes and operations. In teams, people feel more comfortable bringing up problems that may occur, and can get help from other workers to find a solution and put into place. There are mainly three types of teams that TQM organizations adopt:

**A. Quality improvement teams or excellence teams (QITs)** – These are temporary teams with the purpose of dealing with specific problems that often recur. These teams are set up for period of three to twelve months.

**B. Problem solving teams (PSTs)** – These are temporary teams to solve certain problems and also to identify and overcome causes of problems. They generally last from one week to three months.

**C. Natural work teams (NWTs)** – These teams consist of small groups of skilled workers who share tasks and responsibilities. These teams use concepts such as employee involvement teams, self-managing teams and quality circles. These teams generally work for one to two hours a week.

**6. Leadership** – It is possibly the most important element in TQM. It appears everywhere in organization. Leadership in TQM requires the manager to provide an inspiring vision, make strategic directions that are understood by all and to instill values that guide subordinates. For TQM to be successful in the business, the supervisor must be committed in leading his employees. A supervisor must understand TQM, believe in it and then demonstrate their belief and commitment through their daily practices of TQM. The supervisor makes sure that strategies, philosophies, values and goals are

transmitted down throughout the organization to provide focus, clarity and direction. A key point is that TQM has to be introduced and led by top management. Commitment and personal involvement is required from top management in creating and deploying clear quality values and goals consistent with the objectives of the company and in creating and deploying well defined systems, methods and performance measures for achieving those goals.

### III. Binding Mortar-

**7. Communication** – It binds everything together. Starting from foundation to roof of the TQM house, everything is bound by strong mortar of communication. It acts as a vital link between all elements of TQM. Communication means a common understanding of ideas between the sender and the receiver. The success of TQM demands communication with and among all the organization members, suppliers and customers. Supervisors must keep open airways where employees can send and receive information about the TQM process. Communication coupled with the sharing of correct information is vital. For communication to be credible the message must be clear and receiver must interpret in the way the sender intended. There are different ways of communication such as :

**A. Downward Communication** – This is the dominant form of communication in an organization. Presentations and discussions basically do it. By this the supervisors are able to make the employees clear about TQM.

**B. Upward Communication** – By this the lower level of employees are able to provide suggestions to upper management of the affects of TQM. As employees provide insight and constructive criticism, supervisors must listen effectively to correct the situation that comes about through the use of TQM. This forms a level of trust between supervisors and employees. This is also similar to empowering communication, where supervisors keep open ears and listen to others.

**C. Sideways Communication** – This type of communication is important because it breaks down barriers between departments. It also allows dealing with customers and suppliers in a more professional manner.

### IV. Roof -

**8. Recognition** – Recognition is the last and final element in the entire system. It should be provided for both suggestions and achievements for teams as well as individuals. Employees strive to receive recognition for themselves and their teams. Detecting and recognizing contributors is the most important job of a supervisor. As people are recognized, there can be huge changes in self-esteem, productivity, quality and the amount of effort exhorted to the task at hand. Recognition comes in its best form when it is immediately following an action that an employee has performed. Recognition comes in different ways, places and time such as, Ways – It can be by way of personal letter from top management. Also by award banquets, plaques, trophies etc.





• **Places** – Good performers can be recognized in front of departments, on performance boards and also in front of top management.

• **Time** – Recognition can be given at any time like in staff meeting, annual award banquets, etc.

If the picture of a basic home is imagined then it is seen that there is a roof, inside of the home and the area that surrounds the entire area of the home – top to bottom. The picture of the home that is imagined is actually the picture of business or quality assurance program.

The area around the entire business – top to bottom – is the core element of “communication”. Communication is one of the most important elements when it comes to business success. Without communication, a business can literally shut down.

The next core essential to business is recognition – this is the “roof” of the building. Employees must and should be recognized for their unique contributions to the business. If this occurs, then it is easy to ensure that the rest of the elements will fall into place.

The inner core of the business should implement the basic elements of training, integrity, teamwork, leadership and ethics. If the entire business contains these key essentials, it is likely that the customers will be extremely pleased with the products and services that the business offers.

It can be concluded that these eight elements are key in ensuring the success of TQM in an organization and that the supervisor is a huge part in developing these elements in the work place. Without these elements, the business entities cannot be successful TQM implementers.

#### REFERENCES

1. Bell, D, McBride, P., and Wilson, G. (1994), Managing Quality, Butterworth- Heinemann.
2. Christos V.F. and Evangelos L.P. (2010) The structural relationships between TQM factors and organizational performance, The TQM Journal, Vol. 22 No. 5, pp. 539-552.
3. Claver, E., Tari, J.J. and Molina, J.F. (2003). Critical factors and results of quality management: an empirical study. Total Quality Management and Business Excellence. Vol. 14 No. 1, pp. 91-118
4. Crosby, P.B. (1979). Quality Is Free. McGraw-Hill, Inc. New York.
5. Deming, W.E. (1986) Out of the Crisis; Massachusetts Institute of Technology : Cambridge, MA, USA.
6. Dhongade, P.M., Singh, M. And Shrouy, V.A. (2013). A review: Literature survey for the implementation of Kaizen. International Journal of Engineering and Innovative Technology (IJEIT), 3, 57-60.
7. Fotopoulos, C.B. and Psomas, E.L. (2009). The impact of soft and hard TQM elements on quality management results. International Journal of Quality and Reliability Management, 26(2), 150-163.
8. Hackman, J.R. and Wageman, R. (1995). Total quality management: empirical, conceptual, and practical issues. Administrative Science Quarterly. Vol. 40, No. June, pp.309-42.
9. Idris, M.A. and Zairi, M. (2006). Sustaining TQM: A synthesis of literature and proposed research framework. Total Quality Management and Business Excellence, 17(9), 1245-1260.
10. Ishikawa, K. (1985). what is Total Quality Control? The Japanese Way. Prentice-Hall, London.
11. Jung-Lang-Cheng, (2008). Implementing six sigma via TQM improvement : an empirical study in Taiwan. The TQM Journal. Vol. 20, no. 3, pp. 182-196.
12. Juran, J. and Godfrey, A.B. (1999) Quality Handbook; Republished McGraw- Hill: New York, NY, USA; pp. 173–178.



13. Juran, J. M. (1988). Juran on planning for quality. New York, NY: Free Press.
14. Khamalah, J.N. and Lingaraj, B.P. (2007). TQM in the service sector: A Survey of Small Businesses. *Total Quality Management*, 18(9), 973-982.
15. Khan, B.A. and Naeem, H. (2018). Measuring the impact of soft and hard quality practices on service innovation and organisational performance. *Total Quality Management & Business Excellence*, 29 (11-12), 1402-1426.
16. Khanna, H.K., Sharma, D.D. and Laroia, S.C. (2014) Identifying and ranking critical success factors for implementation of total quality management in the Indian manufacturing industry using TOPSIS. *Asian Journal Quality*, 12, 124–138.
17. Lakhal, L., Pasin, F. and Limam, M. (2006). Quality management practices and their impact on performance. *International Journal of Quality & Reliability Management*, 23(6), 625-646.
18. Mahapatra, S.S. and Khan, M.S. (2006). A Methodology for Evaluation of Service Quality Using Neural Networks.
19. Sadikoglu, E. and Zehir, C. (2010). Investigating the effects of innovation and employee performance on the relationship between total quality management practices and firm performance: An empirical study of Turkish firms. *International Journal of Production Economics*, 127(1), 13-26.
20. Samat, N., Ramayah, T. and Mat Saad, N. (2006). TQM practices, service quality, and market orientation: Some empirical evidence from a developing country. *Management Research News*, 29(11), 713-728.
21. Shafiq, M., Lasrado, F. and Hafeez, K. (2017). The effect of TQM on organisational performance: empirical evidence from the textile sector of a developing country using SEM. *Total Quality Management & Business Excellence*, 1-22.
22. Shewart, W.A. (1980) *Economic Control of Quality of Manufactured Product* ASQC (Milwaukee); D. Van Nostrand Company, Inc.: New York, NY, USA.
23. Talib, F. and Rahman, Z. (2010). Critical success factors of TQM in service organizations: A proposed model. *Services Marketing Quarterly*, 31(3), 363-380.
24. Therese A.J. (2007). Total Quality Management and performance, the role of organization support and co-worker support. *International Journal of Quality and Reliability Management*. Vol. 24, No. 6, pp 617-627.
25. Ueno, A. (2008). Which managerial practices are contributory to service quality? *International Journal of Quality & Reliability Management*, 25(6), 585-603.
26. Yang, C.C. (2006), The Impact of Human Resource Management Practices on the Implementation of Total Quality Management, *The TQM Magazine*, Vol. 18 No. 2, pp. 162-73.
27. Yunis, M., Jung, J. and Chen, S. (2013). TQM, Strategy, and Performance : a firm-level analysis. *International Journal of Quality & Reliability Management*, 30(6), 690-714.

\* \* \* \* \*

## हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के किशोरावस्था के बालक- बालिकाओं की शिक्षा पर कोविड-19 का दुष्प्रभाव : एक तुलनात्मक अध्ययन

श्रीमती रीना श्रीवास्तव\*

भूमिका—शिक्षा एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। इसमें भी जब किशोरावस्था के शिक्षा की बात हो तब तो और अधिक गहन चिन्तन की आवश्यकता है। किशोरावस्था में बालक—बालिकाएँ अधिक ऊर्जावान और अपनी शिक्षा को लेकर सचेत रहते हैं, इसलिए इस अवस्था की शिक्षा ही भविष्य की नींव रखती है पाश्चात्य विद्वान प्लेखानोव के अनुसार —“जिन्दा लोग जिन्दा सवालों पर सोचते हैं।” और आज का जिन्दा सवाल है— कोविड-19 का दहशत भरा वातावरण । यह वैश्विक धरातल पर उपजा एक भयावह वातावरण उत्पन्न करने वाला समय है। इस भयावह वातावरण का शिकार शिक्षा भी हुई है। ऐसे वातावरण में किशोरावस्था के बालक—बालिकाओं की शिक्षा पर गहन संकट दृष्टिगत हो रहा है। इसी वय में बालको—बालिकाओं में सूचनात्मक ज्ञान, बोध, क्षमता का विकास आदि बड़ी तीव्रता से होता है। इस वय के बालको—बालिकाओं में जिस ज्ञान व्यवहार का विकास होगा वही बालक और देश का भविष्य निर्धारण करेगा अचानक आई इस वैश्विक महामारी ने शिक्षा को बुरी तरह प्रभावित किया। कक्षा वातावरण की सहायता से जहाँ बालक बालिकाओं को आपसी सहयोग सिखाया जाता था, वही अब दूर रहने की सलाह देना विवशता हो गई है। आज का यंत्र युग का मानव खुद व्यक्तिवादी सोच का तथा स्वार्थकेन्द्रित होता जा रहा था जो बची कसर थी वह इस महामारी ने पूरी कर दी। इस वातावरण से (वैश्विक बीमारी) बालक व्यक्तिवादी होने की तरफ अग्रसर होगा। व्यक्ति की चेतना समाजिकता से संतुष्ट होती है। इस वैश्विक महामारी ने सामाजिकता का ही भक्षण करने का प्रयास किया है। अब आवश्यकता शिक्षा व्यवस्था को नियोजित करने की है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जाये कि बालक स्वाध्याय में रुचि ले गुरुजनों के प्रति श्रद्धावन्त हो, उनके व्याख्यान ज्ञानार्जन करे। शिक्षा को सुचारु रूप से चलाने के लिए इस भययुक्त वातावरण में शिक्षा प्राप्त करने कराने का एक ही संकल्प सामने था—वह थी आन लाइन शिक्षा। यह आन लाइन शिक्षा छात्रों में कलात्मक सौन्दर्यात्मक भावों को जागृत करने में कितना सफल होगी यह निश्चित नहीं है। पर किसी विकल्प के न मिलने के कारण आन लाइन पर शिक्षा पर बल दिया जा रहा ।

**शब्द कुन्जी :** शिक्षा, किशोरावस्था, तथा भय।

**fo<sup>1</sup>यवस्तु**—प्राचीन काल में शिष्य बड़ी निष्ठा से गुरु की तलाश करता था। और आज जब हमारी विवशता है, आन लाइन शिक्षा देना तो एक जटिल समस्या है क्या बालक बालिकाएँ गुरु के प्रति असीम श्रद्धा रखेंगे। यह पता करना है कि अंग्रेजी माध्यम तथा हिन्दी माध्यम के बालक बालिकाओं में से किसमें दया श्रद्धा आदि भाव गहराई से विकसित हुए हैं। विविध शारीरिक मानसिक परिवर्तनों से जूझते हुए बालको बालिकाओं में इस वैश्विक महामारी ने भय और भ्रम की भावना से भर दिया है। बालक बालिकाओं का मन अपने भविष्य को लेकर सशंकित है। इसका परिणाम दो रूपों में सामने आ सकता है —

1—या तो बालक बालिकाएँ गहन स्वाध्याय में लग जायेंगे।

2—या तो उदासीन हो जायेंगे पूरी तरह से लापरवाह।

\* शोध छात्रा, गृह विज्ञान

इस वय के बालको बालिकाओं का मन भय भ्रम से विचलित हो रहा है। इसलिए शिक्षको का योग्य होना अपना व्याख्यान मनोरंजन और आकर्षक अत्यावश्यक होगा। किशोरावस्था को का तूफान का समय कहा जाता है इसलिए आकर्षक एवं रुचिकर व्याख्यान की सहायता से बालक बालिकाओं में स्वाध्याय के पति रुचि जगाना आवश्यक है ताकि बालक बालिकाओं का उदत्त रूप समाज को उपहार में मिल सके।

अंग्रेजी माध्यम तथा हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों की शिक्षा का तरीका अलग-अलग होता है। किस माध्यम में बालको बालिकाओं में कितनी गुणवत्ता का विकास हुआ। इस भयावह वातावरण में यही जानाना आवश्यक है।

**मुख्य अंश**—प्रश्नावली विधि से यह पता लगाने का प्रयास किया कि कोविड – 19 तेरह से चौदह वर्ष तक के किशोरावस्था के बालक बालिकाओं की शिक्षा किस तरह से दुष्प्रभावी हुई (कोविड –19 का लड़कियों की शिक्षा पर प्रभाव) में लड़कियों की शिक्षा पर किस तरह से बुरा असर हुआ कोविड –19 के कारण इसका उल्लेख किया गया है। इसमें बताया गया है कि मोबाइल तक नहीं मिलती लड़कियों को अक्सर / कभी आर्थिक तंगी के कारण मोबाइल नहीं दी जाती है तो कभी सामाजिक डर से नहीं दी जाती है मोबाइल। (1)

A.K.P. Singh (Patna) तथा A.K.P. Singh (Patna) की प्रश्नावली विधि से अध्ययन करने का प्रयास किया। पाँच बालको तथा पाँच बालिकाओं जिनकी उम्र 13 से चौदह तक थी। तथा जो हिन्दी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी उन पर अध्ययन किया तो यह पाया कि इस वैश्विक महामारी ने उन्हें भय ग्रस्त कर दिया है कुण्ठा से भर दिया है। उपर्युक्त इस समस्या का पता लगाने के लिए इस प्रकार के शोधकी आवश्यक हुई प्रश्नावली विधि से ही पाँच बालको तथा पाँच बालिकाओं जिनकी उम्र 13 से 14 तक की थी तथा जो अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे थे जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक थी उन पर अध्ययन किया तो यह पाया कि बालक बालिकाएँ स्व केन्द्रित हो गये हैं। नेटवर्क का बहाना करके वह कक्षा नहीं भी लेते और लेते भी हैं तो मन' पूर्वक नहीं।

दो वर्ग के बालक बालिकाओं पर अध्ययन करने से कई बिन्दु सामने आये।

हिन्दी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने वाली बालिकाएँ कभी मोबाइल के अभाव में कभी विद्युत के अभाव में शिक्षा ग्रहण कर पाने में असमर्थ रही।

कुछ बालक बालिकाएँ कक्षा व शिक्षा को विशेष महत्व देते दिखाई पड़े

अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रही हैं कक्षा 9 की छात्रा सुरभि का कहना है कि आनलाइन शिक्षा से हर बात समझ नहीं आती एकाग्रता भंग होती है। ऐसे ही कुछ मिलते विचार अन्य बालक बालिकाओं के भी मिले कक्षा 9 में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे रचित का कहना है कि आनलाइन शिक्षा में शिक्षा प्राप्त करने जैसी कोई बात नहीं पायी जाती जो कक्षा में बैठकर अध्ययन करने में होती है।

अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रही तान्या का कहना है कि शिक्षा अगर प्रभावशाली ढंग से व्याख्यान दे तो आनलाइन शिक्षा जो इस समय एक मात्र विकल्प बनी हुई है कुछ रुचि जगाने में सक्षम होगी और शिक्षा ग्रहण की जा सकेगी। इंटर नेशनल जर्नल पत्रिका (2) में भी दिया गया है कि विद्यार्थियों में शैक्षिक तनाव का कितना प्रभाव पड़ता है पत्रिका का शोधपत्र वैश्विक महामारी से पहले की हो तो आज तो समस्या और जटिल है एक नया तनाव दस्तक दे दिया। और किशोरावस्था के बालक बालिका भय ग्रस्त हो गये हैं। एक इंटरनेशनल जर्नल में किशोरो में भय पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि—

“कोल एवं बूसका विचार है — भय—किशोर यह दावा करते हैं कि उन्हें किसी चीज से भय नहीं लगता है किन्तु वास्तविकता में नई, अपरिचित सामाजिक परिस्थितियों से डरते हैं। भय की प्रतिक्रिया स्वरूप शरीर का जड़ और पीला हो जाना पसीना आना, बेचैन होना आदि क्रियाएँ होती हैं (3)

“हिन्दी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के किशोरा वस्था के बालक बालिकाओं में कोविड—19 का दुष्प्रभाव समान नहीं है दोनो वर्गों के बालक बालिकाओं में भय पाया गया। कोई सार्जक अंतर देखने को नहीं मिला।

**fu"cl'W ,oa l p-ko &** इस वैश्विक महामारी ने एक आवश्यक बढ़ा दी है कि अधिक से अधिक स्नेह दिया जाय किशोरावस्था के बालक बालिकाओं को उनके मन में भय ना व्याप्त होने पाये। इस वय के बालक बालिकाओं के भय को दूर करने तथा संवेगात्मक के भय को दूर करने तथा अधिक से अधिक विश्वास करना चाहिए। किशोरो

के व्यक्तित्व को सम्मान देना चाहिए उनकी अच्छी आदतों पर उन्हें पुरस्कृत करना चाहिए (4) व्यक्तिगत से सामाजिक जिम्मेदारी की तरफ बढ़े किशोरावस्था के बालक बालिकाओं इसके लिए प्रयास करना होगा शिक्षक अभिभावक दोनों को (5) निष्कर्षतः इस वैश्विक महामारी के कारण शिक्षा संकट ग्रस्त है किशोरावस्था बालक बालिकाएँ मजबूत मन वाले हो इसलिए मैं शिक्षक समाज और परिवार सभी को सहयोग करना होगा। किशोरावस्था के बालकों और बालिकाओं में शिक्षा को लेकर सकारात्मक रुख हो (चाहे वह हिन्दी माध्यम के हो चाहे अंग्रेजी माध्यम के) यह आवश्यक है बच्चा अगर अंग्रेजी में अध्ययन करता है तो भी मनन हिन्दी में ही करता है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. The Break through Voice हिन्दी 2nd July 2020
2. किशोरावस्था के विद्यार्थियों में शैक्षिक तनाव पर अभिभावक अभिप्रेरणा का पड़ने वाला प्रभाव का अध्ययन विवेक कुमार , डॉ० जय सिंह (International Journal of Advanced Education and research)  
ISSN: 2455-5746, INpact faction : RJIF 5.34 VOLUME- 2', Issur 2', March 2017; page 103-106
3. International Journal of education and science Research Review . VOLUME -2 , Issue-4 August 2015 EISSN 234-6457P-ISSN2348-1817  
माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत किशोर विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता का उनके व्यक्तित्व एवं समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन— डॉ० राजेन्द्र प्रसाद झाझडिया H.O.D faculty of Education JJT university, chudela Jhunjhuna (Rajasthan)
4. ऊषा भार्गव —किशोर मनोविज्ञान राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1993
5. डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान साहित्य प्रकाशन आगरा —1999

\* \* \* \* \*

## किशोरावस्था में तनाव प्रबन्धन

प्रीती\* डॉ. वन्दना कुमारी\*\*

**सारांश :** किशोरावस्था परिवर्तनों तथा समस्या बाहुल्य की अवस्था है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ समय के लिए कष्ट, चिंताएँ, उदासी, दुःख तथा मायुसी देखी जाती है, परन्तु किशोरावस्था में चिंता तथा तनाव की प्रतिक्रिया का उत्पन्न होना सामान्य बात है तथा उसकी आवृत्ति की आशंका भी सबसे अधिक इसी समय होती है। प्रस्तुत शोध में किशोरावस्था में उत्पन्न होने वाले तनाव के कारणों का अध्ययन किया गया है, जिसमें पाया गया कि किशोरों में शारीरिक परिवर्तन पढ़ाई लिखाई के खराब नतीजे, दोस्त-यार से झगड़ा या तकरार, माँ-बाप के बीच आपसी झगड़े व मन-मुटाव परिवार में रुपये-पैसे की तंगी, अभिभावकों का किशोरों पर दबाव के कारण तनाव उत्पन्न हो रहा है। यह तनाव किशोरों के शारीरिक, मानसिक, व्यवहारिक, संज्ञानात्मक तथा भावनात्मक पक्षों को प्रभावित करता है।

किशोरों को तनाव मुक्त करने के लिए कुछ तकनीकियाँ जैसे— योग, ध्यान, विश्राम, क्रीड़ा, मनोरंजन, आदि का विश्लेषण किया गया है। जिसके द्वारा किशोरों के तनाव का प्रबन्धन किया जा सके।

**मुख्य बिन्दु :** किशोर, तनाव, तनाव का प्रबन्धन।

तनाव आधुनिक युग का प्रचलित शब्द है, जिसे अंग्रेजी भाषा में स्ट्रेस तथा हिन्दी में दबाव, खिचाव, उत्तेजना, अनुक्रिया, प्रतिक्रिया, प्रतिबल आदि शब्दों द्वारा जाना जाता है। तनाव मानसिक स्थिति और परिस्थिति के बीच असन्तुलन के कारण उत्पन्न होता है। कृष्णदत्त (2013) के अनुसार तनाव बहुआयामी प्रक्रिया है, क्योंकि इसके विविध आयाम होते हैं, जैसे पारिवारिक तनाव, सामाजिक तनाव, आर्थिक तनाव इत्यादि।

तनाव एक सकारात्मक (Positive) व प्रेरक (Motivating) शक्ति है, जो सारा जीवन हमें प्रभावित करती है, यह खतरे के प्रति हमें अधिक सचेत, सतर्क व जागरूक रखती है, विद्युत तरंग की तरह यह हमारे शरीर की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है। ऊर्जा का अधिक संचार होने लगता है और इससे हमारी कार्य क्षमता बढ़ती है।

तनाव एक प्रकार की नकारात्मक भावनात्मक स्थिति भी है, जो व्यक्ति की स्रोतों या योग्यता से अधिक कार्य करने शारीरिक प्रणाली की थकावट से उत्पन्न होती है और इससे शारीरिक/व्यवहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं, आज तनाव आधुनिक समाज की देन है। वर्तमान के औद्योगिक युग समय में तनाव जीवन पद्धति का एक अभिन्न अंग बन गया है। प्रातः सोकर उठने से लेकर रात सोने तक व्यक्ति तनाव में जीवन व्यतीत कर रहा है।

तनाव और चिंता महसूस करना आम है, लेकिन यह बहुत अधिक चिंता का कारण हो सकता है और किसी के स्वास्थ्य को भी प्रभावित कर सकता है। किशोरावस्था में तनाव का सबसे आम कारण उनके भविष्य और उनके शरीर में हार्मोनल परिवर्तन के बारे में है। तनाव के अन्य स्रोत स्कूल दबाव, नकारात्मक विचार, स्वास्थ्य मुद्दे, सहकर्मी दबाव, माता-पिता का अलगाव, पारिवारिक अपेक्षाएँ, वित्तीय समस्याएँ, दोस्तों से विश्वासघात और रिश्ते हो सकते हैं। किशोर अपने परिवार और दोस्तों से अलग और अकेले महसूस करना शुरू कर सकते हैं और इस समय ऐसी भावनाएँ बहुत स्वभाविक हैं। जब हमारा शरीर तनाव का अनुभव करता है, तो भावनाएँ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, यह तनाव न केवल हमें अकेला महसूस कराता है, बल्कि यह चिंता विकार, अवसाद, आत्महत्या

\* शोध छात्रा, गृह विज्ञान विभाग, राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज, गाजीपुर, (उ.प्र.)

\*\* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज, गाजीपुर (उ.प्र.)

के विचार आत्म हानि व्यक्तित्व विकार और कई अन्य मनोवैज्ञानिक मुद्दों को भी लाता है, किशोरों को अक्सर अपने जीवन में आंतरिक और बाहरी दोनों परिवर्तनों के असंख्य होने के कारण तनाव महसूस होता है, जो बड़े होने के साथ आते हैं और आज की तेजी से पुस्तक, प्रौद्योगिकी संचालित जलवायु मदद नहीं करता। किशोरों की आवश्यकताएँ उनकी आकांक्षाओं की देन है, आकांक्षाओं का स्तर जितना उच्च होगा, जितना श्रेष्ठ होगा, आवश्यकताएँ उन्हीं के अनुरूप बढ़ती चली जाएगी और यदि आकांक्षाओं के अनुरूप आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है, तो किशोरों में निराशा, हताशा, असंतोष, कुंठा, चिंता और तनाव उत्पन्न हो जाता है।

जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ किशोर संख्या में भी वृद्धि हुयी है, परन्तु आज के परिवेश में किशोरों को उचित व योग्य शैक्षिक अवसर और पर्याप्त साधन माता-पिता व परिवार द्वारा सही देख-भाल व समय न दे पाने से किशोरों में तनाव की लगातार वृद्धि हो रही है, जिससे कि वे डिप्रेशन जैसी परिस्थितियों से घिर जाते हैं और निराश होकर आत्म हत्या जैसे कदम भी उठा लेते हैं, तनाव का एक समान स्तर अधिक समय तक बना रहे तो व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। खुद को दूसरों से बेहतर साबित करने की होड़ किशोरों में तनाव की बड़ी वजहों में से एक है। यह स्कूल, कॉलेज, कोचिंग, खेल का मैदान, दोस्त-यार यहाँ तक की परिवार में अपने भाई-बहन के साथ भी जारी रहती है। किशोरों पर माँ-बाप की उम्मीदों पर खरा उतरने और हमेशा अच्छा करने का दबाव होता है और कब यह तनाव का रूप ले लेता है, वह खुद भी नहीं जान पाते, हालांकि किशोरों में तनाव होने की कई वजहें हो सकती हैं, पर इसके लिए खास तौर पर तनाव के लिए इन बातों को जिम्मेदार माना जाता है।

- पढ़ाई-लिखाई के खराब नतीजे।
- दोस्त-यार से झगड़ना या तकरार।
- किशोरों व किशोरियों में उम्र के साथ होने वाले शारीरिक व मानसिक बदलाव।
- माँ-बाप के बीच आपसी झगड़े व मन मुटाव।
- परिवार में रुपये-पैसे की तंगी की वजह से।
- रहने का स्थान व स्कूल बदलने की वजह से।
- अभिभावकों का किशोरों पर दबाव के कारण।

**वर्निस, एड्र्यू व चील्डी जॉन एम0 (2004)** ने विद्यार्थियों के तनाव जीवन और उपलब्धि का अवसाद चिंता के मध्य संबंध का अध्ययन किया। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में महाविद्यालय में प्रवेश के समय व परीक्षा के समय अवसाद व चिंता के स्तर का अध्ययन करना था। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि 09 प्रतिशत विद्यार्थियों में अवसाद के लक्षण महाविद्यालयीन अध्ययन के दौरान उत्पन्न होने लगते हैं और 20 प्रतिशत विद्यार्थियों में चिंता का स्तर क्लीनिकली सार्थक पाया गया।

**श्री, साइमन तथा अन्य (2011)** द्वारा प्रस्तुत इस अध्ययन में किशोरों में मध्यम श्रेणी तथा उच्च श्रेणी चिंता के विकास का परीक्षण करना तथा किशोरों कि चिंता पर अभिभावकों द्वारा किये गये नियामक उपायों का प्रभाव तथा किशोर अभिभावक चिंता एवं अभिभावकों की चिंता के किशोरों पर प्रभाव का अध्ययन किया गया।

**डॉ0 पी0 सुरेश प्रभू (2015)** “अ स्टडी ऑन एकेडमिक स्ट्रेस अमंग हायर सेकेंडरी स्टूडेंट्स” अध्ययन तमिलनाडु के नमक्कल जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा 11 के 250 किशोरों का चयन सरल यादृच्छिक विधि द्वारा किया। परिणाम दर्शाते हैं कि शैक्षिक तनाव किशोर बालकों की तुलना किशोर बालिकाओं में अधिक था। शहरी किशोर में ग्रामीण किशोरों की तुलना में शैक्षिक तनाव अधिक था। सरकारी विद्यालय के किशोरों में निजी विद्यालय के किशोरों की तुलना में अधिक तनाव था तथा विज्ञान विषय के किशोरों में कला विषय के किशोरों की तुलना में कम तनाव था।

**रजनी राणा व अन्य (2016)** “इमोशन कम्पटीशन एण्ड स्ट्रेस अमंग एडोलसेन्ट्स स्टूडेंट्स” द्वारा हरियाणा के हिसार जिले में सरकारी विद्यालय (सहशिक्षा) 14-16 वर्ष के कक्षा 9 और 10 के 160 किशोरों (80 ग्रामीण किशोर बालकों, बालिकाओं, 80 शहरी किशोर बालकों बालिकाओं) का अध्ययन हेतु चयन किया। साक्षात्कार विधि द्वारा सामाजिक व्यक्तिगत चर के माध्यम से भावनात्मक क्षमता माप (भरतद्वाज और शर्मा 2007) तथा किशोर तनाव माप (लक्ष्मी और मेरिन् 2008) पैमाने द्वारा आकड़े, एकत्रकर विश्लेषण द्वारा ज्ञात किया गया। परिणाम दर्शाते हैं कि किशोरावस्था में भावनात्मक क्षमता और तनाव के मध्य नकारात्मक सम्बन्ध मौजूद था, जिस पर किशोरावस्था, माता-पिता और शिक्षकों का प्रभाव पड़ता है।

**किशोरों में तनाव के लक्षण**

- किशोर का दो हफ्ते से ज्यादा दुःखी रहना, बिन बात के रोना या आँसू आ जाना।
- उम्मीद टूटना या खालीपन महसूस करना।
- चिड़चिड़ा होना बात-बात पर गुस्सा आना।
- सामान्य गतिविधियों में भी रुचि खो देना।
- आत्म सम्मान की भावना का कम होना, पछताना और अपने को कोसना।
- व्यवहार में परिवर्तन आना।
- नींद न आना, भूख कम लगना।
- नशीली चीजों का सेवन करना।
- प्रदर्शन में कमी।
- दोस्तों, परिवार से कट जाना।
- घबराहट की आदत।
- अपर्याप्त एकाग्रता, याददाश्त में कमी होना।

**तनाव के प्रभाव****शरीर सम्बन्धी**

- साँस की कमी।
- माँस पेशियों में तनाव।
- सिर दर्द।
- छाती में जलन।
- पेट में गड़बड़।

**व्यवहार सम्बन्धी**

- खान-पान का ढंग।
- मद्यपान जैसे पदार्थों का प्रयोग।
- दाँत चबाना।
- नाखुन चबाना।
- सामने न आना।
- टाल-मटोल।

**संज्ञानात्मक**

- एकाग्रता की कमी।
- स्मरण शक्ति का ह्रास।
- नकारात्मक दृष्टिकोण।
- भूलने की बीमारी होना।
- संशय।
- चिंता करना।

**भावनात्मक**

- अधीरता।
- चिंता।
- चिड़चिड़ापन
- छोटी-छोटी बात पर चिल्लाना।
- असहनशीलता।
- संवेदनशीलता।

किशोरों को तनाव मुक्त करने के लिए उनका तनाव प्रबन्धन किया जाना बहुत आवश्यक है। 'तनाव प्रबन्ध' से अभिप्राय है कि हम ऐसी क्षमता पैदा करें, जिससे तनाव बढ़ने से पहले ही वह रूक जाए या फिर उन बातों से बखूबी निपटे जिनसे तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है, उद्देश्य यह है कि हम अपने जीवन में से अधिक तनाव को कम करके तनाव का प्रबन्धन करें, क्योंकि अधिक तनाव की स्थिति में हम अपने उद्देश्यों को पूरा करने में बाधा महसूस करते हैं। तनाव प्रबन्धन हमें ऐसी टेक्नीक से परिचित करवाता है, जिससे हम मनोवैज्ञानिक तनाव से पार पाने में सफल हो जाते हैं, क्योंकि तनाव व्यक्ति की वह शारीरिक स्थिति है, जिससे वह आन्तरिक या बाह्य रूप से तनाव से लड़ने या उससे भागने के लिए प्रेरित होता है, तनाव प्रबन्धन तभी प्रभावी हो सकता है, जब हम तनावपूर्ण स्थितियों से जूझने या उन्हें बदलने के लिए रणनीतियों का प्रयोग करें।

**तनाव प्रबन्धन की विधियाँ**

**आधार भूत यौगिक विधियाँ :** 'योग' शारीरिक व मानसिक अभ्यास की एक वैज्ञानिक प्रणाली है, इसका उद्देश्य यह है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के चरम बिन्दू तक पहुँचे और चिरस्थायी स्वास्थ्य व प्रसन्नता का अनुभव प्राप्त करें, योग हमारे शरीर को कई प्रकार से प्रभावित करता है। यह तनाव में कमी लाने, अच्छी नींद लेने, बहुत सी चिकित्सा सम्बन्धी स्थितियों में सुधार लाने, रक्त चाप व हृदय गति को कम करने, आध्यात्मिक वृद्धि, माँस-पेशियों का तनाव कम करने, शरीर की शक्ति व लचक को बढ़ाने के लक्षणों को विलम्बित करने में सहायक होते हैं।



**ध्यान :** यह तनाव प्रबन्धन के समग्र कार्यक्रम के अनेक महत्वपूर्ण अवयवों में से एक है। ध्यान द्वारा मन को स्थिर रखा जाता है, ताकि बढ़ते आन्तरिक तनाव को नियंत्रित किया जा सके। ध्यान का अभिप्रायः है विचार बिन्दू या संचेतना की एकाग्र अवस्था ध्यान चेतना की एक कला है, जो मन की एकाग्रता का अभ्यास करती है और उसे स्थिरता प्रदान करती है।

**विश्राम :** विश्राम की टेक्नीक या प्रशिक्षण एक ऐसी विधि प्रक्रिया या गतिविधि है, जो हमें आराम या शांति के साथ-साथ चिंता मुक्त या तनाव रहित स्थिति प्रदान करती है, इस स्थिति में निम्नलिखित बातें भी सम्मिलित हैं—

- **स्वचरित प्रशिक्षण**—विश्राम चिकित्सा की एक ऐसी पद्धति जिसमें आत्म प्रेरणा कार्य करती है।
- **बायोफीड बैंक** — इसमें इलेक्ट्रॉनिक अनुश्रवण की सहायता से व्यक्ति को प्रशिक्षित किया जाता है और इससे वह आत्मसंयम ग्रहण करता है।
- **गहरी साँस लेना** — इसमें लम्बी साँस लेकर फेफड़ों में हवा भरी जाती है और शरीर का मध्य भाग जहाँ छाती व पेट दोनों मिलते हैं, फूल जाता है।
- **माँस पेशियों की विश्रामावस्था (पी0एम0आर0)** शरीर की कुछ माँस पेशियों को विश्राम की इस तरह की अवस्था में लाने के लिए हमारे मुख पर चिंता के कोई लक्षण न हो।

### क्रीड़ा व मनोरंजनकारी गतिविधियाँ

**क्रीड़ा :** एक ऐसी गतिविधि है, जो कुछ नियमों तथा प्रयासों द्वारा अनुशासित होती है और इसमें प्रतिस्पर्धा की भावना बनी रहती है। सामान्यतः क्रीड़ाओं से तात्पर्य उन गतिविधियों से है, जहाँ प्रतियोगी की शारीरिक क्षमताएँ ही परिणाम (जीत या हार) की प्रमुख मापक होती है, लेकिन कुछ गतिविधियाँ ऐसी भी हैं, जिनका सम्बन्ध शरीर की बजाय मस्तिष्क से होता है, जैसे माइन्ड स्पोर्ट्स, मोटर स्पोर्ट्स, आदि।

**मनोरंजन :** 'रिक्रेशन या फन' समय का इस तरह से उपयोग है, जिससे हमारा शरीर व मस्तिष्क दोनों को सकून मिलता है, जहाँ आराम व विश्राम मनोरंजन की एक सहज प्रक्रिया है, मनोरंजन उसी प्रक्रिया का एक सक्रिय रूप है, जहाँ मनोरंजन के विभिन्न आयाम हैं, विश्व के धनी क्षेत्रों में जहाँ जीवन अधिक आरामदायक है और जीवन पैली अधिक गतिशील या सक्रिय नहीं है, उन्हें सक्रिय मनोरंजन की आवश्यकता बढ़ गयी।

**अभिभावकों का किशोरों के तनाव प्रबन्धन में भूमिका :** माता-पिता होने के नाते किशोर की देखभाल की जिम्मेदारी महत्वपूर्ण है, इससे पहले कि जवान होता बच्चा तनाव की वजह से कोई उल्टा सीधा कदम उठाए उसके तनाव को निकालने के लिए उसकी मदद करनी चाहिए। किशोरावस्था में होने वाले तनाव से निपटने में असफल होने पर बहुत से किशोर धूम्रपान, नशीली दवाओं का सेवन, चोरी और आवागमन करने लगते हैं, यहाँ तक कि आत्महत्या भी कर सकते हैं। अतः यह आवश्यक है कि किशोरों के तनाव को कम करने के उपाय करने चाहिए—

1. **किशोर को व्यस्त रखें :** किशोर को जिस गतिविधि में शौक हो उसे वह करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, जैसे— डान्स, म्यूजिक या उसका पसंदीदा खेल, ऐसा करने से वह खुशमिजाज रहेगा। यह बच्चों की भावनाओं को जगाता है और ऐसा करने से उनका तनाव कम होता है।

2. **दोस्ताना बर्ताव करें :** अपने किशोर के साथ दोस्ताना सम्बन्ध बनाए। ऐसा होने पर उन्हें आपसे बात करने में हिचक नहीं होगी और यदि उन्हें कोई समस्या हो तो वे आपसे खुलकर बात कर सकते हैं, जिससे उनकी परेशानी और तनाव की वजह पता लगाना आसान हो जाएगा।

3. **किशोरों का सम्मान करें :** किशोरों की परेशानी को बहाना न समझे, उसकी बात सुने, उसे प्यार दें और उसका सम्मान करें, ऐसा करना किशोर का आत्मविश्वास बढ़ाता है और वह तनाव की समस्या से बाहर आ जाता है।

4. **पौष्टिक व संतुलित आहार दें :** किशोर को ऐसा खाना देना चाहिए जो पौष्टिक और प्रोटीन से भरपूर हो, उसके खाने में फल भी शामिल करें। खाना बच्चे की पसन्द के मुताबिक होना चाहिए, जिससे वह इसे खा सके, क्योंकि तनाव ग्रस्त होने पर खाने की इच्छा बहुत कम या बहुत ज्यादा हो जाती है, यदि इसके बाद भी लगे कि किशोर सामान्य नहीं है, तो डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए।

5. **किशोरों को समझाए कि शारीरिक परिवर्तन और कामुकता की भावना का होना इस समय सामान्य है, उन्हें इतना सहज महसूस कराए कि वो आपसे किशोरावस्था से जुड़े सवाल करने से हिचके न।**

6. किशोरावस्था में हो रहे शारीरिक बदलावों को लेकर बच्चों को चिढ़ाएँ नहीं और न ही शर्मिंदगी महसूस कराएँ। किशोरों के साथ सकारात्मक बातचीत करते रहें।

7. किशोरों का सहयोग करें साथ ही कुछ सीमाएँ भी निर्धारित करें, जैसे— कितना समय पढ़ाई के लिए देना है, कितना दोस्तों को, कितना परिवार को और किस तरीके से व्यवहार करना है।

8. किशोरों को अक्सर इस समय गोपनीयता की आवश्यकता होती है, ऐसे में उन्हें अलग कमरा या निजी स्थान देने की कोशिश करें।

### संदर्भ—सूची

1. जीत, भाई योगेन्द्र, बाल मनोविज्ञान : आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।
2. दीक्षित, निरूपमा, सिंह, लाभ एवं तिवारी, गोविंद, असामान्य मनोविज्ञान, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर, पृ. क्र० 2001, 119–121.
3. वर्मा, डॉ० प्रीति और श्रीवास्तव, एन०डी० डॉ० (2009), बाल मनोविज्ञान : बाल विकास विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, चौदहवाँ संस्करण, 371–391, 417–438.
4. कारमाइकेल (1968), किशोरावस्था, शेखावत श्रीमती समता, सोनू पब्लिकेशन्स चन्दलाई भवन, फिल्म कॉलोनी जयपुर, प्रथम संस्करण।
5. सिंह, कुमार अरुण, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, लाल बनारसीदास, यू०ए० बग्लो रोड, जवाहर नगर दिल्ली, 179.
6. चौहान रीता, बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा, प्रथम संस्करण, 43–49, 82–95.
7. मरवाह सिंह सरूप डॉ०, शारीरिक और मानसिक तनाव क्यों होता है और कैसे बचें, पुस्तक महल दिल्ली, संस्करण 2000, 24–66.
8. डॉ० मालती सारस्वत, शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाशन एफ०एफ० प्लाजा कॉम्प्लेक्स 177146, 2012, पेज नं० 216.
9. प्रो० उदयवीर सक्सेना, बी०एड० दिगदर्शिका, साहित्य प्रकाशन नवीन संस्करण 2004 आपका बाजार हॉस्पिटल रोड, आगरा–3, पेज नं० 63–77.
10. रंजनी राणा (2016), इमोशन, कम्पटीशन एण्ड स्ट्रेस अमंग एडोलसेन्ट्स स्टूडेंट्स”, इंटरनेशनल मल्टी डिस्प्लीनेनरी रिसर्च जर्नल (6), 7, पृ. 5.

\* \* \* \* \*

## प्राथमिक विद्यालयों के बालकों की विद्यालय त्याज्यता का सामाजिक विकास पर प्रभाव

( जनपद जौनपुर के विशेष संदर्भ में ) विकासखण्ड-धर्मापुर, सिरकोनी

डॉ. नूतन सिंह\*

“भारतवर्ष के संविधान में शिक्षा मूल अधिकार में शामिल है, यदि प्राथमिक स्तर के बालक विद्यालय छोड़कर या विद्यालय न जाकर अन्य कार्यों में संलग्न हो रहे हों तो यह समस्या देश के लिये एक चुनौती है, इसी पहलू को ध्यान में रखकर प्राथमिक स्तर के विद्यालय त्याज्य बालकों के सामाजिक विकास का प्रभाव का अध्ययन किया गया।”

**प्रस्तावना**—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, परन्तु जन्म के समय शिशु की सामाजिकता शून्य होती है। बालक के शारीरिक विकास एवं मानसिक विकास के साथ-साथ उसका सामाजिकरण होने लगता है। वह अपने परिजनों के सम्पर्क में आता है तथा परिजनों की समस्त मान्यता को आत्मसात कर उसके साथ समायोजन के लिए प्रयासरत रहता है तथा सामाजिकरण की इसी प्रक्रिया से बालकों का सामाजिक विकास होता है।

सामाजिक विकास का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा बालक अपने समाज के परिवेश एवं दूसरे के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का अनुभव करता है। यही बालक आगे चलकर समाज के एक कुशल नागरिक बन जाते हैं। बालकों के सामाजिक विकास को शैक्षिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। आधुनिक समय में शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का सामाजिक विकास करना है। यह विकास घर में, विद्यालय में विकास की प्रक्रिया सतत् चलती रहती है।

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ कारक हैं जो बालकों को प्रभावित करते रहते हैं। स्वास्थ्य और शारीरिक बनावट मनोरंजन के अवसर, घर का वातावरण, विद्यालय का वातावरण, माता-पिता का शैक्षिक स्तर आदि बालकों के सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं। इन समस्त कारकों में विद्यालय एक महत्वपूर्ण कारक है, जिससे बालकों के सामाजिक विकास सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण तत्वों को प्रभावित करते हैं। विद्यालय त्याज्य बालकों का सामाजिक विकास प्रभावित होता है। इस तरह के बालकों का व्यक्तित्व प्रभावित होता है। विद्यालय त्याज्य बालकों का व्यक्तित्व प्रभावित होता है। विद्यालय त्याज्य बालक समाज विरोधी अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते हैं तथा ऐसे बालक कुण्ठित होकर एकाकी जीवन व्यतीत करने लगते हैं। राष्ट्र, समाज, परिवार एवं स्वयं के विकास में कोई रुचि नहीं रह जाती। यह विद्यालय त्याज्य बालक राष्ट्र पर बोझ स्वरूप हो जाते हैं।

यूनिसेफ (1977) के अनुसार, “विद्यालय छोड़ने वाले कुल बालकों से विद्यालय छोड़ने के कारण जब जानकारी ली गई तो बाल श्रमिक बालक 61% एशिया में, 32% अफ्रीका में, 7% लैटिन अमेरिका में, 1% यू०एस०ए० में पाए गए।” जिन बालकों को दबाव बनाकर मजदूरी कराई जाती है जिसके कारण वह विद्यालय या अपनी प्राथमिक शिक्षा छोड़ चुके हैं, जिनके शारीरिक एवं मानसिक विकास की गति काफी धीमी हो चुकी है। यूनिसेफ की 1997 में प्रकाशित वर्ल्ड्स चिल्ड्रन रिपोर्ट के अनुसार 5-11 वर्षीय बालकों को विद्यालय त्यागकर मजदूरी करने के कुछ महत्वपूर्ण कारण प्राप्त हुए, जिनका प्रतिष्ठत स्तर तो ज्ञात नहीं हो सका, परन्तु कारण विद्यालय त्याज्यता के लिए विचारणीय है जो निम्न है –

\* गृह विज्ञान, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर ( उ.प्र. )

1. पारिवारिक प्रत्याशा की परम्परा
2. बच्चों का दुरुपयोग
3. अच्छे विद्यालय एवं दैनिक देखभाल की कमी
4. स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव।

यूनिसेफ (1997) की आख्या के अनुसार, "बाल श्रमिकों के माता-पिता या तो बेरोजगार होते हैं या आय का स्रोत इतना कम होता है कि वे अपने बालकों को श्रमिक के रूप में समाज में पेश करते हैं, जबकि जिन बालकों को वे श्रमिक के रूप में पेश करते हैं तो वह शक्तिहीन होते हैं। ऐसे बालक नियोजन के आय में वृद्धि करते हैं और उनके खर्च को कम करते हैं तथा विद्यालय त्याज्यता के कारण देश की शिक्षा स्तर में गिरावट आती है और इन बालकों को आगे चलकर परिवर्तित करना असम्भव सा हो जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव विकास आख्या 2007-08 के नाम से प्रकाशित एक रिपोर्ट में जो दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों के बाल श्रमिकों व विद्यालय त्याज्यता वाले बच्चों के अध्ययन से जो प्रदत्त प्राप्त हुए हैं, वे निम्न हैं—

**तालिका संख्या 1 दक्षिण एशिया में विद्यालय त्याज्यता**

देश	श्रमिकों की संख्या (5-14 वर्षीय)	कुल बालकों की संख्या (5-14 वर्षीय)
बांग्लादेश	5.05 मिलियन	35.06 मिलियन
भारत	126 मिलियन	253 मिलियन
नेपाल	1.66 मिलियन	6.225 मिलियन
पाकिस्तान	3.3 मिलियन	40 मिलियन
श्रीलंका	0.457 मिलियन	3.18 मिलियन

वे समस्त कारक जो दक्षिण एशिया में विद्यालय त्याज्यता को बढ़ावा दे रहे हैं, उनमें अभिभावक की गरीबी एवं अशिक्षा, सामाजिक एवं आर्थिक तथ्य जागरूकता की कमी आदि।

इसके अतिरिक्त दक्षिणी एशिया में बाल श्रमिक को बढ़ावा देने में एक और महत्वपूर्ण कारक कार्य कर रहा है वह अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ के 10 वर्षीय बालक दूसरे देश के बालक के शारीरिक तौर पर किशोरों के समान समझते हैं।

**शोध अध्ययन का उद्देश्य**—प्राथमिक स्तर के विद्यालय त्याज्य बालकों के सामाजिक विकास का अध्ययन करना है।

**शोध अध्ययन की परिकल्पना**—शोध के मुख्य उद्देश्यों का अध्ययन करने के लिए अभिकल्पित की गई परिकल्पनाएँ, जो निम्नलिखित हैं —

1. विद्यालय त्याज्यता का प्राथमिक स्तर पर बालकों के सामाजिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
  - 1.1 विद्यालय त्याज्यता का प्राथमिक स्तर पर शहरी बालकों के सामाजिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
  - 1.2 विद्यालय त्याज्यता का प्राथमिक स्तर पर ग्रामीण बालकों के सामाजिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

उपर्युक्त शोध परिकल्पना के परीक्षण के लिए निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाएँ निर्मित की गई –

1 विद्यालय त्याज्यता का प्राथमिक स्तर पर शहरी बालकों के सामाजिक विकास पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

1.1 विद्यालय त्याज्यता का प्राथमिक स्तर पर ग्रामीण बालकों के सामाजिक विकास पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

**शोध अभिकल्प जनसंख्या**—जनपद जौनपुर के सिरकोनी एवं धर्मपुर विकास खण्डों के समस्त प्राथमिक विद्यालय के बालक शोध पत्र की जनसंख्या का निर्माण करते हैं।

**प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्शन**—उपर्युक्त जनसंख्या में से स्तरीकृत न्यादर्श विधि द्वारा 400 छात्रों का चयन किया गया है।

**शोध विधि**—प्रस्तुत शोध का अध्ययन सर्वे विधि द्वारा संपादित किया गया है।

**आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण एवं विश्लेषण**—इस खण्ड में प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के विद्यालयी त्याज्यता एवं उनके सामाजिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का मापन करके प्राप्त प्रदत्त का संख्यिकी विश्लेषण करके निम्न रूपों में तालिकाबद्ध किया गया है

**तालिका संख्या 1 प्राथमिक स्तर के बालकों के सामाजिक विकास पर विद्यालय त्याज्यता का प्रभाव**

N=400	मध्यमान (—)	प्रमाणिक विचलन (σ)	टी-परीक्षण
प्राथमिक स्तर के विद्यालय त्याज्य बालकों का समूह	116	5.14	13.18
प्राथमिक स्तर के विद्यालय जाने वाले बालकों का समूह	158	4.94	

तालिका संख्या 1 के विवेचन से स्पष्ट होता है कि विद्यालय त्याज्यता वाले बालकों के समूह के सामाजिक विकास का मध्यमान 116 आया है एवं प्रमाणिक विचलन 5.14 आया है जबकि विद्यालय जाने वाले बालकों के समूह के सामाजिक विकास का मध्यमान 158 एवं प्रमाणिक विचलन 4.94 आया है। विद्यालय त्याज्यता समूह एवं विद्यालय जाने वाले बच्चों का समूह के मध्य पाए जाने वाला मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलन में अन्तर इस बात की पुष्टि करता है कि विद्यालय त्याज्यता बच्चों के सामाजिक विकास को प्रभावित करती है। दोनों समूहों के मध्य मानव के आने वाले सार्थकता के लिए जब भी परीक्षण किया गया तो 13.18 आया जो कि 0.01 में विश्वास के स्तर पर अन्तर की सार्थकता को सिद्ध करता है। जनसंख्या घनत्व अधिक होने से बाल श्रमिकों की संख्या अधिक होती है। भौगोलिक आर्थिक एवं शैक्षिक परिस्थितियाँ भी अपना अलग से प्रभाव डालती है।

अतः उपर्युक्त तालिका द्वारा प्राप्त परिणामों द्वारा अपनी परिकल्पना स्वीकार करते हुए यह कह सकते हैं कि प्राथमिक स्तर के बालकों के सामाजिक विकास पर विद्यालय त्याज्यता का प्रभाव पड़ता है।

\* \* \* \* \*

## कूड़ा निस्तारण एवं स्वास्थ्य समस्या

डॉ. संगीता उपाध्याय\*

वाराणसी नगर की स्थिति कूड़ा संकलन एवं निस्तारण के सन्दर्भ में दयनीय है। प्रशासनिक असफलता ने कूड़े के निस्तारण में अपना घृणित स्वरूप प्रस्तुत किया है। चारों ओर नगर के बजबजाती गन्दगी व कूड़े के अम्बार बढ़ता जा रहा है। कूड़े के ढेर और बदबू से लोगों का जीवन मुश्किल हो गया है। वायुमण्डल कूड़े की वजह से प्रदूषित हो गया है और लोग संक्रामक रोग की गिरफ्त में आ रहे हैं (Diggelman and Ham, 2003)। वाराणसी में प्रतिदिन सात सौ मैट्रिक टन कूड़ा निकलता है। कूड़े से पहले से ही पटे शहर में समस्याएँ प्रत्येक दिन बढ़ रही हैं। वाराणसी नगर का कोई मुहल्ला ऐसा नहीं जो इस बात का दावा करे कि उसका क्षेत्र साफ है। प्रत्येक मुहल्ले में नागरिक बदबू से त्रस्त हैं। वाराणसी नगर निगम का कथन है कि गंदगी की प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक समस्त बैकलाक का निस्तारण न हो जाय (Kumar, 2003)।

वाराणसी नगर के विभिन्न क्षेत्रों में स्वच्छता का कंकाल दृष्टिगोचर हो रहा है। डस्टबिन कूड़े से भरा बिखरने के लिए तैयार दिखाई देते हैं। कूड़ेदानों में कूड़ा रखने की जगह नहीं है। नगर निगम के पास कूड़ा उठाने के उपकरणों का अभाव है। अतः वह अपने उद्देश्य को पूरा करने में खरा नहीं उतर रहा है (Medhasanda, 2012)।

भारत में कूड़े के एकत्रीकरण उसके ढुलाई और उसके निस्तारण का तरीका पूर्णतया अवैधानिक है। अनियंत्रित ढंग से नगर के बाहरी क्षेत्रों में कूड़ा फेंकने से गम्भीर समस्या बीमारियों के रूप में उत्पन्न हो रही है। इन स्थानों की समतलीकरण का कार्य कठिन है। कूड़े फेंकने के ये स्थान पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। यहाँ तक कि भूमि तक में रहने वाला जल भी इनके प्रभाव से प्रदूषित हो रहा है और ग्लोबल वार्मिंग की समस्या को बढ़ा दे रहा है। कूड़े को जलाए जाने से भी वायु प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो रही है (Gupta et al., 1998)।

**समवर्ती अध्ययनों का सर्वेक्षण :** कलकत्ता महानगर में 2920 टन गृह-त्याज्य निकलता है जिसके निस्तारण के लिए 2007-2008 में रु. 1590 मिलियन आवंटित किया गया। यह व्यय गृह-त्याज्य निस्तारण के लिए अपर्याप्त है (Hazra and Goel, 2009)। बजट का 70 प्रतिशत भाग कूड़े के एकत्रीकरण पर खर्च होता है। जो नागरिक पंजीकृत हैं उनके 70.00 प्रतिशत कूड़ों का संकलन किया जाता है और जो नागरिक अपंजीकृत हैं अर्थात् मलीन बस्तियों में निवास करते हैं उनमें से केवल 20 प्रतिशत नागरिकों के कूड़ों का एकत्रीकरण सम्भव हो पाता है कूड़ों को वाहनों द्वारा ढुलाई करने की क्षमता 50 प्रतिशत से अधिक नहीं है। इसके अतिरिक्त कूड़ा ढोने के लिए जिस श्रमशक्ति की आवश्यकता है वह अपर्याप्त है। अतः कूड़े के व्यवस्थित ढंग से उठाने एवं फेंकने d sfy, QoLFk eał d h v k' ; d r k (KMC, 2003b) है।

कलकत्ता महानगरी का कूड़ा नगर से दूर धापा नामक खुली जमीन पर फेंका जाता है यह व्यवस्था भी दोषपूर्ण है। न तो कूड़े से उर्जा बनाई जाती है और न ही कूड़े को वर्गीकृत करके उनका पुनर्प्रयोग किया जाता है। कलकत्ता महानगर की व्यवस्था जो कि पूरे भारत के लिए गृह-त्याज्य प्रबन्धन की आदर्श व्यवस्था होनी चाहिए, वह उसके अनुकूल नहीं है (KMC, 2008)।

**कूड़े का उपयोग :** कूड़े के वर्गीकरण की प्रक्रिया दोषपूर्ण है। वर्गीकृत कूड़े से रिसाइक्लिंग का कार्य सिर्फ इसलिए चल रहा है क्योंकि उनसे बनी हुई सामग्री चाहे वह कागज की हो या प्लास्टिक की, बाजार में सस्ते दाम में उपलब्ध होती है। कूड़े से खाद बनाने का कार्य किया जा सकता है। किन्तु इस दिशा में भारत में कोई विशेष

\* प्रवक्ता, गृह विज्ञान

कार्य नहीं किया गया। भारत में कूड़े के संकलन, उसके ढुलाई, उसके वर्गीकरण किए जाने तथा कूड़े से ऊर्जा एवं विशिष्ट सामग्रियों के पुनः प्रयोग किए जाने की दिशा में विशिष्ट राष्ट्रीय नीति व्यवस्थापन और वित्तीय निवेश की आवश्यकता है (WHO, 1969)।

अमेरिका के मियामी नाम स्थान पर गृह-त्याज्य कूड़े के निस्तारण के लिए एक संयंत्र की स्थापना की गई है, जो विश्व का विशालतम संयंत्र है। इस संयंत्र का कार्य नगर के सामान्य कूड़ों को एकत्रित करने के साथ-साथ ऐसे कूड़ों को भी एकत्रित करना है, जो विषैले एवं घातक प्रकृति के हैं। इस संयंत्र की कार्य पद्धति तीन चरणों पर आधारित है। प्रथम चरण इस बात पर बल देता है, कि कूड़े को कम किया जाय। दूसरा चरण कूड़े के पुनर्प्रयोग पर बल देता है और तीसरा चरण कूड़े को फेंकने पर बल देता है। इस संयंत्र ने कूड़े के पड़ताल भी की है जिसके अन्तर्गत यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि कूड़े के श्रोत क्या हैं, और उनके निस्तारण के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए। यह संयंत्र कूड़े को नगर से दूरस्थ खाली पड़ी हुई भूमि को भरने पर भी बल देता है। किन्तु यह संयंत्र जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य रहा है वह है घातक और विषैले कूड़े को वैज्ञानिक ढंग से नष्ट करना (Linderhof et al., 2001)।

पर्यावरण सुरक्षा विभाग द्वारा गृह-त्याज्य प्रबन्धन के अन्तर्गत बर्बाडास ने 2005 में घातक एवं विषैले कूड़ों का निस्तारण के लिए एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए सरकार ने एक नवीन विभाग की स्थापना की। इस विभाग का कार्य नियमित रूप से घातक और विषैले कूड़ों की मॉनिटरिंग करना है और विभिन्न समुद्री द्वीप में उनके वैज्ञानिक निस्तारण की व्यवस्था करना है। सरकार के द्वारा घातक और विषैले कूड़ों के निस्तारण के लिए कानून भी पारित किये गये हैं, जिनका लक्ष्य स्वास्थ्य और संरक्षण की दशा को सन्तोषजनक बनाना है। सरकारी स्तर पर स्वास्थ्य सेवा, पर्यावरण सुरक्षा विभाग और Solid waste project unit की स्थापना की गई है। कार्यक्रम का लक्ष्य स्वास्थ्य और पर्यावरण सुरक्षा को बढ़ावा देना है (SWM, 2005)।

Solid Waste Management Strategies Planning के अन्तर्गत उन नीतियों और प्रविधियों की चर्चा की गई, जिनके विश्व बैंक आर्थिक सहायता देकर म्यूनिसिपल सालिड वेस्ट के डिसपोजन की रणनीति तैयार करता है। इस बात पर बल दिया गया है कि नगरीय कूड़ों के निस्तारण के लिए जो नीति बनाई जाए वह नगर विशेष की आवश्यकता के अनुरूप हो। कूड़ा ढोने के वाहनों तथा सम्बन्धित अभियांत्रिकी के लिए विशेष रूप से आर्थिक सहायता दी जाए। साथ ही साथ खुली हुई जमीनों के कूड़े से भरने की प्रक्रिया पर बल दिया जाय। यह नीति कूड़ों के पुनर्विनियोग पर भी बल देती है। विश्व बैंक सम्पूर्ण कूड़ा निस्तारण कार्यक्रम के नियमित मूल्यांकन और

**गृह-त्याज्य प्रबन्धन :** कूड़े को अलग-अलग वर्गों (Segregate) में विभाजित कर दिया जाय तो कम्पोस्ट बनाने के लिए यह अत्यन्त बहुमूल्य पदार्थ सिद्ध होगा। इससे न केवल कम्पोस्ट तैयार होगा बल्कि इससे प्राप्त विभिन्न धातुओं को नये वस्तुओं के निर्माण में प्रयोग किया जा सकेगा (Acharya, 2011)।

गृह-त्याज्यों का चार वर्गों में रासायनिक, धातु, तरल एवं ठोस में विभाजित किया जा सकता है। थोड़े-थोड़े दूरी पर चार त्याज्य संग्रहण पात्र रखे जाने चाहिए, जिसमें अलग-अलग श्रेणी के त्याज्य पदार्थों को उचित प्रकार से विसर्जित किया जा सके और उपयोगी पदार्थ को अलग किया जा सके (Assar, 2002)।

गृह-त्याज्यों का पर्यावरण के संतुलन और जन स्वास्थ्य के प्रबन्धन में अत्यधिक महत्व है। नगरों के स्वास्थ्य तथा पर्यावरण संतुलन व्यवस्था में वैज्ञानिक विधियों द्वारा गृह-त्याज्यों का एकत्रिकरण एवं विसर्जन किया जाना चाहिए और इसमें सामुदायिक सहयोग भी अपेक्षित है (Bopardikar, 2010)।

नगर क्षेत्र और ग्रामीण क्षेत्रों में सफाई व्यवस्था की तुलना में पता चलता है कि जनसंख्या की सघनता की दृष्टि से नगर क्षेत्रों का गृह-त्याज्य प्रबन्धन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है (Elher et al., 2011)।

जाति प्रथा के कारण नगर क्षेत्रों में पड़ोसी परिवारों में भी सामंजस्य का अभाव रहता है और इसके कारण जल-प्रवाह की नाली में अवरोध उत्पन्न होने, गृह-त्याज्यों को फेंकने के कारण झगड़े की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है और गृह त्याज्य प्रबन्धन में कठिनाई आती है (Sharma, 2009)।



1920 में बापू ने दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि हमें स्वतः बस्तियों की सफाई व्यवस्था को सुधारना चाहिए, क्योंकि इनका प्रभाव न केवल हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है अपितु इससे सम्पूर्ण पर्यावरण प्रभावित होता है। बापू ने कहा कि गन्दे पर्यावरण में निवास करके उच्च सोच विकसित नहीं किया जा सकता **(Tewari, 2005)**।

डब्ल्यू.एच.ओ (2010) ने सामुदायिक त्याज्य प्रबन्धन में बताया कि जन स्वास्थ्य की दृष्टि से परिवार स्तर पर वैज्ञानिक गृह त्याज्य प्रबन्धन अपरिहार्य है।

वर्तमान गृह-त्याज्य व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए आवश्यक है कि परिवार क्षेत्र नगर का प्रत्येक व्यक्ति अपने परिस्थिति के अनुरूप अपनी भूमिका का प्रतिपादन करे। इससे सफाई एवं सुरक्षा का लक्ष्य प्राप्त हो सकता है **(Noehmmer and Byer, 1997)**।

**अध्ययन की समस्या :** जीवन के गुणात्मक पक्ष में सुधार की प्रक्रिया में गृह-त्याज्य प्रबन्धन का महत्वपूर्ण स्थान है। गृह-त्याज्य व्यवस्था की वैज्ञानिक व्यवस्था पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन में गुणवत्ता के स्तर को सुधारने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। घरों में उत्पन्न गृह-त्याज्य का पर्यावरण के साथ प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का सम्बन्ध है। समसामयिक परिवेश में यह एक महत्वपूर्ण विषय के अन्तर्गत यह एक महत्वपूर्ण काम के रूप में प्रकट हुआ है। रोगों की वृद्धि तथा विस्तार में गृह-त्याज्य जनित विषाणु, श्वसन एवं संक्रामक रोगों के प्रसार में अपना योगदान प्रदान करते हैं। इस विविध प्रकार के जन स्वास्थ्य की समस्या का सृजन होता है **(Read et al., 2005)**।

#### संदर्भ-सूची

1. Acharya C. N., (2011). Preparation of Compost Manure from Town Waste the ICAR, Delhi, pp. 950-957.
2. Assar M., (2002). Guide of sanitation Waste Management Public Health Papers, Pp. 38-41.
3. Bopardikar, M.V., (2010). Home waste management at Kanpur Environmental Health 51. 349-367.
4. Gupta, S. Mohan, K. Prasad, R. Gupta, S. And Kansal, A. (1998). Solid waste Management in India: options and opportunities, published in 'Conservation and Recycling 24 (1998) pp. 137-154.
5. Kumar, B., (2003). Pilgrimage Centres of India. Diamond Pocket Books (P) Ltd. PP. 185-193.
6. Kolkata Municipal Corporation (KMC). (2008). Budget Statement by Shri Vikash Ranjan Bhattacharya. Mayor. Kolkata.
7. WHO. (1969). Problem in Community Waste Management, Public Health Papers No. 38, 457-463
8. Tewari, S. (2005). Waste reclamation by tertiary treatment. J. Wat. Pollut. Conrol. Fed. 77. 799-786.

\* \* \* \* \*

## Women Empowerment Through Skills and Entrepreneurship Development : A Sociological Study In Uttar Pradesh

*Dr. Nilu Singh\**

**ABSTRACT :** *Development alone cannot bring peace and prosperity unless social justice and gender equality are ensured. Entrepreneurship has been considered as the backbone of economic development. It has been well established that the level of economic growth of a region, to a large extent, depends on the level of entrepreneurial activities in the region. Women-owned businesses are playing a more active role in society and the economy, inspiring academics to focus on this interesting phenomenon. Skill development has been considered as the backbone of economic development. It has been well established that the level of economic growth of a region, to a large extent, depends on the level of entrepreneurial activities in the region. In the era of liberalization, privatization and globalization along with ongoing Information Technology revolution, capable entrepreneurs are making use of the opportunities emerging from the changing scenario. Though, India has improved its performance in education, however, there is growing deficit of skilled manpower. Therefore, there is a need to provide skill development and entrepreneurship development training to such population in order to mainstream them in the ongoing process of economic growth and development.*

**Introduction :** Women are significant contributors to India's economy and important constituent of development. Their empowerment is essential for distributive justice for the nation's growth. Engendering national development plans is imperative for gender mainstreaming and their empowerment. Engendered development plans would include a gender dimension in all macro policies and budgetary support for their implementation. Engendering public policy and gender budgeting are the major gender commitments by Government of India. Gender budgeting has three basic dimensions. One, the empowerment has to be holistic and it should cover political, social and economic implications for women. It should be universal in terms of equal opportunities. The second dimension is that it should be participative and inclusive. This requires that planning, policy and implementation process should have a bottom to top approach, where women have a voice from the grass roots to the highest echelons of power. The third dimension of gender budgeting is the need for convergence. Women's needs are multi-dimensional – access to health and nutrition, water and sanitation, asset based marketing, credit, technology, education and skills, political participation etc. Thus, convergence of development policies, programmes, schemes and institutional resources is imperative for engendering and inclusive

\* Assistant Professor, Maa Sudami Devi Mahila Mahavidyalaya Kariyabar Semri, Azamgarh

development. There is also the need for revision in existing urban development schemes and programmes so that gender issues may be incorporated and their concerns are effectively addressed.

### **Review of Literature**

Review of literature pertaining to women entrepreneurship development is imperative to examine the emerging issues and areas for evolving strategies and action plan. Empirical studies tried to identify the personal characteristics that could define and differentiate entrepreneurs from non-entrepreneurs (Low and MacMillan, 1988; Fagenson, 1993). However, as a result of these studies, some authors suggest that it would be more fruitful to investigate the different types of entrepreneurs, instead of differentiating them from non-entrepreneurs, due to the enormous diversity of entrepreneur profiles (Amit, 1994). It was believed research from these perspectives could offer significant explanatory and predictive potential about the entrepreneur. However, research from the traits perspective has not progressed beyond the early foundations of McClelland (Shanthakumar, 1992), and has even been labeled as a “dead end” (Gartner, 1988).

Nevertheless, among personal characteristics of women entrepreneurs, there were clear differences in two background variables: education and professional experience. These variables turned out to play an important role in venture creation success and survival (Dolinsky et al., 1993; and Fischer et al., 1993). Educational level has been shown to have a positive impact on initial entry and future business performance, and there is a strong causal link between experience (industry and managerial), formal education and successful performance (Hisrich and Brush, 1988; Fischer et al., 1993). Further, professional experience is considered by many authors to be a key structural factor having a major impact on the ability of women to start a business and to improve their business performance (Shabbir and Di Gregorio, 1996; Catley and Hamilton, 1998).

Several empirical studies reveal that women entrepreneurs have had less experience than men entrepreneurs in managing employees, less years of industrial experience, less experience working in similar firms or helping to start new businesses (Brush, 1992; Fischer et al., 1993; Carter et al., 1997; Lerner et al., 1997; Boden and Nucci, 2000). Considering this precedent, women appear to be at disadvantage with respect to men in venture creation activity. Women's own attitudes about and perceptions of themselves are in line with the theories mentioned above. Empirical research carried out by Hisrich (1996, 1997) found that women rated themselves higher in the capacity of dealing with people. According to Kamau (1999), and Fagenson and Marcus (1991), women perceived entrepreneurship more positively than men, and considered a good relationship with employees, clients and other professionals vital for business success and growth. Baron and Markman (2003) have stated that an entrepreneur with greater social competence has better performance.

### **Objectives and Methodology**

Gender equality and women empowerment are the key terms that defined and determined the direction of diverse discourses on women, nationally and globally. The Beijing conference was the most significant milestone in journey towards ensuring gender equality and enriching pragmatic insights into the issues concerning women empowerment (Singh & Srivastava, 2001). Gender equality is central to realizing the Millennium Development Goals. However, gender discrimination across the life cycle is still prevalent in most of the countries across the globe. In India too, gender discrimination is prevalent

in its socio-cultural setup. Gender discrimination is pervasive while the degree and forms of inequality may vary; women and girls are deprived of equal access to resources, opportunities and political power in every region of the world. The oppression of girls and women can include the preference for sons over daughters, limited personnel and professional choices for girls and women, the denial of basic human rights and outright gender based violence (UNICEF, 2007).

Attitudes, belief and practices that serve to exclude women are often deeply entrenched, in many instances closely associated with cultural, social and religious norms. Despite ingrained gender inequality, the status of women has improved in the past decades. The increased awareness of discriminately practices and outcome- including physical and sexual violence, legal and constitutional provisions as well as international pressure has fostered the greater demand for change and women empowerment. Globalization has transformed the structure and patterns of employment. On the one hand, it has created opportunities for employment to women; however, on the other hand, it has created problems to women folk. As majority of the women are employed in unorganized sector which is beyond the protection of labour laws, therefore, the real benefits of globalization could not percolate among women workers. The era of globalization is a process of restructuring of an international sexual division of labour in which third world women serve both as producers of surplus value of cheap manufacture and as objects of (sexual) consumption (through prostitution) for First World men. It is widely believed that globalization widens up the opportunities for women in different sectors but in true sense they rarely stand in the modernization of their economies. On the contrary, as their economies develop new burdens are added upon them. They suffer with inequalities and indignity. As the pace of globalization is spreading fast, industry grows up and men migrate to the cities leaving women behind by leaving the entire burden on the shoulder of women including agriculture, household and social needs. Structural adjustment generated the triple burden for women and globalization has reinforced its consequences. Women have become an integral part of this liberalized labour market, but simultaneously been marginalized within it, as they have to develop strategies for dealing with conflicting demands of fragmented insecure work, domesticity and community participation.

The proportion of women in higher status is one of the key indicators of level of equality between men and women of a society. How women are employed also has important implications for organizational performance and for national economic growth. After looking at the employment hierarchical structure, we find lack of women in the higher rungs. Different scholars give different views as some describe the reason as due to lack of qualified women, which may be due to societal steering mechanisms. And some others have attributed the underrepresentation of women to demand side factors, such as women experience at work, particularly discrimination. Lesser degree of women participation as managers or professionals is a neglected aspect of labour participation in emerging economies. So, it is becoming an important issue to study the low level of women in the higher rungs of employment in general and Indian women in particular as one of the countries where maximum numbers of work force is women.

### **Skill Training in Uttar Pradesh**

Skill development has been considered as the backbone of economic development. It has been well established that the level of economic growth of a region, to a large extent, depends on the level of

entrepreneurial activities in the region. In the era of liberalization, privatization and globalization along with ongoing Information Technology revolution, capable entrepreneurs are making use of the opportunities emerging from the changing scenario. Though, India has improved its performance in education, however, there is growing deficit of skilled manpower. Therefore, there is a need to provide skill development and entrepreneurship development training to such population in order to mainstream them in the ongoing process of economic growth and development. Skill up gradation and entrepreneurship has been considered as the backbone of economic development. It has been well established that the level of economic growth of a region, to a large extent, depends on the level of entrepreneurial activities in the region.

In the State of Uttar Pradesh, there are 267 Government run ITIs and more than 1300 private ITIs in the state to provide vocational education with an estimated capacity of 180000. Senior secondary education department has 892 schools with an estimated capacity of 100 students per school for vocational education and under the revised vocational education scheme, 100 new schools have been sanctioned. Different departments also have their own programs and schemes for skill development. Industries and private sector has not been engaged in any significant manner in this area. Uttar Pradesh Skill Development Mission was formed in 2011 to carry forward the skill development initiatives in the state. Uttar Pradesh Vocational Education and Training Council were also formed in 2009 with the intent of skilling educated/uneducated youth and making them employable. However, the desired momentum to skill development activities could not be provided due to lack of comprehensive policy framework. Uttar Pradesh being the largest populated state in the country, the target for skill development for the 12th plan has been fixed at 8 million by NCSD. With present infrastructure and capacities, it is not possible to achieve this ambitious target. In this context, it was felt desirable to assess the current status of skill development infrastructure and efforts in the state and to redraw the policy framework for skill development initiatives in the state. State government strategy and programmes for skill development are woven around the central schemes and support institutions. Many State Governments have set up State Skill Development Missions (SSDMs) as nodal bodies to anchor the skill development agenda in the State. SSDMs are expected to play a significant role in escalating the pace of skilling, through identification of key sectors for skill development in the State, as well as coordinating with Central Ministries and State Line Departments, as well as industry and private training organizations. Each State has adopted a structure of SSDM that best suits the local environment and the State vision for skill development. In pursuance of the directions given by the Government of India, Skill Development Mission was launched in October 2008. The state also introduced State Policy for Skill development in 2013 with comprehensive and long term strategy for skill development in the context of the national strategy. The scheme wise training targets of UPSDM is shown in Table.

**Scheme-wise Training Targets in Uttar Pradesh**

Scheme	(In Lakh)			
	2013-14	2014-15	2015-16	2016-17
SDI	0.35	1.00	1.00	1.00
BOCW	0.75	0.80	0.90	1.00
SCA2SCSP	0.60	0.75	0.90	1.00

MSDP	0.30	0.32	0.36	0.40
SSDF	0.01	0.50	0.75	1.00
BADP	0.05	0.05	0.05	0.05
DDU-GKY	0.40	0.50	0.65	0.75
<b>Total</b>	<b>2.95</b>	<b>5.92</b>	<b>7.11</b>	<b>8.20</b>

*Source: State Policy for Skill Development, 2013.*

In view of National Policy for Skill Development and commitment of state government, U.P. Skill Development Mission was setup with vision, mission and strategic plan to implement centrally and state sponsored skill development schemes in the state. Uttar Pradesh Skill Development Mission (UPSDM) was established in 2013; with the mandate of coordinating with all skill development initiatives and implement/monitor concerning programmes. Leveraging on State Skill Development Policy in 2013, UPSDM roped in private training partners under PPP Model with Government Agency to conduct short term modular skill development training programs. U.P.SDM has empanelled 211 government training partners, 17 flexi training partners, 135 large training partners and 15 small training partners. These partners have established 2202 centres for imparting skill training to youth in the state. The Mission's growth is determined by 5 stars i.e. 5Es of: (1) education, (2) employability; (3) employment; (4) economy, and (5) environment. Besides, Mission has development of user friendly interactive portal for candidates, officials, partners and employers as well as regular, sustainable, inclusive interaction to understand their needs and synergies with employment opportunities.

UPSDM is implementing following GOI funded schemes :

1. Skill Development Initiatives (SDI) Scheme
2. DeenDayalUpadhyayGrameenKaushalyaYojana (DDU-GKY)
3. Special Central Assistance (SCA) to Scheduled Castes Sub-Plan (SCSP)
4. Multi-Sector Development Programme (MSDP)
5. Border Area Development Programme (BADP)
6. Building and Other Construction Workers' (BoCW) Welfare
7. State Skill Development Fund (SSDF) - a top up scheme conceived incentivize desired outcomes.

**Conclusion and Suggestions :** Entrepreneurship has been considered as the backbone of economic development. It has been well established that the level of economic growth of a region, to a large extent, depends on the level of entrepreneurial activities in the region. The myth that entrepreneurs are born, no more holds truth, rather it is well recognized now that the entrepreneurs can be created and nurtured through appropriate interventions in the form of entrepreneurship development programmes. In the era of liberalization, privatization and globalization along with ongoing Information Technology revolution, capable entrepreneurs are making use of the opportunities emerging from the changing scenario. However, a large segment of the population, particularly in the industrially backward regions generally lags behind in taking advantage of these opportunities. Therefore, there is a need to provide skill development and entrepreneurship development training to such population in order to mainstream them in the ongoing process of economic growth and development. The increasing presence of women in the business field as entrepreneurs or business owners has changed the demographic characteristics of entrepreneurs. Women-owned businesses are playing a more active role in society



and the economy, inspiring academics to focus on this interesting phenomenon. Skill up gradation and entrepreneurship has been considered as the backbone of economic development. It has been well established that the level of economic growth of a region, to a large extent, depends on the level of entrepreneurial activities in the region.

Women empowerment is the buzzword now-a-days. No country can afford development without considering women who constitute about half of its stock of human resource. Thus the intervention of skills and training development is essential tool for women's economic development. Empowerment is a process by which women take control of their lives through expansion of their choices. The concept of empowerment has been the subject of much intellectual discourse and analysis. Empowerment is defined as the processes by which women take control and ownership of their lives through expansion of their choices. Thus, it is the process of acquiring the ability to make strategic life choices in a context where this ability has previously been denied. The core elements of empowerment have been defined as the ability to define one's goals and act upon them, awareness of gendered power structures, self-esteem and self-confidence. Empowerment can take place at a hierarchy of different levels – individual, household, community and societal or in other words home, village, state and nation and is facilitated by providing encouraging factors like exposure to new activities which can build capacities and removing inhibiting factors like lack of resources, skills etc. in the state is an indicator of economic development of women in India. Gender equality and women empowerment are the key terms that defined and determined the direction of diverse discourses on women, nationally and globally. The Beijing conference was the most significant milestone in journey towards ensuring gender equality and enriching pragmatic insights into the issues concerning women empowerment. There has been paradigm shift from a welfare orientation to an empowerment approach. This has further led to the emerging concept of engendering development in order to ensure gender equity, gender mainstreaming and women-centric governance. Though, India is among the most complex democracy in the world, with a long history of commitments to women's welfare and empowerment through constitutional provisions, legislation, policies and plans even while deep levels of structural gender bias persists within families, societies and economies. There are formidable opportunities and challenges, including continued high rate of economic growth in the phase of declining sex ratio, decreasing energy and natural resources, increasing income inequality and an urban rural divide. Thus, gender equality has become a core prerequisite for sustainable and equitable economic growth.

### Bibliography

1. Abhyankar Ravindra (2014) The Government of India's Role in Promoting Innovations through Policy Initiatives for Entrepreneurship Development, Technology Innovation Management Review, August
2. Ahl, H. (2006). Why research on women entrepreneurs needs new directions. Entrepreneurship Theory and Practice, 30, 595–621
3. Gopalan, Sarla (2004), The Profile Of Empowered Women: Vision 2020, IN India Vision 2020, Planning Commission, Govt. Of India, Delhi.
4. GOI (2010), *Annual Report, 2009-10*, Ministry of Labour and Employment, Government of India, New Delhi.
5. Gupta, A. K. and Singh, A. K (2015) Women Entrepreneurship In India: Schemes, Problems and Way Forward, International Journal of Management Research and Technology, Volume 9, Issue 2, July – December
6. Gupta, A. K. and Singh, A. K (2015) Women Entrepreneurship In India: Schemes, Problems and Way Forward, International Journal of Management Research and Technology, Volume 9, Issue 2, July – December

\* \* \* \* \*



## किशोरों के लिए संतुलित आहार

डॉ. सुषमा रानी\*

**सारांश :** शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास के लिए किशोरावस्था एक महत्वपूर्ण समय मानी जाती है एनसीबी आई की वेबसाइट पर प्रकाशित शोध के अनुसार किशोरावस्था में विकास के लिए कैलोरी और प्रोटीन आवश्यक होते हैं साथ ही शारीरिक और मानसिक और मानसिक विकास को बढ़ावा देने के लिए फैट, कैल्शियम, आयरन जिंक, विटामिन और फाइबर जैसे पोषक तत्वों की भी आवश्यकता होती है

**मुख्य बिन्दु :-** 12 से 18 वर्ष के किशोरों के लिए सन्तुलित आहार।

**प्रस्तावना :-** अधिकतर किशोर असंतुलित आहार का अत्यधिक सेवन करते हैं जिसके कारण उनका सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है किशोरावस्था में शरीर का विकास सबसे अधिक होता है यदि इस समय संतुलित आहार नहीं लेते हैं तो शारीरिक विकास नहीं हो पाता है और इसे शारीरिक विकास करने के लिए पर्याप्त पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

किशोर किसी डाइटिशियन से सलाह लेकर अपने समय पर आहार में पोषक तत्व कर सकते हैं।

**विषय विस्तार :-** किशोर वर्ष बढ़ने और बदलने का समय होता है। उनके सर्वांगीण विकास के लिए पर्याप्त पौष्टिक आहार का होना अत्यंत आवश्यक होता है। स्वस्थ भोजन के प्रमुख भाग इस प्रकार है—

बालक ऐसे भोजन को ग्रहण करें जिसमें पर्याप्त कैलोरी है/वह किशोर के उम्र, लिंग और कैलोरी पर निर्भर करती हैं। अधिकांश किशोर लड़कियों को प्रत्येक दिन 2200 कैलोरी की आवश्यकता होती है। यह तय करना आवश्यक होता है कि किशोर को आवश्यक कैलोरी प्राप्त हो रही है।

### प्रमुख पोषक तत्व

➤ **कार्बोहाइड्रेट:-** किशोर को पांसपेशियों के विकास और निर्माण के लिए प्रोटीन की आवश्यकता होती है। किशोर कि लगभग 1/4 चौथाई कैलोरी प्रोटीन से प्राप्त होती है।

➤ **वसा :-** वसा के रूप में किशोर को अपनी कैलोरी का एक चौथाई हिस्सा चाहिए/वसा शरीर को पिटाइन लेने और त्वचा को स्वस्थ रखने में सहायता करता है।

➤ **विटामिन और खनिज :-** कई किशोर को मुख्य रूप से लड़कियों को पर्याप्त विटामिन और खनिज नहीं मिलते हैं। डॉक्टर से परामर्श लेने चाहिए कि क्या आपके बच्चे को विटामिन लेना चाहिए।

➤ **रेशा :-** फाइबर युक्त खाद्य पदार्थ हृदय रोग और कुछ प्रकार के कैंसर को दूर कर सकता है। यह कब्ज को भी दूर कर सकता है। अपने किशोर को साबुत अनाज और भरपूर मात्रा में फल और सब्जी देना चाहिए।

➤ **खाने की योजना :-** यह चाने की योजना यूनाइटेड स्टेट्स डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर की यूज माइ प्लेट वेबसाइट पर आधारित है। उम्र, वजन, लिंग और गतिविधियों के आधार पर अलग-अलग होती है।

**भोजन को स्वस्थ बनाना :-** कुछ ऐसे तरीके हैं जो किशोरों के स्वस्थ भोजन को स्वस्थ बनाने में सहायता करता है :-

**नास्ता—** नाश्ता बच्चों को सिखने में मदद करता है। आपके किशोर नाश्ते में सभी खाद्य समूहों के खाद्य पदार्थ होनी चाहिए।

\* एम.ए., पी-एच.डी., गृह विज्ञान, मगध विश्वविद्यालय

➤ **दोपहर का भोजन :-** आपके किशोर को प्रत्येक दिन एक संतुलित व स्वस्थ दोपहर का भोजन करना चाहिए।

➤ **रात का भोजन :-** रात का भोजन परिवार के रूप में एक साथ करने का एक शानदार समय होता है।

अधिकांश किशोरों को भी दिन में दो-तीन स्नैक्स खाने चाहिए/कुछ स्वस्थ विकल्प ताजे फल और सब्जियाँ, दही, ग्रेनोला बार, पनीर, प्रेटजेल और पॉपकॉर्न है।

भोजन को पौष्टिक बनाने का एक सरल उपाय यह है कि भोजन को घर पर पकाया जाय। साथ ही यह ध्यान दिया जाये कि उनके भोजन में पर्याप्त पौष्टिक तत्व उपलब्ध हैं या नहीं। किशोर को भोजन की योजना खरीदारी और खाना पकाने में मदद करना चाहिए। इसके साथ ही स्वस्थ खाने के लाभों के बारे में उनसे बात करनी चाहिए। हार्वर्ड टी. एच. चैन स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ के पोषण वैज्ञानिकों और हार्वर्ड हेल्थ पब्लिकेशन के संपादकों द्वारा बनायी गयी स्वस्थ भोजन की थाली संतुलित, स्वस्थ भोजन तैयार करने के लिए गाइड की गई—

उनके अनुसार भोजन चाहे थाली से परोसा जाएँ या खाने के डब्बे में डाला जाए। इसकी प्रतिलिपि— ऐसे स्थान पर रखनी चाहिए कि वह प्रतिदिन याद दिलाते रहे कि भोजन स्वस्थ और संतुलित रहे

**बेवसाइट द्वारा लिया गया चार्ट— 12 से 18 वर्ष के किशोरों के लिए भोजन योजना—**

सुबह	खाद्य पदार्थ	मत्र
नाश्ते में	दूध फलों की सलाद या सब्जियाँ/सब्जियाँ को सलाद या सूप के रूप में लिया जा सकता है। अनाज से भरपूर ब्रेड, बिस्किट	1 कप दूध 1/2 कप (आधा कप) सूप 1 या 2 पीस
स्नैक्स में	फल नट्स	एक चौथाई कप 1/2 कप
दोपहर का भोजन	रोटी या ब्रेड चिकन या फिश अंड या चीज सब्जियाँ फल प्रोटीन प्रोडक्ट नट्स या बीज	दो या तीन 55 gr 100gr 50 gr 1 मुट्ठी
रात का खाना	गेंहू की रोटी या ब्रेड सब्जियाँ अंड प्रोटीन प्रोडक्ट जैसे कि चीज नट्स दुध सोन से पहले	एक या दो 100 gr 1 1/2 कप 1कप

**पतंजली द्वारा निर्मित संतुलित आहार चार्ट:-** सुबह उठकर 1-2 ग्लास गुनगुना पानी और नाश्ता से पहले पतंजली आंवला और एलोवेरा रस पीये इसके बाद डाइट चार्ट (आहार तालिका)–

समय	संयमित चार्ट
नाश्ता (सुबह 8.30)	1 कप दूध+बादाम पाक/पावर विटा (पतंजली)+2-3 बिस्किट/पोहा/उपमा (सूजी) कॉर्नफ्लेक्स/ओट्स/अंकुरित अनाज+1 ग्लास फलों का जूस
दिन का भोजन (1.30)	1-2 पतली रोटी+ 1कटोरी चावल:1कटोरी हरी सब्जी +1कटोरी दाल+1कटोरी छाछ/दही।
रात्री का भोजन (8.00P.M)	1-2 पतली रोटियों+1कटोरी हरी सब्जी+ 1कटोरी मूंग दाल
सोने से पहले (13.30)	1 चम्मच पतंजली का त्रिफला चूर्ण हरिदाखण्ड पाउडर/इसे हल्का गर्म दूध या पानी के साथ लेनी चाहिए।

**निष्कर्ष:—** अच्छा स्वास्थ्य इंसान की एक ऐसी जमा पूंजी है जो अगर हाथ से निकल गई तो वापस नहीं मिलती। अच्छा स्वास्थ्य किशोरों के लिए सबसे बड़ा धन होता है। आहार का सेहत पर बहुत असर पड़ता है। आप जो भी खाते हैं उसका सीधा असर आपके सेहत पर पड़ता है। ऐसे में जरूरी हो जाता है कि आपका आहार संतुलित हो। यह कहना है श्री बालाजी ऐक्शन मेडिकल इंस्टिट्यूट की चीफ न्यूट्रिशनिस्ट डा० प्रिया शर्मा का/ खानपान की जरूरतें अलग होती हैं। किशोरावस्था में सही पोषण का महत्व इसलिए भी ज्यादा है, क्योंकि इनके कमी से दूरगामी परिणामों का सामना करना पड़ सकता है। फलों में ज्यादातर शर्करा और कुछ विटामिन व खनिज लवण होते हैं। वे खाने में मीठा स्वाद जोड़ते हैं। उनको भी पर्याप्त मात्रा में सेवन करनी चाहिए।

#### संदर्भ—सूची

- एन सीबीआई (नेशनल सेंटर फॉर बायोटेक्नोलॉजी) इंफार्मेशन।
- वेबसाइट द्वारा
- पतंजली द्वारा निर्मित चार्ट
- श्री बालाजी ऐक्शन मेडिकल इंस्टिट्यूट की चीफ न्यूट्रिशनिस्ट डॉ० प्रिया शर्मा।
- डॉ० मैकडॉलगर
- हारवर्ड टी.एच.चैन स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ के पोषण वैज्ञानिक और हारवर्ड हेल्थ पब्लिकेशन के संपादक स्वस्थ भोजन की थाली।

\* \* \* \* \*

## Development of Value Added Products with the Mixture of Barley and Gram Flour for Diabetic Patients

*Dr. Sunita Sharan\**

**ABSTRACT :** Diabetes is classed as metabolism disorder. Metabolism refers to the way our bodies use digested food for energy and growth. Glucose is a form of sugar in the blood- it is the principal source of fuel for our bodies. Normally the glucose level in the body of a person is 80-100 mg /10 ml blood. When the level of glucose increases from the above define limit then the person is called infected from diabetes. Therefore in the condition of diabetes glucose level is 100 mg glucose/100ml blood. This extra glucose comes into the urine and excreted from the body. Diabetes is caused due to the minimum secretion of the insulin. Gram flour more popular known as besan is highly nutrition food which provides us with lots of health benefits. Owing to it's high protein content it can be easily be consumed by vegetarian to fulfill their protein needs it not only is useful inside but also outside the body from time immemorial besan has been used as homemade face pack to remove tan and to lighten the skin being such as versatile item besan has found a person and place in our kitchen all of us have had the pleasure of testing the different yummy dishes made with besan as it is a favorite ingredient for Indian homemade healthy snacks option.

Barley flour is a flour prepared from dried and ground barley. Bar resource is used to prepare barley bread and other breads, such as flatbread and yeast breads. There are two general type of barley flour. Coarse and fine. Barley Croods are related to make scores barley Flour & Barley is needed to make find barley floor. Additionally Satan's barley floor is a final barley floor that is ground to a greater degree compared to find barley floor. In the developed products the content of iron and protein was high. The products developed by this research were liked by people.

**INTRODUCTION :** The term diabetes without qualification, usually refers to diabetes mellitus, which is associated with excessive sweet urine (known as "glycosuria") but there are several rarer conditions also name diabetes. The most common of this is diabetes insipid us in which is the urine is not sweet (Insiidus means "without taste" in Latin); it can be caused by either kidney (nephrogenic DI) or pituitary gland (central DI) damage.

The term type-1 diabetes has universally replaced several former terms, including childhood onset diabetes, juvenile diabetes and insulin dependent diabetes (IDDM) likewise the term type 2 diabetes has replaced several forms terms including adult onset diabetes obesity related diabetes and non-insulin diabetes (NIDM). Beyond these two types, there is non-agreed upon standard nomenclature. Various

\* *Assistant Professor SGNCD College, Lucknow*

sources have defined “type 3 diabetes” as among others gestational diabetes insulin resistant Type 1 Diabetes or “Double diabetes” type 2 diabetes which has progressed to require injected insulin and latent autoimmune diabetes of adults or LADA or “type 1.5” diabetes. There is also maturity onset diabetes of The Young (MODY) which is a group of several single gen (monogenic) disorders with strong family histories that present as type 2 diabetes before 30 years of age. The classical triad of diabetes symptoms is **polyuria, polydipsia and polyphagia**, which are respectively frequent urination increased thirst and consequent increased fluid intake and increased appetite. Symptoms may develop quite rapidly (in weeks or months) in Type 1 Diabetes particularly in children. However, in type 2 diabetes symptoms usually develop much more slowly and maybe septal or completely absent Type 1 Diabetes me also cause a rapid get significance weight loss despite normal or even increased eating and irreducible fatigue all of these symptoms except weight loss can also manifest in type 2 diabetes in patients whose diabetes is poorly controlled.

**INTRODUCTION OF GRAM FLOUR :** Gram flour more popular known as besan is highly nutrition food which provides us with lots of health benefits. Owing to its high protein content it can be easily be consumed by vegetarian to fulfill their protein needs it not only is useful inside but also outside the body from time immemorial besan has been used as homemade face pack to remove tan and to lighten the skin being such as versatile item besan has found a person and place in our kitchen all of us have had the pleasure of testing the different yummy dishes made with besan as it is a favorite ingredient for Indian homemade healthy snacks option.

#### **The Health Benefits of Gram Flour Besan**

1. **Help low cholesterol-** Gram flour contains healthy unsaturated fat switch help in lowering the cholesterol level of the body.

2. **Control diabetes-** Owing to its low glycaemic index it is a great food for diabetic use it in your rotis parathas replacement for flour. Glycaemic index of chickpea is just 10.

3. **Help improve health of the heart-:** besan has highly so label fiber content which is beneficial for the health of the heart it is also endorsed by the heart care foundation

4. **Healthy alternative for gluten** - since Besan does not contain gluten, it is a great substitute sous vide and other gluten containing grains, for those people who are allergic to gluten.

5. **Helps getting rid of iron deficiency** - being rich in iron, consumption of besan on a daily basis can help your body recover from iron deficiencies like anemia.

6. **Useful in pregnancy** - gram flour is rich in float, vitamin which take care of the fetus’ brain and spinal cord development and ensure a healthy well developed body.

7. **Helps during fatigue** - Gram Flour is a good source of the vitamin thiamine which helps the body in converting food into energy.

8. **Helps regulate mood and appetite** - Besan is rich in vitamin B6. Vitamin B6 is an important component involved in the synthesis of the neurotransmitter serotonin. Serotonin plays an important role in mood and appetite regulation.

9. **Helps regulate blood pressure** - The Magnesium content of Besan Health in maintaining vascular health and it also helped in regulation of blood pressure.

10. **Helps in stenting of Bones** - The phosphorus in gram flour combines with calcium in the body to help in the formation of Bones.

**INTRODUCTION OF BARLEY FLOUR :** Barley flour is a flour prepared from dried and ground barley. Bar resource is used to prepare barley bread and other breads, such as flatbread and yeast breads. There are two general type of barley flour. Coarse and fine. Barley Croods are related to make scores barley Flour & Barley is needed to make find barley floor. Additionally, Satan's barley floor is a final barley floor that is ground to a greater degree compared to find barley floor.

**Health Benefits of Barley Flour :** Whole grains are important sources of dietary fiber, vitamins, and minerals that are not found in refined or enriched grains. Refining grains remove the bran, germ, and most of their fiber and nutrients.

Choosing whole grains over their processed counterparts can help reduce the risk of obesity, diabetes, heart disease, cancer, and other chronic health problems.

Consuming barley might have benefits for the heart, blood pressure and bones.

Barley may be useful in maintaining a healthy weight.

Barley provides a high percentage of an individual's daily requirements of manganese and selenium.

Thanks to barleys versatility, it is easy to incorporate into meals.

**Blood pressure-:** in a healthful diet, increasing whole grain foods, whether high in soluble are insoluble fibers can reduce blood pressure and may help to control weight.

**Bone health-:** the iron, phosphorus, calcium, magnesium, magnesium, and zinc in barley or contribute to building and maintaining bone structure and strength.

**Heart health-:** Barley's fiber, potassium, folate and vitamin B6 content coupled with its lack of cholesterol, all support a healthy heart. Barley is an excellent source of fiber, which helps lower the total amount of cholesterol in the blood, thereby decreasing the risk of heart disease.

**Digestion and regularity-:** Barley's fiber content help prevent constipation and promote regularly for a healthy digestive tract.

**Weight management and satiety-:** add Equate fiber intake is commonly recognized as an important factor in weight loss by functioning as a "bulking agent" in the digestive system.

Fiber in the diet helps to increase satiety and reduce appetite, making people feel Fuller and longer. This can help lower the overall calorie intake.

#### **Objective**

1. To identify the nutritive level of gram flour and barley flour.
2. To prepare three types of food products from mix of gram and barley flour that are beneficial for diabetic patients.
3. Sensory evolution of food products.
4. To identify the medicinal value of the developed products.

**MATERIALS AND METHODS :** For conducting this research swallowing methodology was followed the present research work was analytical research conducted in the department of Home Science in

**SHRI GURU NANAK GIRLS DEGREE COLLEGE CHARBAGH, LUCKNOW**

**1. Selection of state** -: For present study state **UTTAR PRADESH** was selected purposively as research is residing in the city.

**2. Selection of Districts** -: District **LUCKNOW** city was selected for the present study.

**3. Selection of raw material** -: Gram flour and Barley flour were selected for this study and procured from the local market in LUCKNOW purposively

**PRODUCT DEVELOPMENT** : Three products were developed for the study with the mixture of two flour

1. CHEELA
2. GATTA
3. SEV

and the incorporation level were as follows-

**Table -1 Incorporation Percentage of Two Flour**

Product No.	Main Ingredient (Gram Flour)	Barley Flour	Percentage
T0	50 GM.	0 GM.	0%
T1	45 GM.	5 GM.	2.5%
T2	40 GM.	10 GM.	5%
T3	35 GM.	15 GM.	7.5%

**SENSORY EVALUATION OF THE PRODUCT** : Each prepared product was subjected for sensory evaluation by the judges of Department of Home Science in Shri Guru Nanak Girls Degree College.

**CALCULATION OF NUTRIENT AND MEDICINAL VALUE OF THE DEVELOPMENT FOOD PRODUCTS** - The developed food products were subjected for the nutrient calculation.

**STATISTICAL ANALYSIS**-The data obtained from sensory and nutrient calculation were analysed statistically.

**RESULT AND DISCUSSION** : For conducting research entitled, “**Development of Value-Added Products With The mixture of Barley and Gram Flour for Diabetic Patients.**” The analytical research methodology was followed the result was analyzed and tabulated as follows.

**DEVELOPMENT OF VALUE-ADDED PRODUCTS** : There are three products:-

1. Cheela
2. Gatta
3. Sev

Sensory evaluation was done by point hedonic scale.

1 -: **CHEELA**

**TABLE NO. 2**

Product	Color	Texture	Flavor	Taste	Overall Acceptability
T0	8	7.9	8.2	8.1	8.7
T1	7.95	7.75	7.95	7.85	8.45
T2	8	8	8.25	8	8.3
T3	7.85	7.6	8	8.15	8.1



The product **Gatta** was subjected for sensory evaluation on 9-point hedonic scale.

T0 - In color the product obtained 7.75 marks, in texture it gets 7.4 marks, 8 for flavor, 8.15 for taste and overall acceptability it gets 8.35 marks.

T1 - In color the product obtained 7.45 marks, in texture it gets 7.5 marks, 8.4 in flavor, 8.45 in taste and overall acceptability it gets 8.25 marks.

T2 - in color the product obtained 7.6 marks, in texture it gets 7.3 marks, 7.85 marks in flavor, 8.2 marks in taste and overall acceptability it gets 8.35 marks.

T3 - In color the product obtained 7.6 marks, in texture it gets 8 marks, 8.45 marks in flavor, 7.9 marks in taste and overall acceptability it gets 7.85 marks.

3 -: SEV

**TABLE NO. 3**

Product	Color	Texture	Flavor	Taste	Overall Acceptability
T0	8.25	7.5	8.2	8.5	8.6
T1	7.85	7.15	8.2	8.05	8.45
T2	7.55	7.35	7.65	8.1	8.15
T3	7.2	6.9	6.75	7.1	7.35

The product **Sev** was subjected for sensory evaluation on 9-point hedonic scale.

T0 - In color the product obtained 8.25 marks, in texture it gets 7.5 marks, 8.2 for flavor, 8.5 for taste and overall acceptability it gets 8.6 marks.

T1 - In color the product obtained 7.85 marks, in texture it gets 7.15 marks, 8.2 in flavor, 8.05 in taste and overall acceptability it gets 8.45 marks.

T2 - in color the product obtained 7.55 marks, in texture it gets 7.35 marks, 7.65 marks in flavor, 8.1 marks in taste and overall acceptability it gets 8.15 marks.

T3 - In color the product obtained 7.2 marks, in texture it gets 6.9 marks, 6.75 marks in flavor, 7.1 marks in taste and overall acceptability it gets 7.35 marks.

**NUTRITIVE VALUE :** The nutritive value estimation of the products was done for energy, protein, fat, iron and fiber content by calculations method through nutritive value of Indian food by Swami Nathan.

**TABLE NO. 4**

Product	Energy	Protein	Fat	Iron	Fiber
T0	186 kcal	10.4 gm.	2.8 gm.	2.65 mg.	0.6 gm.
T1	184.2 kcal	9.935 gm.	2.585 gm.	2.47 mg.	0.735 gm.
T2	182.4 kcal	9.47 gm.	2.37 gm.	2.29 mg.	0.87 gm.
T3	180.6 kcal	9.005 gm.	2.155 gm.	2.11 mg.	1.005 gm.

It is found that in T0 (Standard) product the energy content was 186 kcal, in T1 the energy content was 184.2 kcal, in T2 the energy content was 182.4 kcal, & in T3 the energy content was 180.6 kcal.

In the protein content in T0 (Standard) product was 10.4 gm., in T1 9.935 gm., in T2 9.47 gm., and in T3 9.005 gm.

Fat content in T0 (Standard) product was 2.8 gm. in T1 2.585 gm., in T2 2.37 gm., and in T3 2.155 gm.

Iron content in T0 product was 2.65 mg. in T1 2.47 mg. in T2 2.29 mg. and in T3 2.11 mg.

Similarly the fiber content was calculated and in T0 0.6 gm. In T1 0.735 gm., in T2 0.87 gm., and in T3 1.005 gm.

#### **Nine Points Hedonic Scale for Sensory Evaluation**

Name of the person -

Name of the recipe -

Kindly evaluate the given product on the basis of following score.

- LIKE EXTREAMELY
- LIKE VERY MUCH
- LIKE MODERATELY
- LIKE SLIGHTLY
- NEITHER LIKE NOR DISLIKE
- DISLIKE SLIGHTLY
- DISLIKE MODRATELY
- DISLIKE VERY MUCH
- DISLIKE EXTREAMLY

Product	Color	Texture	Flavor	Taste	Overall Acceptability
T0					
T1					
T2					
T3					

COMMENTS –

NAME -

SIGNATURE -

**CONCLUSION :** Development of value added products with the mixture of gram flour and Barley flour for diabetic patients. This research has come as a result of the program that on sensory evaluation of product **CHEELA** T0 got 8.7 marks, T1 got 8.45 marks. In T2 it got 8.3 marks, while in T3 It got 8.1 marks. And by comparing T0 (Standard) product to T1, T2& T3 products it was found that product T1 was more appreciated by the people.

On sensory evaluation of product **GATTA** T0 got 8.35 marks, T1 got 8.25 marks. InT2 it got 8.35 marks, while in T3 It got 7.85 marks. And by comparing T0 (Standard) product to T1, T2& T3 products it was found that product T2 was more appreciated by the people.

On sensory evaluation of product SEV T0 got 8.6 marks, T1 got 8.45 marks. In T2 it got 8.15 marks, while in T3 It got 7.35 marks. And by comparing T0 (Standard) product to T1, T2& T3 products it was found that product T1 was more appreciated by the people.

In the nutritive value of prepared products, it was found that in product T1 the content of Energy, Protein, Fat and Iron was high and in product T3 the content of fiber was high.

### RECOMMENDATION

On the basis of results following recommendations can be given -:

- The products prepared in this research are very beneficial for health especially for diabetic patients. Due to lack of time only three products were prepared. If they are prepared in large amount & on huge level then diabetes can be controlled.
- Due to absence of laboratory there is a lack of proximate analysis but nutritive value and Medicinal value of prepared food products should be found by laboratory method.
- The medicinal value of food products and two flour should also be studied in detail.

### BIBLIOGRAPHY

1. KNUCKLES, B. E., C. A. HUDSON, et al. (1997). "Effect of b-Glucan Barley Fractions in High-Fiber Bread and Pasta." *Cereal Foods World* **42**(2): 94-99.
2. Lazaridou, A. and C. G. Biliaderis (2007). "Molecular aspects of cereal [beta]-glucan functionality: Physical properties, technological applications and physiological effects." *Journal of Cereal Science* **46**(2): 101-118.
3. Li, J., T. Kaneko, et al. "Effects of barley intake on glucose tolerance, lipid metabolism, and bowel function in women." *Nutrition* **19**(11-12): 926-929.
4. Lord, J. and O. Sant'Angelo (2010). Talin - modifies the taste of stevia naturally.
5. Meilgaard, M., G. V. Civille, et al. (1999). *Sensory Evaluation Techniques*. Boca Raton, CRC Press.
6. Mermelstein, N. H. (2009). *Software for Nutrition Labeling*. Food Technology, Institute of Food Technologists. **63**.
7. Muller, M. *Recipe Calc 4.0*.
8. NBFC (2006). "Barley Facts: FDA Health Claim." National Barley Foods Council.
9. Ogden, C. L., M. D. Carroll, et al. (2008). "High Body Mass Index for Age Among US Children and Adolescents, 2003-2006." *JAMA* **299**(20): 2401-2405.
11. Onishi M, I. M., Araki T, Iwabuchi H, Sagara Y. (2011). "Characteristic Coloring Curve for White Bread during Baking." *BiosciBiotechnolBiochem* **75**(2): 255-260.
12. Osorio, F., E. Gahona, et al. (2003). "Water Absorption Effects On Biaxial Extensional Viscosity of Wheat Flour Dough." *Journal of Texture Studies* **34**(2): 147-157.
13. Ostman, E., E. Rossi, et al. (2006). "Glucose and insulin responses in healthy men to barley bread with different levels of (1→3;1→4)-[beta]-glucans; predictions using fluidity measurements of in vitro enzyme digests." *Journal of Cereal Science* **43**(2): 230-235.

\* \* \* \* \*

## Youth Problem and Their Copying Strategies

*Smt. Mamta\* Dr. Charu Vyas\*\**

Youth is considered as the transitional period between early adolescent and adulthood. The powerful intellectual tools that emerge in the early teens allow adolescent to make plans as a way of testing them. Today the youth of the country are lacking their soul; strength, due to their social backwardness, all educational backwardness & economical backwardness. They are depressed from thousand year. After the independence most of the communities were given opportunity in getting education & getting a job in government service.

The youth of our land face many problems. Every generation of youth has faced problems. But this particular era of our nation's history seems to offer the young problems that pressing on some other ages. Young people are not just little adults. They are young people that need the love, guidance, training, discipline and security that those who are older are obligated to provide. Once given those things it is up to them to walk accordingly.

**Problems in the Youth :** There are many problems of youth life. Just like - Family, personal, educational, unemployment, emotional, adjustment; pressure of living etc.

**Coping :** Coping can be described of cognitive and behavioral efforts to face the external and internal demands of the individual. In other words coping is the conscious effort to solve the personal & interpersonal problems and minimize stress or conflicts. Psychological coping are generally considered as adaptive or constructive coping strategies which minimize the stress level.

**Types of coping strategies :** There are several coping strategies but there is common comment had not been found. There are three main types of coping strategies which are as following:-

- Appraisal focused.

• **Problem focused :** any coping behavior that is directed at reducing or eliminating a stress is adaptive behavioral.

**Emotion focused :** Directed towards changing one's emotional reaction to a stressor.

**Problem focused strategies :** Problem focused coping is aimed at changing or eliminating the source of the stress.

Normally people use a mixture of all three types of coping strategies and coping skills will usually change over time. All these methods found useful but some claim that those using problems focused coping strategies will adjust better to life.

---

\* *Research Scholar Home Science, Vanasthali Vidhya Peeth, Nivai, Jaipur (Raj.)*

\*\**Prof. Home Science (Human Development) Vanasthali Vidhya Peeth, Nivai, Jaipur (Raj.)*

**Negative Techniques :** In negative coping an individual not performs the actions which produce the stress. In other words in negative coping, person break the association between situation and the as related anxiety symptoms.

**Positive Techniques :** In this, the person try to learn anticipate the challenges and sort cause of the problems on the whole individual posses positive perceptions towards their abilities and problem. Another approach in positive techniques is social coping.

**Objective :** To identify the type of coping strategies used by Youth.

**Hypotheses :**

1. There is no association between class wise and coping strategies.
2. There is no association between gender wise and coping strategies.

**Tools Used in the Study :** To identify coping strategies for adolescents “coping strategies scale” by A.K. Shrivastva will be used.

**Used Statistics :** In this study we used statistical analysis percentage and frequency.

➤ Analysis and Interpretation of coping strategies of youth problems accordance to two dimensions –

#### Classwise – Frequency and Percentage Distribution of Coping Strategies

Classes	L		M		H		
	F <sub>0-29</sub>	P%	F <sub>30-45</sub>	P%	F <sub>46-60</sub>	P%	
12 <sup>th</sup> Standard	118	32.78	224	62.22	18	5.00	360 (100%)
I <sup>st</sup> year	132	36.67	206	57.22	22	6.11	360 (100%)
II <sup>nd</sup> year	136	37.78	198	55.00	26	7.2	360 (100%)
III <sup>rd</sup> year	146	40.55	176	48.89	38	10.56	360 (100%)
Grand Total	532	36.94	804	55.84	104	7.22	1440 (100%)
		14.78		223.33			

**Table Details-**Above the table shows coping strategies class wise.

- 12 standard coping strategies Low level percentage 32.78%
- In class wise distribution III year class's youth 40.55%
- Medium level percentage 62.22% 12th and IIIrd year class students 48.89%

**Summary & Conclusion of the Study :** Youth is considered as transitional period between early adolescent and adulthood. The powerful intellectual tools the emerge in early teens allow adolescent to make plans as a way of testing them. Adolescent in a period of rapid changes in all dimensions of development. Changes in behavior characteristics are accompanied by problems and potential difficulties.

In he presents era youth includes a lengthy interval of education carrier training and adult roll increasing independence from parents during this interval provides youth with increasing

opportunities(Erikson 1968) due to these factors youth may experience stress by getting confused in making use of the increasing opportunities.

Hence there is a need to study critically behaviors problem among youth to guide them to manage these problems this study to find better solution for these problems. The present research will also suggest the coping techniques by which the youth will have come to know that they cope successfully with their problems and utilized their power and efficiency. In this way the above discussion clarifies itself that there is great need to study the topic which includes all the above mentioned aspects to the study of “ youth problem and their coping strategies.”

#### **Bibliography**

- Prabhat S.V. 2011 youth and Rural India, Global research New Delhi.
- Rao, Kiran, Mounded, Subhkrishna and D.K. 2000, Appraisal of stress and coping behavior in college students. Journal of the Indian Academy of applied psychology volume 26(1-2)
- Sirazi Mahmood, Khan Ahmad Matloob and Ali Khan Rahat (2011), coping strategies : a cross cultural study. Romanian journal for psychological psychotherapy and Neuro science. Vol.1(2)

#### **Website :-**

- [http://www.familytime.co.nz/the\\_biggest-problem-facing-youth](http://www.familytime.co.nz/the_biggest-problem-facing-youth).
- [www.annualreview.org](http://www.annualreview.org).

\* \* \* \* \*

## Mental Health Sex, Culture and Burnout

*Dr. Kamlesh Kumar Pandey\**

The study purports to examine the differential effects of Sex, Culture and Mental Health on burnout tendency of her respondents ranging in the age range of 30-45 years by administering Mithila Mental Health Status Inventory and Burnout Inventory: The main independent variables, i.e. Sex, Culture and Mental Health were found to have significant effect on burnout tendency of teacher respondents.

Maslach (1982) has described burnout a state of physical, emotional and mental Exhaustion. Burnout has also been cited as a syndrome of inappropriate attitude towards associated with physical and emotional Symptoms (Kahn 1978). A professional is said burned out if he/she become debilitated and weakened because of extreme demands on one's physical and/or mental energy.

All the description of burnout have an Essential component, and that is emotional detachment from the clients. Even one of the dimensions of burnout, Emotional Exhaustion is a resultant of mental stress.

Burnout prone individuals are often talked about in terms of being unassertive, Submissive, cautious, fearful of involvement, impulsive and short tempered. All these factors are related to unstable emotional state and poor mental health of an individual. Certain signs and symptoms of burnout include isolation, withdrawal, self-preoccupation, rigidity in thinking, resistance to change, lack of flexibility (Freudenberger, 1974; Maslach 1976; Berkeley Planning Associates 1977) are the factors which are closely related to Egocentrism, Alienation, Emotional instability – areas of mental health variable.

Mental health is much more than mental. It also incorporates the physical and emotional aspects of adaptive behaviour and burnout tendency

of the individual. It involves work habits, situational attitude and behaviour. The most important aspect is of socially considerate behaviour and contributions to the society.

Review of researches in the area of burnout reveal that the tendency of burnout among organizations and educational institutions was in relation to several individual, job and organizational variables such as Talbot (2000), Singh, Pandey & Chaubey (2005) Demirel, Guiler, Tokdamis, Ozdemir & Sizer (2009), Tsiglis, Zachopoulou and Gramma Likopoulos (2006), Patricia (2009) etc. But these studies and observations are limited to western culture and organisational variables. Therefore, there is need to observe the impact of mental health in relation to sex and culture of respondents on burnout tendency of teachers in our own culture. So, this study was designed for the sample of eastern U.P. to see the effects of mental health burnout tendency of teacher respondents.

\* *Asst. professor (Dept. of Psychology) Gramyanchal Mahila Vidyapeeth Gangapur, Mangari Varanasi*



### METHOD

**Sample and Procedure :** The sample comprised of 400 higher secondary teachers selected from different intermediate colleges of Eastern U.P. The age of participants was ranged between 30 to 45 years. The design which is used to conceptualize the study and analyze the obtained data is 2 x 2 x 2 factorial design with the three classificatory variables being Sex, Culture and Level of Mental Health of respondents respectively. First of all, Mithila Mental Health Status Inventor was administered over the teachers and on the basis of obtained raw scores, they were categorized into Good and Poor Mental Health groups. After the completion of this task, they were administered Hathwal's Burnout Inventory.

### RESULTS & INTERPRETATION

**Table-1**

Showing Mean and SD values obtained on Burnout Inventory by teachers of High and Low Mental Health groups.

Sex	culture	Mental health		Grand Mean
		Good	Poor	
Male	Rural	A N=50 M=75.60 =5.23	B N=50 M=91.40 =7.34	
	Urban	C N=50 M=96.30 =6.89	D N=50 M=107.8 =6.23	92.77
Female	Rural	E N=50 M=64.60 =5.89	F N=50 M=80.4 =5.79	
	Urban	G N=50 M=79.3 =6.34	H N=50 M=90.6 =6.52	78.72
Grand Mean		78.95	92.55	

**Table- 2**  
**Summary of Three-way Analysis of Variance**

Source of Variations	Sum of Squares	df	Mean square	F Value	level of Signification
A=Status of Mental Health	91.06	1	91.06	7.38	.01
B=Sex	103.04	1	103.04	8.35	.01
C=Cultural	104.39	1	104.39	8.46	.01
Interaction AxB	90.69	1	90.69	7.35	.01
AxC	81.19	1	81.19	6.58	.05
BxC	101.68	1	101.68	8.24	.01
AxBxC	67.38	1	67.38	5.46	.05
Within(Error)	4837.28	392	12.34		
Total	5476.71	399			

A thorough inspection Table 1 S presenting the mean Burnout scores of teachers respondents teaching at secondary level belonging to different sex and culture reflects that female teachers of Good Mental Health, and Rural teachers were found comparatively less burnout than male teachers of poor mental health and urban teachers.

Thus, it maybe concluded that there is negative relationship between levels of mental health and burnout tendencies of teacher respondents.

A visual inspection of Table 2 reveals that Fractions for level of mental health ( $F = .38 > .01$ ), sex ( $F = 8.35 > .01$ ) culture ( $F = 8.46 > .01$ ), AxB ( $F = 7.35 > .01$ ), AxC ( $F = 6.58 > .05$ ), BxC ( $F = 8.24 > .01$ ) and AxBxC ( $F = 5.46 > .05$ ) were found statistically significant at respectable level of significance.

These values indicate that burnout 1 scores for teachers respondents irrespective of their sex and culture increases with deterioration in mental health. With increase in Mental health of teacher respondents, the burnout tendency decreases.

To establish a relationship between Mental Health and burnout, it would be preferable to look for the common causal factor of both these variables. There are certain aspects, which together constitute the phenomenon of mental health a whole. Thus, person scoring high on Mental Health Status Inventory is likely to possess these negative personality factors- persons suffering poor mental health may be egocentric, concerned more about their needs, feelings, ideal and opinions. Such persons systematic work style. They cannot relate, co-ordinate or develop a rapport with others easily. Due to their withdrawal tendency, they find difficulty in maintaining interpersonal relationships. Such persons do not trust others easily but are very sensitive for their own feelings and emotions. Persons with poor mental health, tend to be lacking on social aspects also.

They may have a rebellious attitude for the prevailing social system and a fault finding attitude with everything around. One may develop a blaming tendency towards others for his own failures. As the saying goes, "A sound mind develops in a sound body", if the mental condition is good, grand thoughts will develop and will be reflected in one's act and deeds, a mentally unhealthy person is likely to be devoid of it. If the mind has confusions, conflicts, insecurity, anxiety, depression, unhappiness and nervousness, it will result in behavioural deformations and severe adjustment problems.

Thus, the persons having poor mental health are likely to be more burnout also, because burnout tendency is also related to these factors and some other indirectly linked factors.

The reasons for male teachers being more burnout than female teachers can be attributed to the fact that females show a more positive attitude towards dependence on others (family and coworkers). Due to their better adjustment tendency, they are well suited and better equipped in adverse situation also. The social up bringing of girls also help them to become more adjusting.

Teachers belonging to rural background were found less victim of burnout because rural environment is less directive, people in rural areas get more opportunity to express and exchange their ideas and feelings, and, rural atmosphere is more congruent to free thinking.

#### REFERENCES

1. Albot; J.A. (2000) Textbook of Psychiatry, Washington D.C. American Psychiatric Press, Inc.
2. Demeria, Y. Guiler, N, Toktamis, A, Ozdeenir, D & Sezer (2009) Burnout in Turkish High School teachers atoktoms. (a) Cumhuriyet. edu. tr. atoktamis (a) hotmail.com.
3. Praricta, L (2009) The correlation between creativity and burnout in Public School Classroom teachers, Master's thesis of Social work, University of South Western Louisiana.
4. Singh, S.K. Pandey, R & Chaube, A.K. (2000) Occupational Stress and burnout among medical professional, Indo-Indian JI. of Social Science Research, 3, 1, 76-83.
5. Tsigilis, N., Zachopolon, E. & Grammatikopoloe (2006) Job satisfaction and burnout among Greek eany Review canons, : A Comparison between public and private sector employees. Educational Research u 1, 8, 256-261.

\* \* \* \* \*

## आधुनिकता के दौर में किशोरावस्था की बढ़ती आवश्यकताएँ और गिरता व्यक्तित्व

डॉ. राकेश सिंह\*

किशोरावस्था में बच्चों की कई तरह की आवश्यकताएँ होती हैं। वे स्वतंत्र रहना चाहते हैं व संवेगात्मक रूप से अपरिपक्व भी हैं। वे कम समय में बहुत कुछ पाने के अभिलाषा रखते हैं। इसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है।

किशोरावस्था एक विशेष अवस्था है जिसमें बालक के जीवन में शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा सामाजिक परिवर्तन होते हैं। यह वह अवस्था है जब नये-नये अनुभव, नये-नये उत्तरदायित्व, नये-नये सम्बन्ध व्यक्ति, वयस्कों एवं हम उम्र साथियों के साथ बनाता है। एक किशोर के लिये परिपक्व होना यानि वयस्कों के अधिकार एवं सुविधाएँ प्राप्त करना है।

आधुनिक समाज में एक किशोर में बाल्यकालीन शारीरिक-मानसिक लक्षण लुप्त हो जाते हैं व नये-नये लक्षण जन्म लेते हैं। इसलिए किशोरावस्था को परिवर्तन की अवस्था कहा जाता है।

हरलॉक (2001) ने इस अवस्था को 'संक्रमण' की अवस्था कहा है।

आधुनिकता के दौर में बालकों में कर्तव्यों, जिम्मेदारियों, विशेष अधिकारों, सामाजिक सम्बन्धों में बहुत परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में माता-पिता, सगे-सम्बन्धियों, संगी-साथियों के प्रति बदलता दृष्टिकोण उसके व्यक्तित्व को प्रभावित कर रहा है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व पर सामाजिक दबाव का प्रभाव पड़ता है। किशोर एवं किशोरियों की यह इच्छा रहती है कि उनके कार्य समाज द्वारा स्वीकृत और प्रशंसित किये जाए। इस अवस्था में हवाई कल्पना, दिवास्वप्न, महात्वाकांक्षा इत्यादि जैसी बातें दिखाई पड़ती हैं। किशोरावस्था में किशोर के आदतों एवं उनके माता-पिता तथा अभिभावकों के आदर्शों में टक्कर होने की संभावना प्रबल होती है।

किशोर अपनी योग्यता का प्रयोग करके अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये या किसी वस्तु विशेष की प्राप्ति के लिये किया गया कार्य, मस्तिष्क में उत्पन्न उस कल्पना के चिन्तन के फलस्वरूप होता है जो विचारों का निरीक्षण कर स्वतंत्र चर के प्रयोग की सहायता से उत्पन्न होता है और लक्ष्य प्राप्ति तक निरन्तर चलता रहता है।

किशोरों के व्यवहार का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने पर हम देखते हैं कि वह कुछ वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है, जबकि कुछ वस्तुओं से दूर भागने का प्रयत्न करता है। पहली दिशा में उसके व्यवहार सम्बन्धित वस्तु की ओर उन्मुख होते हैं जबकि दूसरी दिशा में उसके व्यवहार वस्तु के विपरीत दिशा में होते हैं। इस निरीक्षण से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किसी भी किशोर के व्यवहार समयानुसार स्वीकारात्मक अथवा निषेधात्मक, प्रेरक शक्ति द्वारा संचालित होते हैं।

प्राणी का व्यवहार समयानुसार स्वीकारात्मक अथवा निषेधात्मक प्रेरक शक्ति द्वारा संचालित होते हैं। व्यक्ति की आवश्यकताएँ स्वीकारात्मक शक्तियों के उदाहरण हैं। निषेधात्मक प्रेरक शक्ति के उदाहरण घृणा, आशंका आदि हैं। स्वीकारात्मक प्रेरक शक्ति के फलस्वरूप सम्बन्धित वस्तु अथवा परिस्थिति के प्रति आकर्षण का व्यवहार

\* फरीदुल हक मेमोरियल डिग्री कॉलेज, शाहगंज, जौनपुर

उत्पन्न होता है जबकि निषेधात्मक प्रेरक शक्ति के कारण सम्बन्धित वस्तु या परिस्थिति से पलायन की प्रवृत्ति तथा व्यवहार दिखाई देते हैं।

आवश्यकताओं की संतुष्टि के आधार पर मैस्लो ने 'आवश्यकताओं के क्रमिक विकास का सिद्धान्त' प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार निम्न स्तरीय आवश्यकताएं जैसे-जैसे संतुष्ट हो जाती हैं वैसे ही वैसे क्रमशः उच्च स्तरीय आवश्यकताएं विकसित होती जाती हैं।

व्यक्ति के मानसिक विकास तथा संस्कृतियों के उन्नयन के लिए संग्रह आवश्यक है। संग्रह न करने पर व्यक्ति प्रतिदिन अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता से ही ग्रस्त रहेगा फलस्वरूप उच्च मूल्यों तथा आवश्यकताओं का विकास न होने से सम्पूर्ण मानव जाति का विकास अवरुद्ध हो जायेगा।

सोरोकिन ने कुछ प्रमुख आवश्यकतायें बतायी हैं— जिज्ञासा आवश्यकता, संग्रहशीलता आवश्यकता, प्रतिष्ठा आवश्यकता, शक्ति आवश्यकता, आक्रमकता आवश्यकता, उपलब्धि आवश्यकता, अनुमोदन आवश्यकता, इत्यादि। किशोरावस्था में गिरते व्यक्तित्व में शहरीकरण की अहम भूमिका रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में किशोरों के रहन-सहन में उन्हें पर्याप्त शिक्षा, औपचारिक रोजगार, नगद काम और खाली समय जैसी सुविधाएं नहीं मिल पाती। इसके विपरीत बड़ी संख्या में युवाओं में निर्धनता के कारण नगरों की ओर पलायन से अनौपचारिक रोजगार या बेघर होकर रहने जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी है। कामकाजी बच्चों और किशोरों का आमतौर पर कम वेतन या बिना वेतन के काम करने पर स्वास्थ्य के लिये हानिकारक स्थितियों काम करने को मजबूर होना पड़ता है।

यूनिसेफ और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन ने आर्थिक शोषण को परिभाषित करते हुए घरों में निजी काम करवाने, जबरन मजदूरी करवाने और व्यावसायिक यौन शोषण जैसे कामों को शामिल किया है।

आज का किशोर आधुनिकता की ओर दौड़ा चला जा रहा है। उसका समाज, परिवार, सगे सम्बन्धियों से सम्बन्ध लगभग न के बराबर होता जा रहा है। वह कम समय में ज्यादा से ज्यादा अपेक्षा में रहता है। अपेक्षायें पूरी न होने पर मानसिक रूप से उसका व्यक्तित्व विघटित होता जा रहा है।

#### सन्दर्भ—सूची

1. सिंह, एस.के. (2004): इम्पैक्ट ऑफ पैरेंट चाइल्ड रिलेशनशिप आन डेवलपमेंट ऑफ सेल्फ-कान्सेप्ट
2. सिंह, आर.एस, (1972): समाज मनोविज्ञान
3. श्रीवास्तव, डी.एन, (2009): व्यक्तित्व का मनोविज्ञान
4. शर्मा, आर. (2002): व्यक्तित्व
5. सिंह, आर.पी. (2002): आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान
6. त्रिपाठी, आर. बी. एवं आर.एन. सिंह (2002): एडवांस सोशल साइकोलाजी
7. वर्मन, जी, (2005): किशोरावस्था।

\* \* \* \* \*

## **Growing Dimensions of Law of Rape in India : Legislative Consciousness and Judicial Activism**

***Dr. Abhishek Singh\****

Women's sexuality is just another important area of women's subordination and exploitation. This offence not only includes physical torture but also affects the mental status of women and is the crime which shakes the dignity of women and always puts women in question regarding her status and character. This crime also lays deep and unbearable effect on womanhood. The example of sexual offence is rape.

In the case of **State of Punjab v. Gurmit Singh**,<sup>1</sup> the Hon'ble Supreme Court considered rape as one of the most heinous crime in the society. A murderer destroys the physical body of the victim, a rapist degrades the very soul of the helpless female.

**Development in Criminal Law Relating to Rape :** Rape' as a clearly defined offence was first introduced in the Indian Penal Code in 1860. Prior to this, there were often diverse and conflicting laws prevailing across India. The codification of Indian laws began with the enactment of the Charter Act, 1833 by the British Parliament which led to the establishment of the first Law Commission under the chairmanship of Lord Macaulay.

The Law Commissioners decided to put the criminal law of the land in two separate codes. The first to be placed on the statute book was the Indian Penal Code formulating the substantive law of crimes. This was enacted in October 1860 but brought into force 15 months later on January 1, 1862

The second Code of Criminal Procedure was enacted in 1861, which consolidated the law relating to the set-up of criminal courts and the procedure to be followed in the investigation and trial of the offence.

Section 375 of the IPC made punishable the act of sex by a man with a woman if it was done against her will or without her consent. The definition of rape also included sex when her consent has been obtained by putting her or any person in whom she is interested, in fear of death or of hurt.

Also, sex with or without her consent, when she is under 18 years is considered rape. However, under the exception, sexual intercourse or sexual acts by a man with his wife, the wife not being under 15 years of age, is not rape.

Section 376 provided for seven years of jail term to life imprisonment to whoever commits the offence of rape.

**Circumstances leading to amendment in Rape Laws in the year 1983 :** For over a century after 1860, the criminal law relating to rape and sexual assault cases remained unchanged until the watershed incident of the Mathura custodial rape case<sup>2</sup>. On March 26, 1972 a young Adivasi girl named Mathura was allegedly raped by policemen in the Desai Gang Police Station in Maharashtra. In the trial that ensued, the sessions court came to the conclusion that she had sexual intercourse while at the police station but rape had not been proved and that she was habituated to intercourse.

While the sessions court acquitted both the policemen, the High Court reversed the order of acquittal. When the case reached the Supreme Court, it overturned the High Court verdict saying that "the intercourse in question is not proved to amount rape".

The top court, in its September 15, 1978 verdict, said no marks of injury were found on the girl after the incident and "their absence goes a long way to indicate that the alleged intercourse was a peaceful affair".

The controversial verdict sparked widescale protests across the country seeking a change in existing rape laws. This culminated into the Criminal Law (Second Amendment) Act of 1983. A new Section 114A in the Indian Evidence Act of 1872 was inserted which presumed that there is absence of consent in certain prosecutions of rape if the victim says so. This applied to custodial rape cases.

In the IPC, Section 228A was added which makes it punishable to disclose the identity of the victim of certain offences including rape.

\* *Assistant Professor (Law) Babu Jagjivan Ram Institute of Law, Bundelkhand University, Jhansi, (U.P.)*

**Tabular Form :** The Indian Penal Code, 1860 is a main and major substantive law that deals with crime in India. The development of rape law with reference thereto can be portrayed in a tabular form as following:—

1	2	3	4
Rape Law in 1925	Rape Law in 1949	Rape Law in 1983	Current Rape Law in 2013
<p><b>375.</b> A man is said to commit “rape” who, except in the case hereinafter excepted, has sexual intercourse with a woman under circumstances falling under any of the five following descriptions:  <i>First.</i>— Against her will.  <i>Secondly.</i>— Without her consent.  <i>Thirdly.</i>— With her consent, when her consent has been obtained by putting her in fear of death or of hurt.  <i>Fourthly.</i>— With her consent, when the man knows that he is not her husband, and that her consent is given because she believes that he is another man to whom she is or believes herself to be lawfully married.  <i>Fifthly.</i>— With or without her consent, when she is under fourteen years of age.  <i>Explanation.</i>— Penetration is sufficient to constitute the sexual intercourse necessary to the offence of rape.  <i>Exception.</i>— Sexual intercourse by a man with his own wife, the wife not being under thirteen years of age, is not rape.</p>	<p><b>375.</b> A man is said to commit “rape” who, except in the case hereinafter excepted, has sexual intercourse with a woman under circumstances falling under any of the five following descriptions:  <i>First.</i>— Against her will.  <i>Secondly.</i>— Without her consent.  <i>Thirdly.</i>— With her consent, when her consent has been obtained by putting her in fear of death or of hurt.  <i>Fourthly.</i>— With her consent, when the man knows that he is not her husband, and that her consent is given because she believes that he is another man to whom she is or believes herself to be lawfully married.  <i>Fifthly.</i>— With or without her consent, when she is under sixteen years of age.  <i>Explanation.</i>— Penetration is sufficient to constitute the sexual intercourse necessary to the offence of rape.  <i>Exception.</i>— Sexual intercourse by a man with his own wife, the wife not being under fifteen years of age, is not rape.</p>	<p><b>375.Rape.</b>—A man is said to commit “rape” who, except in the case hereinafter excepted, has sexual intercourse with a woman under circumstances falling under any of the six following descriptions:  <i>First.</i>— Against her will.  <i>Secondly.</i>— Without her consent.  <i>Thirdly.</i>— With her consent, when her consent has been obtained by putting her or any person in whom she is interested in fear of death or of hurt.  <i>Fourthly.</i>— With her consent, when the man knows that he is not her husband, and that her consent is given because she believes that he is another man to whom she is or believes herself to be lawfully married.  <i>Fifthly.</i>— With her consent, when, at the time of giving such consent, by reason of unsoundness of mind or intoxication or the administration by him personally or through another of any stupefying or unwholesome substance, she is unable to understand the nature and consequences of that to which she gives consent.  <i>Sixthly.</i>— With or without her consent, when she is under sixteen years of age.</p>	<p><b>375.Rape.</b>—A man is said to commit “rape” if he –  (a) Penetrates his penis, to any extent, into the vagina, mouth, urethra or anus of a woman or makes her to do so with him or any other person; or  (b) Inserts, to any extent, any object or a part of the body, not being the penis, into the vagina, the urethra or anus of a woman or makes her to do so with him or any other person; or  (c) Manipulates any part of the body of a woman so as to cause penetration into the vagina, urethra, anus or any part of body of such woman or makes her to do so with him or any other person; or  (d) applies his mouth to the vagina, anus, urethra of a woman or makes her to do so with him or any other person.  Under the circumstances falling under any of the following seven descriptions:  <i>First.</i>— Against her will.  <i>Secondly.</i>— Without her consent.  <i>Thirdly.</i>— With her</p>



<p><b>376.</b> Whoever commits rape shall be punished with transportation for life, or with imprisonment of either description for a term which may extend to ten years, and shall also be liable to fine, [unless the woman raped is his own wife and is not under thirteen years of age, in which case he shall be punished with imprisonment of either description for a term which may extend to two years, or with fine, or with both].</p>	<p><b>376.</b> Whoever commits rape shall be punished with imprisonment for life, or with imprisonment of either description for a term which may extend to ten years, and shall also be liable to fine, unless the woman raped is his own wife and is not under twelve years of age, in which case he shall be punished with imprisonment of either description for a term which may extend to two years, or with fine, or with both.</p>	<p><b>376.Punishment for rape.</b>— (1) Whoever, except in the cases provided for by subsection (2), commits rape shall be punished with imprisonment of either description for a term which shall not be less than seven years but which may be for life or for a term which may extend to ten years, and shall also be liable to fine unless the woman raped is his own wife and is not under twelve years of age, in which case, he shall be punished with imprisonment of either description for a term which may extend to two years, or with fine, or with both:</p> <p>Provided that the court may, for adequate and special reasons to be mentioned in the judgment, impose a sentence of imprisonment for a term of less than seven years.</p> <p>(2) Whoever:—</p> <p>(a) being a police officer commits rape—</p> <p>(i) within the limits of the police station to which he is appointed; or</p> <p>(ii) In the permission of any station house whether or not situated in police station to which he is appointed; or</p>	<p><i>Fourthly.</i>— With her consent, when the man knows that he is not her husband, and that her consent is given because she believes that he is another man to whom she is or believes herself to be lawfully married.</p> <p><i>Fifthly.</i>— With her consent, when, at the time of giving such consent, by reason of unsoundness of mind or intoxication or the administration by him personally or through another of any stupefying or unwholesome substance, she is unable to understand the nature and consequences of that to which she gives consent.</p> <p><i>Sixthly.</i>— With or without her consent, when she is under eighteen years of age.</p> <p><i>Seventhly.</i>— When she is unable to communicate consent.</p> <p>Explanation 1.— For the purpose of this section, “Vagina” shall also include labia majoria.</p> <p>Explanation 2.— Consent means an unequivocal voluntary agreement when the woman by words, gestures or any form of verbal or non-verbal communication, communication willingness to participate in the specific sexual act: Provided that a woman who does not physically resist to the act of penetration shall not by the reason only of that fact, be regarded as</p>
--	--	--	---

		<p>(iii) On a woman in his custody or in the custody of a police officer subordinate to him; or</p> <p>(b) being a public servant, takes advantage of his official position and commits rape on a woman in his custody as such public servant or in the custody of a public servant subordinate to him; or</p> <p>(c) being on the management or on staff of a jail, remand home or other place of custody established by or under any law for the time being in force or of a women's or children institution takes advantage of his official position and commits rape on any inmate of such jail, remand home, place or institution; or</p> <p>(d) being on the management or on the staff of a hospital, takes advantage of his official position and commits rape on a woman in that hospital; or</p> <p>(e) commits rape on a woman knowing her to be a pregnant; or</p> <p>(f) commits rape on a woman when she is under twelve years of age; or</p> <p>(g) commits gang rape, shall be punished with rigorous imprisonment for a term which shall not be less than ten years but which may be for life and shall also be liable to fine:</p> <p>Provided that the Court may, for adequate and special reason to be mentioned in the judgment, impose a sentence of imprisonment of either description for a term of less than ten years.</p> <p>Explanation 1— Where a woman is raped by</p>	<p><b>376. Punishment for rape,—(1)</b> Whoever, except in the cases provided for in subsection (2), commits rape, shall be punished with rigorous imprisonment of either description for a term which shall not be less than seven years, but which may extend to imprisonment for life, and shall also be liable to fine.</p> <p><b>(2) Whoever,—</b></p> <p>(a) being a police officer, commits rape—</p> <p>(i) within the limits of the police station to which such police officer is appointed; or</p> <p>(ii) in the premises of any station house; or</p> <p>(iii) on a woman in such police officer's custody or in the custody of a police officer subordinate to such police officer; or</p> <p>(b) being a public servant, commits rape on a woman in such public servant's custody or in the custody of a public servant subordinate to such public servant; or</p> <p>(c) being a member of the armed forces deployed in an area by the Central or a State Government commits rape in such area; or</p> <p>(d) being on the management or on the staff of a jail, remand home or other place of custody established by or under any law for the time being in force or of a women's or children's institution, commits rape on any inmate of such jail, remand home, place or institution; or</p>
--	--	--	--

			<p>(n) commits rape repeatedly on the same woman, shall be punished with rigorous imprisonment for a term which shall not be less than ten years, but which may extend to imprisonment for life, which shall mean imprisonment for the remainder of that person's natural life, and shall also be liable to fine.</p> <p>Explanation.— For the purposes of this subsection,—</p> <p>(a) "armed forces" means the naval, military and air forces and includes any member of the Armed Forces constituted under any law for the time being in force, including the paramilitary forces and any auxiliary forces that are under the control of the Central Government or the State Government;</p> <p>(b) "hospital" means the precincts of the hospital and includes the precincts of any institution for the reception and treatment of persons during convalescence or of persons requiring medical attention or rehabilitation;</p> <p>(c) "police officer" shall have the same meaning as assigned to the expression "police"</p>
--	--	--	---

**Presumption as to absence of consent in certain prosecutions for rape :** In a prosecution for rape under clause (a) or clause (b) or clause (c) or clause (d) or clause (e) or clause (g) of subsection (2) of section 376 of the Indian Penal Code 1860, where sexual intercourse by the accused is proved and the question is whether it was without consent of the woman alleged to have been raped and she states in her evidence before the court that she did not consent, the court shall presume that she did not consent.

A careful perusal of the section 114A of the Evidence Act, 1872 reveals that the legislature has made a fine distinction between:-

- (i) Rape falling within sub-section (1) to section 376, and subsections (2) clause (f), 3 and
- (ii) Rape falling within clauses (a), (b), (c), (d), (e) and (g) of sub-section (2) to section 376 I.P.C..

In the former case of rape, the principle that the accused is innocent unless it is proved beyond reasonable doubt by the prosecution that the accused committed the rape crime is applicable. In other words, the onus is on the prosecution to prove affirmatively each and every ingredient of the offence and it never shifts on the defence.

On the other hand, in the later case of custodial rape committed by a police officer, clause (a); by a public servant, clause (b); by a superintendent of jail, remand home etc, clause (c); by the management or staff a hospital, clause (d); a pregnant woman, clause (e); and in case of gang rape, clause (g); a drastic change has been made. The burden in such cases shifts on the accused to prove that the act was done with the consent of the prosecutrix.

**Corroboration not sine qua non for conviction-** The Supreme Court of India has, also, on more than one occasion said that corroboration is not the sine qua non for a conviction in a rape case.

In **Bharwada Bhoginbhai Hirjibhai Vs State of Gujrat** 4 the appellant was found guilty of serious charges of sexual misbehaviour with two young girls aged about ten or twelve years. He was convicted by Session Court as well as the High Court for attempt to rape under section 376 read with section 511 I.P.C, outraging the modesty of woman (section 354 I.P.C.) and wrongful confinement (section 342 I.P.C.).

The Court outlined the following reasons for not insisting on corroboration in case of sexual assault or rape:-

A girl or a woman in the tradition bound non-permissive society of India would be extremely reluctant even to admit that any incident which is likely to reflect on her chastity had ever occurred.

She would be conscious of the danger being ostracised by the society or being looked down by the society including by her own family members, relatives, friends and neighbours.

She would have to brave the whole world.

She would face the risk of losing the love and respect of her own husband and near relatives, and of her matrimonial home.

If she is unmarried she would apprehend that it would be difficult to secure an alliance with a suitable match from a respectable or an acceptable family.

It would be almost inevitably and also invariably result in mental torture and suffering to herself.

The fear of being taunted by others will always haunt her.

She would feel extremely embarrassed in relating the incident to others being overpowered by a feeling of shame on account of the upbringing in a tradition bound society where by and large sex is taboo.

The natural inclination would be to avoid giving publicity to the incident lest the family name and family honour is brought into controversy and disrepute.

The parents of an unmarried girl as also the husband and members of the husband's family of a married woman would, also, more often than not, want to avoid publicity on account of the fear of social stigma on the family name and family honour.

The fear of the victim herself being considered to be promiscuous or in some way responsible for the incident regardless of her innocence.

The reluctance to face interrogation by the investigating agency, to face the court, to face the cross examination by counsel for the culprit and the risk of being disbelieved, act as a deterrent.

**Criminal law (Amendment) Act, 2013 :** The nationwide public outcry, in 2012, following the December 16 “NIRBHAYA” gang rape and murder in Delhi, led to the passing of the Criminal Law (Amendment) Act in 2013 which widened the definition of rape and made punishment more stringent.

Parliament made the amendments on the recommendation of the Justice J.S. Verma Committee, which was constituted to re-look the criminal laws in the country and recommend changes.

The 2013 Act, which came into effect on April 2, 2013, increased jail terms in most sexual assault cases and also provided for the death penalty in rape cases that cause death of the victim or leaves her in a vegetative state.

It also created new offences, such as use of criminal force on a woman with intent to disrobe, voyeurism and stalking.

The punishment for gang rape was increased to 20 years to life imprisonment from the earlier 10 years to life imprisonment.

Earlier, there was no specific provision in law for offences such as use of unwelcome physical contact, words or gestures, demand or request for sexual favours, showing pornography against the will of a woman or making sexual remarks. But, the 2013 Act clearly defined these offences and allocated punishment.

Similarly, stalking was made punishable with up to three years in jail.

The offence of acid attack was increased to 10 years of imprisonment.

**Trial in open Court :** Section 327 of Code of Criminal Procedure 1973, stipulates that a trial should be in an open court where the general public should have access to it. A majority of rape cases went unreported because of this section of Cr.P.C. In a number of cases, the trauma of humiliation in the process of cross-examination was unbearable. Also in certain cases, the projection of rape victims as offenders by glamorising the offender and romanticising the victim cast aspersions on the victim. In such cases a balance had to be maintained between freedom of speech and expression and preserving the dignity of woman as well as giving a fair trial.<sup>5</sup>

**Criminal Law (Amendment) Act, 2018 :** In January 2018, an eight-year-old girl in Rasana village near Kathua in Jammu and Kashmir was abducted, raped and murdered by a group of men. The news of the shocking act led to nationwide protests and calls for harsher punishment.

This led to the passing of the Criminal Law (Amendment) Act, 2018 which for the first time put death penalty as a possible punishment for rape of a girl under 12 years; the minimum punishment is 20 years in jail.

Another new section was also inserted in the IPC to specifically deal with rape on a girl below 16 years. The provision made the offence punishable with minimum imprisonment of 20 years which may extend to imprisonment for life.

The minimum jail term for rape, which has remained unchanged since the introduction of the IPC in 1860, was increased from seven to 10 years.

**Gender Neutrality and Rape Laws :** Following the direction of the Supreme Court in a public interest litigation (PIL) initiated by a non-governmental organisation to widen the definition of sexual intercourse in Section 375 of the IPC, the Law Commission in its 172nd report recommended widening the scope of rape law to make it gender neutral.

While the rape law in India even today remains gender specific, as the perpetrator of the offence can only be a ‘man’, the 172nd report led to the amendments in the Indian Evidence Act in 2002.

A proviso was inserted in the Section 146 of the Indian Evidence Act, 1872 which barred putting questions in the cross-examination of the victim as to her general ‘immoral character’ in rape or attempt to rape cases.

**Conclusion :** In Indian society, rape is an example of degradation to the women, Rape victim and her family members suffers from continuous trauma and social humiliation. Due to social stigma they make every possible effort to hide the event if there is no witness to it, Our society is so conservative that the chances of marriage of such girls are completely ruined. They are hated by their own near and dear ones and losses

moral supports Many women lose their health,livelihoods,society support and above all desire to live as a result of this heinous crime.

Within and outside the parliament there has been a consistent demand not only to make the law more stringent but also quick in delivering the justice to the victim. Recent cases of rape and murder of veterinarian in Hyderabad on November 28,2019 and the burning of rape survivor in Unnao on December 05,2019 has once again raised the debate of stringent, expeditious and sympathetic judicial system for such heinous crime to make it a great deterrent for offender and maintain the people's faith in the judicial system. Strictly implemented harsh laws would surely be helpful in curbing the crime against women in general and rape in particular.

This must be complemented by empathic and supportive behaviour of society towards victim and his families and extend all required support to get the justice by way of protection, rehabilitation and adequate compensation.

### BIBLIOGRAPHY

1. Ahuja, Ram., "Crime Against Women", Rawat Publication Jaipur Ed. 1988.
2. Atary, J.P., "Crime Against Women", Vikas Publishing House, Pvt. Ltd. Delhi, Ed. 1988.
3. Dabash and Dabash., "Violence Against Wives", London open Book, Ed.1980.
4. Dewan, V.K., "Law Relating to offence against Women", Orient Law House, New Delhi, Ed. 1996.
5. Gaur, K.D., "A Text Book on the India Penal Code", Universal Law Publishing Company, Delhi Ed. 2008
6. Kelkar's, R.V., "Criminal Procedure", Eastern Book Company, Lucknow Ed. 2019.
7. Maswood, Dr. Syed., "Laws Relating to Women", Orient Law House, New Delhi, Ed. 2004.
8. Mishra, S.N., "Indian Penal Code" Central Law Publication Allahabad, Ed. 2019.
9. Mishra, Preeti, "Domestic Violence Against Women", Legal Control & Judicial Response, Deep & Deep Publications Pvt. Ltd., New Delhi, Ed. 2007.
10. Pillai,PSA, "Criminal Law" Lexis Nexis,14 Ed.2019.
11. Rao, Mamta, "Law Relating To Women & Children", Eastern Book Company Lucknow, Ed. 2005.
12. Ratan Lal Dhiraj Lal, "The Law of Crimes", 7th Ed. 1948.
13. Tripathi, Dr. S.C., "Women and Criminal Law", Central Law Publications, Allahabad Ed. 2010.

### REFERENCE

1. (1995)2 SCC. 384.
2. Tukaram v. State of Maharashtra .AIR 1979 SC 185
3. Section 376(2) (f) states "whoever commits rape on a woman when she is under twelve years of age".
4. AIR 1983 SC 753.
5. Rao, Mamta, "Law relating to women and children" Eastern Book Company, Lucknow, Ed. 2010, p-94

\* \* \* \* \*

## भारतीय सौन्दर्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शशी रॉय\*

सौन्दर्य चेतना मनुष्य का नैसर्गिक गुण है। सौन्दर्य प्रेम मनुष्य की मानवता का प्रतीक है। प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य बन्धन ने मनुष्य को सहज ही बांध लिया और सौन्दर्य को मानव जीवन में अवतरित करने की प्रेरणा दी।<sup>1</sup>

भारतीय वाङ्मय में पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र की प्रमुख अवधारणा 'ब्यूटी' के स्थान पर सौन्दर्य शब्द को ग्रहण किया गया है। भारतीय साहित्य में सौन्दर्य की मीमांसा प्राचीन काल से होती आई किन्तु सौन्दर्य की अवधारणाएँ तथा शब्द भिन्न रहे हैं। प्राचीन काल से सौन्दर्य की चर्चा वेदों, ग्रन्थों आदि में सौन्दर्य के पर्याय शब्दों व उक्तियों में प्राप्त होते आए हैं।

इतिहासकारों का अनुमान है कि आदिम अवस्था से लेकर के मोहनजोदड़ो और हड़प्पा तक की कालावधि में 'शिव चेतना' का आविर्भाव हुआ। मोहनजोदड़ों सभ्यता में प्राप्त शिव-मूर्तियाँ, प्रतिमाएँ, शैव सभ्यता को प्रदर्शित करते हैं। ये शिव ही आज हमारे भीतर सरल, तरल, असीम, स्वच्छन्द व अत्यधिक आनन्द के प्रतीक बनकर जीवित है।

वैदिक काल में जीवन के प्रति आनन्द और उत्साह की भावना है परन्तु इसमें दिव्यता और आध्यात्मिकता की गहरी छाप है। वेदों में सुन्दर और सौन्दर्य शब्द तो नहीं मिलते किन्तु कुछ पर्याय-रूप, रूचिर, रवण, प्रिय, श्रिय आदि मुक्त रूप से प्रयोग हुए हैं। वैदिक साहित्य में चित्र, तक्षण (नक्काशी कला) तथा वयन (बुनाई-कढ़ाई) जैसे कलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में 'श्री' शब्द का प्रयोग सौन्दर्य के लिए विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। ऋग्वेद में काव्य के रागात्मक (हार्दिक) तथा शैक्षिक दोनों पक्षों पर समान रूप से चर्चा की गई है। वेदों में संगीत (नाद ब्रह्म) का विस्तृत उल्लेख किया गया है। जिसके आधार पर शनैः-शनैः संगीत व संगीत शास्त्र का विकास हुआ।

वहीं उपनिषद् का मुख्य विषय है-आत्म विद्या अर्थात् आत्म चिंतन का काव्य। उपनिषद् के कविता में कवि की दृष्टि मात्र आत्म के सौन्दर्य के प्रति ही उन्मुख थी। उपनिषद् में जिस सौन्दर्य की प्राप्ति होती है उसके दो लक्षण प्राप्त होते हैं-(1) प्रकाश (2) आनन्द (रस)<sup>2</sup>

रामायण एक काव्य ग्रंथ है अतः सौन्दर्य का वर्णन कवि ने अधिक मात्र में की है। इसमें सुन्दर के लिए रमणीय, रम्य, श्रीमंत, चारु, शुभदर्शित आदि पर्याय शब्द का प्रयोग अधिक हुआ है। रामायण काल में प्रायः समस्त ललित कलाओं का उल्लेख मिलता है, अयोध्या, किष्किन्धा तथा लंका आदि नगरियों का प्रसंग किया गया है। वहां स्थापत्य, मूर्ति कला व चित्रकला का वर्णन तथा राज-वैभव के प्रसंगों में नृत्य एवं वाद्यकला का उल्लेख प्राप्त होता है। रामायण काल के कवियों ने समस्त कला के रूपों का मनोयोग एवं उच्छ्वास के साथ वर्णन किया। इस काल में प्राकृतिक सौन्दर्य, मानव-सौन्दर्य तथा रूप व कलागत सौन्दर्य का वर्णन मिलता है।

महाभारत को भारत विद्या का विश्वकोश माना जाता है रामायण में प्राप्त सुन्दर के प्रायः सभी पर्यायों का मुक्त प्रयोग महाभारत काल में भी किया गया है। इस काल में कवि ने प्राकृतिक चित्रों में सौन्दर्य के सभी प्रमुख तत्वों, वर्ण-वैभव, दीप्ति, निर्मलता, वैचित्र्य आदि का अत्यन्त उच्छ्वास के साथ वर्णन किया है। कला सौन्दर्य में वाणी अर्थात् काव्य में चमत्कार के अतिरिक्त गायन, नृत्य, चित्र, स्थापत्य आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है। अर्जुन ने चित्रसेन से गीत की शिक्षा प्राप्त की थी तथा अर्जुन वाद्य (वीण के उत्तम वादक) और नृत्य कला में प्रवीण थे। कृष्ण जो मधुर बांसुरी बजाने के लिए प्रसिद्ध थे। महाभारत कला-सौन्दर्य के मुख्य दो अंग हैं:- (1) दर्शन अर्थात् मानसिक बिम्बविधान (कल्पना करने की क्षमता) (2) वर्णन अर्थात् बाह्य साधनों द्वारा उसका रूपायण करना।

\* शोधार्थी, ( जे.आर.एफ. ), संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज



हमारा उपलब्ध दर्शन साहित्य बौद्ध धर्म के अविर्भाव से पूर्व हुआ या नहीं यह अभी तक निश्चय नहीं हुआ है किन्तु शास्त्रकारों का अनुमान है कि साहित्य के प्रस्थान तथा सूत्र-ग्रन्थों से पूर्व ही दार्शनिक विषयों पर चिंतन-मनन किया जा रहा है। बौद्ध धर्म ने मनुष्य को एक नवीन-चेतना दी। बौद्ध धर्म ने जीवन के लिए शून्यता रूप आदर्श को प्रस्तुत किया किन्तु इस शून्यता रूप के तरल धारा में रस, आनन्द और सौन्दर्य के वैभव की उत्पत्ति की। बौद्ध धर्म की दर्शन चेतना ने शून्यता से निराकार ब्राह्म को स्थापित किया, निर्वाण का स्थान मोक्ष तथा वैराग्य का स्थान संन्यास ने ग्रहण कर लिया। भारत के इतिहास में स्वर्ण युग कहे जाने वाला 'गुप्त काल' युग के राजा आषोक बौद्ध धर्म से अत्यधिक प्रभावित थे। इस काल में देश की आनन्द चेतना व उर्वर प्रतिभा अपने चरम सीमा पर थी फलस्वरूप इस काल में बुद्ध मूर्तियाँ, गुहा चित्रों में शान्ति व ध्यान मुद्रा, अजन्ता-एलोरा के चित्र व भित्तिचित्र, सोमनाथ में बुद्ध की मूर्तियाँ आदि प्राप्त होती हैं।

वात्स्यायन जो एक प्राचीन दार्शनिक है उनका समय गुप्तवंश काल को (6वीं-8वीं शताब्दी) माना जाता है। इन्होंने 'कामसूत्र' एवं 'न्याय सूत्र' की रचना की। 'कामसूत्र' में मात्र दाम्पत्य जीवन के श्रृंगार का वर्णन ही नहीं अपितु यह समस्त कलाओं के विश्वकोषात्मक ग्रंथ के रूप में मान्य है। इस काल में रचित यह प्रथम ग्रंथ है जिसमें सर्वप्रथम 64 कलाओं का वर्णन क्रमबद्ध रूप से किया गया है।

इस प्रकार गुप्त युग की पल्लवित और पुष्पित आनन्द चेतना, शाखाओं में विभाजित होने लगी। धार्मिक भावना और आनन्द भावना में अन्तर उत्पन्न होने लगा। एक दिशा में मन्दिरों और मूर्तियों, अवतार और जातक के कथानकों का अंकन प्रगति के पथ पर था वहीं दूसरी दिशा में केवल सौन्दर्य के आस्वादन के लिए सुन्दरी और उनकी लीला और विलासो का ललित कला के रूप में सृजन हो रहा था।

राजपूत राजाओं की विलास-प्रियता के कारण सौन्दर्य चेतना और उसमें उत्पन्न होने वाली कला भी विलासनी हो गई थी। इसी समय जब मुस्लिमों ने धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक व संस्कृति पर आक्रमण किया तो राष्ट्र के ऐतिहासिक प्रवाह पर भारी आघात पहुँचा। मुस्लिम तथा हिन्दू संस्कृतियाँ अपने अस्तित्व को भुलाकर एकत्रित रूप में नहीं रह पाईं तथापि साथ रहने की आवश्यकता ने अवश्य रूप से ही दोनों में रूपान्तर कर दिया। इस काल के जीवन में तीन स्पष्ट धाराएँ देखने को मिलती हैं—

(क) इस प्रथम धारा को हम 'राजसीधारा' कहेंगे। इस जीवन स्तर में आध्यात्मिक गम्भीरता, दार्शनिक की दृष्टि अथवा धार्मिक भावों में सरलता व सहृदयता स्पष्ट रूप से कहीं भी दिखाई नहीं दी किन्तु इस समयावधि में सैकड़ों की संख्या में बने विभिन्न स्मारक, समाधि, महल विशेष रूप से ताजमहल सौन्दर्य की सृष्टि करने में पूर्णतः सफल हुए।

(ख) राजसी धारा से एक और धारा प्रवाहित हो रही थी जिसका मुख्य उद्देश्य था मनोरंजन और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कलाएँ कार्यरत थी। इसी काल में संरक्षित दरबारी कलाकारों के संरक्षण में संगीत की सरसता और कोमलता की प्रधानता का विकास हुआ। इस काल की गायन पद्धति रस प्रधान रही। ध्रुपद, खयाल, तुमरी जैसे कई गायन शैली का विकास इसी कालक्रम में हुआ।

(ग) तीसरी धारा वह है जिसका सम्बन्ध न राजाओं के मनोरंजन से था न शासकों के आतंक से था यह मात्र जीवन से सम्बन्धित था, लोकाराधना ही इसका एकमात्र उद्देश्य था। इसमें वैदिक की गम्भीरता व दिव्यता थी, महाभारत काल की दार्शनिक दृष्टि, रामायण, काल की आदर्शवादिता और मार्मिकता, राधा-कृष्ण के निस्वार्थ प्रेम भावनाएं व पवित्रता थी। इस काल की चेतना सूर, तुलसी और मीरा के पदों के रूप में आज भी पुष्पित व पल्लवित हो रही है।

हमने देखा है कि हमारे सामूहिक जीवन की जाह्नवी में अनेकों दिशाओं से अनेक धाराएं आकर मिल गई हैं। हमारी चेतना में आदिम मनुष्य की स्वच्छन्द आनन्द की भावनाएं से लेकर, युगों के इतिहास के अनन्तर मुगल कालीन वैभव और विलास की भावना सभी विद्यमान हैं, वर्तमान युग की समष्टि चेतना के पीछे युगों का इतिहास है। सदैव से ही हमारे जीवन की धार्मिक भावनाएँ, सामाजिकता, राजनैतिक स्थिति व नैतिकता एक ही सूत्र में गुँथे रहे हैं जिसका अर्थ है कि हमारा दृष्टिकोण सदैव ही आध्यात्मिक रहा है, इसी आध्यात्मिक स्वरूप को समझने

का प्रयास ही भारतीय दर्शन है। हमारी सौन्दर्य चेतना प्रकृति की अलौकिका व आध्यात्मिक रूप से उत्पन्न आनन्दोनुभूति है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण हमने कला में अनुकरण को मात्र महत्व न देकर अभिव्यक्ति तथा अनुकरण को विशेष महत्व दिया। सौन्दर्य चेतना आध्यात्मिक होने के कारण हमारी सौन्दर्य अनुभूति का स्वरूप धन्यात्मक रहा है। इसका अर्थ है कि सौन्दर्य का आस्वादन हम नेत्रनिमलिन करके केवल कानों से ध्वनि के रूप में करते हैं। सुन्दर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ और चित्रों का रसास्वादन हम ध्यानस्थ होकर करते हैं। इसमें ध्यान से भावों को हृदयगम करने पर ये वस्तुएँ सुन्दर और आनन्द की चेतना को जागृत करती हैं। सूर्य का सप्ताश्व रथ, ब्रह्मा का चतुर्मुखी स्वरूप, भगवान का वराह के रूप में अवतार, कृष्ण का अनुपम मानव-सौन्दर्य, विष्णु का नाभि कमल, इत्यादि को ध्यान-पूर्वक देखने से प्रकृति के दिव्यस्वरूप का उद्घाटन होता है और चित्त का सौन्दर्यानुभूति।<sup>4</sup>

भारतीय सौन्दर्य इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात अवश्य होता है कि भारतीय मनीषियों व दार्शनिक ने धार्मिक व सौन्दर्य की अनुभूति सदैव एक ही मानी गई है तथा सौन्दर्य का सम्बन्ध सदैव ललित कला से समझा गया जो रस और आनन्द की अनुभूति का माध्यम है और यह युगों-युगों से अलग-अलग अर्थों व कलाओं से मिलता आ रहा है तथा कलान्तर संशोधित होते हुए आज वर्तमान समय में सौन्दर्य का अध्ययन रस-सिद्धान्त पर आधारित माना गया है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भटनागर मधुरलता, भारतीय संगीत का सौन्दर्य विधान, मोती लाल बनारसीदास, पृ. 1-2
2. शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन (आलोचन और अनुशीलन), मोती लाल बनारसीदास, पृ. 5
3. लाल शर्मा, हरद्वारी, सौन्दर्यशास्त्र-कला एवं संगीत के संदर्भ में, मानसी प्रकाशन 39, कैलाशपुरी मेरठ, पृ. 29
4. वही, पृ. 30
5. भार्गव सरोज, सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ, कला प्रकाशन वाराणसी
6. चतुर्वेदी ममता, सौन्दर्य शास्त्र (पाश्चात्य एवं भारतीय), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

\* \* \* \* \*

## भारतीय संगीत की अप्रचलित तालें

डॉ. नन्दिनी मुखर्जी\*

भारतीय संगीत का प्राण ताल है और ताल के दस प्राण— काल, मार्ग, क्रिया अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार है। जिस प्रकार एक वृक्ष अपने पूर्ण आकार को विभिन्न प्रकार के चरण पूरा करते हुए पाता है, ठीक उसी प्रकार ताल सम्बन्धी कोई भी क्रिया दस प्राणों के समन्वय से ही सम्पूर्ण हो पाती है। संगीत में समय नापने के साधन को ताल कहते हैं। संगीत के दो आधार स्तम्भ हैं स्वर तथा लय। इनके आधार पर संगीत की रचना होती है। लय का निर्वाह करने के लिये भारतीय संगीत में तालों की कल्पना की गयी। भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र में पाँच मार्गी तालों का नाम प्राप्त होता है—चच्चत्पुट, चाचपुट, षट्पितापुत्रक, सम्पक्वेष्टाक और उदघट्ट। इनमें से प्रथम दो प्रमुख हैं और यही दोनों चतुस्त्र और तिस्र के प्रतिनिधि ताल माने जाते हैं। परवर्ती आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थ में ताल के सम्बन्ध में भरत मतों का अनुकरण किया है। किन्तु मध्यकाल के पूर्वाद्ध तक परिस्थितियाँ लोक रुचियाँ आदि बदल चुकी थी। मार्गी तालें अप्रचलित होने लगी थी और उनका स्थान देशी तालें ग्रहण करने लगी थी। 13वीं शताब्दी में पं० शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में अप्रचलित होती मार्गी तालों के साथ देशी तालों का विस्तार पूर्व वर्णन किया है।

13वीं, 14वीं शताब्दी के दौरान दक्षिण भारत में कर्नाटक संगीत में सप्तसूलादि तालों के साथ देशी तालों का प्रयोग आरम्भ हुआ। उस समय की 350 तालों में मात्र कुछ तालों का ही प्रयोग व्यवहारिक रूप से होता है, क्योंकि कुछ तालों की मात्रा इतनी अधिक व क्लिष्ट होने के कारण वह प्रचार में नहीं आ सकी और अप्रचलित हो गई। भारतीय संगीत में ध्रुपद—धमार शैली प्राचीन काल से अस्तित्व में है जिसमें सारा कार्य पूर्व निश्चित होता है। इसीलिये ध्रुपद—धमार अधिक मात्रा वाली तालों में गाया बजाया जाता रहा है। चूंकि ध्रुपद धमार अधिक क्लिष्ट लय में गाने का प्रावधान नहीं है, अतः अधिक मात्रा वाली तालों का प्रयोग होता रहा। सम्भवतः इसी क्रम में कठिन व विषम तालों को प्रयोग में लाया गया। ध्रुपद धमार शैली में प्रायः ताली देकर गाने का चलन रहा है। तालें आसानी से याद हो जाती रही होगी तथा बन्दिशों को मूल रचना एक होने से ध्यान व एकाग्रता में व्यवधान नहीं आता रहा होगा। समय के परिवर्तन के साथ संगीत में भी परिवर्तन हुआ और ख्याल शैली का जन्म हुआ जो ध्रुपद धमार से पूर्णतया भिन्न थी। स्वर लगाने का तरीका एवं बन्दिशों की रचना एकदम अलग प्रकार से की गयी। यह कल्पनाशील गायकी थी तथा क्लिष्ट लय में निबद्ध होने के कारण इसके साथ संगत के लिये कम मात्रा की तालों को चुना गया। ख्याल ध्रुपद—धमार की तरह लयकारी प्रधान नहीं थी। अतः समसामयिक तालों को इस कार्य के लिये चुना गया। ख्याल प्रायः 16, 14, 12, 10 और कभी—कभी 7 मात्रा अर्थात् रूपक ताल में गाना बजाया जाता है। डा० मनोहर भालचन्द्रराव मराठे के अनुसार “काल स्थिति और परिस्थिति के कारण संगीत में विभिन्न तालों का निर्माण प्रचलन एवं विकास होता रहा है।” अतः यह स्पष्ट है कि काल, स्थान व परिस्थिति में परिवर्तन होने से तालों के निर्माण व विकास की प्रक्रिया प्रभावित होती है। तालों का अप्रचलित होने का कारण है उसका अव्यवहारिक होना जैसे तालों की क्लिष्ट गणितीय संरचना, उसका निश्चित बौद्धिक वर्ग तक सीमित होना तथा जन सामान्य द्वारा सहजता से ग्रहण व प्रयोग में न ला पाना तथा वर्तमान में प्रचलित गीत शैलियों में संगत हेतु उन तालों का प्रयोग न हो पाना आदि शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त क्लिष्ट तालें बौद्धिक आनन्द देती हैं तथा रसानुभूति भी कराती हैं परन्तु एक सीमित बौद्धिक वर्ग को जन सामान्य को नहीं। चूंकि जन सामान्य क्लिष्ट तालों को सरलता से ग्रहण नहीं कर पाता इसीलिये नई पीढ़ी में उसका हस्तांतरण नहीं कर पाता, जिस कारण उसकी परम्परा निर्मित

\* एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत वादन ( तबला ), जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

नहीं हो पाती और वे अप्रचलित तालों की श्रेणी में आ जाती है। डॉ० अरुण कुमार सेन के अनुसार “अधिकांश प्राचीन तालों की समाप्ति का प्रमुख कारण उनके संगीत की आज की स्थिति में अव्यावहारिकता है। उल्लेखनीय है कि प्राचीन पाँच मार्ग तालों में दो की छः मात्रा है, एक की आठ मात्राएँ एवं शेष दो की बारह मात्रायें थी। यह स्वाभाविक है कि इन मात्राओं में निबद्ध गीत, उन क्लिष्ट बौद्धिक लयात्मक कल्पनाओं से दूर रहे होंगे, जिनका विकास देशी अथवा खण्ड तालों में हुआ। 2 1/4 मात्राओं का प्राचीन निःसारुक ताल, 1 1/4 की नवव्रीड ताल, 5 1/4 का मल्ल ताल, 3 3/4 का तृतीय ताल 9 3/4 का लक्ष्मीश ताल (भरतार्णव) तालात्मक प्रयोग के प्राचीन उदाहरण हैं जिनका वर्तमान संगीत में पूर्णतः त्याग किया जा चुका है।”<sup>1</sup>

प्रो० हरीश झा के अनुसार “तबला जगत में शीर्ष पर विराजमान कुछ तबला वादकों ने विषम तालों को प्रचलित करने के लिये कैसेट्स व सीडी0 को संगीत के श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया। एक तरफ 9 मात्रा, 18 मात्रा, 21 मात्रा तथा 28 मात्रा की तालों को तो दूसरी तरफ 9, 11, 13 एवं 9 1/2 मात्राओं की तालों में विभिन्न प्रकार की रचना व पेशकर। इन कलाकारों ने यह दिखाया कि इन तालों को ग्रहण करना कोई दुष्कर कार्य नहीं है। बस इस दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता है। सुधी श्रोता निश्चित रूप से संगीतज्ञों से कुछ नया एवं विलक्षण पाने की आशा रखते हैं, अतः कोई ताल अप्रचलित कहलाने योग्य न रहे यह हम संगीत के विद्यार्थियों का परम कर्तव्य होना चाहिए।”<sup>2</sup>

अप्रचलित तालों की उपयोगिता क्या है इस पर विद्वानों के विभिन्न मत हो सकते हैं किन्तु अप्रचलित तालें प्राचीन संगीत की धरोहर है, अतः इनका संरक्षण आवश्यक है ताकि हम अपने प्राचीन संगीत एवं उसमें प्रयुक्त ताल पद्धति की विशेषताओं के अध्ययन का लाभ ले सकें। वर्तमान में अप्रचलित तालों को संरक्षण तबला एवं पखावज विषय के स्नातक व स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत मिलता है, जहाँ विभिन्न अप्रचलित तालों मत्तताल, रुद्रताल, मणिताल, बड़ी सवारी ताल, अष्टमंगल ताल, फरोदस्त ताल, शिखर ताल, कैद फरोदस्त ताल, विष्णु ताल, लक्ष्मी ताल, गणेश ताल, ब्रह्म ताल आदि का अध्ययन कराया जाता है। अप्रचलित तालों का अध्ययन एवं परीक्षा प्रतियोगिता में प्रतिवर्ष उनके वादन की पुनरावृत्ति होने से इन तालों को कुछ जीवन्तता मिली है।

संगीत में नये तालों का निर्माण होना, उनका विकास सहजता से होना उनका तत्कालीन संगीत में प्रचलित होना तथा उनकी उपयोगिता व लोकप्रियता घटने पर अप्रचलित हो जाना एक सामान्य प्रक्रिया है। अतः संगीत से जुड़े सुधी जनों का अप्रचलित तालों के संरक्षण के उपाय भी करने चाहिये तथा नवीन तालों व उनके नवीन प्रयोगों को भी स्वीकार करना चाहिये। भारतीय संगीत में क्लिष्ट तालों को जीवित रहने का एवं बौद्धिक चमत्कार व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार है।

#### सन्दर्भ सूची

1. सेन डा० अरुण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचना मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पृ०सं० 79, 1989
2. श्रीवास्तव, डा० संगीता सम्पादिका, उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में ताल एवं लय, समवेत प्रकाशन, कानपुर, प्रो० झा हरीश का लेख—पृ० सं० 174—175, 2012

#### सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सेन डा० अरुण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचना मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पृ०सं० 79, 1989
2. श्रीवास्तव, डा० संगीता सम्पादिका, उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में ताल एवं लय, समवेत प्रकाशन, कानपुर, प्रो० झा हरीश का लेख—पृ० सं० 174—175, 2012
3. पटेल, यमुना प्रसाद, ताल वाद्य परिचय, प्रिया कम्प्यूटर्स, खैरागढ़।
4. डॉ० चौधरी सुभद्रा भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान कृष्णा ब्रदर्स अजमेर, 1984
5. जौहरी सीमा, संगीतायन, राधा पब्लिकेशन्स, 2003

\* \* \* \* \*

## संगीत शिक्षा के विविध आयाम

डॉ. नन्दिनी मुखर्जी\*

शिक्षा हमें उचित और आधुनिक गुण व अवगुण के बीच सकारात्मक भेद करने की शक्ति प्रदान करती है। शिक्षा हमारे समाज की आत्मा है। जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दी जाती है। रामकृष्ण परमहंस ने कहा है, “शिक्षा का उद्देश्य भीतरी विकास है।” प्लेटो के अनुसार “शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का समग्र विकास है।” उच्च शिक्षा का उद्देश्य छात्रों में नैतिकता सदाचार व आदर्श नागरिकता विकसित करना, सभ्यता व सांस्कृतिक का संरक्षण व प्रसार करना, शिक्षा के द्वारा समानता व सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना तथा सांस्कृतिक व सामाजिक विभिन्नताओं को कम करना है।

“ललित कलाओं की शिक्षा व्यक्ति के मानसिक एवं आत्मिक शक्तियों का परिष्कार करती है। संगीत के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ योग्य शिक्षक कलाकार, श्रोता, आलोचक शोधक, शास्त्रकार आदि उत्पन्न करना व समाज को नैतिक उत्कर्ष संगीत शिक्षा संस्कृति व सभ्यता को भी संरक्षण प्रदान करती है, पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही अनेक वर्षों की परम्परा में उपलब्ध संगीत का स्वरूप सांगीतिक व सांस्कृतिक परम्पराओं के लिये धरोहर स्वरूप होता है, क्योंकि इन्हीं के माध्यम से प्राचीन संस्कृति व सभ्यता का ज्ञान आगे होने वाली पीढ़ी तक उपलब्ध होता है। शिक्षा का मुख्य कार्य संस्कृति एवं सभ्यता को सुरक्षित रखना है।”<sup>1</sup>

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही संगीत के शिक्षण हेतु विभिन्न संगीतशालाओं अर्थात् शालेय शिक्षण व्यवस्था का अत्यधिक प्रचलन देखने को मिलता है। संगीत प्रयोगात्मक कला है और इस कला का माध्यम ध्वनिनाद है, जो श्रवण-बोधी रहता है इसलिये इस कला को श्रवण विद्या कहा जाता है क्योंकि संगीत शिक्षा श्रवण व अनुकरण अर्थात् प्रयोग द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है इसीलिये इस शिक्षा की प्राप्ति हेतु गुरु एवं शिष्य दोनों की उपस्थिति आवश्यक है। अतः यह कहा जा सकता है कि संगीत शिक्षा प्रणाली का इतिहास गुरु-शिष्य-परम्परा का इतिहास है। गुरु द्वारा अपने शिष्य को अपनी उत्तम विद्या का दान करने की परम्परा अर्थात् गुरु-शिष्य परम्परा भारतीय संगीत में मान्य रही है। वेद की शिक्षा के अतिरिक्त सिर्फ संगीत की शिक्षा आज भी गुरु शिष्य परम्परा के माध्यम समभव है। प्राचीन ग्रंथों में इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन काल में संगीत शिक्षण अपने चर्मोत्कर्ष पर था यह विषय राष्ट्रीय सम्मान का माना जाता था, संगीत शिक्षकों को राजाश्रय प्राप्त था, उनकी आर्थिक एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति का बोझ राज्य वहन करता था अतः वह पूर्णरूप से कला के लिये समर्पित होकर उच्चतम ज्ञान प्राप्त करके शिष्य को पूरी लगन और समर्पण की भावना से शिक्षा प्रदान करते थे और शिष्य भी श्रद्धा, लगन, त्याग व जिज्ञासा की भावना से शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरु शिष्य परम्परा में शिक्षा अमूल्य दान था गुरु शिष्य से प्रशिक्षण के लिये आर्थिक प्रतिदान की आशा नहीं करते थे, क्योंकि शाही संरक्षकों से संरक्षण प्राप्त था। शाही संरक्षण में शिथिलता आने पर शिक्षक को अपने जीविका साधन की खोज करने के लिये बाध्य होना पड़ा। अतः इस शिक्षण पद्धति में शिथिलता आ गई।

“इसके पश्चात् गुरुकुल व्यवस्था से निकल कर संगीत विद्या घराने के रूप में विकसित हुई। घराने का उदय व विकास मध्यकाल तथा उसके बाद के कालखण्ड की राजनैतिक, सामाजिक घटनाओं के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन का ही एक अंग है। जिस कारण से घराना पद्धति का उद्भव हुआ जो उस समय से आज तक बदलावों से गुजरती हुई, आज भी अपने स्वरूप को बनाए रखे हैं, यह एक रोचक तथ्य है।”<sup>2</sup>

\* एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत वादन (तबला), जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

यदि घराने का शाब्दिक अर्थ निकाले तो इसका अर्थ निकलता है घर आना। गुरु के घर आकर सीखने से कारण शिष्य गुरु का ही एक अंग समझा जाता था, जो गुरु द्वारा प्राप्त विशिष्ट शैली का प्रदर्शन करता था। घरानेदार उस्ताद केवल अपने पुत्र/पुत्रियों को ही शिक्षा देने लगे। इस प्रकार संगीत जन साधारण से दूर होता चला गया। इन सभी घरानों ने अपनी स्वतंत्र शैली और विशेषताएँ विकसित की। एक ओर तो घरानों ने परम्परागत संगीत को सुरक्षित रखने में मदद की वहीं दूसरी ओर उसकी संकीर्ण मानसिकता ने संगीत के विकास का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। संगीत के पुनरुत्थान की दृष्टि से इस समय में घरानों की अन्तिम कड़ी के रूप में पं० भारतखण्डे एवं पं० विष्णु दिगम्बर पलुत्कर जैसे दो महान संगीतज्ञों ने संगीत के पुनरुद्धार के लिए एवं सर्वजन सुलभ करने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। संगीत की शिक्षा सामुहिक रूप से देने की व्यवस्था विद्वानों द्वारा सोची गई। इसका प्रारम्भ 1905 में लाहौर में स्व० विष्णु दिगम्बर पलुत्कर द्वारा स्थापित स्कूल के रूप में हुआ। “1916 में बड़ौदा में प्रथम अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन का आयोजन भारतखण्डे जी के प्रयास से हुआ। इस सम्मेलन में ऑल इण्डिया म्यूजिक अकादमी की स्थापना का निर्णय लिया गया। भारतखण्डे जी द्वारा आयोजित पाँचवा बड़ा संगीत सम्मेलन लखनऊ में हुआ और उसमें निर्णय लिया गया कि शास्त्रीय संगीत के शिक्षण के लिए एक संगीत विद्यालय की स्थापना की जाए। अतः 1926 में ही मेरिस म्यूजिक कालेज की स्थापना लखनऊ में हुई। उनके प्रयास से ग्वालियर में भी माधव म्यूजिक कालेज की स्थापना हुई। इधर विष्णु दिगम्बर जी की प्रेरणा से इलाहाबाद में प्रयाग संगीत समिति की स्थापना की गई। एक मात्र सुखद संयोग है कि अब ये तीनों अपने लक्ष्य के चरम पर पहुँच गये हैं। इन विद्यालयों के बाद तो देश में कई सौ विद्यालय संगीत सेवा में रत हैं।”<sup>3</sup>

आज संगीत शिक्षा संगीत के निजी संस्थानों, विद्यालयों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में सम्पन्न हो रही है, गैर सरकारी संस्थान भी संगीत के प्रचार में बहुत सक्रिय हैं, कलाकार भी पैदा कर रहे हैं। शिक्षण संस्थाओं का शिक्षण पाठ्यक्रम के माध्यम से हो रहा है। इन शिक्षण संस्थाओं से कम समय में निर्दिष्ट पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों तक पहुँचा दिया जाता है, अब तक जो संगीत लुप्त था वह जनसामान्य को सुलभ हो गया है, जो बन्दिशें पुराने जमाने में विद्यार्थियों को उपलब्ध नहीं हो पाती थी। अब वो सही निर्देशन में बंधी होने के कारण उपलब्ध हो जाती है। आज भी संगीत शिक्षण पद्धति में गुरु शिष्य परम्परा या घराना पद्धति को ही आदर्श माना जाता है किन्तु घराना पद्धति की शिक्षा और शिक्षण संस्थाओं के उद्देश्य भिन्न हैं संस्थाओं में संगीत की शिक्षा निश्चित समय व पाठ्यक्रम की सीमाओं में दी जाती हैं, यहाँ विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना और कम समय में अधिक व्यक्तियों को संगीत का ज्ञान देना तथा कलाकार, अध्यापन व समझदार श्रोताओं का निर्माण करना इन संस्थाओं का उद्देश्य है। पहले मौखिक शिक्षा पर पूरा बल दिया जाता था, आज मौखिक के साथ-साथ लेखन पद्धति के समन्वय से क्रियात्मक एवं शास्त्र पक्ष भी सुदृढ़ हुआ है।

#### संदर्भ सूची

1. शर्मा, प्र० स्वतन्त्र, सौन्दर्य रस एवं संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद पृ०सं० 295—2010
2. संगीत मासिक पत्रिका, हाथरस प्रकाशन, शर्मा जुही का लेख, पृ०सं० 35, नवम्बर 2019
3. श्रीवास्तव आचार्य गिरीश चन्द्र, लय ताल विचार मंथन, रुबी प्रकाशन इलाहाबाद पृ०सं० 147—148, 2010

#### संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा प्र० स्वतन्त्र, सौन्दर्य रस एवं संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद 2010
2. संगीत मासिक पत्रिका, हाथरस प्रकाशन, सितम्बर 2009
3. संगीत मासिक पत्रिका हाथरस, प्रकाशन, नवम्बर 2019
4. श्रीवास्तव आचार्य, गिरीश चन्द्र, लयताल विचार मंथन, रुबी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
5. ऋषितोश कुमार, संगीत शिक्षण में विविध आयाम, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली, 2010
6. शर्मा, प्र० स्वतन्त्र, भारतीय संगीत, एक ऐतिहासिक विश्लेषण, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, 2014

\* \* \* \* \*

## सिनेमा की निर्माण प्रक्रिया

डॉ. गोकुल गोरख क्षीरसागर\*

प्राचीन काल से ही मनुष्य कलाओं का सृजक-आस्वादक रहा है। मानव सभ्यता के आरम्भिक समय में मनुष्य ने पेट की भूख मिटाने पर मस्तिष्क की भूख मिटाने के लिए कला का सृजन किया। धीरे-धीरे अपनी भूख-प्यास भूलकर वह कलाओं के निर्माण एवं आस्वादन में खोने लगा। इस प्रकार मनुष्य को पेट से उपर उठाने में कलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। प्रकारान्तर रूप से काह जा सकता है कि मनुष्य को मनुष्य बनाने में साहित्य, शिल्प, चित्र, संगीत, नाट्य आदि कलाओं की प्रमुख भूमिका रही है। 'सिनेमा' इन्हीं कलाओं के संमिश्रण से आधुनिक काल में निर्मित कला है। मूलतः चित्रकला से प्रभावित एवं निर्मित इस कला में शनैः-शनैः साहित्य, संगीत, नृत्य, शिल्प आदि कलाएँ जुड़ती गयीं। सिनेमा का रूप पूर्णतः कलात्मक होकर भी इसका निर्माण वैज्ञानिक प्रक्रियाओं, यंत्रों पर आधारित है। वैसे तो नाटक भी दृक-श्राव्य कला है, किंतु सिनेमा ने नाटक एवं रंगमंच की सीमाओं को तोड़कर श्रेष्ठ कला का रूप ग्रहण किया है। साहित्य जैसी कला को भी अधिक संप्रेषणधर्मी तथा प्रभावशाली रूप में परिवर्तित करने के कारण सिनेमा के साहित्य जैसी कलाओं के साथ पारस्परिक पूरक संबंध स्थापित हुए हैं। इसप्रकार सिनेमा आज अभिव्यक्ति का अत्याधिक शक्तिशाली माध्यम बन गया है।

चलचित्र एक सामूहिक कला है, जो निर्माण योजना से लेकर प्रदर्शन तक यांत्रिक उपकरणों की सहायता से निर्मित होती है। अन्य कलाओं में और सिनेमा में यही महत्वपूर्ण भिन्नता है। जैसे कोई चित्रकार जब चाहे तब अपनी कला का सृजन कर सकता है। कागज, रंग, तूलिका आदि संबंधित कला-सृजन के साधन आसानी से जुटाकर वह एक श्रेष्ठ कला का निर्माण कर सकता है। किंतु कोई फिल्म निर्देशक अथवा फिल्म निर्माता अकेला चलचित्र नहीं बना सकता। किसी भी फिल्मकार को सिनेमा बनाने हेतु कई लोगों की सहायता लेकर, विभिन्न चरणों से होते हुए सिनेमा का निर्माण करना पड़ता है। विभिन्न चरणों में संपन्न होनेवाली सिनेमा की प्रविधि जानकर ही हमें सिनेमा का वास्तविक स्वरूप समझ में आ सकता है। जिस प्रकार संगीत की जानकारी या समझ उसके सूर, लय, ताल आदि तत्वों को जाने बगैर हमें नहीं मिल सकती ठीक उसी प्रकार सिनेमा के स्वरूप पर प्रकाश डालने हेतु उसकी प्रविधि को यहाँ स्पष्ट करने का प्रयास किया है—

सिनेमा का निर्माण सामान्यतः तीन चरणों से गुजरकर पूर्ण होता है। वैसे सिनेमा के निर्माण के बहुत से कार्य एक-साथ कई स्तरों पर चलते हैं, किंतु सुविधा हेतु इस प्रविधि को निम्नलिखित चरणों में वर्गीकृत किया है—

**निर्माण पूर्व चरण (Pre Production Stage)**—यह चलचित्र निर्माण का प्रथम चरण होता है। इसमें चलचित्र निर्माण की योजना से लेकर छायांकन (शूटिंग) तक का कार्य आता है। यह चरण निम्नलिखित प्रमुख कार्यों द्वारा संपन्न होता है—

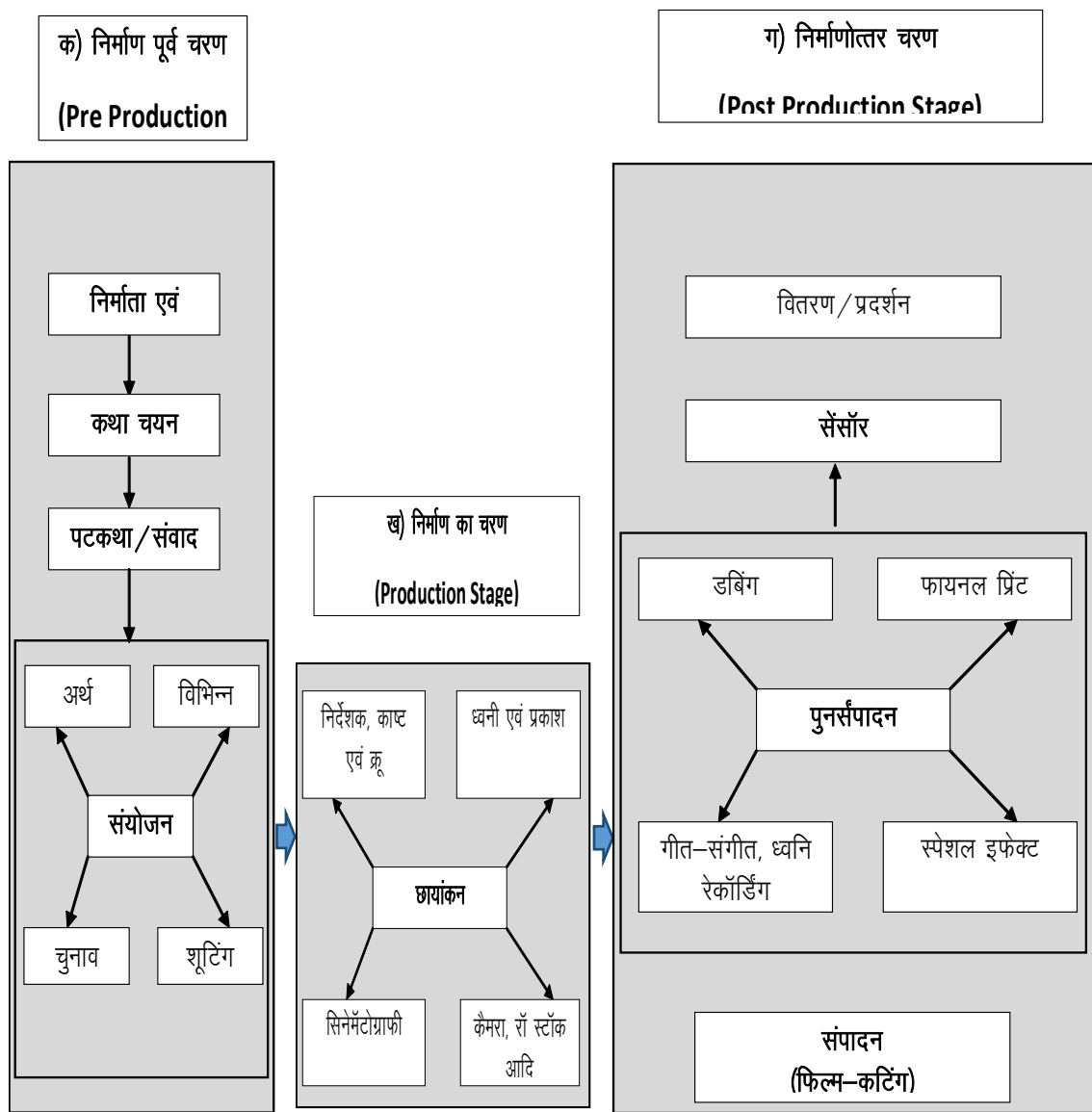
**निर्माता एवं निर्माण योजना**—चलचित्र की निर्माण प्रविधि का यह प्रथम कार्य होता है। चलचित्र बनाने का प्रारंभिक विचार जिसके द्वारा सामने आता है, उसे निर्माता (Producer) कहा जाता है। निर्माता कोई व्यक्ति भी हो सकता है अथवा कोई संस्था, जिसके द्वारा निर्माण की योजना बनाई जाती है। चलचित्र के निर्देशक से लेकर कथा, कास्ट, तकनीक आदि विभिन्न बातों के चुनाव का अधिकार निर्माता के पास होता है। निर्माण-योजना बनने पर बात कथा (स्टोरी/थीम) पर आकर रुकती है।

**कथा चयन**—चलचित्र निर्माण की योजना बनने पर निर्देशक, निर्माता द्वारा कथा का चयन किया जाता है। इस कार्य के लिए बहुत से पटकथा-लेखकों से कथाएँ/थीम सुनकर किसी कथा का चयन किया जाता है। कई बार किसी विषय या कल्पना के आधार पर ही चलचित्र के निर्माण की योजना बनती है। यदि कथा का चयन

\* हिन्दी विभाग, न्यू आर्ट्स एण्ड साइन्स कॉलेज, सेव गाँव, अहमदनगर



किसी साहित्यकार की रचना से करना हो तो उस संबंधित रचना के फिल्मांतरण के अधिकार निर्माता को प्राप्त करने होते हैं। कथा-चयन होने पर ताकि उस कथा पर पटकथा लिखी जाती है।



चित्र-1

**पटकथा एवं संवाद लेखन**—चयनित कथा अथवा थीम के आधार पर पटकथा लिखवाने के लिए लेखक का चयन किया जाता है। लेखक निर्माता, निर्देशक के निर्देशों का पालन करते हुए पटकथा लिखता है। लिखी हुई पटकथा को लेकर लेखक, निर्माता, निर्देशक की स्क्रिप्ट-कान्फ्रेंस होती है, जिसमें आवश्यक परिवर्तन करने के अधिकार निर्माता के पास होते हैं। स्क्रिप्ट का छायांकन होने तक आवश्यकतानुरूप पटकथा में छोटे-मोटे संशोधन होते रहते हैं।

पटकथा तैयार होने पर उसका अध्ययन कर संवाद-लेखक संवाद लिखता है। प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से सिनेमा के संवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए संवाद-लेखक अथवा पटकथा लेखक से संवाद लेखन पर कार्य करवाया जाता है।

**संयोजन**—करोड़ों रुपयों की लागत में बननेवाली इस कला की दीर्घ समय तक चलनेवाली प्रविधि को सुचारु पद्धति से पूरा करने हेतु निर्माण—पूर्व अवस्था में संयोजन की आवश्यकता होती है। पटकथा के आधार पर निर्माता—निर्देशक द्वारा चलचित्र निर्माण की पूरी अनुमानित योजना बनाई जाती है। इसमें प्रमुखतः निम्नलिखित बातों का संयोजन करना पड़ता है—

**अर्थ—व्यवस्था**—चलचित्र बनाने हेतु अनुमानित बजट बनाना तथ यह राशि जुटाने का कार्य निर्माता को करना पड़ता है। प्रायः निर्माता धन की व्यवस्था अपने कुछ रुपये लगाकर बाकी राशिक फायनान्सर के द्वारा करता है। फायनान्सर (व्यक्ति अथवा संस्था) चलचित्र की सफलता की संभावना के आधार पर अपना धन ब्याज पर लगाता है। चलचित्र—निर्माता कुछ धन फिल्म—वितरकों तथा बैंक द्वारा भी जुटाता है। आज सिनेमा में प्रचलित स्टार सिस्टम तथा फिल्म—निर्माण की नई तकनीक के कारण सिनेमा बनाने हेतु अत्यधिक पैसों की आवश्यकता लग रही है। इस प्रकार धन का प्रबंधन यह संयोजन के अंतर्गत आनेवाली फिल्म निर्माण की प्रविधि का महत्वपूर्ण चरण है।

**चुनाव या नियुक्ति**—निर्माता को चलचित्र निर्माण के लिए सबसे पहले किसी निर्देशक को चुनना पड़ता है। क्योंकि चलचित्र के निर्माण की वास्तविक जिम्मेदारी निर्देशक को ही निभानी होती है। निर्देशक के चुनाव के बाद निर्माता निर्देशक की सहायता से पटकथा—संवाद लेखक, गीतकार, संगीत निर्देशक, सिनेमैटोग्राफर आदि का चुनाव करता है। अपनी फिल्म योजना एवं स्क्रिप्ट के अनुरूप कास्ट, कैमेरा, रॉ—स्टॉक, एडिटर, प्रोडक्शन मैनेजर, अन्य तकनीशीयन इस प्रकार पूरे युनिट (Crew)की नियुक्ति करनी होती है।

**विभिन्न सूचियाँ तैयार करना**—चलचित्र का संयोजन सरल हो इसलिए चलचित्र के निर्माण से संबंधित विभिन्न सूचियाँ बनाई जाती हैं। जिसमें छायांकन के लिए आवश्यक लोकेशन, दृश्यों के अनुसार सेटिंग तथा प्रॉपर्टी, अभिनेताओं तथा अन्य पात्रों की शूटिंग—तिथि के अनुसार सूची, छायांकन इनडोर/आउटडोर करना है, उसके आधार पर आवश्यक लाइट, रिफ्लेक्टर, ट्रॉली आदि सामग्री की सूचियाँ बनाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण सूची बनाई जाती है, जिसे 'ब्रेकडाउन' कहा जाता है और इसमें सभी प्रकार की जानकारी संक्षेप में दी जाती है।

**शूटिंग स्क्रिप्ट/शूटिंग शेड्यूल**—चलचित्र निर्माण की तैयारी होने के बाद निर्देशक छायांकन की पूर्व तैयारी के रूप में छायांकन की योजना (डिटेल) को कागज पर उतारता है, इसे ही शूटिंग स्क्रिप्ट अथवा शूटिंग शेड्यूल कहा जाता है। इसमें हर शॉट, दृश्य को लोकेशन, कास्ट तथा तिथि की दृष्टि से अलग किया जाता है। इस शूटिंग शेड्यूल के आधार पर अभिनेताओं की तिथियाँ सुनिश्चित की जाती हैं। साथ ही प्रोडक्शन मैनेजर अथवा सहायक निर्देशक लोकेशन, सेट्स, प्रॉप्स, यातायात आदि बातों का संयोजन भी इसी शेड्यूल पर आधारित होता है।

इस प्रकार यह सिनेमा के निर्माण का प्रथम चरण होता है। चलचित्र—निर्माण कई लोगों द्वारा और प्रदीर्घ समय तक चलनेवाली प्रक्रिया होती है। इसलिए इस चरण में निर्माण योजना की हर बात कागज पर उतारकर, विभिन्न सूचियाँ बनाकर शूटिंग की पूर्व तैयारी की जाती है। शूटिंग शेड्यूल के माध्यम से शूटिंग का अनुमानित समय, शूटिंग लोकेशन, शूटिंग तिथियाँ आदि कई प्रकार की पूर्व तैयारियाँ होने के बाद शूटिंग आरंभ होती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि छायांकन की पूर्व तैयारियाँ इस चरण में आती हैं।

**निर्माण का चरण (Production Stage)**—चलचित्र—निर्माण पूर्व तैयारी होने के बाद निर्देशक इस द्वितीय चरण में चलचित्र—योजना को वास्तविक रूप देता है। इसमें चलचित्र का छायांकन (शूटिंग) पक्ष आता है। छायांकन करते समय कैमेरा, प्रकाश, ध्वनि—रिकार्डिंग, सेटिंग, वेश तथा केश—भूषा आदि के लिए फिल्म—तकनीशियनों का पूरा युनिट (Crew) कार्य करता है। इस युनिट को मार्गदर्शन करने का कार्य निर्देशक करता है। चलचित्र के छायांकन में कहानी के क्रम को कोई महत्व नहीं होता क्योंकि निर्देशक कास्ट, लोकेशन, सेट, कैमेरा—एंगल्स आदि के आधार पर कहानी के आगे—पीछे के दृश्यों को सुविधानुरूप छायांकित करता है। फिल्म की कहानी का क्रम लगाने की जिम्मेदारी संपादक की होती है।

छायांकन के लिए आरंभ करने से पहले छायांकन की तैयारी (कैमेरा, लाइट्स, लेंस आदि) होने पर निर्देशक 'साइलेंस' कहकर सबको शांत रहने का निर्देश देता है। यह निर्देश पाकर माहौल शांत होता है, सभी तकनीशीयन सजग होकर अपने कार्य के लिए तैयार हो जाते हैं। इसके बाद ध्वनि—मुद्रक को 'स्टार्ट साउंड' कहकर ध्वनि—मुद्रण यंत्र प्रारंभ करने का निर्देश दिया जाता है। रेकॉर्डर शुरू होकर सामान्य गति पर आने के बाद ध्वनि—मुद्रक तुरंत कैमेरामैन को कैमेरा शुरू करने का संकेत देता है। कैमेरा शुरू करने का संकेत देता है। कैमेरा शुरू कर उसके

सामान्य स्पीड में आते ही कैमरामैन क्लैप बॉय को क्लैप देने का आदेश देता है। आदेश मिलते ही क्लैप बॉय स्लेट पर लिखे हुए सीन-नंबर तथा शॉट-नंबर की घोषणा कर क्लैप बंद करता है। इसके तुरंत बाद हर चीज की जाँच परख कर निर्देशक 'ऑक्शन' (Action) कहकर शॉट शुरू करने का संकेत देता है और अभिनेता/अभिनेत्री यह संकेत पाकर अभिनय शुरूकर देता/देती है। निर्देशक की अपेक्षा के अनुसार शॉट पूरा न होने पर अथवा शॉट के बीच में ही कोई गलती होने पर शॉट को 'रिटेक' या 'कट' करने का अधिकार निर्देशक को होता है।

दिन अथवा रात में जितनी शूटिंग होती है उतनी फिल्म (छायांकित निगेटिव फिल्म) लेबोरेटरी में भेज दी जाती है। यदि फिल्म रात में भेजी जाती है, तो सुबह तक वह प्रिंट होकर आती है। लेबोरेटरी से प्रिंट होकर आयी फिल्म को 'रशेज' कहा जाता है। इस प्रिंट फिल्म को देखकर निर्देशक संबंधित शूटिंग का परिणाम देख सकता है। यदि उसमें कुछ गलतियाँ पाई जाती हैं, तो वे दृश्य पुनः छायांकित किये जाते हैं।

अतः यह चलचित्र-निर्माण का वास्तविक चरण होता है। चलचित्र की लिखित योजना को फिल्मांकित करने का कार्य इसी चरण में पूरा होता है। शूटिंग पूरी होने पर सिनेमा के निर्माण का तीसरा और अंतिम चरण आरंभ होता है।

❖ **निर्माण पश्चात का चरण (Post Production Stage)**—शूटिंग के पश्चात प्रदर्शन तक की प्रक्रिया इस चरण में पूरी होती है। वास्तविकतः चलचित्र का अंतिम प्रारूप इसी चरण में बनता है। यह चलचित्र निर्माण का पूर्णतः तकनीकी चरण होने के कारण यह संश्लिष्ट किंतु महत्वपूर्ण होता है। इस चरण में प्रमुखतः निम्नलिखित कार्य पूरे किये जाते हैं—

**संपादन**—छायांकन पूरा होने पर लेबोरेटरी से आयी प्रिंटेड फिल्म (रशेज) संपादन विभाग में भेज दी जाती है। संपादक रशेज को कथा-क्रम तथा दृश्य क्रम के आधार पर जोड़ता है। छायांकन के समय प्रयुक्त हुई क्लैप की आवाज तथा सिन एवं शॉट नंबर की सहायता से विश्रुंखलित रशेज को संपादक एक विशिष्ट क्रम एवं लय में काटता तथा जोड़ता है।

**डबिंग**—चलचित्र के छायांकन के समय चित्र और ध्वनि को अलग-अलग फिल्म पर अंकित किया जाता है। अतः संपादक को दृश्यों और ध्वनि का उचित मेल कर जोड़ना पड़ता है। सामान्यतः शूटिंग के बीच बाहरी आवाजों के कारण संवाद ठीक तरह से रेकॉर्ड नहीं होते। इसलिए शूटिंग के दरमियान रेकार्डेड संवादों के आधार पर तथा दृश्य में पात्रों के ओठों के हिलने की गति के अनुरूप संवाद स्टूडियो में पुनः रेकॉर्ड करवाये जाते हैं। इस प्रक्रिया को ही डबिंग कहा जाता है।

चित्र-फिल्म (रशेज) के संपादन के बाद संपादक ध्वनि-फिल्म को भी संपादित करता है और पिक्चर निगेटिव तथा ध्वनि-ट्रैक को मिलाकर बनी अथवा संपादित फिल्म-प्रिंट को 'मॅरिड प्रिंट' कहा जाता है। इसमें एक महत्वपूर्ण बात यह है कि 'मॅरिड प्रिंट' में ध्वनि ट्रैक पर मात्र संवाद तथा कुछेक ध्वनि ही होती है। इसमें संगीत का पार्श्वसंगीत नहीं होता।

**रि-रिकार्डिंग एवं मिक्सिंग**—ध्वनि-चित्र मुद्रित फिल्म (मॅरिड प्रिंट) के दृश्यों को और अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु संगीत निर्देशक द्वारा दृश्यों के अनुरूप पार्श्वसंगीत (बैकग्राउण्ड म्यूजिक) रेकार्ड करवाता है। इस प्रकार मॅरिड फिल्म में उपलब्ध संवाद एवं ध्वनि के ट्रैक के अतिरिक्त और एक स्वतंत्र पार्श्व संगीत का ध्वनि ट्रैक बनाया जाता है। पार्श्व-संगीत के साथ ही दृश्यों की प्रभावात्मकता बढ़ाने हेतु कुछ विशेष ध्वनि प्रभाव (Special Sound Effects) का भी एक अलग ध्वनि ट्रैक बनाया जाता है। अंत में इन सभी ध्वनियों को एक साथ फिल्म पर रिकार्ड किया जाता है, इसे रि-रिकार्डिंग (Re-recording) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त दृश्य की आवश्यकतानुरूप इस फायनल ध्वनि ट्रैक में विशेष ध्वनियों को कम या अधिक (टेम्पो) कर उसमें सम्मिलित किया जाता है। इस प्रक्रिया को 'मिक्सिंग' कहा जाता है। अंततः यह तैयार फिल्म-प्रिंट फायनल प्रिंट कहलाती है, जो प्रदर्शन के योग्य होती है।

**सेंसार**—संपादक द्वारा चलचित्र की बनाई फायनल प्रिंट प्रदर्शन के लिए भेजने से पहले सेंसार बोर्ड को दिखाकर सेंसार बोर्ड से प्रदर्शन की अनुमति का प्रमाणपत्र लेने के बाद ही संबंधित फिल्म प्रदर्शित की जा सकती है। सेंसार बोर्ड भारत सरकार द्वारा गठित (जनवरी 1951) केंद्रीय बोर्ड है। जो बोर्ड भारतीय फिल्मों के आपत्तिजनक हिस्से पर अथवा पूरी फिल्म पर रोक लगाने का, आपत्तिजनक हिस्सा या दृश्य हटाने की शर्त पर संबंधित फिल्म के प्रदर्शन की अनुमति देने का कार्य करता है।

भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में जहाँ सरकार द्वारा नियुक्त सेंसर बोर्ड नहीं है वहाँ निर्माताओं ने स्वयं द्वारा संगठित 'आरबीट्रेरी बोर्ड' बनाये हैं, जो वहाँ के चलचित्रों को प्रदर्शन का योग्यता प्रमाणपत्र देते हैं।

**चलचित्र का प्रदर्शन**—सेंसर सर्टिफिकेट प्राप्त होने के बाद चलचित्र के प्रदर्शन हेतु आवश्यकता के अनुसार फिल्म प्रतियाँ बनायी जाती हैं। ये प्रतियाँ वितरकों द्वारा प्रदर्शन गृहों में प्रदर्शित करवायी जाती हैं। आजकल सेटेलाइट द्वारा फिल्म का प्रदर्शन किया जा रहा है, जिससे सिनेमा के वितरण एवं प्रदर्शन की प्रक्रिया काफी सरल एवं आसान हुई है। अतः कहा जा सकता है कि फिल्म निर्माण के इस तीसरे चरण में छायांकित फिल्म को विशिष्ट क्रम में जोड़कर सुगठित, संयोजित तथा प्रदर्शन योग्य बनाया जाता है।

इस प्रकार चलचित्र की निर्माण योजना से लेकर प्रदर्शन तक की लंबी यात्रा तय करके चलचित्र का निर्माण होता है। यह प्रविधि कई लोगों द्वारा, कई स्तरों पर पूर्ण होती है। इसलिए चलचित्र को सामूहिक कला कहा जाता है। किंतु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक चलचित्र निर्माता इसी प्रविधि को अपनाएँ। फिल्म-निर्माण करते समय आवश्यकतानुरूप इसमें एकाध चरण बढ़ भी सकता है और कम भी हो सकता है।

#### सहाय्यक-सूची

1. भारतीय चलचित्र – डॉ महेंद्र मित्तल, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1975
2. चलचित्र – जगदीश कुमार निर्मल, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे, 1967
3. पटकथा कैसे लिखे? – राजेंद्र पांडे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
4. फिल्म निर्देशन – कुलदिप सिन्हा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
5. पटकथा लेखन : एक परिचय – मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

\* \* \* \* \*

## Study of Correlation Coefficient Analysis In Barley (*Hordeum Vulgare*.)

*Rachana Singh, Javed Ahmad Siddiqui and V.P. Kanaujia\**

**ABSTRACT** : Ten diverse genotypes of barley viz. K551, Jagrati, DL 88, K 633, K659, RD 2601, RD 2603, PL 512, UBE 466 and UBE 469 under diallel fashion were studied. Grain yield was positive and significantly correlated with no. of productive tillers/plant, at both genotypic phenotypic levels. Maximum correlation response in grain yield/plant with no. of grain/spike and no. of productive tillers/plant was obtained. Therefore the selection should be made on these characters for good grain yield.

**Key words** : Barley, correlation, genotypic and phenotypic

**Introduction** : Barley (*Hordeum vulgare* L.) is an important annual cereal crop. It is resistance to drought and tolerance to soil salinity-alkalinity, short duration and its adaptability make it an ideal cereal crop in India. Barley is rich source of essential amino acids i.e. thiamine and riboflavin and highly diuretic in nature. Due to its diuretic in nature it is much beneficial for diabetic patients. Its grain used for making baby foods, barley water, beer, pearl barley, sattu, chapati and animal feed.

Correlation indicate the degree and direction of association between two or more variables. Therefore its study in breeding programme is important to ascertain the scope for crop improvement. Thus a breeding programme is to be taken up to estimate the correlation coefficient for improvement of barley crop.

**Materials and Method** : Ten genetically diverse and homogenous parents and 45 F1s were grown during rabi 2001-2002 in a randomized block design with three replications.

The observations were recorded on ten characters namely plant height (cm), no. of productive tillers per plant, spike length of main shoot (cm), no. of grains per spike, grain yield per spike (g), grain yield per plant (g), 1000 kernel weight (g), harvest index. (%), days to 50% heading and days to maturity to estimate the correlation coefficient by adopting the method suggested [1].

**Result and Discussion** : All the ten traits (Table-1) revealed that the magnitude of genotypic correlation was greater than the phenotypic correlation.

The grain yield/plant was positive and significantly associated with the productive tillers/plant, no. of grain/spike, grain yield/spike at both genotypic and phenotypic levels [5], [13] and [6] were in the same view but on the other hand grain yield /plant was negatively associated with the days to 50% heading at both levels [4] also found the similar results in their study. Plant height showed significant and positive correlation with no. of productive tillers/plant, spike and positive correlation with no. of productive tillers/plant, spike length and days to 50% heading at phenotypic and genotypic levels. These results are in agreement with the findings of [11], [9] and [6].

*Department of Botany, D.A.V. College, Kanpur*

*\*C.S. Azad University of Agriculture and Technology, Kanpur*

No. of productive tillers per plant was positive and significantly associated with spike length of main shoot, 1000 kernel weight and days to maturity and negatively with no. of grains per spike and grain yield per plant at both level. Similar results have been reported by [12], [9] and [14].

No. of grains per spike was positive and significantly correlation with no. of productive tillers per plant and 1000 kernel weight. The results of the correlation study in barley crop exhibited that higher grain yield is completely influenced by the supporting traits such as no. of productive tillers per plant, no. of grains per spike, grain yield per spike and days to 50% heading.

Table

**Genotypic and phenotypic correlation matrix for 10 characters in F1s derived from 10 x 10 diallel cross of barley.**

rg rp	Plant height (cm)	No. of productive tillers per plant	Spike length of main shoot (cm)	No. of grain per spike	Grain yield per spike (g)	Grain yield per plant (g)	Harvest index (%)	1000 kernel weight (g)	Days to 50% heading	Days to maturity
Plant height (cm)	-	0.227*	0.421**	- 0.111	- 0.103	0.096	-0.147	0.054	0.245*	-0.023
No. of productive tillers per plant	0.225*	-	0.396**	-0.279 **	- 0.293 **	0.563 **	-0.085	0.228 *	0.106	0.0252 *
Spike length of main shoot (cm)	0.415 **	0.393**	-	0.394 **	- 0.231 *	0.060 *	- 0.238 *	0.376 **	0.214 *	-0.05
No. of grains per spike	- 0.108	-0.275**	0.383 **	-	0.778 **	0.497 **	0.079	- 0.649 **	- 0.446 **	0.220*
Grain yield per spike (g)	- 0.090	-0.276**	0.219 *	0.753**	-	0.567 **	0.085	- 0.070	- 0.288 **	0.110
Grain yield per plant (g)	0.100	0.555**	0.061	0.481 **	0.582 **	-	0.036	0.001	-0.154	0.152
Harvest index (%)	- 0.105	-0.052	- 0.194 *	0.078	0.180	0.417	-	0.26	0.175	0.116
1000 kernel weight (g)	0.063	0.214*	0.349 **	- 0.580 **	0.004	0.063	0.173	-	0.397	0.323 **
Days to 50% heading	0.219 *	0.094	0.195 *	- 0.406 **	0.265 **	- 0.151	0.096	0.304 **	-	0.141
Days to maturity	- 0.022	0.250*	- 0.057	- 0.217 *	- 0.105	0.148	0.095	0.299 **	0.126	-

r value 1% = 0.194\*, 5% = 0.254\*\*

## REFERENCES

1. Al-Jibouri, H.A.; Miller, P.A.; Robinson, H.P. (1958). Genotypic and Environmental Variance in upland cotton crosses of specific origin. Agron J. 50: 633-637.

2. Bhutta, W.M. B. Tahira and Ibrahim, (2005). Path-coefficient analyses of some quantitative characters in husked Barley, Carderno de Pesquisa ser. Bio Santa Cruz do sul, PP.65-70.
3. Budaki Carpici, E and N. Celik (2012) correlation and path coefficient analysis of grain yield and yield components in Two-Rowed of Barley (*Hordeum vulgare* canvar. distichon) varieties, not Sci. Biol. 4 (2) : 128-131.
4. Gulati S.C. and Murty, B.R. (1979). Genetics of yield and some developmental traits in barley, Proc. First Natl Symp. Barley pp. 26.27.
5. Jain R.P. (1968). Studies on correlation of barley. Allahabad Farmer, 42: 229-231.
6. Kishore, R.: Pandey, D.D. Verma, S.K. and Kishore, B. (2000). Genetic variability and character association in husk less barley Crop Res. Hissar, 19 (2) : 241-242.
7. Mahmood, Y.A. (2010) full Diallel crosses in two-rowed barley (*Hordeum vulgare* L.) M.Sc. Thesis College of Agriculture University of Sulaimani.
8. Mahmood L.F. (2012) Genetci analysis of Six -rowed lines of Barley (*Hordeum vulgare* L.) Using full diallel crosses. M.Sc thesis College of Agriculture University of Sulaimani.
9. Prasad G: Singh, S.K.; Singh R.S. (1980). Genotypic Correlation and both-coefficient analysis in barley under saline alkaline condition. Plant Breeding Abst. 2:147-150.
10. Rukvina, H. (1999). Seed size yield, yield component and malt quality of different spring barley cultivars. Agronomski fakulter sveucilista u Zagrebu, Zavod za sjemenarstvo, sjemenarstvo: 16: (1-2) 13-56.
11. Sethi G.S.: Singh, H.B. and Sharma K.D. (1972). Variability and correlation in cutlet barley (*Hordium vulgare* L.) Indian J. Agric Sci., 42 ; 21-24.
12. Sharma, S.P. and Maloo, S.R. (1994). Studies on variability parameter in barley. Agricultural Science Degest (Karnal). 14 (1) : 30-32
13. Singh, B.P. (1999). Correlation study in barley (*Hordeum valgare* L.) Journal of Applied Biology. 9: (2) : 143-145.
14. Subhash, Chandra: Jat, N.L; Ravindra Singh: Chandra, S. and Singh, R. (1998). Yield attributes of barley as influenced by intrigens, Zinc Sulphate and their correlation and regression with yield. Crop Research Hissar, 15(1) : 123-124.

\* \* \* \* \*